THE
KASHI SANSKRIT SERIES
98
*****

THE

NALACHAMPŪ

OR

DAMAYANTĪ KATHĀ

OF

ŚRĪ TRIVIKRAMA BHAṬṬA

WITH

The Viṣamapada Prakāśa Sanskrit Commentary

BY

ŚRĪ CHAṆḌAPĀLA
(1260 A. D.)

Edited with his own commentary and introduction

By

Prof. KAILĀSPATI TRIPĀTHĪ
M. A., Vyākaraṇa–Sāhityāchārya, Gold Medalist
Lecturer in Sanskrit, Bhagalpur University
Bhagalpur–7

CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN
Publisher and Seller of Oriental Cultural Literature
P. O. Chaukhambha, P. Box No. 139
Jadau Bhawan, K. 37/116, Gopal Mandir Lane
VARANASI (INDIA)

Also can be had of

CHAUKHAMBHA VISVABHARATI

Chowk (Opposite Chitra Cinema)

VARANASI-221001

Phone : 65444

Third Edition 1977

Price : First Ucchvāsa Rs. 4-00

First & Second Ucchvāsa Rs. 6-00

Complete Rs. 30-00

Sole Distributors

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA

A House of Oriental and Antiquarian Books

P. O. Chaukhambha, Post Box No. 32

Gokul Bhawan, K. 37/109, Gopal Mandir Lane

VARANASI-221001 (India)

Telephone : 63022 Telegram : [illegible]kulotsav

Branch—Bungalow Road, 9 U. B. Ja[illegible]ar Nagar

DELHI-110007 (India)

निवेदन

प्राच्याद्विष्णुपदीहेतोरपूर्वोऽयं त्रिविक्रमः।
निर्ममे विमलं व्योम्नि यत् पदं यमुनामपि ॥

संस्कृत वाङ्मय के चम्पू साहित्य में नलचम्पू समय और काव्य-गौरव दोनों दृष्टियों से प्रथम है। मधुरतर श्लेष-विन्यास तथा अद्भुत भाव सृष्टि के कारण इस ग्रन्थ ने सहृदय समाज में अप्रतिम ख्याति अर्जित की है। भाव-संवलित कलाप्रौढ़ काव्यों में इसका बड़ा श्लाघनीय स्थान है। प्रसिद्ध राजाश्रय में रहने के कारण त्रिविक्रम शास्त्र ही की तरह लोकविद्या में भी निष्णात हो गये थे। उनके ग्रन्थ में काव्य-कला के साथ ही लोकविद्या तथा इतिवृत्त-तत्त्वों की भी प्रचुर सामग्री उपलब्ध है; किन्तु सहृदयसंवेद्य तत्त्वों के इस विपुल भाण्डार को बहुविध श्लेषों के कारण उन्होंने सर्वसुलभ नहीं रहने दिया है। इसकी श्लेषबहुल शब्दार्थप्रौढ़ि को ध्यान में रखकर ही विभिन्न विश्वविद्यालयों ने इसे एम० ए० तथा साहित्याचार्य की परीक्षाओं में पाठ्य-ग्रन्थ के रूप में निर्धारित किया है।

सम्प्रति संस्कृत में इस ग्रन्थ पर दो टिप्पणियाँ उपलब्ध हैं—श्री चण्डपाल का विषमपदप्रकाश और पं० नन्दकिशोर शर्मा जी की भावबोधिनी। निर्णय-सागर से प्रकाशित संस्करण में केवल विषमपद-प्रकाश छपा है और काशी संस्कृत सीरीज संस्करण में विषमपदप्रकाश के साथ भावबोधिनी भी मुद्रित है। ये दोनों ही टिप्पणियाँ श्लिष्ट ग्रन्थियों को शिथिल करने में बहुत सहायक हैं किन्तु कठिनाई यह है कि ये ग्रन्थ के समग्र अंश पर नहीं लिखी गयी हैं। कतिपय श्लिष्ट या भावप्रधान पद्यों तथा अनुच्छेदों तक ही सीमित हैं। अतः संस्कृत में भी कोई ऐसा विश्लेषण उपलब्ध नहीं है जो ग्रन्थ के समग्र अंश पर प्रकाश डाल सके।

विभिन्न सूचीपत्रों से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ पर और भी कई व्याख्यायें कभी की गई थीं। आचार्य चण्डपाल ने अपने विषम-पद-प्रकाश में एक विवृति नामक टीका का उल्लेख किया।[1] डा० हीरालाल जी ने अपने सूचीपत्र संख्या २१४७ में पाँच टीकाओं से युक्त दमयन्तीकथा नामक ग्रन्थ का उल्लेख

---

१. नलचम्पू—' दप्रकाश, पृ० २८९.

किया है। ये कौन पाँच टीकायें थीं, किसने की थीं इसका कुछ पता नहीं है; क्योंकि उक्त सूचीपत्र में इस सम्बन्ध में और कोई विवरण उपलब्ध नहीं है।

निर्णयसागर संस्करण वाले नलचम्पू की भूमिका में एक 'बृहट्टीका' का संकेत है जो कभी जयपुर-राजगुरु नरहरि शर्मा जी के पास थी। डा० बर्नेल सूचीपत्र—१५९ (a) में नागदेव कृत एक टीका का उल्लेख है किन्तु इस सम्बन्ध में वहाँ और कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। आर्वेट सूचीपत्र—२११ में भी इसकी एक टीका का उल्लेख है। उसके कर्ता का नाम वहाँ नहीं लिखा है। निर्णसागर संस्करण वाले नलचम्पू की भूमिका से एक और टीका का संकेत मिलता है जिसके कर्ता दामोदर थे। यह टीका भी कभी जयपुर-राजगुरु नरहरि शर्मा जी के पास थी। गुणविनय गणि ने दमयन्ती-चम्पू-वृत्ति नामक टीका लिखी थी।[1] मालूम पड़ता है चण्डपाल के विषमपदप्रकाश ने जिन पदों का विश्लेषण छोड़ दिया था उन्हीं की व्याख्या इसमें की गयी थी।[2]

भावबोधिनी और विषमपदप्रकाश को छोड़कर उपर्युक्त टीकाओं में से एक भी उपलब्ध नहीं है। विभिन्न सूचीपत्रों में इनका केवल संकेत भर मिलता है। इससे इतना तो स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ अति प्राचीन काल से लोकप्रिय रहा है। बहुत से विद्वानों ने इस पर यथासमय व्याख्यायें लिखीं जो दुर्दैववश काल-ग्रस्त हो गयीं; आज उपलब्ध न रहीं।

सम्प्रति विभिन्न विश्वविद्यालयों में प्रस्तुत ग्रन्थ के पाठ्य पुस्तक रूप में निर्धारण से और प्राक्तन सांस्कृतिक तत्त्वों के अनुसन्धित्सुओं की इस ग्रन्थ की ओर उत्सुकता से इसके एक नये संस्करण का अभाव बहुत दिनों से खटक रहा था।

इस संस्करण में मूल ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद तथा सापेक्ष विश्लेषण के साथ चण्डपालकृत विषमपदप्रकाश भी सम्पादित है। मूल ग्रन्थ तथा विषमपद-प्रकाश के पाठों को भी यथासम्भव शुद्ध करने का प्रयास किया गया है। हिन्दी अनुवाद में मूल भावों के साथ संघटना-सौन्दर्य की सुरक्षा का भी ध्यान रखा गया है। भावसौन्दर्य के साथ बन्धसौन्दर्य का भी आस्वाद पाठकों को मिल सके, इस लक्ष्य से हिन्दी अनुवाद तथा विश्लेषण लिखा गया है। ऐसा करने में कहीं-कहीं हिन्दी की अबहुप्रचलित शैली का अवलम्ब लेना पड़ा है।

---

१. पं० नन्दकिशोर शर्मा—नलचम्पू उपोद्घात, पृ० ९.

२. श्री चण्डपालोऽत्र कियत्पदानां यद्यप्यनिन्द्यां विवृतिं चकार।
तथाऽपि तच्छ्लेष-पदार्थ-सार्थ-प्रकाशनात्तां विवृणोमि चम्पूम्॥
टीका का प्रारम्भिक पद्य। का० सं० सी० संस्करण, नलचम्पू उपोद्घात, पृ० ११ में उद्धृत।

हिन्दी में श्लिष्ट गद्यबन्धों को प्रस्तुत करते समय या विश्लिष्ट करते समय हिन्दी की प्रचलित शैली से कोई भिन्न मार्ग अपनाना स्वाभाविक हो जाता है, क्योंकि संस्कृत के विभक्तिश्लेष, प्रत्ययश्लेष आदि प्रकारों को हिन्दी के सीमित शब्दों में विश्लिष्ट करना मुश्किल हो जाता है। ऐसे स्थलों को व्याकृत करते समय अनुवाद वाले कथाप्रसङ्ग के प्रवाह के साथ कहीं-कहीं कोष्ठकवद्ध विश्लेषण के कतिपय अनुच्छेदों को भी जोड़ना पड़ा है। श्लेष के इन विचित्र तालों को खोलने के लिये ये वक्राकार कोष्ठक कुञ्जियां वहुत आवश्यक प्रतीत हुई। मुद्रण में इन कोष्ठकों का कहीं-कहीं अनुचित विन्यास हो गया है। इनके यथासम्भव मार्जन के लिये ग्रन्थ के अन्त में एक शुद्धिपत्र लगा दिया गया है। सहृदय पाठकों से निवेदन है कि असमञ्जस के हर स्थलों पर शुद्धि पत्र का उपयोग कर लेंगे।

१९५९ में जव मैं वाराणसेय विरला संस्कृत महाविद्यालय वाराणसी के साहित्य विभाग में अध्यापक था, इस ग्रन्थ पर एक विश्लेषण तथा एक समीक्षा लिखने के लिये सोचा था, किन्तु यह कार्य वाराणसी में न होकर भागलपुर में पूर्ण हुआ। इस ग्रन्थ के छपते समय मैं अपने शोध कार्य में व्यस्त था। प्रूफ देखने की व्यवस्था मुद्रणालय की ओर से की गयी थी। जहां कहीं मुझे असंगति प्रतीत हुई उसका संयोजन मैंने शुद्धिपत्र भाग में कर दिया है।

भूमिका भाग में त्रिविक्रम भट्ट के समय, निवास तथा कृति के साथ चम्पू-काव्यलक्षण, कथावस्तु, समाज-विधान तथा भौगोलिक स्थलों का भी अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

इस कार्य में साक्षात् या परम्परया जिन विद्वानों की कृतियों से मुझे सहयोग मिला है मैं उन सवका आभार मानता हूँ। अनुवाद तथा विश्लेषण भाग में चण्डपाल तथा पं० नन्दकिशोर शर्मा एवं भूमिका के भौगोलिक विवरण वाले खण्ड में डा० भगवत शरण उपाध्याय जी से मुझे बहुत सहायता मिली है। मैं इन सभी विद्वानों का परम कृतज्ञ हूँ।

वाराणसेय विरला संस्कृत महाविद्यालय वाराणसी के प्रधानाचार्य गुरुवर्य पण्डित रामानुज जी ओझा न्याय-व्याकरण-साहित्याचार्य का मैं सर्वाधिक कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे इस कार्य में प्रवृत्त किया और इसकी पूर्णता के लिये सदा प्रेरित करते रहे। चौखम्बा विद्याभवन के व्यवस्थापक श्री मोहनदास जी गुप्त को साधुवाद देता हूँ जिन्होंने बड़ी तत्परता से इस ग्रन्थ को प्रकाशित किया है।

भागलपुर विश्वविद्यालय
गणतन्त्र दिवस १९६५

कैलासपति त्रिपाठी

विषय-क्रम

(भूमिका)

भूमिका

नलचम्पू के रचयिता श्रीत्रिविक्रम भट्ट

चम्पूकाव्यनिर्माण में श्रीत्रिविक्रम भट्ट को वैसी ही सफलता मिली है जैसी पद्य एवं गद्य में क्रमशः कालिदास और बाण को। संस्कृत के अन्य कवियों की तरह इनका भी समय एवं स्थान अनुमान ही द्वारा ज्ञेय है। नलचम्पू में बहुत से संकेत कवि ने रख छोड़े हैं जिनसे उनका परिचय आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

इनका जन्म शाण्डिल्य गोत्र के एक कर्मनिष्ठ ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पूर्वज यज्ञ आदि धार्मिक कार्यों का अनुष्ठान करते थे। पौराणिक प्रवचन भी इनका मुख्य कार्य था।[1]

वे अपनी विद्या, तपस्या तथा पवित्रता के लिये तत्कालीन समाज में पूर्णतः प्रसिद्ध थे। इनके पिता का नाम नेमादित्य तथा पितामह का नाम श्रीधर था। विभिन्न पाण्डुलिपियों में पाठ-भेद के कारण कहीं-कहीं इनके पिता का नाम देवादित्य भी छपा हुआ है,[2] किन्तु बहुप्रचलित पाठ नेमादित्य ही है।

समय :—

त्रिविक्रम ने अपने पूर्ववर्ती कवियों की प्रशंसा के प्रसंग में गुणाढ्य और बाण की भी चर्चा की है।[3] साथ ही धाराधीश भोज विरचित सरस्वतीकण्ठाभरण में

---

१ अस्ति·········क्रतुक्रियाकाण्डशौण्डस्य शाण्डिल्यनाम्नो महर्षेर्वंशः।
महाभारतिकाश्च ये रङ्गोपजीविनः।

न० च० प्र० उ० पृ० १२

२. तेषां वंशे विशदयशसां श्रीधरस्यात्मजोऽभूद्
देवादित्यः स्वमतिविकसद्वेदविद्याविवेकः।
उत्कल्लोलां दिशि दिशि जनाः कीर्तिपीयूषसिन्धुं
यस्याद्यापि श्रवणपुटकैः कूणिताक्षाः पिबन्ति॥

न० च० प्र० उ० श्लो० १९

तैस्तैरात्मगुणैर्येन त्रिलोक्यास्तिलकायितम्।
तस्मादस्मि सुतो जातो जाड्यपात्रं त्रिविक्रमः॥

न० च० प्र० उ० श्लो० २०

३. शश्वद्बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा।
धनुषेव गुणाढ्येन निःशेषं रञ्जितो जनः॥

न० च० प्र० उ० श्लो० १४

नलचम्पू के छठे उच्छ्वास का एक श्लोक उद्धृत है।[1] इन दो संकेतों से त्रिविक्रम के समय की पूर्वापर सीमायें निर्धारित की जा सकतीं हैं। महाकवि बाण कान्यकुब्ज सम्राट् हर्षवर्धन की सभा के रत्न थे। हर्षवर्धन का समय ६०६–६४७ ई० है। धाराधीश भोज का समय १०१५–१०५५ ई० है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रकूटवंशीय राजा इन्द्र तृतीय (शक वर्ष ८३६) ९१४ ई० का एक अभिलेख गुजरात के बगुम्रा नामक गाँव में मिला है जिसका लेखक नेमादित्य का लड़का त्रिविक्रम भट्ट है। यद्यपि इस अभिलेख में उसके गोत्र का उल्लेख नहीं हुआ है फिर भी पिता के नाम की समानता तथा श्लेषबहुल रचनाशैली की समानता के कारण नलचम्पू का रचयिता त्रिविक्रम भट्ट ही इसका भी लेखक है. यह जाना जाता है। इन तथ्यों के आधार पर यह निश्चय किया जा सकता है कि त्रिविक्रम भट्ट दशम शताब्दी के प्रथमार्ध में हुए थे। इन्द्रराज तृतीय के मुख्य सभापण्डित त्रिविक्रम भट्ट थे। बड़ौदा के नवसारी नामक गाँव में एक ताम्रपत्र मिला है जिससे इन्द्रराज तृतीय का स्थितिकाल ठीक से ज्ञात होता है। यह लेख फाल्गुन शुक्ल सप्तमी विक्रम संवत् ९७२ (२४ फरवरी ९१५ ई०) को गंगा और कृष्णा के संगम पर वर्त्तमान कुरुण्डक नामक स्थान पर उसके राज्याभिषेक के अवसर पर लिखा गया था।[2]

इन्द्रराज के राज्याभिषेक का काल निर्धारित करने वाला एक और अभिलेख बृत्तिमत्तूर (धारवाड़) में ९१६ ई० का प्राप्त हुआ है। इन्द्रराज के ही एक महासामन्त ने इसे लिखवाया था।[3] इन्द्रराज तृतीय का विस्तृत वर्णन इतिहास के विविध ग्रन्थों में उपलब्ध है।[4] इन्द्रराज तृतीय ने अपने पट्टबन्धोत्सव के उपलक्ष में अनेक विध दान दिये थे। उस सम्बन्ध में जो प्रशस्तियाँ लिखी गयीं, उनके लेखक नेमादित्य-पुत्र त्रिविक्रम भट्ट थे।[5] आज से ७२ वर्ष पूर्व गुजरात से जो इस सम्बन्ध में दो अभिलेख प्राप्त हुए हैं और हाल ही में महाराष्ट्र से भी एक अभिलेख मिला है, उन सबके अन्त में निम्नलिखित श्लोक अङ्कित है :—

---

१. पर्वतभेदि पवित्रं जैत्रं नरकस्य बहुमतङ्गहनम् ।
हरिमिव हरिमिव हरिमिव वहति पयः पश्यत पयोष्णी ॥
न० च० प्र० उ० श्लो० २९

२. जर्नल बाम्बे ब्राञ्च रायल एशियाटिक सोसाइटी–भाग १८, पृ० २५३, २५७, २६१।

३. इण्डियन एण्टीक्वेरी–भाग १२, पृ० २२४।

४. श्री विश्वनाथ रेऊ कृत 'भारत के प्राचीन राजवंश' (राष्ट्रकूट) भाग ३ पृ० ५०–५२।

५. प्राकृत व्याकरण के निर्माता त्रिविक्रम नलचम्पूकर्ता त्रिविक्रम से भिन्न हैं, क्योंकि वे १३ शताब्दी के बीच हुए थे।
इण्डियन एण्टिक्वेरी–भाग ४०, पृ० २१६

श्रीत्रिविक्रमभट्टेन नेमादित्यस्य सूनुना।
कृता शस्ता प्रशस्तेयमिन्द्रराजाङ्घ्रिसेविना॥

[इन्द्रराज के सेवक, नेमादित्य के पुत्र त्रिविक्रम भट्ट ने इस प्रशस्त स्तुति की रचना की।]

इन प्रशस्तियों में श्लेष की वैसी ही बहुलता है जैसी नलचम्पू में। इन्द्रराज प्रशस्ति का ही एक श्लोक है :—

कृतगोवर्धनोद्धार हेलोन्मूलितमेरुणा।
उपेन्द्रमिन्द्रराजेन जित्वा येन न विस्मितम्॥

इस श्लोक में गोवर्धन, मेरु और उपेन्द्र पद के अर्थविधान में आज तक पुरातत्त्वज्ञों में विवाद चला आ रहा है।

एक समय इन्द्रराज तृतीय ने मेरु नगर (कन्नौज) पर आक्रमण किया और वहाँ के राजा को जीत लिया। प्रस्तुत श्लोक एक पक्ष में कृष्ण और इन्द्र अर्थ में लगता है और एक पक्ष में मेरु सम्राट् तथा इन्द्रराज (तृतीय) की ओर लगता है।

नामसाम्य के अतिरिक्त श्लेष की इन बहुलताओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि इन प्रशस्तियों के कर्ता तथा नलचम्पू के कर्ता अभिन्न हैं और उनका समय दशम शताब्दी का प्रथमार्ध है।

बम्बई से प्रकाशित नलचम्पू की भूमिका में त्रिविक्रम भट्ट के सम्बन्ध में एक किंवदन्ती का उल्लेख हुआ है, जिससे नलचम्पू की अपूर्णता के कारण पर प्रकाश पड़ता है।

किसी समय समस्त शास्त्रों में निष्णात देवादित्य नाम के राजपण्डित थे। उनका लड़का त्रिविक्रम था। प्रारम्भ से उसने कुकर्म ही सीखे थे, किसी शास्त्र का अभ्यास नहीं किया था। एक समय किसी कार्यवश देवादित्य दूसरे गाँव चले गये। राजनगर में उनकी अनुपस्थिति जान कर एक विद्वान् राजभवन आया और राजा से कहा, 'राजन्, मेरे साथ किसी विद्वान् से शास्त्रार्थ कराइये, अन्यथा मुझे विजयपत्र दीजिये।' राजा ने दूत को आदेश दिया कि वह देवादित्य को बुला लाये। राजदूत के द्वारा जब यह ज्ञात हुआ कि देवादित्य कहीं बाहर गये हैं तो उसने उनके पुत्र त्रिविक्रम को ही शास्त्रार्थ के लिये बुलवा लिया। त्रिविक्रम बड़ी चिन्ता में पड़े। शास्त्रार्थ का नाम सुनते ही उनका माथा ठनक गया। अन्ततः उन्होंने सरस्वती की स्तुति की—"माँ भारती मुझ मूर्ख पर कृपा करो। आज यहाँ पर आये हुए इस महापण्डित से आप के भक्त का यश क्षीण न हो जाय। उसके साथ शास्त्रार्थ में मुझे विजयी बनाओ।" पितृ-परम्परा से पूजित कुलदेवी सरस्वती ने उसे वर दिया, "जब तक तुम्हारे पिता लौट कर नहीं आते हैं तुम्हारे मुख में निवास करूँगी।"

वर की महिमा से राजसभा में अपने प्रतिद्वन्द्वी को पराजित कर राजा द्वारा बहु विध सम्मान पाकर त्रिविक्रम घर लौटा। घर आकर उसने सोचा कि

पिताजी के आगमन-काल तक सरस्वती मेरे मुख में रहेगी। तब तक यश के लिये मैं कोई प्रबन्ध क्यों न लिख डालूँ। अतः उसने पुण्यश्लोक नल के चरित को गद्य-पद्य में लिखना शुरू किया। इस तरह सातवें उच्छ्वास की समाप्ति के दिन पिता जी का आगमन हो गया और सरस्वती उनके मुख से बाहर चली गयी। इस लिये नलचम्पू ग्रन्थ अपूर्ण ही रह गया।

संस्कृत के अत्युत्कृष्ट कवियों के सम्बन्ध में इस तरह की अधिकांश कहानियां प्रचलित हैं। वाल्मीकि, कालिदास आदि की भी बाल्यकालीन मूर्खता की कल्पना की गयी है। त्रिविक्रम ने एक जगह अपने को जाड्यपात्र कहा है—

तैस्तैरात्मगुणैर्येन त्रिलोक्यास्तिलकायितम्।
तस्मादस्मि सुतो जातो जाड्यपात्रं त्रिविक्रमः॥

प्र० उ० श्लो० २०

इससे तो उसका विनयातिशय मात्र सूचित होता है। कथा की अपूर्णता, उनकी अपने सम्बन्ध में जाड्योक्ति और नलचम्पू की अतिमानवीय सफलता आदि बातें इस किंवदन्ती के पल्लवन का अवसर देती हैं। वस्तुतः इसका कोई आधार नहीं है।

त्रिविक्रम भट्ट के पूर्वजों को कोई राजाश्रय प्राप्त था इसमें भी कोई प्रमाण नहीं है। अपने पूर्वजों का वर्णन करते समय उन्होंने स्वयं लिखा है—महाभारति-काश्च न च ये रङ्गोपजीविनः' (पृ० १३) इससे यह संकेत मिल सकता है कि उनके पूर्वज पुराण के व्याख्याता थे। क्रतुक्रियाशौण्ड कह कर भी उनकी धर्म-प्रवणता ही अधिक सूचित की गयी है। ऐसा प्रतीत होता है कि नलचम्पू की रचना के कारण श्रीत्रिविक्रम भट्ट अत्यधिक प्रसिद्ध हो गये। इसी लिये तत्कालीन सम्राट् इन्द्रराज (तृतीय) का आश्रय इन्हें प्राप्त हुआ।

त्रिविक्रम को सरस एवं श्लिष्ट पदों की योजना में इतनी अधिक सफलता मिली है कि यह विश्वास नहीं होता कि बिना अतिमानव शक्ति के इस तरह की रचना सम्भव हो सकेगी। जहाँ कहीं भी इस तरह का वैचित्र्य लक्षित हो जाता है वहाँ इस तरह की किंवदन्तियां उठ जाती हैं।

संस्कृत साहित्य में एक ऐसी भी परम्परा है कि अत्यन्त सफल लोग अपेक्षाकृत पूर्णता की ओर अपने ग्रन्थों को पहुँचा कर कुछ अपूर्ण स्थिति में छोड़ देते हैं। उन्हें अपनी प्रतिभाप्रसूत कृति पर इतना विश्वास है कि किसी पूर्ण कृति की अपेक्षा उनकी रचना का सन्मान कम नहीं होगा। इसलिये नलचम्पू, नैषधीय-चरित, कादम्बरी, रसगंगाधर आदि महत्त्वपूर्ण कृतियाँ अपूर्ण ही हैं। अपूर्ण होने पर भी इनका सम्मान अपने-अपने क्षेत्र में सर्वाधिक है। इन्हीं तथ्यों के आधार पर उक्त किंवदन्ती पर लोग विश्वास नहीं करते। कथा अपूर्ण होती हुई भी नितान्त पूर्णतोन्मुख है इसका विवरण आगे इस भूमिका में विस्तारपूर्वक किया जायगा।

त्रिविक्रम भट्ट और भास्कराचार्य :—

डा० भाऊदा जी ने नासिक के समीप प्राप्त एक ताम्रलेख से यह सिद्ध किया है कि सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद् भास्कराचार्य इसी त्रिविक्रम भट्ट के वंशज थे। इस ताम्रलेख के अनुसार शाण्डिल्य वंश में कविचक्रवर्ती त्रिविक्रम भट्ट उत्पन्न हुए। उनके पुत्र भास्कर भट्ट थे जिन्होंने भोजराज से विद्यापति की उपाधि प्राप्त की थी।[१] भास्कर भट्ट से साक्षात गोविन्द की ही तरह सर्वज्ञ गोविन्द नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। उसमे सूर्य की तरह तेजस्वी प्रभाकर नाम का लड़का हुआ।[२]

प्रभाकर से मनोरथ उत्पन्न हुए जो सज्जनों के लिये पूर्णकाम की प्रतिमूर्ति थे। उनमे कविसम्राट् महेश्वराचार्य उत्पन्न हुए। इन्हीं के पुत्र प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् भास्कराचार्य हुए।[३]

इनके पुत्र लक्ष्मीधर हुए जो वेदों के विशेषज्ञ तथा तार्किक चक्रवर्ती थे।[४]

जैत्रपाल उन्हें सर्वशास्त्रनिष्णात समझकर उनके गाँव से अपने यहाँ ले आये और अपनी विद्वत् सभा का मुख्य-बनाये।[५] इनका लड़का चङ्गदेव हुआ जो सिंहण का शासक तथा वरिष्ठ ज्योतिषी था। भास्कराचार्य के शास्त्र के प्रचार

---

१. शाण्डिल्यवंशे कविचक्रवर्ती,
त्रिविक्रमोऽभूत्तनयोऽस्य जातः।
यो भोजराजेन कृताभिधानो,
विद्यापतिर्भास्करभट्टनामा ॥ १६ ॥

२. तस्माद् गोविन्दसर्वज्ञो जातो गोविन्दसन्निभः।
प्रभाकरसुतस्तस्मात् प्रभाकर इवापरः ॥ १७ ॥

३. तस्मान्मनोरथो जातः सतां पूर्णमनोरथः।
श्रीमान् महेश्वराचार्यस्ततोऽजनि कवीश्वरः ॥ १८ ॥
तत्सूनुः कविवृन्दवन्दिपदः सद्वेदविद्यालता,
कन्दः कंसरिपुप्रसादितपदः सर्वज्ञविद्यासदः।
यच्छिष्यैः सह कोऽपि नो विवदितुं दक्षो विवादी क्वचित्,
श्रीमान् भास्करकोविदः समभवत् सत्कीर्तिपुण्यान्वितः ॥ १९ ॥

४. लक्ष्मीधराख्योऽखिलसूरिमुख्यो वेदार्थवित्तार्किकचक्रवर्ती।
क्रतुक्रियाकाण्डविचारसारो विशारदो भास्करनन्दनोऽभूत् ॥ २० ॥

५. सर्वशास्त्रार्थदक्षोऽयमिति मत्वा पुरादतः।
जैत्रपालेन यो नीतः कृतश्च विबुधाग्रणीः ॥ २१ ॥

के लिये उसने एक मठ स्थापित किया।[1] उनका उद्देश्य था कि भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि आदि ग्रन्थ तथा उनके वंश के और लोगों ने जो ग्रन्थ लिखे हैं उनकी व्याख्या नियमतः उनके मठ में हो।[2]

इस विवरण को प्रस्तुत करने वाला यह ताम्रलेख शक-संवत् ११२८ (१२०६ ई०) श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण के अवसर पर इस मठ के लिये देवगिरिस्थित यादववंशीय सोईदेव द्वारा दिये गये दान के प्रमाण रूप में खानदेश के पाटण नामक गाँव में लिखा गया था। सोईदेव ने इस लेख में कामना की है कि मैंने या और जिस किसी ने स्वर्ण या भूमि जो कुछ भी दिया है उसे भविष्य के राजा अपनी पुण्यवृद्धि के लिये रक्षित रखें।[3]

इससे यह सिद्ध है कि प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् भास्कराचार्य त्रिविक्रम भट्ट के वंशज थे। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि त्रिविक्रम के बाद के उनके वंशज को राज-सम्मान पूर्णतः प्राप्त था। वासनावार्तिककार नृसिंह के गणिताध्याय के प्रथम श्लोक की व्याख्या से ज्ञात होता है कि भास्कराचार्य १११४ ई० तदनुसार १०३६ शक वर्ष में उत्पन्न हुए। इनका गोत्र शाण्डिल्य था तथा ये सह्याद्रि के निकट कर्णाटक प्रान्त के बीजापुर में रहते थे।

त्रिविक्रम भट्ट के ही वंश में एक अनन्तदेव हो गये हैं जो यादववंशीय सिंहणराज के गुरु थे। इनका लिखा हुआ एक अभिलेख खानदेश के बहाला नामक गाँव में मिला है जिसमें शाण्डिल्य गोत्रीय महेश्वर के पुत्र श्रीपति और उनके पुत्र गणपति तथा उनके पुत्र अनन्तदेव एवं महेश्वर की चर्चा है।[4]

---

१. तस्मात् सुतः सिंहणचक्रवर्ती-
देवज्ञवर्योऽजनिचङ्गदेवः।
श्रीभास्कराचार्यनिबद्धशास्त्र-
विस्तारहेतोः कुरुते मठं यः॥ २२॥

२. भास्कररचितग्रन्थाः शिद्धान्तशिरोमणिप्रमुखाः।
तद्वंश्यकृताश्चान्ये व्याख्येया मन्मठे नियतम्॥ २३॥

३. श्रीसोइदेवेन मठाय दत्तं हेमादिवा किञ्चिदिहापरैश्च।
भूम्यादि सर्वं परिपालनीयं भविष्यभूपैर्बहुपुण्यवृद्धयै॥ २४॥

स्वस्ति श्रीशके ११२८ प्रभवसंवत्सरे श्रीश्रावणे मासे पौर्णमास्यां चन्द्र-ग्रहणसमये श्रीसोइदेवेन सर्वजनसन्निधौ हस्तोदकपूर्वकं निजगुरुरचितमठा-याग्रस्थानं दत्तम्।

एपिग्राफिया इण्डिका भा० १, पृष्ठ ३४१.

४. एपिग्राफिया इण्डिका भा० ३, पृष्ठ ११२.

त्रिविक्रम भट्ट की वंश-परम्परा
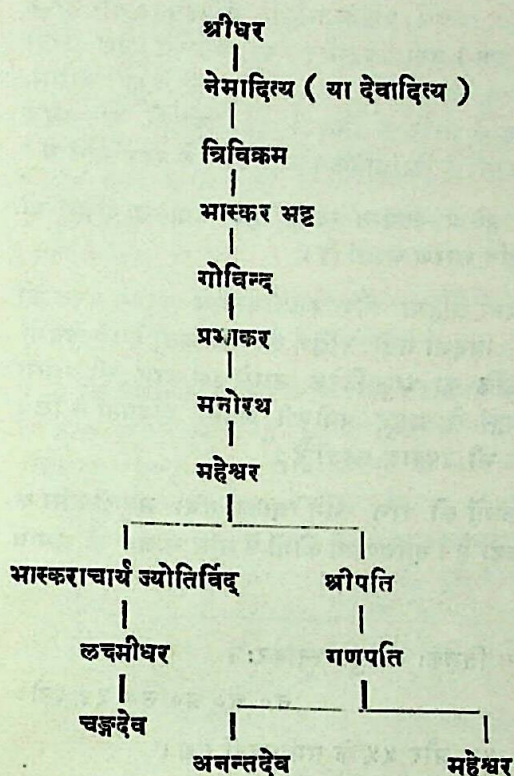
(नलचम्पू , नासिक अभिलेख तथा बहाला अभिलेख के आधार)

त्रिविक्रम भट्ट का अभिजन : देश

नलचम्पू में नल का परिचय देने के लिये आर्यावर्त और निषध का तथा दमयन्ती का परिचय देने के लिये कुण्डिनपुर और विदर्भ का वर्णन बड़े आटोप के साथ किया गया है। शाब्दी छटा की झाँकी दोनों ही पक्षों में मज़े में देखी जा सकती है। आर्यावर्त का परिचय देता हुआ कवि किसी छोटे या बड़े भौगोलिक स्थान का वर्णन नहीं कर सका है। केवल उसके वैभव की ही उदात्तता का वर्णन करता दिखाई पड़ता है।

इसके विपरीत कुण्डिनपुर और विदर्भ का वर्णन इस ढंग से किया है जिससे ज्ञात होता है कि विदर्भ देश का कोना-कोना उसे ज्ञात है। आर्यावर्त के नाम और उसके वैभव की कहानी मात्र से परिचय है किन्तु उस मिट्टी में उसे पलने का अवसर नहीं मिला है। दक्षिण, विदर्भमण्डल, और कुण्डिनपुर की प्रशंसा करते समय उसकी प्रतिभा और विलक्षण हो जाती है। दक्षिण देश को वह

दक्षिण दिशा के मुख का तिलक कहता है।[1] वहाँ के श्रीपर्वत, कावेरीतीर तथा गन्धमादन पर्वत की भूमि से वह पूर्ण परिचित है।[2] कुण्डिनपुर और उसके पास में बहने वाली पयोष्णी (पूर्ण) नदी, विदर्भ देश का भोजकट प्रदेश, वरदा (वर्धा) नदी, भार्गव का आश्रम, मार्कण्डेय तथा जमदग्नि ऋषि का आश्रम, महावराह का मन्दिर, महावराह के शरीर से निकली हुई पयोष्णी का समृद्ध वर्णन, ये सब बातें प्रमाणित करती हैं कि त्रिविक्रम भट्ट विदर्भ के रहने वाले थे।

उत्तर की प्रसिद्ध चीजों की अपेक्षा अत्यन्त स्वल्प एवं अप्रसिद्ध दक्षिण की चीजों को बड़े आदर के साथ कवि स्मरण करता है।

उसकी दृष्टि में श्री शैल अपनी महिमा और रमणीयता से कैलास पर्वत की शोभा का परिहास करता है।[3] विदर्भा नदी दक्षिण की सरस्वती है।[4] विदर्भा एक छोटी सी नदी है किन्तु कवि का श्रद्धातिरेक उससे इस तरह की प्रशंसा करा रहा है। महावराह के अङ्गों से प्रसूत पयोष्णी अपनी पवित्रता के लिये तीनों लोकों में प्रसिद्ध गङ्गा का भी उपहास करती है।[5]

उत्तरपश्चिम और पूर्व के लोगों को सत्तू खाने वाला तथा मछली-मांस के बिना भोजन न करने वाला कहा है। दाक्षिणात्य लोगों में मांस भोजन का अभाव बताया गया है।[6]

---

१. देशो दक्षिणदिङ्मुखस्य तिलकः स्त्रीपुंसरत्नाकरः।

न० च० प्र० उ० ५४ श्लो०

२. देखिये प्र० उ० श्लो० ५४ और ५५ के समीपवर्ती गद्य।

३. अपहसितकैलासश्रीः श्रीशैलः, न० च० पृ० ७४

४. वीरपुरुषं तदेतद् वरदातटनामकं महाराष्ट्रम्।
दक्षिणसरस्वती सा वहति विदर्भा नदी यत्र॥

ष० उ० श्लो० ६६

५. गङ्गामुपहसन्ती······पुण्यपयाः पयोष्णी वहति।

६. अहो नु खल्वमी मत्स्यमांसैर्विरहितमुदीच्यप्रतीच्यप्राच्यजनाः प्रियसक्तवो भोक्तुमेव न जानन्ति। विरलः खलु दाक्षिणात्येषु मांसाशनव्यवहारः।

न० च० स० उ० श्लो० ११ के आगे

पर्वत भेदि पवित्रं जैत्रं नरकस्य बहुमतङ्गहनम्।
हरिमिव हरिमिव हरिमिव वहति पयः पश्यत पयोष्णी॥

ष० उ० श्लो० २९

चक्रधरं विषमाक्षं कृतमदकलराजहंससंचारम्।
हरिहरविरञ्चिसदृशं भजत पयोष्णीतटं मुनयः॥

प्र० उ० श्लो० ३३

पयोष्णी तो उसे सबसे अधिक प्रिय है। महाकवि श्री हर्ष ने जैसे अपने कवित्व का श्लाघ्यतम अंश पञ्चनली में लगा दिया वैसे ही त्रिविक्रम ने पयोष्णी की महिमा वर्णित करने में अपने श्लेष-कौशल का उदात्ततम अंश लगा दिया है। पर्वत को तोड़कर बहने वाले, नरक से रक्षा करने वाले, महनीय एवं गम्भीर पयोष्णी के प्रवाह की तुलना पर्वतों को नष्ट करने वाले तथा वज्र से रक्षा करने वाले इन्द्र से, नरकासुर को जीत लेने वाले विष्णु से तथा अनेक हाथियों को मार डालने वाले सिंह से किया है।[1] पयोष्णी-तट की तुलना विष्णु, शिव और ब्रह्मा के साथ भी की है।

इन सब तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि त्रिविक्रमभट्ट विदर्भ में पयोष्णी-तट के निवासी थे।

वे किसी एक देव के कट्टर उपासक नहीं प्रतीत होते। उन्होंने अपने ग्रन्थ में शिव, नारायण, सूर्य, गणेश एवं कार्तिकेय को बड़ी श्रद्धा से स्मरण किया है। शिवोपासना के साथ वे कार्तिकेय के उपासक थे। यद्यपि वे सब जगह हरचरण सरोज की ही ओर झुके दिखाई पड़ते हैं, फिर भी कार्तिकेय की ओर उनके झुकाव का संकेत मिल ही जाता है। उपासक लोग किस देव की उपासना करते हैं, इस बात को प्रकट होने देना नहीं चाहते, इसी परम्परा के अनुसार कार्तिकेय को खुल कर उन्होंने याद नहीं किया है। किन्तु उन्हें छिपा भी नहीं सके हैं। उनका प्रथम पथिक जो नल से प्रथम उच्छ्वास में मिलता है, गन्धमादनस्थित कार्तिकेय का दर्शन करके ही लौट रहा है। राजा भीम स्वप्न में शक्तिमान् स्वामी कार्तिकेय और गणेश के साथ शिवजी का दर्शन करता है।[2]

विदर्भ में आज भी स्वामी कार्तिकेय की उपासना बड़े समृद्ध ढंग से होती है। इन परोक्षकल्प संकेतों से यह प्रतीत होता है कि वे कार्तिकेय के उपासक थे।

त्रिविक्रम भट्ट की कृतियाँ

संस्कृत साहित्य के इतिहासकारों ने मदालसाचम्पू और नलचम्पू इन दो ग्रन्थों का निर्माता त्रिविक्रम भट्ट को कहा है। नलचम्पू का विस्तृत परिचय आगे दिया जायेगा। मदालसा चम्पू का परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

मदालस चम्पू भी एक प्रणय-गाथा है। इसके नायक कुवलयाश्व और नायिका मदालसा हैं। कुवलयाश्व और मदालसा की प्रेम-कथा मार्कण्डेय पुराण

---

१. क्रौञ्चभिदो भगवतः सुगन्धिगन्धमादनाधिवासिनः स्कन्ददेवस्य दर्शनार्थमितो गतवानस्मि

२. विनायकेन स्वामिना च शक्तिमताऽनुगम्यमानो……दृष्टः स्वप्नान्तरे प्रणतप्रियंकरः शंकरः।

न० च० पृ० १४२

(अध्याय १८ से २२ तक) में विस्तृत रूप से वर्णित है। कुवलयाश्वचरित, पातालकेतु का वध, मदालसा-परिणय, मदालसा-वियोग, कुवलयाश्व का नागराज के घर जाना और मदालसा की पुनः प्राप्ति आदि इस कथा की प्रमुख घटनायें हैं। कथावस्तु के समुचित विन्यास के कारण यह ग्रन्थ भी बड़ा रोचक है।

मदालसा की कथा को आधार बनाकर मदालसा परिणय (कर्ता अज्ञात) मदालसा-नाटक (रामभट्ट[1]), मदालसा (भवदेव कृत[2]) आदि कई कृतियाँ प्रस्तुत की गयी हैं।

मदालसाचम्पू और नलचम्पू को तुलनात्मक दृष्टि से पढ़ने पर ऐसा लगता है कि इन दोनों ग्रन्थों के कर्ता एक नहीं हैं।

(१) नलचम्पू के शुरू में ग्रन्थकार अपने पिता, पितामह तथा गोत्र का उल्लेख करते हैं किन्तु मदालसाचम्पू में ग्रन्थकार इस तरह का कोई संकेत नहीं देते।

(२) नलचम्पू में श्लेष की जो प्रचुरता है वह मदालसाचम्पू में नहीं पाई जाती।

(३) नलचम्पू के उच्छ्वासों के अन्त में हरचरणसरोज का अङ्क दिया हुआ है किन्तु मदालसाचम्पू में इस तरह का कोई अङ्क नहीं है।

(४) नलचम्पू में उच्छ्वास हैं जब कि मदालसाचम्पू में उल्लास हैं।

(५) नलचम्पू के प्रारम्भ में ही क्लिष्ट शब्दार्थ-योजना का संकल्प किया गया है किन्तु मदालसाचम्पू में इस तरह का कोई संकेत नहीं है। वस्तुतः इसमें कठिनाई के अंशों की प्रचुरता है भी नहीं।

इन सब तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मदालसा और नलचम्पू के भिन्न-भिन्न कर्ता थे। नेमादित्यपुत्र शाण्डिल्य गोत्रज त्रिविक्रम भट्ट मदालसाचम्पू के निर्माता नहीं थे।

चम्पूकाव्यलक्षण

लक्षणकारों की दृष्टि जितनी संयत होकर पद्य एवं गद्यकाव्यों पर पड़ी है उतनी चम्पूकाव्यों पर नहीं। चम्पूकाव्यों का उद्भव बाद में हुआ। समीक्षकों की दृष्टि पद्य और गद्य में ही अटकी रही अतः मिश्रकाव्य अधिक समीचित नहीं हो सके। पद्यों की गेयता तथा गद्यों की अर्थगुरुता का एकत्र आस्वाद कराने की दृष्टि से परवर्ती कवियों ने चम्पूकाव्य लिखना शुरू किया। अग्निपुराण में मिश्रकाव्य को दो भागों में विभक्त किया गया है—ख्यात तथा प्रकीर्ण—

मिश्रं वपुरिति ख्यातं प्रकीर्णमिति च द्विधा। (३३७-३८)

---

१. क० कैट० १।४२६

२. बम्बई से प्रकाशित

कुछ लोग वपुः की जगह चम्पूः पाठ मानते हैं। उनका कहना है कि वपुः पद अपना कोई विशेष अर्थ नहीं रखता।[1] अतः 'चम्पू' यही पाठ होना चाहिये।

मिश्रकाव्य को चम्पू के अतिरिक्त कुछ और संज्ञायें समीक्षकों ने दी हैं—

करम्भक—विभिन्न भाषाओं में लिखित रचना करम्भक कहलाती है;[2] जैसे विश्वनाथ प्रशस्तिरत्नावली को करम्भक मानते हैं।

विरुद—गद्यपद्यमिश्रित शैली में लिखित राजस्तुति विरुद कहलाती है।[3] रघुदेव की विरुदावली एवं कल्याणरचित विरुदावली उदाहरण के लिए देखी जा सकती हैं।[4]

घोषणा या जयघोषणा—सुमतीन्द्र कवि ने शाहजी की जयघोषणा प्रस्तुत की है जो 'सुमतीन्द्रजयघोषणा' नाम से प्रख्यात है।[5] आरम्भ में कवि ने स्वयं जयघोषणा का लक्षण किया और उसके अनुसार ग्रन्थ की रचना की है। इनके अनुसार जयघोषणा में चारों दिशाओं के सीमस्थ पर्वतों का गद्य-पद्यमय वर्णन होना चाहिए। गौडी रीति की प्रधानता होनी चाहिए। वर्ण्य राजा को ही एकमात्र शूर वर्णित करना चाहिए। इसके प्रथम और अन्तिम पद्य आशीर्वादयुक्त होते हैं। उनमें नेता का नाम भी होता है। नेता महीपति ही हो सकता है।

आज्ञापत्र एवं दानपत्र—ताम्रपत्र एवं शिलापट्टों पर बहुत सी राजाज्ञायें और दानवृत्तान्त लिखे मिलते हैं। ये गद्य-पद्य मिश्रित हैं। अलंकार एवं उक्तिवैचित्र्य के कारण इन्हें भी काव्यत्व प्राप्त है।

ये सभी रचनायें मिश्रकोटि की कृतियों में मुक्तक कक्षा की मानी जा सकती हैं। मिश्रकाव्य का प्रबन्धात्मक स्वरूप चम्पूकाव्य है। जैसे पद्य के रघुवंश एवं किरातार्जुनीयम्, गद्य के कादम्बरी एवं दशकुमारचरित वैसे ही मिश्रकाव्य की प्रबन्ध रचनायें हैं नलचम्पू, यशस्तिलकचम्पू आदि।

चम्पू शब्द—चम्पू शब्द की व्युत्पत्ति चुरादिगण के चपि धातु से उ प्रत्यय लगा कर चम्पयति चम्पति इति वा चम्पूः की जाती है। किन्तु इस व्युत्पत्ति से शब्द का स्वरूपमात्र उपस्थित होता है। जिस रचना के लिये चम्पू शब्द व्यवहृत होता है वहाँ तक यह व्युत्पत्ति सरलता से पहुँच नहीं पाती है। गति के चार अर्थ होते हैं—गमन, ज्ञान, प्राप्ति तथा मोक्ष। इस आधार पर यह अर्थ निकाला जा सकता है कि चम्पू उस रचना को कहते हैं जो मोक्षसहोदर आनन्द प्राप्त करायें। किन्तु इस तरह की उपलब्धि हर तरह के काव्य से अपेक्षित है।

---

१ पं० नन्दकिशोर शर्मा सम्पादित नलचम्पू का उपोद्घात, पृ० ७

२. करम्भकं तु विविधाभिर्भाषाभिर्विनिर्मितम्। सा० दर्पण ६।३३७

३. गद्यपद्यमयी राजस्तुतिर्विरुदमुच्यते। सा० दर्पण ६।३३७

४. द्रष्टव्य—कलकत्ता संस्कृत कालेज कैटलग, सं० १३९, १४२

५. सरस्वती महल लायब्रेरी तंजोर कैटलग, सं० पी० पी० एस० शास्त्री। वॉ ८, नं० ४२३७

सहृदयों को आनन्द देने की क्षमता सर्वविध काव्य में होनी चाहिये। इस व्युत्पत्ति से काव्यविशेष लक्षित नहीं होता।

हरिदासजी भट्टाचार्य ने इस शब्द की व्याख्या करते हुए—"चमत्कृत्य पुनाति सहृदयान् विस्मितीकृत्य प्रसादयति इति चम्पूः" कहा है। एक व्युत्पत्ति अधिक उपयुक्त जान पड़ती है। चम्पूकाव्य चमत्कारप्रधान हुआ करते हैं। चमत्कार से तात्पर्य है उक्तिवक्रता एवं शाब्दी काट-छाँट से। चम्पूकाव्यों में रस, एवम् औचित्य की अपेक्षा पाण्डित्यप्रदर्शन की ओर कृतिकारों का अधिक ध्यान रहा है। यों तो शब्दार्थ-योजना-वैचित्र्य सब जगह दिखायी पड़ता है, किन्तु चमत्कारप्रदर्शन की ओर सर्वाधिक प्रवृत्ति चम्पूकाव्यों में दृष्टिगत होती है।

चम्पू शब्द को एक पारिभाषिक शब्द मानकर विभिन्न आचार्यों ने उसके कुछ निम्नलिखित लक्षण किये हैं—

गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यपि विद्यते। (काव्यादर्श १।३१)

दण्डी के इस लक्षण के अनुसार चम्पू में गद्य-पद्यमिश्रण मात्र ही अपेक्षित है। दण्डी जैसे समीक्षक ने चम्पू के लक्षण बनाने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया इसका यही तात्पर्य है कि उन दिनों तक इतनी भारी संख्या में चम्पूकाव्यों का निर्माण नहीं हो सका था, लेकिन इतना अवश्य है कि दण्डी के समय तक चम्पू-काव्य का अस्तित्व हो गया था।

बारहवीं शताब्दी में हेमचन्द्राचार्य ने अपने काव्यानुशासन में एक नया लक्षण किया जिसमें गद्य-पद्य मिश्रण के अतिरिक्त साङ्क और सोच्छ्वास होना भी चम्पू के लिये आवश्यक बताया—

गद्यपद्यमयी सांका सोच्छ्वासा चम्पूः।

हेमचन्द्रः काव्यानुशासन ८।९।

भोज ने चम्पूकाव्य के भीतर वाद्य और संगीत के मिश्रण से उत्पन्न माधुरी की तरह गद्य-पद्य के मिश्रित आनन्द की चर्चा की है किन्तु उसका कोई विशेष लक्षण नहीं किया।[1]

डा० सूर्यकान्त सम्पादित नृसिंहचम्पू की भूमिका में किसी अज्ञात विद्वान् का बनाया एक लक्षण अङ्कित है जिसमें उक्ति-प्रत्युक्ति एवं विष्कम्भ से शून्य होना भी चम्पूकाव्य के लक्षण में जोड़ लिया गया है—

गद्यपद्यमयी साङ्का सोच्छ्वासाकविगुम्फिता।
उक्तिप्रत्युक्तिविष्कम्भशून्या चम्पूरुदाहृता॥ (केचित्।)

उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर यह तथ्य निकाला जा सकता है कि चम्पूकाव्य गद्य-पद्यमय होता है, साङ्क होता है, विभिन्न उच्छ्वासों में विभक्त होता है, उक्ति-प्रत्युक्ति या कथोपकथन से शून्य होता है और नाटकों की तरह उसमें विष्कम्भ नहीं होता।

---

१. द्रष्टव्य :—भोजकृत रामायणचम्पू बालकाण्ड ३।

यह लक्षण नलचम्पू में तो लग जाता है, क्योंकि यह गद्यपद्यमिश्रण के अतिरिक्त साङ्क है। अर्थात् इसके प्रत्येक उच्छ्वास के अन्तिम पद्य एवं उच्छ्वास के समाप्तिसूचक गद्य में 'हरचरणसरोजाङ्क' या "हरचरणसरोज" अंश उपलब्ध होता है, और यह सात उच्छ्वासों में विभक्त है। किन्तु यह लक्षण बहुत से चम्पुओं में नहीं घटता, क्योंकि उपलब्ध २३५ चम्पूकाव्यों में केवल नलचम्पू (हरचरणसरोजाङ्क) और गंगावतरणचम्पू (गंगाचरणाङ्क) हैं, शेष कोई चम्पू साङ्क नहीं है। अतः लक्षण अव्याप्तिदोषयुक्त हो गया। लक्षण जब अपने लक्ष्य में नहीं लगता तो उसे अव्याप्तिदोषग्रस्त समझा जाता है।

'उच्छ्वासों में विभक्त होना' यह अंश भी अव्याप्तिदोषग्रस्त है क्योंकि चम्पूकाव्यकारों ने अपनी इच्छा के अनुकूल अपने अध्याय-विभाजन का नाम रक्खा है—

स्तवकों में विभाजित चम्पूकाव्य—भागवतचम्पू, भारतचम्पू पुरुदेवचम्पू, आनन्दवृन्दावनचम्पू, रामानुजचम्पू आदि। आश्वासों में विभाजित चम्पू :— यशस्तिलकचम्पू, वसुचरित, यात्राप्रबन्ध नीलकण्ठविजय आदि।

उल्लासों में विभाजित :—यतिराजविजय, नाथमुनिविजय, आनन्दकन्द, कुवलयाश्वविलासचम्पू आदि।

काण्डों में विभाजित—रामायणचम्पू, विरूपाक्षवसन्तोत्सवचम्पू आदि।

तरङ्गों में विभाजित—शंकरमन्दारसौरभचम्पू, विद्वन्मोदतरङ्गिणी आदि।

सर्गों में विभाजित—बालभागवतचम्पू भरतेश्वराभ्युदय आदि।

विलासों में विभाजित—रघुनाथविजयचम्पू और वरदाभ्युदय।

लम्भक में विभाजित—जीवनधरचम्पू।

कल्लोल में विभाजित—आचार्यदिग्विजय।

मनोरथ में विभाजित—मन्दारमरन्दचम्पू।

परिच्छेद में विभाजित—रामचन्द्रचम्पू।

चम्पूकाव्यों का उच्छ्वासयुक्त होना अनिवार्य माना जाय तो उपर्युक्त काव्य चम्पू की कोटि में नहीं आ सकेंगे।

उक्तिप्रत्युक्ति का न होना—यह भी आवश्यक लक्षण नहीं है, क्योंकि निम्न लिखित चम्पूकाव्य उक्तिप्रत्युक्ति से सम्पन्न हैं—विश्वगुणादर्श, वीरभद्रविजय, तत्त्वगुणादर्श, विद्वन्मोदतरङ्गिणी।

विष्कम्भ शून्य होना—चम्पूकाव्य दृश्यकाव्य नहीं है, अतः उसमें विष्कम्भ के होने न होने की बात अविचारणीय है।

अतः उपर्युक्त विशेषताओं पर विचार करने से यही स्पष्ट हुआ कि अब तक चम्पुकाव्य का कोई ऐसा लक्षण नहीं बन पाया जो अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोष से शून्य हो।

---

१. इति श्रीत्रिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायाम् हरचरणसरोजाङ्कायां प्रथम उच्छ्वासः समाप्तः। न० च० पृ० ८२

चम्पूकाव्यों के निर्माता बड़े स्वच्छन्द विचार के हुए हैं। उनकी कृतियों को किसी एक लक्षण के भीतर बांधना मुश्किल का काम प्रतीत होता है। चम्पू-काव्य का लक्षण बनाते समय यह ध्यान रखना है कि मिश्र शैली की मुक्तक रचनाओं से उन्हें पृथक् रखा जाय। इस लिये इसके लक्षण में "सम्बन्ध" रखना आवश्यक है। गद्य-पद्यमिश्रित कथा-कहानियों से उसे पृथक् रखने के लिये लक्षण में 'सालङ्कृतम्' यह अंश लगाना आवश्यक है। चम्पूकाव्यों में जिस तरह अलङ्कृत पदावली प्रयुक्त करने की प्रथा है उस तरह पञ्चतन्त्र आदि की कथा-कहानियों में नहीं। दानपत्र आदि जो अलङ्कृत शैली में लिखे गये हैं वे प्रबन्धकाव्य के रूप में नहीं हैं। अतः,

> गद्यपद्यमयं श्रव्यं सबन्धं बहु वर्णितम्।
> सालङ्कृतं रसैः सिक्तं चम्पूकाव्यमुदाहृतम्॥

यह लक्षण अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।[1] यह गद्य-पद्यमिश्रित नाटकों में नहीं जा सकता क्योंकि नाटक दृश्यकाव्य हैं और चम्पू श्रव्यकाव्य हैं।

दानपत्र आदि मुक्तक मिश्रकाव्यों में नहीं जा सकता क्योंकि दानपत्र आदि मुक्तक हैं जब कि चम्पू काव्य सम्बन्ध (प्रबन्ध) काव्य होते हैं। दान-पत्र आदि तथ्य प्रस्तुत करने में लगे रहते हैं जब कि चम्पू काव्यों में लघुतर वस्तु को भी वर्णन से सजाने की कोशिश की गयी रहती है। पञ्चतन्त्र आदि से अलग रखने के लिये सालंकृतम् लगा दिया गया है। रसासिक्तता तो उदात्त काव्य की प्रयोजिका ही होती है। तात्पर्य हुआ कि—

१. जो गद्य-पद्य मिश्रित होता है, २. श्रव्य होता है, ३. प्रबन्धकाव्य होता है, ४. वर्णनप्रधान होता है। तथा ५. अलङ्कारबहुल एवं सरस, होता है उसे चम्पूकाव्य कहा जाता है।

चम्पूकाव्य का उद्भव एवं विकास

शैली के आधार पर श्रव्य काव्य के तीन भेद किये जाते हैं—पद्यकाव्य, गद्यकाव्य और मिश्रकाव्य।[2] पद्यकाव्य वे हैं जो छन्दःशास्त्र के नियमों के

---

१. डा० छविनाथ त्रिपाठी; चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवम् ऐति-हासिक अध्ययन। पृ० ४९

२. गद्यं गद्यं च मिश्रं च तत् त्रिधैव व्यवस्थितम्। काव्यादर्श १।११
अग्निपुराण ३३७।८
गद्यं पद्यं च मिश्रं काव्यं यत् सा गतिः स्मृता। सरस्वतीकण्ठाभरण २।१८
तच्च गद्यपद्यमिश्रभेदैस्त्रिधा। वाग्भट—काव्या० अ० १
श्रव्यं तु त्रिविधं ज्ञेयं गद्यपद्योभयात्मना।
मन्दारमरन्द, शेषविन्दु ११पृ० १८६

अनुसार बने हैं। गद्यकाव्य छन्दःशास्त्र के नियमों से मुक्त होते हैं। कवि बड़ी स्वतन्त्रता से मञ्जुल पदबन्धों के माध्यम से सरसता का वातावरण निर्मित करता है।[1]

गद्य एवं पद्य की ही तरह मिश्र शैली की भी रचनायें आदिकाल से चली आ रही हैं। ब्राह्मणग्रन्थों के उपाख्यानों में इस तरह की अधिकांश रचनायें हैं। ऐतरेयब्राह्मण (अध्याय ३३) का नचिकेतोपाख्यान परवर्ती काल के चम्पूकाव्य की शैली में ही लिखा गया है—

हरिश्चन्द्रो ह वैधस, ऐक्ष्वाको राजाऽपुत्र आस। तस्य ह शतं जाया बभूवुः। तासु पुत्रं न लेभे। तस्य ह पर्वतनारदौ गृह ऊषतुः। स ह नारदं पप्रच्छ इति।

यं न्विदं पुत्रमिच्छन्ति ये विजानन्ति ये चन।
किं स्वित् पुत्रेण विन्दते तन्म आचक्ष्व भारत। इति ॥ २ ॥

उपनिषदों में भी मिश्र शैली का प्रयोग मिलता है। प्रश्न, मुण्डक एवं कठ उपनिषद् मिश्र शैली में हैं। कठोपनिषद् का नचिकेतोपाख्यान चम्पूकाव्यों की ही शैली में लिखा गया है :—

ॐ उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ। तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस। (१।१।१)

इस तरह प्रबन्धात्मक शैली में इसका प्रारम्भ हुआ है। एक पद्य में बड़े ही रमणीय ढंग से अन्तर्द्वन्द की भावना सृष्ट की गयी है :—

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः।
किंस्विद् यमस्य कर्तव्यं यन्मयाऽद्य करिष्यति (१।१।५)

जातकों में भी मिश्र शैली की पर्याप्त रचनायें मिलती हैं। इस समय तक की रचनाओं में प्रसाद गुण की विशेषता रही। कृत्रिमता रचना से दूर थी। वस्तुबोधन ही वक्ता का मुख्य उद्देश्य था।

मिश्रशैली की रचना का कृत्रिम स्वरूप सर्वप्रथम हरिषेणकृत समुद्रगुप्त-प्रशस्ति में उपलब्ध होता है। इससे स्पष्ट है कि चतुर्थ शताब्दी तक चम्पूकाव्य-निर्माण का बीज अङ्कुरित हो गया था। पद्यों की रागमयता तथा गद्यों की अर्थ-गुरुता का एकत्र सामञ्जस्य अनुस्यूत करता कृतिकारों का लक्ष्य हो गया था। "पतञ्जलि के समय के लगभग हमें संस्कृत के काव्यमय गद्य का अवतार होता दीख जाता है। सरलता के बाद परिष्कार का युग आया ही करता है, किन्तु पतञ्जलि के बाद पतञ्जलि की प्रथा ने एक अजीब रुख पलटा और शनैः-शनैः संस्कृत के खिलाड़ियों की प्रवृत्ति नियमन, तनूकरण और अपाकरण की ओर तेजी से बढ़ी। संस्कृत की शब्दराशि में से आख्यानों को निकालकर उनकी

---

१. छन्दोबद्धपदं पद्यं गद्यते छन्दसा विना। काव्यादर्श १।२३

जगह नामिक अपनाये जाने लगे। विभक्तियाँ झाड़ दी गयीं और उनका काम लम्बे लम्बे समास देने लगे।"[1]

दण्डी के पहले तक गद्य की अलङ्कारबोझिल एवं शाब्दी तोड़-मरोड़ से सम्पन्न रचनायें पत्थरों और ताम्रपत्रों की ही शोभा बढ़ाती रहीं। बाद में भी बाण तक यह शैली गद्यकृतियों में ही अधिक पल्लवित देखी गयी। हरिषेण की प्रशस्ति में यद्यपि चम्पूकाव्य का रूप देखा गया फिर भी गद्यकाव्यों की तरह कोई भी ग्रन्थाकार चम्पूकाव्य नहीं लिखा गया। दसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के पूर्व अर्थात् त्रिविक्रम भट्ट के नलचम्पू के पूर्व कोई चम्पूग्रन्थ नहीं लिखा गया। दसवीं शताब्दी से पूर्व का कुछ ऐसा समय था जब संस्कृत काव्यों की विविध विधाओं पर प्रख्यात रचनायें हो चुकी थीं। कालिदास, अश्वघोष, भारवि, भट्टि, कुमारदास, माघ और रत्नाकर जैसे लोग महाकाव्यों की रचना कर चुके थे। प्रख्यात नाटककार जैसे कालिदास, अश्वघोष, हर्ष, भवभूति, विशाखदत्त, भट्टनारायण और मुरारि अपने नाटकों से जन-मन रँग चुके थे। मेघदूत, घट-कर्पर, शृङ्गारतिलक अमरुशतक तथा भर्तृहरि के शतक जैसी मुक्तक रचनाएँ भी समाज में प्रतिष्ठा पा चुकी थीं। दण्डी, भामह, उद्भट, वामन, आनन्दवर्धनाचार्य एवं राजशेखर जैसे समीक्षक अपनी लेखनी का उपयोग कर चुके थे। पर चम्पूशैली अभीतक पत्थरों की गोद छोड़ कर ग्रन्थों में अपनी आकारगुरुता नहीं प्राप्त कर सकी थी। यही कारण हुआ कि और काव्यों की तरह चम्पूकाव्य सहृदयश्लाघ्य होते हुए भी समीक्षकों की दृष्टि से ओझल रहे। दण्डी ने गद्यपद्यमयी चम्पू की ओर संकेत ही कर के छोड़ दिया। क्या करते—संकेत ही करने लायक इसकी स्थिति ही थी। उनका स्वरूप पूर्णतः सामने नहीं आया था अतः उनके बारे में उपयुक्त धारणा नहीं बन पायी थी।

यद्यपि दशवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में नलचम्पू जैसे एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का निर्माण हुआ किन्तु इस शैली में ग्रन्थ रचना की प्रवृत्ति पन्द्रहवीं शताब्दी तक सीमित रूप में ही रही। दशवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी के बीच के कुछ ही चम्पूकाव्य उपलब्ध होते हैं। नलचम्पू (९१५ ई.), यशस्तिलकचम्पू (९५९ ई.), जीवन्धरचम्पू (सम्भवतः ९०० ई.), रामायणचम्पू (१०१८ ई०–१०६३ ई०), भोजप्रबन्ध (११ वीं श०), उदयसुन्दरीकथा (१०० या १०६० ई०) राजशेखरचरित (११ वीं श०), पुरुदेवचम्पू (१३ वीं श० श०) अनन्तभट्ट के भारतचम्पू और भागवतचम्पू (११वीं या १५वीं शताब्दी) जैसे सीमित चम्पूकाव्य ही छः सौ वर्षों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर अट्ठारहवीं शताब्दी के बीच चम्पूकाव्यों की संख्या बढ़ी है। इन्हीं शताब्दियों में केरली और तेलुगु भाषाओं में अनेक महत्त्वपूर्ण चम्पूकाव्य लिखे गये। संस्कृत चम्पूकाव्यों में भी अधिकांश की रचना दक्षिण भारत में ही हुई है। इसीलिये दक्षिण की तत्कालीन साहित्य-कृतियों की

---

१. डा० सूर्यकान्त, हीरकजयन्तीग्रन्थ। पृ० १३३–१३४

प्रवृत्तियां परवर्त्ती चम्पूकाव्यों में भी पायी जाती हैं। अब तक उपलब्ध चम्पुओं की संख्या २४५ है।[1]

नलचम्पू : कथावस्तु

प्रथम उच्छ्वास

चन्द्रशेखर भगवान् शंकर तथा अमृतवर्षी कवियों के वाग्विलास की शुभाशंसा से ग्रन्थ का आरम्भ हुआ है। यशस्वी कवियों के वाग्वैभव के साथ ही जगत् के उद्भवस्थल काम तथा तरुणियों के नेत्रविभ्रम की सर्वोत्कृष्टता समर्थित की गयी है और विद्वानों के आनन्दमन्दिर, सरस्वती के मधुर प्रवाह को नमस्कार किया गया है। तदनन्तर असत् उक्तियों तथा अभद्र गोष्ठियों की निन्दा और सूक्तियों तथा सत्कवियों की प्रशंसा की गयी है। मुख्यतः वाल्मीकि, व्यास, गुणाढ्य तथा बाण को बड़े आदर के साथ स्मरण किया गया है।

इन महान् कवियों की कृतियों के समक्ष अपनी बातों के सम्मान के सम्बन्ध में कवि को बड़ा सन्देह होता है, फिर भी वह काव्यनिर्माण का साहस इसलिये करता है कि विद्वान् लोग सर्वविध उक्तियों का समादर करते हैं। सभङ्गश्लेष से सम्पन्न उक्तिवैचित्र्य की ओर अपनी प्रवृत्ति का संकेत देता हुआ वह अपने वंश का परिचय देता है।

श्री त्रिविक्रम भट्ट ने अपने आप को महर्षि शाण्डिल्य के वंश में उत्पन्न श्रीधर का पौत्र तथा देवादित्य का पुत्र बताया है। इस परिचयात्मक आमुख के बाद वर्ण्यवस्तु का वर्णन प्रारम्भ होता है—

सम्पूर्ण भूमण्डल की शोभा में नवीनता उपस्थित कर देने वाला, गङ्गा तथा चन्द्रभागा जैसी नदियों से अलङ्कृत, पुण्यपुरुषों से सनाथित, स्वर्गवासियों को भी लुभा लेने वाला आर्यावर्त नाम का देश है। वहाँ निषधा नाम की नगरी है। उसकी गगनचुम्बी प्राकारभित्ति इन्द्रनीलमणि से बनी है। उससे निकलती हुई सहस्रों किरणों की श्रेणियाँ नवीन तृण के अङ्कुरों की तरह प्रतीत होती हैं। भवनों के प्राङ्गण स्फटिक मणि की शिलाओं से निबद्ध हैं। वहाँ घूमती हुई स्त्रियों के लाक्षारञ्जित पैरों के प्रतिबिम्ब को कमल समझ कर भ्रमरमण्डल ललचा जा रहा है। नगरी के अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग भाग अपेक्षित समस्त सामग्रियों से मण्डित होने के कारण स्वर्ग की सुषमा से स्पर्धा करते हैं।

इसी नगरी में महाराज नल रहते हैं। उन्होंने अपने बाहुबल से विपक्षमण्डल को नष्ट कर दिया है। शत्रुपत्नियों के नेत्रकमल से गिरती हुई अश्रुधारा में उनका प्रताप-राजहंस तर रहा है। समुद्रान्त पृथ्वी की रक्षा करता हुआ उनका कीर्तिस्तम्भ सम्पूर्ण भूमण्डल को अलंकृत कर रहा है।

---

1. डा० छबिनाथ त्रिपाठी : चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवम् ऐतिहासिक अध्ययन। पृ० २५१

उनके मन्त्री का नाम श्रुतिशील है। वह समस्त विद्याओं का आधारस्तम्भ है। नल का द्वितीय प्राण है। उसकी मन्त्रणा से होने वाले प्रशासन से प्रजामण्डल अत्यन्त सन्तुष्ट है। उसके मन्त्री पद पर रहने से नल को राज्य-व्यवस्था की चिन्ता बहुत कम करनी पड़ती है। अतः विहार, आखेट, विनोद-गोष्ठी आदि में ही उसका अधिकांश समय व्यतीत होता है।

एक समय जब कदम्ब की डालियों पर भौंरे मड़रा रहे हैं, कामदेव के अट्टहास की तरह बादलों की ध्वनि से आकाश मुखरित हो रहा है, पके हुए जामुन के फलों से वन की आभ्यन्तरिक शोभा नितान्त श्यामल हो चली है, राहियों को उत्कण्ठित कर देने वाली मयूरों की मधुर ध्वनि चारों ओर गूँज उठी है। वर्षाकाल ने वनश्री की मादकता में एक नवीन अध्याय जोड़ दिया है, एक वन-पालक राजा को यह सूचना देता है कि उनके विहार-वन में एक भयंकर जंगली सूकर आ गया है। उसके दाँत बड़े चमकीले हैं। काला तो वह इतना है कि अञ्जन पर्वत या जलराशि से मेदुर मेघ की भ्रान्ति उत्पन्न कर देता है। अपनी मस्ती में किसी की चिन्ता नहीं करता। लीला सरोवर को मथ कर अस्त-व्यस्त कर दिया है। क्रीडारण्य में अकाण्ड-ताण्डव प्रस्तुत कर दिया है।

इस उद्दण्ड एवं विप्लवकारी सूकर के आगमन की सूचना पाते ही राजा उस वनस्थली को देखने के लिये उत्कण्ठित हो उठता है जो तोते के पंखों की तरह हरित घासों से मण्डित हो गयी है तथा जलाशयों का जल दूध की तरह प्राञ्जल हो गया है।

राजा की आज्ञा से सेनापति बाहुक शिकार की सारी सामग्री प्रस्तुत कर देता है। नल एक प्रशस्त अश्व पर आरूढ हो जाता है। जाल आदि शिकार की सामग्रियों से मण्डित व्याधों का समूह राजा के पीछे यमराज के दूतों की तरह चल रहा है। वन में घुसते ही व्याधों ने सारी वनस्थली को व्यथित कर दिया है। हाथियों का दल चिग्घाड़ने लगा है। मृगों का दल व्याधसैन्य के क्रूर कोलाहल से ही निष्प्राण होने लगा है। बाणों के आघात से घूर्णित भैंसे पृथ्वी पर धड़ाधड़ लोटने लगे हैं। अपने वेग से अश्वों को भी नीचा दीखा देने वाले कुरंग लम्बी छलांगें भरते हुए मानो आकाश में ही तैर रहे हैं। इसी बीच नासिका को टेढ़ा कर बादल की तरह गड़गड़ाता हुआ, पूँछ के गुच्छे को हिलाता हुआ, एक पङ्किल जलाशय पर दावानल से जले हुए पर्वत की तरह एक सूकर दिखायी पड़ जाता है।

उसे देखते ही राजा सावधान हो जाता है। विविध पंखों से मण्डित बाणों की वर्षा उस सूकर पर वैसे ही करने लगता है जैसे वीर राघव राक्षसेन्द्र रावण पर कर रहे थे। दर्शकों को यह पता नहीं चलता है कि युद्धकौशल में निपुण उस अश्व तथा अत्यन्त चञ्चल हाथों से शीघ्रतापूर्वक बाणों को बरसाते हुए उस राजा और वीररस के रसिक उस सूकर में से किसको उत्कृष्टतम माना जाय।

उन दोनों के द्वन्द्वयुद्ध ने पृथ्वी में कम्पन उत्पन्न कर दिया है; पर्वतों में चञ्चलता ला दी है। भगवान् सूर्य ने भी उनके उस शौर्य-प्रदर्शन को देखने के लिये कुछ समय के लिये अपने घोड़े मानों खड़े कर दिये हैं। चिरकाल तक युद्ध में पराक्रम प्रदर्शन के बाद उस सूकर सम्राट पर नरेन्द्र नल की विजय होती है।

विजय के बाद आखेट की परेशानियों से थक कर राजा विश्राम के लिये एक सालवृक्ष के नीचे बैठता है। वनपल्लवों तथा लताओं को कम्पित करती हुई, कुटज एवं कदम्ब के मकरन्द विन्दुओं से बोझिल हवा के मधुर स्पर्श से उसकी आँखें झपकी ले रही हैं। परिजन वर्ग अभी मृगवधुओं को वैधव्य दीक्षा देने में ही लगा हुआ है। मृगों के विनाशमूलक शोक से वनदेवताएँ दोपहर के समय पुष्प लोचनों से गरम-गरम मकरन्दों के बहाने आँसू बरसा रही हैं। तरुण मञ्जरियों के लुलित हो जाने के कारण भ्रमरमण्डल नैराश्य लिये दूसरे वनों की ओर प्रस्थित हो रहा है।

इसी बीच एक राही उसी सालवृक्ष के पास आता है। लता की छाल से उसने अपने पके बालों को बाँध रखा है। कन्धे पर एक डण्डा लिये है। गले में मिट्टी की गोलियों से बनी माला पहने है। कैथ रङ्ग का एक कौपीन लगाये है। पैरों में फटा चिथड़ा बाँधे है और हाथ में एक काठ का भिक्षापात्र लिये है। वह शरीर से अत्यन्त दुर्बल दिखायी पड़ता है।

राजा के अलोकसामान्य सौन्दर्य को ही देख कर उसे वह मालूम पड़ जाता है कि निश्चय ही यह कोई महापुरुष है। यह निश्चय के अनुसार वह आगे बढ़ कर कहता है—"कामविजयिन् , आपका मङ्गल हो।"

राजा भी आश्चर्य से शिर उठाता है और बड़े आदर के साथ पथिक का अभिनन्दन करता हुआ बोलता है—

"कहिये कहाँ से आपकी सम्भावना की जाय? मार्ग का कितना अंश अवशिष्ट रह गया है? आइये, बैठिये, थोड़ा विश्राम कर लीजिये तो जाइयेगा। अनेक विदेशों में भ्रमण करने वाले लोग विविध आश्चर्यों को देखे रहते हैं। बहुत सी अद्भुत बातें उनकी जानकारी में रहती हैं। आप भी ऐसे व्यक्तियों में से ही हैं। कुछ सुनाइये। प्रथम परिचय के कारण आप से स्वल्प स्नेह है, ऐसी आशङ्का नहीं कीजियेगा। प्रथम दर्शन होने पर भी मणि अपनी कान्ति नहीं छिपाते।"

पथिक भी राजा की जिज्ञासा को सम्मानित करता हुआ बोलता है—

"सम्पूर्ण संसार में अपनी दर्शनीयता के लिये प्रसिद्ध, दक्षिण दिशा में भगवान् शङ्कर के पवित्र चरणों से अधिष्ठित, श्रीशैल नाम का पर्वत है। वहीं आकर्षक फूलों एवं फलों से सम्पन्न गोदावरी के तट पर देवों और दानवों की गोष्ठी में समान-रूप से पूजे जाने वाले भगवान् कार्तिकेय के दर्शन के लिये मैं गया था।

वहाँ से लौटते समय लम्बा रास्ता तय करने के कारण थक कर एक विशाल बरगद के पेड़ के नीचे विश्राम करते समय मैंने जिस एक आश्चर्य को देखा उसे कृपया आप सुनें—

एक राजा की अद्भुत सुन्दरी लड़की उसी पेड़ के नीचे आयी। वह अपने मधुमय पद-विन्यास से गजेन्द्रवधू के भी गतिविलास को मात कर रही थी। चारों ओर से सहेलियों से घिरी हुई थी। डुलाये जा रहे चँवर की हवा से उसकी अलकवल्लरी स्पन्दित हो रही थी। वह सुधा-माधुरी से भी स्पर्धा करने वाली गीत-ध्वनि में कान लगाये थी। मुझे तो उसे देखकर ऐसा लगा कि नारायण के वक्षः-स्थल से विलग होकर लक्ष्मी ही आ गयी हैं। उसका मुख चन्द्रमा की आह्लादकता प्रस्तुत कर रहा था। आँखें कमल से स्पर्धा कर रही थीं। अपनी यौवनलक्ष्मी के अद्भुत विलास से वह कामदेव की विजयवैजयन्ती बनी हुई थी। युवकों के मानस को तो वह अनायास ही उद्वेलित कर रही थी। उसके सौन्दर्य तथा अतिमानव सौभाग्य को एक-एक कर वही वर्णन कर सकता है जिसे शेषनाग की तरह सहस्र जिह्वायें हों।

जैसे आप मुझसे पूछ रहे हैं वैसे ही वह भी दक्षिण दिशा के लिये प्रस्थित एक उत्तर दिशा के पथिक से कुछ पूछती हुई वहाँ कुछ समय तक ठहरी।

उत्तर देश के किसी प्रशंसनीय गुण वाले राजा के सम्बन्ध में बातें चल रही थीं। मैं भी उस वाग्विनोद के सारस्वतप्रवाह से वञ्चित न रहा। वह कह रहा था—

'वे आँखें धन्य हैं जो उस कामविजयी राजा के मुखमण्डल को देख कर तृप्त होती हैं। तुम कामदेव की मञ्जरी हो और वह युवक उसका आस्वादक भ्रमर है। तुम्हारे ही लिये वह उपयुक्त है। तुम दोनों के मिलन से ब्रह्मा की कला साकार हो उठेगी।'

मालूम नहीं वह कौन पुण्यात्मा है जिसके विषय में सुनने मात्र से उसे रोमाञ्च हो गया। आश्चर्य के मारे मेरा भी विवेक समाप्त हो गया था। इसीलिये मैं पूछ नहीं सका कि वह किसकी लड़की थी। कहाँ और किस स्थान से आयी थी। आकस्मिक विह्वलता की बहुलता से इन्द्रियों के समस्त बाह्य व्यापार शान्त हो गये थे। स्तब्ध होकर बहुत देर तक चुप बैठा रहा। तब मैं यही सोचता हूँ कि सम्पूर्ण संसार की सर्वोत्तम सुन्दरी उस राजपुत्री को देखकर उस दिशा की मेरी यात्रा सफल रही। आज भी आप जैसे अतिमानव सौन्दर्य की मूर्ति को देख कर मैं कृतकृत्य हो गया। देशाटन का प्रयास सफल हो गया। अच्छा, आज्ञा दीजिये, मैं अपना रास्ता तय करूँ।"

पथिक की बातें सुनकर राजा सोचने लगता है—"निश्चय ही वह देश स्त्री-रत्नों का अद्भुत खजाना है। यह पथिक भी यथार्थ वक्ता है। ब्रह्मा का निर्माण-कौशल बहुविध आश्चर्यों को संसार में प्रस्तुत किया करता है। उसके लिए क्या सम्भव नहीं है। खेद यही है कि मैंने उस सौन्दर्य की प्रतिमा, रमणीरत्न को नहीं देखा। बड़े आश्चर्य की बात है, केवल सुनने मात्र से ही मेरा उच्च मनोबल गिरता जा रहा है। मैंने अपनी नेत्राञ्जलि से उसकी रूपसुधा का पान नहीं किया; उसके नाम पल्लव को अपने कानों का भूषण नहीं बनाया, फिर भी

चुम्बक की तरह उसकी लावण्यकीर्ति मुझे खींचती जा रही है। मन धैर्यद्वार को तोड़ कर उसी की ओर भागा जा रहा है।

अप्राप्य वस्तु में पुरुषों का अनुराग हुआ ही करता है। मुझे तो उसे सुनते ही बिना ज्वर की अस्वस्थता आ गयी है। बिना बुढ़ापा आये ही जड़ता छा गयी है। कानों के रहते बहरा हो गया हूँ। नमस्कार है उस मनोजन्मा कामदेव को जो सज्जनों को भी दुर्जन में परिवर्तित कर दिया करता है।"

इस तरह सोचता हुआ राजा उस पथिक को विविध उपहारों से सम्मानित कर विदा देता है और स्वयं भी व्याध-परिजनों के साथ घर के लिये चल देता है। घर पर उसके मन की उदासी बढ़ जाती है। उसके चेहरे को देख कर इस बात का पता चल जाता है कि उसके मानस के तृणकुटीर में कहीं काम की चिनगारी सुलग चुकी है। उसके वर्षाकालीन वे दिन पथिकों से उस राजपुत्री-विषयक समाचार पूछने में ही बीतते हैं।

द्वितीय उच्छ्वास

वर्षा का समय समाप्त हो रहा है। शरत् के आगमन के उपलक्ष्य में भ्रमर एवं हंसों ने स्वागत-गान शुरू कर दिया है। नल एक निकटवर्ती वन में विहार कर रहा है। किन्नर-मिथुन अत्यन्त ललित स्वर में कुछ श्लोक गा रहे हैं। उनकी गीतलहरी नल की उत्कण्ठा को और उद्दीप्त कर देती हैं। इस बीच कुछ वन-पालिकायें आती हैं और वन के विविध दृश्यों को दिखाती हुई सभी पदार्थों का वर्णन श्लिष्ट शब्दों में करती हैं। उनकी उक्तिवक्रता पर वह बहुत सन्तुष्ट होता है और अङ्गों के भूषणों को देकर बड़ी खुशी के साथ उन्हें विदा करता है।

अभी मनोविनोद के हेतु घूम ही रहा है तब तक उसके सामने ही अपने सफेद पंखों से धरती को मण्डित करती हुई हंसों की एक अत्यन्त सुन्दर मण्डली आ गिरती है जो भूख की तृप्ति के लिए कमलनाल को तोड़ने लगती है। कौतुकवश नल उन्हें पकड़ने का यत्न करता है। अन्ततः एक को पकड़ ही लेता है। लाल कमल के मध्य भाग की तरह सुन्दर उसके करपल्लव पर वह हंस पद्मराग मणि की शुक्ति पर रखे गये सफेद कमल की तरह प्रतीत होता है या उदयाचल की लाल मणियों की चोटी पर चन्द्रमा की तरह लगता है। हाथों में आते ही वह चाँदी की झांझ की तरह मधुर ध्वनि में अत्यन्त विस्पष्ट शब्दों में राजा को आशीर्वाद देता है।

हंस की निर्भीकता तथा वाङ्माधुरी उसे आश्चर्य के साथ उत्कण्ठा का एक झोंका और लगा देती है। मन ही मन वह सोचने लगता है कि निश्चय ही पक्षी के वेष में यह कोई देवता है। मन से भी किसी प्राणी का अपमान नहीं करना चाहिये, क्योंकि कार्य से, इच्छा से या शाप से आश्चर्यजनक प्राणी अपना रूप छिपाकर घूमते फिरते हैं। ऐसा सोचकर वह बड़े स्नेह के साथ हंस का स्वागत करता है। "आपके दर्शन से ही तृप्त हूँ।" यह कह कर हंस राजा को और अनुरागसम्पन्न कर देता है। इसी बीच अपने सहचर को पकड़ा गया देख कर

हंस-वधू आंसू गिराती हुई राजा के सम्मुख आती है और श्लेषभरी वाणी में बहुत तरह की उलाहनायें सुनाती है। नल भी श्लिष्ट उक्तियों में ही उसका उत्तर देता है। हंस नल से निवेदन करता है कि वह उसकी पत्नी को अपने कटु व्यङ्ग्यों से नाराज न करे। अभी इन तीनों का वाग्विनोद चल ही रहा है तब तक आकाशवाणी होती है—"राजन्, इस हंस को छोड़ दो। यही दमयन्ती को तुम्हारी ओर आकृष्ट करने में सहायक होगा और दूत-कार्य करेगा।"

'दमयन्ती' नाम सुनते ही नल रोमाञ्चित हो जाता है और "यह कौन सी दमयन्ती? कौन सा यह आश्चर्यमय पक्षी? कौन यह आकाशवाणी? विस्तार से जानने लायक ये सब चीजें हैं।" यह सोचता हुआ एक छायादार लतामण्डप में बैठकर हंस से कहता है—"कल्याणमित्र! यह दमयन्ती कौन है? क्या इसकी उत्पत्ति है? कैसी सौन्दर्य-लक्ष्मी है?"

राजा की उत्कण्ठा भरी जिज्ञासा को जानकर "शृङ्गार के स्वर्णकलश! यदि जानना ही चाहते हैं तो लीजिये, दमयन्ती के रमणीयतम परिचय-पल्लव को अपने कानों का अलङ्कार बनाइये।" हंसने कहा—

"गंगा और गोदावरी के अत्यन्त पवित्र प्रवाह से दुरित दावानल को मूलतः शान्त कर देने वाला सब देशों में सर्वाधिक महत्त्वशील दक्षिण देश है। उसी देश के महत्त्वपूर्ण भाग में वैदर्भमण्डल को अलङ्कृत करने वाला कुण्डिन नाम का नगर है। वहाँ के राजा महाराज भीम हैं। उनकी पटरानी प्रियङ्गुमञ्जरा अपने सौन्दर्य के लिये विश्वविख्यात है। पहले इन्हें कोई सन्तान नहीं थी। एक दिन वनविहार करते समय एक बन्दरी के बच्चे को देख कर इन दम्पती को अपनी सन्तानहीनता के कारण बड़ा दुःख हुआ। रानी प्रियङ्गुमञ्जरी तथा महाराज भीम अभी विचार ही कर रहे थे तब तक अंधेरा हो गया। अन्त में भीम ने पत्नी को यह युक्ति बतायी कि वह कामवर्षी भगवान् शङ्कर की आराधना करे। पति की आज्ञा से सन्ध्याकाल में भगवान् शङ्कर की उपासना के लिये वह देवी समाधिस्थ हो गयी।

तृतीय उच्छ्वास

रात्रि के अन्त में प्रियङ्गुमञ्जरी स्वप्न देखती है कि भगवान् शङ्कर उसकी तपस्या पर प्रसन्न हो गये हैं। कानों में कुवलय, हाथ में कपाल, शिर में फुफकारता हुआ सर्प और ललाट में भस्म धारण किये हुए शिवजी चन्द्रमण्डल से उतर कर, "वत्से प्रियङ्गुमञ्जरि! लो यह पारिजात की मञ्जरी, डरो नहीं। मेरी आज्ञा से सबेरे दमनक मुनि आयेंगे और तुम्हें अनुगृहीत करेंगे।" यह कह कर अपने कान से पारिजातमञ्जरी उतारकर दे देते हैं। प्रसाद समझकर प्रियङ्गुमञ्जरी भी उसे आदरपूर्वक ले लेती है और अभी उनकी स्तुति ही कर रही है तब तक प्रातःकालीन मङ्गल वाद्यों की ध्वनियाँ गूँज उठती हैं, अतः उसकी नींद खुल जाती है।

प्रातःकाल सन्ध्यावन्दन के बाद पुरोहित को आगे कर महाराज भीम अपनी प्रिया की अट्टालिका पर पहुँचते हैं। अन्य दिनों की अपेक्षा रानी के शरीर से कुछ विलक्षण तेज छिटक रहा है। राजा को इस नवीनता पर आश्चर्य होता है। प्रसङ्गतः वह रानी की इस नवीनता का कारण पूछता है। वह भी स्वप्न का सारा वृतान्त सुना जाती है। "प्रिये", राजा कहता है, "मैंने भी आज स्वप्न में शक्तिधारी कार्तिकेय तथा मङ्गलमूर्ति गणेश को ली हुई भगवती पार्वती के साथ भगवान् शंकर का दर्शन किया है। अतः पुरोहित जी से अनुरोध है कि इन मिलते-जुलते स्वप्नों के फल पर विचार करें।"

बड़ी प्रसन्नता से पुरोहित बोलते हैं, "महाराज, अपने यश से सम्पूर्ण संसार को धवलित करने वाली कोई सन्तान आपको होगी।" अभी पुरोहित का प्रवचन चल ही रहा है तब तक आकाश से एक मुनि उतरते हैं। उनके ललाटपर त्रिपुण्डतिलक है। गले में स्फटिक की माला है। हाथ में कुशयुक्त एक कमण्डलु है। उनका नाम दमनक है। स्वप्न के अनुकूल उनका आगमन देख कर महाराज भीम प्रसन्न हो जाते हैं। बड़ी नम्रता के साथ समुचित व्यवहार के बाद उन्हें उच्चासन पर बैठाकर उनके सामने स्वयं नीचे ही बैठते हैं। मुनि भी राजा की नम्रता की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—"चिरञ्जीविन्! निरन्तर देवों और दानवों के बीच समानरूप से पूजे जाने वाले भगवान् शङ्कर की आज्ञा से मैं आया हूँ। आप जैसे सम्राट् के सम्मान के अनुकूल, पूरे त्रैलोक्य को अपनी प्राञ्जल यशोराशि से मण्डित करनेवाली एक कन्या आपको होगी।"

पुत्र की कामना रखने वाली प्रियङ्गुमञ्जरी कन्यालाभ-सम्बन्धी वर सुनकर बहुत दुःखी होती है। अतः श्लिष्ट उक्तियों से बोझिल पदावली में, मुनि की प्रशंसा और निन्दा दोनों करती है। मुनि भी उसी तरह की पदावली में उत्तर देते हैं—

"चन्द्रवदने! स्वामी शिव सब लोगों के पुण्य और पाप पर विचार करके ही फल देते हैं। आप के लिये उन्हों ने यही उचित समझा है। इसे लेकर आप सन्तुष्ट रहें।"

प्रियंगुमञ्जरी अपनी उलाहना भरी बातों के लिये क्षमा मांगती हुई विविध उपहारों से मुनि का सम्मान करती है। मुनि उन बहुमूल्य उपहारों को अपने उपयोग के लिये न बताते हुए कमण्डलु उठा कर नील गगन में अचानक उड़ जाते हैं।

कालक्रम से प्रियङ्गुमञ्जरी गर्भवती होती है। गर्भ की अवस्था में उनके शरीर से इस तरह की आभा छिटकती है कि दर्शकों को स्पष्ट मालूम पड़ जाता है कि उसके उदर में कोई अलोकसामान्य तत्त्व आ गया है। गर्भ के दिनों के पूर्ण हो जाने पर एक दिन प्रातःकाल जब भगवान् सूर्य उदयाचल पर आरूढ़ हो रहे हैं, क्षणिक प्रसवपीड़ा के अनन्तर एक कन्या का जन्म होता है। दिशायें मानो इसलिये प्रसन्न हो जाती हैं कि वह कन्या अपनी सत्कीर्ति से उन्हें निर्मल

बना देगी। अप्सरायें मानो इसलिये नाचने लगती हैं कि वह उनकी कान्ति का अपहार कर लेगी। उस प्रसन्नता के अवसर पर सारा संसार ही नवीनतर प्रतीत होने लगता है।

कुछ समय बीतने पर दमनक मुनि की वरप्रदानवाली बात याद कर उस कन्या का नाम दमयन्ती रखा जाता है। अमृत से सींचे गये अङ्कुर की तरह उसके कोमल अंग बढ़ने लगते हैं। कालक्रम से थोड़े ही दिनों में वह विविध विद्याओं में नैपुण्य प्राप्त कर लेती है। चित्र एवं नृत्यविद्या में तो वह अप्रतिम आचार्यत्व प्राप्त कर लेती है।

अमन्द गति से पल्लवित होने वाले पौधों से वर्षाकालीन उर्वर भूमि की तरह, नवीन केशर रोम से मण्डित सिंह शिशु की तरह, खिले हुए कोमल कमलों की कान्ति से अलंकृत सरोवरजल की तरह, यौवन की आभा से अलंकृत उसकी शरीरशोभा दिनानुदिन नवीन हो रही है। काम अपने धनुष की प्रत्यञ्चा और वाण रोज सजाता जाता है। इस समय तो युवकों की कामविह्वल आँखें उसके रूपपाश में उलझकर निकल ही नहीं पातीं। क्या अधिक वर्णन करूँ। मुखचन्द्र-मण्डल निरन्तर कान्ति सुधा वरसाता है। स्तन-युगल स्वर्णकमल की कलिका की शोभा धारण करता है। वाणी मुस्कुराहट से मण्डित है। दृष्टि भ्रूविलासों से रमणीय है। समस्त युवकों के मानसमयूर का निवासस्थान तथा सम्पूर्ण विश्व सौन्दर्य की अधिष्ठात्री उस सुन्दरी का वृत्तान्त अत्यन्त आश्चर्यमय है। भगवान् शंकर की निर्व्याज आराधना द्वारा अप्रतिम पुण्य प्राप्त किये हुए उस युवक का मंगल हो जो उस दुर्लभ सुन्दरी को प्राप्त करेगा"

इतना कह कर हंस चुप हो गया।

चतुर्थ उच्छ्वास

हंस की बातें सुनते ही राजा रोमाञ्चित हो जाता है। हृदय उत्कण्ठा से भर जाता है। चित्त चिन्ता से व्यग्र हो जाता है। किसी तरह मन को स्थिर कर वह अनुमान लगाता है, "प्रायः यह वही सुन्दरी है जिसके सम्बंध में वह पथिक चर्चा कर रहा था।" यह सोचता हुआ अत्यधिक उत्सुक होकर किसी-किसी तरह वह धैर्य के साथ हंस से कहता है—

"मित्र! आज का दिन मेरे लिये बड़ा मंगलमय है। आपकी सूक्तियों से मुझे अपूर्व तृप्ति का अवसर मिला है। अब नित्यक्रिया का समय हो गया है। आप से श्रोतव्य सारी वातें सुन लीं। मैं अपने दैनिक नित्यविधान के लिये जा रहा हूँ। आप इस मधुर सरोवर में इच्छानुसार विहार करें।

"वनपालिके! तुम भी जब ये सरोवर-विहार और भोजन कार्य कर लें तो मेरे पास विश्रामगोष्ठी में इन्हें ले आना।" वनपालिका को यह आदेश देकर राजा के चले जाने पर हंस सोचता है कि शायद राजा मुझे अपने दरबार में नियंन्त्रित करना चाहता है। अतः यहाँ से भाग जाना ही अच्छा है। यह सोचता हुआ अपने साथियों के साथ वहाँ से उड़ जाता है।

उड़ती हुई हंसों की मण्डली बिना कहीं रुके विदर्भ देश के अलङ्कार उस कुण्डिन नगर में राजभवन के उद्यान में स्थित सरोवर के तट पर जा पहुँचती है। दमयन्ती की आज्ञा से विभिन्न सहेलियाँ एक-एक कर हंसों को पकड़ने की चेष्टा करने लगती हैं। स्वयं वह भी हंसों का पीछा करती हुई उस विस्मयकारी हंस को पकड़ लेती है। उस हंस को भी दमयन्ती के अप्रतिम सौन्दर्य से ही अनुमान लग जाता है कि अपने सौन्दर्य के लिये विश्वप्रसिद्ध दमयन्ती यही है। अतः दमयन्ती के हाथों से ही स्थित रह कर उसकी ओर मुखकर वह आशीर्वाद देता है—

"कोमलाङ्गि, चिरकाल तक सुखपूर्वक जीओ और पुरुषों को दर्पहीन कर देने वाले, ब्रह्मा के शिल्पविधान के अद्वितीय निदर्शन नल को पतिरूप में प्राप्त करो।" हंस की संस्कृतनिष्ठ बातें सुन कर दमयन्ती के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। "सम्भवतः यह उसी नल के सम्बन्ध में कह रहा होगा जिसके सम्बन्ध में गौरी महोत्सव में जाते समय मैंने उस पथिक के द्वारा सुना था।" यह सोचती हुई, "हंस! किस नल के सम्बन्ध में बोल रहे हो? जरा सप्रसङ्ग उनकी कहानी सुनाओ।" दमयन्ती ने पूछा। "अच्छा आप सुनना ही चाहती हैं तो मन को एकाग्र करें और नल की पवित्र कथा सादर सुनें।" यह कहकर हंस कहानी शुरू करता है—

"निषध देश का सम्राट् वीरसेन है। उसका उज्ज्वल कीर्तिकमल देव और दानव लोकों के कानों का कर्णभूषण बना हुआ है। उसकी प्रधान पत्नी का नाम रूपवती है। बहुत दिनों तक उन्हें कोई सन्तान नहीं थी। भगवान् शिव की कठिन उपासना के बाद रूपवती गर्भवती हुई। उन्हें बहुत शौक था कि उनका पुत्र यशस्वी वीर हो। इस कामना की पूर्ति के निमित्त रत्नमय दर्पणों को छोड़ कर वे चमकती तलवारों से दर्पण का काम लेती थी। दिव्य फूलों और अलङ्कारों को छोड़ सिंह के केसर के गुच्छे को कर्णभूषण बनाती थीं। कस्तूरी के बदले हाथी के मद से पत्र रचना करती थी।

गर्भ पूर्ण होने पर एक दिन प्रातःकाल अत्यन्त पुण्य मुहूर्त में राजपत्नी ने एक तेजस्वी बालक को उत्पन्न किया। बड़ी प्रसन्नता मनायी गयी। प्रफुल्ल वातावरण में छः दिनों के बीत जाने पर बालक का नाम पवित्र ब्राह्मणों द्वारा नल रखा गया। स्नेहमय वातावरण में पलता हुआ वह बालक थोड़े ही दिनों में समस्त विद्याओं को जान गया। बुद्धि की तरुणाई के साथ ही अब शरीर भी तरुण हो गया है। उसके मुख की कान्ति चन्द्रमा से स्पर्धा करती है। कन्धे मतवाले साँड़ के डील की तरह उन्नत हैं। आँखों की आभा नीलकमलों की शोभा को तिरस्कृत कर रही है।

उन्हें अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय उन्हीं की अवस्था का एक ब्राह्मण युवक है। उसका नाम श्रुतिशील है। उसके पिता सालङ्कायन महाराज वीरसेन के मुख्य मन्त्री थे। एक दिन राजसभा में वीरसेन और सालङ्कायन दोनों ही बैठे थे। नल ने पिता वीरसेन को प्रणाम किया किन्तु सालङ्कायन को नहीं।

नल के इस व्यवहार पर सालङ्कायन क्रुद्ध हो गये। उन्होंने श्लेषबहुल पदावली में नल को कई तरह के उपदेश दिये। स्त्री और दुष्ट सहायकों पर विश्वास करना राजा के लिये सबसे महान् घातक है। यही उनके उपदेश का सारांश था।

वीरसेन ने सालङ्कायन की बातों का समर्थन किया। सभा में यह निश्चय किया गया कि नल का राज्याभिषेक कर दिया जाय। मुहूर्तविद्या के विद्वानों से राज्याभिषेक के उपयुक्त मुहूर्त बताने को कहा गया। उन लोगों ने तत्काल बीत रहे क्षण को ही सर्वाधिक शुभ बताया और उसी क्षण राज्याभिषेक करने का निश्चय किया गया। अभी प्रासङ्गिक चर्चा चल ही रही थी तब तक आकाशवाणी हुई—"वानप्रस्थ की अवस्था में जब रमणियों के नेत्र अप्रिय बन जाते हैं, धैर्यशील राजाओं का यही कर्तव्य हुआ करता है।" इसी बीच गगनमण्डल से मुनियों का एक दल उतरा। वे अपने कमण्डलु में विभिन्न तीर्थों का जल लिये हुए थे। अभिषेक के उपयुक्त कुश, मिट्टी, पुष्प तथा विविध ओषधियाँ भी लाये थे। राजा तो इन आकस्मिक मङ्गलों की उपलब्धियों के आनन्द में मग्न हो गये। मङ्गलवाद्य बजने लगे। वाराङ्गनायें नाचने लगीं। सामन्त मण्डल के समक्ष सालङ्कायन और राजा दोनों ने ही मिल कर नल को सिंहासन पर बैठा दिया। ऋषियों ने आशीर्वाद दिये। स्वर्ग से देवताओं ने फूल बरसाये। सारा नगर आनन्द में विभोर हो गया। इसी बीच राजा ने नल से कहा—

"वत्स! यदि तुम्हें दुःख न लगे तो कहूँ। अब मेरे लिये जटाभार ही उचित है, हार नहीं। सहायता के लिये साधु विद्वान ही अच्छे हैं, बान्धव नहीं।" इस तरह कह कर नल का आलिङ्गन किया और पत्नी के साथ जङ्गल के लिये सहसा प्रस्थान कर दिया। सालङ्कायन भी अपने पुत्र श्रुतिशील को नल की सेवा में देकर राजा के पीछे चल दिया। पिता के चले जाने पर नल ने बहुत विलाप किया। प्रजाकुल के वरिष्ठ लोग किसी-किसी तरह पितृवियोगमूलक उनके दुःख को भुलवाने लगे। कालक्रम से क्लेश के कुछ ओझल हो जाने पर भगवान् शङ्कर के चरणकमलों में ध्यान लगा कर नल प्रजापालन करने लगे।"

पञ्चम उच्छ्वास

हंस की बातें सुनते ही दमयन्ती के मन में स्वाभाविक अनुराग जग पड़ा। प्रसङ्गतः उसे अन्दाज लग गया कि सम्भवतः यह वही नल है जिसके बारे में मैंने उस दिन पथिक द्वारा सुना था। दमयन्ती की एक सखी परिहासशीला जो उस समय उसके साथ थी, बोली—"महानुभाव, आप तो ऐसी कथा कह गये कि हम लोगों को तृप्ति ही नहीं हो रही है। कृपया पुनः इस कथा-सुधा का पान कराइये।" हंस ने पुनः नल की विशेषताओं की व्याख्या की और कथा-समाप्ति के बाद चलने के लिये तैयार हो गया। चलते समय दमयन्ती ने अपने गले से हार उतार कर हंस के गले में डाल दिया। हंस भी, "सुन्दरि! इस मुक्तावली के बहाने नल के सामने आपके वर्णन का भार ही मैंने अङ्गीकार किया है।" यह कह कर अपने साथियों के साथ वहाँ से उड़ा। हंस के चले जाने पर दमयन्ती की उत्सुकता की कोई सीमा न रही। वाणी कम हुई, चिन्ता नहीं। तन्द्रा ही बढ़ी, निद्रा नहीं।

उसकी इस असह्य व्यथा की शान्ति के लिये नलकथा को छोड़कर कोई दूसरा उसके लिये उपचार ही नहीं था। उसे स्वस्थ करने के लिये सारे उपचार व्यर्थ हो रहे थे।

इधर हंस अपने साथियों के साथ विभिन्न गाँवों, पवित्र मार्गों एवं पर्वतों को लाँघता हुआ निषध नगरी के उपवन में पहुँच गया। हंसों को देखते ही एक सरोवरपालिका ने राजा को सूचित किया—

"महाराज, सरोवर में एक हंसी वनमृणाल को खा रही है।" अभी सरोवरपालिका वहीं थी तब तक वनपालिका उस हंस को लेकर आयी और प्रणाम के बाद राजा के सामने उसे रख दिया। हंस को देखते ही बड़ी प्रसन्नता के साथ उससे स्वागत प्रश्न करते हुए उसने कहा कि वह अपने भ्रमण का समाचार सुनावे। हंस ने भी दमयन्ती के साक्षात्कार से लेकर हारलता प्रदान तक की सारी कहानी कह सुनायी और गले से हार निकाल कर दे दिया। बहुत देर तक हारलता और दमयन्ती के सम्बन्ध में बातें होती रहीं। वक्तव्य बातों के अन्त में हंस ने विदा लेने की इच्छा प्रकट की और राजा की अनुमति से प्रणाम कर प्रस्थित हो गया। उसके चले जाने पर नल की दशा और चिन्तनीय हो गयी। ऐसी ही स्थिति दमयन्ती की भी थी।

दमयन्ती की अवस्था देखकर महाराज भीम ने स्वयंवर का आयोजन किया। सब ओर राजाओं को आमन्त्रित करने के लिये दूत भेजे गये। उत्तर दिशा की ओर राजाओं को निमन्त्रित करने के लिये जाने वाले ब्राह्मण दूत से दमयन्ती ने श्लेषमयी पदावली में नल को अवश्य लाने के लिये निवेदन किया।

महाराज भीम का निमन्त्रण पाकर स्वयंवर में भाग लेने के लिये बड़ी तैयारी के साथ नल ने विदर्भ देश के लिये प्रस्थान किया। कुण्डिनपुर तक पहुँचने का रास्ता बड़ा मनोहर था। उसकी मनोहारिता का वर्णन श्रुतिशील ने अपने श्लेष-कौशल से बड़े रमणीय ढंग से किया। चलते-चलते सेना जब थक गयी तो नर्मदा नदी के तीर पर लोगों ने पड़ाव डाल दिये। राजा नदी की बालुकामयी भूमि की सुषमा की ओर देख रहा था। अचानक उसकी दृष्टि एक अनुरागिणी चक्रवाकी की ओर आते हुए एक चक्रवाक युवक की ओर पड़ी। उसी चक्रवाकी को दूसरे भी चार हंस चाहते थे जो चक्रवाक पर बीच ही में हमला कर उसे रोक देते थे। उन्हें देखकर राजा ने इस अन्यायपूर्ण व्यवहार की ओर श्रुतिशील का ध्यान आकृष्ट किया। श्रुतिशील ने तत्काल उत्तर दिया—"महाराज, ये तो पक्षी हैं, जब हृदय के तृणमन्दिर में काम की प्रचण्ड ज्वाला धधक उठती है तो विद्वान् भी मत्त एवं विवेकशून्य हो जाते हैं। इसीलिये तो स्वर्ग की सुन्दरियों के रहने पर भी इन्द्र तपस्विनी अहल्या के संगम के लिये उत्कण्ठित थे।"

श्रुतिशील और राजा की आपस में बातें चल ही रही थीं तब तक आकाश से उतरते हुए एक आदमी पर उनकी नजर पड़ी। वह आदमी नल के सामने

आया और निवेदन किया—"महाराज, तैयार हो जाइये स्वागत के लिये। इन्द्र आदि लोकपाल आपके पास आ रहे हैं।" नल घबड़ाहट के साथ आसन से उठ खड़े हुए। कानों पर पारिजात की नवीन मञ्जरी लिये हुए इन्द्र पूर्व दिशा की ओर से अन्य लोकपालों के साथ धरती पर आये। यथोचित स्वागत व्यवहार के बाद इन्द्र का संकेत पाकर कुबेर ने कहा—"विदर्भ नरेश महाराज भीम अपनी त्रिलोकसुन्दरी कन्या का स्वयंवर आयोजित करने जा रहे हैं। हम लोग भी उसमें भाग लेने के लिये कुण्डिनपुर जा रहे हैं। अपने ही मुख से अपनी याचकता का वर्णन करना अच्छा नहीं होता। अतः हम लोगों ने अपने कार्य की सिद्धि के लिये आपको दौत्यकार्य में नियुक्त करना सोचा है। आप ऐसा प्रयत्न करें कि दमयन्ती आपके माध्यम से हम लोगों में से ही किसी को चुने। हमलोगों के प्रभाव से दमयन्ती के पास जाते हुए आपको कोई भी देख न सकेगा और आप सब को देखेंगे।

बड़े मानसिक असमञ्जस के बाद नल ने देवताओं का प्रस्ताव मान लिया। मनोरथ की सिद्धि में इस आकस्मिक विघ्न ने उसके मन को अत्यन्त व्यग्र बना दिया। श्रुतिशील ने किसी-किसी तरह उसे धैर्य देते हुए कहा—"आप निश्चिन्त रहें। देवताओं को वह निश्चय ही नहीं चुनेगी। वह अपने मुख की शोभा से चन्द्रमा को तिरस्कृत कर चुकी है। अपनी सुन्दरता से काम एवं रति को नीचा दिखा चुकी है। इससे स्पष्ट है कि उसे देवताओं को नीचा दिखाने की आदत पड़ गयी है। आप अपने यत्न को शिथिल न करें। यत्नवान् को सिद्धि मिलती ही है।

इन सान्त्वनाओं से उसे अपेक्षित शान्ति नहीं मिली। श्रुतिशील के साथ नल मनोविनोद के लिये वन के एक रमणीय भाग की ओर निकल गया। वहाँ के एक सरोवर में किरात कामिनियाँ स्नान कर रही थीं। नल ने उनकी अन्योऽन्य क्रीडा के दर्शन में बड़े आनन्द का अनुभव किया। श्रुतिशील ने दूसरा स्थान दिखाने के बहाने किरात कामिनियों की ओर से उनकी दृष्टि दूसरी ओर फेरी और रेवा की तटीय सुषमा को दिखाते हुए बड़ी कुशलता के साथ उसका वर्णन किया। फिर सन्ध्या हो गयी। अतः परिजनों के साथ वह शिविर की ओर लौट आया। विषाद के कारण वह अपने दैनिक कार्यों को भी भूल गया था। परिजनों के याद दिलाने पर उसने सन्ध्यावन्दन किया और भगवान् शङ्कर के चरणकमलों की आराधना के बाद वीणा की मधुर ध्वनि से मनोविनोद करते हुए वहीं वह रात बितायी।

षष्ठ उच्छ्वास

उषःकालीन कान्ति से उदयगिरि प्रकाशित हो रहा था। रात्रि अस्ताचल की चोटियों की ओर खिसक रही थी। आकाश में गङ्गा और यमुनाजल के मिश्रण की तरह कोई अलौकिक तेज प्रस्फुटित हो रहा था। द्विजातियों द्वारा दिये गये सूर्यार्घ के जल से मानो अन्धकार धुल रहा था। प्रातःकालीन नगाड़े

की ध्वनि ने नल की निद्रा तोड़ी। सन्ध्यावन्दन के अनन्तर नारायण की स्तुति की। सैनिकों ने अपना सामान समेटा और अगले पड़ाव पर पहुँचने के लिये यात्रा शुरू हो गयी। राजा विजयी गजेन्द्र पर आरूढ़ हुआ। श्रुतिशील ने नर्मदा की पवित्रता और रमणीयता का वर्णन करने में श्लिष्ट उक्तियों की माला बनाना शुरू किया। वैदुष्य भरे वाग्विनोद में रास्ता का बड़ा भाग लोग पार कर गये। कोई थकावट नहीं प्रतीत हुई। सन्ध्या होने पर सेना ने विश्राम किया और प्रातःकाल होने पर पुनः यात्रा शुरू हो गयी। रास्ते में एक पेड़ के नीचे थका हुआ एक पथिक मिला। राजा को देखते ही उसने बड़े मनोहर शब्दों में आशीर्वाद दिये।

राजा ने उसका और सामने बहती हुई नदी का परिचय पूछा। पथिक ने उत्तर दिया—"इस नदी का नाम तापी है और मेरा नाम पुष्कराक्ष है। मुझे लोग वार्तिक कहते हैं, क्योंकि मैं सन्देश (वार्ता) वहन का कार्य करता हूँ। विशालाक्षी दमयन्ती ने मुझे आप का समाचार जानने के लिये भेजा है। जिस रास्ते से आप पहुँचेंगे उसके सामने वाली खिड़की पर बैठकर वह आपकी प्रतीक्षा कर रही है।

उसने आपके पास एक किन्नरमिथुन को भी भेजा है जो लम्बा रास्ता तय करने के कारण यहाँ से थोड़ी दूर पर पयोष्णी नदी के किनारे ठहर गया है। कल आपसे वह मिलेगा। देवी दमयन्ती ने स्वयं इस भोजपत्र पर आपको चिट्ठी लिखी है।" नल ने बड़ी उत्सुकता से उस प्रेमपत्र को खोला और पढ़ा—
"नैषध, नल होकर भी तुम मेरे किये अनल हो गये हो। मानरूप सागर से भरे हुए अबलाओं के मानस को इस तरह पकड़ना तुम जैसों का धर्म नहीं है। दैव भी दुर्बलों को ही सताता है, यह एक निश्चित सत्य है। कामदेव जिस तरह अपना बाण निर्बलों और अबलाओं पर चलाता है, उस तरह बलवानों पर नहीं। कब यह कुण्डिनपुर की भूमि आपके स्थल कमल सदृश चरणों से अलङ्कृत होगी?"

पत्र की मञ्जुल जिज्ञासा की प्राञ्जल एवं मधुर प्रवाह से नल का हृदय आप्लावित हो गया। प्रिया के दूत को देख उसकी प्रसन्नता की सीमा न रही। दमयन्ती के सम्बन्ध में उसने उत्कण्ठा भरे अनेक प्रश्न किये। पुष्कराक्ष अपने उत्तर से उसकी उत्कण्ठा को और उद्दीप्त करता गया। दोपहर का समय हो गया था। राजा के आदेश से वहीं पयोष्णी तटपर पड़ाव डाला गया। नदीतट की शोभा अनिर्वचनीय थी। ध्यानस्थ मुनियों की पङ्क्ति ने उसकी पवित्रता में एक नवीन कड़ी लगा दी थी। मुनियों के निर्देश से पयोष्णी में स्नान कर नल ने उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। दैनिक विधान के बाद परिजनों के साथ घूमता हुआ पर्वत की एक शिलासन्धि पर अपने प्रियतम को निमित्त कर गाती हुई एक किन्नरी के गीतों को सुनने लगा। पुष्कराक्ष कुछ आगे बढ़ कर बोला, "सुन्दरक! अपनी प्रिया का मुख देखने में लगे हो? देखते नहीं, महाराज नल तुम्हारी आँखों के सामने हैं।" पुष्कराक्ष की आवाज पाते ही वह किन्नरयुगल राजा के

सामने आया। पुष्कराक्ष ने उनका परिचय देते हुए एक का नाम सुन्दरक और दूसरे का नाम विहङ्गवागुरिका बताया।

सुन्दरक ने भी दमयन्ती द्वारा दी गयी एक अंगूठी और दिव्य वस्त्रयुगल उपहार रूप में नल के सामने प्रस्तुत किया। स्नेहपूर्वक उसे स्वीकार कर नल ने कहा, "सुन्दरक, देवी के मनोहर नाम से ही मैं मुद्रित हूँ। यह मुद्रिका (अंगूठी) पुनरुक्त मात्र है। उनके प्रेम से ही मैं ढक गया हूँ, ये वस्त्र कोई नवीन काम नहीं करते। आपलोगों जैसे प्रेमी परिजनों को भेज कर उन्होंने क्या नहीं भेज दिया।"

बात ही बात में सन्ध्या हो गयी। हाथियों के यूथ की तरह अन्धकार अँगड़ाइयाँ लेता हुआ उमड़ आया। अतः परिजनों के साथ राजा शिविर लौट आया। सन्ध्यावन्दन के बाद उसने मित्रमण्डल के साथ स्वादिष्ट भोजन किया। विश्राम के समय सुन्दरक और विहङ्गवागुरिका ने अपने मधुर संगीत से वातावरण को अत्यन्त स्पृहणीय बना दिया। लोग गीतमाधुरी में आकृष्ट होने के कारण अपने आप को भूल गये थे। अवसरपाठक गीत की प्रशंसा कर रहा था। किन्नरयुवक गीत की तुलना दमयन्ती के साथ कर रहा था। उसकी दृष्टि में दमयन्ती और तत्कालीन गीत में बहुत सी समानतायें थीं। विहङ्गवागुरिका को यह बात अच्छी न लगी। उसने गीत में अनेक दोष बताये और दमयन्ती में अनेक गुणों का उद्भावन किया। अन्त में उसने दमयन्ती की तुलना वेदविद्या के साथ की। उत्कण्ठापूर्ण वातावरण के बीच रात व्यतीत हुई। प्रातःकाल पुनः यात्रा शुरू हुई।

पुष्कराक्ष के साथ चलते हुए राजा ने एक विशाल हाथी देखा जो रमण की इच्छा से अपनी मानिनी प्रिया की चाटुकारिता करता था। "अनुरागी दम्पतियों के क्रीडा रस में विघ्न नहीं डालना चाहिये।" यह सोचकर राजा ने उसे छेड़ा तो नहीं किन्तु स्वयं इस घटना को देखकर विह्वल हो गया। मार्ग के अन्य दृश्य भी बड़े मादक और उद्दीपक थे।

जब विन्ध्याचल के मधुर दृश्यों से गुजरते हुए आगे बढ़े तो देखा कि गाँवों के बीच ऊँचे स्थानों पर चढ़ कर स्त्रियाँ बड़ी उत्सुकता से उन्हें देखने के लिये उतावली थीं। बहुत तो एक दूसरी के कन्धे पर हाथ रख कर चित्र बना रही थीं। विनोदपूर्ण बातों से राजा का मनोरञ्जन करते हुए पुष्कराक्ष ने राजा को सूचित किया कि वे कुण्डिनपुर पहुँच गये।

राजा ने सेनापति बाहुक को सेना को ठहराने का आदेश दिया। सैनिकों ने यथास्थान तम्बू तान दिये। स्वर्णनिर्मित स्तम्भों वाले भवन में राजा का मणिखचित आसन डाल दिया गया। कुण्डिन नगर के थोड़ी दूरी पर दण्डपाशिक की ध्वनि सुनायी पड़ी—"निषध देश के सम्राट् आ गये। अतः चन्दनजल से राजमार्ग सींच दिये जायं। खम्भों पर झण्डे फहरा दिये जायं। विविध भूषणों से मण्डित पुराङ्गनाएँ मङ्गलगान गाती हुई बाहर आवें। नगरवधुएँ कृतार्थ हों।

भगवान् शंकर के चरणों का आशीर्वाद प्राप्त कर नल के रूप में निश्चय ही आज कामदेव आ गया है।"

सप्तम उच्छ्वास

महाराज भीम के राजभवन से एक बूढ़ा प्रतीहार आया और नल को प्रणाम कर विनयपूर्वक बोला—

"श्रीमन्! कुण्डिनपुर के नागरिक और नगरवधुएँ हाथ में फल-पुष्प लेकर आपके स्वागत के लिये प्रतीक्षा कर रही हैं। आप से मिलने के लिये विदर्भपति तो यहीं आ रहे हैं। आपके गुणगान में लगे हुए वन्दीजनों का कोलाहल यहीं से सुनायी पड़ रहा है।"

"भद्रभूति, विदर्भपति के परिजनों को साथ लाओ" नल ने दौवारिक को आदेश दिया। "महाराज की जैसी आज्ञा" कह कर दौवारिक अगुवानी के लिये चला। थोड़ी दूर पर एक चंचल घोड़े पर आते हुए महाराज भीम दिखाई पड़े। नल भी अपने सामन्तों के साथ उनके स्वागत के लिये आगे बढ़े। एक दूसरे पर दृष्टि पड़ते ही दोनों के मुख मुस्करा उठे। एक ही साथ दोनों के शिर झुके। हाथ फैला कर दोनों गले से मिले। उनके उल्लास भरे गाढ आलिङ्गन के कारण हारों की लड़ियां टूट गयीं। मणियों के दाने इधर-उधर बिखर गये। उन्हें देख-कर ऐसा लगता था कि स्नेहसुधा के अपरिमित पुञ्ज से दोनों के हृदय भर गये और जब उनमें उसके अंटने की जगह न रही तो मोती के दानों के रूप में उसकी बूँदें बिखर गयीं।

रंग-बिरंगे चित्रों से मण्डित मणिमय सिंहासन पर दोनों बैठे। कुशल प्रश्न के बाद विदर्भपति ने कहा—"आज दक्षिण दिशा धन्य हो गयी। हमारी प्रजा का पुण्य वस्तुतः फलवान् हो गया। मेरा जीवन श्लाघनीय बन गया। यह मेरे महान् पुण्योदय का अवसर है जब कि आप जैसे लोगों के स्वागत का अव-सर मुझे मिला है। अच्छा, ये अदम्य शत्रुओं को निवारण करने वाले वारण, (हाथी) वायुवेग को भी नीचा दिखा देनेवाले घोड़े, चमकती हुई ये अतुल मणिराशियां, सौन्दर्य भरी वारङ्गनायें, आसमुद्र पृथ्वी और सम्पत्तिसहित मेरा जीवन आपको सादर समर्पित है।"

महाराज भीम की नम्रता तथा आत्मसमर्पण को देख कर नल मुग्ध हो गये। "रहने दिया जाय, सर्वस्व समर्पण की कोई आवश्यकता नहीं। आपका दर्शन इस सम्पूर्ण वसुन्धरा की प्राप्ति की तुलना में अधिक महत्त्व का है। अति-शय प्रिय व्यक्ति से मिलन की अपेक्षा वित्तलाभ का सुख अधिक नहीं होता। आपने अपने मधुर व्यवहार और स्नेहसान्द्र वाणी से मेरे लिये क्या नहीं किया। अच्छा, बहुत देर हुई। आप राजभवन पधारें।" विदर्भपति बड़े सन्तोष के साथ घर लौट आये। उनके लौट आने पर दमयन्ती की ओर से कुछ कुबड़ी एवं नाटी परिचारिकायें विविध उपहारों के साथ नल के पास आयीं। नल ने स्नेहपूर्वक

उपहार स्वीकार कर कुशल प्रश्न के बाद परिचारिकाओं को विविध उपहारों से सन्तुष्ट कर दमयन्ती के यहां भेज दिया।

परिचारिकाओं को लौटाने के बाद पर्वतक नामक बौने के साथ पुष्कराक्ष और किन्नर मिथुन को भी विविध उपहारों से अलङ्कृत कर दमयन्ती के पास भेज दिया।

दोपहर का समय हो गया था। नल ने मध्याह्न सन्ध्यावन्दन किया। सेना की ओर से अचानक कोलाहल सुनायी पड़ा। दौवारिक से पूछने पर पता चला कि देवी दमयन्ती की ओर से सैनिकों को विधिवत् भोजन कराया जा रहा है और उनके लिये भी स्वयं देवी ने अपने हाथों से सुरस सुस्वादु भोजन बनाकर भेजा है। प्रिया के हाथ का बनाया प्रथम-प्रथम प्राप्त भोजन नल को अप्रतिम तृप्तिकर प्रतीत हुआ। भोजन के बाद विश्रामकक्ष में प्रासङ्गिक मनोविनोद चल रहा था तब तक पर्वतक जो कुछ देर पहले नल के यहां से दमयन्ती के पास गया था खूब सुसज्जित एवं अलङ्कृत होकर लौटा। आते ही उसने दमयन्ती का वर्णन शुरू कर दिया—

"महाराज, उस बाला के निर्माण में ब्रह्मा ने अपना सारा कौशल लगा दिया है। आप के दूत के रूप में मेरा आगमन जानकर उसकी प्रसन्नता की सीमा न रही। उसके सम्मुख मैं भी बड़े सम्मान के साथ बैठाया गया। कुशल-प्रश्न के बाद आपने जो उपहार दिया था, उसे मैंने प्रस्तुत किया। बड़ी उत्सुकता से उन्होंने उसे स्वीकार किया। बातचीत के प्रसङ्ग में पुष्कराक्ष ने कह दिया, 'देवि, महाराज नल यद्यपि आपमें पूर्णतः अनुरक्त हैं किन्तु इन्द्र आदि लोकपालों के अनुरोध से आपके पास उनका दूत बन कर यह कहने आये हैं कि आप लोकपालों में से ही किसी को चुनें।' पहले तो उन्हें विश्वास न हुआ लेकिन मैंने भी जब पुष्कराक्ष की बातों का समर्थन किया तो वह पूर्णतः व्यग्र हो उठीं। चिन्ता के आक्रमण ने उनके मुख को म्लान बना दिया। जब मैं चलने को तैयार हुआ तो भी वे मौन रहीं। सखियों के अनुरोध पर मुझे उन्होंने विदा किया। मेरे चलते समय उन्होंने केवल हाथ उठाकर रह गयीं कुछ बोल न सकीं। उस विषण्णता की स्थिति में न दिया न कुछ सन्देश दीं और न कुछ पूछा ही।"

उनकी स्थिति सुनकर नल को बड़ी चिन्ता हुई। किसी-किसी तरह जब कुछ रात बीत गयी, चन्द्रमा अपनी चन्द्रिका से संपूर्ण संसार को विस्मय में डालने लगा, तो नल का मन काम के बाणों से जीर्ण होने लगा। इधर देवताओं की आज्ञा अलग मनोरथ का विघ्न बन रही थी। बहुत सोच-विचार के बाद उसने यही निश्चय किया कि लोकपालों की आज्ञा का पालन करना ही अच्छा है। इस निश्चय के अनुसार वह इन्द्र के वर की महिमा से कैलास पर्वत की तरह भीम के भव्य एवं विशाल भवनों को लांघता हुआ बिना किसी के देखे दमयन्ती के निवासकक्ष में पहुँच गया। उसकी सहेलियाँ उसका मनोविनोद कर रही थीं। नल को तो सारी बातें प्रत्यक्ष थीं किन्तु उसे कोई नहीं देख रहा था। दमयन्ती

के सम्मुख पहुँच कर उसने अपने रूप को सर्वदृश्य बना दिया। उसे देख कर दमयन्ती और उसकी सहेलियों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। अनेक प्राकारों तथा रक्षकों से घिरे हुए, पक्षियों के लिये भी दुष्प्रवेश अन्तःपुर में नल का प्रवेश सचमुच ही कम आश्चर्य की बात नहीं थी।

दमयन्ती भी सोचने लगी कि वह युवती निश्चित ही अत्यन्त भाग्यशालिनी होगी जो इसके गले में मुक्तामालासदृश अपनी भुजाओं को फैला कर आलिङ्गन करेगी।

नल विहङ्गवागुरिका को पहले से पहचानता था। अतः उसे सम्बोधित कर उसने कहा—विहङ्गवागुरिका, तुम्हारी स्वामिनी का ऐसा आचार है कि अतिथिजन के साथ वे स्वागतभाषण भी नहीं करतीं।

प्रणाम करती हुई विहङ्गवागुरिका बोली—महाराज ऐसा न कहें। कंकण-ध्वनि के ही द्वारा मेरी स्वामिनी ने आपका स्वागत किया है, चरणों में नेत्र-पुष्प अर्पित किये हैं और ऐसे हृदय में आपको स्थान दिया है जिसके द्वार पर मङ्गलकलशरूप में स्तन-युगल स्थित हैं। आप जैसे अतिथि के अनुकूल मेरी स्वामिनी ने क्या नहीं स्वागत किया ? कृपया आप इस आसन पर बैठें।

नल सादर आसन पर बैठा। लज्जा से शिथिल उन दोनों का एक दूसरे पर दृष्टिपात होने पर एक ही बार हृदय में वे सभी रस उमड़ पड़े जिनकी लहरियों की माधुरी को अनुभव ही किया जा सकता था, वाणी का विषय नहीं बनाया जा सकता था। मन ही मन नल उसके सौन्दर्य की सराहना कर रहा था, काम भी अपने प्रयत्न के नैपुण्य से उसे और व्यथित कर रहा था। कामव्यथा के ही कारण नल के मन में यह बात आने लगी कि वीणा के बजते रहने पर वेद की ध्वनि अच्छी नहीं लगती। इस रूप-माधुरी के समक्ष दूतकार्य फीका-सा लगता है। तत्काल उसके चरित्र का पवित्र अंश निखरा और उसने दूत कार्य को ही श्रेयस्कर माना। उसने इन्द्र की आज्ञा दमयन्ती से सप्रसङ्ग बता दी।

"प्रियंवदिका, पिताजी तुम्हें बुलाकर क्या कह रहे थे ? ऐसा लगता है कि मेरी पूज्य माता एवं पिताजी से किसी ने मेरी शिकायत कर दी है कि यह लड़की बड़ी हठी है। मैं उन लोगों के हृदय से दूर कर दी गयी हूँ। गुरुजन और देवता मेरे लिये वन्दनीय हैं फिर भी मैं उन लोगों से डरती हूँ।" इस तरह दमयन्ती प्रियंवदिका नाम की सखी से नल के समक्ष ही बातें करने लगी।

नल ने पुनः उसे समझाते हुए कहा—"आप देवताओं की आज्ञा की अवहेलना न करें। ये लोकपाल सब तरह से प्राणियों के प्रभु बने रहते हैं। उनमें भी महाराज इन्द्र की तो बात ही क्या करनी है। मेरा अनुरोध है कि आप इन अमृत-भोजी देवताओं में से ही किसी को चुनें। स्वर्गसुख न छोड़े। मृत्युलोक के स्वल्प सुख का पात्र आप नहीं हैं।"

नल द्वारा दुहरायी गयी इस उक्ति से वह बिल्कुल मर्माहत हो गयी। आँखें घूर्णित हो गयीं। मुख म्लान हो गया। सखी की इस स्थिति को देख प्रियंवदिका

ने कहा—"महाराज, सुन लिया जो सुनना था। समझ लिया देवताओं का आदेश, किन्तु यह मेरी सखी स्वतन्त्र नहीं है। प्राणियों की प्रवृत्ति और निवृत्ति ईश्वर की इच्छा के अनुसार हुआ करती है। रमणीजनों का अनुराग विचारपूर्वक नहीं चलता। सूर्य के तीव्र ताप से स्नेह रखने वाली कमलिनी सुधावर्षी चन्द्रमा की कान्तियों को थोड़ा भी नहीं सहती। अनुराग के व्यवहार में गुणविशेष कारण नहीं होते। कहीं भी कोई किसी का चितचोर बन सकता है। लोकपालों के वैभव इसे आकृष्ट करने में असमर्थ हैं।" नल प्रियंवदिका के अत्यन्त मधुर वाग्विनोद से अभी तृप्त नहीं हुआ था तो भी "अन्तःपुर में बहुत देर तक ठहरना अच्छा नहीं है" यह सोचकर चलने के लिए आसन से उठ खड़ा हुआ। सहेलियों के साथ दमयन्ती भी खड़ी हो गयी। "ठहरिये आप लोग यहीं पर" यह कहकर नल अपने शिविर के लिये प्रस्थित हो गया।

नल ने अपने नयन-चषक से दमयन्ती का रूप-मधु पी तो लिया था किन्तु अभी तृप्ति नहीं हुई थी। दर्शन-व्यवधान ने उसे व्यग्र कर दिया। शिरीषपुष्प-सदृश कोमल शय्या भी उसे कटीली लगती थी। आँखें आँसुओं का पात्र बन गयी थीं। निद्रा तो दमयन्ती-स्नेह की ईर्ष्या से पास ही नहीं आती थी। व्यग्र मनोदशा में एक-एक क्षण असह्य हो रहा था। भगवान् शंकर के चरण-युगल में चित्त केन्द्रित करते हुए किसी किसी तरह उसने रात बितायी।

नलकथा की प्राचीनता

श्रव्य संस्कृत की सर्वविध रचनाओं में नलकथा को बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। ऐतिहासिक महाकाव्य, पुराण, कथासाहित्य, महाकाव्य, चम्पू तथा नाटक इन सभी साहित्यिक प्रकारों में बड़े सम्मान के साथ पुण्यश्लोक नल का चरित्र लिखा गया है। कथावस्तु के औचित्य पक्ष को अधिकाधिक सबल एवं शिव बनाने के लिये यथास्थान कवियों ने इच्छानुसार परिवर्तन किये हैं, किन्तु वर्ण्य एवं अलङ्करणीय नायक नल ही है।

वाल्मीकि रामायण में नल एवं दमयन्ती की चर्चा बड़ी श्रद्धा के साथ हुई है। सीता जैसी पतिपरायणा देवी ने भी दमयन्ती को अपना आदर्श माना है। रावण पक्ष का समर्थन करने वाली, भय दिखाती हुई राक्षसियों को सीता उत्तर देती हैं—जो मेरा पति है वही मेरा गुरु है, चाहे वह दीन हो या राज्यहीन। सुवर्चला जैसे सूर्य में अनुरक्त थीं; भीमपुत्री दमयन्ती जैसे अपने पति नल में अनुरक्त थीं, वैसे मैं भी अपने पति, इक्ष्वाकुवंश के अवतंस राम में अनुरक्त हूँ[1]।

---

१. दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः।
तं नित्यमनुरक्ताऽस्मि यथा सूर्यं सुवर्चला॥
नैषधं दमयन्ती भैमी पतिमनुव्रता।
तथाऽहमिक्ष्वाकुवरं रामं पतिमनुव्रता॥

वाल्मीकिरामायण सुन्दरकाण्ड सर्ग २४ श्लो. ९ १३

महाभारत में बड़े विस्तार के साथ नलकथा कही गयी है। मत्स्यपुराण में इक्ष्वाकुवंश-वर्णन के प्रसङ्ग में वीरसेनपुत्र नल की चर्चा हुई[1] है।

स्कन्दपुराण में नल का दो बार उल्लेख हुआ है। एक बार जब वन में दमयन्ती को अकेली छोड़ कर दुःखी नल हाटकेश्वर क्षेत्र पहुँचे और वहाँ उन्होंने चर्मंमुण्डा देवी की स्थापना की तो उसीके समीप शिवलिङ्ग की भी स्थापना की जो नलेश्वर नाम से विख्यात हुए[2]।

द्वितीय स्थल पर नलेश्वर के प्रसङ्ग में नाममात्र का उल्लेख मिलता है। विस्तार के साथ उसका वर्णन नहीं हुआ है। पहली बार भी नल के पूर्वार्द्ध जीवन के बारे में दो श्लोक लिखे गये हैं—पुराने समय में वीरसेन के पुत्र नामक राजा हुए जो सब गुणों से युक्त तथा शत्रुओं का विनाश[3] करने वाले थे। प्राणों से भी प्रिय उनकी भार्या दमयन्ती थी। वह विदर्भ के राजा की लड़की थी।

क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी में तथा कथासरित्सागर में, जो बृहत्कथा का रूपान्तर है, नलकथा का वर्णन उपलब्ध होता है। इससे यह स्पष्ट है कि गुणाढ्य की बृहत्कथा में भी यह कथा कही गयी थी। क्षेमेन्द्र ने बृहत्कथामञ्जरी में नलकथा अत्यन्त संक्षेप में कही है[4]। प्रारम्भ से विवाह तक की कथा केवल चौदह श्लोकों में कही गयी है[5]। उसमें नल के देवदूत बनने की कहानी नहीं है। सोमदेव ने कथासरित्सागर में नलकथा बड़े विस्तार से कही है[6]।

नवम शताब्दी के उत्तरार्द्ध या दशम शताब्दी के पूर्वार्द्ध में क्षेमीश्वर ने नल-कथा पर नैषधानन्द नामक सात अङ्कों का नाटक लिखा है। दशम शताब्दी के प्रारम्भ में त्रिविक्रमभट्ट ने नलचम्पू की रचना की। बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में श्रीहर्ष ने नलकथा को आधार बना कर नैषधीय चरित लिखा।

आदिकाव्य रामायण से लेकर पुराण, महाकाव्य, चम्पू, नाटक आदि विविध काव्यस्वरूपों में निषध सम्राट् नल को बड़ा प्रशस्त स्थान मिला है। नल और

---

१. नलौ द्वावेव विख्यातौ वंशे कश्यपसम्भवे।
वीरसेनसुतस्तद्वन्नैषधश्च नराधिपः॥ मत्स्यपुराण अ० १२–५६

२. स्कन्दपुराण—नागरखण्ड अध्याय ५४–५५

३. वीरसेनसुतः पूर्वं नलो नाम महीपतिः।
आसीत् सर्वगुणोपेतः सर्वशत्रुक्षयावहः॥
भार्या तस्याभवत् साध्वी प्राणेभ्योऽपि गरीयसी।
दमयन्तीति विख्याता विदर्भाधिपतेः सुता॥
स्क० पु० ख० ६ अध्याय ५४, ३–४

४ बृहत्कथामञ्जरी लम्बक १५ श्लो० ३३१–३७१

५. बृहत्कथामञ्जरी लम्बक १५ श्लो० ३३१–३४४

६. कथासरित्सागर, लम्बक ९ अलङ्कारवती ९ तरङ्ग ६, श्लो. २३७–४२४

दमयन्ती जैसे अतिमानव शक्ति के व्यक्तियों की कठिनाइयाँ भी अतिमानव ही रही हैं। प्रसन्नता की बात है कि इस आदर्श पुरुष के चरित को विशिष्ट ढंग से उपन्यस्त करने के लिये दो कवि भी विचित्र धैर्य और प्रतिभा वाले मिले। वे हैं श्री त्रिविक्रिमभट्ट और श्रीहर्ष। इन दोनों अप्रतिम कवियों ने अपनी प्रतिभा और पाण्डित्य का परिचय पुण्यश्लोक नलचरित को ही आधार बना कर दिया है।

कथावस्तु का औचित्य

'अनौचित्यादृते नान्यद्रसभङ्गस्य कारणम्।' औचित्य की इतनी अधिक मर्यादा स्वीकार की गयी है कि उसके अभाव के अतिरिक्त रसभङ्ग का दूसरा कारण ही नहीं माना गया। शब्दार्थविन्यास के कौशलप्रदर्शन के साथ काव्य को सप्राण बनाने वाले इस तत्त्व की ओर जिस कवि ने ध्यान दिया उसका काव्य निश्चय ही सहृदयश्लाध्य बन गया। त्रिविक्रमभट्ट जो अपनी श्लेषयोजना को सर्वत्र प्रमुखता देने के लिये तत्पर दीखते हैं, औचित्य की ओर से विमुख नहीं दिखायी पड़ते।

नलचम्पू श्रृङ्गारप्रधान काव्य है। श्रृङ्गार की सिद्धि के लिये कई विकट घटनाओं की सृष्टि की प्रथा कविसामान्य में देखी जाती है, क्योंकि विकट घटनाओं से रस का पुटपाक होता है। भवभूति ने तो "पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः" कह कर रस के पुटपाक की श्लाघनीयता बतायी है। वस्तुतः श्रद्धा एवं स्तुति का पात्र वही बनता है जो विकट परिस्थितियों में भी अविचल रह कर अलोकसामान्य धैर्य से औचित्य को सुरक्षित रखता है। दमयन्ती और नल अपने इसी विशिष्ट गुण के कारण श्रद्धेय हो गये हैं। त्रिविक्रम शाण्डिल्य-वंशी द्विज हैं। हर उत्कृष्ट चीज को वे द्विजरूप में ही देखना चाहते हैं। इसी-लिये दमयन्ती के प्रेम को भी उन्होंने द्विज ही बना दिया है। पहली बार नल और दमयन्ती को विभिन्न पथिकों के द्वारा एक दूसरे का परिचय मिलता है। पथिक ही अनुराग-शिशु का प्रथम जन्मदाता है। हंस उसे परिष्कृत एवं सुसंस्कृत कर द्विज बना देता है। उसे द्विज बनाने का कार्य हंस ने किया है। अब यह स्पष्ट है कि दमयन्ती और नल का प्रेम द्विजन्मा है।[1] इस द्विजन्मा स्नेह की उदात्तता स्वाभाविक है जिसे बृहस्पति सदृश आचार्य हंस ने द्विज बनाया और अपने स्पृहणीय वर्णन मन्त्रों से इतना पुष्ट बना दिया कि देव क्या देवेन्द्र भी उसे तोड़ न सके। आचार्य हंस ने नल और दमयन्ती दोनों की उत्पत्ति बताने में एक-एक उच्छ्वास लगा दिया है। स्नेह-शिशु को अधिक सुसंस्कृत करने के लिये दीक्षा के विस्तार की आवश्यकता थी ही। नल और दमयन्ती जैसे अतिमानव पात्रों के निवास या उद्भव के लिये स्वर्ग-स्पर्धी नगरों एवं देशों का सातिशय सद्भाव भी अत्यन्त अपेक्षित था। इसीलिये आर्यावर्त और निषध तथा विदर्भ एवं कुण्डिनपुर का बड़ा ही रमणीय एवं विस्तृत वर्णन किया गया है।

---

१. कृतोत्तरासङ्गेन द्विजन्मना श्रुतानुरागेण। न० च० प० उ० पृ० २३८.

दमनक मुनि की कल्पना

एक बन्दर के बच्चे को देख कर प्रियङ्गुमञ्जरी और भीम के हृदय में यह लालसा जग उठती है कि उन्हें भी कोई सन्तान होती। पति की आज्ञा से प्रियङ्गुमञ्जरी सन्तान के निमित्त भगवान् शङ्कर की आराधना शुरू कर देती हैं। उनकी आराधना से प्रसन्न होकर पूरा का पूरा वरदान शङ्कर जी ही दे देते; किन्तु ऐसा न कर वरदान का कार्य दमनक मुनि पर उन्होंने छोड़ दिया है। तथ्य यह है कि कन्या होने का ही वरदान देना शिव को ईप्सित था। तपस्या आदि के अभाव में भीम और प्रियङ्गुमञ्जरी के लिये वह भी अप्राप्य था। शुभाशुभ कर्मों का बिना विचार किये शम्भु वरदान नहीं देते।[1] देवदुर्लभ शिव ने प्रियङ्गुमञ्जरी को कन्यालाभ जैसे ईषदीप्सित वर को स्वयं सुनाना अच्छा नहीं समझा। उन्होंने दमनक से ही इसे कहलाया। दमनक के आ जाने से कुछ श्लिष्ट वाग्विनोद का भी अवसर मिल गया और प्रियङ्गुमञ्जरी का मनुष्योचित व्यवहार भी परिलक्षित हो गया। श्लिष्ट शब्दों की ओट में दमनकजी को थोड़ा उलाहना भी मिल गया। दमनकजी ने भी जैसे का तैसा उत्तर वैसी ही पदावली में दे दिया। शङ्कर जी के साथ यह कार्य नहीं सम्भव था। कन्यालाभ के वरदान को ज्यों का त्यों सुनकर चुप रह जाना स्वाभाविक न होता क्योंकि देवदर्शन के बाद तपस्विनी प्रियङ्गुमञ्जरी की आशायें असीम ऊँचाई पर उड़ रही थीं; कन्यालाभ का झोंका निश्चय ही उसके लिये एक आपाततः असह्य प्रहार था। घटना की स्वाभाविकता के लिये दमनक मुनि की सृष्टि बहुत औचित्य-सम्पन्न है।

समान परिस्थितियों की सृष्टि

भविष्य में एक होनेवाले इन दोनों स्नेहियों की उत्पत्ति के मूल में भगवान् शङ्कर की आराधना है। दोनों ही के माता-पिता बहुत समय तक निःसन्तान रहे हैं। दोनों ही विधि के रचना-कौशल के नमूने हैं। दोनों ही को पथिक से एक दूसरे का प्रथम परिचय धुँधले ढंग से मिलता है। दोनों ही का स्नेह हंस के द्वारा परिष्कृत होता है। ये समानतायें इस बात की द्योतक हैं कि ये दोनों तत्त्व इतना अधिक सम्बद्ध हैं कि इन्हें तोड़ने के लिये देवताओं में भी सामर्थ्य नहीं है।

नल जब दमयन्ती के स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिये जा रहा है, उस समय भी एक घटनागत समानता बहुत मधुर उतरी है। एक चक्रवाकी एक चक्रवाक युवक पर अनुरक्त होकर उससे मिलना चाहती है। चक्रवाक युवक भी कामपरवश होकर पंखों को फड़फड़ाता हुआ गर्दन उठाये चक्रवाकी की ओर आ रहा है; किन्तु चार हंस उसे बीच ही में रोक देते हैं, चक्रवाकी से उसे मिलने नहीं देते। हंस स्वयं चक्रवाकी से मिलना चाहते हैं। नल उन्हें देख कर कहता है—न खल्वेषामियमनङ्गभूमिः—यह इनके काम का विषय नहीं है।

---

१. यद् यावद् यादृशं येन कृतं कर्म शुभाशुभम्।
तत्तावत्तादृशं तस्य फलमीशः प्रयच्छति ॥ न० च० तृ० उ० श्लो० १७

अथवा—यह सोचना अच्छा नहीं है, क्योंकि हृदय के तृणमन्दिर में जब काम की आग धधक उठती है तो पण्डित को भी उचित-अनुचित का ज्ञान नहीं रह जाता। इसलिये तो स्वर्ग की कमलनयना रमणियों के रहने पर भी इन्द्र ने तपस्विनी अहल्या से सम्पर्क किया।[1] यह बात चल ही रही है तब तक इन्द्र, यम, वरुण और कुवेर आकाश से उतरते हैं। वे चार हंस जैसे विजातीय चक्रवाकी में अनुरक्त थे और अनुरागिणी चक्रवाकी के प्रियतम चक्रवाक को उससे मिलने में बाधा पहुँचाते थे, इसी तरह अनुरागिणी दमयन्ती के प्रियतम नल को विजातीय लोकपाल उससे मिलने में बाधित कर रहे हैं। समान परिस्थितियों के निर्माण में त्रिविक्रम अधिक कुशल हैं।

चरित्रोपस्थापन

आपाततः यह प्रतीत होता है कि त्रिविक्रम का मुख्य लक्ष्य अपना श्लेष-कौशल प्रदर्शित करना था; किन्तु उनके उदात्त पात्रों की चारित्रिक चमत्कृतियाँ उन्हें बाणभट्ट की कोटि में बैठा देती हैं। बाण जैसे शब्दार्थ-चयन में बहुत कुशल हैं वैसे ही पात्रोपस्थापन में भी। यही बात अधिक अंश में त्रिविक्रमभट्ट में भी पायी जाती है। त्रिविक्रम के पात्र देवदुर्लभ कीर्ति से मण्डित हैं। नल इतना सौभाग्यशाली है कि उसकी तुलना में लोकपालों का अतिमानव वैभव दमयन्ती के लिये तृणतुल्य हो गया है। दमयन्ती में भी कोई ऐसी आनन्द-सुधा भरी है जिसकी उपलब्धि देवरमणियों में नहीं है। लोकपालों की जो प्यास स्वर्ग की अप्सराओं में नहीं बुझती उसकी तृप्ति की सम्भावना वे दमयन्ती में करते हैं। सत्कीर्ति के अर्जन में तो ये पात्र निश्चय ही देवताओं से आगे हैं; किन्तु कवि ने इन्हें मनुष्य ही रखा है। एक पथिक के द्वारा दमयन्ती का आंशिक वर्णन सुनते ही नल उसमें अनुरक्त हो जाता है, किन्तु उसकी यह अनुरक्ति उसकी विषयासक्ति की उद्दामता का बोधक नहीं कराती; क्योंकि जिस कन्या की कीर्ति देव नहीं देवेन्द्र को भी मत्त कर सकती है, उसका गुणश्रवण मनुष्य को उद्वेलित कर दे, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। इतने मात्र से उस पुरुष का पुरुषोत्तमत्व नहीं विघटित होता। यद्यपि नलचम्पू में नल और पथिक का सम्मेलन ही पहले देखा जाता है, लेकिन उसी प्रथम पथिक की बातों से यह पता चल जाता है कि दमयन्ती के सामने एक दूसरे पथिक ने नल की कथा पहले ही कह दी है। नल की अपेक्षा दमयन्ती में पहले से प्रेम उत्पन्न हो गया है। स्त्री में प्रेम का प्रथम वर्णन करना एक पारम्परिक बात है। देवोत्तमों को निम्न दिखाने वाला पुरुषोत्तम नल उनकी दौत्यदासता स्वीकार कर लेता है, किन्तु उसका मनस्तुरग कभी मर्त्यमार्ग की ओर भागता है तो कभी दिव्यमार्ग की ओर। वह अपनी मनोरथ-प्रियतमा दमयन्ती के स्वयंवर में जा रहा है। मार्ग में

---

१. किमु कुवलयनेत्राः सन्ति नो नाकनार्यस्त्रिदिवपतिरहल्यां तापसीं यः सिषेवे।
हृदयतृणकुटीरे दीप्यमाने स्मराग्नावुचितमनुचितं वा वेत्ति कः पण्डितोऽपि॥
न० च० प० उ० श्लो० ५०

देवताओं की दौत्य-सम्बन्धिनी आज्ञा "न ययौ न तस्थौ" की स्थिति उत्पन्न कर देती है। उसके मनस्तुरग की दशा एक ऐसे पथिक की है जिसे एक ओर बाघ ललकारता है, दूसरी ओर खाई का भय है, तीसरी ओर दावाग्नि धधक रही है और चौथी ओर डाकुओं का दल है। एक ओर तो महाराज कामदेव कानों तक धनुष चढ़ाकर मर्मवेधी बाण मार रहे हैं और दूसरी ओर लोकपालों की अलंघनीय आज्ञा है।[1] नल के यहाँ स्वार्थ और परार्थ की लड़ाई में परार्थ, जिसे परमार्थ कहा जाता है, की विजय होती है। अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में झट से वह सोच लेता है—"आज्ञालङ्घन सेतुबन्ध की तरह कल्याण की धारा को रोक लेता है। नपुंसक के मुखावलोकन की तरह अमङ्गल को बढ़ाता है। रजस्वला-गमन को तरह आयुष्य को नष्ट करता है। अतः देवताओं की आज्ञा मान लेना ज्यादा अच्छा है।" यह सोचकर भक्ति एवं भय के साथ देवताओं का आदेश मान लेता है।[2] मानवसुलभ दुर्बलतायें उसे दबाना चाहती हैं किन्तु उसके अन्तस् का देवत्व दुर्बलताओं को पनपने नहीं देता।

आज्ञा स्वीकार कर लेने के बाद जब नल लोकपालों के प्रभाव से अदृश्य रह कर ही दमयन्ती को उसके महल में देखता है तो फिर उसके मनुष्यत्व और देवत्व में लड़ाई छिड़ जाती है। अशेष-सुख-निकेतन दमयन्ती को शुभ्र छटाओं से मण्डित स्फटिक मणि की पर्यङ्किका पर देखकर वह अपने आपको ही सफलश्रम नहीं मानता, अपितु उस रमणीरत्न की स्थिति से संसार को सनाथित मानने लगता है, आंखों को कृतार्थ समझता है और मदनव्यथा से व्यथित हो जाता है। दमयन्ती के जिस-जिस अङ्ग पर दृष्टि डालता है वहीं पर हठात् कामदेव हाथों में बाण लिये दिखायी पड़ता है।[3] इस दशा में वह पराधीनता तथा दासता को बहुत अश्लाघ्य बताता है। उसे ज्ञात है कि दमयन्ती उसमें अनुरक्त है। उसका मनुष्यत्व झट कह उठता है—"प्रसङ्ग के प्रतिकूल होने के कारण यह मेरा सारा का सारा कार्य ग्राम्य है—अनुचित है, क्योंकि वीणा के बजते रहने पर

---

१. इतो व्याघ्र इतस्तटी, इतो दवाग्निरितो दस्यवः, इतः कर्णान्ताकृष्टशरासनो मर्मप्रहारी प्रहरति मकरध्वजः इतश्चायमेतेषाम् अलङ्घनीय आदेशः।

न० च० प० उ० पृ० २९२

२. आज्ञाबन्धनञ्च स्खलयति श्रेयःस्रोतः। षण्ढमुखदर्शनमिव वर्धयत्यलक्ष्मीम्। रजस्वलाभिगमनमिव हरत्यायुः।……तत्करोमि देवादेशम्।………भक्त्या भयेन च देवानां दौत्यादेशं समर्थितवान्।

न० च० प० उ० पृ० २९२

३. रङ्गत्यङ्गे कुरङ्गाक्ष्याश्चक्षुर्मे यत्र यत्र तु।
दृश्यते तत्र तत्रैव बलाद्बाणकरः स्मरः॥

न० च० स० उ० श्लो० ४४

वैदिक प्रवचन अच्छा नहीं लगता।"[1] दमयन्ती की रूपवीणा ने नल के नेत्रश्रोत्र को आकृष्ट कर लिया है। उसे देवताओं का दास्य—वेदोद्‌गार अच्छा नहीं लगता। यहाँ भी स्वार्थ की उद्दामतम प्रवृत्ति उस महामानव के यहाँ हार खाती है। उसकी मनोदशा दर्शनीय है—"तो यह कैसे कहूँ—'चंचलनेत्रे! लोकपाल मेरे मुँह से तुम्हें सुनते हैं' ऐसा कहने से प्रस्तुत अनुराग भङ्ग होता है। यदि उन लोगों की आज्ञा को छिपाता हूँ या उनके बारे में कोई दूसरी बातें कहता हूँ तो कल्याण की हानि होती है। जो कार्य है वही कहता हूँ तो स्वार्थ की हानि होती है। अच्छा, स्वार्थ का विघात ठीक है किन्तु विश्वस्त देवताओं को वञ्चित कर पातक भागी बनना अच्छा नहीं।" यह सोचकर पुरन्दर के आदेश को सप्रपञ्च सुना देता है।[2] दमयन्ती को वह मर्त्यलोक के स्वल्प सुखों का पात्र नहीं मानता—'अभूमिरसि मर्त्यलोकस्तोकसुखानाम्।' स्वर्गदुर्लभ दमयन्ती नल को सुलभ है किन्तु परमार्थ के लिए उसे भी वह त्याज्य समझता है। नल के चरित्र में विरोधाभास की तरह आपाततः भासित मनुष्यत्व देवत्व में परिणत हो जाता है। यही त्याग उसे पुण्यश्लोकों की श्रेणी में सबसे आगे बैठा देता है। व्यथा की पराकाष्ठा में भी वह धैर्य नहीं छोड़ता।[3]

दमयन्ती

दमयन्ती के चित्रण में कवि का सर्वाधिक मनोयोग लक्षित होता है। किन्तु चरित्र की अपेक्षा रूप का चित्रण ज्यादा भव्य हुआ है। उसके चरित्र के पवित्र अंश को उपस्थित करने के लिए कई शैलियों का आश्रय लिया गया है। मुख्यतः पथिक, हंस, किन्नरमिथुन और नल उसके चरित्र को प्रस्तुत करते हैं। बाल्यकाल में ही वह अनेक विद्याओं में नैपुण्य प्राप्त कर लेती है। वीणा आदि की प्रवीणता के साथ ही पुण्यकर्मों का नैपुण्य तथा कुलाचार के निर्वाह में उसकी निराकुलता उसकी पवित्रता के प्रतीक हैं।[4] ललित श्लेषों के गुच्छों से उसका चरित्र अधिक अलंकृत हो गया है। कहीं वह सर्वदेवमयी कही गयी है तो कहीं

---

१. प्रस्तुतस्य विरोधेन ग्राम्यः सर्वोऽप्युपक्रमः
वीणायां वाद्यमानायां वेदोद्गारो न रोचते ॥ स० उ० श्लो० ४६

२. तत्कथमिदानीमुच्यते। लोलाक्षि, लोकपालास्त्वामस्मन्मुखेन शृण्वन्तीति प्रस्तुतानुरागभङ्गः, तदादेशोऽपह्नूयते स्वामिन्यन्यथा कथ्यते श्रेयः स्खलनम्, यथावृत्तमेवाख्यायते स्वार्थहानिः, तद्वरमस्तु स्वार्थविघातो न तु विश्वस्तदेवता वञ्चनापातकम्। न० च० स० उ० श्लो० ४६ के आगे।

३. मण्डलीकृतकोदण्डः कामः कामं विचेष्टताम्।
न व्यथिष्ये स्थितः स्थैर्ये धैर्यं धामवतां धनम् ॥ च० उ० श्लो० ३

४. नैपुण्यं पुण्यकर्मारम्भेषु, जाता प्रवीणा वीणासु, निराकुला कुलाचारेषु। न० च० तृ० उ० पृ० १७५

नक्षत्रमयी बन गयी है।[1] संपूर्ण संसार के सौन्दर्य की वह अधिदेवता है। नल के शब्दों में वह अशेष सुखों का निकेतन है। किन्नर युवक ने उसे गीति से उपमिति किया है[2]। गीति और दमयन्ती में बहुत समानतायें हैं। विषमता यह है कि गीति स्वरसाधारण तथा जातिसाधारण है और दमयन्ती अनन्यसाधारण है[3]। मात्र नल में ही उसकी अनुरक्ति है। उत्सुकतावश नलसम्बन्धी चर्चा करती है। स्मरण करती-करती मूर्च्छा की दशा में भी आ जाती है। विप्रयोग में सारी दुर्दशाओं के होने पर भी नल के प्रति उसकी एकतानता प्रतिहत नहीं होती[4]। किन्नर युवक दमयन्ती और गीति में कुछ समानताएँ बताता है, अभी कुछ विषमता भी बता देता है, किन्तु किन्नरी अपनी स्वामिनी दमयन्ती की थोड़ी भी समानता गीति के साथ नहीं सुनना चाहती है। गीति में उसे बहुत दोष दीखते हैं। गीति में तो षड्ज, मध्यम और गान्धार तीन ही ग्राम हैं— दमयन्ती तो सहस्रों ग्रामों की स्वामिनी है। गीति तो कूटतानघना (पच्चीस कूटतानों से घनीभूत) है दमयन्ती तो कूटतानघना (छल के विस्तार से सम्पन्न) नहीं है—

> गीतेर्ग्रामाः किल द्वित्राः सा तु ग्रामसहस्रभाक्।
> कूटतानघना गीतिः कथं तस्याः समा भवेत् ॥ प० उ० श्लो० ५२

गीति में विविध दोषों का प्रदर्शन करती हुई किन्नरी दमयन्ती की तुलना वेद-विद्या से करती है—

> वेदविद्योपमा देवी मनोहरपदक्रमा।
> उद्योतिता पुराणाङ्गमन्त्रब्राह्मणशिक्षया ॥ प० उ० श्लो० ५३

वेदविद्या मनोहर पदपाठ एवं क्रमपाठ से युक्त है। मार्कण्डेय, कूर्म आदि पुराणों, शिक्षा, कल्प आदि अङ्गों, मन्त्रभाग तथा ब्राह्मणभाग की शिक्षा से उद्योतित है। दमयन्ती भी मनोहर पदविन्यास से मण्डित है। पुराने अङ्गोंवाले वृद्ध, मन्त्रप्रधान, ब्राह्मणों की शिक्षा से उद्योतित है। देवविद्या से भी तुलना करने से जब उसे सन्तोष नहीं होता तो वह कहती है कि वेदविद्या दृष्टशतपथा है और दमयन्ती तो एकपथा है। तात्पर्य यह कि वेदविद्या शतपथ ब्राह्मण से युक्त है। दमयन्ती केवल ऐक नलमार्ग की ही अनुयायिनी है। किन्नरमिथुन का विवाद प्रस्तुत कर दमयन्ती का जो चरित्र उपस्थित किया गया है वह पात्र-चित्रणकला का अद्भुत उदाहरण है। नल के समक्ष किन्नर और किन्नरी दमयन्ती के दोनों पक्षों को प्रस्तुत करते हैं। गीति के समान आह्लादक पक्ष को किन्नर प्रस्तुत करता है। किन्नरी उसकी वेद-विद्या सदृश पवित्रता वाले पक्ष को प्रस्तुत करती है। हंस भी लास्य-विलास आदि की निपुणता के साथ कुलाचार-निराकुलता आदि का वर्णन कर उसकी पवित्रता को ही प्रमुखता दे रहा है।

---

१. सुतारा दृष्टिः""सश्रीकः सफलाङ्गभोगः""नक्षत्रमयीव निर्मिता विधिना। न० च० तृ० उ० १७८-१७९

२. प० उ० श्लो० ४८ ३. प० उ० श्लो० ४९ ४. प० उ० श्लो० ५०

प्रियंवदिका

दमयन्ती के सुख-दुःख में समान भाग लेने वाली प्रियंवदिका इस काव्य में बहुत थोड़े क्षणों के लिये आती है, किन्तु अपने प्रत्युत्पन्न-मतित्व की जो छटा दिखा कर जाती है, उसकी सुषमा सहृदयों के हृदयपटल पर स्थायी प्रभाव जमा लेती है। नल इन्द्र की आज्ञा का वर्णन तथा समर्थन कर जब मौन हो जाते हैं तो दमयन्ती व्यथा विद्ध होकर उनका कोई उत्तर नहीं दे पाती। वदनारविन्द की विवर्णता व्यग्र नेत्रों की परिवृत्ति, निःसह निःश्वासों का निर्गमन ही जो कुछ बोलते या व्यक्त करते हैं। स्वयं उसे बोलने की फुर्सत नहीं है। ऐसी परिस्थिति में प्रियंवदिका ही वाक्कौशल से दमयन्ती का प्रतिनिधित्व करती है। नल ने देवताओं के अतिमानव वैभव से उनकी ओर दमयन्ती को आकृष्ट करने की चेष्टा की है। प्रियंवदिका ने उनका बड़ा उपयुक्त उत्तर दिया है। उसकी मान्यता है कि प्राणियों की प्रवृत्ति और निवृत्ति में ईश्वर की ही इच्छा कारण है। विशेषतः स्त्रियों के अनुराग का कोई कारण स्पष्ट करके नहीं बताया जा सकता। इसीलिये तो सूर्य की प्रखर किरणों से स्नेह रखने वाली कमलिनी सुधावर्षी चन्द्रमा की रश्मियों को थोड़ा भी नहीं सह पाती। मालती मालिका सलिलसेक से ही म्लान हो जाती है।[1] प्रेम के बन्धन में गुणविशेष कारण नहीं बनता। कोई भी व्यक्ति किसी के हृदय का हरण कर सकता है। इस कार्य में मात्र ईश्वरेच्छा कारण है। त्रिविक्रम ने प्रियंवदिका के लिये प्रस्तावपण्डिता तथा अनेकविद्योपाख्याने-निपुणा इन दो विशेषणों का प्रयोग किया है। उसके लिये ये उपाधियाँ नितान्त उपयुक्त हैं। अपनी बौद्धिक विशेषता के लिये प्रियंवदिका श्रुतिशील को छोड़ नलचम्पू के किसी भी पात्र से आगे है।

श्रुतिशील

वीरसेन के मुख्यमन्त्री सालङ्कायन का पुत्र श्रुतिशील नल का मित्र तथा मन्त्री है। वह स्वभाव, अवस्था, विद्या, वेष और कान्ति में नल के ही समान है। वंशपरम्परा से उसे मन्त्रिपद प्राप्त है। विप्रकुल में उसका जन्म हुआ है। प्रजा की रक्षा का सारा उत्तरदायित्व उस पर निहित है। नल के हर काम में वह सहायक रहता है—

मित्रं च मन्त्री च सुहृत्प्रियश्च,
विद्यावयःशीलगुणैः समानः।
बभूव भूपस्य स तस्य विप्रो,
विश्वम्भराभारसहः सहायः॥ प्र० उ० श्लो० ३८

त्रिविक्रम ने उसकी नीतिपटुता तथा बुद्धिवैभव को बड़ी उदारता के साथ चित्रित किया है। प्रथम उच्छ्वास में कुछ विस्तार से तथा चतुर्थ उच्छ्वास में

---

१. तीव्रतपनतापप्रियाऽम्भोजिनी न सहते स्तोकमप्यमृतमुचो रुचश्चन्द्रस्य, परिम्लायति मालती मालिका सलिलसेकेन। न० च० स० उ० श्लो० ४७ के पूर्व।

कुछ संक्षेप से उसका परिचय दिया गया है, जिसमें उसके वंश और गुणों के सम्बन्ध में जानकारी होती है। कर्मक्षेत्र में हमें वह पञ्चम उच्छ्वास में मिलता है। कुण्डिनपुर की यात्रा में वह नल के साथ है। बड़ी कुशलता के साथ विन्ध्याटवी की बारीकियों को दिखाता हुआ नल का मनोरञ्जन कर रहा है। इन्द्र आदि लोकपालों का दौत्यकार्य स्वीकार कर नल बहुत दुःखी हो जाता है। इसी परिस्थिति में श्रुतिशील की उक्तियाँ उसके व्यक्तित्व को उपस्थित करती हैं। विषण्ण नल को वह धैर्य बँधाता है। निर्वेद एवं विषाद की ओर से मोड़कर नल को अपनी उक्तिपटुता से आशा के प्रकाश की ओर लाता है। उसकी मान्यता है कि स्त्रियाँ जिसे अपने हृदय में बैठा लेती हैं उसे कभी छोड़ती नहीं हैं। देवता तो ऐसे लोलुप हैं कि किसी भी लोकोत्तर सुन्दरी को देखकर ललच जाते हैं। इसीलिये तो लक्ष्मी के लिये भी वे लड़ पड़े थे, किन्तु लक्ष्मी ने विष्णु को ही चुना जिन्हें वह अपने हृदय में बैठा चुकी थी। दमयन्ती को भी देवताओं को वञ्चित करने की आदत पड़ गयी है—'साऽपि······गौराङ्गी रागिणी त्वयि वञ्चयिष्यति देवान्। वञ्चितो यतः पूर्वमात्ममुखमण्डलश्रिया शशी, तिरस्कृतो मदनः सौभाग्येन। सकृत्प्रवृत्तायाश्च किमवगुण्ठनेन। विधेरिव वामभ्रुवामचिन्त्यानि चरितानि भवन्ति। (प० उ० पृ० २९६)

क्योंकि चन्द्रमा को तो अपनी मुखप्रभा से उसने पहले ही जीत लिया है और अपने सौभाग्य से मदन का तिरस्कार कर चुकी है। आप में सातिशय अनुरक्त वह गौराङ्गी मदन और चन्द्रमा की ही तरह इन लोकपालों को भी वञ्चित कर देगी।

त्रिविक्रम ने श्रुतिशील के वंश और विद्या की जो प्रशंसा प्रारम्भ में की है, सचमुच ही इन उक्तियों से उसकी पुष्टि हो जाती है। राजसेवा का उसे परिपक्व ज्ञान है। नल को अनुचित व्यसनों से वह मोड़ना चाहता है किन्तु उसकी मोड़ में मधुर युक्तियों का अद्भुत पुट है। शबर युवतियों के उन्मद जलविहार को कमनीयकान्ति नल द्वारा सातिशय देखा जाना उसे पसन्द नहीं है, क्योंकि काम धीर पुरुषों को भी अधीर बना देता है—

विकलयति कलाकुशलं हसति शुचिं पण्डितं विडम्बयति।
अधरयति धीरपुरुषं क्षणेन मकरध्वजो देवः॥

न० च० प० उ० श्लो० ६६

नल की धीरता में उसे सन्देह नहीं है किन्तु काम की शक्तिशालिता पर भी कम विश्वास नहीं है। निषिद्ध-सेवन से राजा की मनोवृत्ति को वह प्रासङ्गिक बातों के अनुकूल मार्ग से ही विरत करता है, प्रतिकूलता या किसी दबाव से नहीं—

प्रस्तुतरसानुनयेनैव प्रभूणां मतयो निवर्त्यन्ते निषिद्धनिषेवणात् न प्रतिकूलतया (पृ० ३०८)।

इसीलिये दूसरे रमणीय प्रदेश को दिखाने के बहाने वह वहाँ से उन्हें हटाता है। श्रुतिशील का प्रज्ञा-शरीर यहाँ बड़ी सुन्दरता से चित्रित हुआ है।

वीरसेन

प्रस्तुत काव्य के नायक नल के पिता वीरसेन निषध देश के सम्राट् हैं। उनकी पत्नी का नाम रूपवती है। भगवान् शङ्कर की प्रसन्नता के फलस्वरूप इन्हें नल जैसा यशस्वी पुत्र हुआ है। वीरसेन आश्रमधर्म के पक्के समर्थक हैं। अपने योग्य पुत्र नल का राज्याभिषेक होते ही वे अपनी अन्तिम अवस्था जंगल में बिताने के लिये चल देते हैं। बुढ़ापे में उन्हें मृगों की ही मैत्री अच्छी लगती है। हारों की जगह जटाभार ही पसन्द है। राजकीय बन्धुओं की जगह आरण्यक साधु-विद्वान् ही अच्छे लगते हैं। शयन के लिये तूलिका (तोशक) की जगह कुश की चटाई ही अच्छी लगती है। क्रीडा के लिये वेगवान् वाहों (अश्वों) की जगह झरनों का निर्झर प्रवाह ही अच्छा लगता है। अपने एकलौते पुत्र नल के प्रति उन्हें पर्याप्त आकर्षण है किन्तु पुत्रप्रेम में बँधकर समाज का नियम वे तोड़ना नहीं चाहते। उनके जंगल जाने की बात ही सुनकर नल की आँखें मोहमूर्च्छा से निमीलित हो जाती हैं। उसकी इस दशा को देख-कर भी वीरसेन रुकते नहीं, उसे सूँघकर और आलिङ्गन कर चले जाते हैं—मोहमूर्च्छान्धकारकुञ्चितलोचनमिममाघ्राय...वनाय...प्रतस्थे। (न. च. च. उ. पृ. २३५) प्रजा भी उसमें पूर्णतः अनुरक्त है। उसके वन में जाते समय रात को वियुक्त होती हुई चक्रवाकी की तरह प्रजा करुण-क्रन्दन कर रही है—रजनीवियुज्यमानचलच्चक्रवाकीष्विव कृतकरुणाक्रन्दासु प्रजासु (पृ. २३५)। वीरसेन की आश्रमोन्मुखता ही यहाँ सबसे अधिक और अच्छी तरह चित्रित हुई है। विकार या आकर्षण के हेतुओं के रहने पर भी अपने मार्ग पर पत्थर की तरह अविचल रहने वाले वीरसेन की सैनिकवीरता तो यहाँ उतनी स्पष्ट नहीं है जितनी धर्मवीरता।

सालङ्कायन

वीरसेन का मन्त्री सालङ्कायन बाण के शुकनाश का व्यक्तित्व लेकर यहां उपस्थित हुआ दीखता है। इसी के लड़के का नाम श्रुतिशील है जो नल का मन्त्री हुआ है। वीरसेन के राज्य में उसे राजतुल्य सम्मान मिला है। युवराज नल पर जरा-सा प्रणाम न करने के कारण वह बिगड़ खड़ा होता है। क्रोध के नशे में चूर होकर जो उपदेश उसने दिया है वह संस्कृत साहित्य के उपदेश साहित्य में अद्भुत महत्त्व का है। स्वामिभक्ति भी उसकी श्लाघनीय है। वीरसेन के साथ जंगल जाने में उसे जरा भी हिचक नहीं होती है। अपने इक-लौते बेटे श्रुतिशील को नल की सेवा में सौंपकर बड़ी प्रसन्नता से वह वीरसेन के साथ आरण्यक-जीवन बिताने के लिये चल देता है। उसका प्रज्ञाप्रधान त्यागी एवं सेवक जीवन प्रशंसनीय व्यक्तित्व से अलंकृत है।

रूपवती

नल की माता का नाम रूपवती है। वीरसेन जैसे इस ग्रन्थ में अपनी सैन्यसम्बन्धी वीरता की अपेक्षा धर्मवीरता के मार्ग में ही अधिक सफल

दीखते हैं वैसे रूपवती अपने रूप की अपेक्षा शौर्य की आकाङ्क्षा के क्षेत्र में अधिक विशिष्ट दिखायी पड़ती है। नल जब गर्भ में है तो उसकी यह बड़ी अदम्य इच्छा है कि उसका पुत्र बड़ा ही पराक्रमी हो। इस बात की सिद्धि के लिये वह सुन्दर ऐनक में अपना मुंह न देखकर तलवार की धार में अपना प्रतिबिम्ब देखती है। कानों में नीलकमलों को न पहनकर सिंह के कठोर केसर पहनती है। कस्तूरी का लेप न लगाकर मतवाले हाथी के मदपङ्क से अपनी भुजाओं पर पत्र-रचना करती है। उसकी ये क्रियायें उसके महत्त्वाकांक्षी जीवन को व्यक्त करने के लिये पर्याप्त हैं। इकलौते बेटे को छोड़कर पति के साथ आरण्यक जीवन बिताने के लिये उसका सहर्ष प्रस्थान उसकी पतिपरायणता को पुष्ट कर दे रहा है।

भीम—

भीम विदर्भ देश के सम्राट् तथा दमयन्ती के पिता हैं। चिरकाल तक निःसन्तान रहने के बाद भगवान् शङ्कर की प्रसन्नता से इन्हें दमयन्ती नाम की लड़की हुई है। नलचम्पू में भीम अतिथिवत्सल एवम् उदार सम्राट् के रूप में चित्रित हुए हैं। नल के साथ प्रथम समागम होने पर भी उनके हृदय में अप्रमेय प्रेमसागर उमड़ रहा है। वे प्रेम, प्रियंवदता तथा उदारता के आगार बन गये हैं। नल के लिये आत्मोपहार देते समय उनकी उक्ति दर्शनीय है—

आसेतोः कपिकीर्तनाङ्कशिखरादाराच्च विन्ध्यावधे-
रापूर्वापरसिन्धुसीमविषयस्त्वन्मुद्रया मुद्र्यताम्।
अद्यास्मद्गृहमागतस्य भवतो जाता विधेया वयं,
स्वीकारः क्रियतां किमन्यदपरं प्राणेषु चार्थेषु च॥ स. उ. श्लो ३

नल और नील नामक बन्दरों की कीर्ति को व्यक्त करने वाले, राम के द्वारा बँधवाये गये समुद्रसेतु से लेकर विन्ध्याचल तक और पूर्व समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र तक की भूमि पर आप ही के शासन की मुहर लगे। आज हम सब अपने घर आये हुए आपके आज्ञाकारी हैं। दूसरी चिजों का पृथक्-पृथक् क्या समर्पण करूँ, लीजिये—प्राणों और सम्पत्तियों पर भी आप ही का स्वामित्व रहे। भीम का उदार जीवन ही यहाँ सर्वाधिक दर्शनीय बन पड़ा है।

प्रियङ्गुमञ्जरी—

महाराज भीम की पटरानी प्रियङ्गुमञ्जरी दमयन्ती की माता है। चिरकाल तक अनपत्य रहने के बाद भगवान् शङ्कर की आराधना के फलस्वरूप उसे सन्तान हुई है। स्वप्न में भगवान् शङ्कर का दर्शन करने के बाद उसे विश्वास हो गया है कि उसे पुत्र होगा। जब वह दमनक मुनि के मुँह से कन्या-प्राप्तिसम्बन्धी वरदान सुनती है तो उसके असन्तोष की सीमा टूटने लगती है। वह अपने श्लेष-कौशल से मुनि के सम्बन्ध में अनेक उलाहना बोल-जाती है।

यथासमय अमर्ष की शान्ति के बाद क्षमा माँगती है। अनेक उपहारों को देकर उन्हें सन्तुष्ट करना चाहती है। प्रियङ्गुमञ्जरी का चरित्र पूर्णतः स्वाभाविक दशा में चित्रित हुआ है। चिरकाल से केन्द्रित आशा के अकस्मात् विघटित होने पर क्रोधोद्रेक का होना स्वाभाविक है। उसका क्रोध क्षणस्थायी है। कुछ ही गरम बातों के आदान-प्रदान के बाद मुनि के सम्मुख वह श्रद्धावनत हो जाती है। मुनि के प्रस्थान काल में वर्णित उसकी नम्रता उसके चरित्र को उन्नत कर देती है।

हंस—

मनुष्येतर प्राणियों को दूत बनाने की पद्धति बड़ी पुरानी है। ऋग्वेद में सरमा नाम की एक देवशुनी को दूतकार्य में लगाया गया है। वाल्मीकि ने हनुमान् और कालिदास ने मेघ से दूत का कार्य लिया है। मनुष्येतर प्राणियों में मनुष्योचित भावों का प्रदर्शन करने पर वक्तव्य वस्तु का प्रभाव बढ़ जाता है। नल और दमयन्ती की कथावस्तु के साथ तो हंस का सम्बन्ध बड़ा प्रसिद्ध एवं पुराना है। हंस का चरित्र सब लोगों ने अपने-अपने ढंग से चित्रित किया है।

त्रिविक्रम का हंस अपने स्वरूप की अपेक्षा अपने चरित्र के लिये अधिक प्रसिद्ध है। दमयन्ती के शब्दों में वह निष्कारणवत्सल है, निरपेक्ष पक्षपाती है, स्वभावतः सुजन है, अकृत्रिम स्नेह से सम्पन्न है। उसके प्रेम, सौहार्द एवं मैत्री का कोई सादृश्य नहीं है। सज्जनों का निर्निमित्त बन्धु है। चन्द्र और चन्दन की तरह उसकी शीतलता निर्बाध है।[1] अङ्गीकृत कार्यभार को बड़ी तत्परता से निभाता है। दमयन्ती जब अपने हार को उसके गले में लगा देती है तो हंस बड़ी निष्ठा के साथ कहता है—सुन्दरी, इस मुक्तावली के बहाने मैंने नल के सामने आपके वर्णन का कार्यभार कन्धे पर ले लिया है।[2]

श्लेषविषयक पटुता तो नलचम्पू के हर पात्र की अपनी विशेषता है। हंस एक बार श्लेष के चक्कर में पड़कर अर्थ का अनर्थ भी कर बैठा है। नल के सम्मुख उसने तीसरे उच्छ्वास में दमयन्ती का सप्रसङ्ग वर्णन किया है। उसकी कथाशैली की प्रशंसा करते हुए नल ने उसे सुभाषितामृत-महोदधि कहा है और वनपालिका को यह आदेश दिया है कि जब यह हंस इस सरोवर में कमलों के बीच पूर्ण क्रीड़ा कर ले तो मेरे पास आस्थान मण्डप में इसे ले आना। राजा ने वनपालिका को आदेश देते समय निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग किया था—कृतकमलमालानितम्बकक्रीडम् मम समीपमेष्यसि। च. उ. पृ. १८४ अर्थात्

१. यस्यामासु निरपेक्षः। पक्षपातः·········परोपकाराय।
न० च० प० उ० पृ० २४४

२. सुन्दरि, स्कन्धीकृतो मया मुक्तावलीच्छलेन तस्य पुरो भवद्वर्णनाभारः।
न० च० प० उ० पृ० २४५

कमलमाला के नितम्बक्र (घने मध्यभाग) पर क्रीड़ा कर लेने के बाद इसे लाना। हंस ने इस शब्द का—"कृतकम् (कण्टी) अलम् (पूर्णतः) आलानितम् (बाँध कर) बकक्रीडम् (बगुले की तरह छटपटाते हुए) इस हंस को लाना" अर्थ लगा लिया। हंस को यह समझ में आया कि राजा का आदेश उसे कैदी बनाने के आशय का था। यह सोचकर वह नल के उद्यान से भाग निकला। श्लेष के माध्यम से कुछ हास्याभिव्यञ्जन ही कवि का लक्ष्य है, वस्तुतः हंस के निर्मल शरीर में राजा के विषय में कोई कश्मल नहीं है। वह जितना पवित्र दमयन्ती के लिये है उतना ही पवित्र नल के लिये भी है।

कथा को सुखान्तता एवं पूर्णता व्यङ्ग्य

कथा के जिस अंश पर जाकर नलचम्पू काव्य की समाप्ति हुई है उस दृष्टि से वह दुःखान्त काव्य है। सप्तम उच्छ्वास के अन्त में नल और दमयन्ती दोनों ही विषण्णतम मनोदशा में देखे जाते हैं। देवताओं का सन्देश नल चे मुख से सुनकर दमयन्ती अङ्कुश को न सहन करने वाली अरण्यकरिणी की तरह छटपटा जाती है। वदनारविन्द विवर्ण हो जाता है। आँखें घूर्णित हो जाती हैं। दौत्यकार्य सम्पादन के बाद नल की भी यही दशा होती है। शिरीष कुसुम की माला से भी अधिक मृदुल शय्या पर उसे नींद नहीं आती। आँखें सजल जड़िमा धारण कर लेती हैं। मानस विविध तर्कों में व्यस्त है। रात का एक-एक क्षण एक-एक युग की तरह प्रतीत हो रहा है। नायक और नायिका अभी इस भावविह्वल दशा में पड़े हैं, इसी दशा में काव्य समाप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में विचार यह करना है कि क्या त्रिविक्रम का लक्ष्य दुःखान्त काव्य लिखना था या परिस्थितिवश इसे उन्होंने दुःखान्त स्थिति में छोड़ दिया; या दुःखान्त घटनाओं को प्रस्तुत कर सुखान्तता उन्हें व्यङ्ग्यविधया दिखानी थी।

नलचम्पू के अध्ययन से प्रतीत होता है कि त्रिविक्रमभट्ट नवीन विचारधारा के आदमी थे। इनके पहले विशुद्ध गद्य-पद्यकाव्यों की रचना होती आ रही थी। इन्होंने मिश्रकाव्य—चम्पूकाव्य का एक परिष्कृत एवं नवीन रूप प्रस्तुत किया। इनके पूर्व सुखान्त सुखान्त पद्धति की रचनायें चली आ रहीं थीं, इन्होंने दुःखान्त पद्धति की रचना को जन्म दिया। अपनी प्रवृत्तिगत नवीनता को दिखाने के लिये ही इन्होंने ग्रन्थ की इसी बिन्दु पर लाकर छोड़ दिया।

त्रिविक्रम की दुःखान्तता एक ऐसी उर्वर भूमि है जिस पर अनन्त सुखान्त भाव समूल व्यंग्य होते रहेंगे। उन्होंने कथाशिल्प से ग्रन्थ के अन्त तक एक ऐसा वातावरण प्रस्तुत कर दिया है कि दमयन्ती और नल के परिणय में कोई प्रत्यवाय नहीं दिखायी पड़ता। अन्योऽन्यदर्शन के बाद नल और दमयन्ती का अनुरागद्विज पर्याप्त सुसंस्कृत हो गया है। उसका ब्रह्मतेज लोकपालों की तेजस्विता की चिन्ता नहीं करता।

यद्यपि नैषधीयचरित की तरह यहाँ स्वयंवर का सोज्जृम्भ वर्णन नहीं हुआ है फिर भी स्वयंवर के आयोजन का वर्णन तो हुआ ही है। नल का

शिविर कुण्डिनपुर के समीप लगा है। स्वयंर में आये हुए अन्य राजाओं के कानों में नल की जयध्वनि चाकू के प्रहार की तरह प्रतीत हो रही है। इससे स्पष्ट है कि स्वयंवर में नल की होनेवाली सफलता का पता अन्य राजाओं को भी हो गया था। देवेन्द्र भी अन्य लोकपालों के साथ रास्ते में ही नल से मिले थे। उनका भी प्रस्थान कुण्डिनपुर के ही लिये हुआ था। नल के वहाँ पहुँचते-पहुँचते ये लोग भी वहाँ अवश्य पहुँच गये होंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि नल जिस रात को दमयन्ती के पास देवदूत बनकर गये थे उनके ठीक दूसरे दिन सबेरे स्वयंवर होने वाला था। इसीलिये सातवें उच्छ्वास के अन्तिम श्लोक के अन्तिम चरण में वियोगव्यथित राजा के किसी तरह रात बिताने की ही बात कही गयी है—नृपतिरपि विदग्धः सत्रियामामनैषीत् (स० उ० श्लो० ५०)। यदि सवेरे स्वयंवर न होना होता तो रात बिताने की बात ही न उठती। दमयन्ती के यहाँ से लौटने के बाद का पूरा का पूरा ही समय दुःखमय ढंग से बिताने का होता। लेकिन कवि ने कहा है कि किसी-किसी तरह उसने वह रात बितायी। नल के देवदौत्य से दमयन्ती के कोमल हृदय को चोट लगी थी। रात को उस चोट के शमन के लिये कोई उपाय न था। दिन में तो वह स्वयंवर में उपस्थित होता ही, बस इतने मात्र से दमयन्ती का शोकशूल उन्मूलित हो जाता। इसीलिये केवल रात ही बिताने की बात उठी थी।

दमयन्ती और नल के अनुराग के दृढ हो जाने पर, स्वयंवर के आयोजित हो जाने पर परिणय में भयमात्र लोकपालों का रह गया है; लेकिन अब वह भी नहीं है, क्योंकि यह सर्वविदित है कि नल के प्रति दमयन्ती का सच्चा स्नेह है। उसके दृढतर पातिव्रत्य के समक्ष लोकपालों की महिमा सर्वथा अधारित है। हाँ, नल यदि अनुचित करते—उनकी आज्ञाओं को नहीं मानते या अनुचित ढंग से दौत्यकार्य सम्पन्न करते तो शाप का भय रहता। इसलिये नल ने देवों को प्रसन्न करने के लिये दौत्यकार्य अच्छी तरह किया किन्तु दमयन्ती ने कुछ नहीं किया। दमयन्ती के सत्य एवं तपःपूत शरीर के सामने तक जाने की हिम्मत देवताओं को नहीं थी। दमयन्ती के पक्ष में देवताओं का अब कोई भय नहीं रहा। नल ने भी दौत्यकार्य सम्पन्न कर उनके भय से मुक्ति पा ली है। अतः नल-दमयन्ती-परिणय का मार्ग विघ्नशून्य है। व्यंग्यविधया ग्रन्थ समाप्ति तक पहुँच ही चुका है। परिणय-मार्ग की सफलता ने ग्रन्थ की सुखान्तता को स्पष्ट कर दिया है।

परिणय की बातें सब जगह इस ग्रन्थ में प्रायः व्यंग्य ही हैं। अभिधा से अन्योऽन्यदर्शन की ही आकाङ्क्षाएँ प्रकट की गयी हैं। हंस नल का जब साङ्गोपाङ्ग-वर्णन कर चला जाता है तो दमयन्ती सोचती है—"पिता प्रजापति, मुझ में भी ऐसे पंख क्यों नहीं लगा देते कि पक्षी की तरह उड़कर उसके मुख को देखूँ।"[1]

1. तात तावन्ममाप्येवं न विधत्से प्रजापते।
पक्षी पक्षिवदुड्डीय येन पश्यामि तन्मुखम् ॥ प० उ० श्लोक ३२

दमयन्ती अपने प्रेमपत्र में भी दर्शनाकांक्षा को ही सङ्केतित करती है—

"कुण्डिनपुर की उद्यानभूमि खिले हुए स्थलकमल की कान्ति धारण करने वाले आपके चरणकमलों से कब अलंकृत होगी?"[1]

नल भी उस पत्र को पढ़कर दमयन्ती-दर्शन के ही लिये व्यग्र हो जाता है और सोचता है—"ब्रह्मन्, पक्षियों की तरह मुझ में भी दो पंख बना दो ताकि उड़कर मैं उसे देख सकूँ।"[2]

सुन्दरक भी दर्शन की ही बात पर ज्यादा जोर देता है। यद्यपि उपहारों को नल के सम्मुख प्रस्तुत करते समय उसने यह भी कहा है कि यह चीनांशुक-युगल दमयन्ती के अङ्गों की तरह आपका आलिङ्गन करे; ये कर्णपूर सन्देश कहने वाले दूत की तरह आपके कानों के पार्श्ववर्ती बनें; किन्तु अन्त में उसने दर्शन की बात प्रस्तुत की है। उसने कहा है—"वे आनन्ददायी दिन कब आयेंगे जब कुण्डिनपुर में नागरिकों के नेत्र-भ्रमर आपके मुखकमल पर लोटेंगे?"[3] इन उक्तियों से यह स्पष्ट है कि कवि का लक्ष्य दमयन्ती और नल का एक-दूसरे से साक्षात्कार करा देना है। नायक को फलप्राप्ति हो जाय वहीं ग्रन्थ समाप्त हो जाता है। यदि कवि ने अन्योऽन्य-दर्शन को ही काव्यकथा का फल माना है तो दर्शन के बाद ग्रन्थ का समाप्त हो जाना स्वाभाविक है। कथावस्तु के ग्रथन से स्पष्ट है कि उक्ति, कल्पना, शैली, काव्य प्रकार आदि सब क्षेत्रों में क्रान्ति ला देने वाले इस कवि ने जैसे विशुद्ध गद्यकाव्यों एवं पद्यकाव्यों के बीच चम्पू जैसे नवीन काव्य को जन्म दिया वैसे सुखान्त काव्यों की बहती धारा में दुःखान्त काव्य का एक नया प्रवाह मिला दिया। किन्तु त्रिविक्रम की यह दुःखान्त योजना नारियल के रूक्षतर आवरण के भीतर सरस एवं सुस्वादु फल की तरह नल और दमयन्ती के मङ्गलमय परिणयरूप सुखान्त योजना को अपने भीतर अन्तर्निहित की हुई है। अभिधा के द्वारा कथा की फलप्राप्ति नल-दमयन्ती का अन्योऽन्य-दर्शन है और व्यञ्जना के द्वारा कथा की फलप्राप्ति नल-दमयन्ती का मङ्गलमय परिणय है। जिस अंश पर कथा समाप्त हुई है उसके बाद परिणय में कोई सन्देह नहीं रह जाता है। क्योंकि नल और दमयन्ती एक दूसरे को पाने के लिए उत्सुक ही हैं, पिता ने स्वयंवर आयोजित ही कर दिया है। दौत्यकार्य के सम्पन्न कर देने के कारण तथा दमयन्ती के तपःपूत प्रेम की सात्विकतर ओजस्विता के कारण देवताओं का भय है ही नहीं। ऐसी स्थिति में व्यङ्ग्यविधया परिणय निर्विघ्न

---

१. कदा किल भविष्यन्ति कुण्डिनोद्यानभूमयः।
उत्फुल्लस्थलपद्माभ भवच्चरणभूषिताः॥ ष० उ० श्लो० २१

२. "विधे विधेहि मे पक्षिण इव पक्षियुगलम् उड्डीय येन तां पश्यामि।" ष० उ० पृ० ३४२

३. आनन्ददायिनस्ते कुण्डिननगरे कदा भविष्यन्ति।
त्वन्मुखकमलविलोलन्नागरिकनयनषट्पदा दिवसाः॥ ष० उ० श्लो० ४२

है। अतः दुःखान्तता के आवरण में सुखान्तता का रसान्तर प्रौढ़, अगाध, सारस्वत-प्रवाह अन्तःसलिला सरस्वती की तरह व्यङ्ग्य धरातल में निलीन है, अस्तित्व-हीन नहीं है। इस दृष्टि से यह स्पष्ट है कि कवि ने अपने लिलक्षयिषित स्थान पर जाकर ही विराम लिया और ग्रन्थ को अपूर्ण स्थिति में नहीं छोड़ा है।

काव्यकौशल

त्रिविक्रम की प्रकृति रसानुगुण प्रतीत होती है किन्तु तत्कालीन युग ने उन्हें चमत्कारवादी होने के लिए बाध्य किया है। वाल्मीकि एवं व्यास जैसे प्रसाद-प्रिय कवि उनके आदर्श हैं।[1] किन्तु बाण की शब्दक्रीडा का मोह भी उन्होंने छोड़ा नहीं है। सुबन्धु की "प्रत्यक्षरश्लेषमय प्रबन्ध विन्यास वैदग्ध निधि" की प्रतिज्ञा भी त्रिविक्रम को कुछ मोह में डाले हुई है। काव्य के विविध नमूने उनके सामने थे। दण्डी के पदलालित्य का भी कुछ आकर्षण था। भारवि और माघ द्वारा स्थापित कृत्रिमशैली का प्रचलन हो गया था। काव्य सभ्यजन संस्तुत तब तक नहीं हो सकते थे जब तक उनमें चमत्कारप्रधान प्रौढोक्तियों की प्रचुरता न हो। सहृदया के हृदयपर प्रभाव डालने के लिये वैसे चमत्कारप्रधान काव्य की आवश्यकता थी जैसे दुश्मन के हृदय पर किसी कुशल धनुष्मान के बाण की आवश्यकता होती है। उस काव्य से क्या लाभ जो सहृदयों का शिरःकम्पन न करा दे और उस धनुर्धारी के बाण से क्या लाभ जो दुश्मन के हृदय पर लग कर उसका शिर न घूर्णित कर दे।[2]

अपने पूर्ववर्ती कवियों की समस्त उत्कृष्टताओं को एकत्र अनुस्यूत करने की दृष्टि से त्रिविक्रम ने नलचम्पू की रचना शुरू की थी, किन्तु युग की मांग को उन्होंने प्राथमिकता दी। इसीलिए चमत्कारप्रधान सूक्तियों एवं पाण्डित्यप्रधान पदबन्धों की संख्या रसप्रधान पदों एवं भावप्रधान घटनाओं से अधिक हो गयी। रस उनका उपेक्षणीय तत्त्व नहीं था। इतना था कि वे रस तथा बन्ध दोनों का अभिनन्दन करना चाहते थे। "सुरसं तथा बद्धं" (प्र० उ० १०) काव्य का सर्जन उन्हें अभिप्रेत था। उन्होंने ऐसे काव्य की रचना की है जो रसान्तर प्रौढ़ है। उसके रस का सारस्वत-प्रवाह देवकोटि के विद्वानों को ही उपलब्ध है। अन्तःसलिला सरस्वती की तरह इस काव्य में बन्धों से आच्छादित रस की अगाध धारा विबुधों को ही उपलब्ध है।[3] प्रसाद, कान्ति तथा श्लेष नामक गुण और शब्दश्लेष तथा अर्थश्लेष अलंकार से मण्डित पद कदम्ब का नूतनतम प्रयोग त्रिविक्रम का लक्ष्य है क्योंकि इन गुणों एवम् अलंकारों से मण्डित वाणी

---

१ प्र० उ० श्लो० ११. १२

२. प्र० उ० श्लो० ५

३. अगाधान्तः परिस्पन्दं विबुधानन्दमन्दिरम्।
वन्दे रसान्तरप्रौढं स्रोतः सारस्वतं महत्॥ प्र० उ० ३

नित्य प्रसन्न रहनेवाली, कान्तिशील तथा विविध आश्लेष कलाओं में निपुण रमणी की तरह सुखप्रद होती है।[1] पदन्यास पर त्रिविक्रम की दृष्टि अधिक केन्द्रित है, क्योंकि उनकी अपनी मान्यता है कि पदन्यास में अनिपुण कवि पाठकों में नीरसता उत्पन्न करते हैं और अनावश्यक बहुत-सी तथ्यहीन बातें कहते हैं। इस तरह के कवि स्तनन्धय बच्चों की तरह हैं जो हमेशा लार पीते रहते हैं और जननी-राग (मातृप्रेम) के हेतु बने रहते हैं।[2]

श्लेष में भी सभङ्गश्लेष इन्हें अधिक प्रिय है। पाठकों से इन्होंने निवेदन किया है कि भङ्गश्लेष में वाणी क्लिष्ट हो जाती है किन्तु उससे उद्विग्न नहीं होना चाहिये।[3] त्रिविक्रम ने भरसक कोशिश की है कि भङ्गश्लेप क्लिष्ट न होने पाये। सभङ्गश्लेप को सरल एवं सरस बना कर कहने की अद्भुत क्षमता इन्हें प्राप्त है। सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य में श्लेप का इतना अच्छा प्रयोग करने वाला कोई कवि नहीं है। सुबन्धु भी श्लेप प्रयोग के लिये प्रसिद्ध हैं किन्तु उनके श्लेप वस्तुतः उद्वेजक हैं। त्रिविक्रम ने "नोद्वेगस्तत्र कर्तव्य" की बात सम्भवतः सुबन्धु को ही लेकर कही है। त्रिविक्रम का लक्ष्य केवल श्लिष्ट पदप्रयोग नहीं है। पद-पद पर अर्थगुरुता, मृदुता एवं मसृणता से मण्डित होकर उनकी श्लिष्ट सूक्तियाँ प्रस्फुरित होती हैं।[4] श्लिष्ट पदों के अश्रान्त-प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है कि त्रिविक्रम के पास स्वाभाविक ढंग से काव्यार्थ संघटना के अनुकूल शब्द और अर्थ अहमहमिका से उपस्थित हुए हैं। दो-दो, चार-चार पङ्क्तियों पर पदप्रयोग के बदलते हुए नमूने प्रेक्षाचित्र के द्रुतविलम्बित गति से बदलते हुए रील की तरह पाठकों का साश्चर्य अनुरञ्जन करते हैं। आलङ्कारिकों ने श्लेप के आठ भेद किये हैं। किन्तु अलङ्कार वैविध्य तो चमत्कार वैविध्य से हुआ करता है। चमत्कार ही अलङ्कार का बीज है। ऐसी स्थिति में श्लिष्ट पदों के संघटनामूलक वैविध्य के आधार पर नलचम्पू में अनेक नये चमत्कार के बीज देखे जा सकते हैं। सबसे आश्चर्य तो यह लगता है कि श्लिष्ट शब्दों के प्रयोग-प्रकार को बड़ी तेजी के साथ यहाँ बदला गया है। एक ही तरह की शब्दार्थ-योजना से

---

१. प्रसन्नाः कान्तिहारिण्यो नानाश्लेषविचक्षणाः।
भवन्ति कस्यचित् पुण्यैर्मुखे वाचो गृहे स्त्रियः॥ प्र० उ० ३

२. अप्रगल्भाः पदन्यासे जननी रागहेतवः।
सन्त्येके बहुलालापाः कवयो बालका इव॥ प्र० उ० श्लो० ६

३. वाचः काठिन्यमायान्ति भङ्गश्लेषे विशेषतः।
नोद्वेगस्तत्र कर्तव्यो यस्मान्नैको रसः कवेः॥ प्र० उ० श्लो० १६

४. वीरसेन नल को समझा रहे हैं—तात युक्तमुक्तोऽसि सालङ्कायनेन। कस्यान्यस्य निर्यान्ति वदनारविन्दादेवं विधाः पदे पदेऽर्थसमर्थाः मृद्व्योऽसृष्टाः श्लिष्टाश्च वाचः॥ च० उ० पृ० २२६

पाठक कहीं ऊब न जाय इसलिये प्रयोग-प्रकार बड़ी शीघ्रता से बदला गया है। इस प्रसङ्ग में कुछ श्लिष्ट वाक्यों का दर्शन अपेक्षित होगा—

(१) बहुलक्षणा सुधावन्तो दृश्यन्तेऽन्तः प्रचुराः प्रासादाः वहिश्च वारणेन्द्राः॥ प्र० उ० पृ० ३०॥

निषधानगरी के भीतरी भाग में बहुल+क्षण (पर्याप्त भूमिवाले) सुधावन्त (चूने से पुते हुए), पर्याप्त भवन हैं और बाहर की ओर बहु+लक्षण (विविध सुन्दर लक्षणों वाले) सुधावन्त (दौड़ते हुए) वारणेन्द्र (हाथी) हैं। सुधावन्त और बहुलक्षण इन समान विशेषणों से भीतर के प्रासाद तथा बाहर के वारणेन्द्र वर्णित हो गये हैं।

छोटे-छोटे श्लोकों में श्लिष्ट पदों की चमत्कारपूर्ण योजना करने में त्रिविक्रम को पर्याप्त सफलता मिली है—

(२) भूमयो बहिरन्तश्च नानारामोपशोभिताः।
कुर्वन्ति सर्वदा यत्र विचित्र वयसां मुदम्॥ प्र० उ० श्लोक ३१

निषधानगरी का बाहरी भाग नाना+आराम+उपशोभित (विविध उद्यानों से सुशोभित) है, अतः वह विचित्र वयस् (विविध पक्षियों) के लिये आनन्दकर है। उस नगरी का भीतरी भाग नाना+रामा+उपशोभित (विविध रमणियों से शोभित) है, अतः विचित्र वयस् (युवावस्था के लोगों के लिये आनन्दकर है। यहाँ समान विशेषणों के द्वारा नगरी के बाह्य तथा आन्तर दोनों भागों का वर्णन किया गया है।

(३) यस्याः पद्मानुकारिणी कान्तिर्लोचने च।
रम्भा प्रतिस्पर्धिनी रूपसम्पत्ति रूरुमण्डले च। द्वि० उ० पृ० १२८

प्रियङ्गुमञ्जरी का वर्णन है। उसकी कान्ति पद्मा (लक्ष्मी) की तरह है और नेत्र पद्म की तरह हैं। रूपसम्पत्ति रम्भा (नाम की दिव्य अप्सरा) की तरह है और ऊरुमण्डल (जाङ्घे) रम्भा (केले) की तरह हैं। लिङ्गश्लेष एवं वचनश्लेष के ऐसे अक्लिष्ट उदाहरणों की भरमार है नलचम्पू में। पद्मानुकारिणि स्त्रीलिङ्ग प्रथमा एकवचन है और नपुंसक प्रथमा का द्विवचन है। कान्ति का विशेषण पद्मानुकारिणी एक वचन है और लोचने (न. प्र. द्वि.) का विशेषण पद्मानुकारिणी न. प्र. द्विवचन है। रूपसम्पत्तिः (स्त्री. प्र. ए.) का विशेषण रम्भाप्रतिस्पर्धिनी (स्त्री० प्र० ए०) है और ऊरुमण्डले (न० प्र० द्वि०) का विशेषण रम्भाप्रतिस्पर्धिनी न० प्र० द्विवचन है।

(४) तृतीया और प्रथमा के एकवचन श्लेष का एक सुन्दर उदाहरण— "यस्याः सुमधुरया वाचा सदृशी शोभते कण्ठे कुसुममालिका।" (पृ० १२८) प्रियङ्गुमञ्जरी के गले में सुमधु+रया (सुन्दर मकरन्द के प्रसार से सम्पन्न) कुसुममालिका उसकी सुमधुर वाणी की तरह अच्छी लगती है। वाणी और कुसुममालिका का आधार कण्ठ है। आन्तर और बाह्य दोनों सौन्दर्यों के चित्रण के लिये समान विशेषणों का प्रयोग किया गया है। कुसुममालिका शब्द का विशे-

षण सुमधुरया स्त्रीलिङ्ग प्रथमा का एकवचन है और वाचा (स्त्री० तृ० एकवचन) का विशेषण सुमधुरया सुमधुरा शब्द की तृतीया का एकवचन है।

(५) साधारण धर्म को प्रस्तुत करने में श्लेष का अद्भुत चमत्कार—

कदाचिदनुत्पन्नविषमरणो गरुड इव अहितापकारी हरिवाहन विलासमकरोत्।

गरुड जैसे अनुत्पन्न + विष + मरण (विष के कारण मृत्यु को प्राप्त करने वाले नहीं) हैं, अहि + ताप + कारी (सर्पों को दुःख देने वाले) हैं और हरि + वाहन + विलास (विष्णु के वाहक का कार्य) सम्पन्न करते हैं वैसे वह नल भी—अनुत्पन्न + विषम + रण (विषम लड़ाई की स्थिति उत्पन्न होने नहीं दिया) था, अहित + अपकारी (दूसरों का अमङ्गल चाहने वालों का अपकार करने वाला) था और हरि + वाहन + विलास (घोड़े की सवारी पर भ्रमण) करता था :

(६) एक छोटे से पद्य में श्लेष-चमत्कार देखिये—

"पर्वत भेदि पवित्रं जैत्रं नरकस्य बहुमतङ्गहनम्।
हरिमिव हरिमिव हरिमिव वहति पयः पश्यत पयोष्णी॥ प० उ० २९

पयोष्णी नदी के जल का वर्णन है। पर्वत को तोड़कर बहनेवाला, पवित्र, नरक से बचानेवाला, पूज्य और गम्भीर पयोष्णी का प्रवाह पर्वतों का पंख काटने वाले एवं वज्र धारण करनेवाले इन्द्र की तरह है, नरकासुर को जीतनेवाले विष्णु की तरह है और बहुत से मतङ्गों (हाथियों) को मारनेवाले सिंह की तरह है। हरि शब्द इन्द्र, विष्णु तथा सिंह का वाचक है।

(७) पयोष्णीतट को हरिहरविरञ्चिसदृश कहा है—

चक्रधरं विषमाक्षं कृतमदकलराजहंससंचारम्।
हरिहरविरञ्चिसदृशं भजतपयोष्णीतटं मुनयः॥

प० उ० श्लो० ३२

पयोष्णीतट विष्णु की तरह चक्रधर (चक्रवाक मिथुनों को धारण करने वाला) है, शिव की तरह विषमाक्ष (विभीतक वृक्षों से संयुक्त) है और सुन्दर राजहंस को वाहन बनाने वाले ब्रह्मा की तरह राजहंसों की गति से मण्डित है। मुनि लोग हरि-हरविरञ्चिसदृश पयोष्णीतट पर अपना नियम-साधन करें।

त्रिविक्रम परिसंख्या और विरोध के तो सम्राट् हैं। इनका भी एक-एक अंश देखना अप्रासङ्गिक न होगा—

(८) अव्ययभावोऽव्याकरणोपसर्गेषु न धनिनां धनेषु दानविच्छित्तिरुन्मादकरिकपोलमण्डलेषु, न त्यागिगृहेषु, भोगभङ्गो भुजङ्गेषु न विलासिलोकेषु, स्नेहक्षयो विरमत्प्रदीपपात्रेषु, न प्रतिपन्नजनहृदयेषु। प्र० उ० पृ० ३१-३२

निषधानगरी में व्याकरण के उपसर्गों में ही अव्ययभाव है, धनियों के धन में व्यय का अभाव नहीं है। उन्मत्त हाथियों के कपोलमण्डल पर दान-

विच्छित्ति (मदजल की शोभा) है, त्यागियों के घरों में दानविच्छेद (दान का विच्छेद नहीं है। भुजङ्गों में भोगभङ्ग (फणा की वक्रता) है। विलासी लोगों के यहाँ भोगभङ्ग (भोग्यसामग्री का अभाव) नहीं है। बुझते हुए दीपपात्र में स्नेहक्षय (तेल की कमी) है किसी प्रतिपन्न आदमी के हृदय में स्नेहक्षय (प्रेम का अभाव) नहीं है।

(९) ब्रह्मण्योऽपि ब्रह्मवित्तापहारी स्त्रीयुक्तोपि प्रायशोविप्रयुक्तः।
सद्वेषोऽपि द्वेषनिर्मुक्तचेताः को वा तादृग् दृश्यते श्रूयते वा ॥ प्र०उ०३९

यहाँ श्रुतिशील की अपूर्वता वर्णित है। वह ब्राह्मणों का हितचिन्तक होता हुआ भी ब्रह्मवित्तापहारी (ब्राह्मणों की सम्पत्ति का अपहरण करने वाला) था। स्त्रीयुक्त होता हुआ भी विप्रयुक्त-वियुक्त रहता था। सद्वेष होता हुआ भी द्वेष से मुक्त था।

वस्तुतः वह ब्रह्मण्य (ब्राह्मणों का हितचिन्तक था), ब्रह्मवित् (वेदविद्या का जानकार) था और तापहारी (लोगों की व्यथा का हरण करनेवाला) था। सद्वेष (सुन्दर वेष से युक्त) था और द्वेष से मुक्त था। स्त्रीयुक्त था और विप्रयुक्त (ब्राह्मणों से घिरा) था।

श्लेषमयी भाषा पर कवि का ऐसा अधिकार है कि वह वाग्व्यवहार की समस्त विधियों में श्लेष का बड़ी सफलतापूर्वक प्रयोग कर सकता है।

दौत्यकार्य स्वीकार कर लेने के बाद नल इस बात के लिए चिन्तित है कि लोकपालों के वर रूप में मिलते रहने पर दमयन्ती के माता-पिता तथा दमयन्ती स्वयं भी मुझे न चुनेगी। इस प्रसङ्ग में श्रुतिशील की एक श्लिष्ट उक्ति देखें—राजन् रामाजनः पद्म इव वारितः सुतरां प्रवर्तते। नालमस्य दीर्घमनुरक्तस्य जायतेऽपरागो नाप्यलीकाभिनिवेशोऽस्य हीयते। प० उ० पृ० ३१०

राजन्, कमल जैसे वारितः (पानी से) अनायास उत्पन्न होता है वैसे स्त्रीजन-वारित (निषेध) करने पर भी अपने प्रेममार्ग में प्रवृत्त होते हैं। अधिक अनुराग हो जाने पर अपराग (वैराग्य) होना सम्भव नहीं रहता। इनकी मिथ्या प्रवृत्ति भी कम नहीं होती, सच्ची प्रवृत्ति को क्या कहना है ?

कमलनाल जब बड़ा हो जाता है तो मकरन्द-सम्पन्न हो जाता है। मकरन्द हो जाने पर अलिक (भ्रमर एवं जल) का सम्पर्क कम नहीं रहता है। यहाँ यों तो पूरा अनुच्छेद ही श्लिष्ट है किन्तु वारितः में क्त और तसिल का श्लेष अद्भुत विच्छित्ति-सम्पन्न प्रतीत होता है।

श्लेष की मञ्जुल विधियों के प्रयोग के अतिरिक्त अर्थप्रधान योजना में भी त्रिविक्रम को पर्याप्त सफलता मिली है। उन्होंने अपने काव्य के मुख्य रस विप्रलम्भ श्रृङ्गार को सुसज्जित करने के लिए उद्दीपन सामग्री का यथास्थान रोचकतम प्रयोग किया है। प्रकृति एवं कथोपकथन के प्रस्तुतीकरण के अवसर पर प्रायः सर्वत्र उद्दीपन सामग्री ही दिखायी पड़ती है। विप्रलम्भ श्रृङ्गार के अतिरिक्त वीर, रौद्र, करुण, भयानक और हास्य की भी कहीं-कहीं अच्छी योजना हुई है।

सूकर और नल का संग्राम वीररस का अच्छा उदाहरण है। सूकर के अञ्जनपर्वतसदृश दुर्दान्त शरीर ने भयानक की स्थिति को भी अच्छी तरह प्रस्तुत किया है।[1] नासिका को टेढ़ाकर बादल की तरह गरजता हुआ, कानों को ऊपर उठाए हुए, पूँछ के बालों को निरन्तर पीठ पर पटकता हुआ, दावानल से दग्ध पर्वत की आकृति धारण करनेवाला सूकर रौद्र की मूर्ति बन गया है।[2] चतुर्थ उच्छ्वास के अन्त में सपत्नीक वीरसेन का प्रस्थान करुण का अच्छा चित्र प्रस्तुत करता है।

नल ने जब अपनी वनपालिका से यह कहा था कि जब हंस कमल-सरोवर में विहार कर लेगा तो उसे वह उनके पास लायेगी। हंस ने राजा की शब्दावली का अर्थ कुछ दूसरा ही लगा लिया। उसने समझा—इस कपटी हंस को पूर्णतः बाँधकर मेरे पास लाना"[3] राजा के शुद्ध मनोभाव का उलटा अर्थ लगाकर हंस का अचानक उड़ भागना हास्य की व्यञ्जना करना है।

त्रिविक्रम को वस्तुचित्रण में पर्याप्त सफलता मिली है। किसी भी वस्तु का वे ऐसा चित्र खींचते हैं कि पाठक उसको प्रेक्षाचित्र की तरह देखने लगता है। प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् रस्किन् के मतानुसार कला की उत्कृष्टता किसी चीज को अच्छी तरह से देख कर हूबहू वर्णित कर देने में है। रस्किन् से ही मिलती-जुलती बात आचार्य कुन्तक में भी देखी जाती है। उनकी मान्यता है कि स्वभावोक्ति के वर्णन में सबसे बड़ी सफलता तब है जब वर्ण्यविषय का चित्र ठीक इस तरह वर्णित किया जाय कि पाठक के दिल पर हूबहू उतर जाय।[4] त्रिविक्रम ने इस तरह के अनेक चित्र प्रस्तुत किये हैं। एक पथिक का वर्णन देखिये—

वल्लीवल्कपिनद्धधूसरशिराः स्कन्धे दधद्दण्डकं
ग्रीवालम्बितमृन्मणिः परिकुथत् कौपीनवासाः कृशः।
एकः कोऽपि पटच्चरं चरणयोः बद्ध्वाऽध्वगः श्रान्तवान्
आयातः क्रमुकत्वचा त्रिरचितां भिक्षापुटीमुद्वहन्॥
(प्र० उ० श्लोक० ५२)

एक गरीब राही का कितना अच्छा चित्र है। उसने अपने पके बालों को लता के वल्कल से बाँध लिया है। कन्धे पर दण्डा लिया है। गले में मिट्टी की एक गोली लटकाया है। चितमबरे रंग की एक लंगोटी पहना है। पैरों में पुराना फटा हुआ चिथड़ा पहना हुआ है और क्रमुकवृक्ष की छाल से बना हुआ एक भिक्षापात्र लिया हुआ है।

---

१. प्र० उ० ४४–४५ श्लो०

२. क्रुध्यन्तमाघूर्णितघोणमनवरतघनघोरघर्घररवम्।
उत्क्षिप्तपुच्छगुच्छम्......शूकरम् दवदहनदग्धाद्रिमद्राक्षीत्॥
प्र० उ० पृ० ६८

३. कृतकमलमाला......मम समीपमेष्यसि। च० उ० पृ० १८४

४. वक्रोक्तिजीवित–तृतीय उन्मेष, पृ० १३५–६

प्रथम उच्छ्वास में सूकरवर्णन, षष्ठ उच्छ्वास में मुनिवर्णन तथा ग्राम्यस्त्रियों का चित्र बड़ा ही सुन्दर उतरा है[1]

स्वाभाविक एवं सादे चित्रों के अतिरिक्त रंगीन चित्रों की भी यहाँ कमी नहीं है। कल्पना की तूली से ऐसे रंग चढ़ाये गये हैं जिनकी आह्लादता ही उनकी मौलिकता के प्रमाण हैं। त्रिविक्रम ने लोक, शास्त्र, कविसमयोक्तियों तथा परम्परागत अप्रस्तुतों में से ही अधिकांश को लिया है किन्तु प्रतिभा का योग देकर उन्हें सर्वथा नया कर दिया है। इस प्रसङ्ग में एक चित्र देखें—

सूर्यास्त का समय है। पूर्व दिशा में अंधेरा छा रहा है। उस अंधेरे का उपपादन कवि ने इस प्रकार किया—पूर्वा (दिग्वधू) सोचती है—"मैं इसकी पहली पत्नी हूँ। मेरे साथ रहने से इसका कई बार उदय हुआ है, फिर भी यह रागी (लाल वर्ण का या अनुरक्त) उस जघन्या के पास चला गया जहाँ सदा इसका पतन हुआ करता है।" मानो इस ईर्ष्या, रोष एवं विषाद से पूर्व दिशा काली पड़ती जा रही है।[2]

सूर्य अस्त हो गये मानो इस दुःख के मारे कमलिनियाँ बन्द हो गयीं। प्रिय (सूर्य) के अस्त होने के कारण दिग्वधुओं का मुख काला पड़ गया उनके निःश्वासानल की धूमपङ्क्ति की तरह अन्धकार-श्रेणी फैल गयी।

समुद्र में डूबा हुआ सूर्य का अर्ध-बिम्ब ऐसा लगता था मानो कालरूप कापालिक (औघड़) ने रुधिर से भरा हुआ कपाल औंध दिया था; अथवा सन्ध्यावधू की कुङ्कुम से भरी शुक्ति उलट गयी थी।[3]

इसी से मिलती-जुलती एक कल्पना नैषधीयचरित में आयी है—सूर्य के अस्त होने पर आकाश से चारों ओर अन्धकार की धारा गिर रही है, जैसे सूर्य-रूप दीपक पर आकाशरूप कजलौटे को काजल बनाने के लिये औंधा गया है, पर काजल इतना घना हो गया है कि उसके भार से वह नीचे गिर पड़ा है और सूर्यरूप दीपक को बुझा दिया है। उस गिरे हुए कजलौटे का काजल ही चारों ओर काला दिखायी पड़ता है।[4] समानता यहाँ इसी अंश में है कि दोनों ही कवियों ने ऊपर से किसी पदार्थ को औंधा कर प्रकाश एवं अन्धकार के फैलने की कल्पनायें की हैं।

---

१. प्र० उ० ४४, ४५, ष० उ० २८, ष० उ० ७०

२. प० उ० श्लो० ७५

३. प० उ० श्लो० ७५, प० उ० श्लो० ७६

४. ऊर्ध्वार्पितन्युब्जकटाहकल्पे यद्व्योम्नि दीपेन दिनाधिपेन।
न्यधायितद्धूममिलद्गुरुत्वं भूमौ तमः कज्जलमस्खलत् किम्॥
नैषधीयचरितम् (२२–३१)

सन्ध्या के समय उगते हुए तारे आकाशगङ्गा के तट पर रहने वाले तपस्वियों द्वारा दी गयी अर्घाञ्जलि के बुद्-बुद् की तरह प्रतीत होते हैं।[1] बाणभट्ट ने भी इन तारों को पानी से ही उगाया है। उनकी धारणा है—सन्ध्या के समय सूर्य पश्चिम समुद्र में जोर से गिरे हैं। इसके कारण जो छींटे उड़े हैं वे ही तारों के रूप में दीखते हैं। श्रीहर्ष ने इन तारों को अनार का बीज माना है। मानो अनार खाकर किसी ने बीजों को फेंक दिया है जो तारों के रूप में प्रतीत होते हैं।[2] त्रिविक्रम की अर्घाञ्जलि का बुद्-बुद् ज्यादा पवित्र एवं हृदयग्राही प्रतीत होता है। सन्ध्या के समय फैलते हुए अन्धकार की पतली रेखाओं के लिये भी एक बड़ी पवित्र कल्पना कवि ने की है—तम की तनुतर वल्लरी जलते हुए पर्याप्त धूम की धूममञ्जरी की तरह प्रतीत होती है।[3] श्रीहर्ष ने इन्हें कजलौटे का-कालिख कहा है।[4] त्रिविक्रम चमत्कार के सम्पादन के लिए पवित्र एवं मनोहर अप्रस्तुतों को ही चुनते हैं। उनकी कल्पनाओं में मर्यादा और औचित्य की पूर्णतः सुरक्षा देखी जाती है।

प्रातःकालीन आकाश की निर्मलता भी अर्घाञ्जलि से ही सम्पन्न की जाती है। ब्राह्मणों ने जो प्रातःकाल में सन्ध्या करते समय जलाञ्जलि दी है उसी से मानो अन्धकार धुल गया है और आकाश कुछ निर्मल हो गया है। प्रातःकालीन प्रभाप्रसार माली की तरह मालूम पड़ता है क्योंकि उसने गगन-पुष्पवाटिका में तारक-सुमनों को चुनकर इकट्ठा करना शुरू कर दिया है।[5] तारों को फल से तुलना तो बहुत देखी जाती है किन्तु प्रभातकालीन प्रभोद्भेद की तुलना माली से जो की गयी वह नितान्त श्लाघ्य है। चन्द्रास्त और सूर्यास्त की एक-एक और कल्पनायें देखें—प्रातःकाल के समय जब कुछ धुँधला प्रकाश है रात्रि की आकृति तरुण कपोत की गर्दन की रोमराजि की तरह है। ऐसा प्रतीत होता है रात्रि (नायिका) चन्द्ररूप चांदी का घड़ा लेकर पश्चिम समुद्र में जल भरने जा रही है।[6]

सन्ध्या के समय सूर्य अस्ताचल में प्रवेश कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है, आकाश की गलियों का पथिक सूर्य दिनभर की यात्रा तय कर थक गया है; अतः पश्चिम समुद्र में अपने पादपल्लव को धोकर अस्ताचल की गुफाओं में विश्राम की कामना से घुस रहा है।[7]

---

१. न० च० प० उ० पृ० ३१४
२. नैषधीयचरितम् सर्ग २२ श्लो० १४–१५
३. प० उ० पृ० ३१३
४. नैषधीयचरितम् सर्ग २२ श्लो० ३१
५. ष० उ० पृ० ३१७
६. तृ० उ० पृ० १३७
७. ष० उ० पृ० ३६१

त्रिविक्रम की आर्थीकीडा की निपुणता पर प्रसन्न होकर विद्वानों ने उन्हें यमुना-त्रिविक्रम की उपाधि से विभूषित किया है, जैसे कालीदास को दीप शिखा-कालिदास, भारवि को आतपत्र-भारवि; श्रीहर्ष को गोग्रास-हर्ष तथा माघ को घण्टापथ-माघ की उपाधि दी गयी है। त्रिविक्रम का वह प्रसिद्ध पद्य यों है—

उदयगिरिगतायां प्राक्प्रभापाण्डुताया-
मनुसरति निशीथे श्रृङ्गमस्ताचलस्य।
जयति किमपि तेजः साम्प्रतं व्योम मध्ये
सलिलमिव विभिन्नं जाह्नवं यामुनं च ॥ ५० ३७ १

प्रातःकाल का समय होने वाला है। महाराज नल को जगाने के लिये वैतालिक मङ्गलपाठ कर रहे हैं। एक वैतालिक अपने गीत में प्रातःकाल का वर्णन कर रहा है। 'रात बीत चली है; प्रातःकाल होने वाला है। उदयाचल की चोटी पर सूर्य की कान्ति छिटक रही है। अस्ताचल की चोटी पर रात्रि का अन्धकार उतर चला है। गगन में एक ओर प्रकाश है और दूसरी ओर अन्धकार तथा आकाश के मध्य प्रकाश तथा अन्धकार के मध्य एक घुली-मिली रेखा दिखायी पड़ती है। प्रकाश तथा अन्धकार के इस सम्मिश्रण को देखकर ऐसा प्रतीत होता है; जैसे हल्के हल्के काले रङ्ग की यमुना का जल निर्मल श्वेत कान्ति वाली गङ्गा के जल से मिल रहा है।

आकाश में गङ्गा की सत्ता तो पहले से प्रसिद्ध है, वहाँ यमुना के संगम का श्रेय त्रिविक्रम की कल्पना को है। इसीलिये आचार्य चण्डपाल ने कवि त्रिविक्रम को विष्णु-त्रिविक्रम की अपेक्षा अपूर्व माना है, क्योंकि कवित्रिविक्रम के निर्मल पदों ने आकाश में भी यमुना का निर्माण कर दिया है। पुराने विष्णु-त्रिविक्रम के पद (चरण) ने तो विष्णुपदी (गङ्गा) का ही निर्माण किया था कवि त्रिविक्रम के पद (शब्द) ने यमुना का भी निर्माण कर दिया।[1]

भावात्मक स्थलों के सजाने में भी त्रिविक्रम को अपूर्व सफलता मिली है। नल देवदूत बनकर दमयन्ती के कन्यान्तःपुर में प्रवेश करता है। दमयन्ती पक्षियों के लिये भी दुष्प्रवेश उस महल में नल का अप्रत्याशित दर्शन कर अद्भुत रसावेश में स्तब्ध हो जाती है। उसे मौन देखकर नल अपनी पूर्व परिचिता विहङ्गवागुरिका नाम की किन्नरी से पूछता है—"क्या तुम्हारी सखी का यही आचार है कि किसी अतिथि का बातों से भी सत्कार नहीं करतीं?" इस पर विहङ्गवागुरिका ने उत्तर दिया है—

---

१. प्राच्याद्विष्णुपदी हेतोरपूर्वोऽयं त्रिविक्रमः।
निर्ममे विमलं व्योम्नि तत् पदं यमुनामपि ॥
ष० उ० श्लो० १ की संस्कृत टीका

किञ्चित् कम्पितपाणिकङ्कणरवैः पृष्टं ननु स्वागतम्
व्रीडानम्रमुखाब्जया चरणयोर्न्यस्ते च नेत्रोत्पले।
द्वारस्थस्तनयुग्ममङ्गलघटे दत्तः प्रवेशो यदि
स्वामिन् किन्न तवातिथेः समुचितं सख्याऽनयाऽनुष्ठितम् ॥
स० उ० श्लो० ३७

"स्वामिन्, कंकणध्वनि से ही मेरी सखी ने आपसे स्वागत-प्रश्न किया है। लज्जा के कारण मुखकमल को नीचे करती हुई आपके चरणों में नेत्रोत्पल रखे हैं। उस हृदय में आपको स्थान दिया है जिसके द्वारदेश पर मङ्गल कलश के रूप में दो स्तन विराजमान हैं। आप जैसे अतिथि के लिये उचित सत्कार क्या नहीं किया है ?" नल जैसे अतिथि के स्वागत की सारी सामग्री दमयन्ती के शरीर में उपपन्न कर दी गयी है।

उपर्युक्त शब्दार्थ-शिल्प के कतिपय उदाहरणों से स्पष्ट है कि त्रिविक्रम में काव्यनिर्माण की शक्ति या प्रतिभा के अतिरिक्त लोक-शास्त्र की नदीष्णता की भी कमी नहीं है। सुबन्धु एवं बाण की श्लिष्ट-रचना की पण्डित-मण्डली की प्रशस्ति यद्यपि उन्हें सभङ्गश्लेष की ओर खींच लेती है, किन्तु उनकी प्रतिभा ने श्लेष की प्रस्तरशिला को सरस ही नहीं किया—मसृण भी बना दिया। उन्हें सब जगह अद्भुत दिखाना था। इसीलिये उनकी काव्य-शैली की दमयन्ती पद पद पर आश्चर्य प्रस्तुत करती है। पता नहीं किस रस का एकत्र विनिवेश करना चाहती है। वैद्यों के यहाँ छ रस हैं और भरतशास्त्र में आठ या नव रस हैं किन्तु त्रिविक्रम की दमयन्ती ने सब को एकरस कर दिया है।[1] कहीं-कहीं-वर्णन-बाहुल्य के कारण कथा की रुकती हुई गति सहृदयों को खटक सकती है, किन्तु कवि के दृष्टिकोण को सामने रख लेने पर वह नहीं खटकेगी। वह तो शब्दार्थ-चित्र-विनिवेश में बद्धपरिकर होकर आश्चर्य की माला गूथने में लगा है, कथा-वृत्तान्त की बात उसे भरपेट वर्णन कर लेने के बाद याद आती है। प्रथम उच्छ्वास के पथिक को देखिये—

वह दमयन्ती का वर्णन कर रहा है किन्तु उसका परिचय नहीं जानता; उसकी आकृति से परिचित है, नाम से नहीं, उसके मनोहर आकार, श्लाघ्यतम कान्ति तथा विश्व-विस्मयकारी सौभाग्य-भाग्योदय को देखकर ऐसे विस्मय में पड़ जाता है कि उसका विवेक ही नष्ट हो जाता है। इसलिये उसके पास यह अवसर नहीं है कि वह पूछे कि वह किसकी लड़की है, कहाँ से आयी है, कहाँ जायगी। आश्चर्य के मारे मूक की तरह, मूर्च्छित की तरह, विषघूर्णित की तरह चिरकाल तक न्यग्रोध-वृक्ष के नीचे बैठ जाता है।[2] त्रिविक्रम की शैली की भी यही

---

१. षड्रसाः किल वैद्येषु भरतेऽष्टौ नवाऽपि वा।
तया तु पद्मपत्राक्ष्या सर्वमेकरसीकृतम् ॥ स० उ० श्लो० १४

२. न च मयाऽपि विस्मयविस्मृतविवेकेन केयं कस्येयं कुत्र कुतो वा प्रस्थितेति प्रश्नाग्रहः कृतः। केवलमपूर्वरूपोत्पन्नाकस्मिककौतुकातिरेकस्तिमित-समस्तान्यव्यापारेण⋯⋯मूकेनेव मूर्च्छितेनेव⋯⋯सुचिरमासीतमासीत्। पृ० ७८

स्थिति है। जब वह वर्णन की माधुरी में फँसता है तो श्लेष की कादम्बरी पीकर चिरकाल तक अपनी अध्वनीनता भूला रहता है। जिन लोगों को उस श्लेष-कादम्बरी के मादक मधु का रस मिल जायेगा उन्हें कथा-गति के शैथिल्य का अनुभव नहीं होगा। वर्णन की प्रत्येक स्थिति में कवि को श्लेष प्राथमिकता देनी है किन्तु वर्ण्य-पदार्थ की सरसता को कहीं भी अप्राथमिक नहीं होने देना है। रस, वस्तु और अलङ्कार का एकत्र अद्भुत सन्निवेश कवि का लक्ष्य प्रतीत होता है।

समाज विधान

कवि भरसक प्रयास करते हैं कि उनकी रचना में उस समय के वातावरण का सर्जन हो जिस समय की कथा का वे निरूपण कर रहे हैं; पर यह प्रयास पूर्णतः सफल नहीं हो पाता। जिस युग में कवि जन्मा और पला रहता है उस समय का वातावरण उसके विचारों में ऐसे पच गया रहता है कि उसका तादात्म्य किसी भी तरह विश्रृङ्खलित नहीं किया जा सकता। परिणाम यह होता है कि अतीत के दर्पण में वर्तमान प्रतिबिम्बित हो जाता है। पुण्यश्लोक नल की कथा अत्यन्त पुरानी है किन्तु नल के माध्यम से राष्ट्रकूटों की हिन्दू संस्कृति और समाज का विशद चित्र इस ग्रन्थ में प्रतिफलित हुआ है। लोकचित्रण के समय भी त्रिविक्रम ने एक नया कार्य किया है। वह है निम्न या सामान्य श्रेणी के लोगों का-चित्रण। संस्कृतकवियों के सम्बन्ध में एक प्रचलित धारणा है कि राज्याश्रय में रहने के कारण ये लोग सामान्य श्रेणी के लोगों का चित्रण प्रायः नहीं करते हैं। त्रिविक्रम ने ऐसा नहीं किया है। उन्होंने उच्च श्रेणी की अपेक्षा सामान्य श्रेणी वालों का चित्रण रमणीयतर ढंग से किया है।

राजा—

नलचम्पू में राजतन्त्र का सङ्केत मिलता है। वंशक्रम से राजा का पद प्राप्त होता था। राजपुत्र जब तरुण हो जाता था और उसे प्रशासन के अनुकूल शिक्षा मिल जाती थी तो पिता उसका राज्याभिषेक कर देता था। राज्याभिषेक के लिये एक बड़े पवित्र दिन की आवश्यकता होती थी। ऐसे शुभ दिन का निर्णय मौहूर्तिक लोग किया करते थे।[1] राज्याभिषेक के लिये वही दिन शुभ माना जाता था जब उच्च ग्रह केन्द्रस्थान में रहते थे, दिन एवं योग प्रशस्त रहते थे और तिथि पूर्णा होती थी।[2] अभिषेक के लिये मन्दाकिनी, गोदावरी, नर्मदा आदि पवित्र नदियों का जल स्वर्णकलश में संगृहीत किया जाता था। मन्त्री

---

१. तत्कालमेव मौहूर्तिकान् आहूय आदिदेश—कथ्यतां यौवराज्याभिषेकोत्सवाय, दिवसः। न० च० उ० पृ० २२८

२. केन्द्रस्थानवर्तिनः सर्वेऽप्युच्चग्रहा······विधीयताम्। न० च० पृ० २२८

तथा राजा स्वयम् अपने हाथों से युवराज को नहलाते थे।[१] ऋषि, मनि, पुरोहित आदि वरिष्ठ लोग प्रशस्त वैदिक मन्त्रों से आशीर्वाद देते थे। राज्य में यह बड़े धूमधाम का अवसर होता था। पूरा नगर अच्छी तरह सजा दिया जाता था। जगह-जगह पताकायें फहरायी जाती थीं। तोरण बाँधे जाते थे। रास्तों को चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों से स्वच्छ एवं सुगन्धित किया जाता था। देवताओं का पूजन किया जाता था। कैदियों और पिंजड़े में बन्द पक्षियों को बन्धनमुक्त किया जाता था। नगरमार्गों पर पौराङ्गनायें मङ्गलगान गाती थीं।[२]

युवराज के राज्याभिषिक्त हो जाने पर पिता अपना अन्तिम जीवन जंगल के आश्रम में बिताया करता था। वानप्रस्थ जीवन का पूरा प्रचलन था।[३] राजा के साथ प्रजा भी अपना बुढ़ापा जंगल में बिताती थी।[२] वृद्ध राजा के साथ मन्त्री चला जाता था और अपने युवक पुत्र को युवराज का मन्त्री बना जाता था।[४]

मन्त्री—

राज्य में मन्त्री का पद बड़े महत्त्व का था। अधिकांश ब्राह्मण-वर्ण के लोग इस पद पर नियुक्त किये जाते थे। यह नियुक्ति भी वंशक्रम से ही होती थी। वर्ण और वंश की बात योग्यता सापेक्ष थी। राजकीय कार्यालय के कार्यों के अतिरिक्त वह राजा के व्यक्तिगत कार्यों का भी साथी होता था। मन्त्री वही सफल माना जाता था जो राजा का पर्याप्त प्रियपात्र बन सके।[५] विद्या, वय, शील और गुण में करीब-करीब वह राजा के समान ही होता था। प्रजापालन के कार्य में राजा का वह सर्वाधिक सहायक होता था।[६]

कभी-कभी वह राजपुत्र पर भी, अनुचित चलने पर रोप प्रकट कर सकता था। राज्याभिषेक के पूर्व युवराज को विविध ढंग से प्रशिक्षित करने का कार्यभार मन्त्री पर रहता था।[७] मन्त्रणा देने में लगे हुए मन्त्री राजा के बच्चों की शिक्षा का भी ध्यान रखते थे।[८]

इन सारी बातों के रहने पर भी मन्त्री को राजा के चित्त का अनुवर्तन करना पड़ता था। राजा की प्रवृत्ति को किसी कुमार्ग से मोड़ने के लिये भी उसे अनुकूल मार्ग का अवलम्ब लेना पड़ता था। राजा की चित्तवृत्ति का अनुवर्तन तथा कुमार्ग से उसका निवर्तन मन्त्री के लिये बड़े कठिन कार्य होते थे।[९]

---

१. सालङ्कायनेन……स्वयमभिषेकमकरोत्। पृ० २३१

२. समुच्छ्रियन्ताम् वैजयन्त्यः………पुरपथेषु पौरनारीजने। पृ. २३३–३४

३. उच्चलितेषु जरत्पौरजनेषु। पृ. २३५

४. सालङ्कायन ने श्रुतिशील को नल के लिये दिया है।

५. द्वितीय इव आत्मा पृ. ४७ ६. प्र० उ० श्लो० ३८

७. सालङ्कायन ने नल को उपदिष्ट किया है।

८. उद्योतिता पुराणाङ्गमन्त्रब्राह्मणशिक्षया॥ ष० उ० श्लो० ५३

९. तदप्रस्तुतरसानुनयेनैवप्रभूणां मतयो निवर्तन्ते निषिद्ध निषेवणात्, न प्रतिकूलतया। प० उ० पृ० ३०८

ब्राह्मण—

यज्ञविधि के जानकार ब्राह्मण समाज में बड़े माननीय थे। सत्यवाणी और निश्छल व्यवहार उनके अलङ्कार थे। कायरता और लम्पटता उनमें छू-कर नहीं रहती थी। तरुणावस्था में भी वे अपने बालों को सदा मुड़ाये हुए रहते थे। आधी चौरक्रिया नहीं कराते थे। तेजस्विता के नष्ट होने के भय से राजकीय दक्षिणा नहीं लेते थे। कहा जाता है—"राजान्नं तेज आदत्ते" राजा का अन्न तेज समाप्त कर देता है। मुख्यतः वेद का स्वाध्याय करते थे।[1]

सेना—

सैन्यशक्ति प्रशासन का मुख्य अङ्ग अति प्राचीनकाल से है। नलचम्पू में केवल स्थलसेना का वर्णन है। नल की चतुरङ्गिणी सेना थी।[2] उसमें हाथी, घोड़े, रथ तथा पदातियों के अलग-अलग वर्ग थे। सैनिकों के मुख्य अस्त्र धनुष्-बाण थे। सेना का प्रधान राजा ही हुआ करता था। राजा की आज्ञा से सेनापति सैन्य-संचालन किया करता था। सैन्य-प्रयाण के समय हाथी और घोड़ों की बड़ी सजावट की जाती थी।[3] सेना के चलने पर लोगों को आतङ्क हो जाता था। पैदल चलने वाली सेना रास्ते में पड़नेवाली शत्रुनगरियों को लूटती चलती थी।[4] पड़ाव ऐसी जगहों पर डाला जाता था जहाँ घोड़ों के उपयुक्त घास तथा हाथियों के घर्षणक्षम वृक्ष रहते थे। पड़ाव के समीप का सरोवर साफ कर दिया जाता था। शैवाल आदि जलाच्छादक तत्त्वों को हटा दिया जाता था। वहाँ की ऊँची-नीची जमीन बराबर कर दी जाती थी। काँटों को साफ कर दिया जाता था।[5] सामान ढोने के लिये सेना के साथ बैल, भैंसे, ऊँट, खच्चर आदि भी चलते थे।[6]

सैनिक प्रमत्त की तरह आचरण करते थे। कभी-कभी उन्हें आपस में भी झगड़ने का अवसर आ जाता था। तीर्थस्थलों, यज्ञस्तम्भों, समीपवर्ती उद्यानों, यज्ञस्थल के वृक्षों तथा वनों को भी वे नष्ट कर डालते थे।[7] देवमन्दिरों और मुनिकुटीरों को भी लूटने में उन्हें आलस नहीं लगता था।[8] उपर्युक्त अनर्थ सैनिक न करें एतदर्थ राजा को आदेश निकालना पड़ता था।

---

१. ब्रह्मविदो ब्राह्मणाः······येरम्भयान्विताः। प्र० उ० पृ० १३
२. चतुरङ्गबलचलनचूर्णितशिलोच्चयचक्रवाले। पृ० ३७३
३. पृ० २७३
४. लाम्पट्योल्लुण्ठितरिपुपुरः परः पदातयः। पृ० २७५
५. दे० पृ० २८५
६. पृ० ३४५
७. अकृतान्योऽन्यसम्बाधकलहम्··· ··अच्छिन्नचैत्यद्रुमम्। पृ० ३९१
८. ष० उ० श्लोक० ७७

सेना का जहाँ कुछ सुस्थिर डेरा पड़ता था वहाँ एक नगर जैसा दीखता था। राजकीय झण्डे फहरा दिये जाते थे। जङ्गम चित्रशालागृह सजा दिये जाते थे। गारिक एवं लाल रंग के तने हुए तम्बू खिले हुए पलाशवन की शोभा प्रस्तुत करते थे। श्वेत वस्त्रों से बनाये गये मण्डपों का मण्डल प्रफुल्ल कमलवन की तरह दीखता था।[1]

राज्य में आखेट-सैन्य का भी एक विभाग होता था। राजा इस सेना का भी प्रमुख हुआ करता था। आखेट-सैन्य के साथ कुत्तों का भी यूथ रहता था।[2] यथासमय युद्ध की अधिकांश आवश्यकता पड़ा करती थी, अतः राज्य की सुरक्षा-व्यवस्था अत्यन्त उन्नत दशा में थी। राजा के प्रभुत्व तथा कौशल की कसौटी सैन्यशक्ति ही थी।

विवाह—

त्रिविक्रम ने स्वयंवर के अतिरिक्त किसी अन्य विवाह-विधि की चर्चा नहीं की है। राजकन्याओं के विवाह में स्वयंवर-विधि एक प्रचलित प्रथा थी। पुत्री की अवस्था देखकर मन्त्रियों की सलाह से पिता स्वयंवर का आयोजन करता था।[3] स्वयंवर आयोजन के लिये कन्या का पिता बड़े चतुर दूतों को उपहारों के साथ राजाओं के पास भेजता था।[4] राजा लोग स्वयंवर में आते थे और कन्या उनमें से किसी को अपनी इच्छा के अनुसार चुन लेती थी। कभी-कभी स्वयंवर एक परम्परा निर्वाह के ही लिये होता था। कन्या अपने मन में पहले ही से किसी को चुने रहती थी। स्वयंवर में अन्य राजाओं के समक्ष अपने पूर्व निश्चयानुसार चुनाव कर लेती थी। कभी-कभी तो दूसरे लोग भी जान जाते थे कि कन्या ने अमुक व्यक्ति को चुनने का निश्चय कर लिया है, फिर भी प्रतियोगिता में भाग लेने से लोग बाज नहीं आते थे। कन्या के पास पैरवी पहुँचाने की भी प्रथा चालू थी। एक ही वस्तु के लिये अनेक लोग इकट्ठे होते थे। अतः वैमनस्य का होना स्वाभाविक था। खासकर ऐसे लोगों की उपस्थिति जिनके चुने जाने की बड़ी सम्भावना रहती थी, अन्य प्रतियोगियों को बहुत खटकती थी। उसकी जय-ध्वनि अन्य लोगों के कानों में चाकू की तरह लगती थी।[5] राजा लोग बड़े दल-बल के साथ स्वयंवर में आते थे। उनके मन्त्री, सेना तथा शिविर की पूरी

---

१. पृ० ३९२

२. पृ० ६३

३. अवलोक्य यौवनावस्थां दमयन्त्याः······स्वयंवरधर्मप्रारम्भाय समं मन्त्रिभिः मन्त्रनिश्चयं चकार। पृ० २६६

४. प्राच्यप्रतीच्योदीच्यदाक्षिणात्यनरपतिनिमन्त्रणे सप्राभृतान् प्रगल्भप्रायान् प्रधानप्रेष्यान् प्रेषयामास। पृ० २६६

५, स्वयंवरायातसमस्तराजन्यचक्रकर्णकर्तरीषु पठ्यमानासु······नलनाम-सालासु। पृ० ३९३

सामग्री उनके साथ होती थी। सबके लिए कन्या का पिता भोजन, पान तथा निवास की विधिवत् व्यवस्था करता था। आने वाले अतिथियों को देखने के लिये स्थानीय लोगों को बड़ी उत्कण्ठा रहती थी। नगरवधुएँ अतिथि का चित्र बनाती थीं। उनका यथावत् दर्शन पाने के लिये ऊँची जगहों पर इकट्ठी हो जाती थीं।[1] विशिष्ट अतिथियों के सत्कार के लिये सड़कें चन्दन, जल या सुगन्धित द्रव्यों से सींची जाती थीं। फूल और तोरण से सज्जित स्तम्भों पर पताकाएँ फहराई जाती थीं। नगर के हर घरों के आगे पूर्णकलश रखे जाते थे और बहुत से स्वस्तिक चिह्न बनाये जाते थे।[2] नगराङ्गनाएँ विविध भूषणों से अलंकृत होकर थाली में दूर्वादल, दही, फूल आदि मङ्गलद्रव्यों को सजाकर बाजे के साथ गान करती थीं।[3]

वेषभूषा—

लोग योग्यता तथा अवसर के अनुकूल वेष धारण करते थे। स्वच्छ वस्त्र का नागरिकों में विशेष प्रचलन था। शिकारी जो राजा के पीछे चलते थे, अपने बालों को कार्दमिक रंग के कपड़े से बाँधते थे। यह कपड़ा कीचड़ के रंग का होता था।[4] पुराने जमाने में ठीकरों को चूर्ण कर कीचड़ से कपड़े रंगने की प्रथा थी।[5] वर्णनमात्र से ही इस रंग की भयंकरता प्रकट हो रही है। शिकारियों के लिए यह उपयुक्त वस्त्र था।

अश्वारोही लोग चुस्त वस्त्र पहनते थे। कटिभाग को एक विशेष ढंग की पेटी से बाँधे रहते थे (तुङ्गतुरंगमारूढोगाढग्रथितपरिकरः)।

शिर पर कपड़े बाँधने की सामान्य प्रथा थी। हर श्रेणी के लोग अपनी योग्यता के अनुसार पगड़ी बाँधते थे। कौपीनमात्र धारण करनेवाला तथा मिट्टी की गोलियों की माला पहनने वाला दरिद्र पथिक भी लता की छाल से अपने भूरे बालों को बाँध ही लेता था।[6]

नल से लेकर व्याधों तक के लोगों के शिरोवस्त्र की चर्चा यहाँ हुई है। बड़े लोगों के परिचारकों के वेष भी विचित्र आकर्षक होते थे। इन्द्र का परिचारक जो देवताओं से पहले नल से आकर मिला है, एक लम्बा स्वर्णदण्ड धारण किये है, कानों में कुण्डल पहने है और गले में मन्दार की माला पहन रक्खी है।

---

१. आरुह्यैताः⋯⋯लेख्यलीलां वहन्ति। ष० उ० श्लो० ६७

२. सिच्यन्तां राजमार्गाः⋯⋯नैषधः प्राप्त एषः। ष० उ० श्लो० ७८

३. सत्काञ्च्यस्पन्दनार्द्राः⋯⋯गीतमुच्चारयन्त्यः। ष० उ० श्लो० ७९

४. कार्दमिककर्पटावनद्धमूर्धजैः। पृ० ६३

५. कात्यायनवार्तिक ४।२।२

६. प्र० उ० श्लो० ५१

कुण्डल, हार, कंकण, अंगूठी ये राजाओं के मुख्य अलङ्कार थे। पुरुष भी इस तरह का कंकण पहनते थे जिसमें स्पन्दन होने से आवाज निकलती थी। इन्द्र आदि के सत्कार के समय घबड़ा कर उठे हुए नल का उत्तरीय उनके कंकण में उलझ गया है, इसलिये उससे आवाज निकल पड़ी है।[1]

सामान्य वस्त्रों के अतिरिक्त उच्च घरों में या राजपरिवार में चीनांशुक, पट्टांशुक तथा नेत्रसंज्ञक वस्त्रों का पर्याप्त प्रचलन था। चीनांशुक चीन देश का बना हुआ रेशमी वस्त्र था। पट्टांशुक भी कीटज रेशम है। जैनआगम के अनुयोगद्वारसूत्र द्वारा ज्ञात होता है कि पाँच प्रकार के कीटज रेशम वस्त्र होते थे—पट्ट मलय, अंसुग, चीनांसुय और किमिराग।[2] इससे स्पष्ट है कि पट्ट और चीनांशुक रेशमी वस्त्र थे। ये वस्त्र इन्दुकान्ति की तरह धवल तथा अग्नि की तरह पवित्र होते थे। प्रियङ्गुमञ्जरी ने चीनांशुक पट्टपरिधान ही महर्षि दमनक के लिये प्रस्तुत किया था।[3]

दमयन्ती ने जो नल के लिये उपहार भेजे थे उसमें पट्टांशुक का भी एक थान था।[4] दमयन्ती की साड़ी नेत्रसंज्ञक वस्त्र की थी। नीवी के पास सिमटा हुआ यह वस्त्र ऐसा लगता था मानों स्वयं क्षीरोद दमयन्ती के ऊरू, नितम्ब आदि की स्पर्शसुखलिप्सा में वस्त्ररूप में परिणत हो गया था।[5]

त्रिविक्रम के अनुसार यह धवल रंग का वस्त्र था।[6] बाण ने भी इसे धवल ही माना है—धौतधवलनेत्रनिर्मितेन निर्मोकलघुतरेण कंचुकेन, हर्षचरित—पृ० ३१। नेत्र एक रेशमी वस्त्र था जिस पर फूलपत्ती के काम भी हुए रहते थे। नेत्र की पहचान बंगाल में बनने वाले नेत्र नामक एक रेशमी वस्त्र से की जाती है जो चौदहवीं सदी तक बनता रहा है।[7]

त्रिविक्रम ने एक अत्यन्त महीन पारदर्शी वस्त्र की भी चर्चा की है। दमयन्ती का उत्तरीयांशुक इतना महीन था कि उससे आच्छादित रहने पर भी उसके अङ्गों पर की गयी कस्तूरी की पत्ररचना साफ दिखायी पड़ती थी।[8]

---

१. ससम्भ्रमोत्थानवशवल्गितोत्तरीयाञ्चलस्खलनकंकणरणत्मुखरितम्।पृ०२८८

२. अनुयोगद्वार सूत्र ३७; श्री जगदीशचन्द्र जैन कृत "लाइफ इन ऐंसियेंट इंडिया ऐज डेपिक्टेड इन जैन कैनन" पृ. १२९

३. गृह्यतामिदमिन्दुद्युतिधवलमनऊशौचं चीनांशुकपट्टपरिधानयुगलम्।पृ.१५७

४. काश्चित् पिहितपट्टांशुकपटलिकापाणयः। स० उ० श्लोक ७ के आगे

५. ऊरुनितम्बमण्डल......क्षीरोदमिव वस्त्रतां गतम्......नेत्रपट्टं दधानाम्। स० उ० श्लो० ७ के आगे का तृतीय वाक्य

६. अच्छपाण्डुनेत्रपट्टम्, वही

७. डॉ० मोतीचन्द्र: प्राचीन भारतीय वेषभूषा, पृ० १५७

८. उत्तरीयांशुकस्याच्छतया दृश्यमान......कस्तूरिकापङ्कपत्रलताङ्कितकुचकलशश्रियम्। स० उ० श्लो० १९ के आगे

स्त्रियाँ सीमन्त मौक्तिक पहनती थीं। यह भूषण उनके बालों के बीच तारा की तरह लगता था। नेत्र में काजल लगाने का प्रचलन था। गले में बड़े-बड़े मोती के दानों वाले हार पहनने का प्रचलन था। दमयन्ती के वक्षःस्थल पर लोटते हुए हारमणियों को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि कामार्त सप्तर्षि ही आकर उसके वक्षःस्थल पर लोट रहे थे। कानों पर नवीन पल्लव पहनकर मुख को अलंकृत किया जाता था। कस्तूरी के निर्मल लेप से अङ्गों पर पत्ररचना करने की व्यापक प्रथा थी।[1] ललाट पर स्त्रियाँ भी त्रिपुण्ड्र धारण करती थीं, किन्तु वह त्रिपुण्ड्र तिलक भस्म का नहीं होता था। उसमें एक रेखा कुङ्कुम की, दूसरी कस्तूरी की और तीसरी चन्दन की होती थी।[2] ये तीन रेखायें दमयन्ती के ललाट पर सत्व, रज और तम नामक तीन गुणों की तरह लगती थीं।

किरात लोग हाथियों का शिकार खेलते थे। अतः उनके यहाँ गजमुक्ताओं की कमी नहीं रहती थी। उनकी पत्नियाँ मुक्ताहार पहनती थीं। कृष्णपक्ष की रात्रिसदृश उनके काले शरीर पर वे मुक्तायें तारों की तरह लगती थीं। वे कानों में हाथीदाँत की बनी पत्तियाँ पहनती थीं। कानों पर किसलय रखती थीं। हाथियों का मद-जल उनका अङ्गराग था। उनकी वेणियाँ मयूरपंखों के गुच्छों से सजती थीं। वे मनोविनोद के लिये पालतू मृगों को साथ रखती थीं।[3]

ग्राम्य स्त्रियाँ कर्णिकार की माला से अपनी वेणियाँ सजाती थीं। अंगराग के लिये जौ या चावल के सूखे आटे में तज, अंगिया, बकुची आदि मिलाकर पिष्टातल बनाती थीं। वह आधुनिक ग्राम्य उबटन की तरह होता था। लाह का बना हुआ कंकण पहनती थीं। शरीर में हल्दी लगाती थीं। आँखों में ज्यादा-ज्यादा काजल लगाती थीं। यद्यपि उच्च श्रेणी के लोगों की दृष्टि में उनका वेष विरस था फिर भी उनकी हृदयहारिता में कमी न थी।[4]

चित्रकला—

चित्रसम्बन्धी कुछ संकेतों से प्रतीत होता है कि चित्रकला भी बहुत उन्नत दशा में थी। अन्य विद्याओं की तरह चित्रविद्या का ज्ञान भी आवश्यक था। नल तथा दमयन्ती सदृश राजकार्यव्यस्तलोग भी चित्रविद्या में आश्चर्योत्पादन की क्षमता रखते थे।[5] भित्तियों पर चित्र बनाने की बड़ी व्यापक प्रथा थी।[6] कुण्डिनपुर का वर्णन करते समय चित्रविद्या के सूक्ष्मांशों—जैसे शिशु, सकल,

---

१. स० उ० श्लो० ३३ के आगे तृतीय वाक्य

२. कुङ्कुममृगमदमलयजरसरचितत्रिपुण्ड्रेखात्रितयमुद्वहन्तीम्।
स० उ० श्लो० १९ के आगे

३. प० उ० पृ० २९९–३००

४. ष० उ० श्लो० ७०

५. चित्रकृच्चित्रविद्यायाम् पृ. १९८. वैचित्र्यं चित्रेषु पृ० १७५

६. चित्रचर्व्यमानासु भवनभित्तिषु। पृ० १३१

स्वस्तिक, प्रवर्धमान और सर्वतोभद्र का उल्लेख हुआ है। शिशु आदि शब्द-चित्र कला के पारिभाषिक शब्द हैं।

चित्रविद्या की इतनी व्यापक प्रथा थी कि ग्राम्य स्त्रियाँ भी इस कला की बारीकियों से परिचित थीं। नल जब कुण्डिनपुर जा रहे हैं तो पामरों (निम्न जनों) की पत्नियाँ बड़ी एकतानता से उन्हें देखती हुई उनका चित्र बना रही हैं।[१]

काठ की पट्टियों पर विविध चित्र बने हुए रहते थे। इस तरह की चित्रमण्डित पट्टियों से कहीं भी घर बना लिया जाता था। इन पट्टियों का उपयोग राजा लोग अपने शिविरविधान में करते थे। लगता है, ऐसे चित्रशालागृह पहियादार होते थे। अतः इन्हें इधर-उधर ले जाया भी जाता था। इसीलिये इन्हें प्रयाण-योग्य यन्त्रचित्रशालागृह कहते थे। नल का शिविर इस तरह के यन्त्रचित्र-शालागृहों से मण्डित होने के कारण गन्धर्वनगर की तरह अच्छा लग रहा था।[३]

रंगीन चित्रों के अतिरिक्त सिंहासनों या भित्तियों में खोदकर भी चित्र बनाये जाते थे। नल के शिविर में ऐसे दो सिंहासनों का उल्लेख है जिन पर बड़े भव्य कटावों के साथ कर्णाट रमणियों का चित्र अङ्कित था। जँभाई लेते हुए मणिनिर्मित मकर के मुख से गिरती हुई मोती की माला का चित्र खुदा हुआ था। सिंहासन के बाहुओं पर खूब सुन्दर सर्पों के समूह उत्कीर्ण थे।[४] मणि की शिलाओं और काठों को भी काट-छाँटकर अभिलषित आकार के रूप में परिवर्तित किया जाता था। दमयन्ती को देखने पर ऐसा लगता था कि वह मोहन मणि की शिला पर उत्कीर्ण थी, या शृङ्गारदारु पर खुदी हुई थी।[५]

संगीत कला—

नलचम्पू में संगीत के शास्त्रीय एवं लौकिक दोनों ही पक्षों का संकेत मिलता है। सब श्रेणी के लोग संगीत में अभिरुचि रखते थे। राजपरिवार के लोग संगीतज्ञों को साथ लिये चलते थे और समय मिलने पर रास्ते में भी उनका

---

१. एकत्रचित्रविद्ययेव······कुण्डिनं नाम नगरम्। पृ० ११८–११९

२. प्रेक्षावेशादविचलदृशो योषितः पामराणाम्।
पश्यन्त्यस्त्वां निभृततनयो लेख्यलीलां वहन्ति॥ ष० उ० श्लो० ६७

३. प्रयाणयोग्ययन्त्रचित्रशालागृहैः सञ्चारिणि गन्धर्वनगर इव रमणीये।
पृ० ३९२

४. अतिविचित्रभङ्गिभङ्गोत्कीर्ण-कर्णाटिकारूपरमणीयस्तम्भिकावष्टम्भम्, तज्जृम्भमाणमाणिक्यमकरमुखमुक्तमौक्तिकसरविराजितम्, अपूर्वकर्मनिर्मितभव्यव्यालावलीकीर्णमुखालङ्कृतम्, उच्चकाञ्चनसिंहासनद्वितयम्। पृ० ३९९

५. मोहनमणिशिलायामिवोत्कीर्णाम्, शृङ्गारदारुणीवोत्कुट्टिताम्।
स० उ० श्लो० ३३ के आगे तृतीय वाक्य

उपयोग कर लेते थे। दमयन्ती जब एक पेड़ के नीचे कुछ ही क्षणों के लिये ठहरी थी तो वहाँ भी गायक की गीतध्वनि की ओर दत्तावधान थी।[1] वह स्वयं भी संगीत कला में पर्याप्त निपुण हो चुकी थी। वीणा, मृदङ्ग, नगाड़ा, झाल तथा वंशी उस समय के मुख्य वाद्य थे। नल स्वयं वीणा आदि विशिष्ट वाद्यों का ख्यातिप्राप्त जानकार था।[2] नन्दयन्ती, वर्धमान आसारितक, पाणिक समञ्जक आदि संगीत के पारिभाषिक तथ्यों से लोग पूर्ण परिचित थे। षड्ज, मध्यम और गान्धार रागों की भी समाज में पूर्ण प्रतिष्ठा थी।[3] राग, ताल, भाषा तथा मूर्च्छनासम्बन्धी विशेषताओं को प्रदर्शित करने वाले तथा पञ्चम स्वर में गाने वाले कलाकारों की बड़ी प्रशंसा होती थी।[4]

ग्राम्य तरुणियाँ लौकिक संगीत का प्रयोग करती थीं। उनके गीत केवल स्वर-संवलित होते थे, उसके साथ वाद्य का योग नहीं था। उन्हें राग और मूर्च्छना का ध्यान नहीं था। इस कोटि की गायिकाओं में गोप बालायें, किरात कामिनियाँ और ग्राम्य तरुणियाँ आती हैं। किन्नर-मिथुन के सन्दर्भ में त्रिविक्रम ने शास्त्रीय संगीत की ही अधिक चर्चा की है।

उपासना—

उपासना की कुछ नित्य विधियाँ थीं और कुछ नैमित्तिक। नित्यविधि में सन्ध्या-वन्दन कार्य था। सन्ध्या प्रातः, मध्याह्न तथा सायं तीनों कालों में की जाती थी। भगवान् सूर्य की अर्चना के बाद लोग अपने इष्टदेव का पूजन करते थे।[5] ईप्सित सिद्धि के लिये भगवान् शंकर के बाद नारायण की भी आराधना की जाती थी।[6] कार्तिकेय पूजन की भी बड़ी प्रशस्त परम्परा थी। नल से मिलने वाला पथिक गन्धमादन पर्वतस्थित कार्तिकेय के दर्शन के ही लिये गया था।[7] भगवान् शंकर का दर्शन विनायक तथा कार्तिकेय के साथ अधिक प्रशस्त माना जाता था।[8]

---

१. पुरःसरसरागगान्धर्विककण्ठकन्दरविनिःसरत्संगीतप्रेङ्खोलनप्रयोगेषु दत्तावधाना। पृ. ७५

२. दे० पृ० १९८

३. दे० पृ० ३५६

४. ष० उ० श्लो० ४४, ४७, ४८, ४९।

५. अधिकृत्य भगवन्तमुदयगिरिशिरःशेखरभाजं भास्करम्। पृ० ३१९

६. अभ्यर्च्य पञ्चोपचारैः सुरासुरगुरुं गौरीपतिं तत्प्रियस्य भगवतो नारायणस्यापि वाञ्छितार्थसिद्धये स्तुतिमकरोत्। पृ० ३२०

७. भगवतः सुगन्धिगन्धमादनाधिवासिनः स्कन्ददेवस्य दर्शनार्थमितो गतवानस्मि। पृ० ७५

८. विनायकेन स्वामिना च शक्तिमता पुत्रेणानुगम्यमानः। पृ० १४२

अभी भी दाक्षिणात्य लोगों में गणेश और कार्तिकेय पूजन को अधिक महत्त्व दिया जाता है। कुमारी कन्यायें अधिकांश भगवती गौरी की आराधना करती थीं। कुमारी दमयन्ती ने गौरी-महोत्सव-दर्शन के निमित्त जाते समय ही एक वृक्ष की छाया में किसी पथिक से सब से पहले नल की चर्चा सुनी थी।[1]

जागतिक उपायों से जिस चीज की प्राप्ति सम्भव नहीं थी, उसके लिये भगवान् शंकर की आराधना अत्यन्त आवश्यक मानी जाती थी। नलचम्पू के सभी पात्र शिवभक्त हैं। सातों उच्छ्वासों के अन्तिम पद्यों में हरचरणसरोज की आराधना की चर्चा की गयी है। प्रायः उच्छ्वासों के अन्त में आने वाले पात्र ऐसी झंझट में आ गये हैं कि उन्हें उससे मुक्ति पाने के लिये कोई उपाय नहीं सूझता। ऐसी स्थिति में वे हरचरणसरोज के चिन्तन में लग जाते हैं।

प्रथम उच्छ्वास के अन्त में वर्षा उद्दीपक दिन जब नल को व्यथित करते हैं, तो उस व्यथित अवस्था वाले नल का चित्रण करते समय कवि उनका विशेषण देता है—"हरचरणसरोजद्वन्द्वमुद्राङ्कमौलेः" अर्थात् हरचरणसरोज की मुद्रा उसकी मौलि पर लगी है। भगवान् शंकर तो कामरिपु हैं। उनके चरणों की मुद्रा से मुद्रित मौलिवाले लोगों को काम डर के मारे व्यथित नहीं करेगा। इसी आशय से इस विशेषण से नल को वहाँ मण्डित किया है।[2]

द्वितीय उच्छ्वास के अन्त में सन्तान की उत्कट कामना में व्यग्र प्रियङ्गुमञ्जरी उसी हरचरणसरोजद्वन्द्व की आराधना में मग्न कुश की पवित्र आसनी पर निद्रित हो जाती है।[3] तृतीय उच्छ्वास के अन्त में हंस उस दुर्लभ दमयन्ती की प्राप्ति का एक मात्र उपाय हरचरण की आराधना से होने वाले पुण्य को ही बताता है।[4]

चतुर्थ उच्छ्वास के अन्त में पितृवियोग रूप दुस्तर दुःख को पार करने के लिये नल हरचरणसरोजद्वन्द्व में ही चित्त लगाता है।[5] पञ्चम और षष्ठ उच्छ्वास के अन्त में कोई अधिक क्लान्ति नहीं चित्रित है फिर भी साङ्ग रहते हुए भी

---

१. सोऽयं यस्तेन पान्थेन यान्त्या गौरीमहोत्सवे।
नलोऽप्यनल एवासीद् वर्णितो मे पुरः पुरा॥ च० उ० श्लो० ८

२. हरचरणसरोजद्वन्द्वमुद्राङ्कमौलेः।
मदनमदनिवासाः वासराः प्रावृषेण्याः॥ प्र० उ० श्लो ६४

३. हरचरणसरोजद्वन्द्वमाराधयन्ती
शुचिकुशशयनीये साऽथ निद्रां जगाम॥ द्वि० उ० श्लो० ३९

४. हरचरणसरोजाराधनावाप्तपुण्यः।
अपि जयतु स यस्तां दुर्लभां लप्स्यतेऽस्मिन्॥ तृ० उ० श्लो० ३५

५. गमयति परिवर्तं वासराणामिदानीं।
हरचरणसरोजद्वन्द्वदत्तावधानः॥ च० उ० श्लो० ३२

अनङ्गत्वप्राप्ति के लिये हरचरणसरोजद्वन्द्व के प्रसाद की आवश्यकता संकेतित की गयी है। कारण यह है कि अनङ्ग की साङ्गता का उपपादन बिना हर प्रसन्नता के हो ही नहीं सकता। सप्तम उच्छ्वास के अन्त से दमयन्ती से देवदौत्य सम्बन्धी बातें कर लौट जाने के बाद उसके दर्शन तथा प्राप्तिसम्बन्धी अथाह चिन्ता में समय बिताने के लिये हरचरणसरोज ही नल के लिये आधार है।[1] इन तथ्यों के आधार पर तत्कालीन शिवोपासना की प्रमुखता स्पष्ट हो जाती है।

यज्ञ एवं दान—

नैमित्तिक धार्मिक अनुष्ठानों के प्रसङ्ग में बड़े-बड़े यज्ञ किये जाते थे। अन्नदान के लिये सत्र खोले गये थे। ब्राह्मणों को अग्रहार रूप में भूमि दी जाती थी[2] अतिथियों के लिये हमेशा अन्नसत्र चलते थे। ब्राह्मणों के भोजन कर लेने के बाद राजा लोग भोजन करते थे। कापिला गायों को गोग्रास देने की व्यवस्था थी। कौवों को बलि देने के लिये ऊँचे-ऊँचे खम्भे होते थे जिनके शीर्ष भाग पर फर्श बने रहते थे। उसी पर कौवों को भोजन दिया जाता था। राजा की ओर से दोपहर को दीनों तथा अनाथों को भोजन दिया जाता था। वैश्वदेव को आहुति दी जाती थी। ये सब कार्य राजा के भोजन करने के पहले सम्पन्न किये जाते थे।[3]

भोजन—

त्रिविक्रम ने पेय, आस्वाद्य, आलेह्य तथा कवल्य इन चार तरह के भोज्यों का संकेत किया है। पीने की चीजों को पेय कहते थे। आस्वाद्य चखने की चीजों, जैसे तरकारी आदि को कहते थे। लेह्य चाटने की चीजों, जैसे चटनी आदि को कहते थे। कवल्य कवल बनाकर खाने की चीजों को कहते थे जैसे भात आदि।

भात बड़े ढंग से लोग बनाते थे। उसको बनाने में पर्याप्त घी का प्रयोग किया जता था। पके हुए चावल के दाने न खिली हुई कुन्दकलिका की तरह मनोहर होते थे।[4] शालि के अतिरिक्त कूर नामक धान के तण्डुल का भी यहाँ

---

१. हरचरणसरोजद्वन्द्वमाधाय चित्ते।
   नृपतिरपि विदग्धः स त्रियामामनैषीत्॥ स० उ० श्लो० ५०

२. सत्रिपथगान् नगनगरग्रामाग्रहारपत्तनप्रदेशानुल्लङ्घयन्तः। पृ० २४८

३. दे स० उ० श्लो० ११ के पूर्व का वाक्य।

४. आज्यप्राज्यमभिन्नकुन्दकलिकाकल्पश्च शाल्योदनो,
   धूपामोदमनोहरा शिखरिणी स्वादूनि शाकानि च।
   पेयास्वाद्यकवल्यलेह्यबहुलं नानाविधं भुज्यतां
   भोज्यं भीममहानृपस्य सुतया संप्रेषितं सैनिकाः।
   स० उ० श्लो ११

उल्लेख हुआ है।[1] कूर के चावल सीधे और लम्बे-लम्बे होते थे।[2] सब्जियाँ मसालेदार तथा अत्यन्त स्वादिष्ट बनायी जाती थीं।[3] ईख के रस को लोग काली मिर्च, इलायची आदि से संस्कृत कर पीते थे। भात को दधिद्रव से स्निग्ध कर खाते थे।[4] शिखरिणी नाम के एक पेय का उल्लेख हुआ है।[5] इसका उल्लेख कालिदास के विक्रमोर्वशीय (पृ० ७१) में भी हुआ है। इसका निर्माण लोग इलायची, लवंग, कर्पूर आदि सुगन्धित द्रव्यों को दूध में मिला कर चीनी और दही उसमें छोड़ कर करते थे[6]। शिखरिणी उसे भी कहते थे जो दूध और पके केलों और दही के अतिरिक्त उक्त सारी चीजों को मिला कर बनायी जाती थी।[7]

भात के अतिरिक्त दाल, मधु, चीनी, दही, दूध, सब्जी, फल-रस, कसैले, खट्टे, मीठे, नमकीन, तीते और मीठे पदार्थों का उपयोग प्रचुर मात्रा में होता था।[8] त्रिविक्रम के अनुसार दाक्षिणात्य लोग मांस में अभिरुचि नहीं रखते थे। उत्तर, पूर्व एवं पश्चिम के लोगों को सत्तू बहुत प्रिय था और उन्हें मांस के बिना भोजन अच्छा नहीं लगता था।[9] घृतप्रचुर भोजन के बाद लोगों के हाथ चिकने

---

१. आज्यप्राज्यप्रान्नकूरकवलैर्मन्दां विधाय क्षुधां
चातुर्जातकसंस्कृतो तु शनकैरिक्षो रसः पीयताम्।
सम्भारस्पृहणीयतेमनरसानास्वाद्य किञ्चित्ततः
स्निग्धस्तव्धदधिद्रवेण सरस. शाल्योदनो भुज्यताम्॥
स० उ० श्लो० १२

२. सरलः सुनिष्पन्नदीर्घतण्डुलपाकजः। स० उ० श्लो० १२ की चण्डपाल कृत टीका।

३. स० उ० श्लो० १२।

४. स० उ० श्लो० १२।

५. स० उ० श्लो० ११।

६. एलालवंगकर्पूरादिसुरभिद्रव्यमिश्रितं दुग्धेन सह गलितं सितासंगतं दधि शिखरिणीत्युच्यते। विक्रमोर्वशीय पृ० ७१

७. दध्यतिरिक्तपूर्वोक्तद्रव्यमिश्रितः पक्वकदलीफलान्तःसारोऽपि तत्पद-वाच्यः। वही।

८. लग्नाः सर्वतो दृश्यन्ते पर्वताः पक्वान्नस्य, राशयः शाल्योदनस्य, स्तूपाः सूपस्य, निर्झराः सर्पिषः, सिन्धवो मधुनः, निकराः शर्करायाः, स्रोतांसि दधि-दुग्धयोः, शैलाः शाकानाम्, निपाना निपानकानाम्, कुल्याः फलरसानाम्, कूटाः कषायाम्ललवणतिक्तमधुरोपदंशानाम्। स० उ० श्लो० १३ के पूर्व

९ अहो नु खल्वमी मत्स्यमांसैर्विरहितमुदीच्यप्रतीच्यप्राच्यजनाः प्रिय-सक्तवो भोक्तुमेव न जानन्ति। विरलः खलु दाक्षिणात्येषु मांसाशनव्यवहारः।
स० उ० श्लो० ११ के आगे

हो जाते थे। अतः चिकनाहट को मिटाने के लिये चन्दन की धूलि हाथों पर लगायी जाती थी। इसके बाद ताम्बूल दिया जाता था। बाराती लोगों को भोजन के बाद अत्यन्त भव्य धोती और दुपट्टे भी दिये जाते थे।[1]

पाकविज्ञान अत्यन्त उन्नत दशा में था। दमयन्ती ने स्वयं बना कर जो भोजन नल के लिये भेजा है उसकी प्रशंसा करते हुए नल कहता है—आयुर्वेद में छः ही रस कहे गये हैं तथा भरत में आठ या नव, किन्तु उस पद्मपत्राक्षी दमयन्ती ने तो सब रसों को एक कर दिया है।[2] बात यह थी कि निर्मीयमाण पदार्थ मूलतः जिस रस या स्वाद का होता था, उसको पाचक लोग अपने पाकनैपुण्य से दूसरे रस या स्वाद में बदल देते थे। यह रूपान्तरित स्वाद ही उन्हें प्रशंसाभाजन बना देता था।

तरकारियाँ—

एक शाकवाटिका के वर्णन से ज्ञात होता है कि घर के पास लोग अपने दैनिक उपयोग की चीजें उपजाते थे—

ककड़ी, कन्द, कुटल, कूष्माण्ड, गोलकद्दू, एरण्ड, पुनर्नवा; मोटी मूलियाँ, प्याज, बथुआ, जीवन्तिका (पोय) और सरसों। इनके पौधे और पल्लवन का भी थोड़ा वर्णन दिया गया है—

कन्द नीचे की ओर बैठता है, केवल लता ऊपर की ओर दीखती है। कूष्माण्ड की लता को लोग घरों पर चढ़ा देते थे या बाँस वगैरह की टाटी लगाकर चढ़ाते थे। गोल कद्दू उनका प्रिय शाक था। सरसों को सींचने के लिये पूरे खेत में क्यारियाँ बनाते थे। सिंचाई के लिये नदियों से नहरें निकाली गई थीं। नदी के फायदेमन्द जल से इन शाकवाटिकाओं की सिंचाई होती थी।[3]

---

१. भुक्तान्ते घृतदिग्धहस्ततलयोरुद्वर्तनं चन्दनं,
पश्चान्नागरखण्डपाण्डुरदलैस्ताम्बूलदानक्रमः।
एकैकस्य, मृणालतन्तुमृदुनो दत्ते ततो वाससी,
देव्या किञ्चिदचिन्त्यमेव भवतः सैन्यातिथेयं कृतम् ॥
स० उ० श्लो० १३

२. षड्साः किल वैद्येषु भरतेऽष्टौ नवाऽपि वा।
तया तु पद्मपत्राक्ष्या सर्वमेकरसीकृतम् ॥ स० उ० श्लो० १४

३. कन्दलितकन्दविशेषाः, कर्कशकर्कटिकाः, विशालकालिङ्गाः कूष्माण्डमण्डितमण्डपाः ....स्थूलमूलकाः पिण्डितपलाण्डवो, वास्तूकवास्तुभूतभूतला .... सर्षपराजिकाराजिराजिताः सरित्सारिणीसारिवादिसेचनसुकुमारपल्लवितविविधशाकाः शाकवाटिकाः ॥ ष० उ० पृ० ३८८

भौगोलिक विवरण

नलचम्पू में विभिन्न नगरों, तत्कालीन कतिपय प्रसिद्ध जनपदों, पर्वतों और नदियों का भी यथास्थान वर्णन हुआ है। कवि दक्षिणदेश की भूमि से निःसन्देह सर्वाधिक परिचित है। इसीलिये देश के दक्षिणभाग का वर्णन अच्छा हो पाया है। कुण्डिनपुर, विदर्भ, वरदा, गोदावरी, श्रीशैल आदि का अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट वर्णन हुआ है। अङ्ग, कङ्ग, कलिङ्ग, वङ्ग, मगध आदि स्थानों का नाम भर लिया गया है। उनके दिशानिर्देश की कोई चर्चा नहीं है। नलचम्पू में वर्णित स्थलों के आधार पर तथा प्राचीन भारत के भौगोलिक स्थलों की पहचान के अन्य साधनों से कुछ स्थलों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

अंग —

(स७ उ० श्लो० ६) ई० पू० षष्ठ शताब्दी में भारत के सोलह राजनीतिक विभागों में से अंग भी एक था। शक्तिसंगमतन्त्र के पटल सात में अङ्ग की सीमा वैद्यनाथ से लेकर आधुनिक पुरी जिले के भुवनेश्वर तक बतायी गयी है—

वैद्यनाथं समारभ्य भुवनेशान्तगं शिवे।
तावदङ्गाभिधो देशो यात्रायां न हि दुष्यति ॥

शक्तिसंगमतन्त्र, पटल ७

महाभारत के सभापर्व अध्याय २१ के अनुसार मगध में गोतम का आश्रम था। अङ्ग-वङ्ग आदि के राजा उनके आश्रम में आकर बहुत प्रसन्न रहते थे। पुनः तीसवें अध्याय में लिखा गया कि भीमसेन ने जरासन्ध के पुत्र सहदेव से कर लेकर अङ्गदेश के अधिपति कर्ण से युद्ध किया था। इससे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि अङ्गदेश वर्तमान बिहार के पास था।

रामायण के अनुसार राजा दशरथ के मित्र रोमपाद अङ्ग देश के राजा थे और उनके दामाद ऋष्यश्रृङ्ग मुनि उन्हीं के राजभवन में रहते थे। अङ्ग देश की राजधानी का नाम चम्पा था। आधुनिक भागलपुर का ही पुराना नाम चम्पा था। चम्पानगर के नाम से भागलपुर नगर का पश्चिमी अंश आज भी प्रसिद्ध है। कर्णगढ़ नाम से भी यहाँ एक स्थान प्रसिद्ध है जहाँ आजकल पुलिस वालों को प्रशिक्षित किया जाता है।

अयोध्या—

(प्र० उ० पृ० ५३) भारतवर्ष का एक अतिप्राचीन नगर है जो सरयू नदी के दाहिने किनारे पर उत्तरप्रदेश के फैजाबाद जिले में २६° ४८, उत्तर अ० तथा ८२° १२, पूर्व दे० रेखाओं पर स्थित है। इसका महत्त्व इसके प्राचीन इतिहास में ही निहित है। पहले यहाँ कोसल जनपद की राजधानी थी। प्राचीन उल्लेखों के अनुसार तब इसका क्षेत्रफल १६ वर्ग मील था। यहाँ पर सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्वेनसांग आया था। उसके अनुसार यहाँ २० बौद्ध मन्दिर थे तथा

तीन हजार भिक्षु रहते थे। इस प्राचीन नगर के अवशेष अब खण्डहर के रूप में रह गये हैं जिनसे कहीं-कहीं कुछ मन्दिर भी हैं। वर्तमान अयोध्या के प्राचीन मन्दिरों में सीतारसोई तथा हनुमान्गढ़ी मुख्य हैं। कुछ मन्दिर १८ वीं तथा १९ वीं शताब्दी में बने जिनमें कनकभवन, नागेश्वरनाथ तथा दर्शनसिंह मन्दिर दर्शनीय हैं।[1]

आर्यावर्त—

(प्र० उ० पृ० १८) आर्यों के निवास की भूमि आर्यावर्त है। ऋग्वेद के नदीसूक्त[2] में आर्यों की भूमि में प्रवाहित होने वाली विभिन्न नदियों का उल्लेख है जिनमें मुख्य ये हैं—कुभा (काबुल नदी), क्रमु (कुर्रम), गोमती (गोमल), सिन्धु, परुष्णी (रावी), शुतुद्री (शतलज), वितस्ता (झेलम), सरस्वती, गंगा तथा यमुना। यह वर्णन वैदिक आर्यों के निवासस्थल की सीमा माना जा सकता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में कुरु तथा पञ्चाल देशों को आर्यसंस्कृति के केन्द्र के रूप में माना गया है। शतपथब्राह्मण का कथन है कि कुरु तथा पाञ्चाल की ही भाषा सर्वोत्तम तथा प्रामाणिक है। उपनिषद्काल में आर्यसभ्यता की प्रगति काशी तथा विदेह जनपदों तक फैली। परिणाम यह हुआ कि मिथिला से पंजाब तक की भूमि आर्यों के निवास के रूप में उपनिषदों में स्वीकार की गयी। धर्मसूत्रों में आर्यावर्त की सीमा के विषय में बड़ा मतभेद है। वसिष्ठधर्मसूत्र (१-८-९) में आर्यावर्त की यह प्रख्यात सीमा निर्धारित की गयी है कि यह आदर्श (विनशन, सरस्वती नदी के लोप होने के स्थान) के पूर्व, कालकवन (प्रयाग) के पश्चिम, पारियात्र तथा विन्ध्य के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में है। अन्य दो मतों का भी यहाँ उल्लेख है कि (क) आर्यावर्त गंगा और यमुना के बीच का भूभाग है और (ख) उसमें कृष्णमृग निर्बाध संचरण करते हैं। बौधायन (धर्मसूत्र १।१।२७), पतञ्जलि (महाभाष्य २।४।१० पर) तथा मनु (मनुस्मृति २।१७) ने भी वसिष्ठोक्त मत को ही प्रामाणिक माना है। मनु की दृष्टि में आर्यावर्त के भीतर ब्रह्मावर्त वाला अंश सर्वाधिक पवित्र है। बौधायन धर्मसूत्र (१।१।३१) में अवन्ती, अंग, मगध, सुराष्ट्र, दक्षिणापथ, उपावृत, सिन्धु, सौवीर आदि देश म्लेच्छ देशों में गिनाये गये हैं, किन्तु आर्यों की संस्कृति और सभ्यता ब्राह्मणों के धार्मिक उत्साह के कारण अन्य देशों में भी फैली जिन्हें आर्यावर्त का अंश न मानना सत्य का अपलाप होगा। इस विषय पर मनुस्मृति के प्रख्यात टीकाकार मेधातिथि का विचार बड़ा उचित प्रतीत होता है। उनका कहना है कि जिस देश में सदाचारी क्षत्रिय राजा म्लेच्छों को जीत कर चातुर्वर्ण्य की प्रतिष्ठा करे और म्लेच्छों को आर्यावर्त के चाण्डालों के समान व्यवस्थित करे, वह देश भी यज्ञ के लिये उचित स्थान है क्योंकि पृथ्वी स्वतः अपवित्र नहीं होती बल्कि अपवित्रों के संसर्ग से ही दूषित होती है, (मनु २।२३ पर मेधातिथि भाष्य)। ऐसे

---

१. हिन्दी विश्वकोश, अं० इले पृ० २०८

२. ऋग्वेद—१०.७५

विजित म्लेच्छ देशों को भी मेधातिथि आर्यावर्त के अन्तर्गत मानने के पक्षपाती हैं। महाभारत (कर्णपर्व ४३।५-८) पञ्जाब को, जो कभी आर्य संस्कृति का वैदिककालीन केन्द्र था, दो दिन भी ठहरने लायक नहीं मानता, क्योंकि यवनों के प्रभाव के कारण शुद्धाचार की दृष्टि से उस युग में यह नितान्त आचारहीन बन गया था। आर्यावर्त ही गुप्तकाल में कुमारीद्वीप के नाम से प्रसिद्ध था। पुराणों में आर्यावर्त 'भारतवर्ष' के नाम से ही विशेषतः निर्दिष्ट है।[1]

कर्णाट—

(हि. उ. पृ. १२७) शक्तिसङ्गमतन्त्र के अनुसार रामनाथ से लेकर श्रीवङ्ग की सीमा तक का साम्राज्य कर्णाट देश है।[2] रामनाथ का वर्तमान नाम रामनाद है। वह भारत के दक्षिण समुद्र के निकट अवस्थित है। श्रीरङ्ग त्रिशिरापल्ली के निकट कावेरी और कोलरूण नदी के मध्य पड़ता है। ऐसा होते शक्तिसङ्गमतन्त्र के मतानुसार भारत का सर्वदक्षिण अंश रामेश्वर से कावेरी नदी पर्यन्त कर्णाट देश ठहरता है। किन्तु महाभारत, मार्कण्डेयपुराण और बृहत्संहिता में कर्णाट, अवन्ती, दशपुर, महाराष्ट्र तथा चित्रकूट के साथ उक्त है।[3] एतदतिरिक्त कतिपय शिलालेखों से यह जाना जाता है कि कर्णाट राजे वर्तमान महिसुर के उपरांश से विजयपुर पर्यन्त समुदाय भूभाग में राज्य करते थे।[4] सम्भवतः इसी भूखण्ड को महाभारत, मार्कण्डेयपुराण और बृहत्संहिता में कर्णाट कहा गया है। श्रीमद्भागवत में दक्षिण कर्णाट का नाम है। यह स्थान कङ्क, वेङ्कट और कूटक नामक जनपद के साथ उक्त है (भागवत ५।६।८)। वर्तमान कर्णाटक का कावेरीकूलस्थ स्थान उक्त दक्षिण कर्णाट हो सकता है।[5]

कर्णाट शब्द स्थानवाचक होते हुए भी बहुत दिनों से स्वतन्त्र जाति अर्थ का बोधक हो गया है। भारत के उत्तराञ्चल में जैसे पञ्चगौड कहने से कान्यकुब्ज, सारस्वत, मैथिल, गौड तथा उत्कल का बोध होता है वैसे ही दाक्षिणात्य लोगों में द्राविड़ शब्द से महाराष्ट्र, तैलङ्ग, द्राविड़, कर्णाट और गुर्जर ब्राह्मण समझे जाते हैं।

---

१. विष्णुपुराण २।३।१, मार्कण्डेयपुराण ५७।५९

२. रामनाथं समारभ्य श्रीरङ्गान्तं किलेश्वरि ।
कर्णाटदेशो देवेशि साम्राज्यभोगदायकः ॥ शक्तिसङ्गमतन्त्र पटल ७

३. अवन्तयो दाशपुरास्तथैवाकणिनो जनः ।
महाराष्ट्राः सकर्णाटाः गोनर्दाश्चित्रकूटकाः ॥ मार्कण्डेयपुराण अ० ५८
"कर्णाटमहाटविचित्रकूटः" बृहत्संहिता १४।१३

४. The Encyclopaedia Indica by N. N. Basu, Vol. IV, p. 136

५. वही ।

कलिङ्ग—

(स. उ. श्लो० ६) जेनरल कनिंघम के अनुसार कलिङ्ग उत्तर-पश्चिम में इन्द्रावती नदी की शाखा गोलिया और दक्षिण-पश्चिम में गोदावरी नदी के मध्य तक था।[1] राप्सन के अनुसार यह उत्तर में महानदी और दक्षिण में गोदावरी तक विस्तृत है। गोदावरी कलिङ्ग की सर्वसम्मत दक्षिणी सीमा है। उत्तर में यह उत्कल से मिला हुआ था। कालिदास के अनुसार यह उत्तर में उत्कल से मिला हुआ था।[2] कालिदास के अनुसार महेन्द्रगिरि पर कलिङ्गराज का आधिपत्य था। यह पर्वत कलिङ्ग और उत्कल दोनों में स्थित है। इस पर्वत की उभयत्रवर्तिता सीमानिर्धारण में कठिनाई उपस्थित कर देती है। सामान्यतः इन्द्रावती की गोलिया शाखा को कलिङ्ग का उत्तरी हद मान लिया जाता है।[4]

काञ्ची—

(प्र. उ. पृ. ३९) दक्षिणभारत का आधुनिक काञ्चीपुरम् भारत की प्रसिद्ध सात नगरियों में से एक है। इसका उल्लेख महाभारत, स्कन्दपुराण, ऐहोल शिलालेख, विक्रमाङ्कदेवचरित, तोलतन्त्र और बृहन्नीलतन्त्र आदि में हुआ है।[5]

---

१. Ancient India, p. 164

२. रघुवंश ४।३८

३. रघुवंश ४. ३९, ६. ५४

४. डॉ० भगवतशरण उपाध्याय : कालिदास का भारत, भाग १, पृ० ९२

५. असृजत् पह्लवान् पुच्छात् प्रस्नवाद्द्राविडाञ्छकाम् ।
शकृतश्चासृजत् काञ्चीन् शबरांश्चैव पार्श्वतः ॥

महाभारत आदिपर्व १७६।३४

ग्रामाणां नवलक्षञ्च काञ्चीपुरे प्रकीर्तितम् ।

स्कन्दपुराण, कुमारिका खण्ड अ० ३७

आक्रान्तात्मबलोन्नतिं बलरजस्सञ्छन्नकाञ्चीपुरः ।
प्राकारान्तरितप्रतापमकरोद् यः पल्लवानां पतिम् ॥

ऐहोल शिलालेख—५०७ शक

नाभिमूले महेशानि अयोध्यापुरी संस्थिता ।
काञ्चीपीठं कटिदेशे श्रीहट्टं पृष्ठदेशके ॥ तोडलतन्त्र नवम उल्लास
काञ्च्यां कनककाञ्ची स्यादवन्त्यामतिपावनी ।

बृहन्नीलतन्त्र ५म पटल

कामरूप—

(प्र. उ. पृ. ३९) वर्तमान आसाम प्रदेश का एक विस्तृत जिला। इसके उत्तर भूटान, पूर्व दरङ्ग एवं नौ गांव जिला, दक्षिण खसिया पहाड़ और पश्चिम ग्वालपाड़ा जिला है। कामरूप का बड़ा शहर गोहाटी है। गोहाटी का प्राचीन नाम प्राग्ज्योतिषपुर था।[1] प्राचीन काल में कामरूप का आयतन आज की अपेक्षा विशाल था। स्कन्दपुराण कुमारिकाखण्ड (अ. ३७) के अनुसार कामरूप में नव लाख ग्राम थे—कामरूपे च ग्रामाणां नवलक्षाः प्रकीर्तिताः। वर्तमान आसाम, कूचविहार, जलपाईगोड़ी और रंगपुर कामरूप के भीतर था।[2] योगिनी तन्त्र (२।८ पटल) के अनुसार करतोया से दिक्करवासिनी तक कामरूप विस्तृत है। इसकी उत्तर सीमा में कञ्जगिरि, पश्चिम में करतोया नदी, पूर्वसीमा में तीर्थश्रेष्ठ दिक्षु नदी और दक्षिण में ब्रह्मपुत्र नद तथा लाक्षा नदी का सङ्गमस्थल है। यह सौ योजन लम्बा तथा तीस योजन चौड़ा था। कालिकापुराण में भी करतोया इसकी सीमा मानी गयी है।[3]

कुण्डिनपुर—

(द्वि. उ. पृ. ११९) कुण्डिनपुर में विदर्भ की राजधानी थी जो कुण्डनपुर है और बरार की अमरावती से प्रायः चालीस मील पूर्व है।[4] अधिकांश प्रचार तो यह है कि सुरवती जिले का कौण्डिन्यपुर ही कुण्डिनपुर है। नागपुर के पं० राजेश्वर मनोहर काटे, जो इस प्रसङ्ग में कई पत्र प्रकाशित कर चुके हैं, ने मुझे सूचित किया है कि उनके मत में विदर्भ के बुलदाना जिले का लोणार नामक गांव प्राचीन कुण्डिनपुर है। अपने मत की सिद्धि के लिये उन्होंने नलचम्पू के वर्णन को ही आधार बनाया है। कुण्डिनपुर का निर्देश करते हुए त्रिविक्रम ने निम्नलिखित श्लोक दिया है—

देशानां दक्षिणो देशस्तत्र वैदर्भमण्डलम्।
तत्रापि वरदातीरमण्डलं कुण्डिनं पुरम्॥ २०॥

इसी श्लोक के आधार पर कौण्डिन्यपुर और लोणार दोनों मतों की स्थापना की जाती है। कौण्डिन्यपुर पक्ष के मानने वाले लोग इसका अनुवाद इस तरह करते हैं—विभिन्न देशों में (वरिष्ठ) दक्षिण देश है, उस (दक्षिण देश) में वैदर्भमण्डल (विदर्भ, विदर्भदेश या विदर्भमण्डल) है, उस (वैदर्भमण्डल—

---

१. डा० भगवतशरण उपाध्याय : कालिदास का भारत, भाग १, पृ० १११

२. हिन्दी विश्वकोश—नगेन्द्रनाथ बसु सम्पादित—भाग ६ पृ० ४३२

३. करतोया सत्यसङ्गा पूर्वभागावधिश्रिता।
यावल्ललितकान्ताऽस्ति तावद्देशं पुरं तदा॥
कालिकापुराण ३८।१२१ श्लो०

४. डौसन : क्लासिकल डिक्शनरी, चतुर्थ संस्करण पृ० १७१

विदर्भ) में वरदा (वर्धा) नदी का तट है जहाँ कुण्डिनपुर (आज का कौण्डिन्य-पुर) है। (इस अनुवाद के अनुसार वर्धा के तट पर का कौण्डिन्यपुर ही कुण्डिनपुर है।)

लोणार पत्र में इसका अनुवाद इस तरह है—विभिन्न देशों में (एक) दक्षिणदेश (विदर्भ) है, उस (दक्षिणदेश) में विदर्भा नदी के किनारे का एक क्षेत्र (मण्डल) है जहाँ वरदा (नदी नहीं बल्कि एक स्रोत जिसे गंगा-भोगवती कहते हैं) के तट पर कुण्डिनपुर (लोणार) है।

लोणार में वरदा नामक एक स्रोत है। इसे श्रीगंगाभोगवती कहते हैं। गंगा की तीन धाराओं में से एक भोगवती की धारा है जो पृथ्वी के नीचे बहती है। एक बार महाराज नन्द को इसने वर दिया था इसलिये इसका नाम वरदा पड़ा। कहा जाता है कि प्रयाग से जो एक धारा भीतर ही भीतर लोणार तक आती है उसे ही वरदा या गंगाभोगवती कहते हैं। लोणार का कुण्ड अतिप्राचीन है। उसकी उत्पत्ति किसी ज्वालामुखी आघात के कारण हुई थी। कुण्डिन यह नाम भी कुण्ड से ही सम्बन्ध रखता है। वरदा तथा विदर्भा की चर्चा करते समय त्रिविक्रम वरदा के साथ नदी नहीं लिखते हैं। वरदा, वरदातट, वरदातीर, वरदायास्तीरे, वरदायास्तटे इसी तरह लिखते हैं, वरदा नदी, वरदायाः नद्यास्तटे इस तरह कहीं नहीं लिखते हैं। इसके विपरीत "वहति विदर्भा नदी यत्र" "सैषा-विदर्भा नदी" "नद्यास्तीरे विदर्भायाः" विदर्भा के साथ नदी शब्द का अनेक बार प्रयोग मिलता है।

इससे अनुमान लगाया जाता है कि कवि को वरदा नाम की किसी नदी से तात्पर्य नहीं है, वह एक स्रोतविशेष को कहना चाहता है। श्री काटे खड्कपूर्णा को विदर्भा मानते हैं जो पार्थपुर (पाथरी) में गोदावरी से मिलती है। सूर्य पण्डित कृत लीलावती टीका के एक पद्य से खड्गपूर्णा और विदर्भा की एकता स्पष्ट हो जाती है—

आस्ते त्रस्तसमस्तदोषनिचयं गोदाविदर्भायुतेः,
क्रोशेनोत्तरतस्तदुत्तरतटे पार्थाभिधानं पुरम्।
तत्रासीद् गणकोत्तमः पृथुयशाः श्रीनागनाथाभिधो,
भारद्वाजकुले सदैव परमाचारो द्विजन्माग्रणीः॥

महाराष्ट्र के परभाणी जिला स्थित पार्थपुर के पास खड्गपूर्णा ही गोदावरी से मिलती है; अतः इसी को गोदाविदर्भायुतिः से यहाँ संकेतित किया गया है। खड्कपूर्णा तट से छः मील की दूरी पर लोणार है जो प्राचीन कुण्डिनपुर है।

नलचम्पू के अनुसार कुण्डिनपुर के पश्चिम भाग में भार्गव का आश्रम था।[1] यह आश्रम आज भी लोणार के समीप अपनी भग्नावशेष दशा में विद्यमान

१. यस्य च पश्चिमदेशे......भार्गवस्याश्रमः॥ न० च० पृ० १२२

है। इसकी छत में बलराम और रुक्मी का युद्ध-दृश्य खुदा हुआ है। रुक्मिणी जो कुण्डिन पुर की थी, के हरण के प्रसङ्ग के ये दृश्य हैं। इन आधारों पर कुण्डिनपुर का लोणारि के साथ ऐक्य स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। कौण्डिन्यपुर तथा वर्धा वाली बात बहुप्रचलित, बहुसम्मत तथा उच्चारणसाम्य आदि आधारों पर प्रमाणित है। लोणार वाला पक्ष भी विद्वानों के सामने उपलब्ध युक्तियों के साथ प्रस्तुत कर दिया जाता है। लोणार वाले पक्ष में अन्तरङ्ग तथा बहिरङ्ग प्रमाणों की प्रचुरता है।

कुन्तल—

(प्र० उ० पृ० ३९) कुन्तल वर्तमान कोंङ्कण के पूर्व, कोल्हापुर के उत्तर, हैदराबाद के पश्चिम, कृष्णा नदी के उभय पार्श्व एवं मालपूर्वा और वर्धा नदी के मध्य स्थल, उत्तर में कल्याणपुर से दक्षिणपूर्व आदनी जिला तक विस्तृत था।

दक्षिण महाराष्ट्र 'अखवा' विभाग के मध्य जो रेल पथ लगा उसमें आठरोड के उत्तर कृष्णा नदी के दक्षिण कुन्तल रोड नामक एक स्थान है। सम्भवतः उसी के पास महाभारतोक्त दक्षिण कुन्तक की राजधानी कुन्तल नगरी थी।[1]

कुन्तल की चर्चा महाभारत एवं बृहत्संहिता में भी आयी है।[2]

कुरुक्षेत्र—

(प० उ० पृ० ३३९) कुरुक्षेत्र एक प्राचीन पुण्यभूमि है। राजर्षि कुरु ने इस भूमि का कर्षण किया था इसलिये इसका नाम कुरुक्षेत्र पड़ गया।[3] ऋग्वेदीय ऐतरेय ब्राह्मण (७।३०), शुक्लयजुर्वेदीय शतपथब्राह्मण (११।५।१।४।), कात्यायनश्रौतसूत्र (२४।६।३४), तैत्तिरीयआरण्यक (५।१) प्रभृति वैदिक ग्रन्थों में भी कुरुक्षेत्र का उल्लेख मिलता है। शतपथब्राह्मण (४।१।५।१३) के मत से उक्त स्थान में देव यज्ञ करते थे। वर्तमान थानेश्वर को कुरुक्षेत्र कहा जाता है।[4] कुरुक्षेत्र का परिमाण बारह योजन माना जाता है।[5] कुरुक्षेत्र माहात्म्य के अनुसार उसमें दो सौ पैंसठ तीर्थ अवस्थित हैं।

---

१. नगेन्द्रनाथव सुसम्पादित हिन्दी विश्वकोष, भाग ६, पृ० ६५

२. महाभारत भीष्म पर्व, ९।३९
   भीष्म पर्व ९।५२
   भीष्म पर्व ९।६०
   बृहत् संहिता १६।१२

३. महाभारत शल्य० ५३।२

४. कालिदास का भारत, भाग १ पृ० ११९

५. धर्मक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं द्वादशयोजनावधि। हेमचन्द्र ४।१६

गुर्जर—

(द्वि० उ० पृ० ८८) प्राचीन गुर्जर वर्तमान बड़ौदा, खेड़ा और जावरा जिले के उत्तर से राजपूताना की दक्षिण सीमा तक विस्तृत था।[1]

त्रिपुष्कर—

(तृ० उ० पृ० १४४) अजमेर के पास का वर्तमान पुष्कर तीर्थ। पद्मपुराण के अनुसार यहाँ ज्येष्ठ पुष्कर, मध्यम पुष्कर और कनिष्ठ पुष्कर तीन ह्रद हैं। इसका परिमाण सौ योजन है।[2] पद्म, नारद आदि विभिन्न पुराणों में इस पुण्य-क्षेत्र का माहात्म्य वर्णित है।[3]

नासिक्य—

(प्र० उ० पृ० २९) महाराष्ट्र में बम्बई के उत्तर पूर्व में स्थित नासिक नाम से प्रसिद्ध तीर्थस्थान। आजकल यहाँ रुपये भी छापे जाते हैं।

निषध—

(प्र० उ० पृ० २७) लैसेन[4] ने निषध को बरार के उत्तर-पश्चिम सतपुड़ा की पहाड़ियों के साथ रखा है। बरगेस ने भी इसे मालवा के दक्षिण में रखा है।[5] त्रिविक्रम ने इसे उदीच्य देश कहा है।[6]

पारसीक—

(तृ० उ० पृ० १६८) पर्सिया का रहने वाला या पर्सिया देश। त्रिविक्रम के समय में पर्सिया से भारत में पक्षी लाये जाते थे और पाले जाते थे।[7]

प्रभासतीर्थ—

(तृ० उ० पृ० १७२) द्वारका के पास का एक प्रसिद्ध हिन्दू तीर्थस्नान। महाभारत के अनुसार यहाँ स्नान करने से राजयक्ष्मा रोग नष्ट होता है।[8]

---

१. न० ना० वसु : हिन्दी विश्वकोश, भा० ११, पृ० ४३२

२. न० ना० वसु : हिन्दी विश्वकोश, भा० १८, पृ० २

३. पद्मपुराण : सृष्टि खण्ड अ० १५

४. डे : ज्यो० डिक्स० आफ एन्स० एंड मेड०, पृ० १४१

५. एन्टिक्विटिज आफ काठियावाड़ एंड कच्छ, पृ० १३१

६. स० उ० श्लो० ११ के आगे

७. पारसीकोपनीतपारावतपतत्त्रिपञ्जरसनाथे। न० च० पृ० २६८

८. पुण्यं प्रभासं समुपाजगाम यत्रोडुराट् यक्ष्मणा क्लिश्यमानः।

म० भा० शान्तिपर्व अ० ३६

भोजकट—

(द्वि० उ० पृ० १२२) नलचम्पू में कुण्डिन के पश्चिम बगल में भार्गव का आश्रम बताया गया है।[१] यहाँ भार्गव का एक विशेषण 'भोजकटकूपजन्मा' दिया गया है। चण्डपाल के अनुसार भोजकटकूप एक स्थान का नाम है।[२] 'शुक्रः भोजकटेऽभवत्' यह एक श्रुति भी उन्होंने अपनी टीका में उद्धृत की है।[३] इससे स्पष्ट है कि कुण्डिनपुर के समीप भार्गवाश्रम के पास विदर्भ में भोजकट नाम का स्थान था। यहीं पर भार्गव का जन्म हुआ था। भोजकट के राजा दण्डक पर नाराज होकर शुक्राचार्य ने पत्थर बरसाकर सम्पूर्ण विदर्भ मण्डल को नष्ट कर दिया था।[४] ऐसा प्रतीत होता है कि विदर्भ में भोजकट एक नगर था जहाँ विदर्भ का शासक या उपशासक रहता था। विष्णुपुराण में भोजकट नाम के नगर का वर्णन हुआ है,[५] जो विदर्भ के राजा भीष्मक के पुत्र रुक्मी द्वारा स्थापित कहा जाता है। महाभारत में भी रुक्मिण् और भोजकट के नाम आये हैं और ये नर्मदा और अवन्ती के पास रखे गये हैं।[६] नलचम्पू, विष्णुपुराण तथा महाभारत के उपर्युक्त साक्ष्यों के आधार पर मालूम पड़ता है कि भोजकट कुण्डिनपुर के समीप का कोई नगर था।

मगध—

(स० उ० श्लोक ६) नलचम्पू में मगध का विशेष वर्णन नहीं किया गया है। स्वयंवर में आये हुए राजाओं की सूची में मगध का भी उल्लेख है। रामायण और महाभारत में भी मगध की चर्चा है।[७] पुष्पपुरी (पटना) मगध की राजधानी थी। मगध की उत्तरी सीमा गङ्गा, दक्षिणी सीमा विन्ध्याचल, पूर्वी सीमा मुदागिरि (मुङ्गेर) तथा पश्चिमी सीमा चरणाद्रि (चुनार) है।[८]

मध्यदेश—

(प्र० उ० पृ० ३९) हिमालय और विन्ध्याचल तथा प्रयाग एवं कुरुक्षेत्र के बीच की भूमि को मध्यदेश कहते थे।[९]

महाराष्ट्र—

(च० उ० पृ० २३०, प० उ० पृ० ३८३) नलचम्पू में महाराष्ट्र को वरदातट पर स्थित बतलाया गया है। इसके समीप विदर्भा नदी बहती है।[१०]

---

१. यस्य च पश्चिमदेशे······भार्गवस्याश्रमः। न० च० पृ० १२२
२. चण्डपाल : च० च० टीका, पृ० १२२ ३. वही।
४. न च०, पृ० ११२ मूल तथा टीका।
५. विल्सन का अनुवाद, भाग ५, पृ० ६९–७१
६. भ० श० उपाध्याय: कालिदास का भारत, भा० १, पृ० ११६
७. रामायण, आदिकाण्ड, १९–३२; महाभारत, सभापर्व, अ० २४
८. मगधन लिट्रेचर : ओरिजिनल इन्हैबिटेन्ट्स आफ मगधः म० म० हरप्रसाद शास्त्री, पृ० १
९. हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः॥ मनु० २–२१
१० वीरपुरुष तदेतद् वरदातटनामकं महाराष्ट्रम्।

लंका—

(प्र० उ० पृ० १३) नलचम्पू में लंका का कोई भौगोलिक वर्णन नहीं है। श्लेष के प्रसङ्ग में केवल सङ्केत मात्र आया है। कालिदास ने लंका का प्रयोग सिंहल के अर्थ में किया है।[1] कालिदास के वर्णन के अनुसार लंका भारत से दक्षिण में था। राम इन्द्र के वायुयान से आते समय वायुमार्ग का वर्णन करते हैं। वे सब से पहले भारत सागर और स्वनिर्मित सेतुबन्ध पर पहुँचते हैं। वायुयान जैसे-जैसे उत्तर की ओर बढ़ता है, मलय, पञ्चवटी और जनस्थान समीप आते जाते हैं।[2] इससे स्पष्ट है कि लंका दक्षिण की ओर है इसीलिये भारत आने के लिये राम को अपना यान उत्तर की ओर लाना पड़ा।

वंग—

(स० उ० श्लो० ६) नलचम्पू में वंग पर कोई भौगोलिक संकेत नहीं है। स्वयंवर के प्रसङ्ग में इसका उल्लेख मात्र हुआ है। डा० भगवत शरण उपाध्याय[3] इसे टिपेरा के पश्चिम मानते हैं। माधवचम्पू में वंग उसे कहा गया है जिससे होकर पद्मा और ब्रह्मपुत्र प्रवाहित होती हैं। पार्जिटर वंग का एकीकरण उस स्थान से करते हैं जहाँ वर्तमान मुर्शिदावाद, नदिया, यशोहर, राजशाही के भाग, पवना और फरीदपुर के जिले अवस्थित हैं।[4] डा० उपाध्याय भी इस मत से सहमत हैं किन्तु मुर्शिदावाद को वे वंग की सीमा में नहीं रखते।

विदर्भ—

(द्वि० उ० पृ० ११८) नलचम्पू में विदर्भ दक्षिण देश के रूप में वर्णित है। भोजकट और कुण्डिनपुर उसके भीतर बताये गये हैं।[5] नर्मदानदी से यह दक्षिण था, क्योंकि नल को कुण्डिनपुर जाते समय मेकलकन्या (नर्मदा) को पार करना पड़ा है।[6] इसमें प्रवेश करने के लिये अज को भी नर्मदा नदी पार करनी पड़ी थी।[7] आज का बरार, खान देश, निजाम राज्य का भाग और मध्यभारत का भाग—सब मिलकर विदर्भ है।[8]

विशेषक—

(प्र० उ० पृ० ३९) तिलक के अर्थ में विशेषक[9] का प्रयोग होता है। विशेषक नाम का कोई देश भी था किन्तु नलचम्पू में उसके सीमा-निर्धारण के लिये कोई संकेत नहीं है।

दक्षिणसरस्वती सा वहति विदर्भा नदी यत्र ॥ न० च० ष० उ० श्लो० ६६

१. रघु० ६–६२, १२–६३. ६६ २. रघु १३· २–१८

३. कालिदास का भारत, भाग १. पृ० ९०

४. एन्सेन्ट कन्ट्रीज इन ईस्टर्न इण्डिया : जे०ए० एस्० बी०, १८९७ पृ० ८५

५. न० च०, पृ० ११८–१२२

५. समुत्तीर्य भगवतीं मेकलकन्याम्। न० च० पृ० ३२३

७. रघुवंश ५. ४२-४३

८. डा० भ० श० उपाध्याय : कालिदास का भारत, भा० १, पृ० ११६

९. न० च० पृ० १७

तापी—

(कालिन्दी) (च० उ० पृ० २३०, प० उ० पृ० ३३९) नलचम्पू (च० उ० श्लो० २४) में कालिन्दी और तापी[1] का उल्लेख हुआ है। कालिन्दी, तापी और यमुना एक ही नदी के नाम हैं। यमुना बन्दरपुच्छ पर्वत के एक भाग कलिन्द गिरि से निकलती है। इसीलिये इसे कलिन्दकन्या या कालिन्दी कहते हैं। त्रिकाण्डशेष (तापी तु यमुना यमी) के अनुसार तापी यमुना का पर्याय है। त्रिविक्रम ने इसे भानुसुता शब्द से वर्णन किया है[2] जो यमुना का विशेषण बना करता है। यमुना प्रयाग के पास गंगा से मिलती है।

नर्मदा—[3]

(च० उ० पृ० २३०, प० उ० पृ० २८०) कुण्डिनपुर जाते समय नल ने मेकलकन्या (नर्मदा) को पार किया है। नर्मदा नाम से भी इसका वर्णन हुआ है।[4] यह अमरकंटक से निकलकर खम्भात की खाड़ी में गिरती है।

कावेरी—[5]

(प्र० उ० पृ० ७४) नलचम्पू के अनुसार कावेरी दक्षिण की नदी है।[6] आज भी यह इसी नाम से प्रसिद्ध है। दक्षिण भारत की यह मुख्य नदी है। कुर्ग के ब्रह्मगिरि नामक पहाड़ में चन्द्रतीर्थ सोते से निकलती है। भवभूति के अनुसार कावेरी मलयपर्वत को घेर कर बहती है।[7]

गोदावरी[8]—

(प्र० उ० पृ० ७५, च० उ० पृ० २३०) गोदावरी का उद्गम ब्रह्मगिरि में है। ब्रह्मगिरि नासिक से २० मील की दूरी पर त्र्येम्बक नामक गाँव के पास है।[9]

पयोष्णी—

(द्वि० उ० पृ० १२२, ष० उ० पृ० ३४७) दक्षिण भारण में कुण्डिनपुर के पास यह नदी बहती थी।[10] पयोष्णी का आधुनिक नाम पूर्णा है।

मन्दाकिनी—

(च० उ० पृ० २३०) गङ्गा।

वरदा—

(ष० उ० पृ० ३८३) अधिकांश लोग इसे आधुनिक वर्धा कहते हैं। कुछ लोग इसे श्रीगंगाभोगवती मानते हैं। अग्निमित्र ने विदर्भ को जीतकर दो भाग

---

१. न० च० ष० उ० श्लोक १५ २. वही। ३. न० च० पृ० ३२३
४. न० च० प० उ० श्लोक ४२ ५. न० च० पृ० ७४ ६. वही।
७. महावीरचरित ५-३ ८. न० च० च० उ० श्लोक २५
९. भ० श० उ० कालिदास का भारत, भाग १, पृ० ४५
१०. न० च० पृ० १२२

में बाँटा था। दोनों राज्यों की विभाजन-रेखा वरदा थी। डा० उपाध्याय वरदा और वर्तमान वर्धा को एक नहीं मानते।[२]

विदर्भ—

(ष० उ० पृ० ३८६) वर्तमान खडकपूर्णा विदर्भा है जो गोदावरी से मिलती है।[3]

गन्धमादन[४]—

(प्र० उ० पृ० ७५) कालिका पुराण ने इसे कैलास पर्वत के दक्षिण में रखा है।[५] महाभारत[६] और वराह[७] पुराण के अनुसार बदरिकाश्रम की स्थिति इसी पर्वत पर है। कालिदास के अनुसार मन्दाकिनी और अलकनन्दा गन्धमादन के भीतर होकर बहती है।[८]

मलय—

(तृ० उ० पृ० १७०) दक्षिण भारत का चन्दनों से घिरा मलयाचल विल्सन के अनुसार मालावार के पास है।[९]

मेरु—

(काञ्चनाद्रि) (प्र० उ० पृ० ४६) मेरु गढ़वाल का रुद्र हिमालय है।[१०] पद्मपुराण के अनुसार गङ्गा सुमेरुपर्वत से निकलकर भारतवर्ष को पवित्र करती हुई समुद्र में मिलती है।[११]

लोकालोक—

(प्र० उ० ४२) कहा जाता है कि इस पर्वत के एक अंश पर प्रकाश और एक अंश पर अन्धकार रहता है। "प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकलोक इवापरः"।

विन्ध्याचल—

(पं० उ० पृ० २७५) आज भी यह अपने पुराने नाम से ही प्रसिद्ध है।

हिमवान—

(प्र० उ० पृ० ९) अपनी पुरानी ख्याति के अनुसार इसी नाम से प्रसिद्ध है।

---

१. न० च० च० उ० श्लोक २४   २. मालविकाग्निमित्र ५-१३
३. कालिदास का भारत, भाग १, पृ० ४५
४. देखिये-प्रस्तुत भूमिका का कुण्डिनपुर।   ५. का० पु० अ० २२
६. वनपर्व, अ० १४५-१५७   ७. व० पु० अ० ४८
८. विक्रमोर्वशीय, ६० ८७   ९. विल्सन : संस्कृत इङ्गलिश डिक्स०।
१०. महाभारत, शान्तिपर्व, अ० ३३५-३३६   ११. प० पु० ७९

भौगोलिक पदों की सूची

नदियाँ

पर्वत

विषय सूची

प्रथम उच्छ्वास

द्वितीय उच्छ्वास

तृतीय उच्छ्वास

चतुर्थ उच्छ्वास

पञ्चम उच्छ्वास

षष्ठ उच्छ्वास

सप्तम उच्छ्वास

पात्र–परिचय

पुरुष-पात्र

अवसर पाठक	:	भीम और नल के सेवक
इन्द्र, कुवेर	:	लोकपाल
पर्वतक	:	नल का सेवक
पथिक	:	उत्तर दिशा से आया हुआ
पथिक	:	दक्षिण दिशा से आया हुआ
पुरुष	:	दिक्पालों का अनुचर
पुरोधा	:	भीम का पुरोहित
पुष्कराक्ष	:	दमयन्ती का दूत
प्रतीहार	:	नल का सेवक
प्रस्ताव पाठक	:	नल का सेवक.
वाहुक	:	नल का सेनापति
ब्रह्मर्षि	:	जो नल के अभिषेक के समय आये थे।
भद्रभूति	:	नल का दौवारिक
भीम	:	दमयन्ती के पिता तथा कुण्डिनपुर के राजा
मृगयावनपालक	:	नल का सेवक
मुनि	:	पयोष्णी तट के तपस्वी
मौहूर्तिक	:	राजा वीरसेन के ज्योतिषी
यम, वरुण	:	लोकपाल
वीरसेन	:	निषधसम्राट् तथा नल के पिता
वैतालिक	:	नल के सेवक
श्रुतशील	:	नलमन्त्री तथा सालङ्कायन का पुत्र
सालङ्कायन	:	वीरसेन का मन्त्री
सुन्दरक	:	दमयन्ती का किन्नर
सोम शर्मा	:	स्वयंवर निमन्त्रण के लिये उत्तर दिशा की ओर जानेवाला ब्राह्मण
हंस	:	दमयन्ती को लुभानेवाला नल का दूत

स्त्री-पात्र

कक्कोलिका	:	दमयन्ती की चेटी
कलिका	:	,,
किरात कामिनियाँ	:	नर्मदा तट की
गोपी	:	विदर्भातीरचारिणी
गौरी	:	दमयन्ती-चेटी
चकोरी, चङ्गी	:	,,
चन्दना, चन्द्रप्रभा	:	,,
चन्द्रवदना, चन्द्री	:	,,
चम्पा	:	,,
दमयन्ती	:	भीमपुत्री
दन्दिनी	:	दमयन्ती-चेटी
परिहासशीला	:	,,
प्रियंवदिका	:	,,
प्रियंगुमञ्जरी	:	भीमपत्नी तथा दमयन्ती की माता
मज्जनकामिनियाँ	:	राजा भीम की सेविकायें
मालती	:	दमयन्ती-चेटी
रूपवती	:	राजा वीरसेन की पत्नी तथा नल की माता
लवङ्गिका	:	नल की सरोवर-रक्षिका
लवङ्गी	:	दमयन्ती-चेटी
विहङ्गवागुरिका	:	दमयन्ती की किन्नरी
सारसिका	:	नलवनपालिका
सुन्दरी	:	दमयन्ती चेटी
हंसी	:	,,
हंसी	:	नलदूत पक्षिप्रवर हंस की पत्नी

स्त्री-पुरुष

किन्नर मिथुन	:	सुन्दरक और विहङ्गवागुरिका दमयन्ती के सेवक

॥ श्रीः ॥

नलचम्पूः

संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेता

प्रथम उच्छ्वासः

जयति गिरिसुतायाः कामसन्तापवाहि-
न्युरसि रसनिषेकश्चान्दनश्चन्द्रमौलिः ।
तदनु च विजयन्ते कीर्तिभाजां कवीना-
मसकृदमृतबिन्दुस्यन्दिनो वाग्विलासाः ॥ १ ॥

सृष्टिप्रबन्धे चतुराननस्य भावानशेषान्विलसद्विशेषान् ।
विवृण्वती स्वेन वचश्च येन स्याद्भारती बोधविवृद्धये वः ॥

शक्तिस्त्रिविक्रमस्येव जीयाल्लोकातिलङ्घनी ।
दमयन्तीप्रबन्धेन सदा बलिमतोदिता ॥

त्रैविक्रमाणि विषमाणि पदानि यानि
तेषां प्रकाशमभिनन्दति चण्डपालः ।
यं स्थायिभावघटनापटुदृष्टिभाजः
संप्राप्य बिभ्रतितरां रसनिर्भरत्वम् ॥

भङ्गश्लेषनिबन्धाः स्युर्गिरः संदेहमन्दिरम् ।
सम्यक्तदर्थनिश्चित्यै निबन्धोऽयं विधीयते ॥

प्रथममुपमेयमस्मिन्नुपमानमतो विचार्यते सम्यक् ।
अविरोधविरोधावपि गम्यावेवं क्रमेणैव ॥

क्वचन विशेषेण मया यथोचितसमासकारकप्रभृति ।
सुगमत्वान्न यदुक्तं तन्मतिमद्भिः स्वयं ज्ञेयम् ॥

सूक्ष्मार्थाः प्रस्फुरिष्यन्ते कुशाग्राग्रधियां स्वतः ।
तद्व्याख्योपेक्षिता प्रायः संक्षेपाय ततो मया ॥

सकलमङ्गलकारणं दुरितनिवारणमभिधेयोपयोगि चावश्यमेव शास्त्रादौ कविना किमपि प्रणेयं तदेतन्मनसि कृत्वाभीष्टदेवताप्रणतिपूर्वकमेव समारब्धव्यमिति पूर्वाचार्यप्रणीतसमाचारमर्यादानुल्लङ्घनः सूक्तजलनिधिरपि जडैरलब्धमध्यो विचित्रपदपङ्क्तिसरित्पाथोवीचिसंघट्टः श्रीत्रिविक्रमभट्टः प्रतिपादनीयसर्वरसकथोपक्रमे सदा-

श्रृङ्गारत्वादिन्द्रादीनेकान्तशान्तत्वाद्वीतरागप्रभृतीनपहाय सर्वरसात्मकं परमेश्वरं शंकरमेव प्रणुवन्नाह—जयतीत्यादि॥ हैमवत्याः संबन्धिनि कामसंतापवाहिनि कंदर्पदेवपीडां दधान उरसि चान्दनो रसनिषेक इव संतापापहरणाद्रौहणद्रुमरसाभिषेक इव योऽसौ भगवांश्चन्द्रमौलिः सुधांशुशेखरः स जयति सर्वोत्कृष्टो भवति। 'सर्वोत्कृष्टश्च सर्वेषां नमस्यः स्यात्' इति नमस्कारः प्रतीयते। नमस्कारेण च प्रबन्धकर्तृव्याख्यातृश्रोतृणामिष्टफलसंपत्तिः। रसा निषिच्यन्तेऽस्मिन्निति रसनिषेको रसाधार इत्यप्येकदेशेन प्रतिपत्तव्यम्। रसाश्च श्रृङ्गारादयः। तांश्च कवय एव व्यक्तीकर्तुं प्रभवन्ति। अतस्तदनु रसाधारस्य भगवतः पश्चाद्रसव्यक्तिनिमित्तानां कवीनां वाल्मीकिव्यासकालिदासप्रभृतीनां निरन्तररसाविष्कारिणो वाग्विलासा विजयन्ते॥ अत्र च पूर्वार्धेन वक्ष्यमाणप्रबन्धार्थोऽपि सूच्यते। गिरिर्भीमनृपः। 'गिरिर्भीमनृपे सूर्ये स्वभावे पर्वते जले' इत्युक्तेः। तस्य सुताया दमयन्त्या दुर्वारस्मरविकारसंतप्त उरसि नलश्चन्दनरसनिषेको भविष्यति। स च चन्द्रवंश्यानां मौलिर्मुकुटायमान इति॥ १॥

पर्वत पुत्री (पार्वती) के काम-सन्तप्त वक्षःस्थल पर चन्दन रस के सिंचन सदृश (शीतल लगने वाले) चन्द्रशेखर (भगवान् शिव) सर्वोत्कृष्ट हैं। इसके बाद यशस्वी कवियों के निरन्तर सुधा-विन्दु बरसाने वाले वाणी के विलास भी उत्कृष्टताशाली हैं।

["ज्ञानमिच्छेत्तु शङ्करात्" ज्ञान की कामना तो भगवान् शंकर से करनी चाहिये। इस नियम के अनुसार कवि समस्त मङ्गलों के मूल तथा समस्त रसों के निकेतन भगवान् चन्द्रमौलि को नमस्कार करता है। इसके बाद यशस्वी कवियों के वाग्विलास के प्रति श्रद्धा व्यक्त करता है। वाग्विलास पद से उक्तिवैचित्र्य की ओर संकेत किया गया है। किन्तु केवल वाणी की वक्रता ही कवि को ईप्सित नहीं है। वह वैसे वाग्वैचित्र्य की प्रशंसा करना चाहता है जिससे निरन्तर सुधा-माधुरी की वर्षा होती रहती है।

"जयति" पद का अर्थ "सर्वोत्कर्षेण वर्तते" किया जाता है। जिस व्यक्ति में सर्वोत्कृष्टता आ जाती है वह अनायास ही प्रणम्य वन जाता है। इसीलिये प्रणाम के अर्थ में यह पद प्रयुक्त हुआ करता है।

प्रस्तुत पद्य के पूर्वार्ध भाग में वर्णयिष्यमाण कथातत्त्व की ओर भी संकेत किया गया है।

"गिरिर्भीमनृपे सूर्ये स्वभावे पर्वते जले" इस उक्ति के आधार पर गिरि शब्द का "राजा भीम" अर्थ भी होता है। चन्द्रमौलि शब्द का दूसरा अर्थ नल भी है; क्योंकि नल चन्द्र (चन्द्रवंशियों में) मौलि (श्रेष्ठ) था।

अर्थात् राजा भीम की पुत्री दमयन्ती के काम-सन्तप्त वक्षःस्थल पर चन्दनरस के सिञ्चन-सदृश नितान्त शीतल प्रतीत होने वाले चन्द्रमौलि नल सर्वोत्कृष्ट हैं॥ १॥

जयति मधुसहायः सर्वसंसारवल्ली-
जननजरठकन्दः कोऽपि कन्दर्पदेवः।
तदनु पुनरपाङ्गोत्संगसंचारितानां
जयति तरुणयोषिल्लोचनानां विलासः॥ २॥

स किंसहायः किंमूलः किमुपकरणश्च कामो यो जगतः शिवतातिभ्यां शिवाभ्यामपि स्वीकृत इत्याह—जयतीति। कोऽप्यद्भुतवैभवः कंदर्पदेवो जयति। किंभूतः। मधुसहायो वसन्तसखः। नहि सखायमन्तरेण कश्चिन्महाकार्यकरणाय प्रवर्तते। तथा सर्वस्याः संसारवल्ल्या उत्पादनाय कठिनकन्दः। कठिनकन्दाचविच्युता वीरुद्वृद्धिः। कंदर्पदेवादनन्तरं पुनःपुनर्नेत्रापाङ्गप्रदेशक्रोडे कामुकजनलक्ष्यीकरणाय प्रवर्तितानां नववयःसुन्दरीनेत्राणां कटाक्षादिविभ्रमो जयति॥ २॥

सम्पूर्ण संसाररूप लता को उत्पन्न करने में कठिन कन्द, वसन्त (जैसे) मित्रवाले अलौकिक शक्ति-सम्पन्न कामदेव उत्कृष्टताशाली हैं। तदनन्तर तरुणियों के नेत्रप्रान्तरूप क्रोड़ से संचालित होनेवाले आँखों के (कटाक्ष आदि) विलास सर्वोत्कृष्ट हैं।

[जैसे कठिन कन्द होनहार लता को उत्पन्न करता है। वैसे वसन्त की सहायता प्राप्त किया हुआ अलौकिक महिमावाला कामदेव इस होनहार संसार को उत्पन्न करता है। इसीलिये उसे संसाररूप लता को उत्पन्न करनेवाला कठिन कन्द कहा गया है। कटाक्ष आँखों का विलास है। वह नेत्रों के प्रान्त भागरूप गोद में उत्पन्न होता है। और वहीं विलसित होता है। बच्चे जैसे जननी की गोद में खेलते हैं वैसे आँखों से उत्पन्न होने वाले कटाक्ष अपनी जननी आँखों के अपाङ्ग रूप गोद में खेल रहे हैं। अर्थात् कामुक जनों को लक्ष्य कर छोड़े गये कामिनियों के कटाक्ष भी उत्कृष्टताशाली हैं॥ २॥]

अगाधान्तःपरिस्पन्दं विबुधानन्दमन्दिरम्।
वन्दे रसान्तरप्रौढं स्रोतः सारस्वतं वहत्॥ ३॥

अथ यदवाचि 'तदनु च विजयन्ते वाग्विलासाः' इति तद्गुणानेव श्लोकत्रयेणाह—अगाधेति॥ सरस्वती भारती नदीविशेषश्च। तस्या इदं सारस्वतम्। स्रोतः प्रवाहं वन्दे नमस्कुर्वे स्तुवे वा। नदीपक्षे प्रवाहस्य तद्धर्मत्वान्न किंचिद् दुर्घटम्। परं भारतीपक्षेऽन्यधर्मस्यान्यत्रारोपलक्षणसमाधिना गिरां नैरन्तर्येऽपि स्रोतःशब्दः। यथा 'उन्मिमील कमलं सरसीनां कैरवं च निमिमील मुहूर्तात्' इत्यत्रोन्मीलननिमीलने नेत्रधर्मावपि कमलकुमुदयोरारोपिते किं कुर्वत्। वहत्प्रवर्तमानम्। पक्षे प्रसरत्। तथा अगाधो महार्थतयालब्धमध्योऽन्तर्मध्ये प्रकरणान्मनसि परिस्पन्दश्चमत्कारी स्फूर्तिविशेषो यस्य। पक्षेऽगाधो गम्भीरोऽन्तर्मध्ये परि समन्तात्स्पन्दश्चलनमावर्तविशेषो यस्य तथा। विबुधानां देवानां पण्डितानां वा हर्षस्थानम्

भारतीविलासेन हि सुराणामपि प्रमोदः संपद्यते। पक्षे वीनां पक्षिणां मध्ये बुधा राजहंसास्तेषां हर्षस्थानम्। तथा रसानां शृङ्गारादीनामन्तरेण विशेषेण प्रौढं प्रगल्भम्। पक्षे रसाया भूमेरन्तरे मध्ये प्रवहति स्म। कर्तरि क्तः। सरस्वती किल म्लेच्छदेशे न्यग्भूय तदन्ते पुनरुद्भवतीति लोकश्रुतिः॥ ३॥

सरस्वती नदी पक्ष—अथाह गहराई के बीच तरङ्गित होने वाले, देवताओं के आनन्द के निकेतन रसान्तर (पृथ्वी के बीच) में बड़ी प्रगल्भता से बहने वाले सरस्वती नदी के प्रवाह को नमस्कार करता हूँ।

वाणीपक्ष—हृदय में विशिष्ट चमत्कार उत्पन्न करने वाले, विद्वानों और देवताओं के हर्षस्थान (शृङ्गार आदि) विभिन्न रसों की विविधताओं से समृद्ध सरस्वती (वाणी) के विकसनशील प्रवाह को प्रणाम करता हूँ।

[सरस्वती नदी देवताओं को अधिक प्रिय है इसका प्रवाह पृथ्वी के भीतर ही है। वह प्रत्यक्ष नहीं है। कहा जाता है कि प्रयाग में सरस्वती और यमुना गंगा से मिलती हैं। यमुना की धारा तो प्रत्यक्ष है किन्तु सरस्वती परोक्ष रूप में ही मिली हुई हैं।

नदीपक्ष के श्लिष्ट शब्द—अगाधान्तःपरिस्पन्द (अथाह गहराई के बीच तरङ्गित होने वाले), विबुधानन्दमन्दिर (देवताओं के आनन्द-निकेतन), रसान्तरप्रौढ़ (रसा—पृथ्वी—के भीतर प्रौढ़) बहते हुये सारस्वत (सरस्वती नदी के) प्रवाह (धारा) को प्रणाम करता हूँ।

वाणीपक्ष—अगाधान्तःपरिस्पन्द (हृदय में विशिष्ट चमत्कार उत्पन्न करने वाला), विबुधानन्दमन्दिर (विद्वानों के आनन्द का निकेतन), रसान्तर-प्रौढ (शृङ्गार आदि विभिन्न रसों की विविधताओं से समृद्ध) सरस्वती के विकसनशील प्रवाह को प्रणाम करता हूँ॥ ३॥

प्रसन्नाः कान्तिहारिण्यो नानाश्लेषविचक्षणाः।
भवन्ति कस्यचित्पुण्यैर्मुखे वाचो गृहे स्त्रियः॥ ४॥

प्रसन्ना इति॥ कीदृश्यो वाचः। नानानेकधा प्रसन्नाः प्रसादगुणोपेताः। शब्दगुणः प्रसाद ओजोमिश्रितशैथिल्यात्मा। अर्थगुणस्तु प्रसादो वैमल्यं झटित्यवबोधगोचरत्वम्। तथा च काव्यप्रकाशकारः—'श्रुतिमात्रेण शब्दानां येनार्थप्रत्ययो भवेत्। साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणः स्मृतः'॥ इति। यद्वा प्रसन्ना समासरहिताः उक्तं च—'माधुर्यमभिवाञ्छन्तः प्रसादं च सुमेधसः। समासवन्ति भूयांसि न पदानि प्रयुञ्जते॥' इति। तथानेकधा कान्तिगुणेन हर्तुं मनो वशीकर्तुं शीलं यासाम्। शब्दगुणः कान्तिरौज्ज्वल्यम्। ग्राम्यादिभिरनभिप्रयुक्तत्वमिति यावत्। अर्थगुणस्तु कान्तिर्दीप्तरसत्वम्। तथा नाना शब्दगुणार्थगुणार्थालंकारशब्दालंकाररूपं चतुर्विधं श्लेषं विशेषेण चक्षते याः। शब्दगुणो मसृणत्वं श्लेषः। अर्थगुणस्तु श्लेषो घटना। शब्दकृतः शब्दालंकारः श्लेषः। अर्थकृतस्तु श्लेषोऽर्थालंकारः।

स्त्रियस्तु प्रसन्नास्तोषान्विताः। तथा कान्त्या वपुषो गुणविशेषेण मनोज्ञाः। तथा नानानेकविधे स्पृष्टक-विद्धक-उद्घृष्ट-पीडन-लतावेष्टक-वृक्षाधिरूढ-तिलतण्डुल-क्षीर-नीर-ऊरूपगूढ-जघनोपश्लेष-स्तनालिङ्गन-ललाटिक-रूपे द्वादशविध आलिङ्गने विचक्षणा दक्षाः ॥ ४ ॥

वाणीपक्ष—प्रसन्न (प्रसाद गुण से सम्पन्न), कान्ति गुण के कारण मनोहर तथा विभिन्न श्लेषों को प्रकट करने वाली वाणी किसी अलौकिक पुण्य से ही मुख में आती है।

स्त्रीपक्ष—प्रसन्न (पूर्ण प्रमुदित), कान्ति (सौन्दर्य) से मनोहर तथा विभिन्न श्लेषों (आलिङ्गन विधियों) में प्रवीण स्त्रियाँ किसी अलौकिक पुण्य से ही घर में आती हैं।

[प्रसन्न, कान्ति और श्लेष शब्द प्रसाद, कान्ति एवं श्लेष गुणों की ओर संकेत करते हैं।

आचार्य वामन के अनुसार प्रसाद (शब्द) गुण वहाँ होता है, जहाँ बन्ध की गाढ़ता के साथ शिथिलता भी वर्तमान हो। गाढ़ता और शिथिलता दोनों ही विरुद्ध धर्म हैं। दोनों का एक जगह अवस्थान प्रतिकूल सा लगता है। किन्तु करुण रस के नाटकों में जैसे सुख और दुःख का अद्भुत सम्मिश्रण होता है वैसे ही प्रसाद गुण में भी ओज गुण का मिश्रण रहता है :—

करुणप्रेक्षणीयेषु सम्प्लवः सुखदुःखयोः।

यथाऽनुभवतः सिद्धस्तथैवोजःप्रसादयो ॥ का. सू. वृ. ३. १. ९.

प्रसाद (अर्थ) गुण वहाँ होता है जिस पद से शीघ्र ही अर्थ-प्रतीति हो जाती है।

कान्ति (शब्द) गुण वहाँ होता है जहाँ रचना में उज्ज्वलता (नवीनता) होती है। कान्ति (अर्थ) गुण वहाँ होता है जहाँ रस की दीप्ति लक्षित होती है।

श्लेष शब्द गुण और अलङ्कार दोनों ओर संकेत कर रहा है। अर्थात् शब्द और अर्थ श्लेष गुण एवं शब्दश्लेषालङ्कार तथा अर्थश्लेषालङ्कार।

इन गुणों तथा अलंकारों से युक्त वाणी किसी ही भाग्यवान् के मुख में आती है।

स्त्रीपक्ष में कान्ति और प्रसन्न शब्द सामान्यतः 'सौन्दर्य एवं प्रसन्नतापूर्ण' अर्थ को व्यक्त करते हैं। श्लेष शब्द का आलिङ्गन अर्थ है। आचार्य चण्डपाल ने बारह प्रकार की आलिङ्गन-विधियों का निर्देश किया है ॥ ४ ॥

किं कवेस्तेन काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः।
परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः ॥ ५ ॥

कवि की उस कविता से क्या लाभ जो दूसरों के हृदय पर लग कर हृदय को कंपा नहीं देती तथा धनुर्धारी के उस बाण से क्या लाभ जो दुश्मनों के हृदय पर लग कर (वेदना के मारे) उसके शिर को व्यग्र नहीं कर देता।

[यहाँ 'पर' शब्द शत्रु और अन्य दोनों अर्थों की ओर संकेत करता है ॥ ५ ॥

अप्रगल्भाः पदन्यासे जननीरागहेतवः।
सन्त्येके बहुलालापाः कवयो बालका इव ॥ ६ ॥

अथ कुकविनिन्दाव्याजेन विपरीतगिरामग्राह्यत्वमाह—अप्रगल्भा इति॥ एके कवयो बालका इव सन्ति। किंभूताः कवयः। पदानां सुप्तिङन्तरूपाणां न्यासे नैयत्यप्रयोगेऽप्रगल्भा अनिपुणाः। तथा जनानां विदुषां नीरागे रागाभावे हेतवः कारणम्। नहि तादृशं काव्यं श्रुत्वा रसिकानां कश्चिच्चमत्कारः संजायते। तथा बहुल आलापो येषाम्। एतेन निःसारवक्तृत्वोक्तिः। बालकास्तु पदन्यासे चरणक्षेपेऽनिपुणाः। तथा जनन्या मातू रागहेतवोऽनुरागकारणम्। तथा बह्वीर्लाला निष्ठीवनजलानि पिबन्तीति बहुलालापाः। यद्वा बह्व्यो लाला अप्स्वरूपा येषु॥ 'ऋक्पूः–' इति सूत्रेण समासान्तः॥ ६ ॥

पदों के प्रयोग में अनिपुण, (कविता के प्रति) लोगों में वैराग्य उत्पन्न कर देने वाले बहुत सी. असार बातों को कहने वाले कवि उन बच्चों की तरह हैं जो (पृथ्वी पर) पद (पैर) रखने में अनिपुण, माता के प्रेमोत्पादक (जननी + रागहेतु), तथा बहुत सी अव्यक्त बातों को कहते या बहुत लार पीते रहते हैं।

[कवि-पक्ष—पदन्यास—काव्यार्थ के अनुकूल पदविन्यास। जन + नीराग-हेतु—लोगों में वैराग्य उत्पन्न कर देने वाले। इस तरह की बातें कहते हैं कि लोगों की बुद्धि उद्वेजित होकर दूसरी ओर लग जाती है। बहुलालाप—बहुत सी असार बातों को कहने वाले। कुकवि लोगों की कविता सुन कर विद्वान् लोग उधर आकृष्ट नहीं होते। उनकी रचना में असार तत्त्वों की बहुलता रहती है। बालकपक्ष—पदन्यास—पैर रखना। प्रारम्भ में जब बच्चे पृथ्वी पर पैर रखते हैं तो तलमलाते हुए चलते हैं। दृढ़ता से पैर रखने में निपुण नहीं होते। जननी + रागहेतु—माता के प्रेम के कारण बनते हैं। माता के हृदय में स्नेह बढ़ाते हैं। बहु + लाल + पा—बहुत लार पीते रहते हैं या बहुल + आलाप—विविध अव्यक्त बातें करते रहते हैं ॥ ६ ॥

अक्षमालापवृत्तिज्ञा कुशासनपरिग्रहा।
ब्राह्मीव दौर्जनी संसद्वन्दनीया समेखला ॥ ७ ॥

कारणं विनापि केचित्परोत्कर्षमसहिष्णवः। ततस्तानेव क्षुद्रान्काव्यप्रवृत्तिभङ्ग-हेतून्छद्ममात्रेण गौरवयन्नाह—अक्षेति॥ दुष्टानां कृत्याकृत्य भव्याभव्यविशेषविवेक-

विकलानां जानानामियं दौर्जनी संसत्सभा वन्दनीया नमस्कार्येत्युपहासवाक्यम्। श्लेषतस्तु वन्दे गुरौ करणीया वन्दनीया। केव। ब्रह्मणां विप्राणामियं ब्राह्मी द्विजसभेव। यथा द्विजसभा वन्द्यते तथा दुर्जनसंसदपि वन्द्या। किम्भूता दौर्जनी। अक्षमया रुषा संभाषणस्य वृत्तिं जानाति कोपोल्लापप्रयुग्वाक्प्रसरा। तथा कुशासनस्य कुत्सितशिक्षणस्य स्वीकारो यस्याः। तथा समे साधावपि खला प्रतिपक्षभूता। द्विसभा स्वक्षमालाया भ्रमणं जानाति या। तथा दर्भासनस्य स्वीकारो यस्याः। तथा मेखलया मौञ्ज्या सहिता॥ ७॥

असहनीय (उद्वेजक) बातों एवं व्यवहारों को (ही) जानने वाली, दुष्ट शासन को (प्रशंसापूर्वक) स्वीकार करने वाली, सम (सज्जन) लोगों पर दुष्टता दिखाने वाली दुर्जनों की गोष्ठी, रुद्राक्ष की माला फेरने के व्यवहार को जानने वाली, मुञ्ज की बनी हुई करधनी से युक्त ब्राह्मणों की गोष्ठी की तरह प्रणाम करने योग्य है।

[बिना कारण दूसरों से द्वेष करने वाले दुष्टों की सभा को नमस्कार कर देना चाहिये अर्थात् उनसे दूर रहना चाहिये।

दुर्जन-गोष्ठी के साथ विप्रगोष्ठी को शाब्दी समानता दिखायी गयी है।

दुर्जन-गोष्ठीपक्ष—अक्षम + आलाप + वृत्ति + ज्ञा—असहनीय बातों एवं व्यवहारों को जानने वाली। कु + शासन + परिग्रहा—अभद्र शिक्षा या अभद्र आज्ञा को ग्रहण करने वाली। समेखला—सज्जन के ऊपर दुष्टता दिखाने वाली।

विप्रगोष्ठीपक्ष—अक्ष + माला + अपवृत्तिज्ञा—रुद्राक्ष या कमलाक्ष की माला जपने की विधि जाननेवाली। कुश + आसन + परिग्रहा—कुश का आसन स्वीकार करने वाली। समेखला-करधनी युक्त। यों तो करधनी सभी लोग पहनते हैं किन्तु तपस्वी लोग विशेष ढंग की करधनी धारण करते हैं॥ ७॥

रोहणं सूक्तरत्नानां वृन्दं वन्दे विपश्चिताम्।
यन्मध्यपतितो नीचः काचोऽप्युच्चैर्मणीयते॥ ८॥

रोहणमिति॥ सुभाषितान्येव रत्नानि तेषां प्रशस्तरत्नानां वा रोहणमुत्पत्तिस्थानं माणिक्यशैलो वा। 'कच बन्धने' कच्यन्तेऽर्था अनेनास्मिन् वा काचः प्रबन्धः क्षारमृद्विकारश्च। विपश्चितो ह्येतादृशमपि प्रबन्धं व्याख्यानप्रागल्भ्यादनुगृह्योत्कर्षं लम्भयन्ति॥ ८॥

मनोहर उक्तिरत्नों के उत्पत्तिस्थान (रोहण) उन विद्वानों के समूह को प्रणाम है जिनके बीच में पड़ा हुआ काच भी उच्च कोटि के मणि की तरह प्रतीत होता है।

[कच बन्धने धातु से निष्पन्न काच शब्द काव्य अर्थ का भी वाचक है। अर्थात् जिसमें सहृदयग्राह्य अर्थों का निबन्धन किया जाय वह काच है। रेह को भी काच कहते हैं और शीशा तो उसका सामान्य अर्थ है ही।

तात्पर्य यह कि विद्वानों के बीच पड़ा हुआ साधारण काव्य भी उनकी आलोचनाप्रवण प्रतिभा के योग से नवीन-नवीन व्याख्याओं से सम्पन्न होकर उल्लसित हो उठता है ॥ ८ ॥

अत्रिजातस्य या मूर्तिः शशिनः सज्जनस्य च ।
क सा वै रात्रिजातस्य तमसो दुर्जनस्य च ॥ ९ ॥

आस्तां सज्जनदुर्जनयोः शीलेन साम्यम् । यावन्मूर्त्यापि महदन्तरमिति निरूपयन्नाह—अत्रीति ॥ अत्रिर्मुनिजातस्य शशाङ्कस्य न त्रिभिर्जातस्य सज्जनस्य च या मूर्तिः सर्वाभीष्टा सा वै स्फुटं रात्रिजातस्य तमसस्त्रिजातस्य दुर्जनस्य च क्व । यतो दुर्जनस्य वैरा वैर प्रधाना । सज्जनस्य स्ववैरा ॥ ९ ॥

अत्रि ऋषि से उत्पन्न होने वाले (अत्रिजात) चन्द्रमा यथा तीन से न उत्पन्न होने वाले (अ + त्रिजात) सज्जन की (प्रसन्न एवं कल्याणमयी) मूर्ति कहाँ और रात्रि से उत्पन्न होने वाले (रात्रिजात) अन्धकार तथा वैरप्रधान (वैरा) एवं तीन से जन्म लेने वाले (त्रिजात) दुर्जन की (अमङ्गलमयी) मूर्ति कहाँ ?

[चन्द्रमा की उत्पत्ति अत्रि से है इसीलिए उन्हें अत्रिजात कहा जाता है । सज्जन भी अत्रिजात हैं क्योंकि उनकी उत्पत्ति वैध पिता से ही हुई रहती है । किसी तीसरे व्यक्ति अर्थात् जार से उनकी उत्पत्ति नहीं होती । तात्पर्य यह कि वे वर्णसङ्कर नहीं होते ।

अन्धकार और दुर्जन दोनों ही वैरात्रिजात होते हैं । अन्धकार वै + रात्रिजात (निश्चित रूप से रात्रिद्वारा उत्पन्न) होता है । दुर्जन की मूर्ति वैरा (वैर प्रधान) और त्रिजात (तीन से उत्पन्न) होती है । सज्जन और दुर्जन में उतना ही अन्तर है जितना प्रकाश और अन्धकार में । सज्जन और दुर्जन में स्वरूपतः महान् भेद हुआ करता है । गुण में कितना भेद होता है, यह कल्पनातीत बात है ॥ ९ ॥]

निश्चितं ससुरः कोऽपि न कुलीनः समेऽमतिः ।
सर्वथासुरसंबद्धं काव्यं यो नाभिनन्दति ॥ १० ॥

निश्चितमिति ॥ सुष्ठु रसाः शृङ्गाराद्यो यत्र तथा बद्धं रचितं काव्यं ग्रन्थं यो नाभिनन्दति स निश्चितं ध्रुवं ससुरो मद्यपः कोऽपि । न च कुलीनः नाभिजातः । सर्वथा समे साधावमतिः । असुरैः संबद्धं मिलितं काव्यं भृगुं (?) यो न नन्दति स सुर देवः कोऽपि । तथा न कौ भूम्यां लीन आश्लिष्टः स्वर्ग एव तस्यावस्थानात् । तथा मा लक्ष्मीः इः कामः, ताभ्यां सहितः समेर्विष्णुस्तत्र सेवनाय मतिर्यस्य । विष्णुपक्षीय इति भावः ॥ १० ॥

काव्यपक्ष—सुन्दर (शृङ्गारादि) रसों से युक्त काव्यवन्ध (काव्य-रचना) का अभिनन्दन जो आदमी नहीं करता है वह निश्चय ही अकुलीन, मद्यप तथा सज्जन से स्नेह नहीं रखता है।

भृगुपक्ष—जो सर्वदा असुरों से सम्वद्ध काव्य (कविपुत्र भृगुमुनि) से सम्वन्ध नहीं रखता है वह निश्चित ही कोई सुर (देवता) है। वह कु (पृथ्वी) में लीन नहीं रहता तथा मा (लक्ष्मी) और ई (कामदेव प्रद्युम्न) के साथ रहने वाले विष्णु में मति (विश्वास) रखता है।

[काव्यपक्ष—सुरसं—सुन्दर रसों से सम्पन्न, बद्धं—निर्मित। ससुरः—सुरा रखने वाला या सुरा पीने वाला। काव्य—कवि (शुक्राचार्य) के पुत्र भृगुमुनि। शुक्राचार्य दानवों के गुरु थे। भृगु उवके योग्य पुत्र (?) थे। असुरों से सर्वथा सम्वद्ध रहने वाले भृगुमुनि का अभिनन्दन देव लोग नहीं करते हैं। देव लोग पृथ्वी का स्पर्श नहीं करते। कु (पृथ्वी) में लीन नहीं रहते हैं। लक्ष्मी तथा प्रद्युम्न सहित भगवान् विष्णु में ध्यान लगाये रहते हैं ॥ १० ॥

सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला।
नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा ॥ ११ ॥

संप्रति वाग्विलासाधारानुदारान्वाल्मीकिप्रभृतीन्कतिचित्कवीन्वर्णयन्नाह—सदूषणेति ॥ अपिर्विरोधे। स स दूषणखरयोर्दोषार्थकठिनार्थकत्वे भवेत्। परिहारस्तु दूषणाखरौ राक्षसौ यत्र वर्णितौ। इहानुक्तोऽपि वाल्मीकिः प्रतीयते। 'प्रौढविशेषणयोगाद्विशेष्यप्रतिपत्तिः' इति वचनात्। किं चासौ भगवान्मर्त्यलोके काव्यसृष्टिप्रथमवेधा निरुपमरमणीयकरामायणनिर्माणप्रवीणतयैव निर्दिश्यमानः प्रकृष्यते। न त्वितरसाधारणसंज्ञामात्रनिर्देशेन। अत एव कवितोत्कर्षचमत्कृतेन वाक्यसमाप्तिं प्रतीक्षितुमक्षमेण त्रिविक्रमेण वाक्यगर्भेऽपि तस्मै नम इति भक्तिप्रकर्षप्रकाशनमुक्तम्। अर्धयोर्व्यत्यासपाठे तु गर्भितदोषशंकैव न स्यात् ॥ ११ ॥

दूषणयुक्त होने पर भी निर्दोष, खर (रूक्ष) होने पर भी कोमल रमणीय रामायण की कथा जिसने वनायी उस (महाकवि वाल्मीकि) को प्रणाम है।

[दूषण और खर शब्द आपाततः विरोध की प्रतीति कराते हैं। परिहार पक्ष में तो खर और दूषण शब्द से खर और दूषण नामक राक्षसों से तात्पर्य है। विभिन्न राक्षसों के उग्रतासम्पन्न एवम् अनौचित्य-बहुल चरित्रों को चित्रित करते हुए भी काव्य की रमणीयता जिस कवि ने सुरक्षित रक्खी वह निश्चित अभिनन्दनीय है ॥ ११ ॥

व्यासः क्षमाभृतां श्रेष्ठो वन्द्यः स हिमवानिव।
सृष्टा गौरीदृशी येन भवे विस्तारिभारता ॥ १२ ॥

व्यास इति ॥ स कृष्णद्वैपायनो वन्द्यः। किंभूतः। क्षान्तानां मध्येऽतिशयेन प्रशस्यः। तथा येनेदृशी सर्वत्र विख्याता विस्तरणशीलं भारतं यस्यां सा भवे संसारे गौर्वाक्सृष्टा। क इव। हिमवानिव। किंभूतः सः। क्षमाभृतां भूभृतां श्रेष्ठः। तथा येन भवे शिवे रतानुरक्तैवंभूता गौरी सृष्टा। किंभूता। विस्तारिणी भा कान्तिर्यस्याः ॥ १२ ॥

व्यासपक्ष—क्षमाशील व्यक्तियों में श्रेष्ठ महर्षि व्यास हिमालय की तरह वन्दनीय हैं, जिन्होंने संसार में विशाल भारत (महाभारत) रूप वाणी की रचना की।

हिमालयपक्ष—पर्वतों में श्रेष्ठ हिमालय वन्दनीय है, जिसने ऐसी विकसनशील कान्ति वाली गौरी का निर्माण किया जो भगवान् शंकर में अनुरक्त है।

[व्यासपक्ष—क्षमाभृताम् + श्रेष्ठ—पर्वतों में श्रेष्ठ। गौरीदृशी—गौः + ईदृशी—इस तरह की वाणी। भवे—संसार में। विस्तारिभारता—विशाल भारत की रचना जिस वाणी में हुई वह वाणी।

हिमालयपक्ष—क्षमाभृतां श्रेष्ठ—पर्वतों में श्रेष्ठ। विस्तारिभा—विकसन कान्तिवाली। गौरीदृशी—ईदृशी गौरी—इस तरह की गौरी। भवे—शंकर भगवान् में। रता—अनुरक्त हैं ॥ १२ ॥

कर्णान्तविभ्रमभ्रान्तकृष्णार्जुनविलोचना।
करोति कस्य नाह्लादं कथा कान्तेव भारती ॥ १३ ॥

कर्णेति ॥ कर्णस्य राधेयस्यान्ते विनाशे सति विभ्रमेण विस्मयेन वेगंरुडस्य भ्रमेण वाऽतिलाघवेन भ्रान्ता विचरितुं प्रवृत्ताः कृष्णपार्थधृतराष्ट्रा यस्याम्। केव? कान्तेव। किंभूता। श्रवणपर्यन्ते विलासेन भ्रान्ते स्फुरिते कृष्णार्जुने श्यामधवले विलोचने नेत्रे यस्याः ॥ १३ ॥

भारतीकथापक्ष—(कुन्तीपुत्र) कर्ण का अन्त (मृत्यु) हो जाने पर विस्मय के कारण चंचल कृष्ण और अर्जुन के नेत्रों का वर्णन जिसमें किया गया है वह कान्तासदृश भारती (महाभारत की) कथा किसको आनन्दित नहीं करती ?

कान्तापक्ष—(कटाक्ष आदि) विलास से चंचल एवं कानों तक फैले हुए कृष्ण (नीली कनीनिकाओं) और अर्जुन (सफेद भागयुक्त) नेत्रों वाली कान्ता किसे नहीं आनन्द देती ?

[महाभारत की कथा कान्ता की तरह आनन्द उत्पन्न करती है। इस श्लोक के प्रथम और द्वितीय चरण कान्ता और कथा दोनों पक्ष में लगते हैं। शाब्दी समानता के ही आधार पर यहाँ उपमा दी गयी है ॥ १३ ॥]

शश्वद्बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा।
धनुषेव गुणाढ्येन निःशेषो रञ्जितो जनः ॥ १४ ॥

शश्वदिति॥ बाणः कविः शरश्च। गुणाढ्यकविर्बृहत्कथाकारो गुणेन ज्यया युक्तश्च। न मदाकारं स्तब्धत्वादिरूपं धरतीत्येवंशीलः कविः। बाणकर्षणाय न मदाकारं धरतीत्येवंशीलं धनुः। रञ्जितः प्रमोदं प्रापितः। अरमत्यर्थं जितो जनः प्रतिपक्षलोकश्च॥ १४॥

कुण्ठता (मदाकार) को न धारण करने वाले (महाकवि) बाण को भी सदा द्वितीय स्थान देने वाले (कविवर) गुणाढ्य ने सब लोगों को रञ्जित (अनुरञ्जित) किया-जैसे।

धनुषपक्ष—सदा बाण को अपने साथ रखने वाले, नमित हुई आकृति (नमदाकार) धारण करने वाले, गुण (प्रत्यंचा) से आढ्य (मजबूत) धनुष सम्पूर्ण प्रतिपक्षियों को पूर्ण रूप से जीत लेता (अरम् + जित) है।

[मद शिथिलता ला देता है। विवेक शक्ति कुण्ठित हो उठती है, लेकिन महाकवि गुणाढ्य इस दुर्गण से दूर हैं। महाकवि बाण जैसा यशस्वी कवि भी जिसके सम्मुख द्वितीय स्थान प्राप्त करता है, उसने अपनी बृहत्कथा से सब लोगों को अनुरंजित किया है। धनुष केवल शब्दगत समानता के आधार पर गुणाढ्य का उपमान बना है।

धनुष सदा बाण द्वितीय (बाण के साथ रहता) है, नमदाकारधारी (नमित हुई आकृति को धारण करता) है और वह गुणाढ्य (गुण—प्रत्यंचा के कारण आढ्य—मजबूत) है।

निःशेषो रंजितो जनः—का अन्वय धनुषपक्ष में निःशेषः-जनः-अरम्-जितः—करना चाहिये। अरम् शब्द का प्रयोग यहाँ पर्याप्त अर्थ में हुआ है। कवि गुणाढ्यपक्ष में निशेषो और रञ्जितः के बीच में खण्डाकार (ऽ) नहीं है। अर्थात् वह कवि सब लोगों का अनुरञ्जन करता है॥ १४॥]

इत्थं काव्यकथाकथानकरसैरेषां कवीनाममी
विद्वांसः परिपूर्णकर्णहृदयाः कुम्भाः पयोभिर्यथा।
वाचो वाच्यविवेकविक्लवधियामीदृग्विधा मादृशां
लप्स्यन्ते क्व किलावकाशमथवा सर्वंसहाः सूरयः॥ १५॥

इत्थं कविवर्णनं संक्षिपन्नाह इत्थमिति॥ तर्हि कथाप्रथनप्रयत्नेन किमित्याह—अथवेति॥ १५॥

इस तरह इन (महाकवियों) की काव्य-कथा एवम् आख्यानों के रस से इन (समसामयिक) विद्वानों के कान तथा हृदय दूध से भरे घड़े की तरह

भर चुके हैं। (ऐसी स्थिति में) वक्तव्य वस्तु के उपस्थापन में विवेकशून्य बुद्धिवाले मेरे जैसे लोगों की इस तरह की तुच्छ वाणी कहाँ स्थान पा सकेगी ? (फिर भी निराश होने की कोई बात नहीं है क्योंकि) विद्वान् सबका समादर करते हैं ॥ १५ ॥

वाचः काठिन्यमायान्ति भङ्गश्लेषविशेषतः।
नोद्वेगस्तत्र कर्तव्यो यस्मान्नैको रसः कवेः ॥ १६ ॥

भङ्गश्लेषयुक्तिविशेषेण संवृण्वन्नाह—वाच इति ॥ यतो हेतोः कवेः काव्यकर्तु-र्नैको रसो नैका रुचिः प्रसत्तिलक्षणा व्युत्पत्तिलक्षणाप्यस्ति ॥ १६ ॥

विशेषतः सभङ्ग श्लेष में वाणी कठिन हो जाती है (फिर भी) उससे उद्विग्न नहीं होना चाहिये क्योंकि कवि के लिये एक ही रस नहीं है।

[श्री त्रिविक्रम भट्ट जैसे कवि को श्लिष्ट काव्य-निर्माण में ही रसानुभूति होती है ॥ १६ ॥]

काव्यस्याम्रफलस्येव कोमलस्येतरस्य च।
बन्धच्छायाविशेषेण रसोऽप्यन्यादृशो भवेत् ॥ १७ ॥

ननु प्रसत्तिमार्गेण कोमलमेव काव्यं निबद्ध्यताम्, किमितरेण व्युत्पत्तिमार्गेण भङ्गश्लेषकृतकाठिन्येनोद्वेगहेतुनेत्यत आह—काव्यस्येति ॥ कोमलस्य प्रसन्नस्येतरस्य व्युत्पन्नस्य काव्यस्य रचनाचारुत्वेन रसोऽपि शृङ्गारादिरसोऽप्यन्यादृशोऽन्यरूपो व्युत्पत्तिचर्वया सोत्कर्ष इव स्यात्। कस्येव। आम्रफलस्येव। यथाम्रफलस्याकार-वैसादृश्यं बन्धस्य वृन्तस्य नीलपीतादिच्छायायाश्च विशेषेण यावद्रसः सस्वादोऽ-प्यन्यादृग्भवति। बध्यतेऽनेनेति कृत्वा बन्धो वृन्तं फलारम्भकरसकणिकारूपो वा। काव्यपक्षे बन्धो रचना ॥ १७ ॥

आम्रफल की तरह प्रसादगुणसम्पन्न कोमल काव्य तथा उससे भिन्न श्लिष्ट काव्य के रस में रचना-चातुरी के वैशिष्ट्य से अन्तर आ ही जाता है।

[प्रसाद गुण युक्त सरल काव्यों से अभिव्यक्त होने वाले रस में और श्लिष्ट काव्यों से व्यक्त होने वाले रस में पदसंघटनामूलक (बन्धच्छाया के) विचित्रता के कारण अन्तर पड़ जाता है। आम के फल को तोड़ कर पकने के लिये भूसा में रख कर कमरे में बन्द कर देते हैं तो उसका रस अत्यन्त मधुर हो जाता है। यदि उसी तरह के आम को खुली जगह में रख दें तो उसका स्वरूप तो दर्शक के सामने हमेशा रहेगा और कालक्रम से हवा एवं धूप के साधारण सम्पर्क से वह पक भी जायगा लेकिन उसका रस वैसा नहीं होगा जैसा भूसा आदि में बन्द कर पकाये गये आम का।]

प्रौढ़ रचना के आवरण में आवृत काव्य का रस परिपक्व हो जाता है। अतएव उसकी माधुरी भी बढ़ जाती है। प्रसादयुक्त रचना से स्फुटता के कारण विद्वान् सहृदय के लिये आकर्षक रससम्पत्ति नहीं रहती ॥ १७ ॥

अस्ति समस्तमुनिमनुजवृन्दवृन्दारकवन्दनीयपादारविन्दस्य भगवतो विधेर्विश्वव्यापिव्यापारपारवश्यादवतीर्णस्य संसारचक्रे क्रतुक्रियाकाण्डशौण्डस्य शाण्डिल्यनाम्नो महर्षेर्वंशः।

समस्त मुनियों एवं मानव-समूहों के श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा वन्दनीय चरण कमल वाले, भगवान् ब्रह्मा के विश्वव्यापी व्यापार की परवशता से इस संसारचक्र में आये हुए, यज्ञ कर्म में निष्णात महर्षि शाण्डिल्य का वंश है।

[ब्रह्मा अपने व्यापार का विषय सबको बना देते हैं। भगवान् नारायण को भी राम-कृष्ण-वामन आदि अवतार धारण करना पड़ता है और इस संसारचक्र में आना होता है। इसी तरह महर्षि शांडिल्य भी अलौकिकशक्तिसम्पन्न देवकोटि के प्राणी थे किन्तु ब्रह्मा ने उन्हें भी अपने व्यापार का विषय बना ही दिया। अतएव इस संसार में उन्हें आना पड़ा ॥]

श्रूयन्ते च यत्र श्रवणोचिताश्चन्दनपल्लवा इव केचिदनूचानाः शुचयः सत्यवाचो विरञ्चिवर्चसोऽर्चनीयाचारा ब्रह्मविदो ब्राह्मणाः। पुण्यजनाश्च न च ये लङ्कापुरुषाः, ससूत्राश्च न च ये लम्पटाः, प्रसिद्धाश्च न च ये लम्पाकाः, कामवर्षाश्च न च ये लङ्घनाः सन्मार्गस्य, नववयसोऽपि न च ये लम्बालकाः, महाभारतिकाश्च न च ये रङ्गोपजीविनः, सेविताप्सरसोऽपि न च ये रम्भयान्विताः ॥

श्रूयन्त इति ॥ यत्र महर्षेर्वंशे ईदृशा ब्राह्मणाः श्रूयन्त इत्यन्वयः। कीदृशा। श्रवण आकर्णनं उचिता योग्याः। पुण्यरूपत्वात्। चन्दनपल्लवास्तु श्रवणयोः कर्णयोरवतंसीकरणाय योग्याः। पुण्यजना यातुधाना लङ्कावासिनो नेति विरोधः। पुण्याः पवित्रा जना लोका अलमत्यर्थं न कापुरुषा इति विरोधपरिहारेण ब्राह्मणाः प्रशस्यन्ते। एवमग्रेऽपि। तथा सूत्रेण तन्तुना सहिता अत्यत्यन्तं पटाभाववन्तः। सूत्रेणोपवीतेन वेदपाठेन वा युक्ता अपि न लम्पटा लालसाः। तथा प्रकर्षेण सिद्धा अग्निसंस्कारे निष्ठां प्राप्ता अपि पूपाद्यास्ते कथमलं न पच्यन्ते स्म। प्रसिद्धा विख्याता न लम्पाका लम्पटाः। तथा कामवर्षिणोऽपि नालं मेघाः। अभिलषितदातारोऽपि सन्मार्गस्य लङ्घना न। तथाल्पावस्था अपि नालं शिशवः। तरुणावस्था अपि न दीर्घकेशाः। अग्निहोत्रित्वात्। तथा महान्तो नटा अपि न नृत्यभूम्युपजीविनः। महान्तो भारताख्यायका अपि नात्यर्थं गोपान्नृपाञ्जीवन्ति। 'राजान्नं तेज आदत्ते' इति दोषश्रवणात्। तथा शुक्रदेवाङ्गना अपि न रम्भया युताः। सेवितानि जलप्रधानानि सरांसि यैस्तथाविधा अपि न च येऽत्यर्थं भयान्विताः॥

उस महर्षि वंश में कानों में चन्दनपल्लव सदृश प्रिय लगने वाले, विद्वान् (अनूचान), पवित्र, सत्यवादी, ब्रह्मतेज से युक्त, अभिनन्दनीय आचरण वाले, कुछ ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण सुने जाते हैं। वे पुण्यजन हैं, व्यर्थ के कायर नहीं हैं। यज्ञोपवीत सहित हैं, लम्पट नहीं हैं। प्रसिद्ध हैं, लम्पाक (धूर्त) नहीं हैं। समस्त कामनाओं को देने वाले हैं, उचित मार्ग का अतिक्रमण करने वाले नहीं हैं। तरुण अवस्था के हैं लेकिन उनके बाल लम्बे-लम्बे नहीं हैं। विशाल भारत के निवासी हैं किन्तु वहाँ महान राजा (गोपरक्षक) से कुछ नहीं लेते। जलपूर्ण सरोवर से स्नान करते हैं, डरते नहीं हैं।

[इस अनुच्छेद में सभंग श्लेष देखने में ही चमत्कार हैं।

पुण्यजन (राक्षस) होते हुए भी लंकानिवासी नहीं हैं। विरोध।

वे पुण्य जन (पवित्र पुरुष) हैं और अलं (व्यर्थ के) कापुरुष (कायर पुरुष) नहीं हैं। परिहार।

आचार्य चण्डपाल ने अलं का "पर्याप्त" अर्थ किया है। इस अर्थ में आपत्ति यह दीखती है कि वाक्य का अर्थ होगा—पर्याप्त या अत्यधिक कायर नहीं हैं। अर्थात् कुछ कायरता तो है ही। अतः यह अर्थ प्रशंसा के बदले निन्दा की ओर संकेत करने लगता है, जो कि कवि का विवक्षित नहीं है।

ससूत्र (तन्तुयुक्त) हैं किन्तु उनके पास पर्याप्त (अलम्) पट (वस्त्र) नहीं। सूत्र से ही वस्त्र बनता है। सूत्र होते हुए भी उन्हें वस्त्र का अभाव है। विरोध।

ससूत्र (यज्ञोपवीत तथा कटिसूत्रयुक्त) हैं किन्तु लम्पट (धूर्त) नहीं हैं। इस पक्ष में ये और लम्पट के बीच खण्डाकार (ऽ) की कल्पना नहीं करनी चाहिये। परिहार।

प्र + सिद्ध (पूर्ण रूप से पक कर सिद्ध) हो जाने पर भी अलं (पूर्ण रूप से) पाक नहीं हो पाया है। विरोध।

प्रसिद्ध (विख्यात) हैं किन्तु लम्पाक (धूर्त) नहीं हैं। परिहार।

कामवर्ष (यथेच्छ बरसने वाले) हैं किन्तु अलंघन (पर्याप्त बादल) नहीं हैं। विरोध।

कामवर्ष (कामनाओं को देने वाले) हैं किन्तु (उत्तम मार्गों का) लङ्घन करनेवाले नहीं हैं। परिहार।

नववयस्—प्रारम्भिक अवस्था वाले हैं किन्तु लम्बालक (लम्बे-लम्बे बालों वाले) नहीं हैं। तरुण अवस्था में सुन्दरता के लिए लम्बे-लम्बे बाल

होने चाहिये थे। अथवा नवीन अवस्था है फिर भी लोग अलं-बालक (पूर्ण शिशु) नहीं हैं। विरोध।

अग्निहोत्री ब्राह्मण हैं, अतः हमेशा बालों को छिलवा दिया करते हैं। इसीलिये उनके बाल लम्बे-लंम्बे नहीं हैं। परिहार।

महाभारतिक (प्रसिद्ध नट) हैं फिर भी रङ्गोपजीवी (रङ्गमञ्च से जीविका चलाने वाले) नहीं हैं। विरोध।

महाभारतिक (विशाल भारत के रहनेवाले) हैं किन्तु अरम् + गोपजीवी (पूर्णतः राजा से जीविका ग्रहण करने वाले) नहीं हैं। गो शब्द का पृथ्वी अर्थ है, उसका पालन करने वाले राजा को गोप कहते हैं। राजा का अन्न तेज खींच लेता है। इसीलिये तेजस्वी ब्राह्मण राजा की दक्षिणा नहीं लेते। परिहार।

सेविताप्सरम् (देवरमणियों का उपभोग करते) हैं किन्तु रम्भयाऽन्वित (रम्भा नामक मुख्य अप्सरा से उनके सम्पर्क) नहीं हैं। विरोध।

सेविताप्सरम् (जल सरोवरों का सेवन करने वाले) हैं किन्तु अरम् + भयान्वित (व्यर्थ के भय से युक्त) नहीं है। अर्थात् तपस्या के उद्देश्य से निर्भीकतापूर्वक जलसमाधि लेते हैं। ठंढी लगने का भय उन्हें नहीं रहता। परिहार।]

किं बहुना।

जानन्ति हि गुणान्वक्तुं तद्विधा एव तादृशाम्।
वेत्ति विश्वंभरा भारं गिरीणां गरिमाश्रयम्॥ १८॥

अधिक कहने से क्या—वैसे लोगों के गुणों का निर्वचन उन्हीं के सदृश लोग कर सकते हैं; सम्पूर्ण विश्व को धारण करने वाली पृथ्वी ही पर्वतों के गम्भीरतामूलक भार को जानती है॥ १८॥

तेषां वंशे विशदयसां श्रीधरस्यात्मजोऽभूद्-
देवादित्यः स्वमतिविकसद्वेदविद्याविवेकः।
उत्कल्लोलां दिशि दिशि जनाः कीर्तिपीयूषसिन्धुं
यस्याद्यापि श्रवणपुटकैः कूणिताक्षाः पिबन्ति॥ १९॥

तेषामिति॥ कूणिताक्षाः सुखात्किंचिन्निमीलितनेत्राः॥ १९॥

उन्हीं निर्मल यश वाले ब्राह्मणों के वंश में श्रीधर जी के लड़के देवादित्य हुए। अपनी प्रतिभा से (ही) वे वेद विद्या के सम्बन्ध में विशेषज्ञता प्राप्त कर चुके थे। उनके उमड़ते हुए कीर्तिसुधासागर को लोग आज भी प्रत्येक दिशा में आनन्द के मारे आँखों को निमीलित कर श्रवणरूपी अञ्जलि से पी रहे हैं॥ १९॥

तैस्तैरात्मगुणैर्येन त्रिलोक्यास्तिलकायितम् ।
तस्मादस्मि सुतो जातो जाड्यपात्रं त्रिविक्रमः ॥ २० ॥

अपने उन-उन अलौकिक गुणों के कारण तीनों लोकों में जो तिलक सदृश थे, उन्हीं से समस्त जड़ताओं का पात्र मैं त्रिविक्रम जन्मा हूँ ॥ २० ॥

सोऽहं हंसायितुं मोहाद् बकः पङ्गुर्यथेच्छति ।
मन्दधीस्तद्वदिच्छामि कविवृन्दारकायितुम् ॥ २१ ॥

सोऽहमिति ॥ मोहादज्ञानाद्गतिमानपि बकः स्वभावसुभगगतेर्हंसस्यापेक्षया पङ्गुः अथवा दैवात्कथंचिद्भग्नचरणत्वात्पङ्गुः ॥ २१ ॥

जैसे कोई लँगड़ा बगुला हंस बनना चाहता है वैसे ही मन्दबुद्धि मैं कवियों में मुख्य बनना चाहता हूँ ॥ २१ ॥

भङ्गश्लेषकथाबन्धं दुष्करं कुर्वता मया ।
दुर्गस्तरीतुमारब्धो बाहुभ्यामम्भसां पतिः ॥ २२ ॥

भङ्गेति ॥ यथा बाहुभ्यां दुस्तरः समुद्रस्तथा भङ्गश्लेषकथाबन्धोऽपि दुष्कर इत्यौपम्याद्वस्तुसंबन्धः । 'अभवन्वस्तुसंबन्ध उपमा परिकल्पकः' इति ॥ २२ ॥

भङ्गश्लेषयुक्त एक अत्यन्त कठिन (दुष्कर) कथाग्रन्थ की रचना करने जा रहा हूँ। यह मेरी इच्छा हाथ से अगाध एवं दुस्तर सागर तैरने (के साहस) की तरह है ॥ २१ ॥

उत्फुल्लगल्लैरालापाः क्रियन्ते दुर्मुखैः सुखम् ।
जानाति हि पुनः सम्यक्कविरेव कवेः श्रमम् ॥ २३ ॥

उत्फुल्लेति ॥ दुष्टमुखैः क्रियमाणत्वादालापा अपि दुष्टा निन्दाकराः । 'उल्लापाः' इति पाठे काकुभाषितानि । दुर्मुखैः स्वैरं क्रियन्ते । गल्लशब्दो ग्राम्योऽप्यत्र दुर्मुखाभामकवीनां ग्राम्याणां निन्दाभिधाने प्रयुक्तः समुचित एव ॥ २३ ॥

निन्दा करने वाले (दुर्मुख) लोग बड़े सुख के साथ गला फाड़कर (दूसरों पर कटु) व्यङ्ग्य कसा करते हैं किन्तु कवि के (सराहनीय) श्रम को अच्छी तरह कवि ही समझ सकता है ॥ २३ ॥

संगता सुरसार्थेन रम्या मेरुचिराश्रया ।
नन्दनोद्यानमालेव स्वस्थैरालोक्यतां कथा ॥ २४ ॥

संगतेति ॥ रुचिरो रम्य आश्रयो नलोपाख्यानलक्षणो यस्याः सेयं मम स्वस्थैरव्यग्रैरालोक्यतां विमृश्यताम् । स्वस्थे चित्ते बुद्धयः सञ्चरन्ति । किंभूता । शोभनो रसः शृङ्गारादिर्यत्र तथोक्तेनार्थेन संगतोचिता । औचित्यं हि रसस्य परमरहस्यम् । उक्तं च—'अनौचित्यादृते नान्यद्रसभङ्गस्य कारणम् । प्रसिद्धौचित्यबन्धो हि रसस्योपनिषत्परा ॥' तथा रम्या भङ्गश्लेषोक्तिभिर्मनोहरा । पक्षे स्वः स्वर्गे तिष्ठन्तीति कृत्वा स्वस्थैः स्वर्गवासिभिः ॥ "खर्परे शरि वा विसर्गलोपः" ॥ किंभूता । सुराणां सार्थो वृन्दं तेन संगता कृतसङ्गा । तथा मेरुः सुरगिरिश्चिरमाश्रयो यस्याः ॥ २४ ॥

सुन्दर (शृङ्गार आदि) रसमय अर्थों के कारण औचित्यसम्पन्न, मनोहर (नल-दमयन्ती की) चर्चा पर आधारित, नन्दनवनपंक्तिसदृश मेरी इस रमणीय कथा को सुस्थिर चित्तवाले लोग देखें।

नन्दनवन पक्षः —इन्द्र के विहार वन का नाम नन्दनवन है। नन्दनवन-माला सुर + सार्थ (देव-समूह) से संगत (युक्त है। वह रमणीय एवं मेरु-चिराश्रया (मेरुपर्वत पर चिरकाल से स्थित) है। स्वस्थ (स्वर्गस्थित लोगों) द्वारा देखी जाती हैं।

कथा पक्ष :—सुरस + अर्थ (शृङ्गार आदि सुन्दर रसमय अर्थों) के संगत (औचित्य-सम्पन्न) मेरी रमणीय कथा को स्वस्थ (सुस्थिर चित्तवाले) लोग विचारपूर्वक देखें ॥ २४ ॥

उदात्तनायकोपेता गुणवद्वृत्तमुक्तका।
चम्पूश्च हारयष्टिश्च केन न क्रियते हृदि ॥ २५ ॥

उदात्तेति। उदात्तेन महात्मना नायकेन नलेनोपेता। तथौजःप्रसादादिगुणयुक्तं वृत्तं छन्दोबद्धं मुक्तकं गद्यात्मकं च यस्यां सा चम्पूर्गद्यपद्यमयी साङ्कोच्छ्वासा कथोदात्तेन महार्घेण नायकेन हारमध्यरत्नेनोपेता। तथा तन्तुमत्यो वृत्तमुक्ता वर्तुलमौक्तिकानि यस्यां सा मुक्ताहारलता च केन चित्ते वक्षसि च न क्रियते ॥२५॥

चम्पू पक्ष :—उदात्तनायकोपेता (धीरोदात्त नायक से युक्त) गुणवद् + वृत्त मुक्तका (प्रसाद, ओज, माधुर्य आदि गुणों से युक्त) गद्यपद्यात्मक चम्पू।

उदात्त नायक से युक्त, (प्रसाद, ओज, माधुर्य आदि) गुणों से समन्वित पद्य तथा गद्य से युक्त चम्पू और उज्ज्वल मध्यमणिवाली सूत्र में ग्रथित हार-लता को कौन नहीं हृदय से लगाता।

हारलता पक्ष :—उदात्तनायकोपेता—उज्ज्वल और मध्यमणि से युक्त गुणवद्वृत्तमुक्तका—तन्तु में पिरोयी हुई मोतीवाली हारलता को कौन नहीं हृदय से लगाता ॥ २५ ॥

अस्ति समस्तविश्वंभराभोगभास्वल्ललामलीलायमानः समानः सेव्यतया नाकलोकस्य, ग्राम्यकविकथाबन्ध इव नीरसस्यमनोहरः, भीम इव भारतालंकारभूतः, कान्ताकुचमण्डलस्पर्श इवाग्रणीः सर्व-विषयाणाम्। अनधीतव्याकरण इवादृष्टप्रकृतिनिपातोपसर्गलोपवर्ण-विकारः पशुपति-जटाबन्ध इव विकसितकनककमलकुवलयोच्छलित-रजःपुञ्जपिञ्जरितहंसावतंसया प्रचुरचलच्चकोरचक्रवाककारण्डव-मण्डलीमण्डिततीरया भगीरथभूपालकीर्तिपताकया स्वर्गगमनसोपान-वीथीयमानरिङ्गत्तरङ्गया गङ्गया पुण्यसलिलैः प्लावितश्चन्द्रभागा-लंकृतैकदेशश्च, सारः सकलसंसारचक्रस्य, शरण्यः पुण्यकारिणाम्,

आरामो रामायणीयककदलीवनस्य, धाम धर्मस्य, आस्पदं संपदाम्, आश्रयः श्रेयसाम्, आकरः साधुव्यवहाररत्नानाम्, आचार्यभवनमार्यमर्यादोपदेशानामार्यावर्तो नाम देशः ॥

अस्तीति। 'आ समुद्रात्तु वै पूर्वादा समुद्राच्च पश्चिमात्। तयोरेवान्तरं गिर्योरायावर्तं विदुर्बुधाः॥' इति मनूक्तलक्षण आर्यावर्तो नाम प्रसिद्धो देशोऽस्ति। किंभूतः। नीरेण धान्येन च मनोज्ञः। पक्षेऽरसिकस्य मनोज्ञः। तथा भारतवर्षस्य मण्डनभूतः। पक्षे भारतस्येतिहासस्य। तथा विषयो देशः। पक्षे इन्द्रियार्थः। तथा न दृष्टः प्रकृतीनां निपातः स्वपदात्पतनम्, उपसर्गो धनापहारादिरुपद्रवः, लोपो देवदायब्रह्मदायाद्यपालनम्, वर्णविकारश्चातुर्वर्ण्याव्यवस्था यस्मिन्। पक्षे प्रकृतयो धात्वादयः, निपाताश्चादयः उपसर्गाः प्रादयः लोपः प्रसक्तस्यादर्शनम्, वर्णविकारोऽक्षरविकृतिः। तथा चन्द्रभागया नद्या चन्द्रखण्डेन च भूषितैकदेशः ॥

आर्यों की प्रतिष्ठा के अनुकूल उपदेशों का भव्य भवन आर्यावर्त नामक देश है। वह समस्त भूमण्डल में चमकते हुए तिलक सदृश है। स्वर्ग लोक की तरह सेवनीय है। ग्राम्य (साधारण) कवियों के कथा-ग्रन्थ जैसे नीरस (अरसिक) लोगों के लिये मनोहर होता है वैसे वह भी नीर (जल) और सस्य (अन्न) से मनोहर है। भीम जैसे भारत (महाभारत) काव्य के अलङ्कार हैं वैसे वह भारत देश का अलंकार है। रमणी का स्तन-स्पर्श जैसे सभी (भोग्य) विषयों में अग्रणी (मुख्य) है वैसे यह भी सभी विषयों (देशों) में मुख्य है। जैसे जो लोग व्याकरण शास्त्र नहीं पढ़ते उन्हें प्रकृति, निपात, उपसर्ग, लोप तथा वर्णगत विकारों का ज्ञान नहीं रहता है वैसे ही यहाँ प्रकृति (प्रजा) का निपात (पतन), उपसर्ग (उपद्रव), वेद-विहित नियमों का लोप एवं चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था में कोई विकार नहीं देखा जाता। भगवान् शङ्कर का जटाबन्धन जैसे एक अंश में चन्द्रभाग (चन्द्रखण्ड) से अलंकृत हैं तथा ऐसी पुण्यसलिला गङ्गा द्वारा नहलाया गया है जिसमें खिले हुए पीत एवं नील कमलों के झरते हुए परागपुञ्ज से (रंग जाने के कारण) केशरिया रंगवाले हंस अलङ्कारसदृश प्रतीत हो रहे हैं। पर्याप्त मात्रा में विचरती हुई चकोर, हंस, चक्रवाक और कारण्डव-संज्ञक पक्षियों की मण्डली से उस (गंगा) का तटीयभाग अलङ्कृत हो गया है। वह (गंगा) राजा भगीरथ की कीर्ति-पताका है। उसकी अंगड़ाती तरंगें स्वर्ग जानेवाली सीढ़ियों की गलियों की तरह प्रतीत होती हैं, वैसे ही इस (आर्यावर्त का भी) एक अंश चन्द्रभागा नदी से अलंकृत है और गङ्गा के पवित्र जल से आप्लावित है। सम्पूर्ण भूमण्डल का एक तत्त्वभूत अंश है। पवित्र कार्य करने वालों का शरण है। मनोहर कदलीवनों का उपवन है। धर्म की भूमि है। सम्पत्तियों का स्थान है। मङ्गलों का निकेतन है। सज्जनों के व्यवहाररूप रत्नों की निधि है ॥

यस्मिन्ननवरतधर्मकर्मोपदेशशान्तसमस्तव्याधिव्यतिकराः पुरुषायुषजीविन्यः सकलसंसारसुखभाजः प्रजाः। तथाहि। कुष्ठयोगी गान्धिकापणेषु, स्फोटप्रवादो वैयाकरणेषु, संनिपातस्तालेषु, ग्रहसंक्रान्तिर्ज्योतिःशास्त्रेषु, भूतविकारवादः सांख्येषु, क्षयस्तिथिषु, गुल्मवृद्धिर्वनभूमिषु, गलग्रहो मत्स्येषु, गण्डकोत्थानं पर्वतवनभूमिषु, शूलसंबन्धश्चण्डिकायतनेषु दृश्यते न प्रजासु ॥

यस्मिन्निति ॥ कुष्ठमौषधविशेषो रोगविशेषश्च । स्फुट्यते व्यज्यतेऽर्थोऽनेनेति स्फोटो वैयाकरणप्रसिद्धं शब्दब्रह्म। स च वाक्यस्फोटः पदस्फोटश्चेति द्विधा निरयश्च। तस्य प्रकर्षेण वादः कथनम्। स्फोटस्य पिटकस्य प्रवादश्च। संनिपात उभयहस्तयोजनम्। यदुक्तम्—यस्यां दक्षिणहस्तेन तालं वामेन योजयेत्। उभयोर्हस्तयोः पातः संनिपातः स उच्यते ॥ वातपित्तश्लेष्मणामेकत्र योगो रोगविशेषश्च। ग्रहाणां सूर्यादीनां मेषादिराशौ संक्रान्तिः। ग्रहो बन्धनं तस्य संक्रान्तिश्च। भूतः प्रधानाख्यं तत्त्वं मूलप्रकृतिः। ततो महान् महतस्तस्मादहंकारः। अहंकाराच्च पञ्च तन्मात्राणि (पृथिव्यादिपञ्चतन्मात्राणि)। एवमष्टौ। तत एकादशेन्द्रियाणि पञ्च भूतानि चेति षोडश विकाराः। एवं चतुर्विंशतितत्त्वानि। पञ्चविंशस्तु पुरुषः। तथा च—'मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त। षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ॥' इति सांख्याः। ततश्च तेष्वेव भूतविकाराणां वादः प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चावयवोपपन्नः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहः। पक्षे भूतस्य प्रेतस्य विकारः। क्षयः सूर्योदयकालवृत्तित्वं रोगविशेषश्च। गुल्मः स्तम्बो रुग्वा। गले ग्रहणं बडिशेन रोगविशेषश्च। गण्डकाः खड्गिपशवो ह्रस्वस्फोटका वा। शूल आयुधविशेषो रोगविशेषश्च ॥

जिसमें निरन्तर धर्म एवं कर्म (मार्ग) के उपदेशों से सब तरह की (आध्यात्मिक आधिभौतिक तथा आधिदैविक) विपत्तियाँ शान्त कर दी गयी हैं। प्रजा पूर्णायु तक जीवित रह कर संसार के समस्त सुखों का उपभोग करती है। क्योंकि—

गन्धद्रव्य बेचनेवालों की दूकानों में ही कुष्ठ (नामक औषधि) है। (कोई प्राणी कुष्ठ रोग से पीड़ित नहीं है)। व्याकरण शास्त्र के जानकार तथा अध्येता लोग ही स्फोट (सिद्धान्त) का प्रवचन करते हैं। जन-सामान्य में स्फोट (फोड़ा, फुन्सी या मतभेद) नहीं है। (संगीत के प्रसङ्ग में) ताल देते समय ही संन्निपात (दोनों हाथों का संघर्ष) होता है। (वात, पित्त तथा कफ की विकृति से किसी को सन्निपात ज्वर नहीं होता)। ग्रहों की संक्रान्ति की चर्चा ज्योतिःशास्त्र में ही पायी जाती है। [कोई प्राणी बन्धन से आक्रान्त नहीं होता है।] सांख्यदर्शन में ही भूतों (पृथ्वी, जल, तेज आदि) की विकृति देखी जाती है। प्राणियों में भूत (प्रेत) आदि का प्रकोप नहीं देखा जाता।)

तिथियों में ही क्षय (न्यूनाधिक्य) पाया जाता है। [कोई प्राणी क्षय रोग से ग्रस्त नहीं है।] गुल्म (लता) की वृद्धि वनस्थलियों में पायी जाती है। [कोई गुल्म (नामक रोग) से पीड़ित नहीं है।] मछलियों के ही गले का ग्रहण किया जाता है। [किसी प्राणी को गलग्रह नामक रोग नहीं है।] पर्वतीय वनभूमि में ही गण्डकोत्थान (गेंड़ों का उछाल) होता है। [किसी प्राणी को गण्डक (फोड़ा-फुंसी) नहीं उठते हैं।] शूल (अस्त्र) का सम्बन्ध चण्डी के मन्दिर में ही है, प्रजा में शूल नामक रोग नहीं है॥

यत्र चतुरगोपशोभिताः सङ्ग्रामा इव ग्रामाः, तुङ्गसकलभवनाः सर्वत्र नगा इव नगरप्रदेशाः, सदाचरणमण्डनानि नूपुराणीव पुराणि, सदानभोगाः प्रभञ्जना इव जनाः, प्रियालपनसाराणि यौवनानीव वनानि, विटपिहिताश्चेटिका इव वाटिकाः, निर्वृतिस्थानानि सुकलत्राणीवेक्षुक्षेत्रसत्त्राणि, जलाविलक्षणाः पशुपुरुषा इवाप्रमाणास्तडागभागाः, कुपितकपिकुलाकुलिता लङ्केश्वरकिंकरा इव भग्नकुम्भकर्णघनस्वापाः कूपाः, पीवरोधसः सरित इव गावः, सतीव्रतापदोषाः सूर्यद्युतय इव कुलस्त्रियः॥

यत्रेति॥ यत्र देश एते पदार्थाः। तद्यथा। येषु परिषन्मण्डपेषु ग्रामवृद्धा उपविशन्ति ते चतुरास्तैस्तथा गोपैरुपशोभिताः। यद्वा चतुरैर्दक्षैर्गोपैः पशुपाल्यजीविभिरुपशोभिताः। गोशब्दस्य पशुमात्रवचनत्वात्। सङ्ग्रामपक्षे 'च' इति छेदनीयम्। तुङ्गान्युच्चानि सकलानि संपूर्णानि वा भवनानि गृहा यत्र। नगाश्च तुङ्गैः पुंनागैरुपलक्षितं कलभैरिभडिम्भैः सहितं वनं यत्र। पुंनागकरिपोतयुता इत्यर्थः। यद्विश्वप्रकाशः—'तुङ्गः पुंनागनागयोः। तुंगः स्यादुङ्गतेऽन्यवत्'। पुराणि शोभनमाचरणमेव मण्डनं यत्र। नूपुराणि सर्वथा चरणभूषणानि। दानभोगाभ्यां सहिता जनाः। शश्वद्भोगा वायवः। दयितानां सकामोल्लापेन साराणि यौवनानि। वनानि प्रियालं राजादनं पनसं चेयन्ति प्राप्नुवन्ति। विटपिभ्यस्तरुभ्यो हिता वाटिकाः। चेटिका दास्यस्तु विटैः पिहिता वेष्टिताः। इक्षुक्षेत्रे सत्राणि दानशालाः। निर्वृत्या वृतेरभावेन स्वच्छन्दं स्थीयते यत्र। निर्वृतेः सुखस्यास्पदानि कलत्राणि। तडागभागा जलाविला जलार्थिभिः सदा सेव्यतया जलपिच्छिलाः क्षणाः, अवतारादितीरप्रदेशा यत्र। यद्वा जलैराविला नीरन्ध्राः पूर्णाः क्षणाः खातकानि यत्र। अगाधाः। पशुपुरुषास्तु जडा विलक्षणा व्यपेतशास्त्राः। यद्वा अविभिर्मेण्ढैर्लंघ्यन्ते। यद्वाऽवीन्मेण्ढाँल्लक्षयन्ति। पश्चात्कर्मधारयः। प्रत्यक्षादिप्रमाणरहिताश्च। कूपा भग्नकुम्भकर्णाः स्फुटितघटकण्ठाः। घनाः प्रचुराः स्वाः स्वकीयाः पातालमूलोत्था न तु प्रवाहादिपूरिता आपः पानीयानि येषु। यद्वा घनस्वा बहुद्रव्या आपो येषु। वापी-कूपादौ हि जीर्णोद्धारार्थं निधिर्भवतीति ख्यातिः। किंकरास्तु भग्नः श्रीरामागमनकथनेन कुम्भकर्णस्य रक्षसो घनः प्रचुरः

षण्मासावधिकः स्वापः शयनं यैः। गावः पीवरं च तदूधश्च पीवरोधस्तस्मात् पीवरोधसो हेतोः सरित इव। यद्वा पीवरमूध आपीनं येषाम्। अत्र 'गोशब्दो धेन्वर्थोऽपि स्त्रीनरलिङ्ग' इति व्याडिः। ततः पुंस्त्वादनङ् न। सरितस्तु पीव-स्थूलं रोधस्तटं यासाम्। कुलस्त्रियः सतीव्रतेनापगता नष्टा दोषाः कलङ्का यासाम्। सूर्यद्युतयस्तु तीव्रतापदोषेण सहिताः॥

और जहाँ च + तुरगोपशोभित (अश्वों से अलङ्कृत) संग्राम की तरह चतुर + गोप + शोभित (बुद्धिमान ग्वालों से सुशोभित) ग्राम हैं। पुन्नागों और हाथियों के बच्चों से युक्त (तुङ्ग + सकलभ + वन) पर्वत की तरह (तुङ्ग-सकल + भवन) ऊँचे-ऊँचे समस्त भवनों वाला नगर प्रदेश है।

सदा (हमेशा) चरण को अलङ्कृत करने वाले नूपुरों की तरह सत् (सुन्दर) आचरणरूप अलङ्कार से युक्त नगर प्रदेश हैं।

सदा + नभोग (हमेशा आकाश की ओर जाने वाले) प्रभञ्जन (वायु) की तरह लोग स + दान + भोग (दान और भोग से युक्त) हैं। प्रिया + लपन + सार (कान्ता के साथ बातचीत करना ही मुख्य तत्त्व है जिस अवस्था में ऐसे) यौवन की तरह वन भी प्रियाल + पनस + अर (प्रियाल और पनस फलों की उपलब्धि से युक्त) हैं। विट + पिहित (धूर्तों से घिरी हुई) चोटियों की तरह वाटिकायें भी विटपि + हित (वृक्षों को धारण की हुई) हैं। निर्वृति + स्थान (सुख के केन्द्र रूप) सुन्दर पत्नी की तरह ईख के खेत में चलने वाली शर्बत की दानशालायें निर्वृति स्थान (प्रतिबन्धरहित) हैं। [रस पीने वाले जब चाहते है, रस पी लेते हैं। उन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। रस की दानशालायें सदा चलती रहती हैं।] जल (जड़) पशुतुल्य पुरुष जैसे विलक्षण (लक्षण-शास्त्रज्ञानशून्य) तथा अप्रमाण (अनुमान आदि प्रमाणज्ञानशून्य) होते हैं वैसे वहाँ के तालाब लजाविल + क्षण (जल से पिच्छिल स्थान वाले) तथा अप्रमाण (विशाल) हैं।

क्रुद्ध वानरों द्वारा व्याकुल किये गये रावण के नौकर जैसे भग्न कुम्भकर्ण-स्वाप (कुम्भकर्ण की निद्रा भङ्ग कर दिये) थे वैसे यहाँ के कूप भग्नकुम्भकर्ण + स्वाप (घड़े के मुहकड़ को फोड़ दिये हैं और सुन्दर जल से युक्त) हैं। नदियाँ जैसे पीव + रोधस् (विशाल तटवाली) होती हैं वैसे यहाँ की गायें पीवर + ऊधस् (विशाल थनों वाली) हैं।

सूर्य की किरणें जैसे स + तीव्र + ताप + दोष (तीव्र ज्वालारूप दोष से युक्त) होती हैं अथवा सतीव्रता के कारण अपदोष (दोषरहित) होती हैं अथवा तीव्र होने के कारण रात्रि को समाप्त कर देती हैं। वैसे वहाँ की कुलाङ्गनायें सती + व्रत धारण करने के कारण अपदोष (दोषरहित) हैं॥

यत्र च मनोहारिसारसद्वन्द्वास्तत्पुरुषेण द्विगुना चाधिष्ठिताः कादम्बरीगद्यबन्धा इव दृश्यमानबहुव्रीहयः केदाराः ॥

यत्रेति । किंभूताः केदाराः । मनोहारीणि सारसानां द्वन्द्वानि येषु । तथा तत्पुरुषेण तत्स्वामिना द्विगुना गोयुगयुक्तेनाधिष्ठिताः बहवोऽपि गावः सन्ति । द्विगुनेति चोपलक्षणम् । अथवा चकारोऽप्यर्थे । द्विगुनापि तत्पुरुषेणाधिष्ठिताः । तथा दृश्यमाना बहवो व्रीहयो येष्विति भूमेः सस्यसंपदुक्ता । गद्यबन्धास्तु मनोहारिणः साराः श्रेष्ठाः । सद्वन्द्वाः द्वन्द्वसमाससहिताः । तथा तत्पुरुषेण द्विगुना च समासेनाधिष्ठिताः । तथा दृश्यमानबहुव्रीहिसमासाः । तथा च द्वन्द्वतत्पुरुषद्विगुबहुव्रीहिसमासबहुला इत्यर्थः ॥

कादम्बरी का गद्यबन्ध जैसे मनोहारि + सार + सद्वन्द्व (मनोहर तथ्यों तथा द्वन्द्व समासों से युक्त) है; ततपुरुष तथा उसके प्रभेद द्विगु से सनाथित है; और बहुव्रीहि समास से समन्वित है वैसे यहाँ के खेत में मनोहारि + सारस + द्वन्द्व सुन्दर सारस पक्षी के जोड़े द्विगुतत्पुरुष (अपने दो गायों वाले स्वामी) की देख-रेख में है और वहाँ बहुव्रीहि (पर्याप्त धान) दिखायी पड़ रहा है ॥

किं बहुना ।

नास्ति सा नगरी यत्र न वापी न पयोधरा ।
दृश्यते न च यत्र स्त्री नवापीनपयोधरा ॥ २६ ॥

नास्ति सेति । यत्र देशे सा कापि नगरी नास्ति । यस्यां न वापी निपानम् । न पयोधरा पयःप्रधाना भूमिः । नच तरुणी पीनस्तनी स्त्री दृश्यते । यदि पुनस्त्रयमपि चतुर्थपादेन विशेषणीकर्तुमाग्रहस्तर्हि पयोभूम्योरेवं व्याख्यायते । 'णु स्तुतौ' । नवं स्तुतिमाप्नुतोऽभीक्ष्णमिति नवापिनी । तथाभूते इनपयसी स्वामिजले धरतीति तथोक्ता वापी । भूस्तु वपनमभीक्ष्णमिति वापिनः कर्षकास्तेषामिना आजीवहेतुत्वात्स्वामिनः । पयोधरा मेघा यस्यां तथाभूता । पश्चान्नञ्संबन्धः । अवृष्टिनिष्पाद्यसस्येति भावः । अयमर्थस्तेनार्हः । प्रशस्तस्वामिपयस्का वापी, अवृष्टिनिष्पादितसस्या भूमिः तरुणी पीनस्तनी च कान्ता, यस्यां दृश्यते सेव नगरी यत्र देशेऽस्तीति, अथवा यत्र देशे सा नगरी नास्ति यस्यां नगर्यां वापी स्त्री च न दृश्यते । कीदृशी वापी । न न पयोधरा । अपि तु पयोधरा । नञ्द्वयस्य प्रकृतार्थसूचकत्वात् । स्त्री च किंभूता । नवा तरुणी । तथा पीनपयोधरा । सर्वास्वपि नगरीषु पयोधरा वाप्यस्तरुण्यः पीनस्तन्यश्च स्त्रियो दृश्यन्त इति भावः ॥ २६ ॥

वहाँ कोई ऐसी नगरी नहीं है जहाँ पयोधरवापी (जलपूर्ण जलाशय) न हो और जहाँ कोई ऐसी रमणी नहीं देखी जाती जिसका पयोधर (स्तन) पीन विशाल न हो ॥ २६ ॥

अपि च।

भवन्ति फाल्गुने मासि वृक्षशाखा विपल्लवाः।
जायन्ते न तु लोकस्य कदापि च विपल्लवाः॥ २७॥

भवन्तीति॥ शाखा विगतपल्लवा यत्र भवन्ति। जनस्य विपदां लवा अपि न स्युः॥ २७॥

फाल्गुन के महीने में वृक्षों की शाखायें विपल्लव (पल्लवहीन) हो जाती हैं किन्तु जनता पर कभी विपल्लव (विपत्ति का अंश) नहीं आता॥ २७॥

यत्र सौराज्यरञ्जितमनसः सकलसमृद्धिवर्धितमहोत्सवपरम्परारम्भनिर्भराः, सततमकुलीनं कुलीनाः, प्राप्तविमानमप्राप्तविमानभङ्गाः, कतिपयवसुविराजितमनेकवसवः, समुपहसन्ति स्वर्गवासिनं जनं जनाः। कथं चासौ स्वर्गान्न विशिष्यते।

यत्रेति॥ यत्र जनाः स्वर्गिणमपि न्यक्कुर्वन्ति। कुलीना अभिजाताः। विमानता तिरस्कारः। वसु धनम्। पक्षे कुः पृथ्वी तस्यां लीनाः। विमानं देवयानम्। वसवोऽष्टौ ध्रुवादयः। देवन्यक्कारस्तुल्यार्थे व्याख्येयः॥ कथं चायं स्वर्गादधिकः॥

जहाँ के लोग स्वर्गवासियों का भी उपहास करते हैं। उनका मन (वहाँ के) सुन्दर राज्य में अनुरक्त है। सर्वविध सम्पन्नताओं के कारण बड़े-बड़े उत्सवों के मनाने में सोल्लास लगे रहते हैं।

उपहास पक्षः—स्वर्गवासी अकुलीन हैं, ये लोग कुलीन हैं। वे (देव) प्राप्तविमान (विशेष प्रकार के अहंकार से युक्त) हैं और ये अप्राप्त-विमान-भङ्ग (विशेष अहङ्कारजन्य वक्रताओं से दूर हैं)। वे (देव) कुछ (आठ) ही वसुओं से युक्त हैं ये लोग अनेकविध वसुओं (सम्पत्तियों) से युक्त हैं।

वास्तव पक्ष :—स्वर्गवासी सदा अकुलीन (पृथ्वी में लीन नहीं) हैं; क्योंकि देवता लोग पृथ्वी का स्पर्श नहीं करते हैं। ये लोग कुलीन (विशिष्ट वंश में उत्पन्न हुए) हैं। (देव) प्राप्तविमान (देवरथ प्राप्त किये) हैं, और यहाँ के लोग विमान (अहङ्कार) के कारण उत्पन्न होने वाली वक्रताओं से दूर हैं। देव ध्रुव आदि आठ ही वसुओं से मण्डित हैं ये लोग अनेकविध वसुओं (सम्पत्तियों) से विराजित हैं। स्वर्ग से यह क्यों न आगे बढ़ जाय—॥

यत्र गृहे गृहे गौर्यः स्त्रियः, महेश्वरो लोकः सश्रीका हरयः पदे पदे धनदाः सन्ति लोकपालाः। केवलं न सुराधिपो राजा। न च विनायकः कश्चित्॥

यत्रेति॥ गौर्यो गौराङ्ग्यः शुद्धोभयान्वया वा स्त्रियः। महानीश्वरोऽतिसमृद्धः। सहश्रि या शोभया सश्रीकाः। हरयोऽश्वाः। कनप्रदा नृपाः। स्वर्गे त्वेकस्मिन्नेव

गृहे गौरी उमा। एक एव महेश्वरः शिवः। सलक्ष्मीको विष्णुरेक एव। न बहवः। धनदः कुबेर एकस्मिन्नेव स्थान एक एव। केवलं परम्। अधिपित्रतीत्यधिपः। सुराया मद्यस्याधिपः सुराधिपो न राजा। न च कोऽपि विरुद्धनायकः। सुरामधि- पिबतीति वाक्ये लक्षणदूषणमप्रसङ्गात्। सुराप्रपावत्। स्वर्गे तु सुराणामधिप इन्द्रः। विनायको गणेशः॥

जहाँ घर-घर में गौरी (गौर वर्ण की) स्त्रियाँ हैं, पूरा लोक ही महेश्वर (ऐश्वर्य-सम्पन्न) है, अनेक हरि (घोड़े) श्रीयुक्त (शोभासम्पन्न) पद-पद पर धन देने वाले लोकपाल (प्रजापालक) लोग हैं, सुराधिप (मद्य का स्वामी) ही केवल राजा नहीं है और कोई विनायक (दुष्ट नेता) नहीं है।

[स्वर्ग में तों एक ही गौरी (पार्वती) हैं, एक ही महेश्वर (शिव) हैं, श्री (लक्ष्मी) सहित एक ही विष्णु हैं, धनद (कुबेर नामक) लोकपाल भी एक ही हैं, सुराधिप (देवताओं का स्वामी इन्द्र) ही केवल राजा है और विनायक (गणेश) भी हैं। स्वर्ग में तो गौरी, महेश्वर, धनद आदि एक ही हैं जब कि उस नगरी में ये चीजें अनेक हैं। इसीलिये यह स्वर्ग से भी विशिष्ट है॥]

यत्र च लतासंबन्धः कलिकोपक्रमश्च पादपेषु दृश्यते न पुरुषेषु॥

यत्रेति॥ लतासंबन्धो वल्लीयोगः। कलिकाया उपक्रमः। पक्षे 'चलतासंबन्धः' इति समुदितं पदम्। चलता लौल्यम्। कलिः कलहः। कोपः क्रुधः। तयोः क्रमः॥

और जहाँ (च) लता + सम्बन्ध (वल्लरियों का सम्पर्क) और कलिका (कलियों) का उपक्रम (उद्भव) वृक्षों में देखा जाता है। पुरुषों में चलता + सम्बन्ध (चंचलता का योग) और कलि + कोप + क्रम (कलह एवं क्रोध की परम्परा) नहीं दृष्ट है॥

यत्र चमरकवार्ता परमहिमोपघातश्च तुहिनाचलस्थलीषु श्रूयते न प्रजासु॥

यत्रेति॥ चमरका गोविशेषाः। परममुत्कृष्टं हिमं तुहिनम्। पक्षे मरको मरण बाहुल्यम्। परस्य महिमा माहात्म्यम्। तस्योपघातः॥

जहाँ चमरक + वार्ता (चमरी गाय की चर्चा) और परम + हिमोपघात (अत्यधिक वर्फ के कारण हानि) हिमालय में ही श्रुत है। प्रजा में (च) मरक + वार्ता (मृत्युसम्बन्धी वार्ता) और प्रर + महिमोपघात (दूसरे की प्रतिष्ठा का हनन) नहीं सुना जाता॥

यश्च नीतिमत्पुरुषाधिष्ठितोऽप्यनीतिः, सटोऽप्यवटसंकुलः, कारूप-युतोऽप्यगतरूपशोभः॥

यश्चेति ॥ न विद्यत ईतिरुपद्रवोऽस्मिन्नित्यनीतिः । वटा न्यग्रोधाः । अवटाः कूपादिगर्ताः । कारवः शिल्पिनः । तथा न गता न भ्रष्टा रूपशोभा यस्य । अगैर्नगैस्तरुभिश्चोपशोभा यस्येति वा । अपिविरोधे । स च तुल्यार्थंव्याख्यया । कुत्सितमीषद्वा रूपं कारूपम् ॥

जो नीतिमत् (न्यायसम्पन्न) पुरुषों से युक्त रह कर भी अनीत (अन्याय) युक्त है, विरोध । नीतिसम्पन्न पुरुषों से युक्त है और अनीति (ईति (उपद्रव) रहित) युक्त है । परिहार ।

सटा (जटा) से युक्त होने पर भी अवट (वटवृक्ष से युक्त नहीं) है । विरोध, (वटवृक्ष की डालियों से जटा की तरह कुछ जड़ें (वरोह) लटकती हुई पृथ्वी तक आतीं हैं । [जहाँ वटवृक्ष रहेगा वहीं इस तरह की जड़े रहेंगी । ऐसी जड़ों से युक्त होकर भी वटवृक्ष से हीन है यह कहना विरोध का वीज है ।]

सटा (मूलों) से युक्त है और अवट (गड्ढों) से सम्पन्न है । [जगह-जगह पर वृक्षों के मूल हैं और स्थान-स्थान पर खाइयाँ भी दिखायी पड़ती हैं] परिहार ।

कारूप + युक्त (कुत्सित रूप वाले) हैं फिर भी उसकी रूप शोभा नष्ट नहीं हुई है । विरोध ।

कारु (शिल्पकारों) से उपयुक्त (युक्त) है इसीलिये उसकी रूपशोभा (सौन्दर्य-लक्ष्मी) नष्ट नहीं हुई है । परिहार ॥

यत्र च गुरुव्यतिक्रमं नक्षत्रराशयः, मात्राकलहं लेखशालिकाः, मित्रोदयद्वेषमुलुकाः, अपत्यत्यागं कोकिलाः, बन्धुजीवविघातं ग्रीष्मदिवसा, कुर्वन्ति न जनाः ॥

यत्र चेति ॥ इदमेते कुर्वन्ति न जनाः । गुरुर्बृहस्पतिः । मात्रा वर्णावयवः । मित्रः सूर्यः । बन्धुजीवं बन्धूकम् पक्षे सुगमम् । मात्रा जनन्या सह ॥

जहाँ तारों के समूह ही गुरु + व्यतिक्रम (बृहस्पति ग्रह का परिवर्तन) करते हैं । मनुष्य गुरु + व्यतिक्रम (आचार्य-परिवर्तन) नहीं करते । लेखशालिकायें मात्रा + कलह (वर्णों के सम्बन्ध में कलह) उपस्थित करती हैं कोई आदमी माता के साथ कलह नहीं करता । मित्रोदय (सूर्योदय) से विद्वेष केवल उल्लू करते हैं कोई आदमी मित्रोदय (सुहृत्-कल्याण) से विद्रोह नहीं करता है । अपनी सन्तान का परित्याग केवल कोयलें करती हैं कोई मनुष्य अपनी सन्तान नहीं छोड़ता । बन्धुजीव (नामक फूल) का विनाश ग्रीष्म ऋतु ही करता है । कोई आदमी बन्धु + जीव (अपने बन्धु का जीवन) नष्ट नहीं करता है ॥

[गुरु-व्यतिकम—तारे अपने बीच कभी शुक्र कभी शनि आदि ग्रहों को मुख्यता देते रहते हैं। ग्रहों की स्थिति सदा वदलती रहती है। तात्पर्य यह कि गुरु-व्यतिक्रम (बृहस्पति का परिवर्तन) तारों के ही बीच होता है। आदमी जिस गुरु को एक बार चुन लेते हैं उसे वदलते नहीं क्योंकि भारतीय सभ्यता के अनुसार एक बार किसी को गुरु वना लेने के वाद उसे छोड़ कर दूसरे को गुरु नहीं वनाना चाहिये। वहाँ के निवासी इस नियम का यथावत् पालन कर रहे थे।

मात्रा + कलह—मातृ शब्द के तृतीया का एकवचन अर्थात् माता के साथ लोग कलह नहीं करते। लेखशालिका पक्ष में मात्रा शब्द के साथ कलह शब्द समस्त है।

मित्रोदय—उल्लू पक्षी सूर्योदय होने पर अन्धे हो जाते हैं। इसलिये वे चाहते नहीं कि सूर्योदय हो।

अपत्यत्याग—कोयल अपना अण्डा कौवे के घोसले में देती हैं। उसके अण्डे का पालन भी कौवे ही करते हैं। कौवे और कोयल के अण्डे में इतनी समानता रहती है कि कौवे कोयल के अण्डे को अपना ही समझ कर पालते हैं। इसीलिये कोयल को परभृत् (दूसरों के द्वारा पाला हुआ) कहते हैं!

वन्धुजीव—बन्धुजीव नामक फूल ग्रीष्म ऋतु में नष्ट हो जाता है।]

किं बहुना।

देशः पुण्यतमोद्देशः कस्यासौ न प्रियो भवेत्।
युक्तोऽनुक्रोशसंपन्नैर्यो जनैरिव योजनैः ॥ २८ ॥

देश इति ॥ अनुक्रोशेन कृपया संपन्नैर्युक्तोऽसौ देशः सर्वस्यापि प्रियः। पक्षेऽनुक्रोशे संपन्नान्यन्नजलतृणादिभिः समृद्धानि। अथवानुगताः परस्परसंबद्धाः क्रोशा अनुक्रोशास्तैः संपन्नानि ॥ २८ ॥

[अनुक्रोश + सम्पन्न योजन की तरह अनुक्रोश (दया) सम्पन्न मनुष्यों से युक्त वह अत्यन्त पुण्यशाली (तीर्थ) स्थानों वाला देश किसे प्रिय न होगा ॥

[अनुक्रोश सम्पन्न शब्द योजन शब्द का विशेषण है। आठ मीलों का एक योजन होता है और दो मीलों का एक क्रोश (कोस) होता है अर्थात् चार क्रोश जहाँ रहेंगे वहाँ एक योजन रहेगा। योजन सदा अनुक्रोश (क्रोश-सहित ही रहेगा। अनुक्रोश—सम्पन्न—योजन—शब्द का यह भी अर्थ किया जा सकता है—प्रत्येक योजन का क्रोश अन्न, तृण, जल आदि से सम्पन्न है। अर्थात् देश का प्रत्येक भाग सम्पन्न है। देश पक्ष में योजनैः शब्द को "यः + जनैः" इस तरह भङ्ग करना चाहिये। अर्थात् अनुक्रोश + सम्पन्न (प्रत्येक क्रोश पर अन्न-

जल-सम्पन्न) योजन का वह देश भी अनुक्रोश (दया सम्पन्न मनुष्यों से युक्त है] ॥ २८ ॥

तस्य विषयमध्ये निषधो नामास्ति जनपदः प्रथितः ।
तत्र पुरी पुरुषोत्तमनिवासयोग्यास्ति निषधेति ॥ २९ ॥

तस्येति ॥ पुरुषोत्तमो विष्णुः पुंश्रेयांश्च ॥ २९ ॥

उस (आर्यावर्त नामक) देश के बीच निषध नाम का जनपद है । वहाँ नरश्रेष्ठ व्यक्ति के निवास योग्य निषध नाम की नगरी है ॥

[पुरुषोत्तम शब्द का विष्णु अर्थ भी है । अर्थात् वह नगरी वैकुण्ठ-सदृश है अतः पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु) के निवास लायक भी है ।] ॥ २९ ॥

जननीतिमुदितमनसा सततं सुस्वामिना कृतानन्दा ।
सा नगरी नगतनया गौरीव मनोहरा भाति ॥ ३० ॥

जनेति ॥ जनस्य नीत्या हृष्टमनसा सुप्रभुणा कृतहर्षा तथा न भ्रष्टनया अपि तु सन्नीतिमती । सा पुरी रम्या भाति । यत एवानष्टनया अतएव जनो नीतिमान् । गौरी तु नगस्य हिमाद्रेस्तनया । तथा जननी मातेति हेतोर्हृष्टमनसा । अतएव शोभनेन हर्षोचिताकृतिसुन्दरेण स्वामिना स्कन्देन कृतानन्दा । तथा मनसि हरो यस्याः ॥ ३० ॥

नगरी पक्षः—जनसामान्य के व्यवहार से प्रसन्न चित्तवाले, सुन्दर स्वामी से आनन्दित एवं न्याय्य सम्पन्न (न + गत + नया) वह नगरी नग + तनया (पर्वतपुत्री) गौरी की तरह मनोहर है ।

पार्वती पक्ष :—जननी होने के कारण प्रसन्न चित्त वाली, अपने सुस्वामी (कार्तिकेय) से आनन्दित तथा हर (शंकर भगवान्) को मन में रखने वाली गौरी है ।

[नगरी पक्ष के श्लिष्ट शब्द :—जन + नीति + मुदित + मनसा (जन सामान्य के व्यवहार से प्रसन्न चित्तवाले) सुस्वामिना (सुन्दर राजा से आनन्दित और न + गत + नया (न्याय से अहीन) वह नगरी गौरी की तरह है ।

पार्वती पक्ष :—जननी + इति + मुदित + मनसा, सुस्वामिना—(माता हैं, इसलिये प्रसन्नचित्त कार्तिकेय द्वारा) आनन्दित नग + तनया (पर्वतपुत्री) गौरी हैं] ॥ ३० ॥

यस्यामभ्रंलिहेन्द्रनीलशालशिखरसहस्रनिभृतांशुजालबालशाद्वलाङ्कुराग्रग्रासलालसाः स्खलन्तः खे खेदयन्ति मध्येदिनं सादिनं रविरथतुरङ्गमाः ॥

यस्यामिति ॥ शालः प्राकारः । इन्द्रनीलमणिकिरणान्नीलतृणतुल्यांल्लिलिचवः सहस्रसप्तयः स्खलन्ति ॥

उस नगरी के गगनचुम्बी, नीलमणि की बनी हुई चहारदीवारी की चोटी पर उठते हुए हजारों किरणजाल उगते हुए नवीन तृणों के अंकुर-सदृश प्रतीत होते हैं। उन्हें खाने की उत्कट इच्छा वाले सूर्य-रथ के घोड़े दोपहर के समय नीचे खिसक कर सारथि को कष्ट पहुँचा रहे हैं ॥

[उस नगरी की चहारदीवारी नीलमणि से बनी हुई है। उससे निकलने वाली नील किरणें नवीन तृण की तरह प्रतीत हो रही हैं। दोपहर के समय सूर्य के घोड़े मानो उन किरणरूप तृणों को खाने के लिये नीचे की ओर आने के लिये जोर मार रहे हैं। ऐसी स्थिति में बेचारा, सूर्यसारथि उन अश्वों को नियन्त्रित करने में क्लेश का अनुभव कर रहा है।] ॥

यस्यां च स्फटिकमणिशिलानिबद्धभवनप्राङ्गणगतासु संचरद्-गृहीणीचरणालक्तकपदपङ्क्तिषु पतन्ति निर्मलसलिलाभ्यन्तरतरत्तरुणा-रुणकमलकाङ्क्षया मुग्धमधुपपटलानि ॥

यस्यां चेति ॥ स्फटिकस्य सलिलं पदपङ्क्तेश्च कमलमुपमानम् ॥

और जहाँ स्फटिक मणि की चट्टानों से बनी हुई आँगन की भूमि पर घूमती हुई रमणियों के अल्ता से रँगे गये चरणों की चिह्न-पंक्तियों को निर्मल जल के भीतर तैरते हुए पूर्ण विकसित लाल कमल समझ कर मत्त भ्रमरों के यूथ मड़रा रहे हैं ॥

स्फटिक मणि से निर्मित आँगन की भूमि निर्मल जल की तरह लग रही है। रमणियों के लाक्षारञ्जित पदचिह्न पूर्ण विकसित कमल की भ्रान्ति उत्पन्न कर दे रहे हैं। लाल पदचिह्नों को कमल समझ कर भ्रमर भनभना रहे हैं।] ॥

यस्यां च विविधमणिनिर्मितवासभवनभव्यभित्तिषु स्वच्छासु स्वां छायामवलोकयन्त्यः कृतापरस्त्रीशङ्काः कथमपि प्रत्यानीयन्ते प्रियैः प्रियतमाः ॥

जिस (नगरी) में विविध मणियों से बने हुए अत्यन्त सुन्दर निवास-भवनों की स्वच्छ और सुन्दर दीवालों पर अपनी छाया देखकर अन्य स्त्री की आशङ्का से (मानिनी बनी हुई) प्रियतमायें प्रियों के द्वारा किसी-किसी तरह लौटाई जाती हैं ॥

[नायिकायें अपने प्रियों के साथ भवन-प्राङ्गण में घूम रही हैं। दीवाल पर अपने और पति का प्रतिबिम्ब देखकर उन्हें आशङ्का हो जाती है कि

उनका पति किसी दूसरी स्त्री के साथ भ्रमण कर रहा है। अत एव वे मान कर बैठती हैं और पति उन्हें बड़ी कठिनाई से मना पाता है।]॥

यस्यां च दिव्यदेवकुलालंकृताः स्वर्गा इव मार्गाः, सततमपांसुवसनाः सागरा इव नागराः, समत्तवारणानि वनानीव भवनानि, सुरसेनान्विताः स्वर्गभूपा इव कूपाः, अधिकंधरोद्देशमुद्भासयन्तो हारा इव विहाराः॥

यस्यां चेति॥ दिवि भवैरिव दिव्यै रम्यैर्देवकुलैर्देवगृहैः पक्षे दिव्यैः स्वर्गोद्भवैः कल्पद्रुमादिभिर्देवानां कुलैरन्वयैर्वालंकृताः। अपांसुरेणुरहितं वस्त्रं येषाम्। पक्षे सुष्ठु वसन्त्येष्विति सुवसनः। 'अपाम्' इति कर्तरि षष्ठी। जलाधारा इत्यर्थः। मत्तवारणोऽपाश्रयो मत्तेभश्च। सुरसेन सुजलेन। स्वर्गभूपास्तु सुरसेनया त्रिदशसैन्येनान्विताः। अधिकमिति क्रियाविशेषणम्। धरोद्देशः पृथ्वीप्रदेशः। विहाराश्चैत्यानि। पक्षे कंधरोद्देश इत्यधिकं धरोद्देशम्। विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः॥

जहाँ के रमणीय भवनों से अलङ्कृत मार्ग कल्पवृक्ष और देववंश से समन्वित स्वर्गसदृश हैं। निरन्तर अपांसु+वसन (धूलिहीन (निर्मल) वस्त्र वाले) नागरिक अपां+सुवसन (जल-निर्मित सुन्दर भवन) वाले सागर सदृश हैं। मतवाले हाथियों से युक्त भवन मत्त हाथियों से समन्वित वन सदृश हैं। सुरसेन+अन्वित (सुन्दर जल से युक्त) कूप (इनारा) सुरसेना (देवसेना) से अन्वित स्वर्गीय वीरों की तरह है, अधिकन्धरोद्देश कंधे को सुशोभित करने वाले हार की तरह विहार (बौद्धमठ) अधिकन्धरोद्देश (धरोद्देश। भूतल को अधिक) सुशोभित कर रहे हैं॥

[अपांसुवसना—सागर पक्ष में अपाम् अप् शब्द का षष्ठी बहुवचन रूप है। "जल ही है सुन्दर घर जिसका" इस विग्रह में जल शब्दवाची अप् शब्द का प्रयोग प्रथमा में होना चाहिये। अतः यहाँ यही मानना चाहिये कि कर्ता में षष्ठी हुई है। वहाँ के लोग धूलिहीन अर्थात् निर्मल वस्त्र धारण करते हैं और सागर अपांसुवसन अर्थात् जलमय भवनवाला है। अपांसुवसनत्व साधारण धर्म है।

सुरसेनान्वित—कूप पक्ष में सुरस शब्द का तृतीयान्त रूप सुरसेन है वह अन्वित शब्द के साथ दीर्घ सन्धि द्वारा जुड़ा हुआ है। भूप पक्ष में सुरसेना शब्द के साथ अन्वित शब्द का अन्वय है।

अधिकन्धरोद्देश—हार अधिकन्धरोद्देश (स्कन्ध स्थल) की शोभा बढ़ाता है। विहार (बौद्धमठ) भी धरोद्देश (भूतल) की अधिक शोभा बढ़ाते हैं। हार पक्ष में कन्धरोद्देशे इति अधिकन्धरोद्देशम् अव्ययी भाव समास है। विहार पक्ष में धरोद्देश शब्द एक है और अधिक शब्द क्रियाविशेषण है॥

यस्यां च बहुलक्षणाः सुधावन्तो दृश्यन्तेऽन्तः प्रचुराः प्रासादा बहिश्च वारणेन्द्राः। सुशोभितरङ्गाः समालोक्यन्तेऽन्तः संगीतशाला बहिश्च क्रीडाकमलदीर्घिकाः। बहुधान्यनिरुद्धाः कथमप्यभिगम्यन्तेऽन्तः पण्यस्त्रियो बहिश्च क्षेत्रभूमयः। नानाशुकविभूषणाः शोभन्तेऽन्तः सभा बहिश्च सहकारवनराजयः। ससौगन्धिकप्रसारा विराजन्तेऽन्तविपणयो बहिश्च सहकारवनराजय। ससौगन्धिकप्रसारा विराजन्तेऽन्तर्विपणयो बहिश्च सलिलाशयाः ॥

यस्यां चेति ॥ क्षणो भूमिका। सुधा लेपविशेषः। पक्षे बहूनि लक्षणानि येषाम्। तया सुष्ठु धावन्तः। रङ्गो नर्तनस्थानम्। पक्षे सुशोभिनस्तरङ्गा येषु। बहुधेति भिन्नं पदम्। अन्यैर्विटैर्निरुद्धाः। पक्षे बहुभिर्धान्यैर्निरुद्धाः। आशुकविः शीघ्रकविः। पक्षे शुकाः पक्षिणः। सुगन्धीनि द्रव्याणि पण्यमेषां ते सौगन्धिका वणिजः कल्हाराणि वा। प्रसारो लघ्वापणो विस्तरश्च ॥

जिस नगरी के भीतर बहुल + क्षणाः (पर्याप्त भूमिवाले) और सुधावन्तः (चुन्ने से पुते हुये) बहुत से भवन हैं और बाहर की ओर बहु + लक्षण (विविध शुभ लक्षणों से युक्त) और सुधावन्ताः (अच्छी तरह से दौड़ते हुए) हाथी हैं। भीतरी भाग में सुशोभित + रङ्गाः (सुन्दर रङ्गमञ्च से युक्त) संगीतशालायें और बाहर की ओर सुशोभि + तरङ्गाः (सुन्दर तरङ्गों से युक्त) कमलों से भरे हुए क्रीडा सरोवर दिखायी देते हैं।

भीतरी भाग में वाराङ्गनाएँ बहुधा + अन्य + निरुद्ध (अधिकांश धूर्तों द्वारा घिरी) रहती हैं अतः उनके पास किसी-किसी तरह जाया जा सकता है और बाहर की ओर कृषिभूमि बहु + धान्य + निरुद्ध (अधिक धान से घिरी हुई) हैं (अतः उसमें भी बड़ी कठिनाई से) जाया जाता है।

भीतर सभी नाना + आशु + कवि (शीघ्र कविता प्रस्तुत करने वाले कवियों) से विभूषित हैं और बाहर नाना + शुक + विभूषण (विभिन्न तोतों से अलङ्कृत) आम की वनपङ्क्तियाँ हैं।

भीतर सुगन्धित द्रव्य बेचने वाले बनियों की छोटी-छोटी दुकानों से बाजार सुशोभित हो रहे हैं और बाहर सुन्दर गन्ध व्यक्त करने वाले कमलों से युक्त सरोवर हैं ॥

किं बहुना।

भूमयो बहिरन्तश्च नानारामोपशोभिताः।
कुर्वन्ति सर्वदा यत्र विचित्रवयसां मुदम् ॥ ३१ ॥

भूमय इति ॥ बाह्ये आरामैर्मध्ये रामाभिरुपशोभिताः। यस्यां रम्यवयसां यूनां विविधपक्षिणां च मुदं कुर्वन्ति। वपुष्मतां कालकृतावस्था पक्षी च वयः ॥ ३१ ॥

विभिन्न रामाओं (स्त्रियों) से सुशोभित नगर के अन्तरङ्ग भाग विचित्र-वयस् (युवावस्था वाले) लोगों को हमेशा आनन्द देते हैं और विभिन्न आरामों (बगीचों) से सुशोभित उसके बहिरङ्ग भी विचित्र + वयस् (विविध पक्षियों) को सदा आनन्द देते हैं ॥ ३१ ॥

यस्यां च भक्तभाजो देवतायतनेषु देवताः संनिधाना दृश्यन्ते हट्टेषु वणिग्जनाः। अक्षरसावधानाः कविगोष्ठीषु कवयो विलोक्यन्ते द्यूतस्थानेषु द्यूतकाराः। कान्तारागप्रियाः करिणो राजद्वारेषु संचरन्ति वेश्याङ्गणेषु भुजङ्गाः ॥

यस्यां चेति ॥ भक्तो भक्तिमान्। भक्तं चान्नम्। संनिधानम् नैकट्यम्। सम्यङ्निधिश्च। अक्षरं वर्णः। पक्षे अक्षः पाशकः। अक्षरसे स्थितमवधानं येषाम्। कान्तारे वने अगः सल्लक्यादिवृक्षस्तत्प्रियाः। पक्षे कान्ता वधूः ॥

जिस नगरी में देवताओं के आयतन (मन्दिरों) में भक्तभाक् (भक्त युक्त) देवता सन्निहित दिखायी पड़ते हैं और हट्ट (बाजार) में भक्तभाक् (अन्न बेचने वाले) बनियाँ सन्निहित दिखायी पड़ते हैं। कविगोष्ठी में कवि लोग अक्षर-विन्यास (वर्णविन्यास) में सावधान दिखायी देते हैं और जुवा खेलने की जगह पर जुवाडी लोग अक्ष + रस (पाशा फेंकने) में अवधान (सावधान) रहते हैं। राजद्वार पर कान्तार (जंगल) के अग (वृक्षों) से प्रेम रखने वाले हाथी भ्रमण कर रहे हैं और वेश्याओं के आँगन में कान्ता + राग को प्रिय मानने वाले विट घूम रहे हैं ॥

[भक्तभाजः—भक्त शब्द के अन्न और भक्तियुक्त पूजक दो अर्थ हैं। मन्दिरों में भक्तों (पूजकों) से युक्त देवता हैं और बाजार में भक्त (अन्न) युक्त वणिग्जन हैं। भक्त-भाक्त्व साधारण धर्म है।

अक्षर + सावधान :—कवि लोग सभा में जब अपनी कविता प्रस्तुत करते हैं तब अक्षर-अक्षर पर सावधान रहते हैं कि कहीं अशुद्धि न हो जाय। जुवाड़ी लोग अक्ष + रस + अवधान हैं। पाशा फेंकने में पर्याप्त सावधानी रखते हैं। अक्षरसावधानत्व साधारण धर्म है।

कान्तारागप्रिय :—करी (हाथी) पक्ष में कान्तार + अग + प्रिय (जंगल के पेड़ों को प्रिय मानने वाले) और विट पक्ष में कान्ता + राग + प्रिय (रमणी स्नेह) को रमणीय मानने वाले यह अर्थ करना चाहिये।] ॥

यस्यां च चतुरुदधिवेलाविराजितसकलधराचक्रचूडामणौ मणि-कर्मनिर्मितरम्यहर्म्यतया सुरपतिपुरीपराभवकारिण्याम्। अव्ययभावो व्याकरणोपसर्गेषु न धनिनां धनेषु, दानविच्छित्तिरुन्मादयत्करिकपोल-

मण्डलेषु न त्यागिगृहेषु, भोगभङ्गो भुजङ्गेषु न विलासिलोकेषु-स्नेहक्षयो रजनीविरामविरमत्प्रदीपपात्रेषु न प्रतिपन्नजनहृदयेषु कूटप्रयोगो गीततानविशेषेषु न व्यवहारेषु, वृत्तिकलहो वैयाकरणच्छात्रेषु न स्वामिभृत्येषु, स्थानकभेदश्चित्रकेषु न सत्पुरुषेषु ॥

यस्यां चेति ॥ अव्ययभावोऽव्ययत्वम् । पक्षे व्ययो दानादिनोपयोगस्तदभावः । दानविच्छित्तिर्मदशोभा त्यागविच्छेदश्च । भोगः सर्पवपुर्विलासश्च । भङ्ग आमर्दनम् । कुण्डल्याश्चतुर्दश । एवमेकोनपञ्चाशत् । तेषां विशेषेषु कूटशब्दप्रयोगः । पक्षे कूटं कपटं प्रयोगो व्यापारः । वृत्तिः शास्त्रविवरणम् । आजीवनं च । स्थानकभेदः संमुखं पराङ्मुखं संपूर्णावलीकरणमिति यावत् । व्याघातश्च । स्नेहस्तैलादिः प्रेमा वा । प्रतिपन्नानि परस्परप्रतीतानि च तानि जनहृदयानि च । गीतस्य नाना द्वये । एके कूटाख्याः पञ्चत्रिंशत् । अन्ये च शुद्धायवरूपं पार्श्वागतम् । ततो भागद्वयेनैकतः पततान्यत्र च चटता क्रमेण ऋजु ऋज्वागतद्व्यर्धाद्यार्धऋजुसंज्ञानि चेति स्थितस्थानकानि पञ्च । गगनमालीढं त्वरितं त्रिभङ्गमित्याख्यानि च चत्वारि गच्छत्स्थानकानीति । एवं च नवानां स्थानकानां भेदश्चित्रेषु । पक्षे स्थानकस्य रक्षणीयनगरादेर्भेद उपजापो न सत्पुरुषेषु सत्त्वात् ॥

चारों समुद्रों के तट रूप में सुशोभित सम्पूर्ण भूमण्डल में सर्वोत्तम, मणियों से निर्मित रमणीय महलों के कारण सुरपति (इन्द्र) की नगरी को भी परास्त करने वाली उस नगरी में अव्ययभाव ·यदि पाया जाता है तो व्याकरणशास्त्र के उपसर्गों में, धनियों के धन में नहीं। दान-विच्छित्ति यदि कहीं है तो मतवाले हाथियों के कपोलमण्डल में, त्यागियों के घर में नहीं। भोग की भङ्गता सर्पों में हैं, विलासी लोग में नहीं। स्नेहक्षय (तेल का अभाव) रात्रि की समाप्ति के समय बुझते हुए दीपपात्रों में हैं, प्रतिपन्न जन (भक्त लोगों) के हृदय में स्नेहक्षय (प्रेम का अभाव) नहीं है। कूट का प्रयोग संगीत के तानों में होता है, व्यवहार में कूट (छल) का प्रयोग नहीं होता। वृत्ति (पाणिनि सूत्रों के अर्थ-विवेचन) के प्रसङ्ग में वैयाकरण के विद्यार्थियों में कलह होता है, वृत्ति (वेतन) के प्रसङ्ग में स्वामी और नौकर के बीच कलह नहीं होता। स्थानकभेद (किसी को सीधा, किसी को उतरा बनाना) चित्रों में देखा जाता है, सत्पुरुष लोग स्थानकभेद (नगर के दर्शनीय या रक्षणीय स्थानों) का विनाश नहीं करते ॥

[व्याकरणोपसर्गेषु :—व्याकरणशास्त्र के प्र परा आदि उपसर्गों में विभक्तिजन्य किसी तरह का विकार नहीं होता। उनके मूल स्वरूप का व्यय नहीं होता। कवि इस बात को द्योतित करना चाहता है कि न व्यय होने की बात या स्थिति कहीं है तो केवल व्याकरणशास्त्रीय उपसर्गों में, धनियों के धन में नहीं। धनी लोग उदार हैं। उदारतापूर्वक धन का व्यय करते हैं।

दानविच्छित्तिः—दानविच्छित्ति के दो अर्थ हैं—मदजल की शोभा और दान का त्याग। मदजल की शोभा से हाथियों का कपोल मण्डल मण्डित है किन्तु त्यागियों के घर में दान विच्छेद नहीं है। वे लोग सदा दान करते रहते हैं।

भोगभङ्गः—भोग शब्द सांसारिक विलास और सर्प शरीर अर्थ का याचक है। सर्पलोग अपने शरीर को भङ्ग (टेढ़ा) करते हैं विलासियों का विलास भङ्ग (नष्ट) नहीं होता।

स्नेहक्षयः—स्नेह शब्द तेल और प्रेम दोनों का वाचक है। रात्रि के विराम के समय स्नेह (तेल) के समाप्त हो जाने पर दीपक बुझ जाते हैं नगर के लोग रातभर दीप जलाते थे। दीप के प्रशान्त होने के समय में ही स्नेह क्षय होता था किसी स्नेही व्यक्ति के हृदय में स्नेह का अभाव नहीं होता।

कूटप्रयोगः—संगीत के प्रसङ्ग में अस्पष्ट अर्थ वाले कूट शब्दों का प्रयोग होता है। व्यवहार में कूट (छल) का प्रयोग नहीं होता॥

किं बहुना

त्रिदिवपुरसमृद्धिस्पर्धया भान्ति यस्यां
सुरसदनशिखाग्रेष्वाग्रहग्रन्थिनद्धाः।
नभसि पवनवेल्लत्पल्लवैरुल्लसद्भिः
परममिह वहन्त्यो वैभवं वैजयन्त्यः॥ ३२॥

त्रिदिवेति॥ सुराणां सदनानि प्रासादा विमानानि च। आगृह्यन्त एभिरित्याग्रहा अङ्कुटकास्तेषु ये ग्रन्थयस्तैर्नद्धाः। वेल्लत्पल्लवैश्चलदञ्चलैः। उल्लसद्भी राजद्भिः। वैभवं माहात्म्यम्। सर्वोऽपि विजिगीषुर्बद्धपरिकरः पताकां दर्शयतीतिभावः॥३२॥

देव नगरी स्वर्ग की सम्पत्ति की प्रतिद्वन्द्विता से देव गृहों के आगे गाँठ बाँधी हुई, आकाश में फड़फड़ाते हुए वस्त्राञ्चलों से युक्त अतुल ऐश्वर्य को प्रकट करती हुई पताकायें सर्वथा सुशोभित हो रही हैं।

[नगरी की पताकायें स्वर्गीय सम्पत्ति से स्पर्धा करती हैं। उसी स्पर्धा में बद्धपरिकर हो कर स्वर्ग के सामने खड़ी हैं। प्रतिद्वन्द्वी व्यक्ति अपने प्रतियोगी के सामने जाकर लड़ने के लिये बिलकुल सावधान हो कर डटा रहता है और अपने ऐश्वर्य को हर तरह से प्रकट करना चाहता है। ये पताकायें भी अपने ऐश्वर्य को व्यक्त करती हुई स्वर्ग के सामने डटी हुई हैं। जिस डंडे में पताकायें रहती हैं, उसके अग्रभाग को खुब अच्छी तरह बाँध देते हैं। उसी गाँठ को लेकर कवि पताकाओं में बद्धपरिकरता देख रहा है।]॥३२॥

अपि च।

चार्वी सदा सदाचारसज्जसज्जनसेविता।
नगरी न गरीयस्या संपदा सा विवर्जिता॥ ३३॥

चार्वीति। चार्वी मनोज्ञा। सततं साध्वाचारप्रह्वसाधुश्रिता सा नगरी पुरी गरीयस्या श्रिया न त्यक्ता॥ ३३॥

निरन्तर पवित्र आचरण में सज्ज (तत्पर) सज्जनों द्वारा सेवित यह नगरी विशाल सम्पत्ति से परित्यक्त नहीं है॥

[यह प्रसिद्ध सा है कि सज्जनों के यहाँ लक्ष्मी नहीं रहती हैं किन्तु इस वात की प्रतिकूलता उस नगरी में है सज्जन लोग अपने सौजन्य पूर्ण कार्य में तत्पर हैं फिर विपुल लक्ष्मी से सम्पन्न हैं]॥ ३३॥

तस्यामासीन्निजभुजयुगलबलविदलितसकलवैरिवृन्दसुन्दरीनेत्रनीलोत्पलगलद्बहलबाष्पपूरप्लवमानप्रतापराजहंसः, सकलजलनिधिवेलावननिखातकीर्तिस्तम्भभूषितभुवनवलयः, विश्वंभराभोग इव बहुधारणक्षमः, प्रासाद इव नवसुधाहारी, रविरिवानेकधामाश्रयः। दनुजलोक इव सदानवः स्त्रीजनस्य, वसिष्ठ इव विश्वामित्रत्रासजननः जनमेजय इव परीक्षितनयः, परशुराम इव परशुभासितः, राघव इवालघुकोदण्डभङ्गरञ्जितजनकः॥

तस्यामिति॥ शत्रुकान्ताश्रुपूरे तरन्प्रताप एव राजहंसो यस्य। तथा जयस्तम्भैर्भूषितभूमण्डलः। तथा स्तम्भोपमदोर्दण्डे न्यस्ता शालभञ्जिकेव जयलक्ष्मीर्यस्य। स वीरसेनसूनुर्नल इति प्रसिद्धो नृप आसीत्। बहुधानेकशो रणे क्षमः। पक्षे बहूनां धारणे क्षमः। आभोगः पूर्णता। वसुधां देवद्विजसंबद्धां हरत्येवंशीलो न। पक्षे नवया सुधया लेपविशेषेण हारी रम्यः। अनेकधा सप्ताङ्गत्वाद्बहुधा माया लक्ष्म्या आश्रयः। पक्षेऽनेकस्य प्रचुरस्य धाम्न आश्रयः। सदा नित्यं नवो रम्यतया पूर्व एव। पक्षे दानवैः सह विश्वेषाममित्राणां त्रासकृत्। पक्षे विश्वामित्रो मुनिः। परीक्षितो नयः षाड्गुण्यं येन। पक्षे परीक्षेरभिमन्युसुतस्य सुतः। परस्मिन्छुभे आसितः। पक्षे परशुः। कुठारः। अलघुको गौरवार्हः। तथा दण्डस्य वधपरिक्लेशार्थहरणलक्षणस्य भङ्गेन मुक्त्या रञ्जितलोकः॥ पक्षे बृहद्धनुर्भङ्गहर्षितजनकाख्यनृपः॥

उस नगरी में नल नामक राजा रहता था। उसने अपने बाहु युगल के वल से शत्रु दल को नष्ट कर दिया था।

इस लिये उन (शत्रुओं) को सुन्दर रमणियों के नेत्र कमल से गिरती हुई पर्याप्त आँसुओं की धारा में उस (नल) का प्रताप रूप राजहंस तैर

रहा था। [प्रतापी नल ने अपने शत्रुओं को नष्ट कर दिया था अतः शत्रुओं की स्त्रियाँ वैधव्य दुःख से खिन्न होकर रो रही थीं] सम्पूर्ण समुद्र तट की रक्षा के लिये अपने कीर्तिस्तम्भों को खड़ा कर दिया है जिससे पूरा का पूरा भूमण्डल सुशोभित हो रहा था। वसुन्धरा (पृथ्वी) विस्तार जैसे वहुधारण क्षम (वहुत सी चीजों को धारण करने में समर्थ) है वैसे राजा नल भी बहुधा + रणक्षम (विविध प्रकार से युद्ध सामर्थ्य रखे) थे। भवन जैसे नव + सुधाहारी (नवीन चुन्ने के लेप के कारण मनोहर) होता है वैसे नल भी (इस संसार में) नव + सुधाहारी (नवीन सुखशान्तिरूप अमृत को लाने वाले) थे. अथवा न + वसुधा + हारी (ब्राह्मण या देव निमित्त दी हुई भूमि का अपहरण करने वाले नहीं) थे। सूर्य जैसे अनेक + धामाश्रय (विभिन्न लोकों में आश्रय लेने वाले) हैं वैसे वह भी अनेकधा + मा + आश्रय (कई प्रकार की लक्ष्मी का वास स्थान) थे। दनुजलोक जैसे सदानव (राक्षसों से युक्त) है वैसे नल भी स्त्री जनों के लिये सदा + नव (नित्य-नया) दीखते थे। वसिष्ठ जैसे विश्वामित्र + त्रास + जनन (विश्वामित्र ऋषि को डराने वाले) थे वैसे नल भी विश्वामित्र त्रास जनन (संसार के अमित्रकों को त्रास दिलाने वाले) थे। जनमेजय जैसे परीक्षि + तनय (राजा परीक्षित का लड़का) है वैसे नल भी परीक्षित + नय (सब तरह से अपनी नीति को परीक्षित कर लिये) थे। परशुराम जैसे परशु + भासित (परशुनामक अस्त्र से सुशोभित) हैं वैसे नल भी पर + शुभ + आसित (दूसरों के शुभ में आस्था रखने वाले); थे। अथवा उत्कृष्ट शुभ की कामना करने वाले थे या पर (दुश्मनों की भी दुर्बुद्धि को समाप्त कर शुभ की कामना करने वाले थे। राघव (भगवान् राम) जैसे अलघु को दण्ड भङ्ग रञ्जित (विशाल धनुष् को तोड़ कर जनक राजा को प्रसन्न करने वाले) हैं वैसे नल अलघुक (गौरव पात्र) है और दण्ड + भङ्ग + रञ्जित जनक (मृत्यु आदि कठिन दण्ड को समाप्त कर जनक (प्रजा) को अनुरञ्जित कर देने वाले) थे॥

[भगवान् राम ने जैसे विशाल धनुष को तोड़ कर जनक की चिन्ता को नष्ट कर उन्हें प्रसन्न कर दिया था वैसे राजा नल भी अलघुक (गौरव पात्र) थे और अपराधियों के कभी-कभी दण्ड को समाप्त कर प्रजा को प्रसन्न कर दे रहे थे। यहाँ अलघुकः की दण्डादि के साथ सन्धि हो गयी है। राघव पक्ष में धनुष् अर्थ का वाचक कोदण्ड शब्द एक है। न्यायाधिकरण से किसी को मृत्यु आदि महान् दण्ड मिल जाने पर राजा से प्रार्थना की जा सकती थी और वह अपनी इच्छा के अनुसार उसे क्षमा कर सकता था॥]

सुमेरुरिव जातरूपसम्पत्तिः, तुहिनाचल इव पुण्यभागीरथी-सहितः, चिन्तामणिः प्रणयिनाम्, अग्रणीः सांग्रामिकाणाम्, उपाध्यायोऽध्यायविदाम्, आदर्शो दर्शनानाम् आचार्यः शौर्यशालिनाम् उपदेशकः शस्त्रशास्त्रस्य, परिवृढो दृढप्रहारिणाम्, अग्रगण्यः पुण्यकारिणाम्, अपश्चिमो विपश्चिताम्, अपाश्चात्यस्त्यागवताम्, अचरमश्चातुर्याचार्याणाम्, अपर्यन्तभूभाराधारस्तम्भभूतभुजकाण्डकीलितशालभञ्जिकायमानविजयश्रीः, श्रीवीरसेनसूनुः, समस्तजगत्प्रासादशिरःशेखरीभूतकान्तकीर्तिध्वजो, राजा, राज्यलक्ष्मीकरेणुकाचापलसंयमनशृङ्खलः, खलवृन्दकन्दलदावानलो नलो नाम ॥

जाता रूपसम्पत्तिर्यस्य। पक्षे जातरूपं सुवर्णं सम्पत्तिर्यस्य॥ पुण्यभजनशीलः। रथवान्। हितैः सह। पक्षे पुण्यगङ्गान्वितः। प्रणयिनामर्थिनां चिन्तनप्रदो मणिरिव। जगतः प्रासादः कीर्तेश्च ध्वज उपमानम्॥

सुमेरु (पर्वत) जैसे जातरूप सम्पत्ति (सुवर्ण सम्पत्ति से युक्त) है वैसे वह (नल) भी जातरूप सम्पत्ति (सौन्दर्य सम्पत्ति से युक्त) थे। तुहिनाचल (हिमालय) जैसे पुण्य+भागीरथी सहित (पवित्र गंगा नदी से युक्त) है वैसे वह भी पुण्य भागी, रथी, सहित (पुण्यात्मा, महारथी और हित की भावना से युक्त) थे। प्रणयी (याचक जन) के लिये वह चिन्तामणि (समस्त आकाङ्क्षित पदार्थों को देने वाले) थे। योद्धाओं में अग्रसर थे। अध्ययन प्रकार के विशेषज्ञों में भी अध्यापक थे। वेदान्तादि दर्शनों के आदर्श (निर्मल दर्पण) थे। वीरता ही जिनकी शोभा है ऐसे लोगों के भी आचार्य थे। शस्त्र एवं शास्त्र दोनों ही विद्याओं के शिक्षक थे। दृढ़तापूर्वक प्रहार करने वाले लोगों की ओर भी सोल्लास आगे बढ़ने वाले थे। पुण्यात्माओं में अग्रणी थे। विद्वानों में सर्वोच्च थे। त्यागियों में अपाश्च्यात्य (सबसे आगे) थे। चतुरता के उपदेश देने वालों में भी वह सर्वोत्कृष्ट थे। समग्र भूमण्डल के भार को धारण करने वाली उसकी भुजायें आधार स्तम्भ (खम्भे) की तरह थीं। उसके बाहुस्तम्भ में विजयलक्ष्मी कठपुतली की तरह पिरो दी गयी थी। वह वीरसेन के पुत्र थे। सम्पूर्ण संसार रूप भव्य भवन के उच्चतम भाग पर उसकी भास्वर कीर्तिपताका फहरा रही थी। राजलक्ष्मी रूपी हथिनी को बाँधने के लिये वह बन्धन-शृङ्खला थे। दुष्ट जन समूह के लिये दावानल (काननाग्नि) थे॥

यस्येन्दुकुन्दकुमुदकान्तयः सकललोककर्णप्रियातिथयो गुणाः सततमेकब्रह्माण्डसंपुटसंकीर्णनिवासव्यसनविषादिनः पुनरनेकब्रह्माण्ड-

कोटिघटनामभ्यर्थयमाना इव भगवतो विश्वसृजः कमलसंभवस्य कर्ण-लग्नाः स्वर्गलोकमधिवसन्ति स्म ॥

यस्येति ॥ यस्य नलस्य प्राचुर्यादेकस्मिन्ब्रह्माण्डेऽमान्तोऽनेकब्रह्माण्डनिर्माणं कारयिष्यन्त इव स्वर्गिभिर्नित्यमेव श्लाघ्यमानत्वात्कर्णलग्नः श्रुतौ विज्ञापनार्थं निकटीभूताः ॥

राजा नल के गुण चन्द्र, कुन्द और कुमुद की कान्ति की तरह निर्मल थे। लोगों के कानों के प्रिय अतिथि थे। हमेशा एक ही ब्रह्माण्ड में संपुट (बन्द) होकर संकीर्णता पूर्वक निवास करने के कारन दुःख का अनुभव करते हुए मानों अनेक करोड़ ब्रह्माण्ड निर्माण करने के लिये विश्व के निर्माता एवं कमल से जन्म लेने वाले भगवान् के कानों में लगकर प्रार्थना करते हुए स्वर्ग लोक में रहते थे।

[माहराज नल के गुण एक ही ब्रह्माण्ड में नहीं अंट पा रहें हैं। उन्हें अच्छी तरह रहने के लियें अनेक ब्रह्माण्ड चाहिये। इसीलिये। ब्रह्माण्ड के निर्माता ब्रह्मा के पास जाकर उनके कानों में कहते थे, "हमारे रहने के लिये करोड़ों ब्रह्माण्ड का निर्माण कीजिये ॥"]

यस्मिंश्च राजनि जनितजनानन्दे नन्दयति मेदिनीम्, गीतेषु जातिसंकराः, तालेषु नानालयभङ्गाः, नृत्येषु विषयकरणप्रयोगाः, वाद्येषु दण्डकरप्रहाराः पुण्यकर्मारम्भेषु प्रबन्धाः, सारिद्यूतेषु पाश-प्रयोगाः, पुष्पितकेतकीषु हस्तच्छेदाः, न्यग्रोधेषु पादकल्पनाः; कञ्चुक-मण्डनेषु नेत्रविकर्तनानि, आसन्। न प्रजासु ॥

यस्मिंश्चेति ॥ गीतादिष्वेव जातिसङ्करादीनि न प्रजास्विति परिसंख्ययाव-धारणम्। गीतेषु नन्दयन्तीप्रभृतयो जातयोऽष्टादश। तासु सङ्करो मिश्रप्रतीतिः। पक्षे जातयो विप्राद्याः। सङ्करोऽनुचितसम्बन्धेन विप्लवः। तालश्चञ्चत्पुटादिः। लया द्रुतमध्यविलम्बितलक्षणाः। पक्षे आलयो गृहम्। करणानि तलपुष्पपटादीन्य-ष्टोत्तरशतसंख्यानि। पक्षे विषमास्स्वार्थे कः। रणो युद्धम्। दण्डः कोणः। करः पाणिः। पक्षे दण्डो वधादिः। करो राज्ञे देयोंऽशः। प्रहारो घातनम्। प्रबन्धाः सातत्यानि प्रकृष्टबन्धाश्च। पाशो बन्धो बन्धनरज्जुश्च। सारयो हि दायैर्बध्यन्ते। अक्षार्थस्तु पाशक एव प्रतीतः। हस्तः केतकीगर्भः पाणिश्च। पादस्य मूलस्य रचना। न्यग्रोधपादपः पादान्रचयति कल्पयति। पक्षे पादस्याङ्घ्रेः कल्पना कर्तनम्। नेत्रं वस्त्रविशेषो नयनं च। विशेषेणाङ्गप्रमाणेन कर्तनं विकर्तनं विखण्डनं च ॥

जिसके राज्यकाल में प्रजा आनन्द मग्न थी, पृथ्वी प्रसन्न थी। गीतों में ही नन्दयन्ती आदि जातीयों का सांकर्य्य था। आदमियों में वर्ण सांकर्य नहीं था। संगीत के अवसर पर ताल देते समय नाना + नय भङ्ग (विभिन्न स्वरों

का उतार चढ़ाव होता था किसी आदमी का नाना + आलय + भङ्ग (विजिन्न गृह ध्वंस) नहीं होता था।

नृत्य के अवसर पर ही विषमकरण (तेल, पुष्प, पट, आदि १०८ करणों) का प्रयोग होता था, विषमक (भयङ्कर) रण (युद्ध) नहीं होता था। बाजे बजाते समय ही दण्ड (लकड़ी का प्रयोग अथवा हाथ) का प्रहार किया जाता था, प्रजा में किसी को मृत्यु आदि दण्ड अथवा कर (मालगुजारी) आदि से पीड़ित नहीं किया जाता था। पुण्यकर्म सम्बन्धी प्रयासों में ही बहुत से प्रबन्ध किये जाते थे, अथवा पुण्यकर्म (यज्ञ आदि कार्यों) मे ही बड़े-बड़े प्रबन्ध (भागवत आदि महापुराणों) का पाठ किया जाता था। किसी प्रजा के ऊपर प्रबन्ध (प्रकृष्टबन्धन) नहीं लगाया जाता था। सारीद्यूत में ही पाशे का प्रयोग होता था, किसी प्राणी को फंसाने के लिये पाश (जाल का प्रयोग नहीं होता था। विकसित केवड़े का हस्तछेद (मध्यभाग का त्रोटन) होता था, किसी आदमी का हस्तच्छेद (भुजकर्तन) नहीं होता था। न्यग्रोध (वट) का वृक्ष ही पादकल्पन (नवीन जड़ों या वरोहों की सृष्टि) करते थे। किसी आदमी का पादकल्पन (चरण कर्तन) नहीं किया जाता था। कञ्चुकमण्डन (चोली) आदि सोने के समय ही नेत्र (नामक वस्त्रों) का विकर्तन (छेदन) होता था, किसी प्राणी का नेत्रविकर्तन (नेत्र निष्कासन) नहीं किया जाता था॥

[नेत्र विकर्तन—नेत्र एक चमकीले वस्त्र का नाम है। चोली आदि के निर्माण के समय दर्जी लोग वस्त्र को काटते हैं। कोई प्रजा अपराध नहीं करती जिसके दण्ड के उपलक्ष्य में किसी की आँख निकाली जाय॥

यश्च कोऽप्यन्योदृश एव लोकपालः। तथाहि। अपूर्वो विबुधपतिः, अदण्डकरो धर्मराजः, अजघन्यः प्रचेताः अनुत्तरो धनदः॥

यश्चेति॥ कोऽपि विस्मयहेतुः। लोकं जगत्पालयन्ति ये तेभ्योऽन्यादृशो विसदृश एव लोकं प्रजां पालयतीति कृत्वा लोकपालः। स्वोक्तमेव द्रढयति—तथाहीत्यादिना। यतो विबुधानां सुराणां पतिः स पूर्वः पूर्वदिग्युक्तत्वात्। नलस्त्वपूर्व उत्कृष्टो विबुधानां विदुषां पतिः। दण्डपाणिर्यमः। नलस्तु न दण्डो वधादिः, करो राज्ञे देयोंऽशो यस्मादित्यदण्डकरः। तथा धर्मप्रधानराजा धर्मराजः। धर्मविजयत्वात्। प्रचेता वरुणः सह जघन्यया पश्चिमया वर्तते। नलस्त्वजघन्योऽकुत्सितः प्रकृष्टचेताश्च। यदुक्तम्—'जघन्यं चरमे शिश्ने जघन्यं गर्हितेऽन्यवत्'। धनदः कुबेरः सहोत्तरया दिशा वर्तते। नलस्तु न विद्यत उत्तर उत्कृष्टोऽस्मादित्यनुत्तरः। तथा धनं ददातीति धनदः॥

यह एक दूसरे ही ढंग का अलौकिक लोकपाल था। [संसार के पालक यमकुबेर आदि लोकपाल से भिन्न ही यह प्रजापालक लोकपाल था]

क्योंकि विबुधपति (देवताओं के स्वामी इन्द्र) तो पूर्व दिशा में रहते हैं किन्तु यह तो विबुध पति (पण्डितों का पति) होता हुआ भी अपूर्व (अद्भुत) था। धर्मराज (यमराज) हमेशा दण्डकर (हाथ में दण्ड लिया करते) हैं। किन्तु यह नल तो अदण्डकर (वध आदि दण्ड और कर नहीं लगाता) है फिर भी धर्मराज (धर्म प्रधान राजा है। प्रचेता (वरुण) तो जघन्य (पश्चिम दिशा में रहने वाले) हैं नल तो अजघन्य (अकुत्सित) है और प्रचेता (उत्कृष्ट चित्त वाला) भी है। धनद (कुबेर) उत्तर दिशा में रहते हैं। नल तो धनद (धन देने वाला) किन्तु अनुत्तर (सर्वोत्कृष्ट) है॥

[नल भिन्न शैली का ही लोकपाल था, क्योंकि इन्द्र भी एक लोकपाल हैं जो संपूर्व हैं, किन्तु नल अपूर्व था। धर्मराज दण्डकर हैं नल अदण्डकर था। वरुण जघन्य हैं नल अजघन्य था। कुबेर उत्तर हैं नल अनुत्तर था। इसलिये उसकी भिन्नता सिद्ध हो गयी॥]

येन प्रचण्डदोर्दण्डमण्डलीविश्रान्तविजयश्रिया श्रवणोत्पलदलायमानमानिनीमानलुण्ठाकलोचनेन पृथ्वी प्रिया च कामरूपधारिणी सा तेन भुक्ता॥

येनेति॥ विजयता सुनेत्रेण येन भूः कान्ता च सातेन सुखेन निर्विष्टा भुक्ता। सातं सुखम्। यदमरसिंहः—'शर्मसातसुखानि च' इति। कामरूपो देशविशेषः। प्रिया तु काम्यत इति काममभिलषणीयं रूपम्, काममतिशयेन रूपं वा धरतीत्येवंशीला॥

उसने अपने बलशाली बाहुमण्डल में विजयलक्ष्मी को विश्राम का अवसर दिया था। कानों के ऊपर लगे हुए कमलदल सदृश उसकी आँखे मानिनी-नायिकाओं के मान को लूट लेने वाली थीं। उसने कामरूप देश की भूमि और कामरूप (सौन्दर्यातिशय) धारण करने वाली कान्ता का भोग किया॥

यस्या सकलजनमनोहारिविशेषकम्, पृथुललाटमण्डलम्, अभिलषणीयकान्तयः कुन्तलाः, श्लाघनीयो नासिक्यभागः, बहुलवलीकः सरोमालिकालंकारश्च मध्यदेशः, प्रकटितकामकोटिविलासः काञ्चीप्रदेशः॥

यस्या इति॥ यस्या भुवः विशेषक-लाट-कुन्तल-नासिक्य-मध्यदेश-काञ्ची इत्येवं रूपा देशाः। लवली लताविशेषः। सरसां मालिका श्रेणी। कामकोटिनाम्नी देवी। प्रियापक्षे विशेषकं तिलकम्। ललाटमलकम्। कुन्तलाः केशाः। नासिकायां भवो नासिक्यः। मध्यदेश उदरम्। बहुला बह्वयो वलय उदररेखा यत्र तथा सह रोम-पङ्क्तिमण्डनेन। प्रकटितानङ्गोत्कर्षविलासः काञ्चीप्रदेशः श्रोणी॥

जिस प्रिया का विशेषक (तिलक) सब मनुष्यों के चित्त का हरण कर लेता था। ललाट भाग बड़ा ही विशाल था, कुन्तल (बालों) की कान्ति नितान्त स्पृहणीय थी। नासिक्य (नाक का भाग) अत्यन्त प्रशंसनीय था। उसका मध्य भाग बहुल + वलीक (त्रिवलियों से युक्त) तथा रोमपंक्ति रूप अलङ्कारों से युक्त है।

काञ्चीप्रदेश (करधनी पहनने का स्थान) करोड़ों कामों के विलास को प्रकट कर रहा है।

पृथ्वी पक्ष :—उस पृथ्वी की विशेष शोभा बढ़ाने वाला विशाल लाट देश था। स्पृहणीय कान्ति से समन्वित कुन्तल देश था। नासिकय प्रदेश बड़ा ही प्रशंसनीय था। लवली वृक्षों तथा सरोमालिकाओं (सरवरों) से युक्त मध्य देश था। कामकोटि नांम की देवी से अलङ्कृत काञ्ची प्रदेश था ,।

किं बहुना।

यस्याः कृष्णागरुचन्दनामोदबहुलकुचाभोगभूषणा नृत्यतीवाङ्गरङ्गे रमणीयतया निरुपमा नवा यौवनश्रीः ॥

यस्या इति ॥ अङ्गेऽङ्गाख्यदेश एव रङ्गे नर्तनस्थाने निरुपमवायौ सति वनश्रीर्नृत्यन्तीव। वाततरलनमेव नर्तनम्। कृष्णा पिप्पली। अगरुचन्दनौ वृक्षविशेषौ तेषामामोदः। बहुनां लकुचानामाभोगो विस्तारः। तौ भूषणं यस्याः। पक्षे चर्चावशात्कालागरुचन्दनयोरामोदेन व्याप्तस्तनविस्तारमण्डना। नवेति यौवनश्रीरिति च भिन्नम् ॥

कृष्णागरु (अगर) और चन्दन की गन्ध और विशाल स्तनों की व्यापकता से अलङ्कृत, रमणीयता के कारण अनुपम एवं नवीन यौवन लक्ष्मी जिसके अङ्ग रूप रङ्गमञ्च पर नाच सी रही थी।

पृथ्वी पक्ष :—कृष्णागरु (अगरु) चन्दनं वृक्षों की गन्ध तथां बहु + लकुच (अधिकांश लकुच) वृक्षों की व्यापकता से अलङ्कृत वनलक्ष्मी अनुपम वायु के वहते रहने पर अङ्ग देश रूप रङ्गमञ्च पर नाच सी रही थी ॥

[पृथ्वी पक्ष में निरूपमा नवा यौवनश्री शब्द का विच्छेद निरूपमान + वायौ + वनश्री करना चाहिये। अर्थात् अनुपम वायु के वहते रहने पर वनश्री अङ्ग देश के रङ्गमञ्च पर नाच रही थी।]

किं चान्यत्।

अन्य एव नवावतारः स कोऽपि पुरुषोत्तमो यो न मीनरूपदूषितः नाङ्गीकृतविश्वविश्वंभराभारोऽपि कूर्मीकृतात्मा, न वराहवपुषाक्लेशेन पृथ्वीं बभार, न च नरसिंहः समुत्सन्नहिरण्यकशिपुः, न बलिराज-

वन्धनविधौ वामनो दैन्यमकरोत्, नापि रामो लङ्केश्वरश्रियमपाहरत्, नापि वुद्धः कल्किकुलावतारी ॥

किं चेति॥ कोऽप्यपरिच्छेद्यमहिमा। तथा नवः पूर्वविलक्षणोऽवतारो जन्म यस्य स तथाभूतः। यदि वा 'णु स्तुतौ' इत्यस्य नवाः स्तुतयोऽवतार्यन्ते यस्मिन्निति स्तवास्पदम्। सर्वोर्वीपतिभ्योऽन्योऽसाधारण एव स नलो राजा। पुरुषेषूत्तमः। तथा अमो रोगोऽस्यास्तीत्यमी। नामी अनमी नीरोगः। यदि वा नमयति शत्रूनवश्यमिति कृत्वा नमी। प्रतापाक्रान्तारिचक्र इत्यर्थः। तथा न रूपे दूषितः। तथा स्वीकृतधराधुरोऽपि न कूर्मिर्भङ्गुरः। कुत्सितोर्मिः पीडा यस्य स कूर्मिः। अङ्गीकृतभारो हि पीडावान्भवति। यदुक्तम्—'ऊर्मिः पीडाजवोत्कण्ठाभङ्गप्राकाश्यवीचिषु'। तथा वरमाहवं पुष्णता क्लेशेन न धरामपि तु सुखेनेत्यर्थः। नरेषु सिंहः शौर्यात्। न च समुत्पन्नं हिरण्यं धनं कशिपु भोजनाच्छादनादि यस्मात्। तथा वलिनां राज्ञां बन्धने विधाने वा मनोदैन्यं न चाकरोत्। रामः सुन्दरः। अलमत्यर्थं कस्य ब्रह्मण ईश्वरस्य शम्भोश्च श्रियं नापि न च हृतवान् देवस्वापहारी नेत्यर्थः। ब्रह्मेशौ देवानामुपलक्षणम्। बुद्धो विद्वांश्च पापिकुलोत्पन्नः, अन्य एव पुराणपुरुषाद्दशावताराद्भिसदृश एव नवावतारो नवसंख्यावतारः। कोऽप्ययं पुरुषोत्तमो विष्णुरित्युक्तिलेशः। तत्पक्षे मीनकूर्मवराहनरसिंहवामनरामबुद्धकल्किनोऽवताराः। हिरण्यकशिपुबलिलङ्केश्वरास्तत्प्रतिपक्षाः। समः परशुरामोऽपि। तद्दा। अलमिति भित्वा कु ईषदीश्वरः केश्वरः सहस्रार्जुनो जमदग्निहोमार्जुनीमात्रहरणात्। रामः कृष्णः तथा केन वायुनेष्टे समर्थो भवति पवनाशनत्वात्। यद्वा कस्य पानीयस्य यमुनाह्रदलक्षणस्येश्वरः स्वामी केश्वरः कालीयसर्पस्य श्रियमपजहार॥

और यह कोई दूसरा ही नवीन अवतार था। पुरुषोत्तम (विष्णु) होता हुआ भी मीन रूप (मत्स्यावतार) धारण कर अपने को दूषित नहीं किया। यद्यपि विश्व (समस्त) विश्वम्भरा (पृथ्वी) के बोझ को स्वीकार कर लिया है फिर भी कूर्म का रूप धारण नहीं किया। वराह (शूकर) का शरीर धारण कर क्लेश के साथ पृथ्वी को धारण नहीं किया। नरसिंह था किन्तु हिरण्यकशिपु का विनाश नहीं किया। वलिराज वन्धन (बली राजाओं को बाँधने के लिये वामन रूप धारण कर दीनता नहीं दिखाया। राम होकर भी लङ्केश्वर श्री (रावण की राजलक्ष्मी) को नष्ट नहीं किया। (वृद्ध होता हुआ भी कल्कि कुल से कोई सम्वन्ध नहीं है।

[पुरुषोत्तम—जो पुरुषोत्तम (विष्णु) होगा वह मत्स्य रूप अवश्य धारण किया होगा। नल पुरुषोत्तम था लेकिन मीनरूपधारी नहीं था। वह पुरुषोत्तम (नरश्रेष्ठ) था और अनमी (रोग हीन) और न रूप दूषित (दूषित रूप वाला न) था। अम का अर्थ रोग है। रोग जिसे रहेगा उसे अमी कहेंगे। जो अमी (रोगी नहीं होगा वह अनमी कहलायेगा। यः और नमी के बीच

एक खण्डाकार का प्रश्लेष माना जायगा। गुण सन्धि होने के बाद 'एङः पदान्तादति' (पा. सू.) से पूर्वरूप हो गया है। अर्थात् नल रोगहीन और दूषित सौन्दर्य वाला नहीं है। इस पक्ष में पुरुषोत्तमो यः + अनमी + न + रूप + दूषिता" पदच्छेद है। यदि अकार प्रश्लेष की कल्पना न की जाय तो नमी पद रह जायगा। उसका अर्थ होगा अपने प्रताप से शत्रुओं को नवा देता है।

नवावतार—में णु स्तुतौ धातु से निष्पन्न नव शब्द का स्तुत्य अर्थ होगा। अर्थात् राजा नल स्तुत्य है।

कूर्मीकृतात्मा—पृथ्वी का भार धारण करने के लिये भगवान् विष्णु कच्छप का अवतार धारण किये थे। किन्तु नल सम्पूर्ण पृथ्वी का संरक्षण रूप भार धारण कर रहा था लेकिन कु + ऊर्मि (कुत्सित पीड़ा) से आत्मा को संवलित नहीं किया था। अर्थात् विष्णु कूर्मी कृतात्मा है किन्तु नल कूर्मीकृतात्मा नहीं थे।

वराहवपुषा—भगवान् नारायण वराह का अवतार धारण कर बड़े क्लेश के साथ पृथ्वी का भार धारण किये थे। किन्तु नल वर (विशाल) आहव (युद्ध) पोषित करने वाले क्लेश से पृथ्वी का भार धारण नहीं किये थे। अर्थात् पृथ्वी के संरक्षण के अवसर पर कोई विशाल शत्रु नहीं जिसे दवाने के लिये महान् युद्ध करना पड़े और उसके लिये कष्ट उठाना पड़े। शत्रु हीनता की वजह से वह अनायास राज्य संचालन करता था।

हिरण्यकशिपुः—नरसिंहरूप धारण कर भगवान् नारायण हिरण्यकशिपु का विनाश किये थे किन्तु नल नरसिंह (पुरुषों में सिंह सदृश) था किन्तु हिरण्य (धन) और कशिपु (भोजन वस्त्र) का विनाश नहीं किया था।

वामनः—भगवान् नारायण वामन रूप धारण कर वली राजा को वाँधने के लिये भिक्षा माँगने के लिये उसके पास गये थे किन्तु नल वलिराज (वलिष्ठ राजाओं) को वाँधने के लिये मनो दैत्य (मानसिक दीनता) नहीं दिखाता था। बड़े उत्साह के साथ बली राजाओं पर आक्रमण कर देता था। नल पक्ष में मनोदैन्यम् विच्छेद कर वा पद का अन्वय न शब्द के साथ करना चाहिये। अर्थात् बलिराज बन्ध विधौ नवा मनोदैन्यमकरोत्।

लङ्केश्वर श्रियम् :—भगवान् राम ने रावण की राज्यलक्ष्मी नष्ट की थी। नल राम (अत्यन्त सुन्दर) है। अलम् (व्यर्थ ही) क (ब्रह्मा) और ईश्वर (शिवजी) की श्री (सम्पत्ति का हरण नहीं करता था। यहाँ भी रामो और लङ्केश्वर के बीच अकार की कल्पना नल पक्ष में की जाती है। नल पक्ष में राम शब्द सुन्दर अर्थ का वाचक है। तात्पर्य यह कि ब्रह्मा और शिव आदि के निमित्त दी गयी सम्पत्ति का अपहरणरूप कुकृत्य नल के राज्य में नहीं होता था।

राम (परशुराम) होता हुआ भी केश्वर (दुष्ट राजा सहस्रार्जुन) की राजलक्ष्मी का अपहरण नहीं किया। अथवा—राम (कृष्ण) था तो भी क (यमुना जल) के ईश्वर (कालीय नाग) की श्री का अपहरण नहीं किये। ये विरोध पक्ष अर्थ हैं। इनका परिहार ब्रह्मा और शिव वाले अर्थ में पूर्ण हो जाता है।

बुद्ध :—भगवान् के दश अवतारों में से कल्की भी एक अवतार है। बुद्ध के बाद दशम अवतार कल्की का ही होने वाला है। इसलिये आवश्यक है कि बुद्ध की आत्मा का सम्बन्ध अपने दूसरे जन्म वाले कल्की से हो। बुद्ध होता हुआ भी कल्कि कुल से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, विरोध। बुध (विद्वान्) है। कल्कि कुल (पापी वंश) में उसका जन्म नहीं हुआ है, परिहार।

इस अनुच्छेद में दशों अवतारों का वर्णन किया गया और राजा नल को सभी अवतारों से विलक्षण बताया गया इसीलिये कवि ने कहा था, "अन्य एव नवावतारः"।]

किं बहुना।

धन्यास्ते दिवसाः स येषु समभूद् भूपालचूणामणि-
लोकालोकगिरीन्द्रमुद्रितमहीविश्रान्तकीर्तिर्नलः।
लोकास्तेऽपि चिरन्तनाः सुकृतिनस्तद्वक्त्रपङ्केरुहे
यैर्विस्फारितनेत्रपत्रपुटकैर्लावण्यमास्वादितम् ॥ ३४ ॥

वे दिन धन्य थे जब लोक और आलोक नामक पर्वतों से घिरी हुई पृथ्वी पर अपनी कीर्ति को विस्तृत करने वाले राजरत्न नल हुए थे। वे पुण्यात्मा प्राचीन लोग भी धन्य थे जो अपनी आँखों के पत्र रूप पुट के (दोनें) में महाराज नल के सौन्दर्य को लेकर आस्वादित किये ॥ ३४ ।;

अपि च।

ये कुन्दद्युतयः समस्तभुवनैः कर्णावतंसीकृता
यैः सर्वत्र शलाकयेव लिखितैर्दिग्भित्तयश्चित्रिताः।
यैर्वक्तुं हृदि कल्पितैरपि वयं हर्षेण रोमाञ्चिता-
स्तेषां पार्थिवपुङ्गवः स महतामेको गुणानां निधिः ॥३५॥

कुन्द कान्ति सदृश जिन गुणों को समस्त लोगों ने अपने कानों के अलङ्कार बना लिये, जिन (गुणों) से दिशा रूप भित्तियाँ उस तरह खिल उठीं जैसे शलाका (चित्र की तुली) (कूची) से किसी भित्ति पर चित्र खींचा जाय, मन में जिन (गुणों) की कल्पना से भी प्रसन्नता के मारे रोमाञ्च हो जाता था, ऐसे समस्त गुणों का एकमात्र स्थान नल राजाओं में सर्वश्रेष्ठ था ॥ ३५ ॥

यस्य च युधिष्ठिरस्येव न क्वचिदपार्थो वचनक्रमः मरुमण्डलमिवापापं मानसम्, महानसमिव सूपकारसारं कर्म, कार्मुकमिव सत्कोटिगुणं दानम्, दानवकुलमिव दृष्टवृषपर्वोत्सवं राज्यम्, राजीवमिव भ्रमरहितं सर्वदा हृदयम् ॥

यस्य चेति ॥ अर्थादपेतोऽपार्थः। अन्यत्र पृथाया अपत्यत्वात्। अपापं निष्पापम्। पक्षेऽपेता आपो यस्मात्। सुष्ठु उपकारेण सारम्। पक्षे सूपकारैः सूदैः सारम्। सत्पात्रप्रतिपादनादानं सच्छोभनम्। कोटिः संख्या। पक्षे कोटिरटनिः। गुणो ज्या। वृषो धर्मः। पर्व पौर्णमास्यादि उत्सवः पुत्रजन्मविवाहादिस्ते दृष्टा अनुष्ठिता यत्र। पक्षे वृषपर्वा दानवः। भ्रमः संशयः। पक्षे भ्रमरेभ्यो हितम् ॥

युधिष्ठिर की तरह जिसका वचन क्रम अपार्थ (अर्थरहित) नहीं था। मरुमण्डल (मरुभूमि) जैसे अपाय (अप + आप = जल रहित) हैं वैसे ही नल अपाप (पाप रहित) हृदय का था।

रसोई घर में जैसे सूपकार (पाचक) का कर्म ही सार (मुख्य) तत्त्व होता है वैसे नल में भी सूपकार (सुन्दर उपकार) रूप कर्म ही मुख्य अंश है। धनुष जैसे सत्कोटि गुण (सुन्दर यष्टि और प्रत्यञ्चा से युक्त होता है वैसे नल का दान सत्कोटि गुण (करोणों गुणों से युक्त है या और राजाओं की अपेक्षा करोड़ गुणित है। दानव कुल (राक्षस वंश) जैसे दृष्ट वृष पर्वोत्सव (वृषपर्वा नामक राक्षस के उत्सव को देख चुका) है वैसे नल का राज्य भी इष्ट वृष पर्वोत्सव (वृष (धर्म) पर्व (पूर्णिमा) उत्सव (पुत्र जन्म, विवाह आदि) को देखा है। कमल जैसे सदा भ्रमर + हित (भ्रमरों से घिरा) रहता है वैसे उसका हृदय भी भ्रम + रहित (सन्देह रहित) था ॥

यश्च परमहेलाभिरतोऽप्यपारदारिकः। शान्तनुतनयोऽपि न कुरूपयुक्तः ॥

यश्चेति ॥ हेला शृङ्गारचेष्टा। यद्वा पर उत्कृष्टो मह उत्सवो यस्यां तस्यामिलायां पृथिव्यां रतः। राजन्वती हि मही सदुत्सवा। विरोधे महेला स्त्री शान्तश्चासौ नुतनयश्च। शान्तो जितेन्द्रियः। तथा नुतः स्तुतो नयो नीतिर्यस्य। तथा न कुत्सितरूपयुक्तः। पक्षे शान्तनुपुत्रो गाङ्गेयः कुरूणां क्षत्रियाणामुपयोगी ॥

पर + महिला (दूसरे की स्त्री) में अनुरक्त है फिर भी उसकी अपार दारिकायें (अनेक कन्यायें) हैं। विरोध।

पर + मह + इला (उत्कृष्ट उत्सवों से युक्त पृथ्वी) में अनुरक्त है अतः अपारदारिकाओं (कन्याओं) वाला है। परिहार।

शान्तनु + तनय (भीष्म) है फिर भी कुरु + उपयुक्त (कुरुओं के उपयोग में) नही है, विरोध।

शान्त + नुत + नय (जितेन्द्रिय और प्रशंसित नीति वाला) है और कु + रूप + युक्त (खराब रूप वाला) नहीं है। परिहार।

[परमहिला—जो दूसरे की स्त्री में अनुरक्त रहेगा उसकी अपनी अनेक लड़कियाँ कहाँ से आयेंगी। विरोध बीज। वह उत्सव सम्पन्न उत्कृष्ट पृथ्वी का सम्राट् है। अपने राज्य में सर्वथा अनुरक्त है। प्रजा की समस्त बालिकाओं को अपनी लड़की समझता है। इसीलिए उसकी अपनी अपार दारिकाएँ (कन्याएँ) हैं। परिहार बीज।

शान्तनुतनय (भीष्म) कुरुओं के उपयोग में नहीं थे। शान्तनुतनय होते हुए भी कुरुओं के उपयोग में न होना यही विरोध का बीज है।

परिहार पक्ष—शान्त स्वभाव वाला और प्रशंसित नीति वाला है तथा उसमें कुरूपता का अभाव है।]

किं बहुना।

सदाहंसाकुलं विभ्रन्मानसं प्रचलज्जलम्।
भूभृन्नाथोऽपि नो याति यस्य साम्यं हिमाचलः॥ ३६॥

सदेति॥ भूभृतो गिरयो नृपाश्च। तन्नाथत्वं द्वयोरपि। सत्यप्येवं हिमाचलो यस्य साम्यं नायाति। यतः। सदाहं सखेदम्। साकुलं व्यग्रम्। प्रचलत्कम्पमानम् जडं व्यामूढम्। मानसं चेतः। विभर्ति। सिद्धान्ते तु मानसं सरः। सदेति भिन्नम्। प्रचलज्जलं यत्र। शेषं प्रतीतम्। आकुलशब्दो भावप्रधानो यथा "तिष्ठन्ति च निराकुलाः"॥ ३६॥

निरन्तमें चञ्चल जल वाले तथा हंसों से भरे हुए मानसरोवर को धारण करने वाले भूभृन्नाथ (पर्वतों का स्वामी) हिमालय भी उसकी समानता नहीं करता।

[क्योंकि हिमालय सदाहं (खेद पूर्वक) साकुलं (व्यग्रता के साथ प्रचलत् (काँपते हुए)।

जलम् मानसं (जड़ हृदय को या जड़ मानसरोवर को) धारण करता है।

राजा नल सदाह, सत्कुल, कम्प युक्त, तथा जड़ हृदय को धारण नहीं करता भूभृन्ताथ नल भी है और हिमालय भी। किन्तु सदाह और साकुल मानस को जैसे हिमालय धारण करता है वैसे नल सदाह और साकुल मानस को धारण नहीं करता। नल के पास दाह और व्याकुलता की कोई स्थिति नहीं है। ड और ल में अभेद माना जाता है इसीलिए जलशब्द से जड़ अर्थ लिया जाता है।]॥ ३६॥

अपि च ।

नक्षत्रभूः क्षत्रकुलप्रसूतेर्युक्तो नभोगैः खलु भोगभाजः ।
सुजातरूपोऽपि न याति यस्य समानतां काञ्चनकाञ्चनाद्रिः ॥३७॥

नक्षत्रेति ॥ यस्य नलस्य काञ्चनाद्रिर्मेरुः काञ्चन काञ्चिदपि समानतां नायाति । सुष्ठु जातरूपं सुवर्णं यत्र । नलपक्षे रूपं सौन्दर्यम् । अतो द्वयोरपि सुजातरूपत्वा-त्साम्ये निषेधः । यतो नायं क्षत्राद्भवति स्म । तथा भोगैर्न युक्तः । नलस्य क्षत्र-प्रसूतिर्भोगभाक् । सिद्धान्ते तु नक्षत्राणां भूः स्थानम् । तथा नभसि गच्छन्ति ये तैर्नभोगैर्देवैर्युक्तः ॥ ३७ ॥

सु + जातरूप (स्वर्णमय) काञ्चनाद्रि (सुमेरु) भी नल से कोई समानता नहीं रखता, क्योंकि काञ्चनाद्रि न + क्षत + भू (क्षत्रिय कुल में उत्पन्न नहीं) है जब कि नल क्षत्रकुल प्रसूति (क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुआ) है । काञ्चनाद्रि न + भोग + युक्त (भोग युक्त नहीं) है जबकि नल भोगभाज् (सुख ऐश्वर्य आदि पदार्थों से सम्पन्न है । इसीलिये काञ्चनाद्रि से नल की कोई समानता नहीं है ।

सिद्धान्तपक्ष :—काञ्चनाद्रि नक्षत्र भू (नक्षत्रों का उत्पत्ति स्थान) है । नभोग (आकाश मार्ग से जाने वाले देवताओं से) युक्त है ॥ ३७ ॥

तस्य च महामहीपतेरस्ति स्म प्रशस्तिस्तम्भः सकलश्रुतिशास्त्र-शासनाक्षरमालिकानाम्, न्यग्रोधपादपः पुण्यकर्मप्ररोहाणाम्, आकरः साधुव्यवहाररत्नानाम् ।

उस महा महीपाल (राजा नल) का मन्त्री श्रुतशील नाम का ब्राह्मण था । वह समस्त श्रुतियों, शास्त्रों एवं शासन (नीति) विद्याओं का प्रशस्ति स्तम्भ (आधारस्तम्भ) था । समस्त पुण्यकर्म रूप कर्मों के प्ररोह (अंकुरण) के लिये वटवृक्ष था । सुन्दर व्यवहार रूप रत्नों का आकर (समुद्र) था ।

प्रशस्तिस्तम्भ :—जैसे किसी की प्रशंसा किसी शुभ्र पत्थर पर लिखकर स्थायी कर दी जाती है वैसे ही उस ब्राह्मण के हृदय पर समस्त विद्यायें अत्यन्त स्पष्ट ढंग से संक्रान्त हो गई थीं ।

न्यग्रोधपादप :—वटवृक्ष से जैसे कई प्ररोह (वरोह) निकलते हैं और लटकते-लटकते पृथ्वी से सम्पर्क कर एक नया मूल ही स्थापित कर देते हैं वैसे श्रुतशील से अनेक नवीन पुण्य व्यापार प्रतिदिन हुआ करते थे ।]

इन्दुः पार्थिवनीतिज्योत्स्नायाः, कन्दः सकलकलाङ्कुरकलापस्य, सागरः समस्तपुरुषगुणमणीनाम्, आलानस्तम्भश्चपलराज्यलक्ष्मी-करेणुकायाः, सकलभुवनव्यापारपारावारनौकर्णधारः, सुधाम्भोनिधि-

डिण्डीरपिण्डपाण्डुरयशः कुशेशयखण्डमण्डितसकलसंसारसराः, सरागीकृतसमस्तपार्थिवानुजीवी, जीवितसमः, प्राणसमः, हृदयसमः, शरीरमात्रभिन्नो द्वितीय इवात्मा, कुलक्रमागतः, संक्रान्तिदर्पणः सुखदुःखयोः, स्वभावानुरक्तः, शुचिः, सत्यपूतवाक् , कृतज्ञः, ब्राह्मणः सालङ्कायनस्य सूनुः श्रुतशीलोनाम महामन्त्री ॥

तस्य चेति ॥ तस्य नरपतेः श्रुतशीलो नमामात्योऽस्ति स्म आसीत्। यशसां कुशेशयानि, संसारस्य सर उपमानम् ॥

राजनीति की किरणों (दिव्य सिद्धान्तों) के लिये इन्दु (चन्द्र) था। समस्त कला रूप अङ्कुर समूलंका मूल था। मनुष्य में रहने वाले समस्त गुण-रत्नों का सागर था। चञ्चल राजलक्ष्मी रूप करेणु (हथिनी) के लिये आलान (वन्धन स्तम्भ) था। समस्त संसार के व्यापार सागर में चलने वाली (प्रजाजन के जीवन रूपी) नौका का कर्णधार था। अमृत समुद्र के तरङ्गों से उत्पन्न होने वाले फेन पुञ्ज की तरह अत्यन्त स्वच्छ यश रूप कमल समूह से सम्पूर्ण संसार सरोवर को अलंकृत कर दिया था। सम्पूर्ण सामन्त राजाओं को अपने में अनुरक्त कर लिया था। राजा नल के लिए वह (मन्त्री) जीवन के ससान था। हृदय के तुल्य था। केवल शरीर ही भिन्न था। वस्तुतः राजा की दूसरी आत्मा ही था। कुल क्रम (कई पुस्त) से मन्त्री पद पर उसका वंश काम करता आ रहा था। सुख और दुःख दोनों स्थितियों में दर्पण की तरह प्रांजल था। राजा के स्वभाव से स्नेह रखने वाला, पवित्र, सत्य से पवित्रित वाणी बोलने वाला वह सालङ्कायन पुत्र था ॥

मित्रं च मन्त्री च सुहृत्प्रियश्च विद्यावयःशीलगुणैः समानः।
वभूव भूपस्य स तस्य विप्रो विश्वम्भराभारसहः सहायः ॥३८॥

वह ब्राह्मण उस राजा का मित्र, मन्त्री, प्रिय एवं सुहृत् था। विद्या, अवस्था आदि में समान था और पृथ्वी का भार धारण करने में सहायक था ॥ ३८ ॥

अपि च।

ब्रह्मण्योऽपि ब्रह्मवित्तापहारी स्त्रीयुक्तोऽपि प्रायशो विप्रयुक्तः।
सद्वेषोऽपि द्वेषनिर्मुक्तचेताः को वा तादृग्दृश्यते श्रूयते वा ॥३९॥

ब्रह्मण्य इति ॥ ब्राह्मणे हितो ब्रह्मण्यः। तथा ब्रह्म वेत्ति। तथा तापहारी। तथा विप्रैर्द्विजैर्युक्तः। तथा शन्शोभनो वेषो यस्य। विरोधांशः सुगम एव। ब्रह्मवित्तं ब्रह्मस्वम्। विप्रयुक्तो वियुक्तः ॥ ३९ ॥

ब्रह्मण्य :—(ब्राह्मणों का हित चिन्तक) होता हुआ भी ब्रह्मवित्तापहारी (ब्राह्मणों की सम्पत्ति का हरण करने वाला) था। विरोध।

ब्रह्मण्य (विप्रों का हित चिन्तक) था और ब्रह्मावित् + तापहारी (ब्रह्म-विद्या का जानकार और प्रजाजन के ताप का हरण करने वाला) था। परिहार।

स्त्री युक्त रहता हुआ भी प्रायः विप्रयुक्त (वियोगी) बना रहता था। विरोध।

स्त्री युक्त था विप्र + युक्त (ब्राह्मणों से युक्त) भी था। परिहार।

सद्वेष (द्वेष सहित) था फिर भी द्वेष निर्मुक्त चित्त वृत्ति वाला था। विरोध।

सद्वेष (सुन्दर वेष युक्त) था और उसकी चित्त + वृत्ति द्वेष रहित थी। परिहार।

[यह ब्रह्मण्य होता हुआ भी ब्रह्म वित्तापहारी, स्त्री युक्त होकर भी विप्रयुक्त (वियोगी), सद्वेष होता हुआ भी द्वेष वियुक्त था, ऐसा कौन देखने या सुनने में आता है ॥ ३९ ॥]

अथ स पार्थिवस्तस्मिन्नमात्ये परिजनपरिवृद्धे प्रौढप्रेमणि निगूढ-मन्त्रे मन्त्रिणि तृणीकृतस्त्रैणविषयरसे सौराज्यरागजनने जननीयमाने जनस्य, सर्वोपधाशुद्धबुद्धौ निधाय राज्यप्राज्यचिन्ताभारमभिनव-यौवनारम्भरमणीये रम्यरमणीजननयनहृदयप्रिये प्रियङ्गुभासि जित-मदनमहस्यपहसितसुरासुरसौभाग्ययशसि विस्मापितसमस्तजन-मनसि लसल्लावण्यपुञ्जपराजितसकलसमुद्राम्भसि कान्तिकटाक्षित-चन्द्रमसि वयसि वर्तमानो मानितमानिनीजनयौवनसर्वस्वः स्वयम-नवरतं सकलसंसारसुखसन्दोहमन्वभूत् ॥

अथेति ॥ अथानन्तरमेवं वर्णनीयेऽमात्ये राज्यभारं निवेश्यैवं वर्णनीये वयसि वर्तमानो राजा सुखातिशयं सिषेवे ॥

वह (मन्त्री) परिजन समूह से दृढ़ था। प्रगाढ़ प्रेमी था। मन्त्रों (राज-कीय गुप्त मन्त्रणाओं) को गुप्त रखता था। स्त्री सम्बन्धी विषय रस को तृण समझता था। सुन्दर राज्य निर्माण में ही राग रखता था। प्रजाजन को जननी की तरह प्रतीत होता था। समस्त उपधाओं (कपट आदि दुष्टताओं) से रहित था। अतः उस पर राज्य विषयक विशिष्ट चिन्ता का भार सौंपकर वह राजा नवीन यौवन प्राप्त करने के कारण रमणीय, मनोहर रमणियों के नेत्रों और हृदयों को प्रिय, प्रियङ्गु पुष्प की तरह सुकान्त, कामदेव की कान्ति को भी जीतने वाले, देवों और दानवों के सौन्दर्य यश को तिरस्कृत कर देने वाले,

अपने उमड़ते हुए लावण्य (सौन्दर्य) पुञ्ज से सम्पूर्ण समुद्रों के जल को भी परास्त कर देने वाले, अपनी कान्ति से चन्द्रमा को भी तर्जित कर देने वाले वय (अवस्था) में आकर मानिनी नायिकाओं के यौवन को ही सर्वस्व मानता हुआ स्वयं निरन्तर संसार के समस्त सुख समूह का अनुभव करने लगा ॥

[लसल्लावण्यपुञ्ज :—समुद्र पक्ष में लावण्य का अर्थ क्षारत्व है और यौवनावस्था के पक्ष में सौन्दर्य है। सकल समुद्रजल क्षारत्व रूप लावण्य से सम्पन्न है और यौवनावस्था सौन्दर्यापरपर्याय लावण्य से सम्पन्न है। लेकिन उमड़ता हुआ यौवनकालीन लावण्य समुद्र जल लावण्य को परास्त कर दिया था।] ॥

तथाहि।

कदाचिदनुत्पन्नविषमरणो गरुड इवाहितकारी हरिवाहन-विलासमकोरत् ॥

कदाचिदिति॥ असञ्जातविषमयुद्धभीरहितानामपकारी। हरिरश्वस्तस्य वाहनं वाह्यालीप्रवहणम्। स एव विलासः। पक्षे विषान्मरणभयम्। अहिः सर्पः। हरेर्विष्णोर्वाहनविलासो यानलीला॥

गरुड़ जैसे अनुत्पन्न :—विषमरण (विष के कारण मरण की उत्पत्ति न होने देने वाले) हैं वैसे ही नल भी अनुत्पन्न + विषम + रण (कभी भी कठिन लड़ाई की स्थिति उत्पन्न होने देने वाले नहीं) थे। गरुड़ जैसे अहि + ताप + कारी (सर्पों को ताप उत्पन्न करने वाले) हैं वैसे नल भी अहित + अपकारी (अहित करने वालों को कष्ट देनेवाले) थे। गरुड़ जैसे हरिवाहन + विलास (विष्णु के वाहन लीला) को प्राप्त किये हैं वैसे नल भी हरिवाहनविलास (अश्व वाहन विलास) प्राप्त किये थे॥

कदाचिच्चन्द्रमौलिरिव मदनवाणासनातिमुक्तशरसंछादितायां पर्वतभुवि विजहार॥

कदाचिदिति॥ मदनो वाणोऽसनोऽतिमुक्तकः शरश्च मुञ्ज एभिर्वृक्षैः सम्यक्छादितायां पर्वतद्रोण्याम्। पक्षे मदनः कामस्तस्य बाणासनं धनुस्तत्प्रक्षिप्तैः शरैर्बाणैर्विधुरायां पर्वतभुवि। पर्वताद्भवति स्मेति पार्वत्याम्॥

चन्द्रमौलि (शंकर) जैसे मदन (कामदेव) के बाणासन (धनुष्) से छूटे हुए वाणों से ढकी हुई पर्वत भूमि पर भ्रमण किये वैसें नल भी ऐसी पर्वतीय भूमि पर भ्रमण किये जो मदन, वाण, असन, अविमुक्तक तथा शर (मुञ्ज) आदि पेड़ों से आच्छादित थी॥

[भगवान् शंकर को पार्वती से सम्बद्ध करने के लिये हिमालय के एकदेश में कामदेव बाण छोड़ा था। पार्वती से परिणय होने के बाद वही कामवाण वर्षा की भूमि शिवजी की विहार भूमि बनी।]

कदाचिदच्युत इव शिशिरकमलाकरावगाहनोत्पन्नपुलककोरकित-तनुरन्तभोगभाक्सुखमन्वतिष्ठत् ॥

कदाचिदिति ॥ कमलानामाकरो वनम्। पक्षे कमलायाः श्रियः करः पाणिः। अनन्ताभोगोऽनेकविलासः शेषाहिवपुश्च ॥

विष्णु जैसे शिशिर ऋतु में कमला + कर (लक्ष्मी के हाथों) का आलिङ्गन करने से रोमाञ्चित होकर असंख्य भोग (फणाओं) को धारण करने वाले शेषनाग के शरीर पर सुख पूर्वक विश्राम करते हैं, वैसे ही नल भी कभी शिशिर काल में कमलाकर (कमल सरोवर में अवगाहन (स्नान) करने के कारण शरीर में रोमाञ्च आदि का अनुभव करता हुआ असंख्य सुखों का अनुभव करता था ॥

कदाचन नलिनयोनिरिव राजसभावस्थितः प्रजाव्यापारम-चिन्तयत् ॥

कदाचनेति ॥ राज्ञः सभा। पक्षे रजसा गुणेन निर्वृत्ते भावे स्थितः ॥ व्यापारो व्यवहारो निर्माणं च ॥

जैसे नलिनयोनि (कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा) राजस + भाव (रजोगुण सम्बन्धी भाव) से पूर्ण होकर प्रजा सृष्टि के व्यापार की चिन्ता करता है वैसे नल भी राज + सभा (राजगोष्ठी) में अवस्थित होकर प्रजा कार्य के विषय में विचार करता था ॥

कदाचिन्मयूर इव कान्तोन्नमत्पयोधरमण्डलिविलासेन हर्षम-भजत् ॥

कदाचिदिति ॥ कान्ताङ्गना काम्या च। पयोधरः स्तनो मेघश्च। विलास उपभोगः स्फुरणं च ॥

जैसे मयूर (मोर) कान्त (सुन्दर) उन्नमत्पयोधर (उमड़ते हुए बादलों के समय में मण्डलिविलास (गोलाकार होकर नृत्य) करता हुआ आनन्द का अनुभव करता है वैसे वह भी कभी कान्ता (रमणी) के उन्नमत्पयोधर (उन्नत स्तनों) के साथ मण्डलिविलास (आलिङ्गन) कर सुख का अनुभव करता था ॥

[मयूर उमड़ते हुए बादलों के मण्डलि विलास (चक्कर लगाने) के समय पूर्ण प्रसन्न हो जाते हैं। मण्डलिविलास मेघ भी करता है। वर्षा के

दिनों में इधर-उधर चक्कर लगाता है। मयूर भी मण्डलाकार होकर नृत्य विलास करता है। मयूर का अपना विलास भी उसके लिये आनन्दकर है और मेघ का विलास भी उसके लिये आनन्दकर है]॥

कदाचिन्नक्षत्रराशिरिवाश्विन्या सेनया समन्वितो मृगानुसारी बहुशष्पवनमार्गं बभ्राम ॥

कदाचिदिति ॥ अश्वाः सन्त्यस्यां तया सेनया युक्तः तथा मृगानुगामी बहुबालतृणपथेऽभ्राम्यत्। पक्षे अश्विनीमृगौ नक्षत्रे। इनेन रविणा सह सेनयेत्यश्विनीविशेषणम्। बहुश इति भिन्नम्। पवनमार्गो द्यौः। अत्र पकारात्प्राग्विसर्जनीय उपध्मानीयो वा। शष्पपदे तु षकार एव। तदेवंरूपभेदेऽपि श्रुतिसाम्यान्न दोष इति कविसमयः। तथा च चण्डदासकृते श्रीचण्डिकाचरिते महाकाव्ये—'पुष्पादपामिह सदाधिगमे समृद्धया पुष्पादपाः फलभराच्च विनम्रभावम्। पुष्पादपापि दधतो मुनिवत्सुजन्मा-पुष्पादपाति मधु साधु मधुव्रतौघाः, अस्यार्थः—अपां जलानाम्। अधिगमे प्राप्तौ सत्याम्। पुष्पात्कुसुमात्। फलभरात्फलातिशयात् च या समृद्धिस्तया। पादपास्तरवो विनम्रभावमापुः। समृद्धौ हि नम्रता स्यात्। जलाधिगमः पुष्पफलनां हेतुः। तानि च समृद्धेः। सा च नम्रताया इति। तया पुष्पाणामङ्गनं यत्र। तथाऽपापि पापरहितम्। शोभनं जन्म तथा मुनयो दधति। तद्वदेतेऽपि मधुव्रतौघाः सुजन्म धारयन्तः सन्तो मधु मकरन्दमपुः पिबन्ति स्म। पादैरङ्घ्रिभिः पादेषु मूलेषु वा पतन्त्यभीक्ष्णमित्यनेन साधुप्राचुर्योक्तिः। अत्रायुक्पादयोः पकार एव। युक्पादयोस्तु विसर्जनीयोपध्मानीयान्यतर एव न तु पकारः। परंश्रुतिसाम्यान्न दोषः। एवमेव विसर्जनीयजिह्वामुलीयपकारेष्वपि तथा 'ये सहजनिष्कलङ्काचरा अपि भान्ति निष्त्रिकूटगमात्। सुधियः काष्ठादशकंधराधिकं सपदि तेऽश्नुवते। अस्यार्थः—सहजोऽकृत्रिमो निःकलङ्को निर्दोष आचारो येषां ते सुधियः काष्ठादशकं दिक्चक्रं धरैः पर्वतैरधिकमश्नुवते व्याप्नुवन्ति। स्त्रीणामभावो निःस्त्रि। कुटं छद्म। तस्य गमो भ्रंशः समाहारद्वन्द्वः। एतेन जितेन्द्रियत्वोक्तिः। अपिर्विरोधे। येषां किल सहजस्वर्णायां लङ्कायां चारो गतिः। ते कथं त्रिकूटाचलगमनाभावेन भान्ति। दशकन्धरो रावणः काष्ठा दिशः। अत्र स्वर्णार्थनिष्कशब्दे षकार एव निष्कलङ्कशब्दे जिह्वामूलीयविसर्गौ इति बोध्यम् ॥

जैसे नक्षत्रों का समूह सेन (स + इन = सेन (सूर्य सहित या सूर्य स्थित) अश्विनी नक्षत्र से अन्वित होकर मृगशिरा नक्षत्र का अनुगमन करता हुआ बहुधा पवन मार्ग (आकाश) में भ्रमण करता है वैसे नल भी कभी आश्विनी सेना (अश्व बहुल सेना) से युक्त होकर (आखेट के प्रसङ्ग) में मृगों का पीछा करता हुआ बहुशष्पवन (अधिक घासों से युक्त वन) में परिभ्रमण करता था ॥

कदाचिदाञ्जनेय इवाक्षविनोदमन्वतिष्ठत् ॥

कदाचिदिति ॥ अक्षैः पाशकैः विनोदं क्रीडाम्। पक्षे अक्षस्य रावणेः। विनोदं वधम् ॥

जैसे आञ्जनेय (अञ्जनि पुत्र हनुमान्) अक्ष (रावण पुत्र अक्षय कुमार) का विनोद (वध) किये वैसे नल भी कभी अक्ष (द्यूत क्रीडा) से विनोद करता था ।।

कदाचिद्वानरेश्वर इव सुग्रीवो वैदेहीति ब्रुवाणस्यालघुकाकुत्स्थस्यार्थिनः प्रार्थना क्रियतां सफलेति वानरपुङ्गवानादिदेश ।।

कदाचिदिति ॥ शोभना ग्रीवा यस्य । वै स्फुटार्थे । मह्यं देहीति ब्रुवाणस्य । तथा आ समन्ताल्लघ्व्यां काकौ भिन्नकण्ठध्वनौ तिष्ठतीत्यलघुकाकुत्स्थस्तस्य याच्ञयावशात्स्वरभेदवतोऽर्थिनो याचकस्य प्रार्थना सफला क्रियतामित्यमुना प्रकारेण नरपुङ्गवान्नरश्रेष्ठानादिष्टवान् । वा समुच्चये । पक्षे वैदेही सीतेति प्रलपतोऽलघोर्गुरो रामस्य काकुत्स्थस्य सप्रयोजनस्य प्रार्थना सफला क्रियतामिति वानरपुङ्गवान्कपीशः सुग्रीवो नियुक्तवान् ॥

जैसे वानरेश्वर (बन्दरों के स्वामी) सुग्रीव "वैदेही (सीता सीता) कह कर प्रलाप (क्रन्दन) करते हुए अलघु काकुत्स्थ (विशाल महत्त्व वाले) भगवान् राम रूप अर्थी (याचक) की प्रार्थना सफल करो" यह आज्ञा वानर श्रेष्ठों को दे रहे थे उसी तरह सुग्रीव (सुन्दर गर्दन वाला) नरेश्वर (नल) भी "वै + देहि (निश्चित रूप से दो) यह आलघु (अत्यन्त नम्रता पूर्ण) काकु (ध्वनि) से वोलने वाले अर्थी (याचकों) की प्रार्थना को सफल करो" यह आज्ञा अपने नरपुङ्गवों (वरिष्ठ कर्मचारियों) को देता था ।।

[वानर राज सुग्रीवपक्ष में वानरेश्वर और वानर पुङ्गव ज्यों के त्यों हैं किन्तु नल पक्ष में वा हटा दिया गया है । अतः नरेश्वर और नरपुङ्गव अवशिष्ट रह जाते हैं ।] ।।

कदाचिन्मकरकेतन इव सुमनसो मार्गणान् विधाय स्वगुणं कर्णपूरीचकार ।।

कदाचिदिति ॥ मार्गणान्याचकान् । इष्टार्थसंप्रदानेन सौमनस्ययुक्तान्विधाय स्वस्य गुणं त्यागाख्यं जगतोऽपि कर्णौ पूर्यते अनेनेति कर्णपूरः । च्वौ कर्णपूरीचकार । पक्षे सुमनसः पुष्पाणि । मार्गणा बाणाः । गुणो ज्या । कर्णपूरः कर्णान्तकर्षणम् ॥

जैसे मकरकेतन (कामदेव) सुमनस (फूलों) को मार्गण (वाण) वनाकर अपने गुण (धनुष की प्रत्यञ्चा) को कानों तक खींच कर छोड़ता है वैसे नल भी मार्गण (याचकों) को सुमनस (सन्तुष्ट चित्त वाला) वनाकर अपने (त्याग रूप) गुण से (जगत् के) कान को भर दिया ।।

[कामदेव पक्ष में "सुमनसो मार्गणान् विधाय" यह अन्वय करना है और नल पक्ष में 'मार्गणान् सुमनसो विधाय' यह अन्वय करना है । अर्थात् कामदेव

पक्ष में "फूलों को" वाण वनाकर अर्थ है और नल पक्ष में "याचकों को सन्तुष्ट वना कर" यह अर्थ है]॥

कदाचिदम्भोनिधिरिवोच्चैःस्तननाभिरम्याः, कृतानिमेषनयनविभ्रमाः, सकन्दर्पाः, सिषेवे वेलाविलासिनीः ॥

कदाचिदिति ॥ उच्चैः स्तनाभ्यां नाभ्या च रम्याः। तथा निर्निमेषनेत्रलीलाः सकामाः। वेलायां वारके विलसन्ति भोगायोपतिष्ठन्त इत्येवंशीला वारस्त्रीः। सिषेवे अम्भोनिधिस्तु वेला अम्भोवृद्धीः। कीदृशीस्ताः। उच्चैःस्तननेन शब्देनाभिरम्याः। तथा कृतमनिमेषाणां मत्स्यानां नयनं प्रापणं यैस्तथोक्ता विविधा भ्रमा आवर्ता यासु। तथा कं जलं तस्य दर्पेण मोचेण सह। दर्पेमोंचनार्थत्वात्। तथा विलसन्त्यभीक्ष्णम् ॥

समुद्र जैसे उच्चैः स्तनन (अधिक गर्जन) के कारण अभिरम्य (रमणीय) अनिमेष (मछलियों) के नयनों एवं विशिष्ट ढङ्ग के भ्रमों (लहरों) वाली, के (जल) के दर्प (त्याग) रूपकार्य से समन्वित वेला (किनारा) रूप विलासिनी (नायिका) का सेवन करता है उसी तरह कभी नल भी उच्चैः स्तन (उन्नत स्तन) एवं सुन्दर नाभि के कारण रम्य निर्मिमेष आँखों के विभ्रम (विलास) को उत्पन्न करने वाली, सकन्दर्प (सकाम) वेला (उचित समय) पर विलासिनी (नायिकाओं) का उपभोग करता था।

[अर्थात् समुद्र जैसे अधिक गर्जन के कारण रमणीय मछलियों के नयनों एवं विशिष्ट ढङ्ग की लहरों वाली, जलत्याग रूप कार्य से समन्वित तटी रूप विलासिनी का सेवन करता है वैसे नल भी उन्नत स्तन एवं नाभि के कारण रम्य निर्मिमेष आँखों के विलास को व्यक्त करने वाली सकाम वेला विलासिनियों (वाराङ्गनाओं) का उपभोग करता था।]॥

कदाचिद्दशरथ इवायोध्यायां पुरि स्थितः सुमित्त्रोपेतो रममाणरामभरतप्रेक्षणेन क्षणमाह्लादमन्वभूत् ॥

एवमस्य सकलजीवलोकसुखसन्तानमनुभवतो यान्ति दिनानि ॥

कदाचिदिति ॥ न योद्धुं शक्याऽयोध्या संज्ञा च। तस्यां पुरि। सुमित्रैरुपेतः सुमित्रया कलत्रेण। विलासन्त्यो रामा विलासिन्यो यत्र तेन भरतसङ्गीतेन विक्रीडद्रामभरतयोरवलोकनेन चाह्लादं नलो दशरथश्च भेजे ॥

जैसे राजा दशरथ सुमित्रा नामक पत्नी के साथ अयोध्या नगरी में स्थित होकर खेलते हुए राम और भरत को देखकर कुछ क्षण तक आनन्द का अनुभव करते थे उसी तरह नल भी अपनी अयोध्या (अविजेय) नगरी में सुमित्रोपेत (सुन्दर मित्रों से समन्वित) होकर विलास पूर्ण रामाओं (नायिकाओं)

के भरत (शास्त्रीय संगीत) को सुनकर एक क्षण आह्लाद का अनुभव करता था ।। इस तरह सम्पूर्ण संसार की सुख परम्परा के अनुभवों के साथ इसके दिन बीत रहे थे ।।

[मानो वर्षा रूप नायिका महाराज नल को देखने के लिये आ रही थी । इस पूरे अनुच्छेद का अर्थ वर्षा और नायिका दोनों पक्षों में करना होगा ।]

अथ कदाचिदुन्नमत्पयोधरान्तरपतद्धारावलीविराजिताः, कमलदलकान्तनयनाः, सुरचापचक्रवक्रभ्रुवः, विद्युन्मणिमेखलालङ्कारधारिण्यः, शिञ्जानामुक्तकलहंसकाः, प्रौढकरेणुसञ्चारहारिण्यः, कम्रकन्धराः, तिरस्कृतशशाङ्ककान्तिकलापोच्चमुखमण्डलाः सकलजगज्जेगीयमानगुणमिममनुपमरूपलावण्यराशिराजितं राजानमवलोकयितुमिव तरन्ति स्म वर्षाः ॥

अथेति ॥ अनन्तरं कस्मिन्नपि समये नृपमवेक्षितुं वर्षा अवातरन् । वर्षा शब्दगतस्त्रीत्वेन वर्षाणां साक्षात्स्त्रीत्वमध्यवसितम् । ततश्च पयोधरा मेघाः स्तनाश्च । पतद्धारावली पतन्ती धाराश्रेणी चलन्ती हारावली च । यद्वा पयोधरयोः स्तनयोरन्तर्मध्येऽपतन्तीऽतिसंहतत्वादप्रविशन्तो हारा यासाम् । तथा वलीभिरुदरे लेखाभिर्विराजिताः । कमलदलानां कान्तमिष्टं नयनमतिवाहनं यासाम् । वर्षाणां [illegible]वाहने कमलानामुल्लासः । पक्षे कमलदलवत्कान्तनेत्राः । इन्द्रधनुश्चक्रमेव वक्रे भ्रुवौ यासाम् । पक्षे सुरचापचक्रवद्वक्रभ्रुवः । विद्युदेव मणिमेखला तां [illegible]थालमत्यर्थं कस्य जलस्यारं वेगं धारयन्ति । यद्वा करस्य राज्ञे देयांशस्य धारिण्यः । वर्षा हि सस्यादिसाधकत्वात्करस्यापि साधनम् । पक्षे विद्योतमानमणिकाञ्चीभूषणधारिण्यः । शिञ्जाना गर्जन्त्यस्तथा मुक्ता मानसं प्रति प्रस्थापितहंसका याभिः । यद्वा मुक्तहंसानि कानि जलानि यासु । तत्समये हंसानां मानसे गमनात् । पक्षे शिञ्जाने शब्दायमाने आमुक्ते बद्धे हंसके चरणाभरणे यासाम् । प्रकर्षेणोढं कं जलं तेन रजःसंचाररोधिकाः । पक्षे प्रगल्भगजगमनमनोज्ञाः । कं जलं धरन्तीति कंधरा मेघास्ते कम्रा रम्या यासु । पक्षे कंधरा ग्रीवा ॥ छादितशशाङ्ककान्तयः । तथा काय पानीयाय लापाः । कलापाः । कुटुम्बिनीजनगीयमानरासकाः । तैरुच्चमुखा मेघालोकनायोन्मुखा मण्डला देशा यासु । पश्चात्कर्मधारयः पक्षे निर्जितेन्दुदीप्त्यतिशयमुच्चमुरक्कऽष्ठमुन्नतकपोलं वा मुखबिम्बं यासाम् ॥

वर्षापक्ष :—उमड़ते हुए बादलों के मध्य से गिरती हुई धारा के समुह से अलङ्कृत कमल दलों के लिये कान्त + नयन (प्रिय आगमन वाले), इन्द्र के धनुर्मण्डल रूप टेढ़ी भौहों वाली, विद्युद्रूप मणिनिर्मित मेखलाऽलङ्कार (कटिभूषण) को धारण की हुई, शिञ्जान (गर्जन) से कलहंसों (सुन्दर हंसों) को मानसरोवर की ओर आमुक्त (छोड़देने) वाली, प्रौढ़ (धारा प्रवाह) के (जल) के कारण रेणु (धूलि) के संचार (उड़ान) को नष्ट कर देने वाली कम्र कन्धर (सुन्दर जल को धारण करने वाले मेघों) वाली शशाङ्क (चन्द्रमा) की कान्ति

को तिरस्कृत (आच्छादित) कर देने वाली, तथा क (जल) के लाप (आवाज गर्जन) से लोगों के मुख मण्डल को ऊपर उठा देने वाली वर्षा पूरे संसार के द्वारा वर्ण्य गुण वाले अद्वितीय ढङ्ग के सौन्दर्य राशि से सुशोभित उस राजा को देखने ही के लिए मानो उतर रही थी।

नायिका पक्ष :—उन्नत पयोधर (स्तनों) के बीच लोटती हुई हारपङ्क्ति से सुशोभित, कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली, विद्युत् सदृश मणिमय कटि भूषण धारण करने वाली, शिञ्जान (मधुर शब्द करते हुए) हंसक (नूपुरों) को चरणों में आमुक्त (बन्धन) करने वाली, प्रौढ़ करेणु (उत्कृष्ट हथिनी) के संचार (गमन) को भी (अपने गमन से) न्यक्कृत कर देने वाली सुन्दर कन्धों वाली, शशाङ्क (चन्द्रमा) की कान्ति को अपनी आह्लादकता से तिरस्कृत कर देने वाली, उन्नत मुखमण्डल को धारण की हुई नायिका।

वर्षापक्ष :—पतद्धारावली—पतत् + धारावली—धारा पङ्क्ति जिसमें गिर रही हैं। कमलकान्तनयनाः—यहाँ नयन शब्द आगमन अर्थ में प्रयुक्त हुआ हैं। अर्थात् कमलों को कान्त (प्रिय) है नयन (आगमन) जिनका। वर्षा का आगमन कमलों को बहुत प्रिय है। सुरचाप :—इन्द्र धनुष रूप टेढ़ी भौंहों वाली। अर्थात् वर्षा रूप नायिका की भौंह इन्द्र धनुष ही है। विद्युत् :— विजली ही उसकी मणिमय करधनी है। शिञ्जान—बादल जब गरजने लगते हैं तो हंसों को समझ में आ जाता है कि अब उन्हें अपना स्थान छोड़ कर मानसरोवर चला जाना चाहिये। वर्षा के दिनों में हंस मानसरोवर चले जाते हैं। प्रौढ़ + क + रेणु + सञ्चार + हारिणीः प्रौढ़ जल से धूलि संचार को नष्ट कर देने वाली, जब वर्षा पर्य्याप्त हो जाती है तो धूलि उड़ना बन्द हो जाता है। कंधरः—क का अर्थ जल है। अतः कंधराशब्द जलधारि का अर्थ में प्रयुक्त होता है। तिरस्कृतः—बादल चन्द्रमा की किरणों को रोक लेते हैं। चन्द्रमा उदित रहते हैं फिर बादलों के रहने पर अंधेरा रहता है। उच्च मुख मण्डला का कलापान्त पूर्व पद से कर्मधारय समास हुआ है। बादल आकाश में एक अनियमित पदार्थ है। अनियमित पदार्थ हठात् आदमी को कौतूहल में डाल देता है। वादलों को देखने के कौतूहल से लोग शिर ऊपर उठा लेते हैं।

। नायिका पक्ष :—वर्षा के प्रायः सभी विशेषण नायिका पक्ष में लगते हैं। पतत् + हारावली—स्तनों के बीच हार पङ्क्ति लोट रही है। कमलदलकान्त-नयनाः—कमल दल की तरह सुन्दर नेत्रों वाली। टेढ़ी भौंहें इन्द्रधनुष की तरह हैं। विद्युत् सदृश मणिमय काञ्ची धारण की हैं। शिञ्जानः—ध्वनि करते हुए सुन्दर हंस को (नूपुरों) को बाँधी हैं। उन्नत मुख मण्डल वाली हैं।]

यत्र च।

आकर्ण्यं स्मरयौवराज्यपटहं जीमूतनूत्नध्वनि
नृत्यत्केकिकुटुम्बकस्य दधतं मन्द्रां मृदङ्गक्रियाम्।
उन्मीलन्नवनीलदलकन्दव्याजेन रोमाञ्चिता
हर्षेणेव समुच्छ्रिता वसुमती दध्रे शिलीन्ध्रध्वजान्॥ ४०॥

आकर्ण्येति॥ युवा चासौ राजा चेति युवराजस्तस्य भावो यौवराज्यम्। कामस्य तरुणराजत्वपटहोपमं नृत्यत्केकिनां च मृदङ्गावधि दधानं घनगर्जितं श्रुत्वा मुदेव विकसत्कन्दलच्छलेन पुलकिता भूरभूत्। शिलान्ध्रध्वजानधारयत्॥ ४०॥

और उसी वर्षा समय में—

काम के यौवराज्याभिषेक के अवसर पर नाचते हुए मयूर परिवार की गम्भीर ध्वनि रूप मृदङ्गध्वनि से समन्वित जीमूत (बादल) के नवीन ध्वनि रूप पटह (नगाड़े) को सुन कर अङ्कुरित होते हुए नवीन एवं नीले कन्दलों (अङ्कुरों) के बहाने रोमाञ्च व्यक्त करती हुई वसुमती (पृथ्वी) मानो हर्ष से शिलीन्ध्र-ध्वजों (गोबरछत्ते) को धारण कर रही थी।

[वर्षा काल में काम युवराज बन रहा है। मयूरों की ध्वनि मृदङ्ग का काम दे रही है। बादल का गर्जन नगाड़े का कार्य पूर्ण कर रहा है। नवीन अङ्कुरों के बहाने वसुन्धरा रोमाञ्च व्यक्त कर रही है और प्रसन्नता के मारे शिलीन्ध्रध्वजों को धारण कर रही हैं।। ४०।।]

अपि च।

पर्णैः कर्णपुटायितैर्नवरसप्राग्भारविस्फारितैः
शृण्वन्ती मधुरं द्युमण्डलमिलन्मेघावलीगर्जितम्।
शाखाग्रग्रथमानसौरभभरभ्रान्तालिपालिध्वजा-
स्तोषेणेव वहन्ति पुष्पपुलकं धाराकदम्बद्रुमाः॥ ४१॥

पर्णैरिति॥ वसन्ते पुष्प्यन्ति ते धूलीकदम्बा वर्षासु च धाराकदम्बाः॥ शाखाग्रे- मिलन्तः सौरभभराद्भ्रान्ता उपर्युपर्यटन्तश्च तेऽलयश्च त एव पालिध्वजाः प्रसिद्ध- चिह्नानि येषां ते धाराकदम्बद्रुमाः पुष्पमेव पुलकं मदेन वहन्ति॥ हर्षहेतुर्गर्जन- श्रवणमेव। रसो जलं रागश्च। अन्योऽपि द्युमण्डलान्मिलन्त्या योषितः शब्दं श्रुत्वैवंविधो भवति 'ग्रन्थबन्धन' इति यौजादिकाच्छिकल्पिते णिचि ग्रथितुं शील- मेषामिति चानशि ग्रथमानाः। यत्कविरहस्ये 'गाथां ग्रन्थयति ग्रथत्यचिरतं श्लोकांश्च लोकोत्तारान्गद्यं ग्राथयति स्फुटार्थललितं यो नाटकं ग्रन्थति। ग्रन्थाति श्रुतिशास्त्रयो- र्विवरणं ग्रन्थाननेकांश्च यः स्वच्छं यस्य मनः स्वभावसरलं न ग्रन्थते कुत्रचित्' इति। अस्मादात्मनेपदमपि। तथा च। 'वहति जलमियं पिनष्टि गन्धानियमियमुद्ग्रथते स्रजो विचित्राः। मुसलमिदमियं च पातकाले मुहुरनुयाति कलेन हुङ्कृतेन' इति॥ ४१॥

और—नवीन रस के उत्तम भार से प्रस्फुटित पत्र रूप कानों से आकाश मण्डल से मिलती हुई मेघ पङ्क्ति के मधुर गर्जन को सुनते हुए, डालियों के अग्रभाग में संलग्न सौरभ (पराग) पूर्ण (फूलों) में आनन्द विभोर होकर भनभनाते हुए भ्रमरों की पङ्क्ति रूप ध्वजा वाले पंक्ति बद्ध कदम्ब के पेड़ मानों प्रसन्नता के कारण पुष्प रूप रोमाञ्च को धारण कर रहे हैं।

[वर्षा के दिनों में कदम्ब के पत्ते सरस हो गये हैं। आकाश के मधुर गर्जन को वे अपने पत्र रूप कानों से सुनते हैं। शाखाओं के अग्रभाग में पराग पूर्ण फूलों पर भौंरे मड़रा रहे हैं। उन भ्रमरों की पङ्क्ति ध्वज की तरह प्रतीत होती है। कदम्ब के फूलों के प्रति कवि की धारणा है कि वे फूल रूप रोमाञ्च हैं जो मानों प्रसन्नता के कारण प्रकट हुए हैं॥ ४१ ॥]

अथ क्रमेण।

नीरं नीरजनिर्मुक्तं नीरजस्कं भुवस्तलम्।
जातं जातिलतापुष्पगन्धान्धमधुपं वनम्॥ ४२॥

नीरमिति॥ **नीरं जलमम्भोजमुक्तं भूतलं निःपांसु वनं च जातीपुष्पसौरभान्धभृङ्गजातम्॥ ४२॥**

नीर (जल) नीरज निर्मुक्त (कमलों से निर्मुक्त) हैं। भूमण्डल नीरजस्क (धूलि रहित) हो गया है। जाति लता के फूलों की गन्ध से भौंरे अन्ध (मस्त) हो गये हैं। इस तरह की शोभा से वन सम्पन्न हो गया है॥ ४२॥

अपिच।

धुतकदम्बकदम्बविनिष्पतन्नवपरागपरागममन्थराः।
हृततुषारतुषा रतिरागिणां प्रियतमा मरुतो मरुतो ववुः॥ ४३॥

धुतेति॥ **कम्पितकदम्बद्रुमसमूहान्निःसरन् योऽसौ नवः परागस्तत्संगमेन मन्थरा मन्दः॥ तथा ऊढसीकरकणाः तथा रतिरागोऽस्ति येषां तेषामतिदयिता मरुतो वाता मरोः पर्वताद्वान्ति स्म॥ परागमेति परापूर्वः पर उत्कृष्ट आगमो वा॥ ४३॥**

धुत (हिलते हुए) कदम्ब वृक्ष के कदम्ब (पङ्क्ति) से निकलते हुए नवीन पराग के परागम (उत्तम आगमन) के कारण मन्थर (मन्द) तुषार (शीत) के तुष् (कणों) को लिये हुए रतिरागियों (कामुकों) के अत्यन्त प्रिय मरुनामक पर्वत से (मरु+तः) मरुत् (पवन) बह रहा था॥ ४३॥

ततश्च। तिरस्कृततरणित्विषि, विगलद्वारिविप्रुषि, शान्तचातकतृषि, निर्वाणवारणवपुषि, मानिनी मानग्रहग्रन्थिमुषि, जनितजवासकशुषि, विधपवधूविद्विषि, वर्धितमण्डूकहृषि, मुद्रितचन्द्रमसि, विद्राणपङ्कजसरसि, स्वाधीनप्रियप्रेयसि, प्रोषितकलहंसवयसि, नष्टनक्षत्र-

मण्डलमहसि, मेचकितनभसि, निष्पतन्नीपरजसि, स्फुटकुटजरजःपुञ्ज-पिञ्जरिताष्टदिग्भासि, भासुरसुरचापचक्रभृति, मयूरमदकृति महिष-शोषहृति, विस्तरत्सरिति, विद्योतमानविद्युति, वहन्मन्दमेघङ्करमरुति, हृष्यत्कृपाणयोषिति, पुष्प्यत्केतकीगन्धपानमत्तमधुकृति, प्रोद्भुतभूरुहि, दरिद्रनिद्राद्रुहि, सगर्वगोदुहि, कदम्बस्तम्बालम्बिमधुलिहि, मुदितमद-नाट्टहासायमानघननादमुचि, पच्यमानजम्बूफलश्यामलितनवनान्तर-रुचि, रचितपान्थसार्थशुचि, श्रूयमाणमदमधुरमयूरवाचि, विनिद्र-कोशातकीशालिनि, यूथिकाजालिनि, नवमालिकामालिनि, कन्दलभाजि, पच्यमानजम्बूतरुवनराजिभ्राजि, भिक्षाक्षणक्षपितपरिव्राजि शान्त-सारङ्गरुजि; नीडनिर्माणाकुलवलिभुजि, सान्द्रेन्द्रगोपयुजि, शच्योत-त्तमालधारागृहसदृशि, श्यामायमानदशदिशि, दिवापि श्रूयमाणरजनि-शङ्काकुलचक्रवाकचक्रकुशि, शकटसञ्चाररुधि, पल्लवितवीरुधि, विश्रा-न्तजिष्णुक्ष्मापालयुधि, क्षीणोक्षक्षुधि, क्षीरसमुद्रनिद्राणबाणबाहुच्छिदि, सिन्धुरोधोभिदि, दवदहननुदि, विरहिमनस्तुदि, जनितजनमुदि, तापिच्छच्छायानुच्छेदिनि, छन्नकुटीमध्यबध्यमानवाजिनि, विकसित-बकुलवनविराजिनि, सीरसीमन्तितग्रामसीमनि, विजयमानमनोजन्मनि जाते जगज्जीविनि, जीमूतसमये कदाचिदम्भसि दिवसे मृगयावन-पालकः प्रविश्य राजानं विज्ञापयामास ॥

ततश्चेति ॥ तिरस्कृता रविस्विषो येन । इन्द्रगोपा वर्षासु जाताः क्षुद्रजन्तवः श्च्योतत्तरत्तमालानां संबन्धि यद्धारागृहं तस्य सदृशि ॥ क्षीरोदधौ निद्राय-माणो बाणासुरबाहुच्छिद्विष्णुर्यत्र ॥ सीमन्त इव सीमन्तः । ततः करोतिण्यन्तात् क्ते तारकादित्वादितचि वा रूपम् ॥ तस्मिन्नित्थंभूते मेघसमय आखेटकारण्यपालको नृपं व्यज्ञापयत् ॥

(प्रस्तुत अनुच्छेद में वर्षा काल का वर्णन है)—

तरणि (सूर्य) की कान्ति को तिरस्कृत (आच्छादित) करने वाले, वारि (जल) के विप्रुष् (कणों) को गिराने वाले, चातक की प्यास को शान्त करने वाले, निर्वाण (आकाश) में वारण (हाथी) का रूप प्रदर्शित करने वाले, मानिनी स्त्रियों के मान ग्रहण रूप गांठ को चुरा लेने वाले या खोल देने वाले, उपजे हुए जवास के पौधों को सुखा देने वाले, पतिहीन वधुओं का शत्रु, मण्डूक (मेढ़क) के आनन्द को बढ़ा देने वाले, चन्द्रमा को मुद्रित (आच्छादित) कर देने वाले, कमल वनों को विप्राण (विकसित) कर देने वाले, स्वाधीनपतिका स्त्रियों को अत्यन्त प्रिय प्रतीत होने वाले, कलहंस पक्षी को (मानसरोवर के लिये) प्रस्थित कर देने वाले, नक्षत्रमण्डल

(तारक समूह) के मह (तेज) को नष्ट कर देने वाले, आकाश को अन्धकाराच्छन्न कर देने वाले, कदम्ब के पराग को आविष्कृत करने वाले, खिले हुए कुटज पुष्प के पराग राशि की पिञ्जरता (पीलापन) से आठों दिशाओं को खिला देने वाले, भासुर (चमकीले) इन्द्र धनुष् को धारण करने वाले, मयूरों को मतवाला बना देने वाले, महिष (भैंसों) की दुर्बलता (शोष) का हरण करने वाले, सरित् (नदियों) का विस्तार करने वाले, चमकती हुई बिजलियों वाले, मन्द-मन्द वहती हुई हवा से सम्पृक्त, किसानों की स्त्रियों को प्रसन्न करने वाले, खिले हुए केवड़े के गन्धपान से भ्रमरों को मत्त वना देने वाले, भूरूह (वृक्षों) को उत्पन्न करने वाले, दरिद्र निद्रा से द्रोह करने वाले (गाढ़ी निद्रा लाने वाले) अथवा दरिद्रों के घर के अभाव में उन्हें निद्रा से द्रोह कराने वाले, सगर्व (उच्छृङ्खल) गायों को भी दुहवा देने वाले, कदम्ब की डालियों पर भ्रमरों को लटकने देने वाले, प्रसन्न कामदेव के उन्नत हास की तरह वादलों की ध्वनि को व्यक्त करने वाले, पकते हुए जामुन के फलों की कान्ति से वन की आभ्यन्तरिक कान्ति को श्यामल वना देने वाले, पान्थसार्थ (पथिक समूह) को शोक में डाल देने वाले, मदस्वी मयूरों की ध्वनि सुनाने वाले, कोशातकी नामक फलों के विकसित होने के कारण सुन्दर लगने वाले, यूथिका (जूही) लता के जाल को (पल्लवित) करने वाले, नव मालिका की मालाओं वाले, अङ्कुरों को धारण कराने वाले, पकते हुए जामुन फल के पेड़ों की पंक्ति से सुशोभित होने वाले, संन्यासियों के भिक्षा + क्षण (भोजन विषयक आनन्द) को समाप्त कर देने वाले, मृगों के रोगों को शान्त करने वाले, वलिभुज् (कौवों) को नीड़ निर्माण के लिये व्याकुल कर देने वाले, सान्द्र + इन्द्र (वर्षा युक्त इन्द्र) और ग्वालों को एकत्रित करने वाले, चूती हुई तमाल धारा वाले घर सदृश, दशों दिशाओं को श्यामल बना देने वाले, दिन में भी रात की आशङ्का से व्याकुल चक्रवाकों को रूला देने वाले, शकट (गाड़ी) की गति को कीचड़ के कारण रोक देने वाले, वृक्षों को पल्लवित करने वाले, जिष्णु (विजय की इच्छा रखने वाले) क्ष्मापाल (पृथ्वी पालक) राजाओं की यात्रा को विश्रान्त (रोक) देने वाले, उक्ष (साँड़ों) की क्षुधा (भूख) को क्षीण कर देने वाले, वाणासुर के बाहुओं के छिन्न-कर्ता (विष्णु) को क्षीरसागर में सोने देने वाले, सिन्धु (नदियों) के रोध (किनारा) को तोड़ देने वाले, वनाग्नि को प्रेरित करने वाले, विरहियों के मन को दुःखित करने वाले, आदमियों के मन में प्रसन्नता ला देने वाले, तापिच्छ वृक्ष की छाया का अनुकरण करने वाले, अच्छी तरह से छायी हुई कटी में बँधे हुए घोड़े वाले, खिले हुए वकुल वन से सुशोभित सीर (हल) से ग्राम की सीमा को चिह्नित

करने वाले, मनोजन्मा (कामदेव) को विजयी बनाने वाले, संसार में प्राण संचार करने वाले, बादलों से समन्वित, वर्षा के दिनों में कभी आखेट (शिकार) वन का रक्षक राजभवन में आकर राजा को विज्ञापित किया ॥

तिरस्कृतः—वर्षा के दिनों में बादलों के कारण सूर्य की किरणें अपना पूर्ण प्रभाव नहीं जमा पातीं।

मानिनीः—वर्षा काल कुछ ऐसा उद्दीपक होता है कि मानिनी कान्तायें बिना अनुनय विनय किये ही अनुकूल हो जाती हैं।

जनितजवासः—गर्मी के दिनों में नदियों के तटपर जवास के पौधे खूब उगते हैं किन्तु वर्षा की बूँदें ज्यों ही पड़ती हैं,सब सूख जाते हैं।

प्रोषित कालः—वर्षा काल आने पर हंस मानसरोवर के लिवे प्रस्थित हो जाते हैं।

मयूरमदः—इन दिनों में मयूर आनन्द विभोर होकर मत्त हो जाते हैं।

महिषशोषः—गर्मी के दिनों में भैंसे दुःखी होकर दुर्बल हो जाते हैं। वर्षा के आते ही वे प्रसन्न और सबल हो जाते हैं।

दरिद्रः—वर्षा के दिनों में बड़ी गाढ़ी निद्रा लगती है। अतः उन दिनों को दरिद्रनिद्रद्रुह कहा जा सकता है। अर्थात् इन दिनों में क्षुद्र निद्रा नहीं आती। इसका दूसरा भाव यह भी है कि दरिद्र (निर्धन) लोगों की निद्रा से यह काल विद्रोह करता है। दरिद्र लोगों के तृणमय किसी तरह से छाये हुए घर होते हैं। जब पानी बरसने लगता है तो सारा पानी उनके घर में जाता है। बड़ी कठिनाई से उन्हें नींद आ पाती है।

सगर्वगोदुहि—उच्छृङ्खल गायें भी इन दिनों में दुही जा सकती हैं। इस समय इन्हें खाने के लिये हरे चारे मिलते हैं अतः दूध का आवेग ये रोक नहीं सकती।

विनिद्रकोशातकी—कोशातकी एक फल है जिसका पौधा इन दिनों अधिक विकसित होता है।

भिक्षा + क्षण + क्षपित + परिव्राजिः—संन्यासी लोगों के भोजन को भिक्षा कहते हैं। क्षण शब्द यहाँ आनन्द अर्थ का वाचक है। वर्षा के दिनों में संन्यासीलोग चातुर्मास्य व्रत मनाते हैं। इस समय ये लोग जिस गाँव या शहर में रहते हैं उसकी सीमा से बाहर नहीं जाते। एक ही गाँव या नगर से इन्हें जो खाने के लिये मिल जाता है उसी में इन्हें सन्तोष करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में इन्हें भोजन का आनन्द नहीं मिलता।

शान्तः—इन दिनों मृग नीरोग हो जाते हैं।

नीडनिर्माण—कौवे अपने और अण्डे देने के लिये वर्षा के प्रारम्भ में ही घोसला बनाने के लिये व्यग्र हो जाते हैं।

सान्द्रेन्द्रगोपयुजिः—एक वार जव गोप लोग इन्द्र की पूजा कर रहे थे तो भगवान् कृष्ण ने उन्हें मना कर दिया। इस पर इन्द्र क्रुद्ध हो गये और इतनी वर्षा किये कि गोवर्धन पर्वत के वहने की स्थिति आ गयी। भगवान् कृष्ण ने पर्वत को अपनी अङ्गुलि पर उठा लिया और उसे वहने से वचाया। भगवान् की इस महिमा को देखकर इन्द्र आये और उनकी स्तुति किये।

यही वर्षाकाल है जव इन्द्र और गोप एक वार इकट्ठे हुए थे।

श्च्योतत्तमाल—तमाल पत्र के रस की धारा स्वाभाविक ढंग से काली होगी। जिस घर में यह धारा गिरेगी वह घर नितान्त काला होगा। कवि कहता है कि वर्षा का दिन भी वैसा ही काला होता है।

चक्रवाकचक्रकूशि—वादलों के घटाटोप से दिन में भी रात्रि की आशङ्का कर चक्रवाक प्रिया वियोग के भय से रोना शुरू कर देते हैं।

शकटसञ्चाररुधि—वर्षा के दिनों के मार्ग पङ्किल हो जाता है। अतः गाड़ियों का आना जाना रुक जाता है।

क्ष्मापालयुधिः—विजय की कामना रखने वाले राजे अपनी युद्ध यात्रा वर्षा के दिनों में स्थगित कर देते हैं।

क्षीणोक्षक्षुधिः—अधिक घासों के मिलने के कारण साँड़ों की भूख शान्त हो गयी है। अथवा अधिक खाने के कारण मन्दाग्नि हो जाने से उनकी भूख ही नष्ट हो गयी है॥

'देव,

किं स्यादञ्जनपर्वतः स्फटिकयोर्द्वन्द्वं दधद्दीर्घयो-
रम्भोमेदुरमेघ एष किमुत श्लिष्यद्बलाकाद्वयः।
शून्यः किं नु करेण कुञ्जर इति भ्रान्तिं समुत्पादय-
न्दंष्ट्राद्वन्द्वकरालकालवदनः कोलः कुतोऽप्यागतः॥ ४४॥

किं स्यादिति॥ दीर्घस्फटिकद्वयोपेतोऽञ्जनगिरिः, बलाकाद्वयान्वितः सजलो जलदः, शुण्डाशून्यो हस्ती, किमिति भ्रान्तिं जनयन्देव कुतोऽपि कोलः सूकर आगात्॥ ४४॥

महाराज;

क्या दो वड़े-वड़े स्फटिकों को धारण किया हुआ अञ्जन पर्वत है, या दो बलाकाओं को लिया हुआ जल राशि से मेदुर (पूर्ण) मेघ है, या कर (शुण्ड) से हीन कुञ्जर (हाथी) है, इस तरह की भ्रान्ति को उत्पन्न करता हुआ अपने

दो दाँतों के कारण भयङ्कर काल सदृश मुख वाला एक कोल (सूकर) कहीं से (जंगल में) आ गया है।

[सूकर के दोनों दाँत अत्यन्त शुभ्र हैं और बाकी शरीर अत्यन्त कृष्ण है। इन्हीं दो वर्ण्य तत्त्वों के विभिन्न उपमान संकलित किये गये हैं। इस सूकर को देखकर यह भ्रान्ति हो जाती है कि वह दो बड़े स्फटिकों को धारण करता हुआ अंजन पर्वत या वलाकाओं से युक्त काल मेघ है, या शुण्ड विहीन हाथी है। मेघ, अञ्जन पर्वत, और हाथी सूकर शरीर के उपमान हैं और स्फटिक, वलाका और हाथी के दाँत सूकर के दाँतों के उपमान हैं ॥ ४४ ॥]

ततश्चासौ

भिन्दन्कन्दकसेरुकन्दलभृतः स्निग्धप्रदेशान् भुवो
भञ्जन्नञ्जनशैलशृङ्गसदृशः फुल्लल्लतामण्डपान्।
मन्दं मन्दरलीलयाब्धिसदृशं मध्नंश्च लीलासरः
क्रोडः क्रीडति भाययन्निव भवत्क्रीडावने रक्षकान्' ॥ ४५ ॥

भिन्दन्निति ॥ मन्दरलीलया करणभूतया भाययन् ॥ अत्र करणाद्भयेनात्वमात्मनेपदं पुगागमश्च न भवति ॥ ४५ ॥

इसके अतिरिक्त,

अञ्जन पर्वत सदृश वह (सूकर) कन्द एवं कसेरू घास के अंकुरों को उपजाने वाले आर्द्र स्थानों को खोद रहा है। खिले हुए लता मण्डपों को तोड़ रहा है। मन्दराचल की तरह समुद्र सदृश लीला सरोवर को धीरे से मथ रहा है और आप के क्रीडावन में रक्षकों को डराता हुआ खेल रहा है ॥४५॥

राजा तु तदाकर्ण्य चिन्तितवान्—

'अच्छाच्छैः शुकपिच्छगुच्छहरितैश्छन्ना वनान्तास्तृणैः
सेव्याः सम्प्रति सान्द्रचन्द्रकिकुलैरुत्ताण्डवैर्मण्डिताः।
येषु क्षीरविपाण्डुपल्वलपयः कल्लोलयन्तो मनाग्
वाता वान्ति विनिद्रकेतकवनस्कन्धे लुठन्तः शनैः ॥ ४६ ॥

अच्छाच्छैरिति ॥ चन्द्रकिणो मयूराः। पल्वलमखातं सरः ॥ ४६ ॥

यह सुन कर राजा ने सोचा —

अच्छ अच्छ (सुन्दर सुन्दर) तोतों के पंखों के गुच्छों की तरह हरे तृणों से ढकी हुई तथा इस समय प्रसन्न चन्द्रकिकुल (मयूरों) के उद्धत नृत्य से अलङ्कृत (वह) वनस्थली सेवनीय है, जहाँ दूध की तरह स्वच्छ पल्वलों

(छोटे जलाशयों) के साथ खेलती हुई और खिले हुए केवड़े के वन से टकराती हुई हवा धीरे-धीरे बह रही है ॥ ४६ ॥

माद्यन्ति च तेषु सम्प्रति प्रोथिनः। तद्युज्यते विहर्तुम्' इत्यवधारयन्नाहूय बाहुकनामानं सेनापतिमादिदेश ॥

माद्यन्तीति ॥ प्रोथिनः सूकराः ॥

'वहाँ इस समय सूकर उन्मत्त हो जाते हैं, इसलिये वहाँ विहार करना उपयुक्त है।" ऐसा सोचता हुआ राजा बाहुक नामक सेनापति को बुलाकर आज्ञा दिया ॥

'भद्र द्रुतमनुष्ठीयताम्, समादिश्यन्तां कृतवैरिविपत्तयः, पत्तयः, पर्याण्यन्तां मनस्तुरगास्तुरगाः, सज्जीक्रियन्तां निजवेगनिर्जितमातरिश्वानः श्वानः, सगारोप्यन्तामपनीताहितायूंषि धनूंषि, गृह्यन्तां निर्मथितप्रोथियूथपाशाः पाशाः' इति ॥

भद्रेति ॥ पर्याणं करोत्यश्वानाम्। 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिचि पर्याणयत्यश्वान्। पश्चात्सम्बन्धनिवृत्तौ व्याकरणं सूचयतीति त्रिलोकीं तिलकयतीतिवत्कर्मत्वम्। मन इव तुराः शीघ्रा गच्छन्तीति। निर्मथिताः प्रोथियूथपानां वराहयूथपानामाशा इच्छा यैः ॥

"भद्र, जल्दी कीजिये। शत्रुओं पर विजय ला देने वाली पत्ति (सेना) को आदेश दीजिये कि मन की तरह तुरग वेग से जाने वाले) तुरग (घोड़ों) को लावें। अपने वेग से मातरिश्वा (हवा) को भी जीत लेने वाले श्वा (कुत्तों) को तैयार कीजिये। अहित चाहने वालों के प्राणों को चुरा लेने वाले धनुषों को चढ़ाइये। प्रोथि यूथप (सूकर समूह) की आशा को मथ डालने वाले पाश (जालों) को ग्रहण कीजिये।"

अथ मौलिमिलन्मुकुलितकरकमलयुगलेन सेनापतिना 'यदाज्ञापयति देवः' इत्याभिधाय त्वरया तथा कृते सति ॥

अपने दोनों कर कमलों को मुकुलित (जोड़) कर शिर से लगाता हुआ सेनापति "जैसी आप की आज्ञा" यह कह कर शीघ्र ही राजा के कथन के अनुसार कार्य कर लिया ॥

स्वयमपि

निर्मांसं मुखमण्डले परिमितं मध्ये लघुं कर्णयोः
स्कन्धे बन्धरमप्रमाणमुरसि स्निग्धं च रोमोद्गमे।
पीनं पश्चिमपार्श्वयोः पृथुतरं पृष्ठे प्रधानं जवे
राजा वाजिनमारुरोह सकलैर्युक्तं प्रशस्तैर्गुणैः ॥ ४७ ॥

राजा स्वयं भी

ऐसे घोड़े पर आरूढ़ हुए जिसका मुखमण्डल मोटा नहीं था। बीच का भाग परिमित (सुडौल) था। छोटे-छोटे कान थे, गर्दन वन्धुर (सुन्दर) थी। छाती अप्रमाण (विशाल) थी। रोम समूह कोमल थे। अगला पुट्ठा पूर्ण रूप से पीन (मोटा) था। दौड़ने में बड़ा प्रशस्त था। समस्त प्रशंसनीय गुणों से युक्त था ॥ ४७ ॥

आरुह्य च क्रमेण कार्दमिककर्पटावनद्धमूर्धजैर्दण्डखण्डपाणिभिः क्रूरकर्मोचिताकारैर्वागुरावाहिभिरनन्तैः कृतान्तदूतैरिव पाशहस्तैः पापर्द्धिकैरनुगम्यमानः,दूरादुन्नमितकन्धरैस्तथोर्ध्वकर्णसम्पुटैरकाण्डोड्डीनप्राणैरिव वनप्राणिभिराकर्ण्यमानहर्षितहयहेषारवः, पवनकम्पित-तरुशाखाग्रपल्लवव्याजेन दूरादेवोत्क्षिप्तहस्ताभिरुड्डीयमानशकुनि-कुलकोलाहलच्छलेन भयान्निवार्यमाण इव वनदेवताभिः, अभिमुखा-गतैरुन्मिषत्तरुपुष्पप्रकरमकरन्दबिन्दुवर्षवाहिभिर्वनविनाशशङ्कितैरर्घ्य-मिवोपपादयद्भिरुपरुध्यमान इव वनमारुतैः' उन्निद्रसान्द्रकुसुम-केसराङ्कुरजालजटिलाभिर्भयादुद्गतरोमाञ्चप्रपञ्चाभिरिवोद्भ्रान्तभृङ्ग-रवगद्गदरुदितेन निषिध्यमान इव वनवीरुद्भिः, उद्भिन्नभास्वदमन्द-कन्दलावलोकनेनानन्द्यमानः श्वानुगतोऽप्यश्वानुगतः सगजमप्यगजं तद्वनमाससाद ॥

आरुह्य चेति ॥ कर्दमेन नीलीलोहमलादिना रक्तं कार्दमिकम्। श्वभिरश्वैश्चानुगतो राजा। गजोपेतम्। अगः पर्वतसमीपो देशोऽप्यगस्तस्मिञ्जातमगजं तद्वनमाप ॥

जब घोड़े पर चढ़ लिया तो क्रमश, लाल कपड़ों से वालों को वाँधे हुए, हाथ में छोटे डण्डे लिये हुए, क्रूर कार्य के अनुकूल वेष बनाये हुए, मृग फँसाने वाले जाल लिये हुए, असंख्य यमराज के दूतों की तरह हाथ में पाश लिये हुए, पाप सम्पत्ति से सम्पन्न व्याध लोग उसके पीछे-पीछे जा रहे थे। दूर से ही वन के प्राणी गर्दन को उठा कर, कानों को ऊपर की ओर सुपुका कर, प्रसन्न घोड़ों की हिन-हिनाहट सुन रहे थे। ऐसा लगता था कि असमय में ही उनके प्राण उड़े जा रहे थे। पेड़ों की साखा के अग्रभाग से टकरायी हुई हवा के कारण हिलते हुए पल्लवों के वहाने दूर से अपने हाथों को उठाकर उड़ते हुए पक्षियों के कोलाहल के वहाने वनदेवताएँ मानों भय से उन्हें रोक रही थीं। सामने पड़ने वाले खिलते हुए तरुपुष्पों के पराग कणों की वर्षा को ढोने वाला, वन विनाश की आशंका से डरा हुआ वनस्थली का पवन मानो उनकी विधिवत् पुजा कर उन्हें घेर रहा था। खिले हुए घने फूलों के परागकोश के अङ्कुर से ऐसा लगता

था कि डर के मारे वनलताओं के रोंगटे खड़े हो गये थे, अतः घबड़ाये हुए भ्रमरों की भनभनाहट के माध्यम से विह्वलतापूर्ण क्रन्दन के द्वारा उन्हें रोक रही थीं। अङ्कुरित होते हुए नवीन एवं चमकीले अङ्कुरों को देख कर आनन्दित हो रहा था। वह श्वानुगत (कुत्तों से अनुगत) था फिर भी अश्वानुगत (कुत्तों से अनुगत नहीं) था विरोध।

वह श्वानुगत (कुत्तों से अनुगत) था और अश्वानुगत (घोड़ों से अनुगत) था। परिहार।

सगज (हाथियों से युक्त था फिर भी अगज (हाथियों से युक्त नहीं) था। विरोध।

सगज (हाथियों से युक्त) था और अग (पर्वतों और पेड़ों) से उत्पन्न होने वाले उपवन को प्राप्त किया।

[वन की लता, वनदेवता और वन पवन राजसेना या राजा को अनुनय विनय के साथ रोक रहे हैं। जैसे कोई झगड़ा रोकने वाला आदमी दूर से ही हाथ उठाकर "ना ना" कह कर दूर से ही किसी हिंसक को मना करता है, वैसे वनदेवता पल्लवों के बहाने हाथों को उठाई हुई थी और पक्षियों के कोलाहल के बहाने हल्ला करती हुई रोक रही थी।

हवा फूलों की गन्ध आदि सामग्री का संकलन कर पूजन के माध्यम से अनुनय कर रही थी। डरी हुई वनलता को तो रोमाञ्च हो गया था। भ्रमरों की भनभनाहट के माध्यम से तो वह रो रोकर उन्हें रोक रही थी]॥

ततश्च केचिदुद्यत्परश्वधा गणपतयः, केऽपि दृष्टसिंहिकासुत-विक्रमाः शशधराः, केऽपि पाशपाणयो जम्बुकदिक्पालाः, केऽपि हरिमार्गानुसारिणो बलभद्राः, केऽपि चक्रपाणया मधुसूदनाः, केऽपि शिवागमावर्तिनो रौद्राः, केऽप्याहिताग्नयो विप्रलोकाः, केऽपि खण्डि-ताञ्जनाधरप्रवालाः प्रभञ्जनाः, केऽप्युत्खातदन्तिदन्तमुष्टयो निस्त्रिंशाः, तस्य पृथ्वीपतेराकुलितश्वापदाः पदातयो वनं रुरुधुः॥

ततश्चेति॥ उद्यन्तः पलायमानाः परे उत्कृष्टाः श्वानस्तान्दधति। तथा गणस्य सेनायाः पतयः हेरम्बाश्च उद्गृह्यमाणपरशवः। सिंहिकासुतः केसरिकिशोरो राहुश्च। शशं धरतीति शशधरः पत्तिश्चन्द्रश्च। पाशः पाणौ यस्य स पाशपाणि-र्वरुणश्च। जम्बुकः शृगालो वरुणश्च। यदुक्तं विश्वप्रकाशः—'जम्बुकः फेरवे नीचे प्रतिची-दिक्पतावपि'। हरिं सिंहं मार्गं मृगसमूहं चानुसरन्ति बलेन भद्राः शक्ताः। पक्षे हरेविष्णोर्मार्गोऽध्वा बलभद्रो बलदेवः। चक्रं पाणौ यस्य स चक्रपाणिर्विष्णुश्च। मधु क्षौद्रं दैत्यश्च। सूदनं क्षरणं मारणं च। शिवा शृगाली तस्या गमो गतिः पक्षे शिव-स्यागमाः शास्त्राणि। शैवाश्च। गृहीतदवभिर्भुजो वीक्ष्यशकुन्तान्प्रलोकयन्तः पापद्धिका हि कपोतादिपातनाय तरूणामधस्तात्तापनीसंज्ञकामग्नीष्टिकां कुर्वन्ति। पक्षे

साग्निहोत्रा विप्रलोकाः। खण्डिता अञ्जनस्य पक्षिकपक्षिणोऽधरप्रवालाः पुच्छानि यैः। यद्वाऽञ्जनस्य शाखिवोऽधःपल्लवाः। वातास्तु खण्डितोऽञ्जनाख्यायाः प्रियाया ओष्ठपल्लवो यैः। उत्खाता दन्तिदन्ता यैस्यथोक्ता मुष्टयः संग्रहा येषाम्। पक्ष उत्खि-प्तदन्तिदन्तप्रधानो मुष्टिः त्सरुर्येषु। निस्त्रिंशाः क्रूरकर्माणः खड्गाश्च। ईदृशास्तस्य पत्तयो वनं वेष्टयामासुः॥

जैसे गणपति (गणेशजी) उद्यतपरश्वध (अपने कुठार को सदा तैयार रखते) हैं वैसे उनमें भी कुछ लोग उद्यत् + पर + श्व + ध (दौड़ने के लिये बिल्कुल तैयार उत्कृष्ट कोटि के कुत्तों को लिये हुए) थे।

शशधर (चन्द्रमा) जैसे दृष्टसिंहिकासुतविक्रम (राहु के विशिष्ट आक्रमण को देखे हैं वैसे उनमें से कुछ लोग दृष्टसिंहिकासुतविक्रम (सिंहिनी के बच्चे से विक्रम को देख चुके) थे। और शश (खरगोश) को धारण किये हुए थे। पाशपाणि (वरुण) जैसे जम्बुक दिक्पाल (पश्चिम दिशा के अधिपति) हैं वैसे उनमें से भी कुछ लोग पाशपाणि (हाथ में जाल लिये हुए) थे और (जम्बुक–दिक्पाल (शृगाल के रास्ते में उनकी प्रतीक्षा कर रहे) थे। बलभद्र (बलदेवजी) जैसे हरिमार्गानुसारी (कृष्ण के अनुसार चलने वाले) हैं वैसे उनमें भी कुछ बलभद्र (बल के कारण भद्र (शक्तिशाली) थे और हरिमार्गानुसारी (सिंह के रास्ते का अनुसरण करने वाले) थे। चक्रपाणि (चक्रधारी विष्णु) जैसे मधुसूदन (मधु राक्षस को मारने वाले) हैं वैसे उनमें से कुछ लोग चक्रपाणि (हाथ में चक्र लिये) थे और मधुसूदन (मधु के छत्ते से मधु चुवा रहे) थे। रौद्र (शिवधर्म के अनुयायी) जैसे शिवागमवर्ती (शैव दर्शन को मानने वाले) हैं वैसे कुछ लोग शिवागमवर्ती (शृगालों के रास्ते पर ठहर कर) रौद्र (भयङ्कर रूप धारण किए) हुए थे। जैसे विप्रलोक (ब्राह्मण लोग) आहिताग्नि (अग्नि-होत्र करने वाले) होते हैं वैसे कुछ लोग आहिताग्नि (आग सुलगा कर तापनी नामक अनुष्ठान कर रहे) थे और वि (पक्षियों) को प्रलोक (तप्त कर रहे थे।

प्रभञ्जन (वायु) जैसे खण्डिताञ्जनाधरप्रवाल (अञ्जना नाम की प्रिया के अधरोष्ठ का पान करने वाले) हैं वैसे कुछ लोग खण्डिताञ्जनाधरप्रवाल (खञ्जन पक्षी के अधर प्रबाल (पूच्छ भाग) को तोड़ लिये) थे अतः प्रभञ्जन (विध्वंसक) प्रतीत हो रहे थे। निस्त्रिंश (तलवार) जैसे उत्खातदन्तिदन्तमुष्टि (उखाड़े हुए हाथी दांत से बनी हुई मुट्ठियों से युक्त) है वैसे कुछ लोग निस्त्रिंश (हिंसक) हैं और उत्खातदन्तिदन्तमुष्टि (हाथियों के दाँतों को उखाड़ कर मुट्ठी में लिये हुए) हैं। पृथ्वीपति (राजा नल) के पदाति (पैदल चलने वाले व्याध) जंगल के प्राणियों को व्याकुल कर वन को घेर लिये॥

[अहितारनयः—व्याध लोग पेड़ों से पक्षियों को गिराने के लिये पेड़ों के नीचे आग सुलगा कर तापनी नामक अनुष्ठान करते हैं] ॥

ततश्च तैः क्रियन्ते विकलभा वननिकुञ्जाः कुञ्जराश्च, भ्रियन्तेऽनेकधारयातिपातिनः खड्गाः खड्गिनश्च, कृष्यन्ते कूजन्तः कोदण्डदण्डा गण्डकाश्च, विक्षिप्यन्ते परितः शराः शरभाश्च, भज्यन्ते तरवस्तरक्षवश्च ॥

ततश्चेति ॥ विगताः कलभा येभ्यस्ते व्यपेतकरिपोताः। कुञ्जरास्तु विकलकान्तयो भयादिति शेषः। खड्गा द्विधारत्वादनेकया धारया पतन्त्यभीक्ष्णम्। गण्डकास्तु रयेनातिपतन्ति। य उद्भिन्नश्रृङ्गाः प्रौढास्ते खड्गिनः। अतएव रयाभिपातिनः। त एव बालकाः गण्डकाः। अत एव कूजन्तः।-तरक्षवश्चित्रकायाः ॥

तदनन्तर उन व्याधों द्वारा वन की झाड़ियाँ विकलभ (हाथियों के वच्चों से शून्य) कर दी जा रही हैं और हाथी भी विकलभ (निस्तेज) कर दिये जा रहे हैं। अनेक धारयाऽतिपाती (दोनों तरफ से काटने वाले) खड्ग (कृपाण) हाथ में पकड़े गये हैं और अनेक धारयाऽतिपाती (अनेक मार्गों से आने जाने वाले) खड्गी (गैंड़े) पकड़े जा रहे हैं। कूजन (डेकार) करते हुए धनुर्दण्ड खींचे जा रहे हैं और कूजन (चीत्कार) करते हुए गण्डक (गैंडों के बच्चे घसीटे जा रहे हैं। चारों तरफ शर (वाण) फेंके जा रहे हैं और शरभ (भय के मारे) पागल वनाये जा रहे हैं। तरु और तरक्ष (सर्प) काटे जा रहे हैं ॥

[शरभ—सिंह को भी मार गिराने वाला आठ पैरों का यह एक जानवर है] ॥

क्षणेन च पतन्ति पीवरा वराहाः, सीदन्ति दन्तिनः, विरसं रसन्ति सातङ्का रङ्कवः, प्रकाशैलं शैलं भयादारोहन्ति रोहिताः, शरसंघातघूर्णिता यान्ति महीं महिषाः, दुर्गसंश्रयं श्रयन्ते तरलितनेत्राश्चित्रकाः, त्वरिततरं तरन्तीवोत्पतन्तो नभसि निजजवनिर्जिततुरङ्गाः कुरङ्गाः ॥

क्षणेन चेति ॥ सातङ्काः सभयाः। रङ्कवो मृगाः। प्रकाशाः स्पष्टा एला लता यत्र शैले। रोहितः श्वापदः। चित्रकोऽपि तद्विशेषः ॥

एक ही क्षण बाद बहुत मोटे-मोटे शूकर विकल होकर गिर रहे हैं। सातङ्क (डरे हुए) रङ्कु (मृग) विरस (करुण) क्रन्दन कर रहे हैं। प्रकाश (स्फुट) एला (लताओं) वाले शैलों पर रोहित (मृग) चढ़ रहे हैं। वाण के आघात से घूर्णित (मूर्छित) भैंसे पृथ्वी पर लोट जाते हैं। चंचल नेत्र वाले बाघ गुफाओं में घुस रहे हैं। अत्यन्त वेग से छलांग मारने के कारण मृग मानों आकाश में तैर रहे हैं ॥

तत्र च व्यतिकरे

जाताकस्मिकविस्मयैः किमिदमित्याकर्ण्यमानः सुरैः
सन्त्रासोज्झितकर्णतालचलनाद् दिग्दन्तिनः कम्पयन्।
जन्तूनां जनितज्वरः स मृगयाकोलाहलः कोऽप्यभू-
द्येनेदं स्फुटतीव निर्भरभृतं ब्रह्माण्डभाण्डोदरम्॥ ४८॥

इसी बीच एक अद्भुत शिकार का कोलाहल उठा जिसे "यह क्या है" इस तरह अकस्मात् आश्चर्य में पड़े हुए देवता लोग सुन रहे थे, जो डर के मारे कानों को फड़फड़ाते हुए दिग्गजों को कम्पित कर रहा था। प्राणियों में व्याकुलता उत्पन्न कर दिया था और जिससे समस्त ब्रह्माण्ड रूप भाण्ड (पात्र) का उदर (न अँटने के कारण) मानो फटा जा रहा था॥ ४८॥

राजाप्येकशरप्रहारपातितमत्तमातङ्गः सर्वतो विहारिहरिहरिण-शशकशम्बरवराहहननहेलया विचरन्नितस्ततस्तरुणतरतमालमञ्जरी-जालनीलोद्घुषितस्कन्धकेसरमूर्ध्वस्तब्धकर्णसंपुटमश्वचक्राय क्रुध्यन्त-माघूर्णितघोणमनवरतकृतघनघोरघर्घररवमुत्क्षिप्तपुच्छगुच्छमभिमुख-मेकस्मिन्नतिसान्द्रभद्रमुस्तास्तम्बभाजि पङ्किलपल्वलप्रदेशे तं शूर-शूकरमपरमिव दवदहनदग्धाद्रिमद्राक्षीत्॥

राजा भी एक ही बाण के प्रहार से मतवाले मातङ्ग (हाथी) को गिरा कर चारों तरफ विहार (भ्रमण) करने वाले हरि (सिंह), हरिण, शशक (खरगोश), शम्बर (मृग) और सूकर मारने के विचार से घूमता हुआ अत्यन्त तरुण तमाल वृक्ष की मंजरी समूह की तरह नील उस वीर सूकर को देखा जो स्कन्ध देश के बालों को ऊपर की ओर उठाये हुये था, चकित होकर दोनों कानों को ऊपर की ओर किया था; अश्वसमूह पर क्रोध व्यक्त करता हुआ नासिका को टेढ़ी कर निरन्तर बादल की तरह गरज रहा था, अपनी पूँछ के गुच्छे को हमेशा फेंकता (हिलाता) हुआ सामने ही एक घने मुस्तावाले पङ्क युक्त छोटे जलाशय में वनाग्नि से जले हुए एक दूसरे पर्वत की तरह प्रतीत हो रहा था॥

दृष्ट्वा च रचितशरसन्धानलाघवो राघव इव राक्षसेश्वरस्य तस्योपरि परिणद्धविविधपत्त्रैः पतत्त्रिभिरभ्यवर्षत्॥

उसे देखकर बाण सन्धान में पटु (उस नल ने) विविध पंखों से युक्त बाणों की वर्षा उस सूकर पर उसी तरह करना शुरू किया जैसे राम रावण पर किये थे॥

तत्र च व्यतिकरे

किमश्वः पार्श्वेषु प्लवनचतुरः किं नु नृपतिः
शरान्मुञ्चन्नुच्चैश्चलतरकराकृष्टधनुषा ।
किमालोलः कोलः परिहृतशरः शौर्यरसिको
न जानीमस्तेषां क इह परमो वर्ण्यत इति ॥ ४९ ॥

उस समय यह पता नहीं चलता था कि जिसको बड़ा कहा जाय, थोड़ी जगह में उछलने में कुशल उस घोड़े को या अत्यन्त चंचल हाथों से खींचकर वाणों को छोड़ते हुए राजा को या बाणों से बचते हुए वीर रस के रसिक उस अत्यन्त चंचल सूकर को ॥ ४९ ॥

अपि च—

अजनि जनितपृथ्वीमण्डलोत्पादकम्पं
किमपि चलितशैलं द्वन्द्वयुद्धं तयोस्तत् ।
स्खलिततुरगवेगो विस्मयेनैष यस्मिन्
दिनपतिरपि शौर्याश्चर्यसाक्षी बभूव ॥ ५० ॥

अजनीति ॥ स्वभावतोऽपि मध्यन्दिने स्खलिताश्ववेगो रविस्तत्र कवेरूहः ॥५०॥

उन दोनों के द्वन्द्वयुद्ध ने पृथ्वी में कम्पन उत्पन्न कर दिया, पर्वतों में चञ्चलता उत्पन्न कर दी, भगवान् सूर्य भी आश्चर्य के कारण अपने घोड़े के वेक को रोक कर उनकी आश्चर्यजनक वीरता के साक्षी बने ॥

[दोपहर के समय भगवान् सूर्य स्वयं कुछ मन्दगति जैसे प्रतीत होते हैं। उनकी इस गति पर कवि ने कल्पना की है कि सूकर और नल की वीरता को देखने के लिये भगवान् सूर्य ने अपने घोड़े को रोक दिये और उनके अद्भुत शौर्य के साक्षी का कार्य किया ॥ ५० ॥

अथ कथमपि नाथं प्रोथियूथस्य जित्वा
ज्वरित इव विशालं सालसः सालमूले ।
सुखमभजत राजा राजमानः श्रमाम्भः-
कणकलितकपोलालोललीलालकेन ॥ ५१ ॥

अथेति ॥ ज्वरित इव सालस इत्यनेन श्रमातिशयोक्तिः । अन्योऽपि ज्वरितो मूलादीनि सेवमानः स्वेदबिन्दुलक्ष्यमाणज्वरापगमो राजते ॥ ५१ ॥

तदनन्तर किसी किसी तरह सूकर समूह के उस विशाल नायक को जीत कर थकने के कारण मानो ज्वराक्रान्त होकर शाल वृक्ष के नीचे पसीने के जल-कणों से अलङ्कृत कपोल तथा चञ्चल एवं सुन्दर बालों से सुशोभित वह राजा सुखपूर्वक बैठा ॥

[ज्वरित शब्द के उपादान से राजा के अत्यधिक थकान को व्यक्त किया गया है। ज्वराक्रान्त राजा सालवृक्ष की छाया में बैठा। ज्वर को हटाने के लिये वैद्य लोग मूल आदि का काढ़ा पीने के लिये बताते हैं। ज्वरित व्यक्ति को जब पसीना आ जाता है तो समझा जाता है कि उसका ज्वर हट गया। ज्वर के प्रसङ्ग में पसीने आदि की चर्चा अत्यन्त भावपूर्ण है ॥ ५१ ॥]

तत्र च स्थितं श्रममुकुलितनयनारविन्दम्, आन्दोलयन्तः कुसुमिततरून्, तरलयन्तः शिखिशिखण्डमण्डलानि, ताण्डवयन्तस्तनुलतापल्लवनिवहान्, वहन्तो वहन्निर्झरजलशिशिरशीकरनिकरान्, करालयन्तः कुटजकुड्मलानि, मकरन्दबिन्दुमुचो मन्दमानन्दयामासुः कम्पितनीपवनाः पवनाः ॥

तत्र चेति ॥ **श्रममुकुलितनेत्रकमलं नृपं कम्पितनीपकाननाः पवनाः हर्षयांचक्रुः। कुटजकलिकानां करालनं विकासनम् ॥**

वहाँ पुष्पित वृक्षों को कँपाता हुआ, मयूरों को (आनन्द के मारे) चंचल बनाता हुआ, पतली लताओं एवं पल्लवों की पंक्तियों को नचाता हुआ, प्रवाहपूर्वक बहते हुए झरनों के शीतल कणों को ढोता हुआ, कूटज पुष्प की कलियों को विकसित करता हुआ, पराग-बिन्दुओं को बरसाता हुआ, कदम्बबन को कँपाता हुआ पवन थकावट से आँखों को मुकुलित लिये हुए राजा को शनै-शनैः आनन्दित कर रहा था ॥

अनन्तरमनवरतकरालकाककौलेयककुलकवलनाकुलितकोलकरिकुरङ्गकण्ठीरवकिशोरदृषत्पृष्ठधाविते परितः परिजने, जनितविविधमृगवधूवैधव्याधीन्व्याधान्निवारयितुमिवान्तरान्तरा प्रसारितकरे मध्यस्थतां गतवति गभस्तिमालिनि, सहसंवर्धितमृगविनाशशोकभरादिव वनवीरुधां पतत्सु पुष्पलोचनेभ्यो वाष्पेष्विव मध्याह्नोष्णविलीनमकरन्दबिन्दुषु, श्रूयमाणेषु वनदेवतानां वनविमर्दोपालम्भेष्विव तरूखण्डोड्डीनविविधविहङ्गविरुतेषु, विघट्टितार्भककुरङ्गकुटुम्बिनीकरुणकूजितव्याजेनान्यायमिव पूत्कुर्वतीषु वनराजिषु, इतस्ततः सञ्चरच्चटुलतरतुरङ्गखुरशिखरशिखोत्खातधरणिमण्डलाद्वनविनाशवार्तां गगनचरेभ्यः कथयितुमिवोत्पतितेऽम्बरतलमकृतपरित्राणे च मूर्च्छित इव पुनः पुनः पतति भुवि भवनपारावतपतत्रिपत्रधूसरे धूलिपटले, सकम्पकपिकलापोल्ललनलुलिततरुतरुणमञ्जरीपुञ्जनिकुञ्जादुद्वेजिते मञ्जु गुञ्जति घनान्तरमपरमुच्चलिते चञ्चलचञ्चरीकचक्रवाले, चङ्क्रमणक्रमेण च सम्पन्ने सैन्यस्य श्रमावसरे तस्यैव सरससरलशालद्रुमस्याधस्तान्निषण्णे श्रमभाजि राजनि ॥

अनन्तरमिति ॥ कौलेयकः श्वा । कोलः सूकरः । पूत्करणमार्तव्याहरणम् ॥

इसके बाद निरन्तर कौवे और कौलेयक (कुत्ता) को खा जाने के लिये व्याकुल भयङ्कर कौल (सूकर), हाथी, मृग एवं कण्ठीरव (सिंहों) के सबल बच्चों के पीछे चारों तरफ से परिजन दौड़ रहे थे। अनेक मृगवधुओं के वैधव्य रूप आधि (विपत्ति) उत्पन्न करने वाले व्याधों को मानो निवारण करने के लिये मध्यस्थ के रूप में गभस्तिमाली (भगवान् सूर्य) अपने करों (किरणों) को फैलाये हुए थे। एक ही साथ पले हुए मृगों के विनाशशोक से मर जाने के कारण वनलतायें अपने पुष्प नेत्रों से मध्याह्नकालीन उष्णता के कारण गरम परागबिन्दुरूप आसुओं को गिरा रहीं थीं। पेड़ों से उड़े हुए विविध पक्षियों का क्रन्दन ऐसा लगता था मानों वनदेवताएँ वनविनाश के कारण उलाहनाएँ सुना रहीं थीं।

बिछुड़े हुए बच्चों के लिये (रोती हुई) कुरंगवधुओं के करुण-चीत्कार के बहाने वनपंक्तियाँ अन्याय को धिक्कारती थीं। इधर-उधर घूमते हुए अत्यन्त चञ्चल घोड़ों के खुरों के अग्रभाग से कट कर गृह-कबूतरों के पंख सदृश धूसर धूलि भूतल से उड़ कर मानों वन-विनाशविषयक समाचार कहने के लिये आकाश में गयीं और जब वहाँ उन्हें रक्षा का आश्वासन नहीं मिला तो पुनः पृथ्वी पर मूर्छित हो कर आ गिरीं। डरके मारे काँपता हुआ बन्दरों का झुण्ड वृक्षों की पूर्ण विकसित मञ्जरियों को रगड़ दिया था। अतः उद्विग्न होकर मधुरतापूर्वक गुञ्जार करता हुआ भ्रमर-समूह दूसरे वन में चला जा रहा था। चक्कर लगाते-लगाते सेना के विश्राम का समय भी हो चला था। राजा उसी सरस तथा सीधे शालवृक्ष के नीचे थक कर बैठा हुआ था॥

अकस्मात्कुतोऽपि

वल्लीवल्कपिनद्धधूसरशिराः स्कन्धे दधद्दण्डकं
ग्रीवालम्बितमृन्मणिः परिकुथत्कौपीनवासाः कृशः।
एकः कोऽपि पटच्चरं चरणयोर्बद्ध्वाऽध्वगः श्रान्तवा-
नायातः क्रमुकत्वचा विरचितां भिक्षापुटीमुद्वहन्॥ ५२॥

वल्लीति॥ कुथितवती सटिते कोपीनवाससी यस्य। 'परिकुथत्' इति पाठे कुथो वर्णकम्बलः। रथ्यानिपतितजरत्पटखण्डैर्निर्मितत्वात्। पटच्चरो जीर्णवस्त्रखण्डम्। क्रमुकत्वचा पूगद्रुमवल्केन॥ ५२॥

तब तक अकस्मात् कहीं से—थका हुआ दुबला पतला एक राही आया। वह लता के बल्कल से अपने पके बालों वाले शिर को बाँधे हुए था। कन्धे पर दण्डा लिया था। गले में मिट्टी की एक गोली लटकाया था। चितकबरे

रंग की लंगोटी पहना था। पैरों में पुराना फटा हुआ चिथड़ा बाँधा था। क्रमुक (कसैली) के वृक्ष की छाल से बना हुआ एक भिक्षा पात्र लिया था ॥

[वल्ली वल्क इसलिये कहा गया कि शिर में बाँधने के लिये लता का वल्कल कुछ अधिक मुलायम होगा। शिर उत्तमाङ्ग है। इसके लिये प्रत्येक श्रेणी के लोग अपने-अपने स्तर के अनुसार और अङ्गों की अपेक्षा उत्तम वस्तुओं का संग्रह करते हैं।]

परिकुथत्—उसके कौपीन से विभिन्न रंग झलक रहे हैं। कौपीन निर्माण के लिये उस दरिद्र पथिक ने गलियों के कई तरह के फटे चिथड़ों का संग्रह किया है। उन कई रंग के चिथड़ों से निर्मित कौपीन स्वभावतः चितकबरा हो जायगा ॥ ५२ ॥]

आगत्य च राजानमवलोक्य सविस्मयमेष चिन्तयांचकार—

'अब्जश्रीसुभगं युगं नयनयोर्मौलिर्महोष्णीषवा-
नूर्णारोमसखं मुखं च शशिनः पूर्णस्य धत्ते श्रियम्।
पद्मं पाणितले गले च सदृशं शङ्खस्य रेखात्रयं
तेजोऽप्यस्य यथा तथा सजलधेः कोऽप्येष भर्ता भुवः ॥५३॥

अब्जेति॥ सजलधेरिति भुवो विशेषणम्। उष्णीषमुत्तमाङ्गे लक्षणविशेषः। तथोर्णा भ्रूमध्ये शुभरोमावर्तः यद्विश्वः—'उष्णीषं तु शिरोवेष्टे किरीटे लक्षणान्तरे'। तथा। 'ऊर्णा मेषादिलोम्नि स्यादन्तरावर्त्तके भ्रुवोः' ॥ ५३ ॥

आकर और राजा को देखकर आश्चर्य में पड़कर यह सोचने लगा—

"इसकी आँखों में कमल सदृश सुन्दरता है। सिर पर बड़ी-सी पगड़ी है। दोनों भौंहों के बीच ऊर्णा की रेखा है। पूर्ण चन्द्र की शोभा इसका मुख धारण कर रहा है। हाथ में कमल का चिह्न है। गले में शंख की तरह तीन रेखायें हैं। शरीर से कुछ ऐसा तेज भी विच्छुरित हो रहा है जिससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह कोई समुद्रान्त पृथ्वी का भरण-पोषण करने वाला राजा है ॥

[दोनों भौहों के बीच में उगे हुए बालों को ऊर्णा कहते हैं। इस श्लोक में राजा के रूप जैसे चित्रित किया गया है और जिन चिन्हों का संकेत किया गया है ये अपरिचयावस्था में भी राजा के चक्रवर्त्तित्व को सूचित करते हैं ॥ ५३ ॥]

तदेवंविधाः खलु महनीया महानुभावा भवन्ति' इत्येवमवधार्य समुपसृत्य 'स्वस्ति स्वकान्तिनिर्जितमकरध्वजाय तुभ्यम्' इत्यवादीत्॥

इस तरह के लोग बड़े पूज्य और प्रभावशाली होते हैं।" ऐसा सोचकर कुछ आगे बढ़कर बोला—'अपनी कान्ति से कामदेव को भी जीत लेने वाले आपका कल्याण है।"

राजापि सविस्मयमना मनागुन्नमितमस्तकः स्वागतप्रश्नेनाभिनन्द्य 'तीर्थयात्रिक, कुतः प्रष्टव्योऽसि। क्व च कियद्वाद्यापि गन्तव्यम्। उपविश। विश्रम्य कथय काञ्चिदपूर्वां किंवदन्तीम्। अनेकदेशद्रष्टारः किलाश्चर्यदर्शिनो भवन्तीति। न चाकस्मिकं दर्शनमपूर्वः परिचयः स्वल्पा प्रीतिरित्येकमप्याशङ्कनीयम्। अपूर्वदर्शनेऽपि न जात्या मणयः स्वच्छतामपह्नुवते। तदेहि। मुहूर्तमेकत्र गोष्ठीसुखमनुभवावः' इत्येनमवादीत्॥

राजापीति॥ किम्वदन्तीं वार्ताम्। जात्या मणयो विशिष्टजातीयरत्नानि॥

राजा भी आश्चर्यपूर्वक मस्तक थोड़ा ऊपर उठा कर स्वागत प्रश्न के साथ अभिनन्दन कर कहा—"तीर्थयात्री, कहाँ से आ रहे हो? कहाँ और कितनी दूर जाना है? बैठो, थोड़ा आराम कर कुछ सुन्दर कथानकों को सुनाओ। अनेक देश देखने वाले लोग आश्चर्यजनक बहुत-सी चीजों को देखे रहते हैं। अचानक भेंट होने के कारण या नवीन परिचय के कारण आप से स्वल्प प्रेम हो, इस तरह की एक भी बात की आशङ्का नहीं कीजिये। अपूर्व (प्रथम बार भी) रत्नों को देखने पर वे अपनी सुन्दर कान्ति छिपाते नहीं। अतः आओ थोड़ी देर तक बैठकर गोष्ठी-सुख का अनुभव करें।"

असावपि 'अपूर्वकौतुककथाकर्णनरसिक, श्रूयतां यद्येवनम्' इत्यभिधाय सुखोपविष्टस्यास्य समीपे स्वयमुपविश्य कथयितुमारभत॥

'ओ अद्‌भुत कौतुकपूर्ण आख्यानों को सुनने में रसिक! सुनो—यदि ऐसा है तो, यह कह कर सुखपूर्वक बैठे हुए राजा के समीप बैठकर कहना शुरू किया॥

'अस्ति स्वर्गसमः समस्तजगतां सेव्यत्वसंख्याग्रणी-
र्देशो दक्षिणदिङ्मुखस्य तिलकः स्त्रीपुंसरत्नाकरः।
यस्मिंस्त्यागमहोत्सवव्यसनिभिर्धन्यैरशून्या जनैः
रुद्देशाः स्पृहणीयभावभरिताः कं नोत्सुकं कुर्वते॥ ५४॥

अस्तीति॥ स्त्री च पुमांश्च स्त्रीपुंसौ। 'अचतुर—' इत्यादिना निपात्यते॥ ५४॥

सम्पूर्ण संसार में अपनी दर्शनीयता के लिये ख्याति प्राप्त स्थानों में मुख्य, दक्षिण दिशा रूपी नायिका का मुखतिलक, स्त्री एवं पुरुषरत्नों का सागर, त्याग रूप उत्सवों के अभ्यासी पुण्यवान् लोगों के भरे हुए और आकाङ्क्षित भावों से सम्पन्न स्वर्ग सदृश वे स्थान किसे नहीं उत्कण्ठित बना देते।

सम्पूर्ण संसार में अपनी दर्शनीयता के लिये ख्याति प्राप्त स्थानों में अग्रणी, दक्षिण दिशा रूप नायिका का मुख-तिलक, स्त्री एवं पुरुष-रत्नों का सागर, स्वर्ग की समानता करने वाला (विदर्भ देश) है जहाँ के (दिव्य-दिव्य) स्थान आकांक्षित भावों से सम्पन्न हैं, और ऐसे-ऐसे पुण्यवान् लोग हैं जो त्याग को ही महान् उत्सव मानते हैं तथा दान के ही अभ्यासी हैं अतः वे स्थान किसको उत्कण्ठित नहीं कर देते ॥ ५४ ॥

कथं चासौ न प्रशस्यते—

यत्र त्रिपुरपुरन्ध्रिरोध्रतिलकहारिणा हरिविरञ्चिचूडामणिमरीचिचक्रचकोरचुम्बितचरणनखचन्द्ररुचिनिचयेन भगवता सेव्यते सेव्यतयाऽपहसितकैलासश्रीः श्रीशैलः शूलपाणिना ॥

यत्रेति ॥ त्रिशूलपाणिना त्रिपुरान्तकेन । तत्रस्थेन हि त्रिपुरासुरो हतः ॥

क्यों न यह प्रशस्त माना जाय—

जहाँ अपनी रमणीयता के कारण कैलास पर्वत की भी शोभा को समाप्त कर देने वाला श्रीशैल नामक पर्वत त्रिपुरासुर की रमणियों के सिन्दूर तिलक को समाप्त कर देने वाले शूलधारी भगवान् शंकर द्वारा अलङ्कृत हैं, जिनके चरण-नख-चन्द्र की कान्ति पुञ्ज को विष्णु तथा ब्रह्मा के मुकुट-रत्नों के कान्ति पुञ्ज रूप चकोर चूमते रहते हैं ॥

[भगवान् शंकर ने त्रिपुरासुर का वध किया था अतः उसकी विधवा पत्नियों ने रोध्रतिलक (लाल तिलक) लगाना छोड़ दिया । विष्णु और ब्रह्मा दोनों ही भक्तिपूर्वक शंकर जी को प्रणाम करते हैं । प्रणाम के अवसर पर उनके मुकुट मणियों की कान्ति चन्द्र सदृश भगवान् शंकर के चरणनखों को उसी तरह चूमती हैं जैसे चकोर चन्द्रमा की किरणों को चूमते हैं । श्रीशैल कैलास पर्वत से भी अधिक रमणीय है; इसीलिये तो भगवान् शंकर वहाँ निवास करते हैं] ॥

यत्र च विकचविविधवनविहारसुरभिसमीरणान्दोलितकदलीदलव्यजनवीज्यमाननिधुवनविनोदखेदविद्रावणनिद्रालुद्रविडमिथुनसनाथपरिसराः सरसघननिचुलतलचलच्चकोरचक्रवाककुलकपिञ्जलमयूरहारिण्यो नाकलोककमनीयतां कलयन्ति कलमकेदारसाराः सरससहकारकारस्कराः कावेरीतीरभूमयः ॥

जहाँ खिले हुए विभिन्न वनों में घूमती हुई हवा से हिलते हुए केले के पत्ररूप पंखों द्वारा हवा किये जा रहे निधुवन (मैथुन) विनोद की थकावट को निद्रावरण (समाप्त) करने के लिये नींद में पड़े हुए द्रविड-दम्पतियों द्वारा अलंकृत

सरस एवं घने वेत के वृक्षों के नीचे घूमते हुए चकोर, चक्रवाक, कपिञ्जल (चातक) तथा मयूरों के कारण मनोहर, स्वर्ग लोक की तरह कमनीय (सुन्दर), कलम (धान) के खेतों से महत्त्वपूर्ण, सरस आम तथा कारस्कर नामक वृक्षों से सम्पन्न कावेरी तट है।

किं बहुना—

अस्तु स्वस्ति समस्तरत्ननिधये श्रीदक्षिणस्यै दिशे
स्वर्गस्पर्धिसमृद्धये हृदयहृद्गोदावरीरोधसे।
यत्र त्रस्तकुरङ्गकार्भकदृशः संभोगलीलाभुवः
सौख्यस्यायतनं भवन्ति रसिकाः कंदर्पशस्त्रं स्त्रियः ॥५५॥

अधिक क्या कहें ?—

समस्त रत्नों के सागर उस दक्षिण दिशा तथा स्वर्ग की सम्पत्ति से स्पर्धा रखने वाले मनोहर गोदावरी तट का मङ्गल हो जहाँ डरे हुए मृग शिशुओं के नेत्र सदृश नेत्र वाली संभोग लीला की उत्पत्ति भूमि रसिक स्त्रियाँ विविध ऐश्वर्यों के आगार तथा काम बाण हुआ करती हैं ॥ ५५ ॥

तत्र प्रणतसुरासुरशिरःशोणमरीचिचयबहलकुङ्कुमानुलेपपल्लवित-पादारविन्दद्वयस्य क्रौञ्चभिदो भगवतः सुगन्धिगन्धमादनाधिवासिनः स्कन्ददेवस्य दर्शनार्थमितो गतवानस्मि ॥

मैं वहाँ इधर से सुगन्धित गन्धमादन पर्वत के निवासी भगवान् कार्तिकेय के दर्शन के लिये गया था जिनके चरण-कमलों पर घने कुङ्कुम लेप का कार्य प्रणाम करते समय देवताओं और दानवों के मस्तकों की लाल किरणों का पुञ्ज ही पूरा कर देता है, और जिन्होंने क्रौञ्च (जैसे) पर्वत का भेदन किया है।

तस्माच्च निवर्तमानेन क्वचिदेकस्मिन्नध्वरोधिनी न्यग्रोधपादपतले दीर्घाध्वश्रान्तेन विश्राम्यता मया श्रूयतां यदाश्चर्यमालोकितम् ॥

वहाँ से लौटते समय लम्बा रास्ता तय करने से थक जाने के कारण मार्ग में पूर्ण रूप से फैले हुए एक वरगद के पेड़ के नीचे आराम करते समय मैंने जिस एक आश्चर्य को देखा है उसे सुनिये ॥

अतिललितपदविन्याससारसाधुसिन्धुरवधूस्कन्धमभिरूढा, प्रौढ-सखीसहायप्राया, प्रान्तपतच्चामरमरुन्नर्तितालकवल्लरी, कर्णकुव-लयालंकारधारिणी, रुचिररुचिमञ्जरणनुपूरा, पुरः सरसराग-गान्धर्विककण्ठकन्दरविनिःसरत्सरसगीतप्रेङ्खोलनप्रयोगेषु दत्तावधाना, नेत्रे मनागमीलयन्ती, भ्रियमाणमायूरातपत्रमण्डला, मण्डलितमदन-

चापचक्रवक्रभ्रूः भूपालपुत्रिका कापि क्वापि कुतोऽप्युच्चलिता तदेव न्यग्रोधपादपच्छायामण्डपमशिश्रियत् ॥

उसी वट वृक्ष छाया-मण्डप के नीचे कोई अत्यन्त सुन्दरी राजपुत्री कहीं से किसी स्थान के लिये चल कर आयी हुई थी। वह अपने अत्यन्त सुन्दर पद-विन्यास की सुन्दरता से साधु (पूर्णता प्राप्त) सिन्धुरवधू (हथिनी) की भी गति को मात कर रही थी। प्रौढ़ (सयानी) सखियां उसकी सहायक थीं। प्रान्त (बगल) में डोलते हुए सुन्दर चँवर की हवा से उसकी अलकवल्लरी (केशलता) नाच रही थीं। कानों में कमल का भूषण पहनी थी। रुचिर (सुन्दर) तथा रुचिमत् (कान्तिमान्) उसके चरणों के नूपुर थे। सरस राग (मधुरस्वर) से गाने वाले गन्धर्वों की कण्ठ-कन्दरा से निकलने वाली सङ्गीतलहरी के प्रयोग में दत्तचित्त थी। आँखों को कुछ मुकुलित की हुई थी। हाथ में एक मयूर पङ्ख का छत्र था। भौहें टेढ़ी थी तो, गोल किया (चढ़ाया) हुआ कामदेव का धनुष् ही थीं ॥

तां चालोक्य चिन्तितवानस्मि विस्मितमनाः—

किं लक्ष्मीः स्वयमागता मुररिपोर्देवस्य वक्षःस्थलात्
कोपात्पत्युरुतावतारमकरोद् देवी भवानी भुवि।
श्यामाम्भोजसदृक्षपक्ष्मलचलन्नेत्रामिमां पश्यतो
धातस्तात करोषि किं न वदने चक्षुःसहस्रं मम ॥ ५६ ॥

उसे देखकर आश्चर्यपूर्वक मैं सोचने लगा—

भगवान् मुरारि के वक्षःस्थल से स्वयं लक्ष्मी ही आ गयीं क्या? पति से क्रुद्ध होकर साक्षात् पार्वती ही पृथ्वी पर आ गयीं क्या? हे ब्रह्मन्! श्याम-कमल सदृश पलकों से युक्त चञ्चल नेत्रों वाली इस सुन्दरी को देखते समय मेरी आँखें हजार क्यों नहीं बना देते। जिससे मैं इसे अच्छी तरह देख सकूँ॥५६॥

अपि च—

इन्दोः सौन्दर्यमास्यं कलयति कमलस्पर्धिनी नेत्रपत्रे
कालिन्द्याः कुन्तलाली तुलयति विभवं भव्यभङ्गैस्तरङ्गैः।
यस्याः किं श्लाघ्यतेऽन्यत्सुभगगुणनिधेः काप्यपूर्वैव यस्याः
पुष्पेषोर्वैजयन्ती जयति युवजनोन्मादिनी यौवनश्रीः॥ ५७॥

और मुख चन्द्रमा के सौन्दर्य को प्रस्तुत करता है। आखें कमल से स्पर्धा करती हैं। वाल कालिन्दी (यमुना) से सन्तुलित होते हैं। सौभाग्य गुणों के सागर उस नायिका की नवीन यौवन-लक्ष्मी का क्या वर्णन करूँ जो युवकों के

हृदय को उन्मत्त कर देने वाली पुष्पवाण (कामदेव) की वैजयन्ती (पताका) है ॥ ५७ ॥

अपि च—

आकारः स मनोहरः स महिमा तद्वैभवं तद्वयः
सा कान्तिः स च विश्वविस्मयकरः सौभाग्यभाग्योदयः ।
एकैकस्य विशेषवर्णनविधौ तस्याः स एव क्षमो
यस्यास्मिन्नुरगप्रभोरिव भवेज्जिह्वासहस्रद्वयम् ॥ ५८ ॥

आकार इति ॥ उरगप्रभोर्वासुकेर्यथा जिह्वासहस्रद्वयं वर्तते तथा यस्यैतावत्यो जिह्वा भवेयुः स एव वर्णयितुं क्षमो भवेत् । यदा 'जिह्वासहस्रं मुखे' इति पाठः । तदा सहस्रशब्दोऽनन्तवहुत्ववचनः ॥ ५८ ॥

और वह मनोहर आकृति, वह दिव्य महिमा, वह ऐश्वर्य, वह अवस्था, वह कान्ति और वह विश्व को आश्चर्य में डाल देने वाला भव्य भाग्योदय, इनमें से एक-एक के वर्णन में वही समर्थ होगा जिसे उरगप्रभु (सर्पराज शेषनाग) की तरह दो हजार जिह्वायें प्राप्त रहेंगी ॥ ५८ ॥

सापि यथा त्वमिदानीं मामिह पृच्छसि तथार्धपथमिलितं कंचिदुदीचीनीनमध्वगं दक्षिणस्यां दिशि प्रस्थितमादरेण पृच्छन्ती मुहूर्तमिव तत्रैव विश्रमितुमारभत ॥

जैसे आप मुझसे पूछ रहे हैं, उसी तरह आधे रास्ते में मिले हुए दक्षिण दिशा के लिये प्रस्थित किसी उत्तर दिशा के पथिक से आदर के साथ कुछ पूछती हुई वहीं पर एक क्षण के लिये विश्राम कर रही थी ॥

श्रुतश्चायं मयापि तेन तस्याः पुरः कस्यचिदुदीच्यनरपतेः श्लाघ्यमानकथावशेषालापः ॥

मैं भी उनके द्वारा किसी उत्तर देश के प्रशस्त गुण वाले राजा की कथा का अवशेष सुना ।

तस्मिन्स्मितमुखे यूनि यूपदीर्घभुजद्वये ।
ते धन्या न्यपतन्येषां कंदर्पसदृशे दृशः ॥ ५९ ॥

वे आंखें धन्य हैं जो उस कामदेव सदृश मुस्कुराते हुए मुख वाले तथा यूप (यज्ञस्तम्भ) सदृश लम्बी भुजाओं वाले युवक को देखी हों ॥ ५९ ॥

किं बहुना—

सा त्वं मन्मथमञ्जरी स च युवा भृङ्गस्तवैवोचितः
श्लाघ्यं तद्भवतोः किमन्यदपरं किं त्वेतदाशास्महे ।

भाग्यैर्योग्यसमागमेन युवयोर्मानुष्यमाणिक्ययोः
श्रेयानस्तु विधेर्विचित्ररचनासंकल्पशिल्पश्रमः ॥ ६० ॥

सा त्वमिति ॥ अत्राप्रत्यक्षमपि बुद्धिकल्पितं प्रत्यक्षमिव मन्यमानो भवतो-रित्याह। भवती च भवांश्च भवन्तौ। 'पुमान्स्त्रिया' इत्येकशेषः ॥ मानुषत्वे भूषण-भूतत्वात्तयोर्माणिक्यत्वम् ॥ ६० ॥

अधिक क्या ?

तुम कामदेव की मञ्जरी हो, वह युवक (मञ्जरी के पराग को आस्वादित करने वाला भ्रमर है) तुम्हारे ही लिये उपयुक्त है। तुम दोनों के विषय में और दूसरी आशंसा क्या करें केवल यही आशा (कामना) करता हूँ कि दैवात् तुम दो मानव रत्नों के औचित्यपूर्ण मिलन से ब्रह्मा की अपूर्व निर्माण-विषयक प्रतिज्ञा तथा उसके अनुकूल कला प्रदर्शन के लिये किया हुआ श्रम सफल हो जाय ॥ ६० ॥

तन्न जाने स कः सुकृती तेन तस्याः श्रवणादेवोल्लसद्बहुल-पुलकाङ्कुरोत्तम्भितांशुकायाः पुरो विस्तरेणैवं वर्णितः ॥

'मालूम नहीं वह कौन पुण्यात्मा है जिसके विषय में सुनने मात्र से उस (राजपुत्री) को इतना अधिक रोमाञ्च हो गया कि (रोमों के खड़े होने के कारण) उसका वस्त्र उठ गया। (उसकी उत्कण्ठा के कारण ही) उसने इस तरह विस्तारपूर्वक वर्णन किया।

न च मयापि विस्मयविस्मृतविवेकेन केयं कस्येयं कुत्र कुतो वा प्रस्थितेति प्रश्नाग्रहः कृतः। केवलमदृष्टपूर्वरूपोत्पन्नाकस्मिककौतुका-तिरेकास्तमितसमस्तान्यव्यापारेणैकाग्रतया ग्रहनिरुद्धेनेवान्धेनेव मूके-नेव मूर्छितेनेव विषविघूर्णितेनेव स्तोभस्तम्भितेनेव गतायामपि तस्यां तेनाध्वनीनेन सह तत्रैव न्यग्रोधतरुतले सुचिरमासितमासीत् ॥

नेति ॥ स्तोभश्चेष्टाविघातः ॥

आश्चर्य के मारे मेरी भी चेतना नष्ट हो गयी। अतः मैंने भी पूछने का आग्रह नहीं किया कि वह कौन थी ? किसकी (लड़की) थी ? कहाँ और कहाँ से आयी थी ? इसके पहले मैंने कोई ऐसा रूप नहीं देखा था। अतः आकस्मिक उत्कण्ठा की अधिकता से समस्त बाह्य व्यापारों के शान्त हो जाने के कारण एकाग्रचित्त होकर किसी ग्रह द्वारा पकड़े गये की तरह, अन्धे की तरह, मूक की तरह, मूर्छित की तरह, विषयोन्मत्त की तरह, व्यर्थ श्रम होने पर किंकर्तव्य विमूढ की तरह होकर उस पथिक के साथ वहीं उसी वटवृक्ष के नीचे बहुत देर तक बैठा रह गया।

तदायुष्मन्नेष कथितः स्ववृत्तान्तः ॥

तस्यां दिशि तया सकलजगज्ज्योत्स्नया, अस्मिन्नपि देशे निःशेष-जननयनकुमुदेन्दुना त्वया दृष्टेन, दृष्टं यद्द्रष्टव्यम् । अभूच्च मे श्लाघ्यं जन्म । जाते कृतार्थे चक्षुषी । सम्पन्नः सफलः परिभ्रमणप्रयासः ॥

आयुष्मन् ! मैंने अपना वृत्तान्त कह दिया ।

उस दिशा में सम्पूर्ण संसार की किरण उस (राजपुत्री) को तथा इस दिशा में समस्त मनुष्यों के नेत्र कुमुद के लिये चन्द्रस्वरूप आपको देख लेने पर, मैंने सब कुछ देख लिया जो देखना था । मेरा जन्म सफल हो गया । आँखें कृतार्थ हो गयीं, देशाटन का प्रयत्न आज सफल हो गया ।

'तदिदानीं किमन्यत् ॥ अनुमन्यस्व स्वविषयगमनाय माम्' इत्यभिधाय व्यरंसीत् ॥ राजाप्येतदाकर्ण्य चिन्तितवान् ॥

'अब इस समय और क्या कहूँ । आज्ञा दीजिये अपने विषय (देश) जाने के लिये ।' इतना कह कर चुप हो गया ॥ राजा भी यह सब सुनकर सोचने लगा ।

स्त्रीमाणिक्यमहाकरः स विषयः पान्थोऽप्ययं तथ्यवाग्
व्यापारोऽपि विधेर्विचित्ररचनस्तत्किं न सम्भाव्यते ।
किं त्वाश्चर्यमदृष्टरूपविभवोऽप्याकर्ण्यमाना सती
कान्तेत्युन्नतचेतसोऽपि कुरुते नाम्नैव निम्नं मनः ॥ ६१ ॥

स्त्रीति ॥ निम्नमभिलाषदीनत्वाल्लाघवास्पदम् ॥ ६१ ॥(

वह देश स्त्री-रत्नों का बड़ा विशाल खजाना है । यह पथिक भी यथार्थ वक्ता है, क्योंकि ब्रह्मा का व्यापार (कार्य) बहुत-सी आश्चर्यपूर्ण कृतियों को प्रस्तुत करता है । अतः क्या सम्भव नहीं है । आश्चर्य यही है कि उस सुन्दरी की रूप-सम्पत्ति मैंने नहीं देखी, केवल सुनी जा रही है; किन्तु उसके नाम से ही मेरा उच्च मनोबल गिरता-सा जा रहा है ॥ ६१ ॥

तथाहि—

नो नेत्राञ्जलिना निपीतमसकृत्तस्याः स्वरूपामृतं
नो नामान्वयपल्लवोऽपि च मया कर्णावतंसीकृतः ।
चित्रं चुम्बति चुम्बकाश्मकमयो यद्वद्बलाद् दूरत-
स्तद्वत्तर्जितधैर्यमेतदपि मे तस्यां मनो धावति ॥ ६२ ॥

नो नेत्रेति ॥ यद्वद्यथा चुम्बकसंज्ञमश्मकम् । पाषाणं कर्म ॥ अयो लोहं कर्तृ ॥ चुम्बति । तथा मेऽपि मनस्तस्यां धावति ॥ ६२ ॥

क्योंकि—

मैं अपनी नेत्राञ्जलि से उसके रूपामृत का बार-बार पान नहीं किया। उसके नाम पल्लव को अपने कानों का भूषण नहीं बनाया। फिर भी चुम्बक जैसे चुम्बक वाले पदार्थ से चिपक जाता है, ठीक उसी तरह मेरा भी धैर्य तोड़ कर हठात् उसी की ओर दौड़ रहा है ॥ ६२ ॥

सोऽयं दुर्लभेष्वनुरागः पुंसाम्, अज्वरमस्वास्थ्यम्, अदौर्गत्यं दौःस्थ्यम्, अविषास्वादनमाघूर्णनम्, असाध्वसं कम्पनम्, अनात्मविक्रयं पारवश्यम्, अजरं जाड्यम्, अनिन्धनं ज्वलनम्, अलग्नग्रहमुन्मादनम्, अवात्याघातमुद्भ्रमणम्, अमौनं मौक्यम्, अहीनश्रुतिबाधिर्यम्, अनष्टदृष्टिकमन्धत्वम्, अस्खलितमनोरथं मनःस्तम्भनम्, अमन्त्र आवेशः ॥

सोऽयमिति ॥ आवेशो व्यन्तरादेर्मनसि प्रवेशः ॥

अप्राप्य वस्तु में ही पुरुषों का अनुराग हुआ करता है। मुझे यह विना ज्वर की अस्वस्थता है। विना दुर्गति की अस्थिरता है। विष भोजन के विना ही मूर्च्छा है। विना डर का कम्पन है। आत्मसमर्पण किये विना ही परवशता है। विना बुढ़ापा आये ही जड़ता है। लकड़ी के विना ही ज्वाला है। प्रतिकूल ग्रह के बिना ही पागलपन है। विना मौन रहें ही गूँगापन है। पक्षाघात या वायु विकार के विना ही छटपटाहट है। कानों के रहेते ही बहरापन आ गया है। आँखों के विना नष्ट हुए ही अन्धता आ गयी है। मनोरथ के नष्ट होने पर भी मानसिक स्तब्धता आ गयी है। विना मन्त्र का ही आवेश हो गया है ॥

[मन्त्र से लोग देव या भूत का आवाहन अपने शरीर पर करते हैं। ऐसा करने पर लोगों की मनोदशा वदल जाती है। विवेश-शक्ति नष्ट हो जाती है ॥

सर्वथा नमः सुस्थितजनदुर्जनाय मनोजन्मने, यस्यायमेवंविधो व्यापारः, इत्यवधारयन्नवतार्य सर्वाङ्गेभ्यो भूषणानि तस्मै सदयमदात् ।

सर्वथा नमस्कार है, सज्जन को भी दुर्जन बना डालने वाले उस मनजन्मा कामदेव को जिनका ऐसा व्यवसाय है, इस तरह सोचता हुआ अपने सभी अङ्गों से भूषणों को उतार कर उसे दे दिया ॥

तैस्तैरालापैः स्थित्वा च कञ्चित्समयमिममथ यथाप्रस्थितं पान्थं कथमपि प्रेषयामास ॥

उन उन प्रासङ्गिक बातों से कुछ समय बिता कर किसी किसी तरह उस पथिक को उसके ईप्सित स्थान की ओर भेजा ॥

स्वयमपि तत्कालान्तरालमिलितैर्नक्षत्रैरिव सार्द्रमृगशिरोहस्तैः सश्रवणचित्रकृत्तिकोपस्करवाहिभिः पापर्द्धिकपरिजनैरनुगम्यमानो राजा निजावासमयासीत् ॥

स्वयमपीति ॥ राजा निजहर्म्यमगात् । तत्कालं तत्क्षणात् । अन्तरालेऽध्वमध्ये । राजा चन्द्रोऽपि । तदा तस्मिञ्ज्योतिःप्रसिद्धे काले कलासमूहे अष्टशतीलक्षणे यदन्तरालं तत्र । मिलितैः परिजनैरनुगम्यमानः । कीदृशैः । सार्द्राणि सास्रत्वाच्च्योतन्ति हरिणशिरांसि येषु तथाविधा हस्ता येषां तैः सश्रवणां सकर्णाम् । चित्रस्य चित्रकायस्य कृत्तिकां त्वचम् । उपस्करं मृगयोपयोगि वहन्ति तैः । आर्द्रशब्दो भाववचनः । पक्षे सह आर्द्रया नक्षत्रेण, सार्धं मृगशिरो हस्तश्च नक्षत्रं येषु श्रवणचित्रे नक्षत्रे । अनयोः समाहारद्वन्द्वः । तेन सह । ताश्च ताः कृत्तिकाश्च तासामुपस्करं समवायं वहन्ति ॥

राजा स्वयं भी उसी समय रास्ते के मध्य में मिले हुए नक्षत्र-सदृश अपने व्याध परिजनों के साथ राज-भवन चला आया । वे (परिजन) हाथ में (खून से) आर्द्र मृग का शिर और कानयुक्त चितकबरा चमड़ा आदि शिकार के अनुकूल सामग्री लिये हुए थे ॥

[यहाँ का विशेष्य राजा है । राजा का अर्थ चन्द्रमा भी होता है । चन्द्रपक्ष में भी विशेषणों का उपयोग किया जा सकता है । चन्द्रानुगामी जैसे नक्षत्र होते हैं वैसे ही व्याध राजा के अनुगामी थे । नक्षत्र-मण्डल जैसे सार्द्रमृगशिरो-हस्त (आर्द्रा, मृगशिरा तथा हस्त-युक्त) है एवं सश्रवण-चित्र कृत्तिकोपस्कर (श्रवण, चित्रा एवं कृतिका के समुदाय से युक्त) है वैसे व्याध परिजन भी आर्द्र-मृगशिरोहस्त (खून टपकते रहने के कारण मृग का आर्द्र शिर लिये हुए हैं) और सश्रवणचित्रकृत्तिकोपस्करवाही (कानों से युक्त विचित्र रंग वाले चमड़े आदि उपस्कर (सामग्री) को ढो रहे) हैं । शाब्दी समानता के आधार पर यह चित्र प्रस्तुत किया गया है ॥

ततः प्रभृति च—

हृद्योद्यानमरुत्तरङ्गितसरित्तीरे तरूणामध-
स्तल्पेऽनल्पसरोजिनीनवदलप्रायेऽपि खिन्नात्मनः ।
धीरस्यापि मनाङ्मनस्तृणकुटीकोणान्तराले बला-
ल्लग्नोऽस्येति विभाव्यते परवशैरङ्गैरनङ्गानलः ॥ ६३ ॥

हृद्येति ॥ हृदयस्य बन्धनं हृद्यम् ॥ ६३ ॥

उसी समय से—

मनोहर उपवन की हवा से लहराती हुई नदी के तीर पर पेड़ों के नीचे पर्याप्त कमलिनी-दलों से निर्मित शय्या पर भी उदास रहनेवाले उस धीर (राजा नल) के परवश अङ्गों से यह अनुमान लग जाता था कि उसकी मानस-पर्णकुटी के किसी कोने के एक भाग में बलात्कार थोड़ी कामाग्नि लग ही गयी थी ॥ ६३ ॥

एवमस्य—

पुनरपि तदभिज्ञान्पृच्छतः पान्थसार्थान्
प्रतिपथमथ यूनो यान्ति तस्य क्रमेण ।
हरचरणसरोजद्वन्द्वमुद्राङ्कमौले-
र्मदनमदनिवासा वासराः प्रावृषेण्याः ॥ ६४ ॥

इति श्रीत्रिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचण-सरोजाङ्कायां प्रथम उच्छ्वासः समाप्तः

—०-०-०—

तमसो यत्र विनाशः पथिकोच्छ्वासः पदार्थनिर्भासः ।
उदयं प्रतिपद्यासौ भुवनमुदे जयति चण्डरुचिः ॥
इति विषमपदप्रकाशमेतं दमयन्त्यास्तनुते स्म चण्डपालः ।
शिशुमतिलतिकाविकासचैत्रं चतुरमतिस्फुटभित्तिचारुचित्रम् ॥
इति चण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे प्रथम उच्छ्वासः समाप्तः ॥

—>o<—

इस तरह—

भगवान् शंकर के चरणकमल-द्वय के चिह्न से चिह्नित ललाटवाले उस युवक के वर्षाकालीन दिन जो काम-मद के निवास माने जाते हैं, प्रत्येक मार्ग में दमयन्ती-वृत्तान्त जाननेवाले पथिकों से पूछते ही पूछते व्यतीत होते थे ॥ ६४ ॥

[इतना भाव-मग्न हो गया था कि पथिकों से भी दमयन्ती के ही विषय में कुछ जानना चाहता था] ।

प्रथम उच्छ्वास समाप्त ।

द्वितीय उच्छ्वासः

अथ कदाचिदवगलद्वहलपरिमलमिलदलिकुलाकुलितकुटजकदम्ब-कुसुमकर्णपूरशून्यकाननासु, विश्राम्यन्मदमुखरमयूररसनावलीकल-क्वणितासु, विरलतरतडिल्लताललितलावण्यासु, विगतहंसद्विजराजिषु, पतत्पयोधरासु, क्षीणशुक्रासु, वृद्धास्विव गतप्रायासु वर्षासु, रतिम-कुर्वाणो मदकलकलहंसहासहारिण्यामुत्सुकस्तरुण्यामिवागतायां, शरदि, द्विरदमदगन्धसम्बन्धानुधाविते कुसुमितसप्तच्छदच्छायासु विस्फूर्जति रोषोद्घुषितकेसरकरालकण्ठे कण्ठीरवकदम्बके, गृह-दीर्घिकामृणालिकाकाण्डखण्डनविरामरमणीयमुन्नदत्सु शरत्समय-प्रवेशमङ्गलमृदङ्गेष्विव हंसमण्डलेषु, स्मरशरनिकरनिर्मथितपान्थ-सार्थप्रहाररुधिरनिष्यन्दबिन्दुसंदोह इव वनस्थलीषून्मिषति बन्धुर-बन्धूककुसुमप्रकरे, प्रसरन्तीषु शरल्लक्ष्मीप्रवेशानन्दवन्दनमालासु निः-शङ्कशुककुलावलीषु, श्रूयमाणासु स्मरराजराज्यविजयघोषणासु पक्व-कलमगन्धशालिपालिकाबालिकाहर्षगीतिषु, शरच्छ्रीकटाक्षेषून्मीलत्सु नीलनीरजेषु, क्वणति वर्षावधूप्रस्थानपटहे षट्चरणचक्रवाले, प्रभात इव घनतिमिरविरामरमणीये जाते जलनिधिशयनशायिशार्ङ्गिनिद्राद्रुहि विनिद्रसान्द्रसरससरोजराजिराजितसरसि शरत्समये, स महीपतिः समासन्नवनविहारिकिंनरमिथुनेन गीयमानमिदमनश्लीलं श्लोकत्रयम-शृणोत् ॥

अथेति ॥ अनन्तरमितीति सति स राजा निकटकानने विचरन्किंनरमिथुनेन गी-यमानं रागविशेषेणोच्चार्यमाणमिदमिति वक्ष्यमाणमनश्लीलमग्राम्यं श्लोकत्रितय-माकर्णितवान् । किंविशिष्टः । कलहंसा एव हासस्तेन रम्यायां तरुण्यामभिनवप्र-वृत्तायाम् । अथ च शरदेव तरुणी युवतिः । तस्यामागतायां रागास्स्वयं प्राप्तायाम् । उत्सुक उत्क इत्युक्त्यन्तरम् । तदा मदेन क्षीबतया तरुणिमोद्रेकेण वा कलकलो यस्याः । तया शुभ्रत्वाद्धंसोपमौ हासहारौ स्तोऽस्यामिति कर्मधारयान्मत्वर्थीयः । न कर्मधारयादिति तु प्रायिकम् । किं विदधानः कुर्वाणः । काम् । रतिं चित्ता-सक्तिम् । कासु । वर्षासु । किंभूतासु । गतप्रायासु स्वल्पशेषासु । तथा कुसुमान्येव कर्णपूरा उत्तंसास्तैः शून्यानि काननानि वनानि यासु । तया मदेन मुखराणां मयूराणां या रसनावली जिह्वाश्रेणिस्तस्याः कलक्वणितम् । तद्विश्राम्यद्वि-रमद्यासु । वर्षोदये हि केकायन्ते न प्रान्ते । मदाभावात् । तथा स्तोकविद्युद्द्यो-तासु । व्यपेतहंसपक्षिपङ्क्तिषु अश्यद्धनासु । क्षीणशुक्राख्यग्रहासु । कास्विव । वृद्धा-

स्विव । तदा । रतिः संभोगः । गतं प्रकृष्टमयमिष्टफलं दैवं यासाम् । तथा कुसुमैः पुष्पदामभिः कर्णपूरैश्च शून्यं कं शिर आननं च यासाम् । तथा रसनायाः काञ्च्याः क्वणितस्य मुखरमयूररवो ललितस्य मधुराङ्गविन्यासस्य लावण्यस्य च लोचन-लेह्यकमनीयगुणस्य विरलतडिदुपयानम् । तथा व्यपेतहंसशुभ्रदन्तराजिषु पतत्कुचासु । तथा क्षीणं गर्भसंभवाभावाद्विनष्टं शुक्रं पुंवीर्यं यासु । न पुनर्निवृत्तवार्यास्विति व्याख्येयम् । पुंसां वीर्यं स्त्रीणां रज इति प्रसिद्धेः । अतएव न विद्यते बलं वीर्यं यासामित्यबलाः । रसनाशब्दः काञ्चीपक्षे न परं तालव्यः । दन्त्योऽप्यस्ति । तथा च विश्वप्रकाशः—'रसना काञ्चिजिह्वयोः' इति । द्विरदमदगन्धस्य सम्बन्धो द्विरदमदगन्धोऽयमिति प्रत्यभिज्ञा तयानुधाविते । सन्धानपाठे तु सन्धानं सन्धि-मैत्री सादृश्यमिति यावत् । शरदि सप्तच्छदाः पुष्प्यन्ति । ते च-मदगन्धयस्ततो गजभ्रान्त्या सरोषं विस्फूर्जति सिंहवृन्दे । मृणालिकाकाण्डस्य खण्डनाय योऽसौ विरामोऽर्थात्स्वादस्येव । तेन रम्यं यथा भवति स्थित्वा स्थित्वा मृणालं चर्वन्ति तत्कषाय-संशुद्धकण्ठाश्च नादं कुर्वन्तीत्यर्थः । हंसमण्डलानि शरत्प्रवेशमङ्गलमृदङ्गाः । बन्धूककुसुमस्यातिलौहित्याद्विरहिजनरुधिरत्वम् । शुकावलिस्तोरणम् । कलमस्य श्वेतशालेः गन्धशालेश्च रक्षिका-गीतयः कंदर्पराजजयघोषणाः । विकसन्नीलोत्पलानि शरल्ल-चमीकटाक्षाः । भृङ्गगणश्च यान्त्या वर्षावध्वाः प्रयाणपणवः । घनो मेघो घनं च सान्द्रम् । शयनस्थानम् । निद्राद्रोहो विनिद्रसान्द्रसरोजराजितसरस्त्वं च शरत्प्रभातयोः समानम् ।

[इसके बाद समीपवर्ती वन में घूमता हुआ राजा किन्नर-मिथुन द्वारा स्पष्टतापूर्वक गाये जा रहे तीन श्लोकों को सुना । उस समय तक वर्षाकाल बीत चला था और शरत् का आविर्भाव प्रारम्भ हो गया था । प्रस्तुत अनुच्छेद में वर्षा को एक वृद्धा वधू के रूप में और शरत् को एक तरुणी के रूप में चित्रित किया गया है ।]

तदनन्तर एक समय राजा का मन वृद्धा-सदृक्ष अतीतप्राय वर्षा-वधू में नहीं लग रहा था; क्योंकि जंगल बरसते हुए गाढ़े पराग पर झूमते हुए भ्रमर-यूथों से व्याप्त कुटज एवं कदम्ब के पुष्परूप उसके कर्णभूषण से शून्य हो गये थे । मद से मुखर (वाचाल) मयूररूप जिह्वा-समूह की मधुर ध्वनि समाप्त हो चली थी । विद्युल्लता से (समृद्ध) होनेवाला मनोहर (सौन्दर्य) घटता जा रहा था । हंस रूप दंत-पंक्ति समाप्त हो गयी थी । पयोधर (मेघस्तन) गिरते जा रहे थे । शुक्र (शुक्रग्रह) क्षीण (अस्त) हो गये थे । (बुढ़ापे के कारण) शुक्र (रज) क्षीण (समाप्त) हो गया था ।

(ऐसे ही अवसर पर) मद से सुन्दर कलहंसरूप-हास के कारण मनोहर (स्वयम्) आयी हुई शरत् तरुणी में उसका मन उत्कण्ठित हो गया । हाथी के मदजल-गन्ध की धारणा से खिले हुए छितौने की छाया में दौड़ते हुए उलटे हुए केसरों (गर्दन के बालों) के कारण भयङ्कर कण्ठ वाले सिंह गरज

रहे थे। शरद्-वधू के आगमन के अवसर पर गृहदीर्घिका (नहरे बहिस्त या Long-canal) के कमलदण्ड को खाकर हंसमण्डल माङ्गलिक मृदङ्ग की तरह मधुर ध्वनि कर रहे थे। वनभूमि में सुन्दर बन्धूक-पुष्पों की पङ्क्ति कामबाण-समूह से मथे गये पथिकवर्ग के क्षतस्थलों (घावों) से निकलते हुए रुधिर बिन्दुसमूह की तरह प्रतीत हो रही थी। शरत्-लक्ष्मी के प्रवेश से उत्पन्न होनेवाले आनन्द के कारण निःशंक तोतों की पंक्ति बन्दनमाला (तोरण) की तरह फैल रही थी। पके हुए सुगन्धित कलम (धान) की देख-रेख करने वाली बालिकाओं की गीति सम्राट् कामदेव की राज्य-विजय की घोषणा की तरह सुनायी पड़ रही थी। शरत्-लक्ष्मी के कटाक्षस्वरूप नील कमल खिल रहे थे। भ्रमरवर्ग वर्षा-वधू के प्रस्थानकालीन नगाड़े की तरह गम्भीर ध्वनि कर रहा था। जैसे प्रातःकाल घन तिमिरविराम (गाढ़े अन्धकार के नष्ट हो जाने) से रमणीय हो जाता है उसी तरह शरद्-समय भी घन-तिमिर-विराम (बादलजन्य अन्धकार के नष्ट हो जाने) से मनोहर हो गया था। समुद्र-स्थल पर सोनेवाले भगवान् विष्णु की निद्रा टूट चुकी थी। खिले हुए घने तथा सरस कमलों की पंक्ति से सरोवर सुशोभित हो रहे थे। (ऐसे समय में) उस (नल) ने समीप के वन में विहार करनेवाले किन्नर-मिथुन द्वारा गाये जाते हुए सभ्य अर्थ वाले तीन श्लोक सुने॥

[कर्णपूरशून्य—कदम्ब और कुटज के फूलों पर जब काले भ्रमर बैठे हों तो उसकी शोभा निश्चित ही अधिक समृद्ध हो जायगी। ऐसे भ्रमरयुक्त कदम्ब और कुटज पुष्प को कवि ने वर्षा-वधू का कर्णभूषण बनाया है। वर्षा काल के बीतने पर कदम्ब के फूल भी समाप्त हो जाते हैं। वृद्धा लोग जैसे अलङ्कारशून्य हो जाती हैं वैसे वर्षा भी अलङ्कार (कर्णभूषण) शून्य हो गयी।

मुखरमयूर—वर्षाकाल में मयूर आनन्दमत्त होकर वाचाल बन जाते हैं। वाचाल मयूर ही वर्षा-वधू की जिह्वा हैं। वृद्धा के मुख से जैसे मधुर ध्वनि नहीं निकलती वैसे वर्षा वधू की मयूर जिह्वा अब मधुर ध्वनि नहीं कर पाती।

विरलतरतडिल्लता—वृद्धा जैसे यौवन के ललित लावण्य से वञ्चित हो जाती है उसी तरह वर्षा का भी सौन्दर्य कम हो गया है क्योंकि उसके स्वरूप को समृद्ध करनेवाली विद्युल्लता अब कभी ही कभी उगती है।

हंसद्विज—वर्षाकाल में हंस मानसरोवर चले जाते हैं। शुभ्रतारूप समानता को दृष्टि में रखकर हंसों को ही वर्षा-वधू का दांत बनाया गया है। वृद्धा के जैसे दांत गिर जाते हैं उसी तरह वर्षा-वधू के हंसरूप दन्त समाप्त हो गये हैं।

पतत्पयोधरा—बुढ़ापे में स्तन लटक जाते हैं। वर्षाकाल के अन्त में पयोधर (मेघ) समाप्त होने लगते हैं।

क्षीणशुक्रा—वर्षाकाल में शुक्र ग्रह अस्त रहते हैं। वृद्धा स्त्री का शुक्र (रज) समाप्त हो जाता है।

मदकलहंस—शरत्-काल में हंस आ जाते हैं। हंसों को ही यहाँ शरत्त-रुणी का हास कहा गया है। रस से स्वयम् उपस्थित तरुणी के प्रति राजा की उत्सुकता स्वाभाविक है। द्विरदमदगन्ध—छितौन के फूल में गजमद की तरह गन्ध होती है। भयङ्कर सिंहों को फूल की गन्ध में गजमद-गन्ध की भ्रान्ति हो जाती है। इसी लिये तो उधर जोरों से दौड़ते हैं। निद्राद्रुहि—शरत् समय में भगवान् विष्णु सोकर जगते हैं॥]

धन्याः शरदि सेवन्ते प्रोल्लसच्चित्रशालिकान्।
प्रासादान् स्त्रीसखाः पौराः केदारांश्च कृषीवलाः॥ १॥

धन्या इति॥ प्रोल्लसन्त्यश्चित्रशालिका आलेख्यभूमिका येषु। पक्षे चित्रा बहुविधाः शालयः। स्त्रीसखा इत्युभयत्र योज्यम्॥ १॥

वे नागरिक धन्य हैं जो प्रोल्लसच्चित्रशालिका (भव्य चित्रों के उपयुक्त भित्तियों) वाली अट्टालिकाओं का उपभोग अपनी स्नेहमयी रमणियों के साथ करते हैं और वे कृषीवल (किसान) भी धन्य हैं जो प्रोल्लसच्चित्र-शालिका (सुन्दर विविध धानों वाले) खेतों का उपभोग करते हैं॥ १॥

[यहाँ प्रोल्लसच्चित्रशालिकान् का प्रासादान् और केदारान् दोनों के साथ अन्वय है॥ १॥]

नमिताः फलभारेण न मिताः शालिमञ्जरीः।
केदारेषु हि पश्यन्तः के दारेषु विनिःस्पृहाः॥ २॥

कुतः स्त्रीसखा इत्याह—नमिता इति॥ हि यस्मात्कारणात्। दारेषु के निःस्पृहाः स्युः। किं कुर्वन्तः। फलभारेण नमिता वक्रिता न मिताः स्तोकाः केदारेषु क्षेत्रेषु शालिमञ्जरीः पश्यन्तः। तद्दर्शनं उद्दीपनविभावः॥ २॥

खेतो में फल भार से नवी हुई अपरिमित धान की बालों को देख कर कौन आदमी स्त्रियों के प्रति अनुत्कण्ठित रह सकते हैं॥ २॥

[फलभार से नमित (नवी हुई) न + मित (अपरिमित) शालि—मञ्जरी (धान के बालों) को केदार (खेतों) में देख कर कौन स्त्रियों में (के + दारेषु) अनुत्कण्ठित रह सकते हैं। स्त्रीवाचक दार शब्द पुँल्लिङ्ग और नित्य बहुवचन है। केदार शब्द खेत का वाचक है। दूसरे केदारेषु में किं शब्द का प्रथमा बहुवचन 'के' है और दार शब्द का सप्तमी बहुवचन 'दारेषु' है॥ २॥]

प्रावृषं शरदं चापि बहुधाकाशहारिणीम् ।
विलोक्य नोत्सुकः कः स्यान्नरो नीरजसङ्गताम् ॥ ३ ॥

प्रावृषमिति ॥ रमणीयत्वात् । बहुधा पुनः पुनर्विलोक्य प्रावृषमाकाशस्य व्योम्नस्तिरोधायिनीं नीरजसं निःपांशुं गतामतिक्रान्तां शरदं च काशपुष्परम्याम् । तथा नीरजैः पद्मैः संगतामन्विताम् ॥ ३ ॥

बहुधाकाशहारिणी (अधिकांश आकाश को) मेघों से (छिपा देने वाली) तथा नीरजसं - गता (धूलिहीन) वर्षा को और बहुधा + काश + हारिणी (अधिकांश-काश पुष्प से सुशोभित होनेवाली) और नीरज + संगता (कमलों से समन्वित) शरत् को देखकर कौन आदमी उत्कण्ठित नहीं हो जाता ।

[शरत् और वर्षा दोनों ही शृङ्गार के उद्दीपक हैं । वर्षा के दिनों में आकाश अधिकांश बादलों से छिपा रहता है और पानी पड़ जाने के कारण रास्तों की धूलि समाप्त हो जाती है । इस पक्ष में 'हारिणी' का उपयोग छिपाने अर्थ में किया जायगा और शरत्-पक्ष में 'हारिणी' का उपयोग मनोहारिणी अर्थ में किया जायगा । शरत् काल की शोभा काश-पुष्पों से बढ़ती है और इन दिनों में कमल पर्याप्त रूप में खिलते हैं । वर्षा-पक्ष में नीरजसं + गता और शरत् पक्ष में नीरज + संगता अन्वय करना चाहिये ॥ ३ ॥

[किन्नर-मिथुन के इन श्लोकों को सुनकर उत्कण्ठा-विह्वल राजा रमणीय उद्यान की ओर चला ॥]

अनेन मृदुमूर्च्छनातरङ्गरङ्गिताक्षरेण श्रवणपथप्रथमप्रियातिथिना श्लोकत्रयेण विषविषमविषयवैरस्यव्रततिकठिनकुठारेण, दारपरिग्रहपराङ्मुखोऽपि शृङ्गारशृङ्गिशृङ्गमुत्तुङ्गमारोप्यमाणस्तदेवोद्यानममन्दमन्दारमकरन्दामोदमत्तमधुकरमधुरझंकाररमणीयमुपसर्तुमारभत ।

अनेन श्लोकत्रयेण प्रियाग्रहविमुखोऽप्युच्चैः शृङ्गारगिरिशिखरं नीयमानस्तदेव वनं गन्तुमारेभे ॥

मधुर स्वरलहरी से ओत-प्रोत अक्षरोंवाले, कर्णमार्ग के सर्वोत्तम प्रिय अतिथि, अत्यधिक (सांसारिक) विषयों के प्रति वैरस्य (वैराग्य) व्रतरूप विषलता को समाप्त कर देने वाले, तेज कुठाररूप इन तीन श्लोकों से राजा विवाह के प्रति उदासीन रहता हुआ भी शृङ्गार-शैल के शिखर पर चढ़ रहा था । अतः मन्दार-पुष्पों की पर्याप्त गन्ध से उन्मत्त भ्रमरों की मधुर ध्वनि से मनोहर उद्यान की ओर चलना शुरू किया ॥

[राजा के उद्यान में पहुँचने पर वनपालिका ने वन के बहुत से कौतुकपूर्ण स्थान दिखलाये। इस अनुच्छेद के प्रारम्भ से लेकर "वनमारुतेन" तक के शब्द वायु के विशेषण हैं। वनराक्षका की उक्ति सभङ्गश्लेष के माध्यम से शत्रु-वधू-मुख और वन, दोनों पक्ष में लगेगी ॥]

प्रथमसम्मुखप्रेङ्खितेन चलच्चन्दनामोदनन्दिनान्दोलनवेगवित्रस्तकुसुमिततरुशिखरसुप्तसुरतश्रमखिन्नकिंनरीनिविडतरपरिरभ्यमाणकिंनरनमस्कृतेन क्रीडाकमलदीर्घिकातरङ्गोत्सङ्गरङ्गत्तरुणतामरसरसविसरोद्गारहारिणा यौवनमदनिरुद्धनैषधीधम्मिल्लवल्लरीचलनविलासलासकेन वनमारुतेनोत्पुलकिततनुः स्तोकमन्तरमतिक्रम्य 'देव, भवद्वैरिवधूवदने वने च नारङ्गतरूपशोभे भान्ति गण्डशैलस्थलालङ्कारधारिण्यो लोध्रलताः, नागरुचिताश्चन्दनपत्रभङ्गाः, नालिकेरचितस्तिलकः, नवा दृष्टिपथमवतरति घनाञ्जनयष्टिका, नाभिरम्या नीलतमालका, नाधरीकृतस्ताम्बूलीरागः, पल्लवितमेतद् दृश्यतेऽशोकजालम्। इतश्च काञ्चनगिरिरिव सुरचितः क्रीडापर्वतः। इतश्च गूर्जरकूर्चमिवाखण्डितप्रवालं बालशालवनम्। इतश्च भवद्वैरिनगरमिवानेकविधकुलसंकुलं कूपकुलम्। इतश्च धूर्जटिजटाजूट इव पुंनागवेष्टितो वापीपरिसरः। इतश्च कुरुसेनेव कृताश्वत्थामहिता च क्रीडासरित्पुलिनपालिः।' इति भङ्गश्लेषोक्तिकुशलया वनपालिकया निवेद्यमानानि वनविनोदस्थानान्यवलोकयाञ्चकार ॥

तत ईदृग्विधेन वायुना रोमाञ्चिततनुः देवेत्याद्यामन्त्र्य तवारिस्त्रीमुखे वने चेदमिति भङ्गश्लेषोक्तिदक्षया वनरक्षिकया कथ्यमानानि वनकौतुकस्थानानि नलो व्यलोकयत्। आन्दोलनवेगेत्यादावान्दोलनं तरोरेव पवनकृतम्। त्वदरिस्त्रीमुखे अरमत्यर्थं गतसौन्दर्ये कपोलफलकालङ्कारिण्यो लोध्रस्य विलेपनाख्यस्य लता मण्डनवल्लर्यो न भान्ति। अगरुद्रवेण चिताश्चन्दनद्रव्यस्य पत्रभङ्गाः पत्रवल्ल्यः। अलिकं ललाटं तिलकं पुण्ड्रम्। वा समुच्चये। घनं सान्द्रमञ्जनं तस्य यष्टिः शलाका। अभिरम्या संस्कृता। प्रकर्षेण नीलाः कुटिलकेशाः अधरोऽस्यास्तीत्यधरी ओष्ठवान्। ताम्बूलराग ओष्ठसंबद्धः कृत इति भावः। सर्वत्र नञ्संबन्धः। अवतरतीति तु संनिहितमेव योज्यं न प्रत्येकम्। पल्लवितशब्दो लक्षणया प्रवृद्धार्थः। शोकात्सप्रलापमनोदौर्भ्याज्जातं शोकजम्। अलमत्यर्थम्। वने च नारङ्गतरुभिः कृतशोभे महजच्युतस्थूलपाषाणस्थलीभूषणा लोध्रस्य तरुविशेषस्य लताः शाखा भान्ति। नागेभ्यो रुचिताश्चन्दनतरोः पत्त्राणां भङ्गा विशेषाः। तिलको वृक्षो नालिकेरैस्तरुभिर्व्याप्तः। नवा नवीना। अञ्जनस्य शाखिनो यष्टिः प्रकाण्डः। तमालका इति ह्रस्वे कः। अतएव नाभिरम्या नाभिदध्ना इति भावः। नाधरीकृतो न हीनीकृतः। ताम्बूली वल्ली। रागः सक्तिः। किसलयितमशोकानां जालं खण्डः।

इतश्च सुष्ठु रचितः सुरश्चितो व्यासश्च। प्रबालाः पल्लवाः। पक्षे अखण्डिताः अत एव प्रवृद्धा वालाः केशा यत्र। अनेकविधैर्बकुलैः संकुलम्। पक्षे अनेका विधवा मृतभर्तृका येषु कुलेषु तैः कुलैर्गोत्रैः संकुलम्। पुंनागमगः। अन्यत्र पुमान्नागो वासुकिः। कृता उत्पादिता अश्वत्थाः पिप्पली यस्याम्। तथा महिता चार्वी। पक्षे कृतमश्वात्थाम्ने द्रोणसुताय हितं यया॥

अत्यन्त सामने ही बहती हुई, फैलती हुई चन्दन-गन्ध से प्रसन्न, पुष्पित वृक्षों की ऊँची डालियों पर सुरत-श्रम (मैथुन की थकावट) से थक कर लेटी हुई और (हवाके) कम्पन-वेग से डरी हुई किन्नरियों द्वारा गाढ़ालिङ्गन प्राप्त किये हुए किन्नरों से नमस्कृत, क्रीडा कमल-दीर्घिका (कमलों से भरी बावली) की लहरों के सम्पर्क से कम्पित तामरस (कमलों) के 'रसमय गन्ध व्यक्त करने के' कारण मनोहर, यौवन-मद की हो मानो रोक रखने के लिये बाँधी गयी निषध-सुन्दरियों की वेणी के बालों को कम्पनरूप विलासपूर्ण नृत्य करानेवाले वन-पवन से राजा को रोमाञ्च हो आया।"

[मैथुन-श्रम से थक कर किन्नर-दम्पती पेड़ों की डालियों पर सोये थे। जब जोर से हवा का झोंका आता था तो डरी हुई किन्नरियाँ अपने परिजनों से लिपट जाती थीं। पवन के इस उपकार से उपकृत होकर किन्नर लोग उन्हें नमस्कार करते थे।

यौवनमद—कोई चीज भाग न निकले इसलिये उसे बाँध देते हैं। निषध-सुन्दरियाँ मानो इसलिये अपनो वेणियाँ बाँधी हुई हैं। पवन उन वेणियों के बालों को नचा रहा है।]

थोड़े व्यवधान का अतिक्रमण कर (समीप जाकर) सभङ्गश्लेष के माध्यम से बोलने में कुशल वनपालिका ने कहा—देव! आपकी शत्रु-वधुओं के पूर्णतः (अरम्) शोभाहीन मुख पर कपोल भाग को अलंकृत करने वाली लोध्र (लाल रंग) से बने हुए लता—चिह्न और अगरु मिश्रित चन्दन से बनी हुई पत्र-रचनाएं तथा अलिक (ललाट) पर अच्छी तरह बनाये गये तिलक-बिन्दु अच्छे नहीं प्रतीत होते। घने अञ्जन-युक्त यष्टिका (शलाका) दृष्टिमार्ग में नहीं उतरतीं। नीलतम (अत्यन्त काले) अलक (बाल) अभिरम्य (सुन्दर) नहीं लगते। पान की लालिमा से ओठों को लाल नहीं किया जाता। शोक से कारण उत्पन्न दुरवस्था पर्याप्त रूप से बढ़ी हुई दिखायी पड़ती है।

वनपक्ष—नारंग (नारंग) के वृक्षों से सुशोभित इस वन में गण्ड-शैल (गिरे हुए पत्थरों) को अलंकृत करने वाली लोध्र-लताएं नागों से सुशोभित चन्दन-पत्रों की विशेषताएं और नारियल पेड़ों से व्याप्त तिलक वृक्ष अच्छे

लगते हैं। नवीन एवं घनी अञ्जन वृक्ष की शाखायें दीखती हैं। नीले तमाल वृक्ष नाभिरम्य (अत्यन्त रमणीय) हैं पान की लताओं की जड़ें कम नहीं की गयी हैं। अशोक के किसलय-पत्ते सब जगह दीखते हैं। इधर काञ्चनगिरि जैसे सुर + चित (देवताओं से व्याप्त) है उसी तरह आपका क्रीडाशैल भी सु + रचित (अच्छी तरह सजा हुआ) है। गुजराती लोगों की दाढ़ी जैसे अखण्डित प्रवाल (विना कटे हुए बालों वाली) होती है वैसे आपका नवीन शाल वृक्षों का वन भी अखण्डित प्रवाल (न कटे हुए किसलयों वाला) है। आपका शत्रु-नगर जैसे अनेक-विधवकुल-संकुल (अनेक विधवाओं से युक्त) है वैसे ही आपके बगीचे के कूप अनेकविध + बकुल + संकुल (विविध तरह के बकुल वृक्षों से व्याप्त है)। धूर्जटि (भगवान शंकर) की जटा जैसे पुंनाग (विशिष्ट सर्प) से वेष्टित है वैसे ही इधर का वापी-परिसर (सरोवर तट) पुनाग वृक्ष से व्याप्त है। कुरुओं की सेना जैसे अश्वत्थासहित (द्रोणपुत्र अश्वत्थामा पर छोड़ी गयी) थी वैसे ही क्रीड़ा-नदी की तट-पंक्तियाँ अश्वत्थ + आमहित (पिप्पल वृक्षों के कारण पूजित) हैं॥

[नारंगतरूपशोभे—इस पद के न का अन्वय शत्रुपत्नी-वदन पक्ष में भान्ति क्रिया के साथ हुआ है। अरम् शब्द पर्याप्त अर्थ का वाचक है। अर्थात् अरं + गतरूपशोभे वदने (पूर्णरूप से शोभाहीन मुख पर) लोध्रलता प्रभृतयः न भान्ति (लोध्रनिर्मित पत्र रचनायें अच्छी नहीं लगतीं)। नारंग + तरु + उपशोभे (नारंग के वृक्षों से मण्डित) वन में लता आदि सुशोभित हो रही हैं। मुख पर गण्डस्थल शैलस्थलालङ्कारधारिणी (कपोल भाग को अलंकृत करनेवाली) लोध्रलता (लाल रंग से निर्मित लतायें) सुशोभित नहीं हो रही हैं। वन में गण्डस्थलशैलस्थलालंकारधारिणी (स्वभावतः गिरे हुए शिलाखण्डों को अलंकृत करनेवाली) लोध्रलतायें अच्छी लग रही हैं। नागरुचिते—मुख पर अगरुमिश्रित चन्दन लेप से बनी हुई पत्र-रचना अच्छी नहीं लगती। वन में नागों (सर्पों) से मण्डित चन्दन-पत्रों की वक्रतायें सुशोभित हो रही हैं नालिके अलिक (ललाट) पर तिलक नहीं किया गया है। वन में नालिकेर (नारियल के पेड़ों) से तिलकवृक्ष घिरे हुए हैं। नीलतमालका-अत्यन्त नीचे केश अभिरम्य नहीं हैं और नीले तमालवृक्ष रमणीय हैं। घनाञ्जनयष्टिका—गाढ़े अञ्जन से लिप्त शलाका आँखों में नहीं लगाई जाती। वन में नवीन-नवीन अञ्जन पेड़ों की घनी शाखायें दीखती हैं। नाधरी—अधरों में ताम्बूल का रंग नहीं लगा है वन में पान की लताओं की जड़ें छोटी नहीं की गई हैं। इस अनुच्छेद के नारंगतरु से लेकर नाधरीकृतः तब याने "न" का मुख पक्ष में निषेध अर्थ

है और वनपक्ष में न के उत्तरवर्त्ती शब्दों से मिल कर नारंग, नाग, नारिकेल आदि विशेष अर्थ हैं।

चलच्चकोरचक्रवाकचक्रचञ्चुचञ्चलचञ्चरीकचरणचूर्णितचम्पकाङ्कुरमरिचमञ्जरीदलदन्तुरेण वनमार्गेण स्तोकमन्तरमतिक्रान्तस्तया पुनरेवं बभाषे ॥

चलदिति ॥ सञ्चारयोग्येन मार्गेण कियदपि व्यवधानमतिक्रान्तः पुनरपि तयैवं बभाषे ॥

घूमते हुए चकोर और चक्रवाक-समूह के चोंचों तथा चंचल भ्रमरों के चरणों से चूर्णित चम्पे के अङ्कुरों तथा मरिच वृक्षों की मञ्जरियों से ऊँचे नीचे वन-मार्ग से थोड़ा और आगे बढ़ कर उस (वनपालिका) ने राजा से कहा:—

'देव' पुरन्दरानन्दिनोद्यानस्पर्धिनोऽस्य वनस्य किं किं वर्ण्यते ॥

देवेति ॥ देव, नन्दस्पर्धिनोऽस्य किं वर्ण्यते ॥

देव, इन्द्र को आनन्द देनेवाले नन्दन-वन से प्रतिद्वन्द्विता करनेवाले इस वन की किन-किन विशेषताओं का वर्णन करूँ ॥

यत्र त्रिजटाश्रयमनेकजटाः, स्फुरदेकपुष्पकमनेकपुष्पाः, समुद्वेजितराममानन्दितरामा, समुपहसन्ति लङ्केश्वरं तरवः ॥

यत्रेति ॥ रावणं तरवो हसन्ति । त्रिजटा रावणस्वसा । जटा मूलानि पुष्पकं विमानं कुसुमं च । रामो दाशरथिः । रामाः स्त्रियः । अनेकजटा इत्येकशब्देन संख्योपलक्ष्यते । ततोऽनेकशब्दोऽसंख्यातवचनः ॥

यहां के वृद्ध लंकेश्वर (रावण) का भी उपहास करते हैं। क्योंकि रावण त्रिजटाश्रय (त्रिजटा राक्षसी का शरण) है। यहां के पेड़ अनेक- जटाश्रय (विविध जटाओं से युक्त) हैं। रावण का एकपुष्पक (विमान) वाला है। (यहाँ के वृक्ष अनेक पुष्पक (बहुत पुष्पों वाले) हैं। रावण समुद्वेजित राम (राम को उद्विग्न करने वाला) है ये वृक्ष आनन्दित राम (रामाओं (स्त्रियों) को आनन्दित किये हुए) हैं ॥

यस्मिंश्च मत्तमयूरहारिणि भद्रभुजङ्गप्रयाते विचित्रक्रौञ्चपदे छन्दःशास्त्र इव वैतालीयं मालिनी शिखरिणी पुष्पिताग्र च दृश्यते विविधा जातिः ॥

यस्मिंश्चेति ॥ वै स्फुटमियं ताली तालद्रुमः । इयं जातिर्मालती दृश्यते । द्वे अपि कीदृश्यौ । माला अस्यामस्ति । तथा शिखरयुक्ता कुसुमिताग्रभागा च । किञ्च-

शिष्टे वने मत्तैर्मयूरै रम्ये। तथा भद्रं मनोज्ञं भुजङ्गानामहीनां विटानां च प्रयातं यत्र। क्रौञ्चः पक्षी। पक्षे मत्तमयूरं भुजङ्गप्रयातं क्रौञ्चपदा वैतालीयं मालिनी शिखरिणी पुष्पिताग्रा च छन्दोनामानि। जातिश्च उक्तादिरुत्कृत्यन्ता॥

जैसे छन्दः शास्त्र में मत्तमयूर, भुजङ्गप्रयात, वैतालीय, मालिनी, शिखरिणी, पुष्पिताग्रा आदि छन्द देखे जाते हैं वैसे ही मत्त मयूरों से सुशोभित, अच्छे भुजङ्गों (सर्पों और विटों) के प्रयात (गमन) से युक्त, सुन्दर क्रौञ्च पक्षियों के आश्रय इस उद्यान में वै + ताली (स्पष्ट ही ताल वृक्षों का वर्ग) है यह मालिनी (पंक्तिबद्ध) विविध जाति लतायें-शिखरिणी (अङ्कुर युक्त) तथा पुष्पिताग्रा (खिली हुई) हैं॥

यस्मिंश्च एकभीमार्जुनविनिर्जितानाक्रान्तानेकभीमार्जुनाः, कोपितैकनकुलानाह्लादितानेकनकुला, सहदेवेनैकेन स्पर्धमानाननेकैः सहदेवैः सङ्गताः। न बहु मन्यते कुरुवीरान्वीरुधः॥

यस्मिंश्चेति॥ वने वीरुधो लताः कुरुवीरान्न गौरवयन्ति। आक्रान्ता अनेके बहवो भीमा अम्लवेतसा अर्जुनाश्च याभिः। यद्विश्वप्रकाशः—'भीमोऽम्लवेतसे शंभौ घोरे वापि वृकोदरे'। नकुला जीवाः। सहदेवास्तरवः। कुरुवीरपक्षे भीमार्जुननकुलसहदेवाः पाण्डवाः॥

उद्यान की लतायें कौरव पक्ष के वीरों का सम्मान नहीं दे रही हैं, क्योंकि कुरुवीर एक ही भीम और अर्जुन द्वारा जीत लिये गये थे, ये (लतायें) अनेक भीम (अम्लवेंत) तथा अर्जुन (अर्जुन वृक्षों) से आक्रान्त हैं। (कुरुवीरों ने) एक नकुल (चतुर्थ पाण्डव) को क्रुद्ध कर दिया था। ये लतायें अनेक नकुलों (नेवलों) को आनन्दित की हुई हैं। कुरुवीर एक सहदेव से प्रतिद्वन्द्विता करते थे जब कि ये लतायें अनेक सहदेवों (वृक्षों) से मिली हुई हैं॥

किं चान्यदवलोकयतु देवः—

पटलमलिकुलानामुन्नमन्मेघनीलं
भ्रमदुपरि तरूणां पुष्पितानां विलोक्य।
मृदुमदकलकेकानिर्भरो नृत्यसक्त-
स्तरलयति कलापं मन्दमन्दं मयूरः॥ ४॥

खिले हुए पेड़ों के ऊपर उमड़ते हुए मेघसदृश नीले भ्रमर-समूहों को देखकर कोमल तथा मधुर ध्वनि करता हुआ तथा नाचता हुआ मयूर पंखों को धीरे धीरे चंचल कर रहा है॥ ४॥

अपि च—

भ्राम्यद्द्विरेफाणि विकासभाञ्जि संयोज्य पुष्पाणि शिलीमुखेषु।
इह स्थितः सर्वजगज्जयाय धनुःश्रमं पुष्पशरः करोति॥ ५॥

भ्राम्येति। शिलीमुखाः शराः। इहेत्युद्यानस्योद्दीपनविभावातिशयोक्त्या काम-स्यस्थितिरुच्यते। एतावता सुरभिकुसुमसंपदुक्ता ॥ ५ ॥

जिन पर भौंरे घूम रहे हैं तथा जो विकसित हो रहे हैं ऐसे फूलों को बाण कार्य में लगाकर यहीं पर ठहरा हुआ कामदेव पूरे संसार की विजय के लिये अपना धनुष्-कार्य सम्पादित कर रहा है ॥ ५ ॥

इतश्च—

हरिति हरिणयूथं यूथिकाजालमूले
कुसुमजमधुविन्दुस्यन्दसन्दोहभाजि।
मधुरमधुकरालीगीतदत्तावधानं
लिखितमिव न दूर्वापल्लवानुल्लुनाति ॥ ६ ॥

हरितीति ॥ हरिति शाद्वले यूथिकासमूहस्याधः प्रदेशे मधुविन्दुसंदोहसंबन्धात् स्पृहणीयेऽपि गीतिरसिकतया मृगाणां दूर्वाङ्कुराग्रहणमुक्तम् ॥ ६ ॥

फूलों से गिरे हुए पराग-बिन्दुओं से युक्त हरे जुही के पौधों की जड़ में मधुर गुञ्जार करती हुई मधुकर-पङ्क्ति के गीतों में दत्तचित्त हरिण-समूह दूब नहीं चबा रहा है ॥

[हरिणों को मधुर ध्वनि बहुत प्रिय है। जंगल में वे दूब के अङ्कुरों को खाने के ही लिये गये हैं, लेकिन जूही के मूल में पराग-बिन्दु में आकृष्ट भ्रमरों के मधुर गुञ्जार में फंस जाने के कारण उन्हें अपना खाना-पीना भूल गया है ॥ ६ ॥]

इतोऽपि—

सोऽयं क्रीडाचलो भव्य-लोभव्यसनवर्जित।
यस्मिन्नासन्नसारङ्गा सारं गायति किंनरी ॥ ७ ॥

सोऽयमिति ॥ हे भव्य, हे लोभेन व्यसनैश्च विवर्जित, सोऽयं क्रीडागिरिः। यस्मिन्गिरावासन्नमृगा किंनरी सारमुत्कृष्टं गायति। गीतप्रकर्षाकृष्टत्वात्सारङ्गाणा-मासन्नता ॥ ७ ॥

और इधर—

ओ सुन्दर! लोभ तथा व्यसन से विहीन राजन्! यह वही क्रीडा-शैल है जहाँ मृगों के बीच किन्नरी सुन्दर गीत गाती हैं।

[उसकी गीत-माधुरी में आकृष्ट होकर मृग उसके समीप आ जाते हैं ॥७॥]

राजते राजतेनायं सानुना सानुनायकः।
यस्मिन्निशम्य गायन्तं किंनरं किं न रंस्यते ॥ ८ ॥

राजत इति ॥ अयं सानुनायको गिरी रजतनिर्मितेन सानुना तटेन राजते । यस्मिन्गायन्तं किंनरं निशम्य श्रुत्वा न किं रंस्यते । रंस्यत एव ॥ ८ ॥

राजत (चाँदी की) चोटियों से सुशोभित यह सानुनायक पर्वत है जहां गाते हुए किन्नरों को सुनकर कौन नहीं रमणोन्मुख हो जाता ॥

[राजते राजते तथा सानुना सानुना का—यमक है । प्रथम राजते और सानुना सार्थक है किन्तु द्वितीय राजते तथा सानुना निरर्थक हैं । राजतेन तथा सानुनायकः सार्थक हैं ॥ ८ ॥]

इतश्चास्य—

जनयति जलबुद्धिं बाललीलामृगाणा-
मयमिह पटुकान्तिः स्फाटिको भित्तिभागः ।
इह हरितमणीनामुल्लसन्तो मयूखाः
सरसनवतृणालीलोभमुत्पादयन्ति ॥ ९ ॥

इधर इस (भवन) का—

स्फटिक मणियों से चमकता हुआ यह भित्तिभाग बाल स्वभाववाले मृगों को जल की भ्रान्ति उत्पन्न कर देता है । इधर हरित-मणियों की स्पष्ट सरस एवं नवीन तृणों की तरह लोभ उत्पन्न कर रही हैं ॥ ९ ॥

इयं च—

गौरवं गौरवंशस्य पर्वतः पर्वतस्थले ।
भ्रमरी भ्रमरीणस्य कुरुतेऽकुरुतेन ते ॥ १० ॥

गौरेति ॥ गौरो वंशोऽन्वयो यस्य तस्य ते । पर्वतस्थले गिरिस्थले । पर्वतो गच्छतः । अतएव भ्रमेण देहवैक्लव्येन भ्रमिसंज्ञेन खिन्नस्य सतोऽकुत्सितरुतेन भ्रमरी भृङ्गी गौरवं प्रतिपत्तिविशेषं कुरुते ॥ १० ॥

गौरवंश में उत्पन्न आप इस पर्वतीय भूमि में पर्व (भ्रमण) करते हुए भ्रमरीण (थक गये) हैं । यह भ्रमरी अपने अकु + रुत (अकुत्सित ध्वनि) से आपका स्वागत कर रही हैं ॥ १० ॥

[प्रथम 'पर्वतः'—गच्छतः के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । 'कुरुतेऽकुरुतेन' इसमें अकु + रुतेन विच्छेद है । अर्थात् भ्रमरी अपनी अकुत्सित ध्वनि से राजा का गौरव (स्वागत) कर रही है ॥ १० ॥]

अपि च—

इह कवलितकन्दं कन्दरे कन्दलिन्यां
भुवि विरचितकेलि क्रीडति क्रोडयूथम् ।

इह सरसिजगर्भभ्रान्तभृङ्गं कुरङ्गाः
सरसि सरलयन्तः कन्धरां कं धयन्ति ॥ ११ ॥

इहेति ॥ कं जलम् । धयन्ति पिबन्ति ॥ ११ ॥

यहाँ की कन्दयुक्त गुफा की भूमि में कन्द खाकर वराह-समूह लीला-पूर्वक खेल रहा है तथा अपनी गर्दन को सरल (सीधी) करते हुए मृग कमल-कोष में भनभनाते हुए भ्रमरोंवाले सरोवर के जल को पी रहे हैं ॥

[मृग ऐसे सरोवर में जल पी रहे हैं जो कमलों से भरा है और उन कमलों के कोष में भ्रमर भनभना रहे हैं ॥ ११ ॥]

इह पुनरनिशं निशम्य भिन्न-
द्रुममुकुलानि कुलानि षट्पदानाम् ।
श्रुतिसुखकरणं रणन्ति वीणां
तदनुगुणां गुणयन्ति किंनरेन्द्राः ॥ १२ ॥

इहेति ॥ रणन्तीति शत्रन्तं षट्पदकुलविशेषणम् । तस्य भृङ्गरणितस्यानुगुणा-मनुगामिनीम् ॥ १२ ॥

यहाँ खिली हुई मञ्जरीवाले पेड़ों पर निरन्तर कर्णप्रिय गुञ्जार करते हुए भ्रमरों को सुनकर उन्हीं के अनुकरण में किन्नरेन्द्र लोग अपनी वीणा बजा रहे हैं ॥ १२ ॥

इतश्च क्रीडाचलस्थलकमलदीर्घिकातीरतरुतलमनुसरतु देवः ॥

इधर क्रीडाशैल के कमल-सरोवर के तटीय वृक्षों की छाया में श्रीमान् आवें ॥

यत्र च—

वहति नवविकासोल्लासिकिंजल्कलुभ्यन्-
मधुकरकृतगीता नर्त्तयन्नब्जराजीः ।
वनकरिमदगन्धस्पर्धिसप्तच्छदाली
कुसुमजकणशारः शारदीनः समीरः ॥ १३ ॥

वहतीति ॥ कुसुमजकणा मकरन्दलवास्तैः शारः शबलः शरदि भवानि मुद्गादीनि विद्यन्ते येषां ते शारदिनः कृषीवलास्तेषामिनः स्वामी । तत्तत्सस्यसंपत्तिहेतु-त्वात् ॥ १३ ॥

वन-गज की मद-गन्ध से प्रतिस्पर्धा करनेवाली सप्तच्छद पुष्प के पराग-कणों से मिश्रित शरत्कालीन हवा जिसने कमल-समूह को नचा दिया है तथा जिसमें विकास के कारण भरे हुए पराग में लुब्ध भ्रमरों द्वारा की हुई गीत ध्वनि मिश्रित हैं, बह रही है ॥ १३ ॥

राजा तु तेन तस्याः सकलललितवनप्रदेशप्रकटनप्रियालापप्रपञ्चेन परितोषितः 'साधु भोः सारसिके सुभाषितमञ्जरि, साधु। गृहाण पारितोषिकम्' इत्यभिधाय सर्वाङ्गीणभरणप्रदानेन प्रसन्नाननां तामकरोत ॥

सम्पूर्ण ललित वन-भूमि के वर्णन से तथा उसके प्रिय वचनों से सन्तुष्ट राजा, "अच्छा ठीक है, सरोवरवासिनि ! सूक्तिकुशले ! लो अपना पुरस्कार।" ऐसा कह कर अपने अङ्गों के सब भूषणों को देकर उसे प्रसन्न कर दिया॥

ततश्च संचरच्चटुलभृङ्गविहंगवेगवेल्लद्बकुलचम्पकचूतचन्दनमन्दरामन्दस्यन्दमानमकरन्दबिन्दुसंदोहाडम्बरिताकाण्डप्रावृषि, प्रलम्बताम्बूलवल्लीवलयितनितम्बनिम्बकिम्बजम्बीरजम्बूस्तम्बकदम्बके कुसुमितकरवीरवीरुधि कोरकितकरञ्जाञ्जननिकुञ्जशिञ्जानशुककपिञ्जले, जलदसमयनीरदनीलतमतमालतलताण्डवितशिखण्डिनि, मण्डलितमदकलकलहंसोत्तंसकमलवापीमण्डिते, मञ्जरितसिन्दुवारसुन्दरामोदनन्दिनि मन्दतरमारुतान्दोलनविलोलकक्कोलकुड्मलफलनालिकेरलवङ्गपूगपुंनागनारङ्गरङ्गितविहङ्गे भृङ्गमुखनखरपञ्जरजर्जरितसर्जखर्जूरमञ्जरीरजःपुञ्जपांसुलभुवि, भुवो भूषणायमाने, 'सर्वर्तुनिवास'नामनि वने विहर्तुमारभत ॥

ततश्चेति ॥ भृङ्गमुखनखरेत्यादौ भृङ्गो धूम्याटः पक्षी ॥

इसके बाद 'सर्वर्तु-निवास' नामक वन में घूमना शुरू किया। वहाँ चंचल भ्रमरों एवं पक्षियों के वेग से हिलते हुए बकुल, चम्पा, आम, चन्दन तथा मन्दार वृक्षों से पूर्ण रूप से चूते हुए पराग-बिन्दुओं के कारण बिना वर्षाकाल के आये वर्षा जैसा वातावरण हो गया था। नीम, किम्ब, नीबू, जामुन में लटकती हुई ताम्बूल-लतायें लिपटी हुई थीं। कलियों से युक्त करञ्ज तथा अञ्जन वृक्षों की झाड़ियों में शुक तथा कपिञ्जल पक्षी मधुर ध्वनि कर रहे थे। वर्षाकालीन मेघों की तरह नीले तमाल-कुञ्जों के नीचे मयूर नाच रहे थे। प्रौढ़ कलहंसों की गोलाकार मण्डली से कमल-बावलियाँ अलंकृत थीं। सिन्दुवार-मञ्जरियों की सुन्दर गन्ध चारो ओर फैल रही थीं। अत्यन्त धीरे धीरे बहनेवाली हवा के हल्के झोंके से चञ्चल कक्कोल की कली एवं फल तथा नारियल, लवङ्ग, कसैली, पुन्नाग एवं नारङ्ग फलों में पक्षी अनुरक्त थे। भ्रमरों के मुखों, नखों, तथा पञ्जों से चूर्णित सर्ज तथा खजूर की मञ्जरियों से निकले हुए पराग से भूमि धूलि-धूसरित हो गयी थी। वह बन भूमण्डल पर अलङ्कार-सदृश था।

तत्र च व्यतिकरे प्रलयप्रचण्डपवनोल्लासिततनुतुहिनाचलगण्ड-शैललीलामाकलयन्तः, मन्दमरुत्तरङ्गितततनुतरशरदभ्रविभ्रमायमाणाः, सुरवारणेन्द्रविक्षोभितगगनमन्दाकिनीपतत्पांडुरडिण्डीरपिण्डपटलानि विडम्बयन्तः, शकलोदितेन्दुमण्डलसहस्रसंछादितामिव गगनमापादयन्तो, मन्दरगिरिपरिक्षेपप्रक्षुभितक्षीरवारिधिदूरसमुच्छलितदुग्धकल्लोललीलां दर्शयन्तः, शेषाहिफणचक्रवालधवलाः, प्रमुदितहराट्टहासलवा इव मूर्तिमन्तः पतन्तः, अमन्दमन्द्रकोलाहलभरितभुवनान्तरालाः, सपदि धरातलमुत्फुल्लपाण्डुपङ्कजप्रकरप्रकारेण मण्डयन्तो निपेतुः कुतोऽपि पुण्डरीकपाण्डुपक्षपत्रराजयो सपदि राजहंसाः ॥

तत्र चेति। शकलोदितेति ॥ शकलः खण्डशशी हंसदशो भवति। मन्दरगिरिरेव परिक्षेपो मन्थाः ॥

उसी समय वहाँ अचानक कहीं से श्वेत कमल सदृश पंखों वाले राजहंस आ गिरे। उन्हें देखकर ऐसा लगता था कि प्रलय की प्रचण्ड आंधी से ऊपर की ओर उठाकर पटके गये हिमालय के शिला-खण्ड हों। वे धीरे धीरे चलने वाली हवा के झोके से कम्पित छोटे छोटे शरत्-कालीन शुभ्रबादलों के विलास का अनुकरण कर रहे थे। ऐरावत द्वारा मथित आकाश-गंगा से गिरते हुए सफेद फेन-पुञ्ज की विडम्बना कर रहे थे। उदित चन्द्रमा के हजारों खण्डों से ढके हुए की तरह आकाश की शोभा उपपन्न कर रहे थे। मन्दराचल के क्षीरसागर में गिरने से दूर तक छिटके हुए दूध के छीटों की लीला प्रदर्शित कर रहे थे। शेषनाग की फणा-समूह की तरह शुभ्र थे। प्रसन्न भगवान् शंकर के अट्टहास के मूर्तिमान अंशों की तरह गिर रहे थे। अपनी विशेष गम्भीर ध्वनि से भवनान्तरालों को भर रहे थे। खिले हुए शुभ्र कमलों से मानों धरातल शीघ्र ही अलंकृत हो रहा था ॥

[हंस शुभ्र हैं। आकाश से जब उनकी पङ्क्ति उतर रही है तो किस तरह की शोभा हो रही है इसी बात को विभिन्न उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से कवि व्यक्त कर रहा है। जोरों से आँधी आने के कारण प्रलय के समय हिमालय की शुभ्र चोटियों के टुकड़े ही मानो उड़ रहे हैं। उड़ते हुए हंस उड़ती हुई हिम-शिलाओं की तरह हैं। आकाश-गंगा के फेन की तरह लग रहे हैं। मन्दराचल के गिरने से क्षीरसागर से जो दूध के छींटे आकाश में छिटके उनकी तरह लग रहे हैं। भगवान् शंकर के अट्टहास की तरह लग रहे हैं। हास का वर्णन सफेद किया जाता है। हंसों की शुभ्र इकाइयां भगवान् शंकर के शुभ्र अट्टहास की मूर्तिमती इकाइयाँ हैं। नीचे की ओर जब वे

आ रहे थे तो ऐसा लगता था कि अचानक पृथ्वी शुभ्र कमलों से मण्डित हो रही थी ॥]

तथाविधे च व्यतिकरे विस्मयविस्मृतनिमेषतया निर्वातनिश्चलनीलोत्पलपलाशशोभायमानलोचनः कौतुकाकूततरलितमनाः सपरिजनो नरपतिरवलोकयन्निश्चल एवावतस्थे ॥

तथेति ॥ शोभायमानलोचनेत्यत्र शोभाशब्दात्तद्वृति वर्तमानादुपमानात्कर्तृवाचकादाचारेऽर्थे क्यङ्। एवं विभ्रमायमाणेत्यादयोऽपि व्याख्याताः ॥

ऐसी स्थिति में आश्चर्य के मारे पलकों का गिराना भूल सा जाकर हवा के झोंकों के अभाव में कम्पन-शून्य नीले कमल की तरह सुन्दर नेत्र वाले तथा उत्कण्ठा से पिघले हुए चित्त वाले राजा (नल) नौकरों के साथ निश्चल दृष्टि से उन (हंसों) को देखते हुए ठहर गये ॥

ते च धार्तराष्ट्रा अपि कृतपाण्डुपक्षपाताः, द्विजातयोऽपि सुराजिताः, केचिदुच्चचञ्चुपुटविघटितनिकटवालस्थलकमलकुड्मलाः सरसबिसकिसलयानि कवलयन्तः, केऽप्युन्नतसरलगलनालयो नलिनवनविमुखाः खमालोकयन्तः, केचिदुत्क्षिप्तपक्षविक्षेपपवनकम्पितकन्दलाः सलीलमुत्पतन्तः, केचिन्मदमधुरनिजनिनादनिर्जितशिञ्जाननूपुराः, पुरः पुरोऽस्य धावन्तो विचरितुमारभन्त ॥

ते चेति ॥ कृष्णैश्चरणाननैर्हंसा धार्तराष्ट्राः। कृतः पाण्डुपक्षाणां शुभ्रपक्षतीनां पातो न्यासो यैः। तथा द्विजातयः पक्षिणः सुष्टु राजिताश्च। विरोधे धार्तराष्ट्राः कुरवः पाण्डुर्नृपः। पक्षपातस्तद्गृह्यत्वम्। द्विजातयो विप्राः। सुरया जिताः। गलनालिः कण्ठकाण्डम् ॥

वे धार्तराष्ट्र (धृतराष्ट्र पुत्र) थे फिर भी पाण्डुओं के प्रति पक्षपात (स्नेह) रखते थे। विरोध ॥

धार्तराष्ट्र (हंस) थे और पाण्डु + पक्ष + पात (शुभ्र पंखों को हिलाते) थे। परिहार ॥

द्विजाति (ब्राह्मण) थे फिर भी सुराजित (मदिरा की परतन्त्रता में रहते) थे। विरोध ॥

द्विजाति (पक्षी) थे और सु + राजित (सुन्दर) थे। "परिहार" कोई अपने ऊँचे चोंचों से समीपवर्ती स्थल कमलों की कलियों को फोड़ कर सरस कमल-तन्तुओं को खा रहे थे। कोई अपनी गर्दन को ऊँचा और सीधाकर आकाश की ओर देख रहे थे। कोई अपने पंखों के झोंके से कमल-नालों को हिला रहे थे। कोई अपने सुन्दर एवं मधुर ध्वनि से नूपुर के भी अनुरणन को

जीत ले रहे थे। (इन क्रीड़ाओं में व्यग्र राजहंस) राजा के ठहराव के सामने विचरण करना शुरू कर दिये ॥

राजापि परिधावितविहङ्गग्रहणाग्रहसमग्रव्यग्रपरिग्रहः परिहासोन्मीलदमलदन्तकान्तिस्तवकिताधरपल्लवो विहसन्नेव तेषामन्यतममनुच्चचटुलचरणचारीचर्यया चारु संचरन्तमीषदुत्क्षिप्तपक्षविलासविहसितविलासिनीलास्यलीलमुन्नमिताग्रग्रीवं जग्राह हेलया हंसम् ॥

राजेति ॥ सलयश्चरणन्यासश्चारी ॥

राजा ने भी इधर उधर भागते हुए पक्षियों को पकड़ लेने का आग्रह किया। (दौड़ कर पकड़ने में) उसका सारा शरीर व्यस्त था। मुस्कुराहट के कारण निर्मल दन्त-कान्तियों से अधरोष्ठ को कुड्मलित करता हुआ हंसता ही हंसता उनमें से एक हंस को जो बड़ी सुन्दरता से विचरण कर रहा था, अपने पंखों के उत्थान-पतन से रमणियों के लास्य को भी तिरस्कृत कर रहा था, धीरे धीरे पद-विन्यास के साथ गर्दन को ऊपर की ओर उठा रहा था, पकड़ लिया ॥

उत्क्षिप्तः स च तेन रक्तकमलगर्भविभ्रमायमाणपाणिपल्लवे, पाण्डुपद्म इव पद्मरागशुक्तितले, क्षणमुदयशैलशोणमाणिक्यशिखरशिखायामिन्दुरिव, विराजितो राजहंसो मृदुवाद्यमानरौप्यघनघर्घरीजर्जरस्वरेण कृतस्वस्तिशब्दो विस्पष्टवर्णविशेषं राजानमुपश्लोकयाञ्चकार ॥

उत्क्षिप्त इति ॥ पाणिपल्लवस्य पद्मरागशुक्तिः शोणमाणिक्यशिला चोपमानम्। हंसस्य तु पाण्डुपद्म इन्दुश्च ॥

लाल कमल के मध्यभाग की शोभावाले (राजा के) कर-पल्लव पर पद्मराग मणि की शुक्ति पर रक्खे गये सफेद कमल की तरह तथा उदयाचल की लाल मणियों की चोटी पर चन्द्रमा की तरह सुशोभित उस राजहंस ने मधुरता-पूर्वक बजायी जाती हुई रजत-निर्मित घर्घरी (झांझ) की घर्घर स्वर से स्वस्ति शब्द कहता हुआ बड़े स्पष्ट शब्दों में राजा की स्तुति की ॥

[राजा का हाथ लाल था। हंस सफेद था। उस हाथ पर वह हंस वैसा लगता था जैसा कि सफेद कमल पद्मराग मणि की शुक्ति पर लगता है और उदयाचल की लाल मणियों की चोटियों पर चन्द्रमा लगता है ॥]

पाण्डुपङ्कजसंलीनमधुपालीसमं गलम्।
यो बिभर्ति विधेयात्ते ना कपाली स मङ्गलम् ॥ १४ ॥

पाण्ड्विति ॥ श्वेतसरोजलीनालिश्रेणिनिभं कण्ठं यो धारयति स ना पुरुषः कपाली कपालमाली। अर्थाच्छिववस्तव मंगलं क्रियात् ॥ १४ ॥

सफेद कमल में लगी हुई भ्रमर-पङ्क्ति की तरह गले को धारण करने वाले कपाली (कपाल धारण करने वाले भगवान् शंकर) तुम्हारा मंगल करें ॥ १४ ॥

अपि च—

सरलप्रियं गुणाढ्यं लम्बितमालं विचित्रतिलकं च ।
वनमिव वपुस्तवैतत्कथमवनं नृप जनस्याभूत् ॥ १५ ॥

सरलेति ॥ सरला अकुटिलाः प्रिया यस्य । तथा गुणाढ्यं शौर्याद्याढ्यम् । तथा लम्बितस्रक् । यथा विविधपुण्ड्रं तव वपुर्जनस्यावनं रक्षकमभूत् । वनमिव तदा सरलप्रियंगुणेति समाहारद्वन्द्वः । तथा लम्बिनः प्रलम्बास्तमाला यत्र तथा विशिष्टाश्चित्रकायास्तिलकवृक्षाश्च यत्र । नृपेत्यामन्त्रणे । कथमिति विरोधे । अवनशब्दस्य वनप्रतिषेधार्थत्वात् ॥ १५ ॥

और—

(राजन् ! वन-सदृश आप का शरीर अवन कैसे हो गया । वन की सारी विशेषताएं आप में भी हैं फिर भी आप वन नहीं हैं । इस विरोध को दृष्टि में रख कर श्लोक में कथं पद का विन्यास किया गया है । शब्दगत समानता के आधार पर राजा को वन होना चाहिये । अर्थगत समानता के आधार पर तो वह अवन है ही । वह वन नहीं है अपि अवन है । इसका भी उपपादन श्लोक के अक्षरों से ही हो जायगा ॥

सीधे प्रियङ्गु वृक्ष से सम्पन्न, लम्बे तमालों से युक्त, विचित्र तिलक वृक्षों से युक्त वन-सदृश आप नृप जन का सीधे सादे मित्रों वाला, गुणों से-सम्पन्न लटकती हुई मालाओं से मण्डित तथा विचित्र तिलक से युक्त शरीर अवन कैसे हो गया है ।

[अवन शब्द का अर्थ, रक्षक है । इस अर्थ के करने में कोई विरोध नहीं रहता ।]

राजपक्ष—सरल प्रिय (सीधे सादे मित्रों वाला) गुणाढ्य (गुण सम्पन्न) लम्बित + माल (मालाओं को लटकाया हुआ) विचित्र तिलक (सुन्दर तिलक किया हुआ) आपका वपु (शरीर) प्रजा जन का अवन (रक्षक) है ।

वनपक्ष—वन सरल प्रियङ्गुण + आढ्य (सीधे-सीधे पियङ्गु वृक्षों से भरा) है । लम्बि तमाल (वहाँ लम्बे लम्बे तमाल वृक्ष) हैं । विचित्र तिलक (सुन्दर तिलक वृक्षों से सम्पन्न) है ॥ १५ ॥]

अपि च—

वरसहकारकरञ्जकवीरतरोऽशोकमदनपुंनाग ।
विविधद्रुममय राजन्कथमसि न विभीतकः क्वापि ॥ १६ ॥

वरेति ॥ वराः सहकारकाः सचिवादयो यस्य । तथा रञ्जयतीति—रञ्जकः । तथा वीराणां शूद्रकादीनामिव तरो बलं जवो वा यस्येति संबुद्धौ न दीर्घः । न शोको यस्य एतेन धीरत्वोक्तिः । मदन इव मदनः कामः । पुंनाग इति नागशब्दः प्रशंसायाम् । इत्यामन्त्रणैः प्रकृतोऽर्थः । विविधद्रुममयेतिपदाद् द्रुमार्थोऽप्यूह्यः । तथथा । सहकार—आम्रः, करञ्जको नक्तमालः, वीरतरुर्नदीसर्जः । यदमरः—'नदीसर्जो वीरतरुरिन्द्रद्रुः ककुभोऽर्जुनः । अशोकः कंकेल्लिः, मदनः शल्यः, यत्फलं विवाहे वधूवरपाणौ बध्यते । पुंनागः सुरपर्णिका । कथमिति विरोधे । विभीतकस्याक्षार्थत्वात् प्रकृते तु विभीतको विशेषेण भीत इति कुत्सायामनुकम्पायां वा कन् ॥ १६ ॥

हे राजन् आप अच्छे सहकार (आम), करञ्जक वीरतरु अशोक, मदन और पुंनाग आदि विविध वृक्षमय होते हुए भी (केवल) विभीतकमय कैसे हैं ? विरोध ॥

हे वर-सहकारक ! (अच्छे सहायकों वाले) रञ्जक ! (प्रजाजन को अनुरक्त रखने वाले) वीर + तरस् (शूद्रक आदि वीरों की तरह वेगवान्) अशोक ! (शोकहीन) मदन (काम) पुन्नाग (मानवोत्तम) विविध वि (विशिष्ट) वि (पक्षियों) के ध (पोषक) द्रुममय (आश्रयमय) कहीं भी तुम्हें विभीतकमय (द्यूत क्रीडा में तन्मय) नहीं पाया जाता ॥ परिहार ॥

[द्रुम का आश्रय अर्थ इस आधार पर किया गया है वृक्ष जैसे विविध शरणार्थी पक्षियोंका आश्रय होता है राजा भी विविध शरणार्थियों का आश्रय है ॥]

(शब्द के आधार पर तो) राजन्, आप बाण, करवीर, दमनक, शतपत्र, बन्धुजीव, सुजाति आदि विविध विटपरूप होते हुए भी विटप क्यों नहीं हैं । विरोध ॥ १६ ॥

अपि च—

> बाणकरवीरदमनकशतपत्रकबन्धुजीवकसुजाते ।
> नृप विविधविटपरूपस्तथापि विटपः कथं नासि ॥ १७ ॥

बाणेति ॥ बाणः करवीरो दमनकः शतपत्रं बन्धुजीवकं जातिश्चेति विटपाः । एतन्मयस्त्वमसि शब्दतः । अर्थतस्तु बाणाः करे यस्य । वीरान्दमयसि । शतसंख्यं पत्रं वाहनं यस्य शेषादिति कप् । बन्धून् जीवयस्युपकरोषि । शोभना जातिः क्षत्राख्यायस्य । उभयथाप्येतानि नृपेति च सम्बोधनानि । असीति त्वव्ययं त्वमित्यर्थः । त्वं न विटान्पातीति विटपः । अपात्रभर्ता नेत्यर्थः । तथापि कथमिति विरोधोद्भावने विटपशब्दस्यः वीरुदर्थत्वात् ॥ १७ ॥

बाण-कर (हाथों में बाण धारण किये हुए) वीर-दमनक (वीरों को दमन करने वाले) शत (सौ) पत्रक (वाहनों वाले) बन्धु-जीवक (बन्धुओं को उज्जीवित करने वाले) हे राजन्, आप विटप (दुष्टों के पालन करने वाले) नहीं हैं । परिहार ॥ १७ ॥

राजा तु तदाकर्ण्य सविस्मयम् 'अहो अस्य धैर्यं मनुष्यसंनिधौ, आश्चर्यं रूपे, माधुर्यं वाचि, प्राचुर्यं प्रज्ञायाम्, औदार्यमर्थे, गाम्भीर्यं वर्णव्यक्तौ। प्रायेणाहारमैथुननिद्राभयभ्रमणमात्रविवेकासु कथं प्रागल्भ्यमेतत्पक्षिजातिषु। तदेष विहंगव्यञ्जनः कोऽपि कामचारी भविष्यति। सर्वथा मनसापि नावज्ञेयाः केऽपि प्राणिनः। यतः कर्मतः कामतः शापतः संछन्नरूपाण्यपि भ्रमन्ति विविधाश्चर्यभाञ्जि 'भूतानि' इति चिन्तयन्नुचितज्ञस्तमीषदुल्लसितसिन्दुवारमञ्जरीभिरिव कुन्द-कान्तदीप्तिभिरर्चयन्स्वागतमपृच्छत ॥

राजेति ॥ कामचारी विद्याधरादिः ॥

राजा तो यह सुनकर आश्चर्य के साथ, "आह, मनुष्य के समीप भी इसका अद्भुत धैर्य, आश्चर्यजनक रूप, मधुर वाणी, प्रगाढ़ बुद्धि, उदारतापूर्ण अर्थ-प्रकाशन तथा गम्भीरता पूर्ण वर्णोच्चारण है। प्रायः भोजन, मैथुन, निद्रा, भय और भ्रमण तक ही विवेक को सीमित रखने वाली पक्षी जाति में इस तरह की प्रौढ़ता कैसी। निश्चित ही यह पक्षियों में श्रेष्ठ यह कोई स्वेच्छाचारी (देव) होगा। मन से भी किसी प्राणी का थोड़ा भी अपमान नहीं करना चाहिये क्योंकि कार्य से इच्छा से या शाप से बहुत से आश्चर्यजनक प्राणी अपना रूप छिपाये घूमते फिरते हैं।" इस तरह सोचता हुआ अवसरोचित कार्य का विशेषज्ञ, थोड़ी खिली हुई सिन्दुवार मञ्जरी सदृश कुन्द पुष्प की मनोहर छटा से उसकी पूजा करता हुआ स्वागत प्रश्न पूछा ॥

असावपि प्रणयप्रणतशिराः शुचिरोचिषां चयेन पाण्डुपुष्पप्रकर-प्रकारेण प्रतिपूजयन्निव 'देव, भवदवलोकनेनाह्लादितमनसो ममाद्य स्वागतम्' इति ब्रुवाणो राजानं रञ्जयाञ्चकार ॥

वह भी प्रेम से शिर झुका कर शुभ्र पुष्प-समूह के गुच्छ सदृश अपने पवित्र कान्ति-पुंज से मानो उनकी पूजा करता हुआ बोला, "महाराज, आपके दर्शन से ही मैं तृप्त हूँ! मेरा स्वागत इतने से ही हो गया।" राजा (उनकी बातों से) आनन्दमग्न हो गये।

अत्रान्तरे त्रासतरलतरतरत्तारकमकाण्डाडम्बरितबाष्पप्लवप्लव-मानमिव वहन्ती चक्षुः, उत्क्षिप्तपक्षपत्रपल्लवव्याजेन संगृहीते सह-चरे शाखोद्धारमिव दर्शयन्ती, हंसी दूरादवनिपालमवाप्य रौप्यमय-घण्टाटङ्कारकोमलया गिरा श्लोकद्वयमपठत् ॥

अत्रेति ॥ शाखोद्धारमन्यायपूत्कारचिह्नं शाखाग्रहणम् ॥

इसी बीच दूर से ही राजा को देख कर रजत-निर्मित घड़े के टंकार की तरह मधुर स्वर से उस हंस की पत्नी दो श्लोक पढ़ी। डरके मारे उसकी आंखें चंचल होकर आसुओं में तैर रही थीं। फड़फड़ाते हुए पंखों वाले अपने सहचर को पल्लव के बहाने पकड़ लिये जाने पर राजा को अन्याय के निमित्त मानो दुत्कार रही थी।

हंसपक्ष :—ए ! (कामदेव की प्रतिमूर्ति) मुक्ताहार परिच्छद (मुक्तामणि से निर्मित हार की तरह पंखों वाला) हंस जो क (जल) के अन्त (समीप) में अग (वृक्ष) पर रहता है, निश्चित ही छोड़ देने योग्य है। आप उसे क्यों पकड़ लिये हैं।

आत्मपक्ष—मोक्ष की योग्यता रखने वाला हंस (पुरुष) त्व (प्रकृति) के द्वारा बांधा जाता है। (नहीं बांधा जाता।) क्योंकि वह आहार (भोग) रूप बन्धन को छोड़ कर भगवान् विष्णु-विषयक चित्त-वृत्ति बनाकर योग की साधना में लगा रहता है।

हंसपक्ष—अ का अर्थ वासुदेव है। अ के अपत्य को इ कहा जाता है। अर्थात् इ शब्द के सम्बोधन में ए रूप बनेगा जिसका अर्थ होगा विष्णु-पुत्र कामदेव। ए शब्द से राजा को सम्बोधित किया गया है। अतः सिद्ध है कि राजा कामदेव सदृश रूप-सम्पन्न है।

कान्ते—क (जल) के अन्त (समीप) में जो (यः) अग (वृक्ष) है उसकी सेवा करता है। अर्थात् उस पर रहता है।

मुक्ताहार परिच्छद—उसके पंख मुक्ता के हार सदृश हैं। योगं शब्द का "यः + अगं + " पदच्छेद करना चाहिये।

आत्मपक्ष—इस पक्ष में हंस शब्द आत्मा का वाचक है। त्वया शब्द "प्रकृति के द्वारा" अर्थ का वाचक है। त्वशब्द सर्वनाम है। अन्य अर्थ का वाचक है। इसी का स्त्रीलिङ्ग रूप त्वा का तृतीया एकवचन त्वया है।

मुक्ताहारपरिच्छद—इन्द्रियों के आहार (भोग्य) परिच्छद (समूह) का जिसने छोड़ दिया है।

एकान्ते सेवते योगं मुक्ताहारपरिच्छदः।
हंसः समोक्षयोग्योऽपि देव किं बध्यते त्वया ॥ १८ ॥

एकेति ॥ अस्यापत्यमिः। इरिव इः कंदर्पप्रतिमः। ततः संबुद्धौ ए इति देव इति चोपच्छन्दयितुं संबोध्य सुमोचयिषुः पतिं हंसी नृपमाह। मुक्ताहारो मौक्तिकहारस्तद्वत्परिच्छदौ पक्षती यस्य शुभ्रत्वात्। स तथोक्तः। कस्य जलस्यान्ते वर्तमानमगं द्रुमं यः सेवते। मोक्षस्य मोचनस्य योग्योऽपि स हंसो वार्चस्त्वया भवता किं किमर्थं बध्यते इत्येकोऽर्थः। अथवा एकान्त इति समस्तं विजनार्थम्। अथ च

हंस आत्मा पुरुषः स मोक्षयोग्योऽपि किं बध्यते। न बध्यत एवेत्यर्थः। कया। त्वया। त्व शब्दः सर्वादिगणेऽन्यार्थः अतः पुरुषापेक्षयान्यया प्रकृत्येत्यर्थः। कस्मान्न बध्यत इत्याह—कान्ते कमनीये परमानन्दस्वरूपे ए कृष्णे त्यक्ताहारपरिवारः सन् योगमध्यास्मं यः सेवते॥ अत्र पक्षे अ इत्यस्माद्विष्णुवाचकात्सप्तम्येकवचने ए इति रूपम्। यदि वा समोक्षयोग्योऽपीति समः समदर्शनः। अक्षयोग्योऽपि इन्द्रियसंबद्धोऽपि॥ १८॥

एकान्ते—कान्ते ए (कमनीय विष्णु में) चित्तवृत्ति लगाकर योग-साधना कर रहा है। विष्णु-वाचक अ शब्द का सप्तमी एकवचन "ए" है। तात्पर्य यह कि जो पुरुष इन्द्रियों के भोग्य-समूह को छोड़कर परमानन्द स्वरूप भगवद्विषयक ध्यान में रहकर योग-साधना के द्वारा मोक्ष की योग्यता प्राप्त कर चुका है, उसको प्रकृति क्यों बांधेगी ?

मोक्ष की योग्यता रखने वाला योगी की समस्त विशेषतायें हंस में भी हैं। इसे आप अवश्य छोड़ दें॥ १८॥

नीरञ्जनपदे तिष्ठन्विश्वसंसारसङ्गतः।
हंसः किं बध्यते क्वापि यस्य नालम्बनं प्रियम्॥ १९॥

नीरेति॥ जनानां पदे स्थाने पुरग्रामादावतिष्ठन् यः सरस हृदं सारसम्। तथा श्वसन्तीति श्वसाः प्राणिनः, वयः पक्षिणः श्वसा यत्र तथाभूतं नीरं जलम्, गतः स हंसः किं क्वापि बध्यते, न बध्यत एव। यस्य नलस्येदं नालं तृणसंबन्धि, वनं काननं प्रियम्। अथवा नीरञ्जनपदे नीरागपदे तिष्ठन् हंस आत्मा किं क्वापि बध्यते, न बध्यत एव। यस्य विश्वेभ्यः संसारसङ्गेभ्य आलम्बनमासक्तिर्न प्रियम्। विश्वसंसारसङ्गत इति तसिलन्तम्॥ १९॥

हंस पक्ष—जनपद (नगर या गाँव आदि) में न रहने वाला तथा विश्वस (पक्षियों के निवास स्थान) सारस नीर (सरोवर-सम्बन्धी जल) से संयुक्त हंस जिसे नाल (कमल) का वन प्रिय है, कहीं भी बांधा जाता है क्या ?

आत्मपक्ष—सम्पूर्ण संसार की संगति से हट कर जो वैराग्यपद पर प्रतिष्ठित है तथा जिसके लिये संसार में कोई आलम्बन (आसक्ति का विषय) नहीं है, ऐसा हंस (आत्मा) कहीं बांधा जाता है ?॥

[हंस पक्ष—इस पक्ष में पदच्छेद यों करना चाहिये—जनपदे (ग्राम आदि में) अतिष्ठत् (न रहता हुआ) विश्वसं सारसं नीरं गतः (पक्षियों के आवास सरोवरों के जलस्थल में ठहरा हुआ) हंस (हंस) यस्य नालम् वनम् प्रियम् (जिसे कमल वन प्रिय है) बध्यते किम् (बांधा जाता है क्या ?)

अर्थात् वह नितान्त अपराध-शून्य है। जनपद में ही अपराधों का अवसर रहता है। हंस जनपद में न रहकर सरोवर के जल के पास रहता है। संसार

के सुख की और कोई सामग्री उसे अपेक्षित नहीं है। वह केवल कमल बन की चाह रखता है। जल और पुष्प से ही जो जीवन बिताता है, ऐसे तपस्वी हंस को बाँध कर आपने अनुचित किया है।

इस पक्ष में विश्वसं और सारसं पद नीरम् के विशेषण हैं। वि का अर्थ है पक्षी और श्वस् का अर्थ है प्राणी। अर्थात् पक्षी प्राणी जहाँ हों वह (जल) विश्वसं हुआ। सारसम्—सरोवर-सम्बन्धी पदार्थ (जल) सारस हुआ। अर्थात् यह हंस सरोवर के उस जल के पास रहता है जहाँ पक्षी जाति के लोग रहते हैं। यह किसी ऐसे जल स्थल में नहीं जाता जहाँ आप पक्षियों का आगमन एवं विहार निषेध किये हों।

आत्म-पक्ष—विश्व संसार संगतः (सम्पूर्ण संसार की सङ्गति से) (हटकर) नीरञ्जनपदे (वैराग्य मार्ग में) तिष्ठन् (स्थित) हंसः (आत्मा) यस्य क्वापि आलम्बनम् न प्रियम् (जिसे संसार में कहीं भी कुछ आकर्षण नहीं हैं) बध्यते किम् (बांधा जाता है क्या ?)

यहाँ विश्व शब्द सम्पूर्ण का वाचक है। संग शब्द के आगे तसिल् प्रत्यय हुआ है। पञ्चमी के अर्थ में आया हुआ तसिल् संसार संग से उठाकर वैराग्य मार्ग की ओर ला देता है। तसिल् प्रत्यय के कारण ही संसार संग से प्रस्थान और वैराग्य की ओर स्थिति का अर्थ व्यक्त करता है ॥ १९ ॥

अन्यच्च—

राजन्, जलपक्षिणो मुनय इव ये मीनाहारं वाञ्छन्ति, बहुधावन-व्यसनिनो विसाधाराः। तदलमाग्रहेण ॥

राजन्निति ॥ मीनो मत्स्यः। बह्विति। भिन्नम्। बिसं पद्मिनीकन्द आधारो जीवनं येषाम् ॥ मुनिपक्षे अमी इति नेति च पदद्वयम्। बहुधा, अनेकधा वनव्यसनिनो वनस्थाः। तथा व्यपेतः साधारः साधारणतिथिपर्वोत्सवादिर्येभ्यः। लोकोत्तरवृत्तत्वात्। 'बिसादनाः' इति पाठे तु बिसमदनं येषाम्। पक्षे विगतं सादनं येभ्यः। अपीडाकरा इत्यर्थः ॥

राजन्, ये जल-पक्षी हंस मुनियों की तरह हैं। मुनि आहार (भोजन) की कामना नहीं रखते। बहुधा वनव्यसनी (अधिकांश वन में ही रहना पसन्द करते) हैं। बिसाधार (उत्सव आदि नहीं मनाते) हैं। ये पक्षी भी मीनाहार (मत्स्य भोजन) चाहते हैं। बहु + धावन + व्यसनी (अधिकांश उड़ान भरने के शौकीन) होते हैं या बहुधा + वन + व्यसनी (अधिकांश वन (जल) के शौकीन) होते हैं। बिसाधार (कमल तन्तु ही इनके आधार हुआ करते) हैं। अतः आग्रह न करें ॥

[मुनि सदृश व्यवहार को अपनाने वाले मेरे पति को आप बांधने का हठ न करें ।]

मुनि-पक्ष में अमी न आहारं वाञ्छति ऐसा पदच्छेद करना चाहिये । ये और मीनाहारं के बीच अकार प्रश्लिष्ट है । एङः पदान्तादति से पूर्वरूप हो जाने के कारण अ दिखायी नहीं पड़ता । अर्थात् ये मुनि आहार की कामना नहीं रखते ॥

राजा तु तेन तस्याः श्लेषश्लाघिना श्लोकोक्तिरसेनाह्लाद्यमानो नर्मालापलीलया तां बभाषे ॥

राजेति ॥ श्लेषश्लाघिना श्लेषप्रकाशनशीलेन । एतेन एकान्त इत्यादिवचसां श्लिष्टार्थत्वमभिहितम् ॥

राजा तो उसकी श्लेष-बहुल पद्य एवं गद्य की सरलता से प्रसन्न होकर मधुरता-पूर्वक उससे बोला ॥

'अनेकधा यः किल पक्षपातं सदा सदम्भोजगतः करोति ।
स हंसिकेदारविहारशीलो न वध्यते किं बहुनाशकुन्तः' ॥ २० ॥

अनेकेति ॥ हे हंसिके, यः सदा जगतोऽपि सर्वस्यापि सदम्भो दाम्भिकः । तथानेकधोक्तोऽपि प्रणतिप्रत्युपकारादिना पक्षपातं ममत्वं करोति । तथा दारक्रीडारतोऽब्रह्मचारी । तथा बहूनाशयत्येवंविधः कुन्तः प्रासो यस्येति हिंसापापरतः । स कथं न वध्यते । संसारकारायामिति शेषः । इति हंसीवचनप्रतिवचनौचित्येन समपक्षे व्याख्या ॥ अथवा यो दाम्भिकः सदा जगतोऽपि पक्षस्य मित्रवर्गस्य पातं नाशं करोति । तथा जगतोऽपि दारेषु क्रीडापरः । तथा बहुघातिकुन्तास्त्रः । स महापराधी वध्यत एव । निर्मणैव हंसीवचसोऽन्यथात्वम् । तत्त्वतस्तु प्रामाण्यम् । तद्यथा । हे हंसि । किं बहुना किं बहूक्त्या । सदम्भोजं सत्पद्मं, सन् यः पक्षान्तपातं करोति केदारविहारं च शीलयति स शकुन्तः पक्षी न वध्यते । किं तर्हि मुच्यत एव । तस्माद्युक्तमुक्तं त्वयेति वास्तवोऽर्थः । एवमुत्तरत्रापि ॥ २० ॥

हंसी, जो सदा सबके प्रति पक्षपात करता है । अहंकारी बना रहता है । रमणी-विहार में ही मग्न रहा करता है । अपने मुंह से या अस्त्र से बहुतों का विनाश करता रहता है । वह क्यों नहीं बांधा जाता ।

अथवा—जो अहंकारी अपने पक्ष के सम्पूर्ण मित्रों का पात (विनाश) करता है तथा जगत् (बहुत) स्त्रियों के साथ विलास के लिये सदा उद्यत रहता है वह महापराधी बांधा क्यों नहीं जाता ।

यथार्थ पक्ष—हंसपत्नी, अधिक क्या कहना है, जो बार बार सुन्दर कमलों के पास जाकर अपने पंखों को फड़फड़ाता है आर खेतों में विहार करता है ऐसा (निरपराधी हंस सचमुच ही) बांधा नहीं जा सकता ।

[इस श्लोक में समान विशेषणों के माध्यम से बन्धन और मोक्ष दोनों पदार्थों पर विचार किया गया है।

उलाहना पक्ष या बन्धन पक्ष—हंसिके ! (हंस पत्नी) यः किल सदा सदम्भः अनेकधा (उक्तोऽपि) जगतः पक्षपातं करोति स बहुनाश + कुन्तः दारविहारशीलः किं न बध्यते।

अर्थात् उपर्युक्त गुण वाले लोग बाँधे ही जाते हैं।

मोक्ष पक्ष यथार्थ पक्ष—हे हंसि, यः किल सदा सदम्भोज + गतः अनेकधा पक्षपातं करोति स केदारविहारशीलः न बध्यते। किं बहुना शकुन्तः।

इसका भाव यह भी है कि जो फूलों से प्रेम रखता है, प्रकृति का निरावृत वातावरण ही जिसे पसन्द आता है, शान्तिपूर्ण वातावरण से ही स्नेह रखता है ऐसा आदमी भी नहीं बांधा जाता। पक्षी की तो बात ही दूर है।

पक्षपात शब्द विविध अर्थों में यहाँ प्रयुक्त हुआ है। पक्ष (मित्र का) पात (विनाश) पक्षपात (पंख पड़फड़ाना) पक्षपात (प्रकृति के वातावरण में अधिक प्रवृत्ति रखना ॥ २० ॥]

किं चान्यदपि श्रूयतां बन्धस्य कारणम् ॥

अपरपरिभोगप्रतिपादनेर्ष्ययोत्कृष्टदोषदर्शनेन च हंसं प्रति हंसीं कलहयन्नाह—किंचेति ॥ चकारः पराभिप्रायाक्षेपपूर्वके विशेषे। एवं नामासौ दुरात्मा निःशङ्को निर्मर्यादश्च ॥

और भी बन्धन के कारण सुनिये

अस्ति मत्परिग्रहे मृणालिकानामवननायिका, सापरागस्थगितमुखकमलापि बलादनेन विनाशिता, विनिपत्योपरि जर्जरिता नखैः खण्डितमधरदलम्, ललितमलिकालकमण्डनम्, अपनीतः सुकुमारभावः ॥

अस्तीति ॥ येन आसतां लोकदाराः। मम राज्ञोऽपि परिग्रहे स्थितायां नायिकायां प्रवृत्तम् मृणालिकानां पद्मिनीनामवने रक्षणे, नायिका स्वामिनी, सा ततोऽपरागाद्रागाभावात्, संवृतवक्त्रकमलापि बलात्कारादनेन रवद्भर्त्रा विनाशिता। विनाशोऽत्र शीलखण्डनम्। तदाह—विनिपत्येति। अधर ओष्ठः, अलिकं ललाटं तस्य, तथा अलकानां केशानां च मण्डनम्। लुप्तम्। उदस्तः सुकुमारभावः। अर्थात्कन्यात्वम्। वास्तवे तु। मृणालिका पद्मिनी। नामेति संबोधने। वनस्य नायिकेव। परागो मकरन्दस्तेन छन्नमुखानि कमलानि यस्याम्। बलादपि अनेन विना पक्षिणा सा अशिता भक्षिता। अशेर्भोजनार्थात्कर्मणि क्तः। अधरदलमधःपत्रम्। अलय एव कालं कृष्णं कस्य शिरस उपरिभागस्य मण्डनम्। अपनीतो मृदुभावः। नखैर्जर्जरितत्वात् ॥

निन्दापक्ष—मेरे द्वारा नियुक्त मृणालिका की रक्षा (अवन) में लगी हुई, प्रेमाभाव के कारण अपने मुख कमल को बन्द की हुई नायिका का विनाश (शील हरण) इसने किया है। इसके ऊपर अधिरूढ़ होकर नखों से इसे जीर्ण (विदीर्ण) कर दिया है। अधरोष्ठ को खण्डित कर दिया है। अलिक (ललाट) के भूषण रूप अलकों (बालों) को बिखेर दिया है और उसके सुकुमारभाव (कौमार्य) का हरण किया है।

यथार्थ पक्ष—मेरी अधिकृत भूमि में स्थित इस वन की नायिका स्वरूप मृणालिका (कमलिनी) को जिसका मुख पराग से भर गया है, बलात्कार इस पक्षी ने खा लिया है। उन पर भ्रमण कर उन्हें जीर्ण कर दिया है। अलियों (भ्रमरों) के कालक (कृष्णता) रूप भूषण को दलित कर दिया है। उनकी कोमलता को नष्ट कर दिया है॥

(मृणालिकानाम् अवन + नायिका—कमलिनियों की रक्षा के लिये नियुक्त नायिका। सा पराग स्थित–मुखकमलाऽपि—मुख कमल नितान्त प्रेमाभाव पूर्ण है तो भी। बलादनेन विनाशिता-बलात्कार इसने उसे आचार-पतित किया।

वास्तव पक्ष—मृणालिका + नाम + वननायिका—हमारे उद्यान की नायिका सदृश कमलिनी। सा पराग स्थित मुखकमला—आद्योपान्त पराग से भरे मुख कमल वाली। विना + अशिता वि शब्द पक्षीका वाचक है। उसी के तृतीया का रूप विना है। अर्थात् इस पक्षी द्वारा मेरी सुन्दर कमलिनी खा ली गयी है। खण्डितम् अधर-दलम्—कमल के नीचे के दलों को खण्डित कर दिया है। दलितम् अलि—कालक-मण्डनम्—भ्रमरों की कृष्णता रूप मण्डन को रगड़ दिया है।

इन अपराधों के कारण उसे बांधना उचित ही है॥

किं वापीवरेणानेन न कृतम्॥

किमिति॥ अथवानेन पीवरेण स्थूलेन किं न कृतम्। सर्वं कृतमेव तदित्युपसंहारे॥ वास्तवे तु वाप्यां वरेण प्रधानेनानेन॥

इस पीवर (स्थूल) बुद्धि ने क्या क्या नहीं किया। द्वितीय पक्ष—इस वापीवर (सरोवर के प्रधान हंस) ने क्या नहीं किया॥

तदेष यावन्मध्यं बहुधापाञ्जरन्नावगाहते तावन्मे कुतः संतोषः। न च नदीक्षितेद्विजन्मनि निगृहीतेऽपि गरीयः पातकमस्ति॥

तदिति॥ तस्मादेषोऽपराधी, पञ्जरस्येदं पाञ्जरं मध्यं यावन्नावगाहते। मे मम। तावत्कुतः संतोषः। अथायं द्विजन्मत्वादनिग्राह्य इत्यत आह—न चेति॥

द्वाभ्यां सकाशाज्जन्म यस्य स द्विजन्मा न द्विजन्मा तथोक्ते अर्थात् त्रिजाते निगृही-तेऽपि गरीयोऽस्यर्थं पातकं न च नैवास्ति । तस्मिन्कीदृशे । नदीक्षिते दीक्षा शैवादि-मतपरिग्रहः संजातोऽस्येति । एतेन दीक्षितो लिङ्गी त्रिजातोऽप्यवध्य एव । अथवा अपिः समुच्चयार्थो भिन्नक्रमो द्विजन्मनीत्यनेन संयोज्यः । तथथा दीक्षिते व्रतिनि द्विजन्मनि ब्राह्मणे निगृहीते न च न पातकम् । पातकमेवेत्यर्थः वास्तवे तु तस्मादेष त्वत्पतिः । अपां जलानां मध्यं जरन्यावद्वार्धकावधि नावगाहते तावन्मे कुतः संतोषः । नद्यां क्षित उषिते द्विजन्मनि विहंगे नितरां गृहीते स्नेहात्स्वीकृते गरीयोऽस्यर्थं न च पातकमस्ति । श्रेय एवास्तीत्यर्थः । गरीय इति क्रियाविशेषणम् । अपिर्विरोधोद्भावने गृहीतशब्दस्य दण्डितार्थत्वात् ॥

अतः यह (अपराधी) जब तक पिंजड़े के बीच बहुत समय के लिये नहीं जाता तब तक मुझे सन्तोष कहां । (शैव वैष्णव आदि परम्परा में) अदीक्षित द्विजन्मा को पकड़ लेने में कोई उत्कृष्ट पाप नहीं लगता ।

द्वितीय पक्ष—यह पानी के बीच अपनी वृद्धावस्था पर्यन्त विहार नहीं करता रहेगा तब तक मुझे सन्तोष कहाँ । नदी तट पर बसा हुआ पक्षी यदि (स्नेह) से पकड़ लिया गया तो कोई बड़ा पातक नहीं लगता ।

प्रथम पक्ष—पाञ्जरम् न अवगाहते—पिंजड़े के मध्य भाग में जब तक (बहुत समय तक) नहीं रहता । न दीक्षिते द्विजन्मनि—जो द्विजन्मा ब्राह्मण आदि दीक्षा ग्रहण नहीं किया है । ब्राह्मण आदि भी यदि दीक्षा नहीं ग्रहण किये हों तो उन्हें पकड़ने में दोष नहीं लगता । पक्षी आदि की तो कोई बात ही नहीं । अथवा दीक्षित ब्राह्मण को पकड़ने पर पातक नहीं लगता ऐसी बात नहीं । अर्थात् पाप लगता ही है ।

द्वितीय पक्ष—अपाम् (जल के बीच) जरन् यावत् (वृद्धावस्था पर्यन्त जब तक) न अवगाहते (विहार नहीं करता) तावन्मे कुतः सन्तोषः (मुझे तब तक सन्तोष कहाँ ।) नदी + क्षिते (नदी में बसे हुए) द्विजन्मनि (पक्षी को) निगृहीते (पकड़ लेने पर) महान् पाप नहीं लगता ।

जल के किनारे हंस बैठा था, मैंने उठा लिया है । मेरी इच्छा है कि बुढ़ापे तक यह जल में विहार करे । मैं सदा इसका मङ्गल चाहता हूँ ॥

अयि मुग्धे कलहंसिके, त्वं पुनः मानसङ्गतापि विमाननां सहसे, विपरीतः खल्वेषः । यतः सद्वंशकान्तारागविमुखो मधुपश्रेणिश्रयणीयां सुराजीविनीं कान्तां कामयते । तदलमनेन । 'गच्छ वत्से, यथाप्रियम्' इत्यभिहितवति वसुंधरेश्वरे ॥

अयीति ॥ मानेन संगता । विमानना अवगणना । पक्षे मानसं सरः । विषु पक्षिषु मानना पूजा । विपरीतो विरुद्धवृत्तः । पक्षे विभिः पक्षिभिः परिवृतः । कादम्बक-

कदम्बकेश्वरत्वात् । सदन्वयकान्तानुरागपराङ्मुखे । मद्यपश्रेणिसेव्याम् । सुरया जीवति या ताम् । इच्छति । पक्षे शोभना वंशा मस्करा येषु तेषु कान्तारेषु नगेभ्यो विमुखो भृङ्गपङ्क्तिश्रितां सुष्ठु शोभनां राजीविनीं नलिनीम् । प्रयस्यानतिक्रमेण यथाप्रियम् । प्रियो भर्ता इष्टप्रदेशश्च । इत्युक्तवति नृपे ॥

प्रथम पक्ष—जो सुन्दरी हंसी, तुम मान (प्रेममूलक रोष) से संगत (युक्त) हो फिर भी विमानना (अवहेलना) सह रही हो । यह विपरीत बात है । क्योंकि सुन्दर वंश में उत्पन्न प्रिया के प्रेम से विमुख (यह तुम्हारा पति) मद्यपीने वालों के उपभोग लायक, मदिरा से ही जीने वाली प्रिया का चाह रहा है । अतः यह महान् अनर्थ है । "वत्से, जाओ अपने प्रिय स्थान पर ।" इतना कह कर सम्राट् चले गये ।

द्वितीय पक्ष—"ओ हंसी, मानसरोवर जाकर विशिष्ट सम्मान प्राप्त करती हो । तुम्हारा पति पक्षियों द्वारा घिरा हुआ है । सुन्दर बांस के जंगल में पेड़ों से विमुख होकर भ्रमरों से युक्त मनोहर कमलिनी की कामना करता है ॥

[प्रथम पक्ष—मानसंगताऽपि विमानना—मान (हठ से युक्त) है फिर भी मान से हीन है । विरोध ॥ मान (प्रेम मूलक रोष) से युक्त हो फिर भी विमानना (अवहेलना) सह रही हो । "परिहार" ॥

विपरीतमेतत्—यह अनुचित है । मानिनी को अनुनय-विनय के साथ मनाना चाहिये उसकी अवहेलना करना तो असगत बात है ।

सद्वंश कान्ताराग विमुखः—सुन्दर वंश में उत्पन्न अपनी प्रिया के प्रेम से विमुख । मधुपश्रेणीश्रयणीयाम्—मद्य पीने वाले लोगों के उपभोग के उपयुक्त । सुराजीविनीम्—मदिरा से ही जीवन चलाने वाली कान्तां कामयते—सुन्दरी की कामना करता है ।

द्वितीय पक्ष—मानसंगताऽपि विमानना—मानसरोवर जाकर वि (पक्षियों) का मानना (सम्मान) प्राप्त करती हो । वह उस हंस की पत्नी है जो अपने समाज का नायक है । अतः उसकी पत्नी का सम्मान होना स्वाभाविक है ।

वि + परीतम् एतत्—वि (पक्षियों) से यह घिरा हुआ है । पक्षियों का नायक है । अतः दूसरे पक्षी अपनी स्वामी की सुरक्षा के लिये उसे घेरे हुए हैं ।

सद्वंश कान्ताराग विमुखः—सद्वंश (सुन्दर बांस) के कान्तार (जंगल) में जो अग (पेड़) हैं उनसे विमुख (निरीह) रहता है । अर्थात् हंस बांस के वन में अनुराग नहीं रखता ।

मधुप—मधुप (भ्रमर) श्रेणी (पङ्क्ति) द्वारा श्रयणीय (सेव्य) कान्ता (मनोहर) सु + राजीविनी (सुन्दर कमलिनी) की कामना करता है । इस पक्ष में हंस का स्वाभाविक एवम् उचित वर्णन हुआ है ।

सापि सपरिहासं हंसी 'हंहो विहङ्गभुजङ्ग, मृणालिकां तामरसान्तरसानुरागरञ्जितमनाः कामयसे किं वापीनदेहे नीरसेवके त्वयि न संभाव्यते' इत्याकलितकलहं कलहंसमवादीत् ॥

सापीति ॥ हंस्यपि हंसमवादीत्। हंहो इति प्रश्नपूर्वामन्त्रणे। विहंगविलासिन्। तां राजनिवेदिताम्। मृणालिकानां पालननायिकाम्। अरसां निःस्नेहाम्। तरसा बलेन। अनुरागेण स्वासक्त्या रञ्जितचित्त इच्छसि। नुः किमर्थं। न चायं विलासिधर्मः। वस्तुतस्तु मृणालिकां पद्मिनीम्। तामरसान्ते अम्भोजे रसो निर्यासस्तत्रानुरागो यस्येति संबोधनम्। अन्तशब्दः स्वरूपार्थः। अथवा तामरसस्यान्तरे मध्ये सानुरागेति संबोधनम्। अथवा पीने स्थूलाङ्गे। नीरसे निःस्नेहे। निर्वीर्ये वा। बकप्राये त्वयि किं न संभाव्यते। अन्यत्र। त्वयि किंभूते वाप्यश्च नदाश्च तेष्वीहा यस्य। तथा नीरं जलं सेवते यः। किं न संभाव्यत इति। संभावना प्रशंसाविषया। एकमेव हि वाक्यं प्रकरणादौचित्याच्च प्रशंसां निन्दां च प्रतिपादयति। यथा 'त्वमस्माकं किं किं न करिष्यसि' इति प्रसन्नेनोक्तं प्रशंसां गमयति, रुष्टेन च निन्दाम् ॥

प्रथमपक्ष—वह (हंसी) भी परिहास (हँसी) करती हुई, ओ विहंग भुजंग (विलासी हंस) उस प्रेमशून्य कमलवन की रक्षिका को बड़े प्रेम से चाहते हो। निर्वीर्य बगुले जैसे मोटे शरीर वाले तुम पर क्या क्या सम्भावनाएँ नहीं की जा सकतीं। इस तरह किल किलाते हुए हंस से बोली।

द्वितीयपक्ष—वह (हंसी) भी परिहास पूर्वक ओ पक्षियों के साथ विलास करने वाले राजहंस कमल रस के अनुरागी बड़े प्रेम से कमलिनी की कामना कर रहे हो। बावलियों और नदी की अभिलाषा करने वाले तथा जल का सेवन करने वाले तुम में क्या क्या सम्भव नहीं है। इस तरह बड़े प्रेम के साथ हंस से बोली।

प्रथमपक्ष—ताम् अरसाम् मृणालिकाम् (उस प्रेमशून्य मृणालिका नामक वनरक्षिका को। तरसा अनुराग-रञ्जितमनाः—बलात्कार अनुराग से पूर्णचित्त वृत्ति वाले होकर) उसकी कामना करते हो। पीनदेहे (मोटे शरीर वाले) नीरसे (निर्वीर्य) बके (बगुलेसदृश) तुम में क्या सम्भव नहीं है। तुम सब कुछ कर सकते हो। सब जगह अनुरक्त हो सकते हो। निर्वीर्य होने के कारण तुम महान् कामी हो गये हो।

द्वितीय पक्ष—तामरसान्तराग ! (कमल के मध्य भाग में अनुराग रखने वाले) रञ्जिमनाः (प्रसन्नचित्त वृत्ति वाले) तुम मृणालिका (कमलिनी) की कामना करते हो।

वापीनदेहे—वापी (बावली) और नद में ईहा (इच्छा) रखने वाले आप में क्या नहीं सम्भव है ।

मुनिकी तरह जल के समीप रहने वाले आप जैसे व्यक्ति में विविध उत्कृष्टताओं की सम्भावना की जा सकती है ।]

सोऽपि 'वैदग्धधुरंधर, धूर्तालापपण्डित, प्रज्ञाप्राग्भारगुरो, चातुर्याचार्य, मा मे प्रियां प्रकोपय । सदृशा एव यूयं वयं च राजहंसाः । सरसां श्रियमनुभवामः । नदीनां पात्रेष्ववस्थितिं कुर्मः । न चरणचर्यायां न श्लाघ्यामहे । तत्सपक्षेषु विपक्षो माभूः ॥

सोऽपीति ॥ राजहंसा राजमुख्या यूयं सरसां जनानुरागकरीं लक्ष्मीमनुभवथ । तथा पात्रेषु धर्मपात्रादिषु दीनां स्थितिं व्यवस्थां न कुरुथ ॥ तथा रणविधौ न न श्लाघ्यध्वे । चः समुच्चये । वयं पक्षे सरसां तडागानाम् ॥ नदीनां सरितां कूलमध्येषु । चरणं चर्या गतिविशेषः ॥ तत्तस्मादुक्तप्रकारेण समानपक्षेषु पक्षतिसहितेषु च । विरुद्धपक्षो माभूः ॥

वह (हंस) भी 'ओ उत्तम सहृदय ! धूर्तों की तरह (अस्पष्ट) बातों में प्रवीण ! बुद्धि के विशिष्ट भार से गंभीर ! चतुरता के आचार्य ! मेरी प्रिया को क्रुद्ध न करो । आप जैसे राजहंस (उत्तम राजे) और हम राजहंस (पक्षी) बराबर ही हैं ।

आप लोग प्रजा को अनुरक्त कर देने वाली सरस राजलक्ष्मी का उपभोग करते हैं । पात्र (सत्पात्र-सुयोग्य) में दीन (कृपण)दशा का प्रदर्शन नहीं करते । (सुयोग्य आदमी को सुयोग्य सम्मान देकर सम्मानित करते हैं ।) रणचर्या (लड़ाई के बारे) में आप लोग प्रशंसित नहीं हो ऐसी बात नहीं । (होवे ही हैं ।) अतः अपने पक्ष के लोगों पर प्रतिकूल न हों ।

हम (हंस) लोग भी सरोवरों (सरसा) की शोभा (कमलिनी) का उपभोग करते हैं । नदियों के पात्र (तट की खाइयों) में ठहरते हैं । चरणचर्या (विलासिता पूर्वक भ्रमण करने) मे प्रशंसित न होते हों ऐसी बात नहीं । इसलिए आप सपक्ष (सुन्दर पक्षों को धारण करने वाले हंसों) पर विपक्ष (रुष्ट) न हों ॥

एषा मे हृदयं जीव उच्छ्वासः प्राण एव च ।
संसारसुखसर्वस्वं प्राणिनां हि प्रियो जनः ॥ २१ ॥

एषेति ॥ एषैव मे हृदयं मनः । अभिन्नभावात् । जीवो जीवितम् । तत्सद्भावे जीवनात् । उच्छ्वासः श्वासरोधकचिन्तादिदुःखभरापगमहेतुत्वात् । प्राणः प्रधानभूतो वायुः । देहाधारत्वात् । प्राणो बलमपि । जीवितार्थो बलार्थो न तु वाय्वर्थः । त्यप्रशस्तपादः—'प्राणोऽन्तःशरीरे रसमलधातूनां प्रेरणादिहेतुः' इति ॥ २१ ॥

यह मेरा हृदय है, जीव है, श्वास तथा प्राण (बल) है, क्योंकि प्राणियों के लिए संसार के उत्तम सुख की प्रतिमूर्ति उनके प्रियजन ही होते हैं ॥ २१ ॥

रूपसम्पन्नमग्राम्यं प्रेमप्रायं प्रियंवदम् ।
कुलीनमनुकूलं च कलत्रं कुत्र लभ्यते ॥ २२ ॥

रूपेति ॥ प्रेम्णा तुल्यं प्रेमप्रायम् । सस्नेहमित्यर्थः ॥ २२ ॥

रूप संपत्ति से पूर्ण, नागरिक स्वभाव की, प्रेम भरी, सुन्दर कुल में उत्पन्न मनोऽनुकूल पत्नी कहाँ मिलती है ॥ २२ ॥

तदलमलीककलहारम्भेण भवानप्येवं प्रेमप्रपञ्चनाटकनायको नातिचिरादेव यथा भवति तथा कमप्युपकारं करिष्यामि' इति राजानमवादीत् ॥

व्यर्थ अधिक जल्पन क्या करना है, आप भी इस प्रेम प्रपंच वाले नाटक के नायक शीघ्र जिस उपाय से बने उस तरह का उपकारात्मक यत्न मैं करूँगा । इस तरह राजा से हंस ने कहा ॥

अत्रान्तरेऽन्तरिक्षमण्डलादतिस्पष्टवर्णव्यक्तिमनोहारिणी वागश्रूयत ॥

इसी बीच आकाश से अत्यन्त स्पष्ट वर्णव्यञ्जना के कारण मनोहर वाणी सुनाई पड़ी ॥

राजन्राजीवपत्राक्ष क्षिप्रं हंसो विमुच्यताम् ।
भविष्यत्येष ते दूतो दमयन्त्याः प्रलोभने ॥ २३ ॥

हे कमलनयन 'राजन् ! शीघ्र ही हंस को छोड़ दीजिए । दमयन्ती को आपकी ओर आकृष्ट करने में यही आपका दूत होगा' ॥ २३ ॥

राजा तु तस्याः सोष्मबलातैलपूरेणेवाङ्गमुत्पुलकयता, कर्णान्तरमवतीर्णेन, दमयन्तीति नाम्ना कोमलतैत्तिरपिच्छस्पर्शसुखमिवानुभवन्मनाङ्निमीलिताक्षश्चिन्तयांचकार ॥

राजा त्विति ॥ बला गन्धद्रव्यविशेषस्तस्य तैलम् ॥

राजा तो जैसे गरम उबला तैल अङ्गों पर छिडक दिया जाय और रोमांच हो उठे उसी तरह रोमाञ्चित होकर कान के भीतर 'दमयन्ती' इस नाम से तित्तिल के कोमल पंख-स्पर्श सदृश सुखानुभव करता हुआ थोड़े आंखों को निमीलित करता हुआ सोचा ॥

'आह्लादयन्ति सौख्याम्भःशातकुम्भीयकुम्भिकाः ।
काञ्चीकलापसश्रीकाः श्रोणीबिम्बाः श्रुता अपि ॥ २४ ॥

आह्लादेति ॥ सौख्यजलसौवर्णकलशाः । आसेचिता दृष्टाः स्पृष्टा वा । श्रुता अप्याह्लादयन्ति । यतः सौख्यस्य सर्वात्मना आधारभूताः ॥ २४ ॥

'करधनी से सुशोभित ऐश्वर्यजल से भरे हुए शातकुम्भीय (सोने के घड़े की तरह) नितम्बों को धारण करने वाली (रमणियों) को देखना या सुनना होना ही आह्लाद की चीजें होती हैं ॥ २४ ॥

तत्केयं दमयन्ती, कश्चायमाश्चर्यभूतो विहंगः, का चेयंनभोभारती, सर्वमेतद्विस्तरेण वेदितव्यम्' इत्यवधारयन्नेकस्यामुत्फुल्लपल्लवितलतामण्डपच्छायायामुन्निद्रकुसुममकरन्दशीकरासारशिशिरे शिलातले निषद्य तं हंसमवादीत् ॥

यह कौन-सी दमयन्ती, कौन-सा यह आश्चर्यजनक पक्षी, कौन-सी यह आकाशवाणी, यह सब कुछ विस्तार से जानना चाहिए ! यह निश्चित कर एक खिली हुई लता-मंडप की छाया में पूर्ण विकसित फूलों के पराग-बिन्दुओं की वर्षा से शीतल एक शिला पर बैठकर उस हंस से बोला ॥

'भद्र, साप्तपदीनं सख्यम्, उत्पन्नकतिपयप्रियालापा प्रीतिः, प्रयोजननिरपेक्षं दाक्षिण्यम्, अकारणप्रगुणं वात्सल्यम्, अनिमित्तसुन्दरो मैत्रीभावः सतां लक्षणम् ॥

भद्रेति ॥ सप्त पदानि गम्यन्त उच्यन्ते वा यत्र सख्ये तत्साप्तपदीनम् । मैत्र्याः प्रीतेर्भावोऽभिप्रायः ॥

कल्याणमय मित्र ! सात ही पदों के आलाप से मैत्री, कुछ ही प्रिय बातों से प्रेम की उत्पत्ति; अकारण दाक्षिण्य (उदारता) अकारण सुन्दर मित्रता ये सब सज्जनों के लक्षण हैं ॥

अस्ति च तत्सर्वं भवन्मूर्तावतो निःशङ्कमभिधीयसे ,कथय क्येयं दमयन्ती, कस्य सुता, कीदृग्रूपम् , कुत्र सा वसति, कश्च भवानस्माकमुपकर्तुमिच्छति, का चेयं दिव्यवाणी—इत्येवमुक्तः स कथयितुमारेभे ॥

आपके शरीर में ये सब गुण हैं, इसीलिए निर्भीकतापूर्वक कह रहा हूँ, 'कहिये कौन यह दमयन्ती, किसकी लड़की, किस तरह का रूप, कहाँ वह रहती है, कौन मेरा उपकार करना चाहता है और कौन यह दिव्य वाणी है ? (राजा के) ऐसा पूछने पर उसने कहना शुरू किया ।

'शृङ्गाररसभृङ्गार तस्याः सौन्दर्यवीरुधः ।
कर्णमारोप्यतां देव वार्ताविस्मयपल्लवः ॥ २५ ॥

शृङ्गारेति ॥ रसेन सिच्यमाना वीरुद्वर्धते। शृङ्गारोऽपि कर्णकण्ठे निहितेन पल्लवेन शोभत इत्युभयसमागमौचित्यात्। सौन्दर्येण वीरुदिव सौकुमार्यात्। वार्तया विस्मयो वार्ताविस्मयः स एव पल्लवः ॥ २५ ॥

हे शृङ्गार रस के स्वर्णकलश ! (राजन् !) उस (दमयन्ती) की सौन्दर्य-लता के आश्चर्यमय वार्ता-पल्लव को (कृपया) अपने कानों पर रखें ॥ २५ ॥

अस्ति विस्तीर्णमेदिनीमण्डलमण्डनायमानो नगनगरपुरविहारारामरमणीयः सीतासहायसंचरितरघुपतिपादपद्मपवित्रारण्यः पुण्यतरतरङ्गगङ्गागोदावरीवारिवारितदुरितदावानलप्रसरः मन्दर इव बलिराजजनितपरिवर्तनः, कैलास इव महेश्वरलोककृतवसतिः, मेरुरिव सुवर्णप्रकृतिकमनीयो, यदुवंश इव दृष्टशूरपुरुषावतारः, सोमान्वय इव बुधप्रधानो, वेदपाठ इवानेकैः सवनैरुपेतः, पर्वते-पर्वते स्थाणुभिः, पुरे-पुरे पुराणपुरुषैः, जले-जले कमलोद्भवैः, पदे-पदे देवकुलैः, वने-वने वरुणैः, स्थाने-स्थाने नन्दनोद्यानैः, अर्गलः स्वर्गस्य, तापीप्रायोऽप्यनुपतापी जनस्य, विन्ध्याद्रिमुद्रितायां दिशि देशानामुत्तरोऽपि दक्षिणो देशः ॥

अस्तीति ॥ देशानामुत्तरो मुख्यो दक्षिणदेशोऽस्ति। अपिर्विरोधे। उत्तरशब्दस्य दिग्देशार्थत्वात्। बलिना बलवता, राज्ञा भीमलक्षणेन जनितं परि समन्ताद्वर्तनं परिपालनं यस्य। पक्षे बलिराजो दैत्यः। परिवर्तनं भ्रमणम्। महानीश्वरोऽतिसमृद्धः शिवश्च। सुष्ठु वर्णा द्विजातयः। प्रकृतयोऽमात्याद्याः। पक्षे सुवर्णप्रकृत्या स्वर्णस्वभावेन काम्यः। शूरो विक्रमी वसुदेवपिता च। बुधो विद्वान्ग्रहविशेषश्च। स इति भिन्नम्। वनैः काननैः। पक्षे सवनैर्यज्ञैर्युक्तः ॥ स्थाणुः कीलः स्थिरपदार्थश्च। पुराणपुरुषो वृद्धो विष्णुश्च। कमलोद्भवैः कमलोत्पत्तिभिर्ब्रह्मभिश्च। कुलं गृहं वृन्दं च। वरुणो वृक्षो जलं वा। पक्षे प्रचेताः सूर्यो वा। नन्दन इति क्रियावचन इन्द्रवनसंज्ञा च। तैस्तैर्बहुत्वविशिष्टैर्दिवोऽर्गलोऽधिकः। स्वर्गे ह्येकैक एव स्थाणुप्रभृतिः। अस्मिंस्तु बहव इत्यर्थः। तापी नदी प्रायेण तत्र। विरोधे तु तापयत्यवश्यमिति तापी ॥

फैले हुए भूमण्डल का भूषण पर्वत, नगर, ग्राम, विहार (मठ) एवं उद्यानों से रमणीय, सीता के साथ घूमते हुए रघुपति (रामचन्द्र) के चरण कमलों से पुनीत जङ्गलों वाला गङ्गा और गोदावरी के अत्यन्त पवित्र जल-तरङ्गों से दुरित (पाप) वनाग्नि के प्रसार को रोक दिया जाने वाला विन्ध्याचल से अलग किया हुआ सभी देशों में उत्तर (सर्वश्रेष्ठ), दक्षिण देश है जहां के बलिराज (बलवन् नृपति ने) उसी तरह परिवर्तन ला दिया है जैसे बलिराज 'दैत्य' ने मन्दर में परिवर्तन (कम्पन) ला दिया था। जैसे कैलास पर्वत में महेश्वर लोक (शिवजी के गण) निवास करते हैं उसी तरह वहाँ भी महेश्वर-

लोक (महान् ईश्वर (राजा) के प्रजाजन) निवास करते हैं। मेरु पर्वत सुवर्ण प्रकृति (स्वर्ण शरीर) होने के कारण जैसे कमनीय (सुन्दर) लगता है उसी तरह वह (देश) भी सुवर्ण प्रकृति (सुन्दर आकृति वाला) होने के कारण कमनीय लगता है। यदुकुल जैसे शूर (वसुदेव पिता) के अवतार को देखा है वैसे उस देश ने भी शूर (पराक्रमी) पुरुषों के अवतार को देखा है। सोम (चन्द्र) वंश बुध (ग्रह) जैसे मुख्य ग्रह से युक्त है वैसे ही यह देश भी बुध प्रधान (पण्डित बहुल) है। वेदपाठ जैसे बहुत सवन (यज्ञ चर्चाओं) से युक्त है उसी तरह से (वह देश) वन (जंगल) से युक्त है। वह देश स्वर्ग से भी अर्गल (अधिक) है क्योंकि वहां प्रत्येक पर्वत में स्थाणु (ठूंठे पेड़ या स्तम्भ) हैं। प्रत्येक गांव में पुराण (वृद्ध लोग) हैं। हर एक सरोवर में कमलोद्भव (कमलों की उत्पत्ति) है। पग-पग पर देवकुल (सुन्दर गृह) हैं। हर एक वन में वरुण (वरुण वृक्ष) हैं। स्थान-स्थान पर नन्दनोद्यान (सुन्दर उपवन) हैं। (स्वर्ग में तो एक ही स्थाणु (शिवजी) एक ही पुराण पुरुष (विष्णु) एक ही कमलोद्भव (कमला (लक्ष्मी) उत्पत्ति) एक ही जगह देवकुल (देवताओं का गृह) एक ही वरुण (वरुण देवता) तथा एक ही नंदन-वन (इन्द्र का उपवन) है। वह देश तापी प्राय (तापबहुल) होता हुआ भी उपतापी (ताप बहुल नहीं है। विरोध) वह देश तापी नदी से घिरा हुआ है तथा लोगों को उपताप (दुःख) नहीं पहुँचाता ॥

यत्र शास्त्रे शस्त्रे च वेदे वैद्ये च भरते भारते च कल्पे शिल्पे च प्रधानो, धनी, धन्यो, धान्यवान् , विदग्धो वाचि, मुग्धो मुखे, स्निग्धो मनसि, वसति निरन्तरमशोको लोकः ॥

यत्रेति ॥ कल्पे शिल्पे चेति। कल्पो यज्ञकर्मणामुपदेशकः। प्रधान इति प्रकृष्टं धानं धारणं यस्य। शस्त्रशास्त्रादीनि प्रकर्षेण धारयतीत्यर्थः। एवं सर्वत्र वाच्यलिङ्गता। मुख्यार्थस्य हि प्रधानशब्दस्याविशिष्टनपुंसकलिङ्गत्वम् ॥

जहां शास्त्र, शस्त्र, वेद, आयुर्वेद, भरतखण्ड, महाभारत, (आदि दिव्य ग्रन्थों) कल्प (यज्ञादि के उपदेशकों) में मुख्य धनी, धन्य, धान्ययुक्त, वाणी में प्रवीण, मुख से सुन्दर, मन से अनुरागी सदा शोक-शून्य लोग बसते हैं ॥

यत्र क्रुद्धधूर्जटिललाटलोचनानलज्वालाकवलनाकुलः, त्रासादपाङ्गावलोकनमात्रनिर्जितपरमेश्वरमनसां विलासिनीनामुच्चकुचकुम्भयोः शृङ्गारसर्वस्वम् , अधरपल्लवेषु मधु, भ्रूभङ्गेषु धनुः, कटाक्षेषु पुष्पबाणान्निधाय निलीनोऽङ्गेषु जघनस्थलस्थापितरतिमकरकेतनः ॥

यत्रेति ॥ देशे विलासिनीनां कुचादिष्ववयवेषु स्वोपकरणानि शृङ्गारादीनि स्थापयित्वा त्रासान्निलीनो मन्मथः। यतः। किंविशिष्टानां तासाम्। निर्जितं

परमेश्वराणां धनिनां मनो याभिः ॥ अथ च परमेश्वरो धूर्जटिः सोऽपि ताभिर्निर्जित इत्युक्तिलेशः । एतेन शरणागतत्राणवैभवम् ॥

जहां क्रोधावेश में आये हुए भगवान् शङ्कर के ललाटस्थ लोचन की अग्नि ज्वाला से कवलित किये जाने के कारण डर के मारे अपाङ्ग भाग से देख लेने मात्र से बड़े-बड़े राजाओं की चित्तवृत्ति को भी जीत लेने वाली रमणियों के ऊँचे कुचकलश पर शृङ्गार के सारभूत तत्व को, अधरों में मधु को, भौहों की वक्रता में धनुष को, कटाक्षों में फूलों के बाणों को रखकर स्वयम् अङ्गों में विलीन होकर जघनस्थल में रति को रखकर कामदेव रहता है ॥

यासां तारुण्यमेव सर्वाङ्गेषु शोभार्थमाभरणम्, उत्तुङ्गस्तनमण्डल-लावण्यमेव मुखकमलावलोकनाय दर्पणः, तारतरनयनकान्तिरेव मुखमण्डलमण्डनाय चन्दनललाटिका, भ्रूभङ्गा एव विभ्रमाय मृगमदपत्रभङ्गाः, कटाक्षा एव युवजनजयाय परमास्त्राणि, बन्धूककुसुमकान्तिदन्तच्छद एव लोकलोचनमनोमोहनाय माहेन्द्रमणिः, मुखकमल-परिमलागतमधुकरमधुरझंकार एव विनोदाय वीणाध्वनिः ॥

यासामिति ॥ माहेन्द्रमिन्द्रजालम् । तन्त्रबलेनाविद्यमानवस्तुप्रकाशनमिति यावत् । तदर्थो मणिर्माहेन्द्रमणिः ॥

जिनका यौवन ही सभी अङ्गों को सुशोभित करने के लिए भूषण है । उच्च-स्तन मंडल का सौन्दर्य ही मुखकमल को देखने के लिए दर्पण है । चंचल आँखों की कान्ति ही मुख-मंडल को अलंकृत करने के लिए चंदन बिन्दु है । भौहों की वक्रता ही विलास को द्योतित करने के लिए कस्तूरी से अङ्कित पत्र रचना है । कटाक्ष ही युवकों को जीतने के लिए परमास्त्र है । बन्धूक (अड़हूल) के फूल जैसा कान्ति वाले ओष्ठ ही लोगों की आँखों को मोहित करने के लिए महेन्द्र मणि है । मुखकमल से निकले हुए परिमल (सुन्दर गंध) के लिए भौरों की मधुर झंकार ही विनोद के लिए वीणा की ध्वनि है ॥

किं बहुना—

ता एव निर्वृतिस्थानमहं मन्ये मृगेक्षणाः ।
मुक्तानामास्पदं येन तासामेव स्तनान्तरम् ॥ २६ ॥

ता एवेति ॥ निर्वृतिर्मुक्तिः शमं च । मुक्ता मुक्तात्मानो मौक्तिकानि च ॥ २६ ॥

मैं मानता हूँ कि वे मृगेक्षणायें (नायिकायें) मुक्ति का स्थान हैं, उन्हीं के स्तनों के बीच मुक्त लोगों को जगह मिलती है ।

द्वितीयपक्ष—मेरी सम्मति में वे मृगेक्षणायें निर्वृत्ति (लज्जाशीलता) के स्थान हैं । उन्हीं के स्तनों के बीच मुक्तामणियों को स्थान मिलता है ॥ २६ ॥

मन्ये च। ताभिरेव विविधनिधुवननिधानकुम्भीभिः कुम्भोद्भवोऽपि भगवान् प्रलोभितो भविष्यति, येनाद्यापि न मुञ्चति दक्षिणां दिशमेव ॥

सुरत-क्रीडा के पात्र उन्हीं नायिकाओं द्वारा कुम्भज ऋषि (अगस्त्य) भी मालूम पड़ता है प्रलोभित हो गये होंगे। इसी लिए आज भी दक्षिण दिशा को छोड़ ही नहीं रहे हैं ॥

अथवा—

देशो भवेत्कस्य न वल्लभोऽसौ स्त्रीसंकुलः सुस्थितकामकोटिः।
दग्धैककामं त्रिदिवं विहाय यस्मिन्कुमारोऽपि रतिं चकार ॥ २७ ॥

देश इति ॥ कामकोटिर्देवी कंदर्पकोट्यश्च। कुमारः कार्तिकेयो डिम्भश्च। रतिरास्थार्थः। सुरतार्थेन च विरोधोद्भावना ॥ २७ ॥

या—

कामकोटि देवी से सनाथित स्त्री बहुल वह वेश किसको प्रिय नहीं है जहां कामदग्ध स्वर्ग को छोड़कर कुमार (कार्तिकेय) भी प्रेमपूर्वक रहे हैं।

वह कामदेव की कोटि (मौर्वी) तथा स्त्री बहुल देश किसको प्रिय नहीं है जहां कामवासनाओं को भुला देने वाली क्रीडा की विधिक्षताओं को छोड़कर बच्चे भी रति (प्रेम) करने लगते हैं ॥ २७ ॥

तस्यान्तर्भूतवैदर्भमण्डलस्यालंकारभूतमनाकुलममरपतिपुरप्रतिस्पर्धिपरितः परिखाप्रान्तरूढप्रौढहृद्योद्यानमालावलयितमदभ्रशुभ्राभ्रंलिहप्रासादशिखरशिखाभोगभग्नरविरथतुंगवेगम्, एकत्राग्निहोत्रमन्त्रपवित्राहुतिहृतसमस्तदिव्यान्तरिक्षभौमोत्पातसंघातैः, कृतमन्युभिरपि मन्युशून्यैः, उक्तसूक्तैरपि निरुक्तपरैः, सन्मार्गस्थैरपि गृहस्थैः, सकलत्रैरपि ब्रह्मचारिभिः, अभ्यस्तातिथिभिरप्यतिथिकुशलैः, सामप्रयोगप्रधानैरपि दण्डावलम्बिभिः, शतपथानुसारिभिरप्येकमार्गैः, ब्राह्मणैरध्यासितम्। एकत्र कुरुभिरिव द्रोणपुरःसरैः, प्रासादैरिव तुलाधारिभिः नैयायिकैरिवानुमेयानुमाननिपुणैः, वैशेषिकैरिव द्रव्यानुगुणकर्मविशेषपण्डितैः, वैयाकरणैरिव रूपसिद्धिप्रधानैः, रुद्रैरिवानेकग्रन्थिबद्धकपर्दकैः, विपणिवणिग्जनैरधिष्ठितम्। एकत्र विटकौलदम्भदीक्षाभिरिव कुचरूपलोभितलोकाभिः, कुकविकाव्यपद्धतिभिरिव भग्नयतिगणवृत्ताभिः, निशाचरीभिरिव रजनिरागिणीभिः, सर्वतोमुखजघनचपलाभिरप्यनार्याभिः, कर्णाटचेटीभिर्भरितम्। एकत्र बालकमिव कुलालाकीर्णम्। एकत्र वृद्धमिव कुजराजितम्। एकत्र चित्रविद्ययेव प्रवर्धमा-

नसकलशिशुशोभितया विन्यस्तस्वस्तिकया सर्वतोभद्रभूषणया भवनमालयालंकृतम् । एकत्र नाटकैरिव पताकाङ्कसंधिसंगतैः, दुष्टकिरातैरिव दृष्टकूटकर्मभिः, शस्त्रैरिव सुधारैः, विचित्रैरपि सचित्रैः, सतुलैरप्यतुलैर्देवकुलैः संकुलम् । विशालमपि शालासंपन्नम् , चतुश्चरणसंयुक्तमपि चरणरहितम् , विटसंभृतमपि शुचिमार्गम् , सर्वत्र चत्वराधिकमपि स्थिरप्रकृति, मज्जन्महाराष्ट्रकुटुम्बिनीमुखमण्डलविधीयमानोत्फुल्लकमलशोभायास्तुङ्गतरङ्गरङ्गत्तरुणार्जुनराजीवराजमानराजहंसविराजितवारेर्वरदायास्तीरे रमणीयकरसकुण्डं कुण्डिनं नाम नगरम् ॥

तस्येति ॥ तस्य दक्षिणदेशस्यान्तर्भूतं वैदर्भं मण्डलं तदलंकारभूतम् । एवं विशेषणोपेतम् । निरुपद्रवम् । तुङ्गतरङ्गेषु रङ्गन्ति तरुणानि नवान्यर्जुनानि धवलानि यानि राजीवानि तद्वद्राजमाना ये राजहंसास्तैर्विराजितं वारि यस्यास्तस्या वरदायास्तीरे कुण्डिनं पुरं वर्तत इति शेषः । एकत्र ब्राह्मणैरध्यासितम् । कीदृग्भिः । आहुतिहतोपद्रवसंघैः । तथा कृतक्रतुभिः । तथा कोपशून्यैः । निरुक्तं ग्रन्थविशेषो वाचनाभावश्च । सन्मार्गः सदाचारः श्रेष्ठाध्वा च । सकलं सर्वं त्रायन्त इति सकलत्राः । ब्रह्म वेदं चरन्ति जानन्त्यवश्यम् । 'ब्रह्मचारिभिरपि सकलत्रैः' इति पाठे ब्रह्मचारिभिर्निषिद्धकामैः । अतिथीनागन्तून् , कुशांश्च लान्ति स्वीकुर्वन्ति । साम वेदः सान्त्वं च । दण्ड आपाढा दमनं च । शतपथो यजुर्वेदभागः शतसंख्यः पन्थाश्च । एकमार्गैर्ऋजुभिः । सर्वत्रापिर्विरोधार्थे । स तु प्रतीयमानव्याख्यया । पुनरप्येकत्र । वणिग्भिरधिष्ठितम् । द्रोणो मानं कौरवगुरुश्च । सूत्रादिमानं गृहादीनां तिर्यग्धारणस्तम्भश्च तुला । अनुमेयं कणादि तस्यानुमानमुद्देशज्ञानम् । पक्षे अनुमीयते तदनुमेयम् । अनुमीयतेऽनेन तदनुमानम् । यथाऽयं वह्निमान्धूमवत्त्वादित्यत्र धूमोऽनुमानम् । वह्निरनुमेयः द्रव्यस्य रूप्यकादेरनुगुणः संकलना तत्कर्मविशेषविज्ञाः । पक्षे द्रव्यानुगतागुणकर्मविशेषाः पदार्थाः । रूपं टङ्ककरूपकादिनाणकं शब्दश्च । कपर्दो वराटो जटाबन्धश्च । एकत्र । कर्णाटदासीभिर्भरितम् । कुचयो रूपेण लोभितलोकाः । शाक्तदम्भदीक्षासु कुत्सितेन चरुणा मांसादिनोपलोभितलोकाः । भग्नमुनिवृत्तशीलाभिः । पक्षे भग्नयतिगणानि वृत्तानि यासु । यतिर्विरतिः । गणा मगणादयोऽष्टौ । वृत्तं पद्यम् ॥ रजनी हरिद्रा निशा च । रागो वर्णान्तरारोपणमासक्तिश्च । कर्णाटे हि हरिद्रैवाङ्गरागः । मुखे जघने च चपलाः । आर्या साध्वी मात्रावृत्तभेदश्च ततां नञ्योगः । अपिर्विरोधे । मुखजघनचपलाशब्दस्यार्याख्याद्वयवाचित्वात् । एकत्र । कुलालैः कुम्भकारैः कुत्सितलालया चाकीर्णम् । कुब्जैस्तरुभी राजितम् । पक्षे कुत्सितजरया जितम् । एकत्र । गृहश्रेण्या भूषितम् । प्रवर्धमानैः सकलैः कलावद्भिः शिशुभिर्डिम्भैः शोभितया । तथा विन्यस्ताः स्वस्तिका मौक्तिकादिक्षोदरचिताश्चतुष्का यस्याम् । सर्वत इति भिन्नम् । भद्राणि वास्तुशास्त्रख्यातानि भूषणं यस्याम् । यदि वा स्वस्तिकवर्धमानौ गृहावयवविशेषौ । पक्षे शिशुः सकलः स्वस्तिको वर्धमानः सर्वतोभद्र इत्याख्यानि पञ्च पत्राणि । एकत्र देवकुलैः संकुलम् ।

पताका ध्वजवासः सैवाङ्को येषाम्। तथा संधिषु संगतानि। अविभाव्यसन्धीनित्यर्थः। नाटकेषु तु मुख्यनायकोपरि उपनायकचरितं पताका। अङ्कः प्रबन्धविभागः। मुख-प्रतिमुख-गर्भ-अवमर्श-निर्वहणाख्याः पञ्च संधयः। कूटं शिखरं कपटं च। सुधां लेपविशेषमियति प्राप्नुवन्ति। पत्ते शोभना धारा येषाम्। विचित्रैरनेकप्रकारैः। न विगतचित्रैः। न तुला साम्यं येषाम्। तथा तुलया धारणस्तम्भेन सह। उभयत्रापिर्विरोधे। विशालं विस्तीर्णम्। व्यपेतशालम्। शाला गजाद्यालयः। चत्वारश्चरणा ऋग्वेदादयः। अपि चेति विरोधे। तदा रणेन युद्धेन रहितम्। विड्भिर्वैश्यैः संवृतम्। न विष्ठाभिः। चत्वरं चतुष्पथम्। प्रकृतिरमात्यादिः। विरोधस्तु चत्वरे चकारस्य समुच्चयार्थस्य पूर्वपदेन योगे॥

उस दक्षिण देश के भीतर वैदर्भ मंडल को अलंकृत करने वाला कुण्डिन नामक नगर है। वह उपद्रव रहित नगर इन्द्रपुरी से भी प्रतिस्पर्धा रखता है। खाइयों से घिरे हुए उत्कृष्ट एवं मनोहर उपवनों से आलिङ्गित बहुत से गगनचुम्बी भवनों के शिखरों के विस्तार ने सूर्य-रथ के घोड़ों के वेग को भंग कर दिया है। जहां के ब्राह्मणों ने एक जगह अग्निहोत्र मंत्र की पवित्र आहुति से स्वर्ग, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी (भौम) संबंधी उत्पात समूह को नष्ट कर दिया है। मन्यु (क्रोध) करके भी मन्यु (क्रोध शून्य) हैं। "विरोध"। मन्यु (यज्ञों) को किए हैं मन्यु (क्रोध) से शून्य है। परिहार सूक्तों को बोलते हैं फिर भी निरुक्त (न बोलने) में तत्पर हैं। विरोध। सूक्तों (पुरुषसूक्त श्रीसूक्त आदि स्तोत्रों) का पारायण करते हैं तथा निरुक्त शास्त्र के अध्ययन में तत्पर हैं। परिहार। सन्मार्ग (सुन्दर मार्ग) पर ठहरे हैं फिर भी घर में बैठे हैं। विरोध। सन्मार्गस्थ (सदाचार का पालन करते हुए) गृहस्थ हैं। सकलत्र (स्त्री के साथ) हैं फिर भी ब्रह्मचारी हैं। विरोध। सकलत्र (सभी लोगों के त्राण (रक्षा) करने वाले) ब्रह्मचारी (ब्रह्मविद्या के उपासक) हैं। तिथि (पञ्चाङ्ग) विद्या का पर्याप्त अभ्यास किये हैं फिर भी अतिथि कुशल (तिथि विद्या में निपुण नहीं) हैं। विरोध। अतिथि सेवा में कुशल है। परिहार। साम (शान्त) प्रयोग में निपुण हैं फिर भी दमन नीति का अवलम्बन लेने वाले हैं। विरोध। सामवेद का गान करते हैं तथा पलाशदण्ड धारण करते हैं। शतपथ (सैकड़ों मार्गों) का अनुसरण करते हैं फिर भी एक ही रास्ते से चलने वाले हैं। विरोध। 'शतपथ' ब्राह्मण ग्रन्थ के अनुसार आचरण करते हैं तथा एक मार्ग (नीति) से चलने वाले ब्राह्मणों से सनाथित हैं। कौरव जैसे द्रोण (द्रोणाचार्य) पुरस्सर थे वैसे (वे ब्राह्मण) भी द्रोण (मनस्विता) से युक्त हैं। प्रासाद (महल) जैसे तुलाधारी (तिरछे स्तम्भ को धारण करता है) वैसे वहां के बनिये लोग तुला (तराजू) धारण करते हैं। नैयायिक जैसे अनुमेय और अनुमान ज्ञान में पटु है। वैसे वे (बनिये) भी अनुमेय (वस्तुओं के

उद्देश्य, फल, भाव आदि का ज्ञान करने में निपुण हैं। वैशेषिक दर्शन के जानकर लोग जैसे द्रव्य, गुण, कर्म विशेष आदि तत्त्वों के विशेषज्ञ होते हैं वैसे द्रव्य (रुपये) के अनुकूल (कर्मविशेष व्यापार) के जानकार होते हैं। वैयाकरण जैसे रूपसिद्धि (शब्दसाधन) की मुख्यता देते हैं वैसे वे भी रूपसिद्धि (मुद्रा स्वर्ण आदि) के साधन में लगे रहते हैं। रुद्र जैसे अनेक गाँठों को देकर अपनी कपर्दक (जटा) बाँधते हैं वैसे वे भी अनेक गठरियों में कपर्दक (कौड़ी) बाँधे हुए हैं। अनेक बनिये लोगों से वह स्थान सनाथित है। धूर्त वाममार्गी शाक्तों की दम्भ (अहंकार) भरी दीक्षा में कुचरु (मांस आदि से पूर्णपात्र) द्वारा जैसे लोग लोभित (आकृष्ट) कर लिए जाते हैं वैसे अपने कुल-रूप (स्तन सौन्दर्य) से जन सामान्य को लुब्ध कर देने वाली, असमर्थ कवि की काव्यशैली जैसे यतिगण तथा छन्दोभङ्ग आदि दोष से युक्त होती है वैसे यतिगण वृत्त (मुनि समूह) के शील को भंग कर देने वाली रजनि रागिणी (रात में ही रागिणी) होत्ती है वैसे वे भी रजनी (हल्दी) से रागिणी (अङ्गराग लगाने वाली) मुख तथा जघन से चंचल अनार्य कर्णाटदासियों से कहीं सनाथित है। बालक जैसे कु (खराब) लाल (लार) से युक्त होते हैं वैसे वह (नगर) भी कुलाल (कुंभकारों) से व्याप्त है। बुढ़ापा जैसे कु (खराब) जरा (जीर्णता-दुर्बलता) से आक्रान्त रहती है वैसे वह (नगर) भी कुज (वृक्षों) से अलङ्कृत है। जैसे चित्र विद्या जैसे बहुत से उदीयमान शिशुओं से सुशोभित, स्वस्तिक चिह्न विधान की विधि से युक्त सर्वतोभद्र वेदिका निर्माण विधि से अलंकृत रहती है वैसे उस (नगर) की भवनपंक्ति भविष्णु-शिशुओं से सुशोभित है, मोती आदि के चूर्ण से चारों ओर स्वस्तिक चिह्न बने हैं। भद्र (वास्तु शास्त्र में प्रसिद्ध) भूषणों से भूषित हैं। नाटक जैसे पताका, अङ्क और सन्धियों से युक्त होते हैं वैसे वह (नगर) भी पताका (झंडा) रूप अङ्क (चिह्न) तथा सन्धियों से युक्त दुष्ट किरात (व्याध, शबर) जैसे कूटकर्म (कपट व्यापार) को देखे रहते हैं उसी तरह वे (मन्दिर) भी अपने कूट (शिखर) से कर्मों को देखे हुए हैं। शस्त्र जैसे सुधार सुन्दर धार वाले होते हैं वैसे वे (मन्दिर) भी सुधार (चूने से लिप्त) हैं अथवा सबका सुधार करने वाले हैं (अर्शआद्यच्) विचित्र (विगत चित्र) हैं फिर भी सचित्र (चित्रयुक्त) हैं। विरोध। विचित्र (अनेक) प्रकार के चित्रों से युक्त हैं। परिहार। तुला युक्त हैं फिर भी तुलायुक्त नहीं है। विरोध। तुला (स्तंभ) युक्त हैं तथा अतुल (अतुलनीय) हैं। परिहार। इस तरह के देव कुलों (मन्दिरों) से वह नगर संकीर्ण हो गया है। विशाल (हाथी आदि की रहने की जगह) नहीं है फिर भी शाल (हाथी आदि की रहने की जगह) से सम्पन्न है। विरोध। विशाल (बहुत बड़ा)

तथा शाला (अश्वशाला हस्तिशाला आदि) से सम्पन्न है। परि चार चरण वाले पदार्थ से युक्त है फिर चरण रहित है। वि०। चतुश्चरण (ऋग्वेद आदि वेदों) से युक्त है और (च) रण (लड़ाई) के वातावरण से रहित है। परि०। विट् (विष्ठा) से भरा है फिर भी शुचि (पवित्र) मार्ग वाला है। वि०। विट् (वैश्यों) से भरा है और पवित्र मार्ग वाला है। परि०। सब जगह (च) त्वरांधिकता (जल्दीबाजी) है फिर भी स्थिरप्रकृति (स्थिर स्वभाव वाला) है। वि०। सब जगह चत्वराधिकता (चौराहों की अधिकता) है और स्थिर प्रकृति (मन्त्री आदिराज्य प्रकृति स्थैर्यसम्पन्न) है। परि०। स्नान करती हुई महाराष्ट्र की सुन्दरियों के मुख मण्डल के प्रतिबिम्ब से जिसमें खिले हुए कमल की शोभा उत्पन्न की जा रही है, ऊँची लहरियों और पूर्ण विकसित अर्जुन (सफेद) कमलों तथा सुन्दर हंसों से जिसका जल सुन्दर लग रहा है, ऐसी वरदा नदी के तट पर रमणीय रसों का पात्र कुण्डिन नाम का नगर है॥

यस्य नातिदूरे दर्शनदूरीकृतदुरितोपप्लवाऽऽप्लवनजनितपातकभङ्गां गङ्गामुपहसन्ती स्वर्गमार्गाश्रयनिश्रेणी पुण्यपयाः पयोष्णी वहति॥

यस्येति॥ यस्य (पुरस्य)। नातिदूरे (निकटे)। गङ्गा स्नानात्पुण्यहेतुः। पयोष्णी तु दर्शनादपीत्यस्या विशेषः॥

जिसके थोड़ी पर दर्शन से ही पाप समूह को दूर कर देने वाली, स्नान से पापों को चूर्णित कर देने वाली गङ्गा का उपहास करती हुई स्वर्गमार्ग की सीढ़ी पयोष्णी नाम की नदी बहती है॥

यस्य च पश्चिमदेशे प्रणतसुरासुरमौलिनीलमणिमरीचिचञ्चरीकचक्रचुम्बितचरणाम्भोजस्य भोजकटकूपजन्मनो जरापातितययातेः प्रचण्डदण्डदाण्डिक्यदण्डनाडम्बरितगण्डपाषाणविदलितवैदर्भमण्डलस्य भगवतो भार्गवस्याश्रमः॥

यस्य चेति॥ भार्गवः शुक्रः। भोजकटकूपेति अधिष्ठाननाम। तत्र जन्मास्येति। तथा च श्रुतिः—'शुक्रो भोजकटेऽभवत्'। कूपादिप्रसिद्ध्या हि अधिष्ठाननामानि दृश्यन्ते। तथा च मरुदेशे शिवकूपः किराटकूपो जाङ्गलकूप इत्याद्यधिष्ठाननामानि। वृषपर्वदैत्यसुतां शर्मिष्ठां शुक्रसुतां देवयानीं च ययातिनृपतिरुपयेमे। ततोऽसौ शर्मिष्ठाप्रीत्या देवयानीमवजानन् 'तवाङ्गे जरा पततु' इति शुक्रेण शप्तः। तथा दाण्डक्यो नाम भोजकटदेशाधिपः शुक्रसुतामरजःसंज्ञां चत्रियः किल हठाद्द्विजकन्यां परिणीतवान्। इति परिभूतंमन्येन शुक्रेण मन्युना पातालशैलगण्डवृष्टिना स वैदर्भमण्डलो हतः॥

इसके पश्चिम ओर भगवान् भार्गव का आश्रम है, जिनके चरण कमल पर (देवताओं और दानवों के शिर पर लगी हुई नीलमणिकान्ति भ्रमरी का पुञ्ज झूम रहा है, भोजकट देश में उत्पन्न होने वाले ययाति राजा के ऊपर बुढ़ापा को जिन्होंने हठात् गिरा दिया है, बहुत प्रचण्ड शासन करने वाले दाण्डिक्य राजा को दण्ड देने के लिये पाताल पर्वतों की चोटियों की वर्षा कर वैदर्भ देश को जिन्होंने नष्ट कर दिया हैं) ॥

[राजा ययाति वृषपर्व नामक दैत्य की लड़की शर्मिष्ठा और भार्गव (शुक्राचार्य) की लड़की देवयानी से विवाह किये थे। ययाति का प्रेम शर्मिष्ठा के साथ अधिक था। इस प्रसंग में कभी-कभी अपमान भी हो जाता था। शुक्राचार्य अपनी लड़की का अपमान देखकर ययाति को शाप दे दिये "जाओ तुम्हारे ऊपर बुढ़ापा का आक्रमण हो जाय।")

भोजकट देश के राजा दाण्डिक्य अरजा नाम की शुक्राचार्य की लड़की से बलात् विवाह कर लिया। शुक्राचार्य इस अपमान को न सह सके। अतः उन्होंने पर्वत लोष्टों की वर्षा कर उसके देश को नष्ट कर दिया ॥

यत्र च विपत्त्राः सन्ति साधवो न तु तरवः, विजृम्भमाणकमलानि सरांसि न जनमनांसि, कुवलयालंकाराः क्रीडादीर्घिका न सीमन्तिन्यः, विपदाक्रान्तानि सरित्कूलानि न कुलानि ॥

यत्रेति ॥ विपदस्त्रायन्त इति विपत्त्राः सन्तः न वृक्षा विपर्णाः। एवं विकसत्कमलानि। न तु कुत्सितो विजृम्भमाणः प्रसरन्मलः पापं येष्विति। यद्विश्वः—'मलं किट्टे पुरीषे च पापे च कृपणे मलः।' कुवलयं सरोजं कुत्सितवलयं च। वीनां पदैराक्रान्तानि कूलानि। कुलानि तु न विपदा विपत्त्या ॥

जहाँ साधु लोग विपत्त्र (विपत्ति से त्राण करने वाले) हैं, पेड़ विपत्त्र (पत्रहीन) नहीं हैं। सरोवरों में कमल विजृम्भित (विकसित) हो रहे हैं; किसी मानव के मन में क (कुत्सित) मल का विकास होने नहीं पाता। क्रीडासरों के अलङ्कार कुवलय (कमल) हैं; सौभाग्यवती स्त्रियों का अलङ्कार कु (कुत्सित) वलय (कंकण) नहीं है। वि + पत् (पक्षियों के चरणों) से आक्रान्त नदियों के तट हैं; किसी का कुल विपत् (आपत्ति) से आक्रान्त नहीं है ॥

किं बहुना—

देशानां दक्षिणो देशस्तत्र वैदर्भमण्डलम्।
तत्रापि वरदातीरमण्डलं कुण्डिनं पुरम् ॥ २८ ॥

देशों में (महान्) दक्षिण देश, उसमें भी (रमणीयतम) विदर्भ (बरार) उसमें भी वरदा तीर को अलंकृत करने वाला कुण्डिन नाम का नगर है ॥ २८ ॥

तत्रास्ति समस्तरिपुपक्षक्षोददक्षदक्षिणक्षोणीपालमौलिमाणिक्य-निकषनिर्मलितचरणनखदर्पणश्चतुरुदधिपुलिनचक्रवालवालुकासंख्य-संख्यविख्यातकीर्तनीयकीर्तिसुधाधवलितवसुंधरावलयो निजभुजपञ्ज-रान्तरनिरुद्धशारिकायमाणरणरङ्गाङ्गणार्जितोर्जितजयश्रीः, यौवनमदम-त्तकान्तकुन्तलविलासिनीनयननीलोत्पलदलमालार्च्यमानलावण्यपुण्य-प्रतिमः, रविरिव नासत्यजनकः, पुरंदर इव नाकविख्यातः, गरुत्मानि-व नागमाधिक्षेपी, पद्मखण्ड इव नालसहितः, व्याकरणप्रबन्ध इव नामसंपन्नः, धाम धाम्नाम्, आधारो धीरतायाः, पुरं पुरुषकारस्य, आश्रयः श्रेयसां, श्रियां श्रुतीनां च, राजा रणाङ्गणेष्वगणितभी-र्भीमो नाम ॥

तत्रेति ॥ तत्र कुण्डिने रिपुपक्षक्षोदप्रवीणानामप्यनुकूलानां राज्ञां मौलिमणिनिक-षनिर्मार्जितनखादर्शः। तथा चतुरुदधिद्वीपपुञ्जवालुकावदसंख्यसंख्येष्वनेकरणेषु विख्यातकीर्त्यैव सुधया शुभ्रितभूमण्डलः। तथा जयश्रीः सारिकोपमा यस्य। एवंविधो भीमो नाम राजास्ति ॥ कुन्तलस्य देशविशेषस्य विलासिन्यः लावण्यमेव पुण्यप्रतिमा। रविरिवेति। सर्वत्र नेति भिन्नम्। असत्यवक्ता न। अकविषु कुकविषु न प्रतीतः। आगमाञ्शास्त्राणि न तिरस्करोति। अलसेभ्यो हितः। आलेनानर्थेन सहितो वा न। आमेन रोगेण न युक्तः। पक्षे नासत्ययोर्देववैद्ययोर्जनकः पिता। नाकः स्वर्गः नागानां सर्पाणां मां लक्ष्मीमधिपतिं लुम्पति। नालं काण्डम्। नाम प्रातिपदिकम् ॥

वहाँ भीम नाम का राजा हैं, उसके पदनख समस्त शत्रु पक्ष को नष्ट कर देने में प्रवीण एवम् उदार दक्षिण नरपतियों के मणिनिकष स्वरूप शिर से दर्पण की तरह निर्मल बना दिये गये हैं, चारों समुद्र के तट मंडल पर छोटे छोटे बालुओं के कण की तरह असंख्य, प्रसिद्ध एवं वर्णनीय कीर्ति सुधा से उसने पृथ्वी मण्डल को स्वच्छ कर दिया है। रणाङ्गण के रङ्गमञ्च पर उद्दीप्त विजयलक्ष्मी को जीतकर अपने बाहुदण्ड रूप पिंजड़े में शारिका की तरह पकड़ कर रक्खा है। यौवन से मदमाती कुन्तल देश की मनोहर रमणियों के नयन रूप नीलकमलों की माला से उसकी सौन्दर्यमयी पवित्र मूर्ति पूजित हो रही है। रवि जैसे नासत्य जनक (अश्विनीकुमार के जनक) हैं वैसे राजा भी नासत्यजनक (असत्य का जनक नहीं) है। पुरन्दर (इन्द्र) जैसे नाक (स्वर्ग) में विख्यात हैं वैसे वह भी न + अकवि (साधारण कवियों में नहीं) ख्यात (प्रसिद्ध) है। गरुड़ जैसे नाग + की (सर्पों की लक्ष्मी) को समाप्त कर देता है वैसे राजा भी आगम (वेदों) का अधिक्षेप (निन्दा) नहीं करता है। पद्म खण्ड जैसे नालसहित (कमलदण्ड से युक्त) है वैसे वह भी न अलसहित

(आलसी आदमियों का हितकर नहीं) है। व्याकरणशास्त्र जैसे नाम सम्पन्न (प्रातिपदिकों से युक्त) है वैसे वह भी न + आम + सम्पन्न (रोग से सम्पन्न नहीं) है। तेजों में एक विशिष्ट तेज है। धैर्य का आधार है। वीरता पूर्ण कार्यों में अग्रणी है। मङ्गलों, सम्पत्तियों और श्रुतियों का आधार है। युद्ध के मैदान में असंख्यों में भय उत्पन्न कर देता है॥

यस्यानवरतमुत्कृष्टालयः क्रीडावनपादपाः पौरलोकश्च, अपरुषो दायादा वाग्विभवश्च, विमत्सरा सभासदो देशश्च, विकसद्रुचयोऽङ्गावयवाः क्रीडापर्वतश्च अपराजयो मण्डनमणयः सेनासमूहश्च, अगतरुजो वने विनाशमन्वभवन्नितान्तं रिपवः पुष्पप्रकरश्च॥

यस्येति॥ अत्र बहुत्वैकत्वश्लेषः॥ उत्प्राबल्येन। अर्थात्सौरभजनितेन कृष्टा आनीता अलयो यैः। तथोक्तास्तस्य राज्ञः संबन्धिनः क्रीडार्थं वनवृक्षाः। जनस्तु उत्कृष्ट आलयो गृहं यस्य। अपगता रुट् येभ्यः। पक्षे परुषशब्दस्य नञ्तत्पुरुषे अरूक्षः स्निग्ध इत्यर्थः। विगतो मत्सरो येभ्यः एकत्वे तु विमन्ति पक्षियुक्तानि सरांसि यस्मिन्। विकसन्ती रुचिः कान्तिर्येषु। अन्यत्र द्रुवृक्षस्तस्य चयः। अपगता राजिः संधिर्येभ्यः। पक्षे न पराजीयत इत्यच्। अगतरुजोऽगतपीडाः शत्रवः। इतः प्राप्तोऽन्तो मरणं यत्र यथाभूतं विशिष्टं नाशं नशनं भयाददर्शनं वनेऽनुभूतवन्तः। इणः क्ते 'इतः' इति रूपम्। पुष्पप्रकरस्तु पर्वतवृक्षजो वने नितान्तं भृशं प्रध्वंसमनुबभूव। अन्वनुभवन्नितान्तमिति ह्यस्तन्या बहुत्वैकत्वयोः॥

उसके उपवन के वृक्ष (अपने सौरभ से) अलियों (भ्रमरों) को खींच लिये हैं और उसके प्रजा लोग उत्कृष्ट आलय (भवनों) से सम्पन्न हैं। दायाद भी वहाँ अपरुष (प्रेमपूर्वक) रहते हैं और वाणी भी अपरुष मधुर है। सभा के सदस्य लोग विमत्सर (मात्सर्य रहित) हैं और उसका देश भी विमत्सर (मछलियों से युक्त सरोवरों से सम्पन्न) है। अङ्गावयव विकसद्रुचय (छिटकती हुई कान्ति समूह से युक्त) हैं और क्रीडाशैल भी विकसद् + द्रु + चय (खिलती हुई वृक्ष पंक्तियों से सम्पन्न) है। अलङ्कारों के मणि अपराजयः (जोड़ से हीन) हैं। अलङ्कारों में खण्डित मणियों का योग नहीं है। सेनासमूह भी अपराजय (पराजय प्राप्त करने वाला नहीं) है। अगत रुज (पीड़ा सम्पन्न) शत्रु वन में विनाश का अनुभव किये हैं और अगतरुज (कान्ति युक्त) फूलों का वर्ग भी वन में पर्याप्त विनाश का अनुभव किया है॥

तस्य च कंदर्पकमनीयकान्तेर्मत्ताः करिणः सदामानो न मानिनीलोकः, कृतविटपानमनाः क्रीडोद्यानतरवो नावरोधजनः, कटकालंकृतदोषः सीमन्तिन्यो न परिपन्थिकः॥

तस्य चेति ॥ सह दाम्ना अर्गलेन। पक्षे सदा मानो गर्वो यस्य। विटपानां विस्ताराणामानमनं कृतं तद्यैः। अन्यत्र कृतं विटानां पाने चुम्बने मनो येन। कटकैर्वलयैरलंकृतौ दोषौ बाहू यासाम्। परिपन्थी तु न स्कन्धावारेऽलमत्यर्थं कृतोपद्रवः ॥

कामदेव की तरह सुन्दर कान्ति वाले उस राजा के हाथी सदाभान (अर्गला बन्धन से युक्त) हैं किन्तु मानिनी लोक (नारीजन) सदा + मान (हमेशा मान सम्पन्न) नहीं रहता। विहारवन के वृक्ष कृतविटपानमन (अपनी शाखाओं से नपे हुए) हैं। अन्तःपुरकी स्त्रियां विट + पान + मन (धूर्तों के चुम्बन में मन लगायी हुई) नहीं हैं। सौभाग्यवती स्त्रियों के हाथ वलयों से अलंकृत हैं। कोई परिपन्थी (विरोधी) आदमी कटक (सेना) में पर्याप्त उपद्रव न कर सका है ॥ नारियों में शृङ्गार उत्पन्न करता है अरियों में नहीं ॥

यस्य च चरणाम्भोजयुगलं विमलीक्रियते नमज्जनेन न मज्जनेन ॥
यः शृङ्गारं जनयति नारीणां नारीणाम् ॥
यः करोत्याश्रितस्य नवं धनं न बन्धनम् ॥
यो गुणेषु रज्यते न रमणीनां नरमणीनाम् ॥

यस्य चेति ॥ नमता जनेन न क्षालनेन। एतेन जनानुरागसंपत्तिः। एवमग्रेऽप्युत्तरपदेषु नञ्संबन्धः ॥

यस्य च नमस्याग्रहारेषु श्रूयते नलोपाख्यानं न लोपाख्यानम् ॥

यस्य चेति ॥ नलस्योपाख्यानं भारतप्रतीतम्। नमस्यानां पूज्यानां देवद्विजादीनां ग्रामेषु लोपकथा नैव ॥

अपने आश्रितों को नवधन (नवीन धन) देता है, बन्धन नहीं देता ॥
नरमणियों (उत्तम पुरुषों) के गुणों में अनुरक्त रहता है रमणियों में नहीं ॥

पूज्य लोगों के यहां नल का ही आख्यान (वृत्तान्त) सुना जाता है। किसी अच्छी कहानी के लोप का वृत्तान्त नहीं सुना जाता ॥

यस्य च राज्ये साक्षरस्य पुस्तकस्य बन्धः, सगुणस्य कार्मुकस्याकर्षणम्, सुवंशप्रभवस्य छत्रस्य दण्डः, सुजातेरुद्यानविशेषस्योत्खननम्, कुलीनस्य कन्दस्योन्मूलनारम्भः, सन्मार्गलग्नस्य पुनर्वसुभाजश्चन्द्रस्यैव ग्रहणालोकनमभूत ॥

यस्य चेति ॥ साक्षरः लिखिताक्षरः अधीताक्षरश्च। गुणो ज्या शौर्यादिश्च आकर्षणं कर्णान्तप्रापणम् आक्षेपश्च। वंशो वेणुरन्वयश्च। दण्डो यष्टिर्दमनं च। जातिर्मालती विप्रादिश्च। उत्खननं वृक्षपुष्टय आलवालमार्दवायोत्कृष्टं खननं गोर्दनमिति प्रतीतम्। पक्ष उच्छेदनम्। कुलीनः कौ क्षितौ लीनोऽभिजातश्च। सद्भिद्यमानं मृगस्येदं मार्गम्। लग्नं सक्तं संयोगो यस्य। पुनर्वसु नक्षत्रम्।

ग्रहणं राहुयोगः। पक्षे सन्मार्गः सदाचारः। पुनरिति भिन्नम्। वसुभाग्धनी। ग्रहणं धारणम्। सन्निश्यतान्वितो मार्गः। अर्थालभ इति वा। व्याख्यानगतिर्यथा। साक्षरस्य वर्णोपेतस्य पुस्तकस्यैव बन्धनं न जनस्येति॥

जिसके राज्य में साक्षर (अक्षरयुक्त) पुस्तकों को बाँधा जाता है, और किसी को बन्धन में नहीं डाला जाता। गुण (मौर्वी) युक्त धनुष् कोटि को ही (कानों तक) खींचा जाता है, किसी गुणी व्यक्ति को नहीं खींचा (घसीटा) जाता। सुन्दर बांस से निकले हुए (बांस) का छत्र दण्ड बनाया जाता है, किसी सुन्दर कुल में उत्पन्न व्यक्ति को दण्ड नहीं किया जाता। सुजाति (मालती आदि) पुष्पों के (पौधों) को पुष्ट करने के लिये उसके मूल के पास की मिट्टी का खनन किया जाता है, किसी सुन्दर जाति में उत्पन्न व्यक्ति का खनन नहीं किया जाता। कु (पृथ्वी) में लीन कन्द को उखाड़ने के लिये यत्न किया जाता है, किसी कुलीन व्यक्ति को जड़ से उखाड़ने का यत्न नहीं किया जाता। मृगशिरा और पुनर्वसु नक्षत्र से संयुक्त चन्द्र पर ही ग्रहण देखा गया है, किसी सज्जन धनी को अर्धचन्द्र नहीं लगाया जाता॥

किं बहुना—

देवो दक्षिणदिङ्मुखस्य तिलकः कर्णाटकान्ताकुच-
क्रीडाशैलमृगः प्रतापकदलीकन्दः स किं वर्ण्यते।
यस्यारातिकरीन्द्रकुम्भरुधिरक्लिन्नासिदंष्ट्राङ्कुरा-
शौर्यश्रीर्भुजदण्डमण्डपतले सिंहीव विश्राम्यति॥ २९॥

और अधिक क्या कहें—

(राजा भीम) दक्षिण दिशा का मुख तिलक है। कर्णाटकदेश की (रमणियों के कुच रूप क्रीडाशैली का मृग है) प्रताप कदली का मूल है। अधिक क्या कहें, उसकी शौर्यलक्ष्मी रूप सिंही उसके भुज मंडप के नीचे शत्रु रूप गजेन्द्र के कुम्भस्थल के रक्त से तलवार रूप दांतों को आर्द्र कर विश्राम कर रही हैं॥

[सिंही जैसे किसी गजेन्द्र को मारकर खून से अपने दांतों को लथपथ कर पेड़ के नीचे विश्राम करती है उसी तरह भीम की शौर्यलक्ष्मी उसकी भुजा में शत्रुओं को मार कर तलवार रूप दांतों को रक्त रञ्जित कर विश्राम कर रही है॥ २९॥]

तस्य च महामहीपतेरात्मरूपापहसितसमस्तसुरसुन्दरीसौन्दर्यसारसंपत्तिकलकुलकन्दलीकंदर्पदर्पगजेन्द्रावष्टम्भस्तम्भयष्टिरखिलजननयनकुरङ्गवागुरा रामणीयकपताकायमानोद्भिन्नवयौवनश्रीः, शृङ्गारस्यागारम्, अवनिर्वनिताविभ्रमाङ्कुराणाम्, आभोगः सौभा-

डॅ. मूल कन्दली

ग्यभागस्य, रङ्गशाला रागवृत्तनृत्तस्य, सर्वान्तःपुरपुरंध्रिकाप्रधानभूताऽस्ति प्रिया प्रियङ्गुमञ्जरी नाम ॥

तस्येति ॥ भीमस्य प्रिया प्रियङ्गुमञ्जरी नामास्ति ॥

उस महाराज (भीम) की प्रिया का नाम प्रियङ्गुमंजरी है जिन्होंने अपने सौन्दर्य से समस्त देव-रमणियों के सौन्दर्य रूपी उत्तम संपत्ति को तिरस्कृत कर दिया है। (देवांगनाओं के रूपापहास रूप) कलङ्क समूह के मूल से निकले हुए अङ्कुर का कदली स्तम्भ है।

कामदेव रूपी मतवाले हाथी को रोक रखने के लिए स्तम्भ दण्ड है। समस्त मानव-नयन रूपी मृगों के लिए बन्धन-जाल है। उनकी खिली हुई यौवन लक्ष्मी सुन्दर पताका की तरह (सर्वोच्च) है। वह शृङ्गार का भवन है। रमणी सुलभ विभ्रमाङ्कुरों की भूमि है। सौभाग्य के अंश का विशाल रूप है। प्रेमात्मक नृत्त की रङ्गभूमि है। अन्तःपुर की सभी कुलांगनाओं में प्रधान है ॥

यस्याः पद्मानुकारिणी कान्तिर्लोचने च, रम्भाप्रतिस्पर्धिनी रूपसंपत्तिरूरुमण्डले च, सुमनोहारिणी केशकबरी भ्रूभंगचक्रे च, भ्रमरकोद्भासिनी ललाटपट्टिका कर्णोत्पले च, प्रवालुकाकारिणी दन्तच्छदच्छाया करचरणयुगले च ॥

यस्या इति ॥ अत्र प्रथमैकत्वद्वित्वयोः स्त्रीक्लीवयोश्च श्लेषः। सर्वत्र नान्तत्वात्। पद्मा श्रीः पद्ममब्जम्। रम्भा अप्सरोन्तरं कदली च। सुमनसः पुष्पाणि। पक्षे सुशब्देन समासः। भ्रमरकं ललाटस्थमलकं भृङ्गश्च प्रवालो विद्रुमः पल्लवश्च ॥

जिसकी कांति तथा लोचन दोनों कमल की तरह हैं। रूप संपत्ति रम्भा (स्वर्गीय अप्सरा) से स्पर्धा करती है तथा ऊरु (जंघा) मण्डल रम्भा (केलों) से स्पर्धा रखते हैं। केशों की वेणी सुमनोहारिणी (फूलों से ग्रथित) है, भौहों की भंगिमा भी सुमनोहारिणी (मनोहर) है। ललाटभ्रमरक (बालों) से सुशोभित हैं। कानों में लगे हुए कमलभ्रमरों से सुशोभित हैं। प्रवाल (मूंगों) की तरह दन्तकान्ति है। हाथ-पैर भी प्रवाल (किसलय पत्र) की तरह हैं ॥

यस्याः सुवर्णमयं वचनं नूपुरं च पदे पदे मनो हरति ॥

यस्याः सुमधुरया वाचा सदृशी शोभते कण्ठे कुसुममालिका। अलिकालयाऽप्यलकवल्लरीमालया सह विराजते तिलकमञ्जरी ॥

यस्या इति ॥ सुष्ठु वर्णोऽकारादिः सुवर्णं च। तेन निर्वृत्तं पदं प्रकृतिविभक्तिसमुदायः पादन्यासश्च ॥

यस्या इति ॥ अत्र तृतीयाप्रथमयोः श्लेषः। सुष्ठु मधुनो मकरन्दस्य रयः

प्रसरो यत्र। अलिकं ललाटमालयः स्थानमस्याः सा तिलकमेव मञ्जरीति रूपकम्। तृतीयापक्षे अलिवत्कालो वर्णो यस्याः। यदा त्वलिवत्कालेति क्रियते तदा ङीप् प्रसज्येत॥

जिनका सुवर्णमय (सुन्दर वर्णों से संपृक्त) वचन तथा सुवर्णमय (सुवर्ण से बना हुआ) नूपुर (चरणभूषण) प्रत्येक पद पर मन का हरण करता है॥

जिसकी सुमधुर वाणी की तरह सु-मधु-रया (सुन्दर पराग राशि वाली) पुष्पमालिका कण्ठ में सुशोभित होती है। अलिक (ललाट) ही है आलय (घर) जिनका वह तिलक रूप मञ्जरी अलिवल्लरी (बालरूपी लता) के साथ अच्छी लगती है। अथवा—अलियों (भ्रमरों) का आलय तिलक (वृक्ष) की मंजरी अलक (केशों) की वल्लरी (वेणी) के साथ सुशोभित हो रही है॥ २९॥

किं बहुना—

तस्याः कान्तिनिरुद्धमुग्धहरिणीलीलाचलच्चक्षुष-
स्तारुण्यस्य भरादनालसलसल्लावण्यलक्ष्मीरसः।
लुभ्यल्लोकविलोचनाञ्जलिपुटैः पेपीयमानोऽपि स-
त्वङ्गेष्वेव न माति सुन्दरतरो रङ्गंस्तरङ्गैरिव॥ ३०॥

तस्या इति॥ आ समन्तादलस आलसः। पश्चान्नञ्योगः। तस्या लावण्यलक्ष्मीरसः सुन्दरतरश्चारुतरः तरङ्गै रङ्गन्विलसन्निव। रसो हि भरादजिह्मो लसति तरङ्गैश्च रङ्गति॥ ३०॥

अपने सौन्दर्य में पूर्ण मुग्ध हरिणी के विलासकालीन चंचल नेत्रों की तरह नेत्रवाली उस नायिका के सौन्दर्य को पूर्णता तथा आलस्यहीनता से सौन्दर्य लक्ष्मी का रस उल्लसित हो रहा है। सस्पृह लीन अपनी नयनाञ्जलि से उस रस को बार-बार पीते हैं फिर भी वह अतिशय सुन्दर (सौन्दर्य) रस उसके शरीर में सदा तरंगित होता हुआ अंगों में अँटता-सा नहीं है॥ ३०॥

एवमनयोः सकलसंसारसुखरसास्वादमुदितमनसोर्यान्ति दिवसाः॥

इस तरह संपूर्ण संसार सुख के रसास्वादन से प्रसन्न चित्त वाले इन दोनों के दिन (सकुशल) बीत रहे हैं॥

कदाचिच्चटुलतरतरुणषट्चरणचक्रचुम्बनाक्रमणभरभज्यमानमञ्जरीजालगलदमन्दमकरन्दबिन्दुकर्दमितेषु विविधाङ्गविहङ्गविहारविदलितदलदन्तुरान्तरालेषु स्मरबन्धुसुगन्धिगन्धवाहवाजिवाह्यालीषु वरदायाः पुण्यपुलिनपालिपादपतलेषु रममाणयोः परिणतेन्द्रवारुणारुणकपोलकान्तिरुद्घुषितदेहपिण्डकण्डूयनाकूततरलितकरकिसलया बालकमेकमुदरदेशलग्नमपरमपि पृष्ठप्रतिष्ठितमुद्वहन्ती कापि कपिकुटुम्बिनी दृष्टिपथमवातरत्॥

कदेति ॥ मधुबिन्दुकर्दमवस्तु। पर्णदन्तुरमध्येषु। सुगन्धिगन्धवाह एव वाजी तस्य बाह्यालिप्रायेषु। वरदातटतलेषु क्रीडतोरमुयोः कपिपत्नी इन्द्रवारुणीफलपिङ्गगल्लकान्तिर्वानरी नयनपथं गता दृष्टेत्यर्थः ॥

किसी समय अत्यन्त चंचल युवक भ्रमरों ने मञ्जरियों के चुम्बन के लिए आक्रमण किया। पराग-कोष को भग्न कर दिया। उससे (मञ्जरी) से जोरों से पराग बिन्दु की धारा निकली और (वरदा नदी के तट प्रदेश के पेड़ों को) पंकिल बना दिया। विभिन्न अङ्गों से विहङ्गों ने विहार किया। इस लिए उनका कोई एक देश दन्तुर (ऊँचा-नीचा) हो गया। कामदेव के साथी सुगंधित वायु रूप घोड़ों के लिए बाह्याली (विश्राम गृह रूप) वरदा नदी के पवित्र तट पंक्ति के पेड़ों के नीचे विहार करते हुए दम्पती की दृष्टि में एक पके हुए इन्द्रवारुणी फल की तरह लाल कपोल कांति वाली चमकीली देह को खुजलाने की उत्कण्ठा से नवीन पत्र जैसे चञ्चल हाथों वाली एक बच्चे को पेट में सटाई हुई तथा दूसरे को पीठ पर रख कर ढोती हुई कोई वानर-पत्नी दिखायी पड़ी ॥

तां चावलोक्य चेतस्यास्पदमकरोत्तयोरनपत्ययोर्विषमविषादवेदनाव्यतिकरः ॥

तामिति ॥ तां च वीक्ष्य विषादव्यथासंपर्को हृदि पदमकरोत् ॥

उसे देखकर उन सन्तानहीन दंपतियों के चित्त में असह्य वेदना के संस्पर्श ने घर कर लिया ॥

करपत्त्रधाराकर्तनदुःसहदुःखदूनमनसोर्वैमनस्यमभूद् भूम्नि राज्ये जने जीविते च। किमनेनाधिपत्येनापत्यशून्येन ॥

आरा से काटने से जैसा दुःख होता है वैसे दुःख का अनुभव करते हुए दम्पती का विशाल राज्य, परिजन तथा अपने प्राणों से भी मन हटने लगा। सन्तान से हीन इस आधिपत्य से क्या लाभ ॥

सर्वथा सकलसुरासुरकिरीटकोटीकोणशोणमणिमरीचिचञ्चरीकचुम्बितचरणाम्बुजमम्बिकाप्रियं प्रतिपद्यामहे महेश्वरमित्यन्योन्यमालोचयांचक्रतुः ॥

समस्त देवताओं तथा दानवों के मुकुट के ऊपर के एक भाग में लगे हुए लाल मणि की कान्ति रूपी भ्रमर द्वारा जिनका चरण-कमल चुम्बित है तथा जो महेश्वर (सबसे बड़े स्वामी) हैं ऐसे अम्बिका (पार्वती) प्रिय भगवान् शंकर की सब तरह से आराधना करेंगे ऐसा कहते हुए एक दूसरे को देखे ॥

अथ विपुलवियल्लिलङ्घनश्रमप्रशमनार्थमरुणेन वारुणीं प्रतिपानार्थमिवावतार्यमाणेषु रविरथतुरंगमेषु, अपरासक्ते दिवसभर्तरि शोकभरा-

दिव तमःपटलेनापूर्यमाणामाश्वासयितुमिव पूर्वां दिशमभिधावमानासु पादपच्छायासु, हारीतहरितहरिद्वारिणस्तरणेररण्यान्तराच्च मन्दमपवर्त्तमानेषु गोमण्डलेषु, अस्ताचलवनदेवतादत्तरक्तचन्दनार्घसलिलप्लवप्लाव्यमान इव लोहितायति पश्चिमाशामुखे, वारविलासिनीभिः कपोलमण्डलीमण्डनाय क्रियमाणेषु पत्त्रभङ्गेषु, भयेनेव पादपैः प्रारब्धे पत्त्रसंकोचकर्मणि, विघटिष्यमाणचक्रवाककामिनीकरुणकूजितव्याजेन दिवसभर्तुरस्ताचलगमनं निवारयन्तीभिरिव विरहविधुराभिः कमलिनीभिर्विधीयमानेषु प्रार्थनाप्रणामाञ्जलिपुटेष्विव कमलमुकुलेषु, क्रमेण पश्चिमाम्भोधितरङ्गान्तरतस्तरुणतरताम्रतामरसानुकारिकेसरायमाणरश्मिमञ्जरीजालजटिलमवलोक्य तरणिमण्डलमतिसंभ्रमभ्रमद्भ्रमरनिकुरम्ब इव प्रधावमाने दूरं तिमिरपटले, कृष्णागुरुपङ्कपत्त्रभङ्गभूष्यमाणेष्विव दिगङ्गनामुखेषु, कोकिलकलापैराक्रम्यमाणेष्विव घनान्तरेषु, विकचकुवलयवहलमेचकरुचिनिचयश्यामलीक्रियमाणेष्विव सलिलाशयेषु, तापिच्छगुच्छच्छदच्छाद्यमानास्विव वनवृतिषु, नृत्यत्कलापिकुलकलापैः कालाक्रियमाणेष्विव शैलशिरःशिलातलेषु, कज्जलालेख्यचित्रचर्च्यमानास्विव भवनभित्तिषु, विरहिणीनिःश्वासधूमश्यामलीक्रियमाणेष्विव पान्थावसथेषु, कस्तूरिकासलिलसिच्यमानास्विव कामुकविलासवासवेश्मवाटीषु, मदान्धसिन्धुरनिरुध्यमानेष्विव नृपभवनाङ्गनेषु, कलितकालकञ्चुकायामिव गगनलक्ष्म्याम्, मदनशरनिकरविद्रुतदरिद्रविटविषादानलस्फुलिङ्गेष्विव रक्तासु ज्योतिरिङ्गणेषु, काश्चनासु तिमिरकरिकुम्भभेदभल्लीष्विव निशितासु प्रदीप्यमानासु प्रदीपकलिकासु, प्लवमानापाण्डुपुण्डरीककल्माषितकालिन्दीपरिस्यन्दसुन्दरेऽमृतमथनक्षणक्षुब्धक्षीरसागररसबिन्दुस्तबकितनारायणवक्षःस्थल इव कांचिदपि श्रियं कलयति ताराविराजिते वियति, विटक्रान्तमनुसरन्तीषु वेश्यासु वेश्मपारावतपतत्त्रिपंक्तिषु च, भ्रमरसङ्गतासु कुलटासु कुमुदिनीषु च, नदीपालिविरहितेषु चत्वरेषु चक्रवाकमिथुनेषु च, जाते जरद्रवयकायकालकान्तिकाशिनि निशावतारे, तरुणतमालकाननमिवाञ्जनगिरिगुहागर्भमिवेन्द्रनीलमणिमहामन्दिरोदरमिव विशति सकलजीवलोके स लोकेश्वरः 'प्रिये प्रियङ्गुमञ्जरि, प्रसादय प्रणतप्रियकारिणमभङ्गानङ्गदर्पहरं हरम्। अहं च तदाराधनावधानामनुविधास्यामि' इत्यभिधाय यथावासमयासीत्॥

अथेति॥ अथानन्तरं श्रमशान्त्यर्थं वारुणीं पश्चिमां प्रति लक्ष्यीकृत्य नीयमानेषु रविरथाश्वेषु। प्रतिपानपक्षे वारुणी सुरा। अपरा दिग् अङ्गनान्तरं च।

तमो मोहो ध्वान्तं च। तथा गोमण्डलेषु किरणौघेषु च। यथासंख्यं रवेर्वनान्तराच्च मन्दं चलमानेषु। द्वयादपि कीदृग्रूपात्। हारीताः शुकाभाः पक्षिणस्तद्वद्धरिता नीला ये हरयोऽश्वास्तैर्गच्छति। तस्मात्। वनाच्च हारीतैः शुकाभपक्षिभिर्हरितैः शाद्वलैर्हरिभिर्वानरैश्च हारिणो मनोज्ञात्। रक्तचन्दनार्घैः प्रस्तावाद्रवेरेव। पत्त्रभङ्गो विलेपनचित्रं पत्त्रवल्लीसंज्ञंपर्णानां भञ्जनं च। तथा काञ्चिदपि श्रियं शोभां नारायणवक्षसि तु श्रियमब्धिपुत्रीं प्राप्नुवति नक्षत्रालङ्कृते नभसि। कालिन्दीपरिस्यन्दो नारायणवक्षश्च वियत उपमानम्। पाण्डुपुण्डरीकाणि क्षीररसबिन्दवश्च ताराणाम्। परिस्यन्दः प्रस्रवणम्। प्रवाह इति यावत्। विटो भुजंगः। कान्तः पतिः। पक्षे पक्षिणामावासयष्टेरुन्नतोऽशो विटङ्कस्तस्यान्तः। भ्रमो भ्रमणं तत्र रसस्तात्पर्यम्। अन्यत्र भ्रमरा भृङ्गाः। नेति भिन्नम्। पक्षे नदीनां पालिः सेतुः। इतीति, सति स राजा यथावासमयासीत्। किं कृत्वा हे प्रिये, प्रसादय हरमहमपि तदाराधनमनुपृष्ठलग्नः करिष्यामीत्यभिधाय॥

विशाल आकाश के लांघने में जो परिश्रम हुआ था उसको शांत करने के लिए (भगवान्) सूर्य ने वारुणी (पश्चिम दिशा रूपी) नायिका का चुम्बन करने के लिए अपने रथ के घोड़ों को उतार रहे हैं। सूर्य रूपी पति के दूसरी नायिका में आसक्त होने से मानो शोक मग्न अंधकारसमूह से भरी हुई पूर्व दिशा को आश्वासन देने के लिए पेड़ों की छाया उसी ओर दौड़ी जा रही हैं। हरितों (शुकों) की तरह हरित (हरे रंग के) हरि (घोड़ों) द्वारा हारि (ले जाये जा रहे, सूर्य के गोमण्डल (किरणों के) धीरे-धीरे दूसरे जङ्गलों से मुड़ जाने पर हरित शुकों के कारण हरे तथा हरि (वानरों) के कारण हारि मनोहर ढंग से ढंके हुए जंगलों से गोमण्डल (गायों) के लौट जाने पर, अस्ताचल की वनदेवता द्वारा दिये गये रक्त चंदन के अर्घ्य जल में नौका द्वारा लाल एवं विशाल पश्चिम दिशा (रूपी नायिका) के मुख के तैरते रहने पर, कपोल मंडल को अलङ्कृत करने के लिए वाराङ्गनाओं द्वारा पत्र रचना करते रहने पर मानों भय से वृक्षों के पत्रों को संकुचित करने लगने पर, वियुक्त हो रही चक्रवाक (पक्षी) की रमणी के करुणा पूर्ण क्रन्दन के बहाने दिनपति (सूर्य) के अस्ताचल गमन को मानो रोकती हुई विरह के कारण खिन्न कमलिनियों द्वारा अपनी संकुचित मुकुलरूपी प्रणामाञ्जलि के माध्यम से प्रार्थना किये जा रहने पर क्रम से पश्चिम समुद्र की लहरियों में तरुण तट (अत्यन्त विकसित) (सूर्य रूपी) तामरस (कमल) की किरण समूह रूपी मकरन्द मञ्जरी के जाल को देखकर सूर्यमण्डल के पास बहुत जल्दी ही अंधकारसमूह रूपी भ्रमर समूह के दौड़ते रहने पर कृष्णागुरु के पङ्क से निर्मित पत्र रचना से दिशा रूपी नायिका मुख के अलंकृत हो जाने पर, विभिन्न वनों में मानों कोकिल समूह के आक्रमण करते रहने पर खिले हुए नील कमल की गाढ़ी

नीली कान्ति राशि से सरोवरों के नीले किये जाते रहने पर, सप्तपर्ण के गुच्छे पत्ते वन की लतायें मानो ढँकी जा रही हैं। नाचते हुए मयूरों के पंखों से पर्वतों के उच्चतर शिलाखण्डों के मानो काले किये जाते रहने पर, भवनों की दीवालों पर कज्जल से अंकित करने योग्य चित्र अंकित किये जाते रहने पर, पथिकों का मार्ग विरहिणियों के निःश्वास धूम से काले किये जाते रहने पर, कामुकों के विलास गृह के कक्ष को कस्तूरी के जल से सींचे जाते रहने पर, मतवाले सिन्धुर (हाथियां) द्वारा मानो राजभवन के विभिन्न भागों के घिरे जाते रहने पर, आकाश लक्ष्मी के काली कञ्चुकी (कुर्ती) पहन लेने पर, काम बाण से सर्वथा विद्ध दरिद्र कामुकों के विषाद (क्लेश) रूपी अग्नि से निकले हुए स्फुलिङ्गों के चलते रहने पर अंधकार रूपी हाथी के कुम्भ स्थल को छेदने के लिये सोने की बनी तीक्ष्ण भल्ली (अंकुश) रूपी दीपकों के जल जाने पर तैरते (उतराते) हुए अपाण्डु (काले) कमलों से कल्माषित (काली की हुई) कालिन्दी (यमुना) की तरह सुन्दर, अमृत मथन के समय क्षुब्ध (व्याकुल) क्षार सागर के रसकणों से नारायण के वक्षःस्थल पर जैसे अपूर्व शोभा हुई थी वैसी शोभा को तारों से युक्त आकाश के धारण कर लेने पर अपने प्रिय वीरों का अनुसरण वेश्याओं के करते रहने पर, घर के पाले हुए कपोत पक्षियों के विटङ्क (कपोत घोसले) में चले जाने पर, कुलटा (स्वेच्छाचारिणी) स्त्रियों के भ्रमरस (घूमने में रस) प्राप्त करते रहने पर तथा कुमुदिनी के भ्रमर संगत (भ्रमर युक्त) हो जाने पर, दीप पंक्ति से चौराहे के विरहित (शून्य) न रहने पर तथा चक्रवाक के जोड़े से नदी पालि (नदी सेतु) विरहित (शून्य) हो जाने पर, वृद्ध गवय (नील गाय) की शरीर कांति की तरह दिखायी पड़ने वाली रात के आ जाने पर संपूर्ण संसार के मानो प्रौढ़ तमालपत्र के जंगल में (या) अञ्जन पर्वत की कन्दरा में (या) इन्द्रनील मणि से बने विशाल भवन में घुसते रहने पर राजा "प्रिये प्रियङ्गुमञ्जरि! प्रणतों (भक्तों) के प्रिय करने वाले, कामदेव के अखंड अहंकार का हरण करने वाले, भगवान् शंकर को प्रसन्न करो। मैं भी उनके पूजन में ध्यान केन्द्रित करूंगा।" यह कह कर अपने निवास स्थल पर चले गये॥

ततश्च—अखण्डितप्रभावोऽथ प्रदोषेणान्धकारिणा।

तस्याश्चित्ते स्थितः शम्भुरुदयाद्रौ च चन्द्रमाः॥ ३१॥

अखण्डितेति॥ शम्भुशशिनोः श्लेषः। प्रकृष्टदोषेण अन्धकनाम्ना प्रतिपक्षेण। अव्याहतवैभवः। शशी च प्रदोषेण रजनीमुखेन। अन्धत्वविधायिना अन्धकार-युक्तेन वा। न खण्डितः प्रभाता आवो वृद्धिर्यस्य। अत्र अव वृद्ध्यर्थः॥ ३१॥

इसके बाद अत्यन्त दुष्ट अन्धकासुर भी जिसके प्रभाव (महिमा) को खण्डित न कर सका ऐसे भगवान् शंकर उसके चित्त में स्थिर हो गये।

द्वितीय अर्थ—अन्धत्व को लाने वाला प्रदोष (रात्रि का प्रारम्भिक भाग) जिसके प्रभा (प्रकाश) के आव (वृद्धि) को खण्डित न कर सका ऐसे भगवान् चंद्र उदयाचल पर स्थित हो गये ॥ ३१ ॥

बिभ्रते हारिणीं छायां चन्द्राय च शिवाय च।
नभोगरुचये तस्मै नमस्कारं चकार सा ॥ ३२ ॥

बिभ्रत इति ॥ चन्द्रपक्षे हरिणस्येयं हारिणी छाया। कलङ्क इत्यर्थः। नभोगा वियद्व्यापिनी रुचिर्यस्य। शिवस्तु हारिणीं छायां कान्तिम्। तथा भोगे विलासे रुचिरभिलाषो यस्य पश्चान्नञ्योगः ॥ ३२ ॥

नभोगरुचि (आकाश में अपनी कांति फैलाने वाले) हारिणी (हिरण का प्रतिबिम्ब) छाया धारण करने वाले चन्द्रमा को तथा हारिणी छाया (मनोहर कान्ति) को धारण करने वाले और भोग में रुचि न रखने वाले भगवान् शंकर को उसने नमस्कार किया ॥ ३२ ॥

नित्यमुद्वहते तुभ्यमन्तः सारङ्गरञ्जितम्।
भूतिपाण्डुर गोवाह सोम स्वामिन्नमो नमः ॥ ३३ ॥

नित्यमिति ॥ सहोमया वर्तत इति सोमः तस्य संबोधनम्। तद्विशेषणं स्वामिन्निति। तथा भूत्या भस्मना पाण्डुरः शुभ्रः। तथा गौर्वृषो वाहनं यस्य। एवंभूत उमापते। अन्तर्मध्ये। सारमुत्कृष्टम्। गरं कालकूटम्। जितं महिम्ना स्तम्भितशक्ति। 'नित्यमुद्वहते बिभ्राणाय तुभ्यं नमो नमः। अत्र प्रकर्षे द्विवचनम्। सोमश्चन्द्रोऽपि। तदा भवनं भूतिर्जन्म। जन्मना पाण्डुरः स्वभावश्वेतः। तथा गाः किरणान् वहतीत्यण्। पाण्डुराश्च ता गावश्चेति समासे कृते समासान्तो दुर्वारः। अन्तरिति कर्मपदम्। सारङ्गो मृगस्तेन रञ्जितं लाञ्छितमिति तद्विशेषणम् ॥ ३३ ॥

उमा के साथ रहने वाले सोम स्वामिन्! भस्म से शुभ्र रंग वाले! बैल को वाहन बनाने वाले, अन्तःसार (आत्मबल) गर (विष) तथा जित (विशिष्ट शक्ति) को धारण करने वाले आप को मेरा पुनः पुनः प्रणाम।

हे सोम (चन्द्र!) भूति (जन्म) से ही पाण्डुर (सफेद) गोवाह (किरणों को धारण करने वाले) सारङ्गरञ्जित (मृग से भूषित) भगवान् चन्द्र आप को नमस्कार है ॥ ३३ ॥

एवं च नातिचिरात्।

क्षुभ्यत्क्षीरसमुद्रसान्द्रसलिलोल्लोलैरिव प्लावयँ-
ल्लोकं लोचनलोभतः स्मरसुहृज्जातः स चन्द्रोदयः।
यस्मिन्संभृतवैरदारुणरणप्रारम्भिणो भ्राम्यतः
क्रुद्धोलूककदम्बकस्य पुरतः काकोऽपि हंसायते ॥ ३४ ॥

क्षुभ्यदिति ॥ स धवलिताशेषभुवनतलश्चन्द्रोदय उत्प्रेक्ष्यते। क्षुभ्यत्क्षीरसमुद्रसान्द्रसलिलोल्लोलैर्लोकं प्लावयन्निव जातः। क्षीरसमुद्रक्षोभस्य तत्सहचरितत्वात् ॥

इस तरह थोड़ी ही देर में—

क्षीर सागर को खलबलाते हुए गाढ़े जल की तरह संपूर्ण संसार को तैराते हुए आँखों के लुभावने, कामदेव के मित्र चन्द्र का उदय हो गया। जिसमें पर्याप्त शत्रुता के (शोध के लिए) कठिन लड़ाई प्रारंभ करने की कामना से घूमते हुए क्रुद्ध उलूकवर्ग के सामने कौआ भी हंस जैसा दीखता है॥

(उलूक कौओं से लड़ाई करने के लिए रात को खोजते हैं लेकिन चन्द्रमा की अत्यधिक श्वेत किरणों ने कौओं को भी सफेद कर दिया है। अतः वे भी हंस जैसे प्रतीत होते हैं।)॥ २४॥

अपिच—श्च्योतच्चन्दनचारुचन्द्ररुचिभिर्विस्तारिणीभिर्भरा
जातेयं जगती तथा कथमपि श्वेतायमानद्युतिः।
उन्निद्रो दिनशङ्कया कृतरुतः काको वराकः प्रिया-
मन्विष्यन्पुरतः स्थितामपि यथा चक्रभ्रमं भ्राम्यति॥२५॥

श्च्योतदिति॥ सातत्यभ्रमणेन कुलालप्रेषितचक्रवद्भ्रमो यत्रेति भ्रमणक्रिया-विशेषणम्। अथवा चक्रः कोकस्तस्येव भ्रमो यस्य। सोऽपि रात्रौ समीपवर्तिनी-मपि प्रियामन्विष्यन् भ्रमति॥ ३५॥

चूते हुए चंदन की तरह फैलने वाली चंद्र की सुन्दर कान्ति से भरा हुआ संपूर्ण संसार श्वेत की तरह लग रहा है। दिन की भ्रांति से विचारा कौआ जाग उठा है, क्रन्दन कर रहा है; क्योंकि सामने ही बैठी हुई अपनी प्रिया को खोजता हुआ गोलाकार चारों तरफ घूमता है॥

(चन्द्रमा की कांति से उसकी प्रिया भी सफेद हो गयी है। इसी लिए उसे वह पहचान ही नहीं पाता)॥ ३५॥

अपि च—मुग्धा दुग्धधिया गवां विदधते कुम्भानधो वल्लवाः
कर्णे कैरवशङ्कया कुवलयं कुर्वन्ति कान्ता अपि।
कर्कन्धूफलमुच्चिनोति शबरी मुक्ताफलाकाङ्क्षया
सान्द्रा चन्द्रमसो न कस्य कुरुते चित्तभ्रमं चन्द्रिका॥

मुग्धेति॥ बल्लवा बालगोपालाः शबर्योऽन्यारण्यकस्त्रियो विपर्यस्ता भवन्तु। सततपरिचितोत्तंसरचनाः कान्ता उत्तमस्त्रियोऽपि विपर्यस्ता इति, अपिर्विस्मये॥

सीधे स्वभाव के गोपबालक (बल्लव) दूध समझ कर गायों के थनों के नीचे घड़ा रख देते हैं। रमणियाँ भी कुवलय (नीलकमल) को कैरव (सफेद कमल) समझ कर कानों में लगाने लगती हैं। शबरी (किरातिनी) कर्कन्धू (बेर) फल को मुक्ताफल समझ कर चुन रही है। चन्द्रमा की गाढ़ी किरणें किसके चित्त को भ्रान्त नहीं कर देतीं॥ ३६॥

यत्र च—मुक्तादाममनोरथेन वनिता गृह्णन्ति वातायने
गोष्ठे गोपवधूर्दधीति मथितुं कुम्भीगतान्वाञ्छति।

उच्चिन्वन्ति च मालतीषु कुसुमश्रद्धालवो मालिकाः
शुभ्रान्विभ्रमकारिणः शशिकरानपश्यन्न को मुह्यति ॥३७॥

महिलायें वातायन (खिड़की) में (आती हुई चन्द्रिका को) मोती की माला समझ कर पकड़ने लगती हैं। गोपपत्नियाँ गोशाले में वे (हुड़ी) में गई हुई (चन्द्रिका) को मथना चाहती है। मालती के पेड़ों पर पड़ी हुई चन्द्रिका को फूल समझकर मालाकार वधुएँ चुनने लगती हैं। भ्रांति उत्पन्न कर देने वाली चंद्रमा की इन शुभ किरणों को देखकर कौन नहीं मुग्ध हो जाता ॥ ३७ ॥

अपि च—किं कर्पूरकणाः स्रवन्ति वियतः किं वा मनोनन्दिनो
मन्दाश्चन्दनबिन्दवः किमु सुधानिष्यन्दधारा इमाः ।
इत्थं भ्रान्तिममी जनस्य जनयन्त्यङ्गे लगन्तः परा-
मिन्दोः कुन्दविकासिकुड्मलदलस्रक्सुन्दरा रश्मयः ॥३८॥

किमिति ॥ कुन्दस्य विकासिनां कुड्मलदलानां स्रक्। तद्वत्सुन्दरा इति शौक्ल्य-सौकुमार्यातिशयार्थः। जरठकन्दस्य हि दलाग्राणि परुषाण्यरुणानि च भवन्तीति ॥

क्या आकाश से कपूर के कण चू रहे हैं अथवा मन को मुग्ध कर देने वाले चंदन के बिन्दु या ये कोई अमृत के झरने हैं। इस तरह अङ्गों में लगती हुई चन्द्र की ये विकसित हो रहे कुन्ददल की माला सदृश किरणें लोगों में भ्रान्ति उत्पन्न कर देती हैं ॥ ३८ ॥

इति जनितमुदिन्दोः सिन्दुवारस्रगाभं
किरति किरणजालं मण्डले दिङ्मुखेषु ।
हरचरणसरोजद्वन्द्वमाराधयन्ती
शुचिकुशशयनीये साथ निद्रां जगाम ॥ ३९ ॥

इति श्रीत्रिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां
हरचरणसरोजाङ्कायां द्वितीय उच्छ्वासः ॥

इतीति ॥ इत्यमुना प्रकारेण। जनितहर्षम्। निर्गुण्डीकुसुममालाप्रतिमं कर-निकरं दिङ्मुखेषु किरति वितन्वति सतीन्दोर्मण्डले हरं ध्यायन्ती सा दर्भशय्या-यामस्वपत्। समाधिलयं गतेति भावः ॥ ३९ ॥

इति चण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे द्वितीय उच्छ्वासः समाप्तः ॥

सिन्दुवार की माला सदृश कान्ति वाली आह्लादोत्पादिका चन्द्रकिरणें जब दिशाओं में चारों तरफ फैल रहीं थीं भगवान् शंकर के चरण कमल युगल की आराधना करती हुई पवित्र कुश की शय्या पर वह (राजपत्नी) निद्रित हो गयीं (समाधिस्थ हो गयीं) ॥ ३९ ॥

द्वितीय उच्छ्वास समाप्त ।

तृतीय उच्छ्वासः

अथ क्रमेण रजतकुम्भमम्भोभरणार्थमिवेन्दुमण्डलमादाय पश्चिमाम्भोनिधिपुलिनमनुसरन्त्यां तरुणकपोतकंधरारोमराजिराजिन्यां रजन्याम्, अखिलकमलखण्डकमलीनीनां विनिद्रायमाणकमलकुड्मलविलोचनेषु कज्जलरेखास्विवोल्लसन्तीषु भ्रमरराजिषु, राजीवराजिपुञ्जनिकुञ्जे शिञ्जानमञ्जीरमञ्जुलमुञ्जदत्सु शरद्बलाहकवलक्षपक्षविक्षेपपवनतरलिततरुणतामरसेषु दीर्घिकावतंसेषु हंसेषु, क्रेङ्कारयति च चक्रवाकमिथुनमेलकमङ्गलमृदङ्ग इव रौप्यघर्घररवसरसं सारसकुले, अवश्यायजलशिशिरशीकरिणि मन्दान्दोलितविनिन्द्रद्रुमममञ्जरीरजःकणकषायिते तमःसर्पसंदष्टोज्जीवितजगन्निश्वासायमाने प्रस्खलति प्रभातसुरतश्रमखिन्नसुन्दरीकुचमण्डले मरुति, मनोहारिहारीतहरितहये हरिततिमिरपटलपटीं गगनलक्ष्म्याः करपरामृष्टपयोधरे रागवति सवितरि, मृगमदमिलितबहलकुङ्कुममण्डनमञ्जरीभिरिव पिञ्जरिते पुरंदरदिङ्मुखे सुखप्रसुप्ता सा स्वप्नमद्राक्षीत् ॥

अथेति ॥ अनन्तरं किरणसंस्पृष्टमेघे । रागवत्यारक्ते रवौ सुप्ता सती स्वप्नं ददर्श । अन्योऽपि रागवानासक्तः किल पटीमुत्सार्य कराभ्यां स्तनौ स्पृशति । शरद्बलाहकवलक्षाः शरदभ्रधवलाः । क्रेंकारो वाद्यविशेषः ॥

क्रम से युवक कपोतकी गर्दन की रोम पंक्ति की तरह सुन्दर (आकृति वाली) रात जल भरने के लिए चंद्रमण्डल रूप चाँदी का घड़ा लेकर पश्चिम समुद्र के तट पर उतर रही थी। समस्त कमल वनों में कमलिनियों के कुड्मलनयन खिल रहे थे। उनमें कज्जल रेखा सदृश भ्रमर पंक्ति उल्लसित हो रही थी। कमल श्रेणी से संपन्न वन में नूपुर की तरह मंजुल ध्वनि करते हुए दीर्घिका (सरोवर Long canal) के अलंकार हंस शरत्कालीन बादल की तरह अपने श्वेत पंखों की फड़फड़ाहट से उत्पन्न वायु द्वारा पूर्ण विकसित कमलों को तरलित (चंचल) बना रहे थे। सारसों का जत्था (रात के बिछुड़े हुए) चक्रवाक दंपती को मिलाने के लिए मंगल मृदंग रूप में चांदी की झाल सदृश सरस (क्रेंकार) ध्वनि कर रहा था। ओस के शीतल कणों से संयुक्त मंद-मंद कंपित वृक्ष मंजरियों के पराग बिन्दुओं से कषायित अन्धकार रूप काले सर्प के काट लेने से (मूर्च्छित) सम्पूर्ण जगत् के जागरण के अवसर पर श्वास की तरह प्रतीत होता हुआ पवन प्रातःकाल सुरतश्रम से थकी हुई सुन्दरियों के

स्तन मंडल पर प्रस्खलित (धीरे-धीरे वह रहा) था। मनोहर हारीत शुक्र सदृश हरे घोड़ों वाले भगवान् सूर्य गगन लक्ष्मी के अंधकार-समूह रूप वस्त्र को हटाकर (किरण रूप हाथों) से पयोधर (मेघस्तन) का स्पर्श कर रागवान् हो रहे थे। कस्तूरी मिश्रित गाढ़े कुङ्कुम रूप अलङ्कार से निकली हुई मंजरी से पुरन्दर दिशा (पूर्व दिशा) का मुख पिञ्जर (पीत रक्त) बनाया जा रहा था। ऐसे उषःकाल में सोई हुई प्रियङ्गुमञ्जरी स्वप्न देखी ॥

किल सकलसुरासुरशिरः शेखरीकृतचरणकमलः, कमलाधिवासेन ब्रह्मणा नारायणेन च रचितरुचिरस्तुतिः कृशानुरूपेण ललाट-लोचनेन चन्द्रमसा च भासमानः-विकचं कर्णे कुवलयं करे कपालं च कलयन्, अहिंसाटोपं मनसा शिरसा च बिभ्राणः प्रोज्ज्वलन्नयना-र्चिश्चिताभस्म च समुद्वहन्, अधिकङ्कालेन स्कन्धेन कंधरार्धेन च विराजमानः, सालसदृशं भुजवनं भवानीं च दधानः, सर्वदानववारं त्रिशूलं मन्दाकिनीं च धारयन्, देवो दर्पितदनुजेन्द्रनिद्राद्वरो हरश्चन्द्र-मण्डलादवतीर्य 'पुत्रि प्रियंगुमञ्जरि, मञ्जरीमिमां गृहाण। मा भैषीः। प्रत्युषसि मन्नियोगाद्दमनकनामा महामुनिरेष्यति स तेऽनुग्रहं करिष्यति' इत्यभिधाय स्वश्रवणशिखरान्तरादमन्दमकरन्दस्यन्द-सुन्दरामोदमाद्यन्मधुकररवरमणीयां पारिजातमञ्जरीमदात् ॥

स्वप्नमाह—किलेति। वार्तोक्तौ। हरः शक्तिमण्डलादुत्तीर्य पुत्रीत्यभिधाय ईदृशीं पारिजातमञ्जरीमदात्। कीदृशो हरः। ब्रह्मणा विष्णुना च कृतस्तुतिः। द्वयेनापि कीदृशेन। कमजेऽधिवासोऽस्य पद्मासनत्वात्। विष्णुस्तु कमलायाः श्रिया अधिवासस्तेन। तथा वह्निस्वरूपेण नेत्रेण चन्द्रमसा च कृशेन वामेण अनुगत-रूपेणाविनाभावसंबद्धमूर्तिना लसन्। तथा विकचं सविकासम्। कपालं तु विगताः कचाः केशा अस्मादिति विकचम्। तथा अहिंसाया आटोपमावेशम्। अहिं च साटोपं सस्पन्दम्। प्रोज्ज्वलद्दीप्यमानम्। भस्म तु प्रकर्षेणोज्ज्वलम्। अधिगतं कङ्कालं शरीरास्थि अर्थात्खट्वाङ्गं येन। कंधरार्धेन तु कालेन सह कालकूटत्वात्। अधिकमिति क्रियाविशेषणम्। सालद्रुमतुल्यं प्रांशुत्वात्। पक्षे सालसे लीलामन्थरे दृशौ यस्याः। सर्वान्दानवान्वारयति। गङ्गा तु सर्वदा नित्यं नवा अविच्छाया वाः पाथो यस्याः। अथवा सर्वं ददातीति सर्वदाः। आनूयन्त इत्यानवाः तथोक्ता वारोऽस्याः। एतेन कामुकत्वेन नर्मवचनादात्मजलानां स्तुत्यत्वोक्तिः ॥

यहाँ रात्रि को नायिका रूप में चित्रित किया गया है। वह एक चंद्र रूप चाँदी का घड़ा लेकर समुद्र में पानी भरने जा रही है। कमलिनियों की कलियाँ उसके नेत्र का काम दे रही हैं। उनमें लगे हुए भौंरे अंजन का काम दे रहे हैं। सारस-समूह का क्रेंकार भंग मृदंग जैसा लग रहा है। चक्रवाक दंपती के भावी

मिलन के उपलक्ष्य में मानों वे मंगल मृदंग बजा रहे थे। प्रातःकालीन मंद पवन के झोंके ऐसे लगते थे मानों अन्धकार रूप काले सर्प के काटने से मूर्च्छित सारे संसार के प्राणियों के निःश्वास हों ॥

जिनका चरणकमल समस्त देवताओं तथा दानवों के शिर का भूषण है, कमल में निवास करने वाले ब्रह्मा तथा कमल के निवासस्थान विष्णु अथवा कमला (के हृदय) में निवास करने वाले विष्णु द्वारा जिनकी प्रिय स्तुतियाँ की गई हैं। जो कृशानुरूप (अग्निरूप) ललाट में (तृतीय) लोचन से कृश (पतले) तथा अनुरूप (अपने शरीर के साथ सर्वदा सम्बद्ध) (द्वितीया) के चन्द्र से चमकते हैं। (ऐसे भगवान् शंकर) कानों में विकच (विकसित) कुवलय (नीलकमल) तथा हाथों में विकच (कच (बाल) हीन) कपाल किए हुए, मन में अहिंसा का आटोप (आवेशपूर्ण भावना) तथा सिर में साटोप (फुफकारता हुआ) अहि (सर्प) धारण किए हुए, चमकती हुई (तृतीय) नेत्र की दीप्ति तथा चिता के भस्म को धारण किए हुए, स्कन्ध में काल तथा कंधरार्ध (ग्रीवा) तक काल (विष) से अधिक सुशोभित, साल (वृक्ष) सदृश भुजाओं तथा सालस (लीलापूर्ण) आँखों वाली भवानी (पार्वती) को धारण किए हुए, सर्व-दानव-वार (समस्त दानवों को निवारित करने वाले) त्रिशूल को तथा सर्व-दानव-वार (हमेशा नवीन जल देने वाली) मंदाकिनी (गंगा) को धारण किए हुए, अहंकारपूर्ण राक्षसों की निद्रा (मदस्विता) का हरण करने वाले भगवान् शंकर चन्द्रमण्डल से उतर कर वत्से प्रियङ्गुमञ्जरी! इस मञ्जरी को ग्रहण करो। मत डरो। प्रातःकाल मेरी आज्ञा से दमनक नामक महामुनि आयेंगे। वह तुम्हारे ऊपर कृपा करेंगे—ऐसा कहकर अपने कान के ऊपरी भाग से पर्याप्त पराग के झड़ने से सुन्दर गन्ध के कारण मस्त मधुकरों के झंकार से मनोहर पारिजात मञ्जरी को दिये ॥

सापि 'प्रसादोऽयम्' इत्यभिधाय स्वप्न एव प्रणामपर्यस्तमस्तका स्तुतिमकरोत् ।

वह भी 'यह प्रसाद है' ऐसा कहकर शिर नवाकर प्रणामपूर्वक स्तुति की ॥

तुभ्यं नमो नमल्लोकशोकसंतापहारिणे ।
व्यर्थीकृतान्धकारातिदम्भारम्भाय शम्भवे ॥ १ ॥

तुभ्यमिति ॥ अन्धकारातीति कर्मधारयः ॥ १ ॥

प्रणाम करने वाले लोगों के संताप का हरण करने वाले, अन्धकासुर के अहंकार भरे प्रयत्नों को व्यर्थ करने वाले भगवान् शंभु आपको नमस्कार है ॥

विभो विभूतिसंपन्न पन्नगेन्द्रविभूषण
नमो नमोघसंकल्प तुभ्यमभ्यन्तरात्मने ॥ २ ॥

विभो इति ॥ विभुः सर्वव्यापी । विशेषेण भूत्या भस्मना समृद्धः संपन्नः । यद्वा विभूत्या चतुर्दशभुवनाधिपत्यलक्षणया । तथा वासुकिभूषणः । मोघो निष्फलः संकल्पो ध्यानं यस्य । पश्चान्नव्योगः । एतानि शिवसंबोधनानि ॥ २ ॥

सर्पराज को भूषण बनाने वाले, अपने संकल्प (प्रतिज्ञा) को कभी व्यर्थ न जाने देने वाले, अन्तरात्मस्वरूप, ऐश्वर्य संपन्न, हे भगवान् आपको प्रणाम है ॥२॥

अत्रान्तरे तरणिकोमलकान्तिभिन्न-
भास्वत्सरोजदलदीर्घविलोचनायाः ।
तस्याः प्रबोधमकरोद्रजनीविराम-
यामावसानमृदुमङ्गलतूर्यनादः ॥ ३ ॥

इसी बीच सूर्य की कोमल कान्ति से विकसित कोमल दल के सदृश बड़े नेत्रों वाली रानी को रात्रि के अन्तिम प्रहर की समाप्ति से मंगल-वाद्यों की ध्वनि ने जगा दिया ॥ ३ ॥

क्रमेण च प्राच्यां सिच्यमानायामिव बहलकुसुम्भाम्भःकुम्भैः ककुभि, प्रभवति तारकोच्छेदनाय सुकुमारे रश्मिजाले, पूर्वाचलस्थलीमधिरोहति जगत्प्रबोधप्रारम्भमङ्गलकलशेंऽशुमालिमण्डले, ताण्डवाडम्बरिणि पुण्डरीकखण्डे, हिण्डमानासु दीर्घिकामण्डनमुण्डमालासु कारण्डवमण्डलीषु, विश्राम्यत्सु श्रवणपुटेषु हृदयानन्दिनि बन्दिवृन्दारकवृन्दवन्दनारम्भरवे, रणयत्सु वीणावेणुकोणान्वैणिकवैणविकेषु, कण्ठकुहरप्रेङ्खोलनालंकारकुशले तारातरं गायति ग्रामरागं गायनजने, जाते जरज्जपाप्रसूनभिन्नस्फुटस्फाटिककान्तिसमप्रभे प्रभातसमये, सा समुत्थाय भूत्वा शुचिर्विकचनवनलिनगर्भमर्घाञ्जलिमवकीर्य भगवतः सवितुः स्तुतिमकरोत् ॥

क्रमेणेति ॥ यथा माहेन्द्र इन्द्रः, तथा सुकुमारः । कुमारः । स हि तारकासुरोच्छेदनाय प्राभवत् । सुकुमारं मृदु रश्मिजालं तु तारकाणां नक्षत्राणामुच्छित्तये । वैणिकवैणविकौ वीणावेणुवादकौ । अलंकाराश्च मुद्रितविवृतानुनासिकादयः । तारोऽत्युच्चध्वनिः । ग्रामरागः पञ्चमः । यद्वा षड्जमध्यमगान्धारास्त्रींस्त्रीन्ग्रामान्रागं च भरतोक्तं षड्विधं गायके गायति सति ॥

क्रम से केसर के गाढ़े जल से भरे हुए घड़ों से मानो पूर्व दिशा सींची जा रही थी । तारकासुर को समाप्त करने के लिए कुमार कार्तिकेय प्रवृत्त हुए थे वैसे (आकाश में विकीर्ण तारों को समाप्त करने के लिए सुकुमार

(कोमल) किरणें प्रवृत्त हो रहीं थीं। संसार के जागरणरूपी मंगल कार्य को प्रारंभ करने के अवसर पर कलश की तरह प्रतीत होते हुए अंशुमाली (सूर्य) पूर्वाचल स्थली (पूर्व-पर्वत) पर चढ़ रहे थे। कमल वन उद्धत नृत्य की स्थिति प्रदर्शित कर रहा था। उत्तम कोटि के बन्दीजनों की स्तुतिध्वनि में कान विश्राम कर रहे थे। वीणा तथा वंशी बजाने वाले वैणिक (वीणा-वादक) तथा वैणविक (वंशीवादक) मधुर ध्वनि कर रहे थे। कण्ठ कुहर (गले) को कंपित कर (मुद्रित, विवृत, अनुनासिक आदि) अलंकारों को निकालने में कुशल गायक लोग बड़ी ऊँची-ऊँची ध्वनि से ग्रामराग (पंचम स्वर) में गा रहे थे। जब पुराने जपा (अड़हुल) पुष्प से प्रतिबिम्वित स्फटिक-मणि के सदृश कांति वाला प्रभातकाल हुआ तो वह उठकर पवित्र होकर खिले हुए नवीन कमल पुष्प से भगवान् सूर्य को अर्घ्य देकर स्तुति की।

[मंगलकार्य के प्रारंभ में कलश स्थापनपूर्वक पूजन की परंपरा है। भगवान् सूर्य भी जगज्जागरणरूप मंगलकार्य कर रहे हैं इसलिए स्वयं कलश की मूर्ति बन गये हैं।]

वासरश्रीमहावल्लीपल्लवाकारधारिणः ।
जयन्ति प्रथमारम्भसंभवा भास्वदंशवः ॥ ४ ॥

दिन-लक्ष्मी-रूपी महालता के पल्लव की आकृति वाली प्रथम प्रहर की सूर्य किरणें उत्कृष्ट लग रही हैं ॥

[दिन की शोभा एक लता है। सूर्य की किरणें उस लता के नवीन पल्लव की तरह प्रतीत हो रही हैं।] ॥ ४ ॥

जयत्यम्भोजिनीखण्डखण्डितालस्यसंचयम् ।
कौङ्कुमं पूर्वदिग्गण्डमण्डनं मण्डलं रवेः ॥ ५ ॥

कमलिनी वन की आलस्य-राशि को समाप्त कर देने वाला प्राची (पूर्व दिशा) के कपोल का कौङ्कुम (कुंकुम से बना हुआ) अलंकाररूप सूर्यमंडल सर्वोत्कृष्ट प्रतीत हो रहा है ॥ ५ ॥

राजापि प्रथमप्रबुद्धप्रगीतगीतध्वनिनिरस्तनिद्रः, सान्द्रविद्रुमप्रभाभासि संध्यावसरे, विधाय सान्ध्यं विधिम्, अधिकृतेन धर्मकर्मणि तत्कालपुरःसरेण पुरोधसा सह तामेवान्वेष्टुमन्तःपुरमाजगाम ॥

राजापीति ॥ प्रथमप्रबुद्धा ये प्रकृष्टगीतास्तद्गीतध्वनिना ध्वस्तनिद्रः ॥

राजा भी पहली बार की गायी हुई गीत की ध्वनि से जगकर गाढ़े विद्रुम कान्ति सदृश कांति वाले उषःसंध्या (प्रातः) काल में संध्यानुष्ठान कर धर्म-कार्य के अधिकारी पुरोहित को उसी समय आगे कर उसी (रानी) को देखने (खोजने) के लिए अन्तःपुर आए ॥

दृष्ट्वा च विस्मयमानः स्फुरदरविन्दसुन्दराननाम् 'अनुगृहीतेयमिन्दुमौलिना' इत्यवधारयन्, अतिहर्षोत्कर्षमन्थरगिरा तां बभाषे ॥

खिले हुए कमल की तरह सुन्दर मुखी (रानी) को देखकर आश्चर्य प्रकट करते हुए इन्दुमौलि (भगवान् शंकर) ने कृपा की है ऐसा निश्चित करता हुआ अधिक प्रसन्नता के कारण गंभीर आवाज से उससे बोला ॥

मुग्धस्निग्धनिरुद्धशब्दहसितस्फारीभवल्लोचनं
तिर्यक्कान्तिकपोलपालिपुलकस्पष्टीकृतान्तर्धृति ।
यत्ते करभोरु पङ्कजसदृग्दृष्ट्वा मुखं मे बला-
दुच्चैः किंचिदचिन्त्यचर्चितचमत्कारं मनो हृष्यति ॥ ६ ॥

मुग्धस्निग्धेति ॥ मणिबन्धकनिष्ठिकयोर्मध्यं करभस्तद्वदूरू यस्याः । तत ऊङ् तस्याः संबोधनम् । ईदृशं ते मुखं दृष्ट्वा सहसाचिन्त्याधिगतचमत्कारं मे मनो हृष्यति ॥ ६ ॥

मनोहर स्नेहपूर्ण तथा निःशब्द हास्य से आँखें खिल उठी हैं । वक्रकान्तिपूर्ण कपोल के रोमाञ्च से आन्तरिक धैर्य प्रकट हो रहा है । हे करभोरु ! (हाथ के तलवे की तरह कोमल जंघे वाली) कमल सदृश आपके इस मुख को देखकर हठात् मेरा मन किसी ऐसे उच्च (अद्भुत) चमत्कार से चमत्कृत हो उठा है जिसके बारे में न तो मैंने कभी सोचा था, न कभी चर्चा ही की थी ॥ ६ ॥

तत्कथय शप्तासि ममाज्ञया हर्षवृत्तान्तम्' इत्यभिहिता सा स्मितसुधानुविद्धमुग्धमुखवीणाक्वणकोमलालापेन सर्वमादितः स्वप्नदर्शनमाचचक्षे ॥

शपथ है । मेरी आज्ञा से समुचा हर्ष वृत्तान्त कह डालो । (राजा) के ऐसा कहने पर, मुस्कुराहट से अमृत प्लावित, सुन्दर मुख वीणा की कोमल वाणी में आद्योपान्त स्वप्न की सारी कहानी कह सुनायी ॥

क्षितिपतिस्तु तदाकर्ण्य 'प्रिये, मयापि स भगवान् । आत्मानुहारिणा विनायकेन स्वामिना च शक्तिमता पुत्रेणानुगम्यमानो, दग्धकामः पूरितकामश्च, एककपर्दक ईश्वरश्च, ससोमश्चासोमः, सविभवश्चाविभूतिश्च, पिनाकी चापिनाकी, दृष्टः स्वप्नान्तरे तरुणार्कमण्डलमध्यवर्ती प्रणतप्रियंकरः शंकरः । तदेष ब्राह्मणः करोतु संवादिनोरनयोः स्वप्नयोरर्थपरामर्शम्' इत्यभिधाय तां, तमवस्थितं पुरः पुरोहितमभाषयत् ॥

क्षितिपतिस्त्विति ॥ अग्रे स्थितं पुरोहितमित्यमुना प्रकारेण राज्ञीकथनलक्षणेनावोचत् । यत् प्रिये, स भगवाञ्छंकरो मयापि स्वप्नान्तरे दृष्टः । कीदृशः । सामर्थ्यवता हेरम्बेण, शक्तिशस्त्रभृता षण्मुखेन चात्मप्रतिमेनानुगम्यमानः । शिवोऽपि

विगतनायकः सकललोकस्वामी शक्तिमांश्च शिवशक्त्योरविनाभावसंबन्धादित्यात्मसादृश्यम्। कामः स्मर इच्छा च। कपर्दो जटाबन्धः विरोधपक्षे वराटः ईश्वरो धनवान्। ससोमः सेन्दुः। सह उमया वर्तत इति सोमः। ततो नञ्योगः। विगतो भवो येभ्यस्ते विभवा मुक्तात्मानः। तैः सह। भगवत्सायुज्यं हि मुक्तिरिति वृद्धाः। तथा विशिष्टा भूतिर्यस्य। भस्म च। पिनाकं धनुरस्यास्ति। अपीति भिन्नम्। नाकी स्वर्गी। यद्वा 'चप सान्त्वने'। चपयन्ति सान्त्वयन्त्यनुनयन्त्यवश्यं चापिनः प्रसादका नाकिनो यस्य॥

राजा भी यह सुनकर 'प्रिये!' मैंने भी, अपने अनुरूप पुत्र शक्तिशस्त्रधारी स्वामी (कार्तिकेय) तथा विनायक (गणेशजी) के साथ कामदेव को जला देने वाले तथा कामनाओं को पूर्ण करने वाले एक कपर्दक (एक कौड़ी वाले) तथा ईश्वर (बड़े-बड़े ऐश्वर्य (धन) वाले (विरोध) एक कपर्दक (जटा वाले) ईश्वर (सबके स्वामी) परिहार) ससोम (सोम-चन्द्रसहित) थे। फिर भी असोम (सोमरहित) विरोध। उमा के सहित थे वस्तुतः स्वयं ही सोम-चन्द्र नहीं थे। परिहार।

सविभव (ऐश्वर्य सम्पन्न) थे फिर भी अविभूति (ऐश्वर्यहीन) थे—विरोध। सविभव (संसार जिनसे छूट गया है ऐसे मुक्त लोग जिनके साथ) थे तथा अविभूति (भूति (ऐश्वर्य) से विगत नहीं) थे। परिहार। पिनाकी थे फिर भी अपिनाकी (पिनाकी नहीं) थे और (अपि) नाकी (स्वर्गवासी) थे। स्वप्न में पूर्णतः प्राप्त सूर्यमंडल के बीच भक्तों के आकांक्षित सिद्ध करने वाले भगवान् शंकर को देखा हूँ।

तो ये ब्राह्मण इन मिलते-जुलते दोनों स्वप्नों का अर्थ (फल) विचारें। ऐसा उनसे कहकर, सामने बैठे हुए पुरोहित से बोले॥

सोऽपि 'देव, दिष्ट्या वर्धसे। अनल्पपुण्यप्राप्यमेतत्तरुणेन्दुमौलेरालोकनम्, अवश्यमवाप्स्यति देवी सकलराजचक्रचूडामणिकल्पमशेषभुवनभ्रान्तशुभ्रयशःपिण्डडिण्डिममपत्यम्' इत्यनेकधा तयोराशंसयांचकार॥

वह भी 'राजन्'! भाग्यसे आप बढ़ रहे हैं। अत्यधिक पुण्य से तरुण शंकर भगवान् का दर्शन होता है। निश्चित ही देवी (रानी) को समस्त राज-समूह का मणि समस्त संसार में अपने यश का उद्घोष करने वाला कोई अपत्य (संतान) होगा। इस तरह उनकी अनेक प्रकार से प्रशंसा किया॥

एवंविधे च व्यतिकरे कोऽपि कान्तकार्तस्वरस्वरूपमुत्फुल्लपाण्डुपुष्पमालया मेरुशिखरमिव प्रदक्षिणाक्षीणलग्नया नक्षत्रराज्या जनितशोभं जटाभारमुद्वहन्, अतिबहलमलयजरसरचितविचित्रपुण्ड्रक-

मण्डनाममरशैलशिलामिव रङ्गत्त्रिस्रोतसं ललाटपट्टिकां कलयन्, प्लवमान इवोज्जृम्भपङ्कजकिंजल्ककपिलकायकान्तिकल्लोलेषु, करुणारसपूर्णवक्षःस्थलदीर्घिकायामन्तस्तरन्तीं बालकलहंसपक्षिपङ्क्तिमिव स्फारस्फाटिकाक्षमालिकां बिभ्राणः, कुशकौपीनवासाः, करकलितकुशकांडकमंडलुमंडलैः, तरुभिरिव विविधशाखैर्विधृतजटावल्कलैश्च, पर्वतैरिव समेखलैः सरुद्राक्षाक्षमालैश्च, नक्षत्रैरिव समृगकृत्तिकाश्लेषैः सज्येष्ठाषाढैश्च, ससंमदैरपि नमदाकारमाकलयद्भिः अक्रोडैरपि चक्रीडापरैः, रोमशैरपि विप्रवालकैः मुनिभिः परिवृतः, सेवितपुराणपुरुषोऽप्यजनार्दनप्रियः, प्रसन्नशंकरोऽप्यनाश्रितभवः, प्रबुद्धोऽप्यबन्दीकृतजनः, श्रमणोऽप्यजिनपरिग्रहः ग्रहगण इव नवधात्मको लोकानाम्, धनुर्धर इव नालीकसंधः, हंस इव नदारम्भस्थानकप्रियः पन्नग इव नाकुलीनः, सरस्वतीसंनिवासस्य मुखमन्दिरस्य वन्दनमालयेव प्रथमोद्भेदभासिन्या दंष्ट्रिकारोमराजिरेखया श्यामलितोत्तरोष्ठपृष्ठः, कलिकालकलङ्कशङ्काशरणगतैस्त्रिभिः पुण्ययुगैरिव सुसूत्रीभूय देहलग्नैः, त्रिपुष्करस्नानावसरविलग्नसरसबिसकाण्डकुण्डलैरिव भक्त्याराधितत्रिपुरुषरचितरक्षासूक्ष्मरेखानुकारिभिः सितयज्ञोपवीततन्तुभिर्भूषितदेहः, शमी विद्रुमाभाधरश्च, प्रजापो विप्रजापश्च, सुतपाः कुतपश्लाघी च, विकलत्रः, सकलत्रश्च, यमान्तानुसारी सकुशलश्च, विकचनवनलिनशङ्कया मिलन्मुक्तमुग्धमधुपमण्डलेनेव रुद्राक्षवलयेन विराजितवामपाणितल्लवः, न स्मृतः स्मरापस्मारेण, नाङ्गीकृतः कृतघ्नतया, नालोकितः कितववृत्तेन; नाकलितः कलिना न निरुद्धो विरुद्धक्रियाभिः, अतितेजस्तया द्वितीय इव परब्रह्मणः, तृतीय इव सूर्याचन्द्रमसोः, चतुर्थ इव गार्हपत्याहवनीयदक्षिणाग्नीनाम्, पञ्चम इव दिक्पतीनाम्, षष्ठ इव महाभूताधिदेवतानाम्, सप्तम इव मूर्तर्तूनाम्, अष्टम इव सप्तर्षीणाम्, नवम इव वसूनाम्, दशम इव ग्रहाणाम्, अनवरतहृदयकमलकर्णिकान्तःस्फुरज्ज्योतीरूपपरमब्रह्मकान्तिकलापेनेव बहिर्निर्गच्छताच्छभस्मानुलेपेन कनकगिरिरिव विरलचन्द्रातपेनापाण्डुरितदेहः, दीर्घसरसबिसकाण्डपाण्डुना प्रचण्डपवनेनोर्ध्वमुल्लासितेन जटाजूटबन्धनपटप्रान्तपल्लवेन शिरःपतद्गगनगरुद्गङ्गाम्बुधाराहारिणो हरस्य स्वामिभक्त्या कृतानुकरणव्रतचर्यामिव कलयन्, कोमले महसि तरुणे वयसि वृद्धे तपसि पृथुनि यशसि गुरुणि श्रेयसि वर्तमानः, सदः सदाचाराणाम्,

आश्रयः श्रुतीनाम्, मही महिम्नः, प्रपा कृपारसस्य, क्षेत्रं क्षमाङ्कुराणाम्, पात्रं मैत्रीसुधायाः प्रासादः प्रसादस्य, सिन्धुः साधुतायाः, तरुणार्कमण्डलमध्यान्मुनिरवातरत् ॥

एवंविध इति ॥ कोऽपि मुनिः सूर्यमण्डलादवातरत। कनकपिङ्गजटाभारस्य मेरुशिखरं पुष्पमालायाश्च नक्षत्रराजिरुपमानम्। लग्नं संबद्धं ज्योतिषप्रणीतं च। ललाटस्य शिला तिलकानां च गङ्गोपमानम्। परिवृतो मुनिभिः। कीदृशैर्विविधशाखैः। शाखा कठबह्वृचादिर्लता च जटा केशरचना मूलं च। वल्कलं। वृक्षत्वक्। तदेव तरूणां सहजं मुनीनां चाहार्यम्। मेखला मौञ्जी नगान्तदेशश्च। रुद्राक्षजपमालान्वितैः। पक्षे रुद्राक्षा अक्षाश्च तरुविशेषाः। मृगकृत्तिकाया मृगत्वचः श्लेषैः सहितैः ज्येष्ठापाढेन प्रशस्यव्रतदण्डेन सहितैः। पक्षे मृगो मृगशिरः कृत्तिका अश्लेषा ज्येष्ठा आषाढाश्च नक्षत्राणि। ससंमदैस्तृष्णाक्षयास्सानन्दैः। तथा मदस्य गर्वस्याकारं नाकलयद्भिः। अपिर्विरोधे। स तु तुल्यार्थव्याख्यया। क्रीडा विषयासक्तिः। तथा चक्रिणो विष्णोरीडा स्तुतिस्तत्परैः। विरोधे तु चः पृथक्। भूमरोमयुक्तैः। विप्राणां बालकैर्डिम्भैः। विरोधे विशेषेण प्रगतकेशैः। पुराणपुरुषा वृद्धाः। जनानामर्दनं पीडा। प्रपन्नानामाश्रितानां शंकरः सुखंकरः। भवः संसारः। प्रबुद्धो विद्वान्। बन्दीकृतो हठेन गृहीतः। श्रमणस्तपस्वी। अजिनं मृगादित्वक्। विरोधे तु पुराणपुरुषो जनार्दनश्च विष्णुः। शंकरो भवश्च शिवः। प्रबुद्धः सुगतः। बन्दा वन्दका बौद्धव्रतस्थाः। श्रमणः क्षपणः। जिनोऽर्हन्। परिग्रहः सर्वत्र नेति भिन्नम्। वधो हिंसा। अलीकसंधो मिथ्याप्रतिज्ञः। दम्भवेदिनो दाम्भा मायिकाः। अकुलीनो नाभिजातः। ग्रहगणस्तु नवसंख्यस्वरूपः। धन्वी च नालीके शरे संधानं यस्य। हंसस्तु नादस्याम्भ एव स्थानकं तत्प्रियः। नाकुर्वंरमीकस्तत्र लीनः। भक्त्याराधितत्रिपुरुषैरिति। त्रयः पुरुषा यत्रेति समुदायिन एव समुदाय इति दर्शने बहुवचनम्। व्यतिरिक्तसमुदायपक्षस्तु नेहाश्रित इति सेवितहरिहरब्रह्मभी रक्षार्थं रचितरेखातुल्यैर्यज्ञोपवीततन्तुभिर्भूषितदेहः। शमोऽस्यास्तीति शमी शान्तः। तथा विद्रुमं प्रवालं तुतुल्योष्ठः। प्रजां पाति क्रतुकृद्यो हि प्रजात्राणम् विप्राज्ञापयति जपं प्रापयति। अदृष्टदर्शनान्वयत्वात्। सुष्ठु तपो व्रतमस्य। तथा कौ भुवि तपसा लोकोत्तरेण धर्मेण श्लाघनशीलः। 'तपश्चान्द्रायणादौ स्याद्धर्मे लोकोत्तरेऽपि च' इति विश्वः। यदा कुतपो दर्भस्तदा कुतपश्लाघीत्यत्र विसर्गाभावेऽपि (शस्य द्वित्वेन) श्रुत्या विरोधप्रतीतिः। विगतकलत्रः। सकलं त्रायते। अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमास्तेषामन्तः पारम्। कुशान्दर्भांल्लान्ति गृह्णन्ति ये ते कुशला दक्षास्तैः सह। चः सर्वत्र विरोधे। तद्यथा शमीतामा तरुः तथा द्रुमाभां धरति। विर्नञर्थे। वि प्रजापवान्। कुतपः कुत्सितं तपः। सह कलत्रेण। यमस्यान्तकस्य समीपमनुसरत्यवश्यम्। सह कुशलेन क्षेमेण ॥

ऐसे ही अवसर पर कोई मुनि पूर्ण सूर्य मंडल से अवतीर्ण हुए। वह मेरु शिखर की तरह चमकते हुए स्वर्ण रंग की प्रदक्षिणा के कारण क्षीण लग्न वाली नक्षत्र पंक्ति की तरह खिले हुए शुभ्र मालाओं से मंडित जटाभार का धारण

कर रहे थे। अमर शैल (हिमालय) की शिला पर जैसे त्रिस्रोतस (गंगा) बहती है वैसे वह अपनी शुभ्र ललाट-पट्टिका पर गाढ़े चंदन रस से त्रिपुण्ड्र तिलक किए हुए थे। पूर्ण विकसित कमल के पराग सदृश अपने गौर देह की दीप्ति लहरी में मानो तैर रहे थे। करुण रस के भरे हुए वक्षःस्थल रूपी दीर्घिका (सरोवर) के भीतर सुन्दर बालहंसों की श्रेणी की तरह बड़ी-बड़ी स्फटिक मणियों को धारण किए हुए थे। कुश तथा कौपीन वस्त्र पहने हुए थे। हाथ में कुशयुक्त कमण्डलु लिए हुए थे। पेड़ जैसे विभिन्न शाखा जटा (जड़-मूल) तथा वल्कल (वृक्ष-छाल) से युक्त होते हैं वैसे (कण्ठवह्वृच् आदि वैदिक) शाखाओं, जटा (केश समूह), तथा वल्कल वस्त्र को धारण किये थे। पर्वत जैसे समेखल (तटीय भाग युक्त, होते हैं तथा रुद्राक्ष वृक्ष की पंक्तियों से युक्त होते हैं वैसे (मुनि भी) समेखल (मौञ्जीकरधनी युक्त) तथा रुद्राक्ष मणियों की माला लिए हुए थे। नक्षत्र समूह जैसे मृगशिरा, कृत्तिका, आश्लेषा, ज्येष्ठा, तथा पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़ से युक्त रहते हैं वैसे (मुनि भी) मृगकृत्तिका (मृगचर्म) को आश्लेष (पहने हुए) थे और ज्येष्ठ (उत्तम) आषाढ़ (व्रत दण्ड) धारण किए हुए थे। वह ऐसे मुनि बालकों से घिरे थे जो ससंमद (मदयुक्त) होकर भी न मदाकार (मद युक्त न) थे। विरोध। ससंमद (तृष्णाहीन होने के कारण आनन्दयुक्त) थे। और न मदाकार (मदपूर्ण आकृति को धारण नहीं कर रहे थे नम्र) थे। परिहार। अक्रीड (क्रीडाविहीन) फिर भी (च) क्रीडा पर (क्रीडा में तत्पर) थे। विरोध। अक्रीड (विषय वासना में अनुरक्त नहीं) थे और चक्री (विष्णु) की ईडा (स्तुति) में लगे रहते थे। रोमश (बड़े बड़े बाल वाले) थे फिर भी विप्र बाल (उत्तम केशों से हीन) थे। विरोध। रोमश (उत्तम रोम वाले) थे और विप्र + बाल (ब्राह्मण जाति के लड़के) थे। (वह मुनि) सेवित पुराण पुरुष (विष्णु की सेवा किये) थे फिर भी जनार्दन उन्हें प्रिय नहीं थे। विरोध। पुराण पुरुष (विष्णु या वृद्ध मनियों) की सेवा किये थे। अतः उन्हें जनार्दन (जनता का उत्पीड़न) प्रिय नहीं था। परिहार। शंकर को प्रसन्न किये थे किन्तु उन्होंने भव (शंकर) का आश्रय नहीं लिया था। विरोध। शंकर को प्रसन्न किये थे किन्तु भव (संसार) के आश्रय (परतंत्रता) में नहीं रहे थे। प्रबुद्ध (महात्मा बुद्ध) थे किन्तु किसी आदमी को बन्द (बौद्धधर्म का उपदेश) नहीं दिए थे। वि०। प्रबुद्ध (बड़े आत्मज्ञानी) थे और किसी बंधन में नहीं डाले गये थे। परिहार। श्रमण (जैन संन्यासी) थे किन्तु 'जिन' के सिद्धान्तों को नहीं मानते थे। वि० श्रमण (आत्मज्ञान के लिए समाधि योग आदि श्रम करते) थे और अ-जिन मृगचर्म धारण करते थे॥ परिहार॥

[संमद शब्द अलौकिक आनंद का वाचक है। इस तरह के आनंद की अनुभूति तृष्णाहीन विप्रबालकों में संभव थी। अक्रीड विप्रों के बालक बाल्योचित क्रीडा में अनुरक्त नहीं थे। चक्री की स्तुति में ही दत्तचित्त थे। विरोध पक्ष में चक्रीडा का 'च' अपि अर्थ में आया है। अर्थात् क्रीडा हीन है फिर भी क्रीडा में तत्पर है।]

पुराण पुरुष—शब्द ही विष्णु अर्थ प्रसिद्ध ही है। किन्तु 'वृद्धजन' अर्थ भी यहाँ प्रासंगिक ही होगा क्योंकि वर्ण्यमान मुनि अभी अत्यन्त नवीन हैं। अभी उन्हें मूछों की रेखा पड़ रही है। अतः वृद्धजन सेवा उनके लिए उचित ही है।]

लोक में ग्रह (नवग्रह) जैसे (नवधा) नव भागों में विभक्त हैं वैसे (मुनि भी) न-वधात्मक (किसी के वध की आकाङ्क्षा वाले नही) थे। धनुर्धर जैसे नालीक (धनुष्) पर संध (शर संधान) करता है वैसे (मुनि भी) न + अलीक संध (मिथ्या प्रतिज्ञा करने वाले नहीं) थे। हंस जैसे नदाम्भः स्थानक प्रिय (नद के जलवाले स्थान को प्रिय मानता) है वैसे (मुनि भी) नदाम्भः स्थानक प्रिय (दाम्भिकों (घमण्डियों) की जगहें उन्हें प्रिय नहीं) थीं। पन्नग (सर्प) जैसे नाकु (वल्मीक में) लीन (छिपे) रहते हैं वैसे (मुनि भी) नाकुलीन बहुत कुलीन थे। उनका मुख सरस्वती का निवास मंदिर था। अभी पहली बार उत्तरोष्ठ पर मूछों की काली रोम पंक्तियां निकली थीं। वह मुखरूपी सरस्वती के भवन का तोरण प्रतीत हो रही थीं। कलियुग के डर से तीनों युग सूत्र (तनु) रूप में परिणत होकर देह में सट गये थे। तीनों पुष्करतीर्थों में स्नान करते समय शरीर में सटे हुए कमल तंतु के कुंडल की तरह प्रतीत होते हुए भक्तिपूर्वक आराधित ब्रह्मा, विष्णु और महेश द्वारा दिये हुए सूक्ष्म रक्षा सूत्र की तरह प्रतीत होते हुए, सफेद यज्ञोपवीत के तन्तुओं से जिनका शरीर अलंकृत हो गया था।

शमी (शमी नामक वृक्ष) थे और विद्रुमाभाधर (वृक्ष की कांति धारण करने वाले) नहीं थे। वि० शमी (शांतिप्रिय) थे और विद्रुमाभाधर (प्रवाल कांति की तरह अधरों वाले) थे। परिहार। प्रजाप थे फिर भी विप्रजाप (प्रजाप नहीं) थे। वि०। प्रजाप (प्रजा की रक्षा करने वाले) थे और विप्रजाप (ब्राह्मणों से जप कराने वाले) थे। ब्राह्मणों को जप करने की प्रेरणा देते थे। परिहार। सुतपा (सुन्दर तपस्या वाले) थे फिर भी कुतपः श्लाघी (खराब तपस्या के प्रशंसक) थे। वि०। सुतपा (सुन्दर तपस्या किये हुए) थे और कु (पृथ्वी) पर अपनी तपस्या के लिए प्रसिद्ध थे। परि०।

विकलत्र (स्त्री रहित) थे फिर भी सकलत्र (स्त्री सहित) थे। वि०। विकलत्र (स्त्री रहित) थे फिर भी सकलत्र (सबों का त्राण करने वाले) थे। परि०। यमान्तानुसारी (यमराज के पास रहने वाले) थे फिर भी सकुशल थे। वि०। यमान्तानुसारी (अहिंसा, सत्य, आस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और यमनियमों का पालन करते) थे तथा सकुशल (कुश लाने वाले मुनियों से युक्त) थे॥ परिहार॥

[शमी शब्द का उपयोग मुनिपक्ष में वृक्ष सादृश्य के आधार पर भी किया जा सकता है। शमी वृक्ष जैसे अन्तराग्नि से युक्त होता है वैसे यह मुनि भी अपनी आन्तरिक तेजस्विता से उद्भासित है।]

खिले हुए नवीन कमल की भ्रान्ति से आये हुए आनंदमग्न भोले भौंरों के समूह सदृश रुद्राक्ष की छोटी माला से उनका बायाँ हाथ मंडित तथा स्मरापस्मार (कामरूप रोग) द्वारा वे कभी याद नहीं किये गये थे। कृतघ्नता को कभी छूये नहीं थे। धूर्त्तवृत्तान्त को कभी देखे तक नहीं थे। कलि द्वारा आक्रान्त नहीं थे। शास्त्र विरुद्ध आचरण द्वारा निरुद्ध (पतित) नहीं हुए थे। अत्यन्त तेजस्विता के कारण द्वितीय ब्रह्मा की तरह थे। सूर्य और चन्द्र के अतिरिक्त तीसरे तेजस्वी थे। गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय इन तीन अग्नियों के अतिरिक्त चतुर्थ अग्नि थे। चार दिवपतियों के अतिरिक्त पांचवें दिवपति थे। पांच महाभूतों के स्वामियों के अतिरिक्त ये छठे महाभूतपति थे। छ प्रत्यक्ष ऋतुओं के अतिरिक्त ये सातवें ऋतु थे। सप्तर्षियों के अतिरिक्त आठवें ऋषि थे। आठ वसुओं के अतिरिक्त नवम वसु थे। नवग्रहों के अतिरिक्त दशम ग्रह थे।

[मिलन्मुक्तमधु—मुनि का पाणि पल्लव इतना सुन्दर था कि भ्रमरों को उसमें कमल की भ्रांति हो सकती थी। उनके बाँये हाथ से लगी हुई रुद्राक्ष की माला भ्रमर समूह की तरह प्रतीत होती है। मानों भ्रमरों का झुण्ड ही उनके हाथ को कोमल समझकर आ गया है।]

निरन्तर हृदय कमल कोष के भीतर से छिटकती हुई ज्योतिरूप परमात्मा की कान्ति राशि ही मानों बाहर शुभ्रभस्म रूप में निकल रही थी जिसके लेप से शुभ्र शरीर वाले मुनि कहीं-कहीं पड़ने वाली चन्द्रकिरणों से युक्त कनकगिरि की तरह लग रहे थे। जटाजूट का बंधन लंबे एवं सरस कमल तंतु की तरह श्वेत, अधिक हवा बहने के कारण ऊपर की ओर उठा हुआ जटाजूट बाँधने वाले वस्त्र का पल्लव सदृश एक अंश आकाश से गिरती हुई गंगा की धारा की तरह मनोहर लग रहा था। स्वामिभक्ति के कारण (शिर पर गंगा को धारण करने वाले) भगवान् शंकर का मानों अनुकरण कर रहे थे। तेजस्विता

में कोमल, अवस्था में तरुण, तपस्या में वृद्ध, यश में महान् तथा प्रशंसनीय श्रेष्ठता से स्थित सदाचारों का भवन, श्रुतियों का आश्रय, प्रभाव का स्थान, दया-सरोवर का झरना, क्षमारूप अंकुर (के उत्पन्न होने की) भूमि, मित्रता रूपी अमृत का पात्र, प्रसन्नता की अट्टालिका, सम्पन्नता का सागर थे।

राजा तु दूरत एव तमायान्तमवलोक्य विस्मयविस्फारितविलोचनो हर्षवर्षविनिःसरद्बहलपुलकोत्तम्भितोत्तरीयवासाः ससंभ्रममासनादुत्थाय कियन्त्यपि पदान्यभिमुखं समेत्य क्षितितलमिलन्मौलिमण्डलः प्रणाममकरोत् ॥

दूर से ही उन्हें आते हुए देखकर आश्चर्य के कारण राजा की आँखें खिल उठीं। हर्ष की वर्षा के कारण पर्याप्त रोमाञ्च हो गया। रोमों के खड़े होने से (उत्तरीय वस्त्र) चादर ऊपर उठ (तन) गयी। शीघ्र ही आसन से उठकर कुछ कदम सामने बढ़कर पृथ्वीतल तक शिर झुका कर प्रणाम किये।

मुनिरपि सदारुणान्तयापि सौम्यया दृशा विद्रुमप्रभाभिन्नया सुधासिन्धुतरङ्गमालयेव प्लावयन्नाशिषमवादीत् ॥

मुनिरिति ॥ राजप्रणामानन्तरम्। सर्वदा रक्तप्रान्तया दृशा प्रवालच्छुरितक्षीरोदवीच्येव प्लावयन्मुनिराशिषमुवाच। रक्तान्तनेत्रत्वं शुभलक्षणम्। विरोधे स इति मुनिविशेषणम्। दारुणं रौद्रम् ॥

मूंगे की कांति से अनुविद्ध, अमृत सागर की लहर की तरह अपनी (सदा+अरुण) रक्त नेत्र भाग वाली दृष्टि से नहलाते हुए आशीर्वाद बोले।

[स (वह मुनि) दारुण और सौम्य दृष्टि से नहलाते हुए आशीर्वाद की वाणी कहे। जो दृष्टि दारुण होगी वह सौम्य कैसे होगी यही विरोध है। ऊपर दिया हुआ अर्थ परिहार पक्ष का है।]

'सिन्दूरस्पृहया स्पृशन्ति करिणां कुम्भस्थमाधोरणा
भिल्ली पल्लवशङ्कया विचिनुते सान्द्रद्रुमद्रोणिषु।
कान्ताः कुङ्कुमकाङ्क्षया करतले मृद्गन्ति लग्नं च यत्-
तत्तेजः प्रथमोद्भवं भ्रमकरं सौरं चिरं पातु वः' ॥ ७ ॥

सिन्दूरेति ॥ भ्रमकरं भ्रान्तिजनकम्। तच्च सिन्दूरस्पृहयेत्यादिनाभिहितम् ॥७॥

भगवान् सूर्य की प्रथम किरणें आपकी रक्षा करें जिन्हें हाथियों के कुम्भस्थल पर देखकर आधोरण (हाथीवान्) लोग सिन्दूर की भ्रान्ति से छूते हैं; किरात-पत्नियाँ वृक्षों के आलवाल द्रोणी (क्यारियों) में पल्लव की भ्रांति से चुन रही हैं तथा रमणियाँ अपने हाथों पड़ी हुई कुङ्कुम समझ कर पोंछ रही हैं ॥ ७ ॥

दत्ताशीश्च प्रणामपर्यस्तकर्णपूरपल्लवपरामृष्टपादपांसुरवनिपालेन स्वयमादरेणोपनीतमुच्चकञ्चनासनमध्यतिष्ठत् ॥

प्रणाम के अवसर पर (राजा के) लटकते हुए कर्णपल्लव से जिनके पैरों की धूलि पोंछी गयी है, तथा जिन्होंने आशीर्वाद दे लिया है ऐसे मुनि राजा द्वारा आदरपूर्वक स्वयं लाये हुए ऊँचे स्वर्णमय आसन पर बैठे ।

अथ नरपतिदत्ते प्राप्तसौन्दर्यनिर्य-
न्मणिमहसि स तस्मिन्नासने संनिविष्टः ।
रुचिररुचि सुमेरोः संगतः शृङ्गभागे
कमल इव कान्तिं कांचिदुच्चैर्बभार ॥ ८ ॥

अथेति ॥ प्राप्तसौन्दर्यं रम्यं निर्यन्निःसरन्मणीनां महस्तेजो यस्मात् तन्नासने आसीनः । मुनिः कांचिदपूर्वां शोभां बभार ॥ रुचिरकान्तौ सुमेरोः शृङ्गभागे स्थितो ब्रह्मेव ॥ ८ ॥

मणि की दीप्ति जिससे छिटक रही थी ऐसे राजदत्त सुन्दर आसन पर बैठे हुए मुनि सुन्दर कान्ति वाले सुमेरु पर्वत्त की चोटी पर स्थित ब्रह्मा की तरह अलौकिक शोभा धारण कर रहे थे ॥ ८ ॥

दत्त्वार्घमर्हणीयाय तस्मै सोऽपि महीपतिः ।
स्वहस्तधौतयोर्भक्त्या ववन्दे पादयोर्जलम् ॥ ९ ॥

वह राजा भी उस पूज्य मुनि को अर्घ देकर भक्तिपूर्वक अपने ही हाथों से धोये हुए पैरों के जल को प्रणाम किये ॥ ९ ॥

कृत्वातिथ्यक्रियां सम्यग्विनयं च प्रचाशयम् ।
तस्याग्रे भूतलं भेजे नोपविष्टः स विष्टरे ॥ १० ॥

अतिथि को जिस विधि से सत्कार करना चाहिए वह सब कर, विनम्रता व्यक्त करता हुआ राजा उस मुनि के आगे पृथ्वी पर ही बैठा, आसन पर नहीं ॥ १० ॥

ललाटपट्टविन्यस्तपाणिसंपुटकुड्मलः ।
नीचैरुवाच वाचं च चञ्चद्दशनदीधितिः ॥ ११ ॥

(विशाल) ललाटरूपी शिलापट्ट पर संपुट पाणिरूप कुड्मल (कलि) रखकर चमकती हुई दन्तकान्ति वाले राजा धीर स्वर से बोले ॥ ११ ॥

'अद्य मे सुबहोः कालाच्छ्लाघनीयमभूदिदम् ।
त्वत्पादपद्मसंपर्शसंपन्नानुग्रहं गृहम् ॥ १२ ॥

आज आपके चरणकमल के स्पर्श से संपन्न मेरा घर चिरकाल के लिए प्रशंसनीय बन गया ॥ १२ ॥

यतः शमस्तमुनिमनुजवृन्दारकवृन्दवन्दनीयपादारविन्दाः, परमानन्दपरिस्पन्दभाजः पांसूनिव पार्थिवान्, तृणमिव स्त्रैणम्, निधनमिव धनम्, रोगानिव भोगान्, राजयक्ष्माणमिव लक्ष्मीम्, आकलयन्तः सकलसंसारसुखविमुखाः कस्य भवादृशा भवनमवतरन्ति ॥

समस्त उत्तम मुनिवर्ग तथा मानववर्ग द्वारा जिनका चरणकमल प्रणम्य है, जो, उत्तम आनन्द के पात्र हैं, जिन्होंने राजाओं को धूलि, स्त्री वृन्द को तृण, संपत्ति को मृत्यु, भोग को रोग तथा लक्ष्मी को राजयक्षमा समझा है, समस्त संसार के सुख से विमुख आप जैसे लोग किसके घर जाते हैं ?

तदहमद्यानवद्यस्य भवन्नभूवं भूम्नो यशोराशेर्भाजनम्, आरूढः पदं श्लाघार्हम्, आगतो गुणिषु गौरवम्, उपलब्धवान्धन्यताम्, संपन्नः पुण्यवतामग्रणीः, जातो जनस्य वन्दनीयः ॥

भगवन्! आज मैं पर्याप्त अनिन्द्य कीर्ति-राशि का पात्र बन गया, प्रशंसनीय पद पर आरूढ हो गया। गुणवानों में गौरव-पात्र बन गया। धन्य हो गया। पुण्यवानों में अग्रणी बन गया तथा मानववर्ग का वन्दनीय बन गया।

तदित्थमनेकप्रकारोपकारिणां किं ब्रवीमि, किंकरोऽस्मीति पौनरुक्त्यं सर्वस्वामिनाम्। केनार्थित्वमित्यनुचितादरो निःस्पृहाणाम्। इदं मे सर्वस्वमात्मीक्रियतामिति स्वल्पोपचारः स्वाधीनाष्टगुणैश्वर्याणां भवताम्। तथापि प्रणयेन भक्त्या च मुखरितः किंचिद्विज्ञापयामि ॥

इस तरह अनेक तरह से उपकार करने वाले आपके बारे में क्या कहूँ ? यदि कहता हूँ कि आपका नौकर हूँ तो वह पुनरुक्ति ही होगी क्योंकि आप सबके स्वामी हैं। [सबमें मैं भी आ गया बिना कहे ही आप स्वामी हैं मैं नौकर हूँ। यदि उसी बात को फिर कहता हूँ तो पुनरुक्ति ही होगी।] आपके यहाँ कौन याचक नहीं है, (ऐसा कहूँ तो) आप जैसे त्यागी का अपमान ही है। [क्योंकि आपके पास जो कुछ भी है वह याचकों के लिए ही है। अतः याचक आपकी संपत्ति को अपनी ही सम्पत्ति समझ कर माँगने आते हैं। ऐसी स्थिति में मैं उस कार्य को लेकर यदि आपकी प्रशंसा करूँ तो कोई आदर की बात नहीं अपि तु कुछ अनादर का ही भाव झलकता है।] 'यह मेरी संपूर्ण संपत्ति स्वीकार कीजिए' यह कहता हूँ तो यह भी थोड़ा ही सत्कार है क्योंकि जिन्होंने आठों

सिद्धियों के ऐश्वर्य को अपने अधीन कर लिया है (उसके लिए यह थोड़ी-सी संपत्ति का देना कौन सत्कार की बात है ?) फिर भी विनय एवं भक्ति से वाचाल मैं बनकर मैं कुछ कह रहा हूँ ॥

इदं राज्यमियं लक्ष्मीरिमे दारा इमे गृहाः ।
एते वयं विधेयाः व कथ्यतां यदिहेप्सितम् ॥ १३ ॥

यह राज्य, यह लक्ष्मी, ये स्त्रियाँ, ये घर और मैं सभी आपके किङ्कर हैं, जो इच्छा हो कहें ॥ १३ ॥

मुनिरप्यवनीशस्य विनयमभिनन्द्य स्निग्धमुग्धस्मितसुधाधवलिताधरपल्लवमब्रवीत्-'उचितमेतद्भवादृशां वक्तुं कर्तुं वा' ॥

मुनि भी राजा के विनय की प्रशंसा कर स्नेहपूर्ण सुन्दर मुस्कुराहट से अधरोष्ठ को शुभ्र बनाते हुए बोले—'उचित ही हैं आप जैसे लोगों का कहना या करना' ।

उपकर्तुं प्रियं वक्तुं कर्तुं स्नेहमकृत्रिमम् ।
सज्जनानां स्वभावोऽयं केनेन्दुः शिशिरीकृतः ॥ १४ ॥

उपेति ॥ इन्दुः केन शिशिरीकृतः । स्वभावादेव शिशिर इत्यर्थः ॥ १४ ॥

उपकार करना, प्रिय बोलना, अकृत्रिम (स्वाभाविक) स्नेह व्यक्त करना सज्जनों का स्वभाव ही होता है । चन्द्रमा को शीतल किसने किया है ? ॥१४॥

[सज्जनों में मधुरता किसी के द्वारा नहीं बनायी जाती, स्वयं उत्पन्न होती है । जैसे चन्द्रमा को किसी ने शीतल नहीं किया है । वह स्वयम् शीतल है ।]

अपिच—

यथा चित्तं तथा वाचो यथा वाचस्तथा क्रिया ।
चित्ते वाचि क्रियायां च साधूनामेकरूपता ॥ १५ ॥

यथेति ॥ वाचीत्येकत्वेऽपि जात्या बहुत्वप्रतीतिः ॥ १५ ॥

जैसा चित्त वैसी वाणी, जैसी वाणी वैसा कार्य । चित्त, वाणी तथा कार्य सब में सज्जन एक रूप रखते हैं ॥ १५ ॥

अपिच—

विवेकः सह संपत्त्या विनयो विद्यया सह ।
प्रभुत्वं प्रश्रयोपेतं चिह्नमेतन्महात्मनाम् ॥ १६ ॥

विवेक इति ॥ प्रश्रयः प्रणयः ॥ १६ ॥

संपत्ति होने पर ही विवेकपूर्ण रहना, विद्या होने पर भी नम्र रहना, शरणागत का स्वामी बनना, यही सब महात्माओं के चिह्न हैं ॥ १६ ॥

तदेतत्समस्तमस्ति त्वयि दीर्घायुषि, श्रूयतामिदानीं प्रस्तुतम्। अनवरतसुरासुरचक्रचूडामणिकृतचरणरजसश्चन्द्रचूडामणेर्देवस्यादेशेनागता वयम्। अवाप्स्यसि सकलजलधिजलकल्लोलमालालंकारभाजो भुवो भर्तुरुचितमतिमान्यं धन्यमसामान्यं कन्यारत्नम्' इति ॥

तो हे चिरञ्जीविन्! आप में ये सब चीजें हैं, सुनिये जो इस समय प्रासंगिक है। निरन्तर देवों और दानवों की चूड़ामणि में जिनके चरणों की धूलि लगी रहती है, चन्द्रमा जिनके शिर में लटके रहते हैं, ऐसे भगवान् शंकर की आज्ञा से हम आये हैं। आप सागर जल की तरंगमाला से अलंकृत संपूर्ण पृथ्वी के राजा के (सम्मान) के अनुकूल, असाधारण, सर्वप्रशंसनीय एक कन्यारत्न प्राप्त करेंगे।

एवमुक्तवति तस्मिंस्तपस्विनि पुत्रार्थिनी कन्यालाभं मन्यमाना विप्रियं प्रियंगुमञ्जरी जरन्मञ्जीररवजर्जरविलक्षाक्षरया गिरा कुर्वाणेव क्रोधपरिस्पन्दं निन्दास्तुतिधर्मेण नर्मलीलाकलहमकरोत् ॥

एवमिति ॥ क्रोधस्य परिस्पदं चेष्टां कुर्वाणेव ॥

तपस्वी के इस तरह कहने पर पुत्र चाहने वाली प्रियंगुमंजरी ने अप्रिय कन्या लाभ जानकर पुराने नूपुर की तरह श्रीवृत्त (कुछ उदास) अक्षरों की वाणी में क्रोध अभिव्यञ्जित करती हुई निन्दा और स्तुतियुक्त नम्रता-पूर्ण कलह प्रारम्भ किया ॥

'नयशोभाजन, कृतकूटीककुशास्त्रग्राहिन्नवेदनोद्धारं कृतवानसि क्वापि। सर्वदानादेयेषु प्रतिकूलवर्तिषु जलेषु रतिं कुर्वाणः पाठीनहिंसको धीवर इवोपलक्ष्यसे। कुरङ्गेषु प्रीतिं बध्नासि। कदम्बैः कुरवकैर्बहुकदलीकैः पलाशप्रायैः कुजन्मभिः सह संवससि ॥

नयेति ॥ यशोभाजनेत्यामन्त्र्यस्य नञ्योगः। तथा कृतानि कृत्रिमाणि, न तु वेदवदपौरुषेयाणि। कुत्सितटीकानि कुशास्त्राणि गृह्णासीत्येवंशीलः यस्मादवेदो वेदपाठरहितः। इदमपि द्वयमामन्त्र्यम्। क्वापि न उद्धारमुच्चारणं कृतवानसि। वक्तुमपि न वेत्सीत्यर्थः। स्तुतिपक्षे नयश्च शोभा च ते जनयसि। यद्गृहमागतोऽसि तस्येति शेषः। तथा कृता कौ पृथिव्यां टीका गमनं येन। स्वर्गिणाप्यस्मदनुजिघृक्षयेति शेषः। कुशो दर्भ एवास्त्रं गृह्णास्यवश्यम्। एतेनाश्यशत्रूणामपि विघातोक्तिः। वेदना दुःखं तदर्थमुद्धारमुच्चारणं क्वापि नाकरोः। एतेन प्रियंवदत्वोक्तिः। निन्दायां अनादेयेष्वश्रद्धेयेषु जडेषु रतिं विदधद्धिंसको धीवर इवावबुध्यसे। धीवरोऽपि किल नादेयपयःसु कूलं कच्छं प्रति वर्तमानेषु रतिं कुरुते।

पाठीनाहारत्वात्। पक्षे सर्वकालमेव नदीभवेषु कूलं कूलं प्रति वर्तमानेषु वारिषु रागमासक्तिं कुर्वाणः पाठवान् न हिंसाशीलो धिया बुद्धया वर एवावगम्यसे। एतेन तीर्थस्थास्नुर्दयालुर्ज्ञानी च। कुत्सितो रङ्गो वासना येषां तेषु विषयेषु प्रीतिमान्। पक्षे कुरङ्गा मृगास्तेषु प्रीतः। कदम्बैः कुमातृकैः। कुत्सिता अम्बाः कदम्बाः ताश्च दुश्चेष्टितैः कुर्वन्ति आचक्षते वा इति णिजन्तादचि सिद्धम्। बहुव्रीहौ तु कोः कत्व भवति कुत्सितो रवो येषां तैः। कुत्सितमलीकम् कदलीकम्। कोः कत्व। बहुकदलीकं येषाम्। तथा पलं पिशितमश्नन्ति ये तेषां प्रायैः सदृशैः। तथा कुत्सितं जन्म येषां तथाविधैः सह वासं विधत्से। पक्षे कदम्ब-कुरवक-कदली-पलाशा ये कुजन्मानः कौ पृथिव्यां जन्म येषामिति कृत्वा भूरुहास्तैः सह संवससि। मुनयो हि मृग-नगप्रियाः। वनवासित्वात्॥

निन्दापक्ष—हे न यशोभाजन! (अयशस्विन्) कृतकुटीक कुशास्त्र ग्राहिन्! (कृत्रिम, अभद्र टीकाओं से युक्त खराब शास्त्रों के ग्रहण करने वाले) न वेद (तुम कुछ नही जानते हो)। कहीं भी (विद्वानों के बीच) उद्गार (भाषण) नहीं किये हो। बोंलना नहीं जानते हो।

सर्वदा (सदा) अनादेय (अश्रद्धेय) तथा प्रतिकूल चलने वाले जड़ों के साथ प्रेम करने वाले तथा पाठीन (पोठिया मछलियों) की हत्या करने वाले धीवर (मल्लाह) की तरह प्रतीत होते हो। कुरङ्ग, खराब रंग (वासना) वाले लोगों में प्रेम करते हो। कदंव (टेढ़ा चलने वाले) हो। [कुत्सितमम्बति इति कदम्बः 'अम्ब गतौ'] कुरवक (अभद्र बोलने वाले) बहुकदलीक (अधिक झूठे) तथा पलाशप्राय (अधिकांश मांस खाने वाले) कुजन्म (निन्द्य कुल वाले लोगों) के साथ तुम रहते हो।

प्रशंसा पक्ष—नय (नीति) और शोभा के जनक हो। कु (पृथिवी) में टीक (आगमन) किए हो। कुश रूपी अस्त्र को ग्रहण किए हो। कहीं भी वेदनापूर्ण शब्द नहीं किये हो [किसी से इस रूप में नहीं बोलते हो कि सुनने वाले को कष्ट हो) सदा नादेय (नदी सम्वन्धी) तटवर्ती जल में प्रेम रखते हो। पाठी (वेद के स्वाध्यायी) हो। हिंसक नहीं हो। धी (बुद्धि) के कारण बड़े हो। कुरङ्गों (मृगों) से प्रेम रखते हो। कदम्ब, कदली, कुरवक जो कु (पृथिवी) में जन्म लिये हैं उनके साथ रहते हो।

किमन्यद् ब्रूमो वयम्।

और दूसरा आप के बारे में क्या कहूं।

यस्य ते सदाचारविरुद्धः पुष्पवत्कान्ताराग एव प्रियः॥

यस्येति॥ पुष्पवतीषु हि कान्तासु राग आसक्तिः। आचारविरुद्धः कुलधर्मानुचितः पक्षे सदाचारेत्यामन्त्रणम्। विभिः पक्षिभी रुद्धः पुष्पवान्कान्तारस्यागस्तरुरेव प्रियः॥

निन्दा पक्ष—जिस आपको रजस्वला रमणी में प्रेम करना इष्ट है, जो कि सज्जनों के आचरण से सर्वथा प्रतिकूल है।

प्रशंसा पक्ष—हे सदाचार! (सुन्दर आचरण वाले महर्षे!) वि (पक्षियों) से रुढ (घिरा हुआ) कान्तार (जंगल) के अग (वृक्ष) आपको प्रिय हैं। (आप अरण्यवासी सर्वदा स्तुत्य महात्मा हैं।)

तदलमनेन तापसहितेन कन्यावरप्रदानेन' इति ॥

तदिति ॥ तस्मात् तापस तपस्विन्, हि स्फुटं ते तव संबन्धिना कन्यावरप्रदानेन नालं न पर्याप्तं नेष्टं पूर्यत इति यावत्। यतोऽहं पुत्रार्थिनीति। अथवा तापः संतापस्तत्सहितेन। पक्षे तापसेत्यामन्त्रणम्। तेनानेन कन्यावरप्रदानेनालं नान्यत्प्रार्थनीयमित्यर्थः ॥

निंदा पक्ष—ताप (संताप) सहित यह कन्यावर-प्रदान व्यर्थ ही है।

प्रशंसा पक्ष—हे तापस! यह कन्यावर-प्रदान को हित करना (छोड़ना) पर्याप्त (अलं) नहीं है।

['कन्यावर प्रदान पर्याप्त है' ऐसा अर्थ करने पर 'अलं' का प्रयोग पर्याप्ति अर्थ में मानना होगा। तब "नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च" के योग में चतुर्थी विभक्ति होने लगेगी। इसलिए इस पंक्ति को स्तुति पक्ष में लगाने के लिए "कन्या वरप्रदान को छोड़ना व्यर्थ नहीं हैं"—यह अर्थ करना चाहिए जिससे 'अलं' अपर्याप्ति अर्थ में लग सके।]

एवमभिहितः सोऽपि तां बभाषे ॥

ऐसा कहने पर मुनि भी प्रियङ्गुमंजरी से कहे।

'दोषाकरमुखि, किं मामुपालभसे। प्रायः प्राणिनामीशः शंभुरेव शुभाशुभं कर्मालोक्य तुलाधर इव तुलितं फलमुपकल्पयति ॥

दोषेति ॥ दोषाणामाकरो मुखं यस्यास्तत्संबोधनम्। पक्षे दोषाकरश्चन्द्रः ॥

निन्दा पक्ष—हे दोषाकरमुखि! (दोष भरे मुँह वाली) मुझे क्यों दोष देती हो?

प्रशंसा पक्ष—हे दोषाकरमुखि! (चन्द्रमुखी) मुझे क्यों उलाहना देती हो? प्रायः सभी प्राणियों के स्वामी शंकर भगवान् ही लोगों के शुभ अशुभ कर्मों का विचार कर तौलने वालों की तरह ठीक ठीक फल देते हैं।

तथाहि।

यद्यावद्यादृशं येन कृतं कर्म शुभाशुभम्।
तत्तावत्तादृशं तस्य फलमीशः प्रयच्छति ॥ १७ ॥

जो जब तक तथा जैसा शुभ अशुभ कार्य जिन लोगों ने किया है वहीं उसने समय तक, तथा वैसा ही उसका फल ईश्वर देते हैं ॥ १७ ॥

अथवा ।

मत्तमातङ्गगामिनि, यस्यास्तवाप्रमाणालोचनश्रीः सा त्वं बलिसंश्रयावलग्ना कस्य नाधिक्षेपं जनयसि ॥

मत्तेति ॥ मत्तः क्षीबो मातङ्गः शबरस्तद्वद्गच्छसि चेष्टसेऽवश्यम् । स ह्यनुचितचेष्टः त्वमपि तथा क्षीवा । म्लेच्छाभिगमस्त्वनुचितत्वान्त व्याख्येयः । पक्षे मातङ्गो हस्ती । यस्या भवत्या आलोचनश्रीर्विवेकसंपद्प्रमाणा प्रत्यक्षादिप्रमाणापेता सा त्वं बलिनो बलवतो राज्ञः संश्रयेऽवलग्नावष्टब्धा कस्य पूज्यस्यापूज्यस्य वा अधिक्षेपं तिरस्कारं न करोषि । सर्वस्यापि करोष्येव । पक्षे लोचनश्रियः प्रसृत्यादिप्रमाणातिरिक्तत्वम् । बलिरुदररेखा । अवलग्नं मध्यम् । एवंविधा सा त्वं शुभलक्षणा कस्य आधिक्षेपं मनःपीडाया अपनोदं न करोषि ॥

मत्तमातङ्गगामिनि (मतवाले किरात की तरह चलने वाली) तुम्हारी आलोचन—श्री (विचार शक्ति) प्रमाणहीन है । (तुम प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों को नहीं मानती ।)

तुम बलि संश्रय (बलवान् राजा का आश्रय) प्राप्त कर किसका अधिक्षेप (अपमान) नहीं करती ?

प्र. प. मत्तगजगामिनी ! अप्रमाण (बड़ी) आँखों की शोभा और बलि (त्रिवलि) संयुक्त अवलग्न (कमर) से संपन्न तुम किसकी आधि (व्यथा) का क्षेप (नाश) नहीं करती ?

तदलमनेनालापालसत्प्रपञ्चेन । गतो भूयिष्ठो दिवसः । समासन्नोऽस्माकमाह्निकसमयः । सीदत्येषा ब्रह्मपरिषद् । गगनमण्डलमध्यमारोहति भगवानशेषकल्याणचिन्तामणिस्तरणिः । अरविन्दारुणवदने न नक्तं समयमनुपालयन्त्यमी मुनयः । अनुमन्यस्व । यामो वयम् ॥

तदिति ॥ तस्माद् । अलं पूर्यतामनेन । आलापे संभाषे आलस्याभव्यस्य सतो भव्यस्य च प्रपञ्चेन विस्तारेण । प्रकृतं प्रक्रियत इति भावः । उक्तयो हि लप्रतिपक्षा भवन्तीत्यालप्रतिषेधे सतोऽपि प्रतिषेधः । तथाहि—'सन्तः सच्चरितोदयव्यसनिनः प्रादुर्भवद्यन्त्रणा सर्वत्रैव जनापवादचकिता जीवन्ति दुःखं सदा । अव्युत्पन्नमतिः कृतेन न सता नैवासता व्याकुलो युक्तायुक्तविवेकशून्यहृदयो धन्यो जनः प्राकृतः' । अथवा आलापस्य आलेनावस्तुरूपेण सन् न परमार्थेन सन् योऽसौ प्रपञ्चस्तेनालं निरर्थकत्वात् । यदुक्तम्—यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थसत्' । दारुणं न यशोभाजनपाठीनहिंसकेत्यादिकस्य मुनीनां प्रतिपादनाद्रौद्रं वदनं यस्यास्तस्याःसंबोधनम् । न अरविं नक्तं समयम् । अपितु सरविं संध्यासमयं मुनयोऽप्यनुपाल

यन्ति। नक्तमित्यनेन संध्या लक्ष्यते। वयमपि मुनयस्ततोऽस्माकं संध्यावसर इत्यभिप्रायः। स्तुतौ अरविन्दवदरुणं वदनं यस्यास्तस्याः संबोधनम्। नैते मुनयः संध्याकालमनु पश्चात्पालयन्ति। अवश्यविधेयत्वात्तत्कालमेवेत्यर्थः। तस्मादनुजानीहि यामो वयम्॥

इस आलाप (चर्चा) के आल (अभव्य) तथा सत् (भव्य) प्रपञ्च से क्या लाभ ?

दिन का बड़ा भाग बीत गया। हमारे संध्यानुष्ठान का समय समीप है। यह ब्राह्मणों की गोष्ठी (बैठे बैठे) दुःखी हो रही है। समस्त कल्याण को देने वाले भगवान् सूर्य आकाश के मध्यभाग में आ रहे हैं।

हे दारुणवदने! [पाठीन, हिंसक, धीवर, पुष्पवत् कान्ताराग इत्यादि पदों से मुझे तूने संबोधित किया है इसलिए तुम दारुणवदना हो।]

अरविनक्त (सूर्यहीन) संध्या काल की संध्या का अनुष्ठान ये मुनिलोग नहीं करते। [केवल संध्याकालीन संध्या ही नहीं करते, मध्याह्नकालीन संध्या भी करते हैं।] आज्ञा हो। हमलोग जाते हैं।

इत्यभिहिता सा प्रियंगुमञ्जरी 'महर्षे, मर्षणीयोऽयमेकस्त्यक्तकुलवधूधर्मो नर्मापराधः। स्वीक्रियन्तामेतानि विविधान्युल्लसन्मयूखमञ्जरीरचितेन्द्रचापचक्राण्याभरणानि। गृह्यतामिदमिन्दुद्युतिधवलमनलशौचं चीनांशुकपट्टपरिधानयुगलमियं च कुसुममालिका' इत्यभिधायास्यान्यदप्यतिथिसत्कारोचितमुपढौक्य प्रसादनाय प्रणाममकरोत्॥

इतीति॥ इत्युक्ता सा राज्ञा महर्षे इत्याद्यभिधायातिथ्यसत्क्रियायोग्यमुपादाय हर्षयितुं प्रणतिं चक्रे॥

ऐसा कही जाने पर प्रियंगुमञ्जरी, "महर्षे! कुलांगना के मार्ग को छोड़ कर जो यह एक मैंने नम्रतापूर्ण अपराध किया उसे क्षमा करेंगे। इन अलंकारों को स्वीकार करें जिनमें छिटकती हुई किरण मंजरियों से इन्द्रधनुष जैसी रेखायें बन गई हैं। अग्नि की तरह पवित्र तथा चंदनकान्ति की तरह धवल एक जोड़ा यह शिल्कवस्त्र तथा पुष्पमाला ग्रहण करें।"

इस तरह कह कर और भी अतिथि—सत्कार के उपयुक्त चीजों को लाकर महर्षि को प्रसन्न करने के लिए प्रणाम की।

मुनिस्तु 'गौरवमुखि, वृत्तमुक्तोऽयं हारः, दोषालयमङ्गदम्, जघन्यापदाश्रयं काञ्चीदाम, सदापदाधिष्ठानं नूपुरम्, अलंकारो भवद्विधानामेव राजते नास्माकम्। इयं च परिमलवाहिनी माला निबद्धमधुकरालापाचीनं वासश्च तवैवोचितम्' इत्यनेकधा श्लिष्टालापलीलया-

तिवाह्य काश्चित्कालकलाः करकलितकमण्डलुर्मण्डलेश्वरमापृच्छ्यतां च प्रियंगुमञ्जरीं जरठतमालनीलमम्बरतलमुदपतत् ॥

मुनिस्त्विति ॥ वृत्तमुक्तो वर्तुलमौक्तिकः शीलरहितश्च । दोषाशब्दो भुजपर्याय इति दोषा बाहू आलयो यस्य । दोषा अवद्यानि च । यद्विश्वः—'दोषा रात्रौ भुजेऽपि च' । जघने भवं जघन्यं गर्हितं च । तादृक् पदमाश्रयो यस्य । 'सदा शश्वत् पदे पादावधिष्ठानमाश्रयो यस्य । पक्षे सतामप्यापदामासमन्तादधिष्ठानं नगरम् । आपदामाधेश्च स्थानमिति वाक्ये तु सुषामादित्वात्पत्वम् । इति प्रकृतेऽलंकारस्य वर्णनं गौणवृत्त्या दूषणम् । तस्मादेवं दोषयुक्तोऽलंकारो युष्मादृशीनामेव भाति; नास्माकं यतीनाम् । यतो हि चारित्रमण्डनाः नर्मणस्तु अलमत्यर्थं कारो राजग्राह्य-भागस्त्वादृशीनां राजपत्नीनां संगच्छते, नास्माकं वनवृत्तीनाम् । लोकस्योपकुर्म एव वयं, न कुतोऽपि किंचित्प्रतिगृह्णीम इति भावः । इयं च सुगन्धिः सभृङ्गलापा स्रक् चीनमंशुकं च तवैव युक्तं, नास्माकम्, यस्मात् परितो मलं वहति । तथा निबद्धमधुना समवेतसुरया कराला एवंभूतासौ स्रक् । अपाचीनं निकृष्टं च वासः । इति समयं कंचिच्छ्लेषोक्तिभिर्निर्गम्य गगनमुदगात् ॥

प्र. प. :—गौरवमुखि ! (प्रभावमुखि !) यह हार वृत्त मुक्त (गोल मणियों) का बना है । इस अंगद (भुजभूषण) के दोष (भुजायें) ही आलय हैं । इस करधनी का आश्रय जघनपद (मध्य) भाग है । ये नूपुर सदा पद में ही रहते हैं, इसलिए ये अलँकार आपही जैसे लोगों में अच्छे लगते हैं, हम लोगों में नहीं । भ्रमर गुञ्जार से मुखरित यह परागपूर्ण माला तथा चीनांशुक वस्त्र आपही के लिए उचित है ।

नि. प.—गौरवमुखि ! यह हार (व्यवहार) मुक्त वृत्त (शील रहित) हैं ब्रह्मचारी मुनि के लिए चमकीले वस्त्र, अलंकार तथा सुगंधित माला आदि देना मर्यादा के प्रतिकूल है । मनु ने ब्रह्मचारियों के लिए इन सभी पदार्थों का निषेध किया है । यह अंगद (बाहुभूषण) दोषों का हार है । यह करधनी निन्दा का स्थान है । यह नूपुर सज्जनों के लिए आपत्ति और आधियों (रोगों) का स्थान है । परि (चारों तरफ से) मलवाहिनी (रजपूर्ण) तथा मधु (सुरा की तरह मादक गंध वाली) कराल (भयंकर) माला, तथा यह अपाचीन (अधम वस्त्र) मैं लेकर क्या करूंगा । इस तरह श्लिष्ट उक्तियों में बात करते हुए कुछ समय बिताकर हाथ में कमण्डलु उठाकर राजा तथा प्रियंगुमञ्जरी से कहकर पुराने तमाल पत्रों की तरह नीले आकाश में उड़ गये ॥

वियति विशदविद्युल्लोललीलायमाने
स्फुरदुरुपरिवेषाकारकान्तौ मुनीन्द्रे ।
अथ गतवति तस्मिन्विस्मयोत्तानिताक्षः
क्षितिपतिरवतस्थे स्थाणुसंस्थां दधानः ॥ १८ ॥

वियतीति ॥ विस्मयान्निश्चलाकृतिर्नृपः स्थाणुनोपमितः ॥ १८ ॥

आकाश में तीव्र दीप्तिपूर्ण विजली की तरह गतिवाले, चमकते हुए विशाल गोलाकार अपने तेज का परिवेष बनाते हुए मुनि के चले जाने पर आश्चर्य के मारे अपनी आँखों को ऊपर उठाये हुए राजा स्तम्भ की तरह वहीं खड़े रह गये।

[तेज अपने पिण्ड के चारों तरफ परिवेष बनाता है। मुनि का भी वैसा ही परिवेष था] ॥ १८ ॥

स्थित्वा च तत्कथावस्थया काश्चित्कालकलाः कलापिकुलोत्कण्ठाकारिणि रणति नवजलधररवरमणीये मध्याह्नगम्भीरभेरीसखे शङ्खयुगलके, विशति बिसकाण्डकवलनमपहाय तीव्रतरतपनतापताम्यत्तनुनि नवनलिनीछदच्छायामण्डलमुपवनदीर्घिकावतंसे हंसकुले कुमुदकुवलयाम्भोजपत्रपुञ्जपञ्जरान्तरमनुसरति परिहृतोष्णमधुनि, मुकुलितपक्षपुटे षट्चरणचक्रवाले चटुलाग्रिमखुरशिखरोल्लिखितधरणिमण्डलेषु खण्डितखर्वदूर्वानालनीलघुरघुरायमाणघोणाकोणेषु विमुच्यमानेषु पिपासातुरतुरंगेषु, घर्मविघूर्णितेषु ससूत्कारकरविमुक्तसीकरासारवर्षणाद्रिताङ्गणेषु मज्जनाय सज्जितेषु सेवागतराजकुञ्जरेषु, क्रीडागिरिसरितमवतार्यमाणेषु लीलामृगमिथुनेषु, पयोभिः पूर्यमाणासु पञ्जरपक्षिपयःपानपात्रीषु उद्यानारघट्टतटीं टीकमानासु कोयष्टिमयूरमण्डलीषु, क्रीडासरः सरत्सु संगीतश्रमस्विन्नखिन्नकिंनरेषु, कूपकूलकुलायकोणकूणितेष्वातपातङ्काकुलकलविङ्केषु, भवनवनवापीपुलिनपालिपांसुपटलमुत्तप्तमपहाय शीतलशैवलावलिं श्रयति तरलितनक्रे, क्रेंकारयति क्रौञ्चचकोरचक्रवाकचक्रे, क्रीडाप्ररोपितप्राङ्गणप्रान्ततरुशिखरमध्ये मध्याह्नबलिपिण्डाय पिण्डिते क्रेंकारयति काकवयसां कर्णकटु कुटुम्बके, बकवलयवलक्षान्क्षिपति दिक्षु दीप्रान्दीप्तिदण्डांश्चण्डरोचिषि, विसर्ज्य परिजनं राजा मज्जनभवनायोदचलत् ॥

स्थित्वा चेति ॥ राजापि निश्चलनेत्रस्तथा तमवलोक्य कंचिच्च समयं तत्कथाभिरेवातिवाह्य मध्याह्नस्नानसद्मने प्रतस्थे ॥

उन्हीं की चर्चा में कुछ क्षण बिताकर मयूरवर्ग में उत्कण्ठा उत्पन्न करने वाले, नवीन मेघ की तरह रमणीय गर्जन करने वाले दोपहर को विशाल नगाड़े के साथ दो शङ्खों के बजने पर कमलनाल का खाना छोड़कर सूर्य की प्रखर किरणों से शरीर के जलने लगने पर उपवन सरोवर के भूषण राजहंस कमलिनी पत्रों की छाया में घुसने लगे। (पुष्पों के) उष्ण रस को छोड़ कर अपने पंखों

को संकुचित कर भ्रमर समूह कुमुद, कुवलय, तथा अम्भोज (श्वेतकमल) के पत्र समूह के भीतर जाने लगे। वे प्यास से व्याकुल घोड़े छोड़े जा रहे थे। चञ्चल खुरों के अग्रभाग से पृथ्वीमंडल को खींच रहे थे। छोटे-छोटे हरे दूब के टुकड़े नाक में अटक गये थे। अतः घुर घुर आवाज कर रहे थे। सेवा के लिए आये हुए राजकुञ्जर जो धूप से पीड़ित होकर सी. सी. करते हुए अपने शुण्डों से निकले हुए जलकणों की वर्षा से आँगन को भिगो रहे थे, स्नान के लिए सजाये जा रहे थे। क्रीडा शैल की नदी में लीला मृगों के जोड़े उतारे जा रहे थे। पिंजड़े के पक्षियों के पानी पीने वाले पात्र भरे जा रहे थे। उपवन के अरघट्ट (रेंहट) तटपर सारसों और मयूरों का समूह (प्यास बुझाने) आ रहा था। गीत श्रम के कारण स्वेद (पसीना) युक्त तथा दुःखी किन्नर गण क्रीडा सरोवर की ओर बढ़ रहा था। कूप तट में बने हुए खोखलों के कोने में प्रविष्ट धूप चिह्न से कलविङ्क (चटक पक्षी व्याकुल हो रहे थे। गृहरूपी अरण्य जलाशय की तट पंक्तियों की गरम धूलि को छोड़कर चञ्चल नक्र (घड़ियाल) शीतल शैवाल पंक्ति तल में आ रहे थे। क्रौञ्च, चक्रवाक तथा चकोर कूज रहे थे। क्रीडा के लिए आंगन में रोपे गये पेड़ की चोटी पर मध्याह्न बलि के पिण्ड प्राप्त करने के लिए इकट्ठे हुए काक पक्षियों का कर्ण कटु कुटुम्ब क्रेङ्कार कर रहे थे। भगवान् बगुले के पंख की तरह श्वेत अत्यन्त द्युतियुक्त किरणदण्ड को विविध दिशाओं में (भगवान् सूर्य) फेंक रहे थे। ऐसे समय में अपने परिजनों (समीपवर्ती अनुचरों) को छोड़कर राजा स्नानागार की ओर चल दिये।

गत्वा च पृथ्वीवलयमिव पयःपूर्णसमुद्रद्रोणीकम्, केदारोदरमिव सकलशालिस्थानम्, श्रोत्रियद्विजजनभवनमिव सकलधौतपट्टम्, अतिरमणीयं मज्जनभवनमवतारिताभरणः स्नानपीठे निषसाद ॥

गत्वा चेति ॥ मज्जनगृहं गत्वा स्नानपीठे निषण्णः गृहं विशिष्यते। पयसा पूर्णा समुद्रा मुद्राङ्किता द्रोणी जलपात्री कुण्डिका यत्र। स्नानीयजलादिषु मुद्रा दीयत इति राजधर्मः। तथा कलशाः कुम्भास्तेषामालिः पङ्क्तिस्तया सह युक्तानि स्थानानि प्रदेशा यत्र। तथा कलधौतस्य हेम्नः पट्ट आसनं तेन सह। अन्यत्र पयःपूर्णः समुद्रो द्रोणी च यत्र। द्रोणी देशविशेषः। यद्विश्वः—'द्रोणी स्यान्नीवृदन्तरे'। केदारोदरं तु समग्रशालिस्थानम्। तथा सकलाः सर्वे धौताः धौताः क्षालिताः पट्टा ह्यासनानि यत्र ॥

जल से पूर्ण तथा मुद्रा (द्रव्य) सहित द्रोणी (जलकुण्ड) से युक्त वह (भवन) पृथ्वीवलय (समुद्र) की तरह लग रहा था।

केदार (खेत) का मध्य भाग जैसे सकल शालि स्थान (सम्पूर्ण धान का स्थान होता) है वैसे (वह भवन भी) सकल शालि स्थान (कलशों की पंक्ति

सहित स्थान वाला) है। वैदिक ब्राह्मण का घर जैसे सकल धौतपट्ट (सभी धुले हुए वस्त्रों से युक्त) होता है वैसे वह भी सकलधौतपट्ट (कलधौत (सोने) का पट्ट (आसन) से युक्त है। ऐसे भवन (स्नानागार) में जाकर अपने अलङ्कार को उतार कर स्नान-पीठ पर बैठे।

[पृथ्वीवलय का दो तरह से समास करेंगे। पृथव्याः वलयः समुद्रः। पृथ्वी बीच में है और समुद्र उसके चारों ओर है। इसलिए यह वह उसका वस्त्र हुआ। दूसरा—पृथ्वीवलयस्य मुद्रया सहितस्य समुद्रस्य द्रोणीकस्य भवनस्य। यहां समासभेद से वस्तुसाम्य और शब्दसाम्य दोनों है।]

आसन्नस्थितश्चास्यावसरपाठकः पपाठ—

इनके पास में खड़ा हुआ अवसरपर स्तुति पाठ करने वाला पाठक ने पढ़ा—

वररजनीकरकान्ते चित्राभरणे निशानभःसदृशे।
तव नृप मज्जनभवने सवितानाभाति परमश्रीः॥ १९॥

वरेति॥ नृप इति संम्बोधने। अधुना तद्विशेषणानि। वर श्रेष्ठ। रजनीकरस्य चन्द्रस्येव कान्तिरस्येति, चन्द्रद्युते। रणे युद्धे चित्रो व्याघ्रस्तद्वदाभा अस्येति तथोक्ते। तथा निशानैस्तेजस्विभिर्वभस्तीति कृत्वा सुभटस्य अथवा निशानं निर्मलं वभस्ति शोभते। तथा सदृश इः कामो यस्येति कृत्वा कंदर्पप्रतिम। मज्जनसदने सवितानां सोल्लोचा उत्कृष्टश्रीर्द्योतते। अथ च मज्जनभवने सविता रविर्नाभाति। परं केवलम्। अश्रीर्निष्प्रभ एवेत्युक्तिलेशः। यतो निशायां यन्नभस्तत्सदृशे। प्रद्योतनाद्युच्यते हेतुरयम्। तथा चित्राण्याभरणानि यत्र। नभःपक्षे चित्रा नक्षत्रम्। तथा वरा श्रेष्ठा रजनी हरिद्रा तां कुर्वन्ति सत्कुर्वन्तीति कृत्वा रजनीकरा गन्धकारकास्तैः कान्ते। नभस्तु वरो बीह्मिमान् सूर्याभावाद्यो रजनीकरः शशी तेन कान्तम्॥ १९॥

प्र. पक्ष—पूर्णचन्द्र जैसी कान्ति वाले, व्याघ्रप्रतिम, तीक्ष्ण तेजवाले, कामदेव के प्रतिरूप, इस स्नानागार में आपकी तेजोलक्ष्मी, पूर्ण विस्तार से द्योतित हो रही है॥ १९॥

द्वि. पक्ष—उत्कृष्ट कोटि की रजनी (हल्दी लेपन द्रव्य) बनाने वाले लोगों से मनोहर, विचित्र अलङ्कारों से युक्त, रात्रिकालीन आकाश की तरह (कुछ नीला, कुछ विभिन्न अलङ्कारों के कारण तारों जैसा) वि (मधुर बोलने पक्षियों) के विस्तार से भरे हुए भवन में उत्तम कोटि की लक्ष्मी सुशोभित हो रही है॥ १९॥

तृ. पक्ष—चित्रा और भरणी नक्षत्र और वर रजनीकर (चन्द्र) कान्त से युक्त रात्रिकालीन आकाश में जैसे तीक्ष्ण किरणों वाले सूर्य नहीं चमकते वैसे आपके इस मज्जन भवन में किसी प्रकार की तीक्ष्णता नहीं है॥ १९॥

[प्रथम पक्ष—वररजनीकरकान्ते ! (पूर्ण चन्द्र जैसी कान्ति वाले) समस्त कान्ति शब्द के सम्बोधन का रूप 'कान्ते' है। रणे चित्राभ (लड़ाई में व्याघ्र सदृश), 'चित्र' शब्द व्याघ्रवाचक है। अर्थात् चित्र (व्याघ्र) सदृश आभा है जिसकी। यह भी संबोधन का रूप है। निशानभः ! (तीक्ष्ण तेजवाले) सदृशे (सदृश है) इ (काम) जिनके वह। अर्थात् काम का प्रतिरूप, सदृशे भी सम्बोधन का ही रूप है। सदृश और इ में गुण सन्धि हुई है। सविताना (विस्तारपूर्ण)।

द्वितीय पक्ष—वररजनीकरकान्ते—(सुन्दर हल्दी का गन्धद्रव्य बनाने वाले लोगों से मनोहर), चित्राभरणे (विभिन्न अलङ्कारों से मण्डित) निशानभः सदृशे मज्जनभवने (रात्रिकालीन आकाशसदृश स्नानागार में) सविताना परमश्रीः (विस्तारपूर्वक लक्ष्मी) भाति (चमकती है)। (रजनी शब्द हल्दी का भी वाचक है।)

तृतीय पक्ष—वररजनीकरकान्ते (पूर्ण चन्द्रमा द्वारा मनोहर) 'चित्रा-भरणे (चित्रा नक्षण रूप आभरण वाले) रात्रिकालीन आकाश में परमश्रीः सविता (पूर्ण तेज सूर्य) न आभाति (चमकते नहीं हैं।) निशानभः शब्द को सूर्य का विशेषण बनाया जा सकता है। निशान (तीक्ष्ण) है भा (किरणें) जिनकी अर्थात् तीक्ष्ण किरणों वाले। ॥ १९ ॥

अनन्तरमुत्तुङ्गकनककुम्भशोभास्पर्धिकुचमण्डलार्धबद्धोत्तरीयांशुक-परिकराः, सस्मरस्मितविकारकारिण्यः दर्शितसीत्काराङ्गमलनवि-न्यासाः, काश्चित्समुद्रवेला इव समकरोत्क्षिप्तामलकाः, काश्चित्तरुण-तरुमञ्जरीराजय इव भृङ्गारभरभुग्नदेहाः, काश्चिदन्यायकारिण्य इव सभाजनोद्धूलनकराः, काश्चिन्मलयाचलभूमय इवोत्कृष्टगन्धधारितैलाः काश्चिद्देवलोकवसतय इव चामरधारिण्यः काश्चित्पुरंदरपुरंध्रिका इव सविभ्रमकङ्कतिकोपान्तेनाकेशप्रसादनमाचरन्त्यः, काश्चिद्विन्ध्याटव्य इव दर्शितविविधपादपालिकाः, काश्चिद्राघवसेना इव कृतप्रहस्तमलनाः, काश्चिद्व्याकरणवृत्तय इव बाहुलतां संवाहयन्त्यः मज्जननियुक्ताः कामिन्यो राजानं स्नपयामासुः ॥

अनन्तरमिति ॥ परिकरमावध्येति जघने पटीवेष्टिं कृत्वा कामिन्यो राजानमस्न-पयन्। समेनाविषमेण करेणोत्क्षिप्तान्यामलकानि याभिः। आमलकचूर्णं हि स्नानी-यम्। भृङ्गारः कनकालुका। भाजनं पात्रम्। तत्रोद्धूलनं चूर्णविशेषः तेन सह करः पाणिर्यासाम्। सभाजनोद्धलनपाठे तूद्वलनमुद्वर्तनम्। उत्कृष्टानि उद्धृतानि गन्ध-धारीणि तैलानि याभिः। चामरं प्रकीर्णकम्। विशिष्टो भ्रमश्चलनं तेन सह या कङ्क-तिका केशमार्जनी तस्या उपान्तेनासमन्तात्केशानां विरलीकरणमाचरन्त्यः। पालिः

पर्यायावसरः। यदजयः—'पालिः कर्णलतायां स्यात्प्रदेशे पंक्तिचिह्नयोः। इष्टश्मश्रु-स्त्रियामश्रौ पर्यायावसरे क्रमे'। ततश्च दर्शिता विविधा पादपालिः पादमर्दनावसरो याभिः। कृतं प्रकर्षेण हस्तमलनं याभिः। बहुलतामिनि बाहुलतेवेति। पक्षे मकरैः सह उत्क्षिप्तममलं कं जलं याभिः। भृङ्गाणामार आगमनं तस्माद्यो भरः। तथा अवाच्यवचनैः सभाजनस्योद्धूलनं मालिन्यं कुर्वन्ति। उद्धूलनपाठे तु सभाजना-दुद्धूलनमपसरणम्। उत्कृष्टगन्धधारिता एला ओषधिविशेषो याभिः। च पृथक्। अमरा देवाः। सविभ्रमं सविलासं कं सुखं यत्र। कतिकोपान्ते कियत्कोपविगमे नाकेशस्य दिवस्पतेः प्रसादनं कुर्वन्ति। कतीति पुरंध्रिकाविशेषणं वा। दर्शिता विविधाः पादपानामालयो याभिः। प्रहस्तो रावणप्रतिहारस्तस्य मलनमभिभवः। बाहुलता बाहुलकम्॥

इसके बाद कामिनियाँ जो स्वर्णकलश की शोभा से भी स्पर्धा रखने वाले ऊँचे स्तनमण्डल के आधे अंश को उत्तरीय (चादर) से बाँधते हुए कटि तक को कसी हुई हैं। मुस्कुराहट से कामविकार उत्पन्न कर देने वाली हैं। अङ्गों को मलते समय सीत्कार उत्पन्न करा देती हैं। जैसे समुद्रतट समकरोत्क्षिप्ता-मलक (ग्राह द्वारा ऊपर उछाले हुए निर्मल (क) जल से युक्त होता) है वैसे वे (कामिनियाँ) भी समकरोत्क्षिप्तामलक (हाथ को बराबर कर आमलकी चूर्ण शरीर पर छिड़क रही) हैं। जैसे पूर्ण विकसित मञ्जरी पंक्ति भृङ्गार + भुग्न + देह (भृङ्गों के आर (आगमन) के भार से नवी होती है, वैसे ही वे भृङ्गार + भुग्न देह (भरे हुए स्वर्ण जलपात्र के भार से टेढ़ी देहवाली) हो गयी है। अन्यान्यकारिणी (अनुचित कार्य करने वाली) स्त्री जैसे सभाजनोद्धूलनकरी (सभ्य आदमी को भी अपशब्दों या दुर्व्यवहारों से मलिन कर देती है) है वैसे कोई सभाजनोद्धूलनकरी (भाजन (पात्र तथा उद्धूलन (चूर्ण) युक्त हाथ वाली) है। मलय पर्वत की भूमि जैसे उत्कृष्ट गन्धधारितैला (उत्तम कोटि की गन्धवाली एला (औषधि विशेष) को धारण करती) है, वैसे उनमें भी कोई उत्कृष्ट गन्धधारितैला (उत्तम कोटि के गन्ध तैल को ली हैं) देवलोक की नगरियाँ जैसे चामरधारिणी (अमरों (देवताओं) को धारण करती) हैं वैसे वे चामरधारिणी (चवँर ली हुई) हैं। इन्द्राङ्गनाएँ जैसे सविभ्रमकङ्कतिकोपान्तेनाकेशप्रसाधन (सविभ्रमकं (विलासपूर्वक सुख उत्पन्न करती हुई) कतिकोपान्त (कुछ क्रोध के समाप्त हो जाने पर नाकेश (इन्द्र) को मानती रहती) हैं वैसे वे भी विलासपूर्वक कंघी से केश का प्रसाधन कर रही हैं। विन्ध्याटवी जैसे दर्शित विविध + पादपालिक (बहुत वृक्ष पंक्तियों को प्रदर्शित करता) है वैसे वे भी बहुत ढंग की पाद-पालन-विधियाँ दिखाती हैं। राघव-सेना ने जैसे प्रहस्त (प्रहस्त नाम के रावणदूत) का मर्दन किया वैसे वे भी प्रहस्त (जोरदार हाथों) से मर्दन कर रही हैं।

व्याकरण नियम जैसे बहुलता से प्रवृत्त होते हैं वैसे वे भी बाहुलता का संवाहन (मर्दन) कर रही हैं। इस तरह स्नान कराने के लिए नियुक्त कामिनियों ने राजा को स्नान कराया।

किं बहुना—

तास्तास्तं स्नपयामासुरङ्गनाः कुम्भवारिणा।
एत्य याः स्युः प्रसन्नेन द्युलोकात्कुंभवारिण ॥ २० ॥

ता इति ॥ भवस्य संसारस्यारिः शिवस्तेन। प्रसन्नेन हेतुना। द्युलोकात्स्वर्गलोकात्। कुं पृथ्वीम्। एत्यागत्य। याः स्युर्भवेयुः। तास्ताः स्त्रियः। तं कुम्भवारिणा कलशोदकेन स्नपितवत्यः ॥ २० ॥

उस राजा को कलश जल से असामान्य सौन्दर्य की अङ्गनाएँ स्नान करायीं जो भवारि (संसार-बंधन के शत्रु भगवान् शंकर) की प्रसन्नता के कारण द्युलोक (स्वर्गलोक) से आयी हुई थीं ॥ २० ॥

अथ विमलदुकूलप्रान्तनिर्नीरिताङ्गः
परिहितसितवासाः स्वल्पमाङ्गल्यभूषः।
शुचिरुचितविधिज्ञः स स्वयं स्वस्थचित्तः
कुशकुसुमकरः सन्कर्म धर्म्यं चकार ॥ २१ ॥

अथेति ॥ निर्नीरितं निर्जलीकृतमुद्गमितमित्यर्थः ॥ २१ ॥

इसके बाद एक निर्मल वस्त्र से शरीर के जल को पोंछकर, सफेद वस्त्र तथा कुछ माङ्गलिक अलङ्कारों को पहन कर उचित विधानों का जानकार एवं पवित्र, राजा ने स्वस्थचित्त होकर स्वयं हाथ में फूल और कुश लेकर धार्मिक कृत्य किया ॥ २१ ॥

अनन्तरमावर्तितानेकस्वर्णवल्लभो वल्लभो जनस्य भोजनस्य समये स मयेन निर्मितया तया स्वधर्माणं धर्मसुतसभया सभयागतजनजनितारम्भोऽरं भोजनस्थानवेदीं जनस्थानवेदी गतवान् ॥

अनन्तरमिति ॥ आवर्तिता येऽनेके स्वर्णस्य वल्लास्तौल्यमानविशेषास्तद्वद्भा यस्य। तथा वल्लभो दयितो लोकस्य भोजनस्य काले स राजा मयेन दैत्यवर्धकिना कृतया तया प्रतीतया युधिष्ठिरस्य सभया सधर्माणं सदृशीं भोजनस्थानवेदीम्। सभयानामागतानां शरणं प्रपन्नानां जनानां जनितरक्षोपक्रमः। अरमत्यर्थं जनानां स्थानवेदी लोकस्योचितासनज्ञः प्राप्तवान् ॥

आवर्तित (कई बार व्यवहार में आये हुए) चमकीलों स्वर्णमापों की तरह कान्ति वाले, लोगों के प्रिय, भयभीत लोगों के शरण में आने पर उनकी रक्षा के लिए सदा प्रयत्नशील, जनस्थानवेदी (योग्यतानुसार लोगों को स्थान देने वाली विधि का जानकार या जनस्थान (अपने राज्य) का जानकार)

वह राजा मय नामक दैत्य द्वारा निर्मित युधिष्ठिर सभा की तरह (अलौकिक एवं भ्रान्ति उत्पन्न कर देने वाली) भोजन-स्थान की वेदी पर गया ॥

तस्यां च बहुविस्तीर्णस्वर्णभोजनपात्रपत्त्रशङ्खशुक्तिसनाथायामुपविष्टस्यास्य क्रमेण परिकरमाबध्य गाढमाढौकन्त स्वस्य स्वस्यानुहारिणोऽन्नविशेषानादाय सूपकाराः सूपकाराङ्गनाश्च ॥

तस्यां चेति ॥ सूपकारा औदनिका सुष्ठूपकारकाश्च ॥

बहुत से बिखरे हुए स्वर्णपात्रों के पत्रों एवं शंख शुक्तियों से सनाथित उस (भोजन वेदी) पर राजा के बैठने पर कमर को बांधे हुए अपने-अपने सुस्वादु अन्नों को लेकर सूपकार (पाचक) तथा उनकी पत्नियाँ पंक्तिबद्ध होकर ला रहीं थीं ॥

तथाहि—

भक्तास्तस्य भक्तम् , मुद्गा मुद्गान् , मोदका मोदकान् , अशोकवर्तिन्योऽशोकवर्तीः, समांसा मांसम् , नानाशाकाः शाकानि, व्यञ्जना व्यञ्जनम् , अपरास्तु काश्चिदक्षीरा अपि क्षीरम् , अघारिका अपि घारिकाः परिवेषयामासुः ॥

भक्ता इति ॥ भक्ताः प्रसादकाः । मुदं गच्छन्तीति मुद्गाः । मोदयन्तीति मोदकाः । न शोके वर्ततेऽभीक्ष्णमशोकवर्ती नीर्नायको येषां यासां च । समोंऽसो यासाम् नाना अनेकप्रकारा आशा येषां यासां च । 'शेषाद्विभाषा' इति कप् । विशिष्टाञ्जनाः । अक्षीणि ईरयन्ति विभ्रमास्कम्पयन्ति । अघस्य पापस्य अरिकाः शत्रुरूपाः । भक्तमित्यादि कर्मपदानि भक्ष्यार्थानि । परिवेषणमत्र भोजनस्य भाजने क्षेपणम् ॥

भक्त (प्रसन्न कर देने वाले पाचक) भात, मुद्ग (प्रसन्न मुख मुद्रा वाले) मुद्ग (मूंग की बनी मिठाई), मोदक (आनन्दमग्न कर देने वाले पाचक लोग) मोदक (लड्डू), अशोकवर्तिनी (शोकहीन नायक वाली) नायिकायें शोकवर्त्ती (भोज्य विशेष), नानाशाक (विभिन्न आशाओं वाली स्त्रियाँ) शाक, विशिष्ट ढंग का व्यंजन लगायी हुई स्त्रियाँ व्यंजन, अक्षीर (आंखों के विलास युक्त स्त्रियाँ) दूध, अघारिका (पापों के शत्रु रूप दिव्य धर्मों वाली) पाचिकायें घारिका (भोज्य विशेष) परोसीं ।

सोऽप्यधीशो भूभुजां भुञ्जानो भोज्यम् , लिहँल्लेह्यम् , आस्वादयन्स्वादु; चूषयञ्चूष्याणि, पिबन्पेयानि, आहारमकरोत् ॥

इन्हीं महीपालों का स्वामी वह (राजा) भी भोज्य पदार्थों को खाता हुआ, चाटने योग्य पदार्थों को चाटता हुआ, सुस्वादु पदार्थों को

आस्वादित करता हुआ चूसने के पदार्थों को चूसता हुआ, पेय पदार्थों को पीता हुआ भोजन किया ॥

अनन्तरमाचम्य चन्दनेनोद्वर्तितपाणिपल्लवः शीघ्रमाघ्राय धूपधूमम्, आस्ये निक्षिप्य कस्तूरिकाकुङ्कमकर्पूरकर्बुराणि क्रमुकफलशकलानि आदाय च वित्रस्तमृगतर्णकर्णकम्राणि शुक्तिशुक्लानि ताम्बूलीदलानि, तस्मात्प्रदेशादपरमवकीर्णकुसुमहारि विस्तीर्णास्तीर्णस्वर्णमयवैदूर्यपर्यन्तपर्यङ्काङ्काप्तैः सह विनोदास्थायिकास्थानमगात् ॥

अनन्तरमिति ॥ त्रस्तस्य हि मृगशावस्य कर्णौ स्तब्धौ भवतः। ताम्बूलीदलान्यपि तादृंशीति भावः ॥

इसके बाद आचमन कर चन्दन से करपल्लव को मलकर शीघ्र ही धूपधूम को सूंघ कर, कस्तूरी, कुङ्कुम और कपूर से कर्बुरित (चितकावर) किये हुए कसैल को मूख में डालकर, डरे हुए मृग-शिशु के कान की तरह मनोहर तथा शुक्ति की तरह सफेद ताम्बूलदल (पान) लेकर उस स्थान से दूसरी जगह बिखरे हुए फूलों के कारण मनोहर बिछे हुए बिस्तर वाले स्वर्णमय, वैदूर्य मणि से खचित, पलंग वाले स्थान पर, जहाँ विनोद गोष्ठी होती थी, गया ॥

तत्र च सकामकामिनीकमलकोमलकरपुटपीड्यमानपादपल्लवो नर्तयन्नाट्यपरिपाटीपटून्नटान्, भावयन्नमृतस्नुतः कविवाचः, वाचयंश्चिरंतनकविकथाः, शृण्वन्वीणाप्रवीणकिंनरमिथुनगीतानि, आलोकयँल्लोचनोत्सवकरान्विलासिनीलास्यविलासान्, वादयन्मृदुवाद्यविशेषान्, अवधारयन्वांशिकवाद्यवेणुनिक्वाणान्, कलगिरः पाठयन्पञ्जरशुकान्, कान्ताकुचकुम्भमण्डलावष्टम्भलीलयापराह्णसमयमतिवाहितवान् ॥

वहाँ भी कामपूर्ण कामिनियों के कमल की तरह कोमल करयुगल से उनके पल्लव सदृश पैर दबाये जा रहे थे। नाट्यपद्धति में प्रवीण नटों को नचा रहे थे, अमृत टपकने वाली कविवाणी पर विचार कर रहे थे, पुराने कवियों की कथाएँ पढ़ रहे थे। वीणावादन में कुशल किन्नर-युगल के गति सुन रहे थे, आंखों को आनन्द देने वाली विलासिनियों (वाराङ्गनाओं) के नृत्य विलास देख रहे थे। मधुर बाजों को बजा रहे थे। वंशी के वेणुदण्ड से निकले हुए मधुर अनुरणन पर विचार कर रहे थे। मधुर बोलने वाले पिंजड़े के शुकों को पढा रहे थे। इस तरह रमणियों के स्तनमंडल की संश्लेष लीला से दिन का अपराह्ण भाग बिताये ॥

क्रमेण च चषकायमाणविकचकमलमध्यमधुपानमत्त इव पुनर्वारुण्याशयाभिभूतभासि मदादिव लोहियातमाने निपतति मुक्तांशुकेंऽशुमालिनि, वनान्तरतरुशिरःश्रितशाखाशिखरेषु गलद्बहलकिञ्जल्कपुञ्जपिञ्जरासु मञ्जरीष्विव विलम्बमानासु दिनकरदीधितिषु, विस्तीर्णशिलावकाशजघनायामुल्लसल्लोहिताधरपल्लवायामस्ताचलवनराजिरेखायामुपरि पतितमवलोक्य रागिणमहर्पतिमीर्ष्यारोषभरादिव जाते जपापुष्पनिचयरुचि पश्चिमाशामुखे, मुखरयति नभो निजनीडनिलयनाकूतकूजितजरदण्डजव्रजे, व्रजति सरः संध्याविधिविधित्सया द्विजजन्मजनमुनिनिकाये, कालागुरुसाञ्जनराग इव श्यामलयति गगनलक्ष्मीमभिसारिकाबन्धावन्धकारे, राज्ञः संध्यावसरमावेदयन्किनरमिथुनमिदमगायत् ॥

क्रमेणेति ॥ अन्योऽपि मधुपानेन माद्यति। पुनःपुनर्मधुवाञ्छया निष्प्रभः स्यात्। तथा क्षीबतया आरक्तः सर्वस्वो भूमौ पतति। विस्तीर्णशिलावकाश एव जघनं श्रोणी यस्याः। तथा उल्लसन्तः अधरा अधःस्थिताः प्रवाला यस्याः। ईदृश्यामस्ताचलारण्यराजौ उपरिष्टात्प्राप्तं रागिणं रक्तं द्युमणिं वीक्ष्य रोषादिव पश्चिमदिगानने रक्ते जाते। अन्यस्या अपि मुखमीदृग्गुणायामपरकान्तायामनुरागिणमुपरि पतितं पतिमवलोक्येर्ष्यावशाद्रक्तं स्यात् ॥

क्रम से चषक (प्याले) रूप खिले हुए कमलों के बीच के मधु पी लेने के कारण मत्त की तरह, मद के कारण लाल होते हुए सूर्य के अपने अंशु (किरणों) को छोड़ देने पर, विभिन्न जङ्गल के वृक्षों की शाखाओं के अग्रभाग पर गिरती हुई गाढ़ी पराग-राशि से पिञ्जरित (रक्तपीत मिश्रित रंग की) मंजरी की तरह सूर्यकिरणों के लटक जाने पर फैली हुई शिलारूपी जघन वाली, उल्लसित अधरोष्ठ रूपी पल्लवों वाली वनस्थली की श्रेणी पर अपने प्रेमी सूर्य को गिरा हुआ देखकर मानो ईर्ष्या और क्रोध के कारण पश्चिम दिशा के जपापुष्प राशि सदृश अपने मुख कर लेने पर, अपने घोसले में छिपने की उत्कंठा से वृद्ध पक्षियों के आकाश को मुखरित करना शुरू कर देने पर द्विजन्मा (विप्र-क्षत्रिय, वैश्य) मुनिवर्ग के संध्या करने की इच्छा से सरोवर की ओर चल देने पर, अभिसारिकाओं के बन्धु, अन्धकार के आकाश-लक्ष्मी को कालागुरु सदृश अञ्जन रंग से काला करने लगने पर राजा का यह संध्यावंदन का अवसर है मानो यह बताता हुआ किन्नर-युगल ने गाया ॥

'भोगान्भो गाङ्गवीचीविमलितशिरसः प्राप्य शंभोः प्रसादा-
न्मोहान्मोहानभिज्ञाः क्वचिदपि भवत प्राणिनो दर्पभाजः।
यस्माद्यः स्मार्तविप्रप्रणतिनुतपदः सर्वसंपन्नभोगो
भास्वान्भाः स्वाङ्गभूता अपि स परिहरन्नस्तमेष प्रयाति' ॥ २२ ॥

भोगानिति ॥ भोगानित्यनन्तरो भोःशब्द आमन्त्रणे। गाङ्गोर्मिनिर्मलीकृताङ्गस्य शंभोः शिवस्य प्रसादाद्भोगान् प्राप्य भो दर्पभाजः प्राणिनः, मोहात्सकाशाद् ऊहानभिज्ञा अविमर्शकाः क्वचिदपि विषये मा भवतेति। मायोगेऽपि सानु बन्धकत्वाद्विधौ पञ्चमी। यस्माद्धेतोः स्मार्तविप्रैः प्रणामसमये स्तुतपादपद्मः। तथा सर्वसंपत् सकलश्रीको नभोगो वियद्गामी च यो भास्वान् रविः। सोऽपि स्वाङ्गभूता भा दीप्तीः परिहरन् एष भवतां प्रत्यक्षोऽस्तं प्रयाति। सर्वे सुलभा दुर्लभाश्च संपन्ना भोगा अस्येत्युक्ताभिहितम्। तस्मादेवंविधस्य महात्मनोऽपि रवेरस्तं विलोक्य शंभोराराधनादिकार्ये न प्रमदितव्यमित्यर्थः ॥ २२ ॥

गंगा की लहरों से निर्मल शिरवाले भगवान् शंकर की कृपा से विभिन्न भोगों को प्राप्त कर सदा मा (लक्ष्मी) विषयक ऊहु (वितर्क) में लगे रहने के कारण ऊहानभिज्ञ (वास्तविक पदार्थविषयक विवेक से हीन) मत बनो; क्योंकि स्मार्त ब्राह्मणों द्वारा प्रणाम के माध्यम से जिनका पैर वंदित है तथा जिन्हें सभी लोग प्राप्त हैं ऐसे भगवान् सूर्य भी अपने अंगभूत किरणों को समेटते हुए अस्त हो रहे हैं ॥ २२ ॥

एतदाकर्ण्य नरपतिः सांध्यं विधिमन्वतिष्ठत् ।

यह सुनकर राजाने संध्यानुष्ठान किया ॥

क्रमेण प्रचुरचलच्चाषकुलकालकान्तिकाशिभिर्बहलतमःकल्लोलैरालोडिते लोके लोकेश्वरो विहितविकालवेलाव्यापारः पारसीकोपनीतपारावारपारीणपारावतपतत्त्रिपञ्जरसनाथे विकीर्णवासधूलिनि धूपधूममुचि विचित्रचित्रशालिनि प्रान्तप्रदीपितदीपदीप्तिदण्डखण्डिततमसि सज्जितशय्ये शय्यागृहे गृहीतस्पृहणीयाङ्गरागो रागसागरकल्लोललोचनयानया प्रियया प्रियंगुमञ्जर्या अलीककलहकोपकुटिलभ्रमद्भ्रूकोणतर्जनजनितस्मितः स्मरविकारकारिकरिकलभकुम्भविभ्रमायमाणोत्तुङ्गपीवरकुचकुम्भपीठमारोपितो रजनीमनैषीत् ॥

क्रम से पर्याप्त रूप में चलते हुए, चाष (कीट विशेष) की कालिमा सदृश कान्तिवाले गाढ़े अन्धकार के कल्लोल से पूरे संसार के मथित हो जाने पर लोगों के स्वामी (राजा), वेलानुसार समस्त कार्यों को समाप्त कर पारसी लोगों द्वारा समुद्र पार से लाये हुए कपोत पक्षियों के पञ्जरों से युक्त, सुगंधित द्रव्य की धूलि से समन्वित, विविध चित्रों से सुशोभित, बगल में जलते हुए दीपक के प्रकाश-दण्ड के कारण अन्धकारहीन, शय्या से मण्डित शयनगृह में धूप-धूम को छोडता हुआ मनोरम लेपन शरीर में लगाकर प्रेम-सागर की तरंग रूप लोचनों वाली प्रिया (प्रियंगुमंजरी) के साथ, मिथ्या

कलह के प्रसङ्ग में कोप के कारण टेढ़े घूमते हुए भौहों के कोने से डांटने के कारण उत्पन्न मुस्कुराहट वाला, काम-विकार को उत्पन्न करने वाले, हाथी के बच्चों के कुम्भस्थल सदृश विलासपूर्ण ऊँचे तथा स्थूल कुम्भ सदृश स्तनों पर आरोपित होकर रात बिताया ॥

एवमस्य सकलसंसारसुखपरम्परामनुभवतो यान्ति दिवसाः ॥

इस तरह संसार की समस्त सुख परम्परा का अनुभव करते हुए इस (राजा) का समय बीत रहा था ।

कदाचिच्चारुचामीकराचलचलद्देहाधिदेवतेव बहुधानन्दने सुरुचिरवायौवनारम्भे सुरतोत्सवमनुभवन्ती पत्युः प्राणप्रिया प्रियंगुमञ्जरी गर्भं बभार ॥

कदाचिदिति ॥ बहुधा नन्दयति हर्षयति यस्तस्मिन् । यौवनारम्भे । सुष्ठु रुचिरिच्छा रवः स्वरो यस्याः । शोभनाभिलाषा कलभाषिणी च । सुरतं मोहनमेवोत्सवमनुभवन्ती प्रियंगुमञ्जरी गर्भं दधे । चामीकराचलो मेरुस्तस्य चलद्देहा अधिष्ठातृदेवतेव । सोऽपि बहुधानेकधा नन्दनाख्ये वनारम्भे सुष्ठु अतिशयेन रुचिरवायौ सुरताया देवत्वस्योत्सवमनुभवति । आरम्भणमारम्भः आदिरित्यर्थः । नन्दनं हि वनानामादिरग्रं प्रधानमित्यर्थः । यदि वा वनान्यारभ्यन्तेऽनेनेति कृत्वा वनारम्भः । शतानन्देन हि प्रथमं नन्दनं सृष्ट्वा तद्वृक्षावयवैर्बीजशाखादिभिरितरवनानि जगति सृष्टानि ॥

किसी समय सुन्दर स्वर्ण-पर्वत की गतिशील अधिदेवता की तरह अधिकांश आनन्द ही देने वाली, रुचिकर स्वर वाली, यौवन के आरम्भ में सुरतोत्सव (पति-मिलन) का अनुभव करती हुई अपने पति के लिए अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय प्रियंगुमंजरी ने गर्भ धारण किया ॥

तेन च विकचचूतमञ्जरीव कोमलफलबन्धेन बन्धुररमणीयाकृतिः, चन्द्रकलेव कलाप्रवेशेनोपचीयमानप्रभा, प्रभातवेलेवोन्मीलदंशुमालिमण्डलेनानन्द्यमाना, रत्नाकरतङ्गमालेवान्तःस्फुरन्माणिक्यकान्तिकलापेनोद्भासमाना, गर्भसंदर्भितेन लावण्यपरमाणुपुञ्जेन व्यराजत राजमहिषी ॥

तेनेति ॥ कुसुमान्तर्गूढः फलारम्भकरसकणिकारूपो बन्धः कोमलफलबन्धः ॥

खिली हुई आम्रमंजरी जैसे अपने कोमल फल (प्रारंभिक) गांठ के कारण मनोहर प्रतीत होती है, जैसे चन्द्रकला की कान्ति प्रतिदिन बढ़ती है, उगते हुए सूर्यमण्डल से जैसे प्रभात वेला अच्छी लगती है, रत्नाकर (समुद्र) की तरंगमाला जैसे अपने भीतर छिपे हुए रत्नों की किरणों से चमकती है, वैसे गर्भ से अभिव्यक्ति होने वाली सौन्दर्य-राशि के कारण राजपत्नी भी सुशोभित हुई ॥

गच्छत्सु च केषुचिद्दिवसेषु सुवृत्ततुहिनाचलगण्डशैलयुगलमिव बालमयूरिकाक्रान्तम्, अनङ्गसौधशिखरद्वयमिव शेखरीकृतेन्द्रनीलकलशम्, उज्ज्वलरौप्यनिधानकुम्भयुग्ममिव भुजगसंगतमुखम्, उल्लासिहंसमिथुनमिव चञ्चूत्खातपङ्किलकमलकन्दम्, ऐरावतमस्तकपिण्डपाण्डुरमुच्चचूचुकश्यामलिम्नाऽलंकृतमापूर्यमाणमन्तःक्षीरेण क्षणं क्षणमखिद्यत पयोधरद्वन्द्वमुद्वहन्ती ॥

कुछ दिनों के बाद सुन्दर गोल हिमालय के दो गण्डशैल छोटी मयूरी से जैसे आक्रान्त हों, कामदेव महल के दो ऊचे गुम्बज पर जैसे इन्द्रनीलमणि के कलश लगे हों, सफेद रजत निर्मित (मुद्रा) रखने के दो कलश जिनका मुख किसी सर्प से अवरुद्ध हो, जैसे प्रसन्न हंस का जोड़ा जिसने अपनी चोच से पंकयुक्त कमलमूल को उखाड़ लिया हो, ऐसे ऐरावत हाथी के मस्तक की तरह शुभ्र, उन्नत चूचुक की श्यामलता सें अलंकृत तथा आंतरिक दुग्धभार से पूर्ण स्तनों को ढोती हुई प्रतिक्षण खिन्न हो रही थी ॥

बबन्ध च चन्द्रकलाङ्कुरकवलने स्पृहाम् ॥

चन्द्रकला की किरणों के उपभोग की इच्छा की ॥

अभिलाषमकरोच्च चञ्चलचञ्चरीककुलकलरवरमणीयविकचचूतवनविहारेषु ॥

चंचल भ्रमर-समूह की झंकार से मनोहर, विकसित (मंजरी वाले) आम्रवन में विहार करने की अभिलाषा व्यक्त की ॥

स्पर्शममन्यत बहु बहलमभ्यर्णावकीर्णविकसितकमलवननिष्यन्दिमकरन्दबिन्दोर्मन्दतरतरङ्गसङ्गशीतलमलयमारुतस्य ॥

पास में ही घने रूप में फैले हुए, एवं खिले हुए कमलवन से चू रहे मकरंद की बून्दों की अत्यन्त मंद लहरी से सम्पर्क होने के कारण ठंढी मलयाचल की हवा को बहुत अच्छा मानने लगी ॥

चिन्तयांचकार च चतुरुदधिलावण्यरसमास्वादयितुम् ॥

चारों समुद्रों के सौन्दर्य रस का आस्वादन करने का विचार किया ।

अभ्यवाञ्छदतुच्छमच्छमशेषममन्दमन्दरमन्थानमन्थोत्पन्नममृतमातृप्ति पातुम् ॥

मन्दराचल रूप मथनी के अमन्द मन्थन से उत्पन्न बहुमूल्य एवं स्वच्छ सम्पूर्ण अमृत रस को भरपेट पीना चाही ।

इत्यनेकधोत्पन्नगर्भप्रभावादनुरूपदोहदसंपत्तिसंपन्नाधिककमनीय-कान्तिरुल्लसद्बहलमृगमदजललिखितविचित्रपत्रभङ्गभव्यविपुलकपोल-मण्डलेन मुखेन शशाङ्कमन्तःस्फुरत्कलङ्कमुपहसन्ती द्विगुणमवनिपते-स्तस्य प्रिया प्रियंगुमञ्जरी बभूव ॥

गर्भ के कारण अनेकों बार अनुकूल इच्छारूप सम्पत्ति के पूर्ण होने के कारण उनकी कान्ति खिल गयी। शोभा संपन्न गाढ़े कस्तूरी लेप से अंकित सुन्दर पत्र-रचना के कारण भव्य, सुन्दर एवं विशाल कपोल मंडल वाले मुख से कलंक-पूर्ण चन्द्रमा को उपहासित करती हुई प्रियंगुमंजरी उस महीपाल की दुगुना प्रिय हो गयी ॥

तथाहि—

सा समीपस्थितज्येष्ठा पयःपूर्णपयोधरा।
अग्रप्रावृडिवाह्लादमकरोत्तस्य भूपतेः ॥ २३ ॥

सा समीपेति ॥ समीपे स्थिता ज्येष्ठा वृद्धस्त्रियो ज्ञातप्रसवस्वरूपा यस्या। तथा पयसा क्षीरेण पूर्णौ पयोधरौ स्तनौ यस्याः। सा प्रियंगुमञ्जरी तस्य राज्ञो मुदमकरोत्। अग्रं प्रावृषोऽग्रप्रावृट् आषाढवर्षाः। तत्पक्षे समीपे स्थितो ज्येष्ठः शुक्रो मासो यस्याः। तथा पयसा जलेन पूर्णः पयोधरो मेघो यस्याः। भुवो हि प्रावृट् परमोदकारिणीति भुवः पत्युराह्लादं करोति ॥ २३ ॥

प्र-पक्ष—जिसके पास में वरिष्ठ स्त्रियाँ बैठी रहती थीं, तथा जिसका पयोधर (स्तन) दूध से भर आया था, ऐसी प्रियंगुमंजरी ने उस महीपाल को आनन्दित कर दी जैसे वर्षाकाल की प्रथम (आषाढ़) वर्षा लोगों को आनन्द देती है ॥२३॥

द्वितीय पक्ष—ज्येष्ठ का महीना जिसके पास है तथा जलपूर्ण जिनके पयोधर (मेध) हैं, ऐसी आषाढ़ की वर्षा पृथ्वी को आनन्द देती है। तथा उसके पति, भूपति को भी आनन्द देती है ॥ २३ ॥

एवमविरतविविधवाञ्छोत्सवाविच्छेदकर्तरि भर्तरि, संज्ञयैवाज्ञा-कारिण्यपारे परिवारे बहुभङ्गिभाग्योपभोगक्रमेणातिक्रामति कुत्र-चित्काले, कालकलाकुशलश्लाघनीये पूर्णप्राये प्रसवसमये, विलीन-जात्यशातकुम्भभासि भास्वत्युदयमारोहति, हततिमिरासु दिक्षु क्षण-मेकं सा प्रसववेदनाव्यतिकरमन्वभूत् ॥

इस तरह निरंतर पति उनकी विभिन्न आकांक्षाओं को पूर्ण करता जा रहा था। विशाल परिजन वर्ण संकेत मात्र से आज्ञा पालन में लगा हुआ था। विविध ढंग के भाग्य-दत्त पदार्थों का उपभोग करती हुई रानी का क्रम से समय बीत रहा था। एक पवित्र एवं प्रशंसनीय अवसर पर जब कि प्रसव का

समय पूर्ण हो चला था, पिघले हुए सुन्दर सोने की तरह कान्तिवाले भगवान् सूर्य उदयाचल पर चढ़ रहे थे, समस्त दिशाओं का अन्धकार नष्ट हो गया था, एक क्षण तक प्रसव-पीड़ा का अनुभव कीं ॥

ततश्च—

प्रभासंयोगिविख्यातं योग्यं नालस्यकर्मणः ।
पृथ्वीव पुण्यतीर्थं सा कन्यारत्नमजीजनत् ॥ २४ ॥

प्रभेति ॥ कान्तिसंयोगि । विख्यातं प्रसिद्धम् । नलस्य नृपतेरिदं नालम् । कर्म अगण्यपुण्यात्मकं तस्य । योग्यमुचितम् । कन्यारत्नम् । सा अजीजनदुत्पादयामास । पृथ्वी पुण्यतीर्थमिव । तदपि प्रभासाख्यम् । योगिभिर्योगमार्गरतैर्विख्यातम् । आलस्य असारस्य कर्मणो न योग्यम् । अथ च आलस्यकर्मणो न योग्यम् । किं तर्हि उद्यमक्रियायोग्यम् । ततस्तदर्थं केनापि न प्रमदितव्यमिति भावः ॥२४॥

कान्तिपूर्ण, नल द्वारा किये गए (पुण्य) कर्मों के अनुकूल, विख्यात कन्यारत्न का जन्म उन्होंने दिया; जैसे पृथ्वी ने पुण्य तीर्थ को उत्पन्न किया ॥२४॥

सौराष्ट्र में प्रभास नामक तीर्थ है जहाँ स्नान करने से राजयक्ष्मा रोग अच्छा हो जाता है, पृथ्वी पक्ष में इस श्लोक का अर्थ है :—

योगि-विख्यात (योगियों में प्रसिद्ध) आलस्य का अवसर न देने वाला प्रभास नामक पुण्यतीर्थ जैसे पृथ्वी ने उत्पन्न किया वैसे ही रानी ने उस (दमयन्ती) कन्या (रत्न) को उत्पन्न किया ॥ २४ ॥

तत्र च दिवसे 'विकसितकुमुदकुन्दकान्तकीर्तनीयकीर्तिसुधया धवलानि करिष्यत्येषा प्रवर्धमानास्मन्मुखानि' इति प्रियादिव प्रसन्नाः समपद्यन्त दश दिशः । 'मा स्म पुनरस्मद्गुणानेषापहार्षीत्' इत्यपहृतैकैकसारगुणाः सभया नमस्यन्त इव तस्यै कुसुमाञ्जलिमुमुच्ञ्श्चन्द्रादयो देवाः । स्वकान्तिसर्वस्वापहारभयादिव दिवि ननृतुरप्सरसः । 'किमस्याः सम समुत्पन्नमन्यदपि कन्यारत्नम्' इत्यन्विष्यन्त इव परितः परिबभ्रमुः सुरभयः क्षमाः समीरणाः ॥

तत्र चेति ॥ कन्यारत्नान्वेषिणो हि । सुरभयः सौरभ्यवन्तः । समाः सश्रीकाश्च भवन्ति ॥

उस दिन, "यह बड़ी होकर खिली हुई कुमुदिनी की तरह कान्त (सुन्दर) एवं प्रशंसनीय कीर्ति रूपी सुधा से हम लोगों के मुख को उज्ज्वल बनायेगी ।" मानो इस प्रिय आशा से दशों दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं । पुनः हम लोगों के गुणों को न चुरा ले ।" मानों इस भय से पुष्पाञ्जलि देते हुए चन्द्र आदि देव नमस्कार रह रहे थे । मानो अपनी कान्ति के मुख्यांश के अपहरण के भय से

स्वर्ग में अप्सरायें नाचने लगीं, "क्या इसके सदृश कोई और भी कन्यारत्न उत्पन्न हुआ है।" मानो इसी बात को खोजती हुई सुगंधित हवाएँ चारों तरफ घूम रही थीं।

किं बहुना—

अमन्दानन्दनिष्यन्दमपास्तान्यक्रियाक्रमम्।
जगज्जन्मोत्सवे तस्याः पीतामृतमिवाभवत्॥ २५॥

आनन्द के अमन्द (जोरदार) प्रवाह में अन्य समस्त कार्यक्रमों को छोड़ कर उस (दमयन्ती) के जन्मोत्सव में संसार अमृत पान किये हुए की तरह (आनन्दमग्न) हो गया॥ २५॥

अथ बहोः कालादनुरूपप्रौढप्रहरणप्राप्तिपीतहृदयेनास्फोटितमिव सकलजगद्विजयव्यवसायसाहसिकेन कुसुमसायकेन, चिरादुचिताश्रय-लाभमुदितमनसा स्फूर्जितमिव शृङ्गाररसेन, शुशिकाशकुसुमहास्येन योग्यसहकारिकारणोपलम्भपूर्णमनोरथेन वल्गितमिव बसन्तमासेन, निजकर्मणः सफलतां मन्यमानेनोच्छ्वसितमिव मलयानिलेन, चिर-कालोपलब्धश्लाघ्याधारतया हसितमिव रूपसंपदा, विकसितमिव लावण्यलक्ष्म्या, प्रवृत्तमिव समस्तस्त्रीलक्षणाधिदेवतया, कलकलित-मिव कान्तिकलापश्रिया॥

बहुत समय के बाद अनुकूल एवं सुदृढ़ शस्त्र प्राप्त करने से सम्पूर्ण संसार पर विजय रूप कार्य करने में साहसी पुष्पबाण, कामदेव प्रसन्नता के मारे उतावला हो गया। बहुत दिनों के बाद उचित आधार पाने के कारण प्रसन्न-चित्त शृङ्गाररस उद्दीप्त सा हो उठा। अनुकूल सहकारी (सहायक) कारण प्राप्त कर पूर्ण मनोरथ कामदेव, जिसका हास्य पवित्र (शुभ्र) काशपुष्प है, अत्यन्त उत्साहित हो गया। अपने कार्य में अपने आपको सफल मानकर दक्षिणानिल श्वास ले रहा था। बहुत दिनों के बाद बहुत प्रशंसनीय आधार प्राप्त हुआ है। इसलिए रूप सम्पत्ति हँस रही थी। सौन्दर्यलक्ष्मी खिल उठी थी। स्त्री में रहने वाले सम्पूर्ण उचित लक्षणों की अधिदेवता मानो नाच उठी॥ कान्ति-समूह की लक्ष्मी कल-कल ध्वनि कर उठी॥

किं बहुना—

सर्गव्यापारखिन्नस्य बहोः कालाद्विधेरपि।
आसीदिमां विनिर्माय श्लाघ्यः शिल्पपरिश्रमः॥ २६॥

बहुत दिनों से सृष्टि-कार्य करने से थके हुए ब्रह्मा का शिल्प-परिश्रम भी इसे बनाकर प्रशंसनीय हो गया॥ २६॥

[कोई कलाकार बहुत दिनों तक अभ्यास करता है किसी पदार्थ के निर्माण के लिए। तब किसी दिन वह कला-कार्य में पूर्ण-निष्णात होता है। बहुत दिनों के अभ्यास के बाद ही ब्रह्मा का शिल्प-परिश्रम प्रशंसनीय बन सका। जब उन्होंने दमयन्ती जैसे अनुपम कला-कृति का निर्माण किया]॥

एवमस्याः सततविस्तीर्णस्वर्णपूर्णपात्रपूजितपूज्यद्विजन्मनि संपन्ने नामकर्मसमये संमान्य मान्यजनं जनेश्वरो वरप्रदानमनुस्मृत्य दमनकमुनेः 'दमयन्ती' इति नाम प्रतिष्ठितवान्॥

इस तरह उनके नामकरण समय में निरंन्तर फैले हुए स्वर्णमय पूर्णपात्रों से ब्राह्मणों का पूजन सम्पन्न कर माननीय लोगों को सम्मानित कर लोकपति (राजा) ने वर प्रदान की बात स्मरण कर, दमनक मुनि के आधार पर 'दमयन्ती' यह नाम निश्चित किया॥

क्रमेण च प्रचुरामृतसंसिक्ता इव सुकुमाराः प्रसर्तुमारभन्ताङ्गावयवपल्लवाः, चकार च चञ्चच्चामीकररुचिरुचिराङ्गणमणिवेदिकासुकैश्चिद्दिवसैरनुच्चचरणप्रचारचारुचापल्यलीलाः, सहासमकरोत्परिजनं जनयन्ती बालकेलीः, स्वच्छन्दमानन्दयाञ्चकार पितरं तरङ्गभङ्गिरङ्गितेन, जननीमजीजनच्चातविस्मयां स्मितमुग्धदर्शितदन्तकान्तिकुन्दपुष्पमनिष्पन्नाक्षरमल्पाल्पं जल्पन्ती॥

क्रम से, पर्याप्त अमृत से सींचे हुए की तरह उसके कोमल अंग-पल्लवों ने बढ़ना शुरू कर दिया। चमकते हुए सोने की तरह सुन्दर आंगन की मणिमय वेदिकाओं पर कुछ दिनों तक घुटने के बल चल कर उसने अपनी सुन्दर चंचल लीला दिखायी। अपने चारों ओर परिजनों को बटोरती हुई हासपूर्वक बाल लीला की। आनन्दपूर्वक विविध ढंग की शैशवोचित लीलाओं से पिता को अबाध आनन्द पहुँचाया। मुस्कराहट के कारण दीख रही दंत-कान्तिरूपी कुन्द पुष्पों से निकले हुए अस्पष्ट अक्षरों को कुछ-कुछ बोलती हुई माता को भी आश्चर्य में डाल देती थी।

किं बहुना—

अपि रेणुकृतक्रीडं नरेऽणुक्रीडयान्वितम्।
तस्याः प्रौढं शिशुत्वेऽपि वयो वैचित्र्यमावहत्॥ २७॥

अपीति॥ रेणुना कृता क्रीडा यत्र। तथा 'कस्त्वां परिणेष्यति, त्वं कस्मै दातव्या' इत्याद्युक्तिभिर्नरे पुंसि विषये अणुक्रीडान्वितमल्पक्रीडाकरम्। तस्याः संबन्धि वयः। शैशवेऽपि प्रौढं वैचित्र्यं दधौ। अपिर्विरोधार्थः। स च तुल्यार्थव्याख्यया॥२७॥

अधिक क्या कहा जाय :—

रेणु-क्रीड़ा (धूलि-क्रीड़ा) पूर्वक होती हुई भी रेणु-क्रीड़ा से असंबद्ध थी। शैशव काल में भी उसकी प्रौढ़ावस्था विचित्रता उत्पन्न कर रही थी। विरोध।

रेणुकृत क्रीडा करती (धूलि से खेलती) थी किन्तु नरे + अणु क्रीडयाऽन्वित (उसकी विचित्र लीलाओं को देखने पर उसमें मनुष्य की कुछ समानताएँ मिलती) थी। शैशवकाल में भी उसमें बहुत सी विचित्रतायें थीं। परिहार ॥ २७ ॥

एवमियमनवरतस्वैरविहाराहारिणि क्रमेणातिक्रामति शैशवे वयसि पितुर्नियोगात् गुरूपदेशात्साधुवृद्धसंवासाद् बुद्धिविकासाच्च नातिचिरेण, प्राप्ता नैपुण्यं पुण्यकर्मारम्भेषु, जाता प्रवीणा वीणासु, निराकुला कुलाचारेषु, कुशला शलाकालेख्येषु, विशारदा शारिदायेषु, प्रवुद्धा प्रबन्धालोचनेषु, चतुरा चातुरानाथजनचिकित्सासु ॥

इस तरह निरंतर स्वेच्छया विहार और आहार करने के उपयुक्त शैशव अवस्था के समाप्त होते रहने पर पिता की आज्ञा से, गुरुओं के उपदेश से, साधु एवं वृद्धों की संगति से, तथा बुद्धि के विकास से शीघ्र ही पुण्यकर्मों में निपुणता प्राप्त कर ली। वीणावादन में प्रवीण हो गयी, वंशानुकूल आचरण करने में धैर्यवती, द्यूतविधान (जूआ खेलने) में कुशल, शारिकाओं को खिलाने में निपुण, काव्यों की आलोचनाओं में तीव्र बुद्धि, आतुर (रोगी) तथा अनाथ लोगों की चिकित्सा करने में चतुर हो गयी॥

किं चान्यत्—

अकरोदनालस्यं लास्ये, प्राप प्राधान्यं धन्योचित व्यवहारेषु, वैचित्र्यं चित्रेषु, चातुर्यं तौर्यत्रिके, कौशलं शल्योद्धारे, पाटवं पटहवादने, वैमल्यं नवमाल्यग्रथने, प्रागीत्यं गीत्याम्, प्राकाम्यं कामकथासु ॥

अकरोदिति ॥ प्रगीता प्रसिद्धा तस्या भावः प्रागीत्यम् ॥

नर्तन में उसे आलस्य नहीं था। एक उच्चकोटि के आदमी का जैसा व्यवहार होना चाहिए वैसे व्यवहारों में निपुणता और चित्रकला में विचित्रता प्राप्त की। वाद्यकला में चातुर्य, शल्य-चिकित्सा में कुशलता, पटह (नगाड़ा) बजाने में पटुता, नवीन माला गूँथने में निर्मलता, गीत कलाओं में विशिष्टता तथा काम-कथा में नैपुण्य प्राप्त किया॥

किं बहुना—

न तत्काव्यं न तन्नाट्यं न सा विद्या न सा कला ।
यत्र तस्याः प्रवुद्धाया बुद्धिर्नैव व्यजृम्भत ॥ २८ ॥

न तो ऐसा कोई काव्य था, न ऐसा कोई नाट्य था, न कोई ऐसी विद्या थी, न कोई ऐसी कला थी जहाँ उस जागृत बुद्धि वाली बाला की प्रज्ञा स्फुरित नहीं होती थी ॥ २८ ॥

एवमस्याः शैशव एव निजजरठप्रज्ञाप्रज्ञातव्यवस्तुविस्तारायाः क्रमेण तिलकभूतं नूतनचूतवनमिव वसन्तप्रवेशप्रथमपल्लवोल्लासेन, प्रत्यग्रघनसमयमहीमण्डलमिवामन्दविदलत्कन्दलकलापेन, केसरिकिशोरकण्ठपीठमिवनवकेसराङ्कुरोद्गारेण, करिकलभकपोलस्थलमिव प्रथममदोद्भेदेन; निशावसाननभस्तलमिव प्रभातारम्भप्रभाप्रभावेण, सरःसलिलमिव विदलितकोमलकमलकान्तिसंतानेन, मनोहारिणा संसारसारभूतेनाभूष्यत वपुः कान्ततरतारुण्यावतारप्राक्प्रारम्भेण ॥

बाल्यकाल में ही अपनी प्रगाढ़ बुद्धि से जानने योग्य समस्त वस्तुओं के प्रारंभ से विस्तार तक को जानने वाली दमयन्ती का शरीर संसार के तत्त्वभूत मनोहर यौवन से, अत्यन्त सुन्दर वसंत ऋतु के प्रथम प्रवेश के समय नवीन पल्लवों के विकास से उत्तम प्रतीत होते हुए आम्रवन की तरह, अमंद गति से अंकुरित होने वाले मूल समूह से अलंकृत अचिर प्रवृत्त वर्षाकालीन भूमंडल की तरह, गर्दन पर नवीन रोम वाले सिंह के बच्चे की तरह, प्रथमबार प्रकट हुए हस्तियुवक के कपोलस्थल की तरह, प्रातःकाल की प्रारंभिक कान्ति से मंडित आकाश मण्डल की तरह, खिले हुए कोमल कमलों की कान्ति से अलङ्कृत सरोवर जल की तरह, सुशोभित हो रहा था ॥

[दमयन्ती अत्यन्त रमणीय यौवन की अवस्था से मण्डित हुई ।]

ततश्च—

परिहरति वयो यथा यथाऽस्याः
स्फुरदुरुकन्दलशालि बालभावम् ।
द्रढयति धनुषस्तथा तथा ज्यां
स्पृशति शरानपि सज्जयन्मनोभूः ॥ २९ ॥

पनपते हुए महान् मूल (होनहार अङ्कुर) की तरह इसकी नवीन अवस्था जैसे-जैसे शैशव को छोड़ती जा रही है वैसे-वैसे कामदेव अपना धनुष दृढ़ करता जा रहा है, प्रत्यञ्चा को छू रहा है और बाणों को सजा रहा है ॥ २९ ॥

अपि च—

मुञ्चन्त्याः शिशुतां भरादवतरत्तारुण्यमुद्राङ्कित-
स्फारीभूतनितान्तकान्तवपुषस्तस्याः कुरङ्गीदृशः।
उन्मीलत्कुचकाञ्चनाब्जमुकुलं यूनां मुहुःपश्यतां
बाह्वोरन्तरमन्तरायसदृशा मन्ये निमेषा अपि॥ ३०॥

और भी :—

शैशव को छोड़ती हुई, सवेग उत्पन्न होते हुए (उभड़ते हुए) यौवन के चिह्नों से चिह्नित होने के कारण प्राञ्जल (स्पष्ट) तथा अत्यन्त सुन्दर शरीर वाली मृगेक्षणा के दोनों बाहुओं के बीच स्वर्णकमल की कालिका की तरह उठते हुए स्तनों को पुनः पुनः देखते हुए युवकों की पलकों के बीच मानो कुछ व्यवधान सा पड़ गया है॥ ३०॥

[पलकों के बीच यदि कोई चीज लेकर भर दी जायगी तो पलक गिर नहीं सकते। बीच की भरी हुई चीज उसको गिरने नहीं देती। कवि यहाँ कहना चाहता है कि दमयन्ती के सौन्दर्य को देखते समय युवकों के पलक नहीं गिरते। न गिरने का कारण कवि कल्पना करता है कि पलकों के बीच मानो कोई चीज अटक गयी है। इसीलिए उनके पलक नहीं गिरते॥ ३०॥]

ततश्च—

तत्तस्याः कमनीयकान्तिविजितत्रैलोक्यनारीवपुः
शृङ्गारस्य निकेतनं समभवत्संसारसारं वयः।
यस्मिन्विस्मृतपक्ष्मपालिचलनाः कामालसा दृष्टयो
नो यूनां पुनरुत्पतन्ति पतिताः पाशे शकुन्ता इव॥ ३१॥

उनकी स्पृहणीय कान्ति से सम्पूर्ण त्रैलोक्य के रमणी-सौन्दर्य को जीती हुई दमयन्ती का वह यौवन संसार का सारतत्त्व है और शृङ्गार का भवन है जिसमें युवकों की कामविह्वल निर्निमेष दृष्टियाँ फँसती हैं तो जाल में फंसे हुए पक्षी की तरह फिर नहीं निकल पातीं॥ ३१॥

अपि च—

आबध्नत्परिवेषमण्डलमलं वक्त्रेन्दुबिम्बाद्बहिः
कुर्वच्चम्पकजृम्भमाणकलिकाकर्णावतंसक्रियाम्।
तन्वङ्ग्याः परिनृत्यतीव हसतीवोत्सर्पतीवोल्वणं
लावण्यं ललतीव काञ्चनशिलाकान्ते कपोलस्थले॥ ३२॥

मुख चन्द्रबिम्ब के बाहर पर्याप्त गोल मण्डल बनाया हुआ, खिलती हुई चम्पक-कलिका की तरह कर्णाभरण का कार्य करता हुआ उस कृशाङ्गी का

अत्यन्त उत्कृष्ट सौन्दर्य स्वर्णमयी शिलासदृश कपोलस्थल पर नाच रहा है और उल्लसित हो रहा है ॥ ३२ ॥

[प्रत्येक अत्यन्त कान्तिशील पदार्थ के चारों तरफ कान्ति छिटकती है। उसके आकार के अनुसार एक गोल या चतुष्कोण मण्डल बन जाता है। दमयन्ती के मुखचन्द्र से जो लावण्य-कान्ति छिटक रही है, उसका परिवेष बन गया है। गौरवर्ण की छिटकती हुई कान्ति चम्पे के फूल की तरह कर्ण-पुष्प का कार्य देती है। गौर वर्ण का होने के कारण कपोलस्थल को स्वर्णमयी शिला कहा गया है] ॥ ३२ ॥

एतदाकर्ण्य राजा रञ्जितस्तत्कथया पुनरुदञ्चदुच्चरोमाञ्चकञ्चुकितकायस्तत्कालमेवान्तःस्फुरन्मन्मथमनोरथभरभज्यमानमानसस्तं हंसमपृच्छत् ॥

"पक्षिराज राजीववनावतंस हंस, पुनः कथ्यतां तस्याः संप्रति वयोवृत्तवृत्तान्तव्यतिकरः" ॥

यह सुन राजा (नल) उस कथा से अनुरक्त हो गया। रोवें खड़े हो गये, जिससे ऐसा प्रतीत होता कि उसका शरीर कञ्चुक पहन लिया हो। उसी समय अन्तरात्मा में उभड़ती हुई कामवासना से उसका मानस व्यथित होने लगा। उसने हंस से पूछा—"पक्षिराज, कमलवन को मण्डित करने वाले राजहंस, फिर कहो इस समय उसकी वयःसन्धि की कथा को।

इत्युक्तः पुनरेष तं बभाषे—

"देव, किमेकोऽस्मद्विधः पक्षी क्षीरतरङ्गधवललोचनां तां वर्णयेत् यस्याः सर्वदेवमय इवाकारो लक्ष्यते ॥

ऐसा कहे जाने पर फिर उनसे कहा—

"देव, क्या एक मेरे जैसा पक्षी उस दुग्धतरङ्ग-सदृश शुभ्र दृष्टि वाली सुन्दरी का वर्णन करे, जिसकी आकृति सर्वदेवमयी की तरह है ॥

तथाहि—

सुतारा दृष्टिः, सकामाः कटाक्षाः, सुकुमाराश्चरणपाणिपल्लवाः, सुधाकान्ति स्मितम् , अरुणो दन्तच्छदः भास्वन्तो दन्ताः, सुकृष्णाः केशाः, प्रबुद्धा वाणी, गौरी कान्तिः, गुरुः स्तनाभोगः. पृथ्वी जघनस्थली, सुरभिर्निःश्वासः, सुगन्धवाहः प्रस्वेदः, सश्रीकः सकलाङ्गभोगः ॥

[सुतारेति। तारा कनीनिका देवी च। कामः अभिलाषः स्मरश्च। सम्यक् कामो येभ्यः। तुमः समश्च काममनसोर्मलोपः। सुकुमाराः कोमलाः। तथा महेन्द्रवत्-

कार्तिकेयोऽपि सुकुमारः। सुधावत्कान्तिरस्येति सुधाकान्ति शुभ्रं चन्द्रश्च। अरुण आरक्तो रविसारथिश्च। भास्वान् दीप्यमानः सूर्यश्च। कृष्णो मेचको विष्णुश्च। प्रबुद्धा व्युत्पन्ना। बुद्धः सुगतः गुरुर्विशालो बृहस्पतिश्च। पृथ्वी पृथुला भूश्च। सुरभिः सुगन्धिर्वसन्तश्च। गन्धवाहः परिमलवाही वायुश्च। श्रीः कान्तिर्लक्ष्मीश्च॥

क्योंकि उसकी दृष्टि सुतारा (सुन्दर कनीकिका वाली) है। कटाक्ष सकाम (अभिलाषपूर्ण) हैं। चरण एवं पाणिपल्लव सुकुमार (कोमल) हैं। मुस्कुराहट सुधाकान्ति (अमृतच्छटा या चन्द्रकान्ति सदृश) है। ओष्ठ अरुण (लाल) हैं। दाँत भास्वान् (चमकीले) हैं। वाल सुकृष्ण (बहुत काले) हैं। वाणी प्रबुद्ध (प्रतिभासम्पन्न) है। कान्ति गौरी (गौर वर्ण की) है। स्तनों का विस्तार गुरु (विशाल) है। जघनस्थली पृथ्वी (बहुत बड़ी) है। श्वास सुरभि (सुगन्धित) है। पसीना सुगन्धवाह (सुन्दर गन्ध धारण करनेवाला) है। सम्पूर्ण अवयव सश्रीक (शोभा-सम्पन्न) है।

[सुतारा (वालिपत्नी) है। सकाम (कामदेवयुक्त) है। सुकुमार (कार्तिकेय) हैं। सुधाकान्ति (चन्द्रकान्ति) है। अरुण (सूर्य-सारथि) हैं। भास्वान् (सूर्य) हैं। सुकृष्ण (भगवान् कृष्ण) हैं। प्रबुद्ध (महात्मा बुद्ध) है। गौरी (पार्वती) है। गुरु (बृहस्पति) है पृथ्वी (वसुन्धरा) है। सुरभि (वसन्त) है। सुगन्धवाह (वायुदेव)। सश्रीक (लक्ष्मीयुक्त) है। विविध अवयवों का वर्णन करते समय ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया गया है कि वे विशेषण विभिन्न देवताओं के भी वाचक हैं। इसलिये दमयन्ती को सर्वदेवमयी कहा गया है।]

किं चान्यत्—

नक्षत्रमयीव निर्मिता विधिना॥

तथाहि—

भद्रपदा ज्येष्ठा सुहस्ता पूर्वोत्तरा सार्द्रहृदया मूलं कंदर्पस्य॥

भद्रेति॥ भद्रं पदं पादन्यासो यस्याः ज्येष्ठा प्रथमापत्यम्। शोभनौ हस्तौ यस्याः। पूर्वमुत्कृष्टमुत्तरं वचो यस्याः। सार्द्रमनिष्ठुरं हृदयमस्याः। कामस्य मूलं कारणम्। पक्षे भद्रपदा ज्येष्ठा हस्तः पूर्वा उत्तरा आर्द्रा मूलं नक्षत्राणि॥

ब्रह्मा ने उसे नक्षत्रमयी बनाया है क्योंकि—

वह भद्रपदा ज्येष्ठा (सुन्दर पदविन्यास करने वाली है और अपने पिता की ज्येष्ठ सन्तान) है। सुहस्ता (सुंदर हाथ वाली) है। पूर्वोत्तरा (उत्कृष्ट उत्तर देने वाली) है। सार्द्रहृदया (स्निग्ध हृदयवाली) है। कन्दर्पमूल (काम की जड़) है।

[भाद्रपद, ज्येष्ठा, हस्त, पूर्वा, उत्तरा, आर्द्रा आदि नक्षत्रों के नाम हैं। इन नामों से उसकी समानता है इसलिये उसे नक्षत्रमयी कहा गया है ॥]

किं बहुना—

लावण्यातिशयः स कोऽपि मधुरास्ते केऽपि दृग्विभ्रमाः
सा काचिन्नवकन्दलीमृदुतनोस्तारुण्यलक्ष्मीरपि।
सौभाग्यस्य च विश्वविस्मयकृतः सा कापि संपद्यया
लग्नानङ्गमहाग्रहा इव कृताः सर्वे युवानो जनाः' ॥३३॥

लावण्येति ॥ नवकन्दलीवन्मृद्वीतनुर्वपुर्यस्याः ॥ ३३ ॥

और क्या कहें—

वह कोई अलौकिक ही सौन्दर्यातिरेक है। दृष्टियों के वे मधुर विलास भी अलौकिक हैं। नवीन अङ्कुर की तरह कोमल अङ्गों वाली (उस सुंदरी) की यौवनशोभा भी अपूर्व ही है। संसार को आश्चर्य में डाल देनेवाली वह कोई अलौकिक सौभाग्य-सम्पत्ति है जिसके कारण कामरूप महाग्रह सभी युवकों को पकड़ लेता है ॥ ३३ ॥

[महाग्रह—राहु, शनि आदि अत्यधिक अनिष्ट करने वाले महाग्रहों की तरह काम युवकों को सताता है ॥]

राजा—'ततस्ततः'।

राजा—"इसके आगे।"

हंसः—'ततस्तस्या पुनरिदानीं—

दूराभोगभरेण भुग्नगतिना श्लिष्टा नितम्बस्थली
धत्ते स्वर्णसरोजकुड्मलकलां मुग्धं स्तनद्वन्द्वकम्।
आलापाः स्मितसुन्दराः परिचितभ्रूविभ्रमा दृष्टय-
स्तस्यास्तर्जितशैशवव्यतिकरं रम्यं वयो वर्तते ॥ ३४ ॥

हंस—इस समय उसके नितम्ब गति को स्खलित कर देने वाले विस्तार के भार से एक दूसरे से मिल गये हैं। मनोहर स्तनयुगल स्वर्णकमल की कलिका की शोभा धारण कर रहा है। वाणी मुस्कुराहट से मण्डित है। दृष्टि भ्रुविलास से परिचित है। शैशव अवस्था के मिलन डांटकर यौवन की अवस्था रमणीय हो गयी है ॥ ३४ ॥

[शैशव अवस्था यौवन की तर्जना से संकुचित हो गयी है। तारुण्य अपनी तरुणाई दिखा रहा है [॥ ३४ ॥

तदेष तस्याः सकलयुवजनमनोमयूरवासयष्टेः समस्तसंसार-सौन्दर्याधिदेवतायाः कथितो वृत्तान्तः ॥

इस तरह सम्पूर्ण युवकों के मानसमयूर का निवासस्थान तथा सम्पूर्ण विश्व-सौन्दर्य की अधिष्ठात्री, उस सुन्दरी का वृत्तान्त मैंनें कह सुनाया।

किमन्यत्—

हरचरणसरोजाराधनावाप्तपुण्यः
परमसुकृतकन्दो वन्दनीयः स कोऽपि।
अपि जयतु स यस्तां दुर्लभां लप्स्यतेऽस्मि-
न्निति कथितकथः सन्सोऽपि हंसो व्यरंसीत्॥ ३५॥

इति श्रीत्रिविक्रमभट्टस्य कृतौ दमयन्तीकथायां हरचरणसरो-
जाङ्कायां तृतीय उच्छ्वासः समाप्तः॥

इति विषमपदप्रकाशमेतं दमयन्त्यां तनुते स्म चण्डपालः।
शिशुमतिलतिकाविकासचैत्रं चतुरमतिस्फुटभित्तिचारुचित्रम्॥ १॥

इति श्रीचण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे तृतीय उच्छ्वासः समाप्तः॥

क्या अधिक—

भगवान् शंकर के चरणकमल की आराधना के कारण पुण्यात्मा तथा उत्कृष्ट पुण्यों का मूल वह पुरुष प्रणम्य है। मैं उसकी विजय-कामना करता हूँ जो उस दुर्लभ को प्राप्त करेगा। इस तरह सारी कथा कहकर वह हंस भी विराम ग्रहण कर लिया॥ ३५॥

तृतीय उच्छ्वास समाप्त

चतुर्थ उच्छ्वासः

एवमेतदाकर्ण्य राजा तत्कालमाघूर्णितमाश्चर्येण, आकुलितमौत्सुक्येन, आमन्त्रितमुत्कण्ठया, कटाक्षितं कन्दर्पेण, अभिवादितं रणरणकेन, ज्योत्कारितमाग्रहग्रहेण, पृष्ठकुशलमकालतरलतया, स्वीकृतमस्वास्थ्येन, अवलोकितं चिन्तया चेतः स्वं स्वयमेव स्वस्थीकृत्य वितर्कितवान् ॥

यह सुन राजा शीघ्र ही आश्चर्य में पड़ गया। उत्सुकता से व्याकुल हो उठा। उत्कण्ठा से भर गया। कामदेव के कटाक्षों का विषय वन गया। चिन्ता ने नमस्कार किया। चित्तवृत्ति आग ही बन गयी। असामयिक चञ्चलता से कुशलता पीछे पड़ गयी। चित्त ने चिन्ता का अवलोकन किया। राजा ने स्वयं ही किसी-किसी तरह चित्त को स्वस्थ कर अनुमान लगाया ॥

प्रायः सैव भवेदेषा पान्थादश्रावि या मया।
युगायितं विनिद्रस्य यत्कृते मे त्रियामया ॥ १ ॥

प्राय इति ॥ यदर्थं मे मम विगतनिद्रस्य त्रियामया राज्या युगेनेवाचरितम् ॥ या च पथिकान्मया श्रुता। सैवेयं हंसेनापि कथिता प्रायो भवेत्। युगं कृतयुगादि ॥ त्रियामयेति त्रिसंख्यामितप्रहररात्रिवाचकत्वेन साभिप्रायम्। प्रायः शब्दो वितर्के ॥ १ ॥

प्रायः वही यह सुन्दरी है जिसके सम्बन्ध में मैंने उस पथिक से सुना था और जिसके लिये न सोने के कारण तीन ही प्रहर की रात मुझे युग की तरह प्रतीत हुई थी ॥ १ ॥

तदेतन्मे—

तद्वार्तामृतपानार्थि भूयोऽपि श्रवणेन्द्रियम्।
तृप्यते केन वानन्दकन्दे कान्ताकथानके ॥ २ ॥

दमयन्ती-सम्बन्धी वार्ताऽमृत पीने के लिये कान उत्कण्ठित हो गये, क्योंकि आनन्द के मूल प्रियाविषयक चर्चा से कौन तृप्त होता है ॥ २ ॥

तत्किमेनं पुनः पृच्छामि ॥

नेदं नायकस्थानम् ॥

नेदमिति ॥ नायकस्य ईदृशं स्थानं स्थितिरौचित्यं न भवतीत्यर्थः। यतो धैर्यं हि नायकपदं परमं वदन्ति ॥

अतः संप्रति—

मण्डलकीकृतकोदण्डः कामः कामं विचेष्टताम् ।
न व्यथिष्ये स्थितः स्थैर्ये धैर्यं धामवतां धनम्' ॥ ३ ॥

तो इससे क्या पूछूं—

नायक की यह दशा ठीक नहीं है । नायक को धैर्यवान् होना चाहिये ।

अतः इस समय, काम अपने धनुष को चढ़ाकर इच्छानुसार प्रयत्न करे । मैं अपने धैर्यमार्ग में स्थिर रहकर क्लेश का अनुभव नहीं करूँगा । (विचलित नहीं होऊँगा । क्योंकि तेजस्वियों का धैर्य ही धन होता है ॥ ३ ॥

इति वितर्क्य विहसन्हंसमावभाषे—'साधु भोः सुभाषितामृतमहोदधे, साधु । श्रुतं श्रोतव्यम् । इदानीं भद्रभूयिष्ठो दिवसः । तद्वयं वयस्य, समासन्नाह्निकसमयाः समुचितव्यापारं साधयामः ॥

यह सोचकर हंस से हंसते हुए बोले—बहुत अच्छा, हे सुन्दर उक्ति के सागर, बहुत अच्छा, मैंने सुनने की चीज सुन ली । आज का दिन बड़ा मंगलमय है । हे मित्र, नित्यक्रिया का समय समीप है । अब हमलोग समयोचित कार्य के लिये चलें ।

भवतापि—

एताः सान्द्रद्रुमतलचलच्चक्रवाकीचकोराः
क्रीडावापीपरिसरभुवः स्थीयतां स्वेच्छयेति ।
यत्रोन्मीलत्कमलमुकुलान्याश्रयन्त्याः कुरङ्ग्यो
भृङ्गश्रेण्याः श्रवणसुभगं गीतमाकर्णयन्ति ॥ ४ ॥

आप भी यहाँ स्वेच्छया विहार करें—

यह क्रीड़ा सरोवर की तटीय भूमि है जहाँ घने पेड़ों की छाया में घूमती हुई चक्रवाकी और चकोर तथा खिलती हुई कमल-कलियों के पास बैठी हुई मृगियाँ कानों को मधुर लगने वाले भ्रमरों के गीतों को सुन रही हैं ॥ ४ ॥

अपिच—

अतिललिततरं तरङ्गभङ्गैरिदमपि तृड्भरवारि वारि वाप्याः ।
भ्रमदलिनिवहं वहन्ति यस्मिन्महिमकरं मकरन्दमम्बुजानि ॥ ५ ॥

अतीति ॥ यस्मिन्वारिणि महिमकरं माहात्म्यकरं भ्रमद्भृङ्गगणं मकरन्दं पद्मानि वहन्ति । तदिदं वाप्या वारि तरङ्गभङ्गैरतिचातुरं वर्तते । किंविशिष्टम् । तृष्णातिशयं वारयति छिनत्ति । पूर्ववृत्तक्रीडावापीभूकथनापेक्षया पिशब्दोऽत्र समुच्चये ॥५॥

प्यास के भार को समाप्त कर देने वाला, सरोवर-जल अपनी लहरियों के कारण बहुत मनोहर लग रहा है। यहाँ के कमल भनभनाते हुए भ्रमरों तथा महत्त्वपूर्ण परागों को धारण कर रहे हैं ॥ ५ ॥

'त्वमपि भद्रे वनपालिके कृतकमलमालानितम्बकक्रीडमिममादाय भुक्तावसानास्थानगोष्ठीस्थितस्य मम समीपमेष्यसि' इत्यभिधाय राजा राजभवनमयासीत् ॥

कल्याणी वनरक्षिका, तुम भी जब यह कमलश्रेणी के नीचे पूरी क्रीड़ा कर ले तो भोजन के बाद विश्राम-गोष्ठी में बैठे हुए मेरे पास इसे लाना" यह कह कर राजा राजभवन चले गये।

गते च राजनि राजीविनीनां जीवितसमाः समास्वादयन्स्वादुकोमलमृणालकन्दलीः, दलयन्दलानि, कवलयन्बहलमधुरस्निग्धमुकुलानि, अनुशीलयञ्शीतलशैवलावलीः, विलासेन स हंसस्तरंस्तरङ्गान्तरेषु चिरं चिक्रीड ॥

राजा के चले जाने पर कमलिनियों के प्राणसदृश कोमल मृणालमूलों को आस्वादित करता हुआ, पुष्पपत्रों को विदलित करता हुआ, पर्याप्त मधुर तथा चिकनी कलियों को खाता हुआ, ठंढी शैवल (सेवार) पंक्ति को छूता हुआ, विलासपूर्वक जलतरङ्ग में तैरता हुआ वह हंस देर तक खेलता रहा।

चिन्तितवांश्च तेन राज्ञा कृतकमलमालानितम्बकक्रीडमिममादाय मत्समीपमेष्यसि' इति श्लिष्टार्थमिवादिष्टा वनपालिका। 'तन्न युक्तमिह चिरं स्थातुमिति' ॥

चिन्तितवांश्चेति ॥ तेन राज्ञा इत्यमुना प्रकारेण श्लिष्टार्थमिव यथाभवति तथैव वनपालिकादिष्टा। इतीति किम्। यत् कृता कमलमालाया नितम्बके घनप्राये मध्यप्रदेशे क्रीडा येनेति राजाभिप्रायः। मालाशब्दगतस्त्रीत्वेन कमलमालायाः साक्षात्स्त्रीत्वाध्यवसायान्नितम्बशब्दः स्त्र्यवयवोऽपि तदर्थमात्रे प्रयुक्तः। हंसेन त्वेवं प्रतीतम्। यथा कृतकं कापटिकं वा। तथा अलमत्यर्थम्। आलानितं बद्धम्। तथा बकवत् क्रीडा यस्य। तादृशमिमं गृहीत्वा मत्समीपमायास्यसीति ॥

उसने सोचा भी कि राजा ने 'कृत-कमल" इत्यादि द्व्यर्थक वाक्यों से वनपालिका को आज्ञा दिया है।

[अर्थात् कृतक (छद्मवेषधारी) को अलम् (पूर्णरूप से) आलानित (शृङ्खलित) कर बकक्रीड (बगुले की तरह छटपटाते हुए की स्थिति में) मेरे पास लाना।] इसलिये यहाँ बहुत देर तक ठहरना अच्छा नहीं है।

इत्यस्थान एवाशङ्कमानः सह तेन राजहंसकदम्बकेनाम्बरतल-मुदपतत् ॥

तत्र च व्यतिकरे दिवापि स्फारस्फुरत्तारामण्डलमिव, विकच-नवकुवलयवनगहनमिव, अन्तरान्तरोन्निद्रकुमुदखण्डमुड्डीनास्ते क्षण-मशोभयन्त नभस्तलम् ॥

अनवसर में ही इस तरह की आशंका करता हुआ राजहंस वर्ग के साथ आकाश में उड़ गया ॥

उस समय, दिन में भी स्पष्ट चमकते हुए तारों की तरह, खिले हुए नवीन कमलवन की घनता की तरह, बीच-बीच में खिले हुए कुमुदखण्ड की तरह उड़े हुए वे हंस आकाश को सुशोभित किये।

[आकाश में जहाँ हंसों को पंक्ति घनी हो जाती थी वहाँ वे घने कमलवन की तरह लगते थे। जहाँ एक दूसरे से कुछ अन्तर पड़ जाता था वहाँ बीच बीच में खिले हुए कुमुदखण्ड को तरह लगते थे।]

अविलम्बिताश्च न चिरादवापुर्वैदर्भमण्डलमण्डनं कुण्डिनपुरम्—अवतेरुश्च चकितचलच्चक्रवाकालोक्यमानकृतान्धकारविभ्रमभ्र-मद्भ्रमरभरभज्यमानाम्भोजभाजि राजभवनासन्नकन्यान्तःपुरोद्यान-क्रीडासरसि ॥

बिना कहीं रुके जल्दी ही विदर्भ देश के अलङ्कार स्वरूप कुण्डिन नगर में पहुँच कर राजभवन के पास कन्याओं के अन्तपुर के उपवन वाले क्रीड़ासरोवर में उत्तर गये जहाँ घूमते हुए चक्रवाक चकित दीख पड़ रहे थे। अन्धकार का दृश्य उपस्थित कर देने वाले घूमते हुए भ्रमरों द्वारा कमल खण्डित किये जा रहे थे।

[भ्रमर इतना अधिक थे कि उनकी कालिमा रात्रि की भ्रान्ति उत्पन्न कर देती थी। इसीलिये चक्रवाक डर जाते थे। रात को चक्रवाक दम्पती का एक-दूसरे से वियोग हो जाता है अतः रात से तो वे डरते ही हैं, रात के सदृश पदार्थ से भी डर जाते हैं।]

सरभसप्रधावितेन सरस्तीरविहारव्यसनिना कन्यकाजनेन निवे-दितांस्तानवलोकयितुमतिकौतुकेन दमयन्ती कन्यान्तःपुरात्पुराण-मदिरारुणायताक्षी क्षिप्रमाजगाम ॥

आगत्य च चटुलतरचरणचञ्चुप्रहारविदलितारविन्दकन्दलानु-त्तालबालनलिनीवनविहारिणस्तान्ग्रहीतुमेकैकशः सखीजनमादिदेश ॥

स्वयं च चलवलयचारुरववाचालितप्रकोष्ठेन सविलासं विस्मयकरं करपल्लवेन तं राजपुत्री राजहंसमुच्चिक्षेप ॥

शीघ्रता से दौड़ी हुई, सरोवर तटपर विहार के अभ्यासी लड़कियों द्वारा बताये जाने पर उन्हें देखने के लिये बड़ी उत्सुकता से पुरानी मदिरा की तरह लाल आँखों वाली दमयन्ती शीघ्र अन्तःपुर के बाहर आ गयी। और आकर चंचल चरण तथा चञ्चुओं के प्रहार से कमलदलों को तोड़ देने वाले, छोटी-छोटी कमलिनियो के वन में प्रगल्भतापूर्वक विहार करनेवाले उन हंसों को एक-एक कर पकड़ लेने के लिये सखियों को आज्ञा दी। स्वयं भी (वह राजकन्या दमयन्ती) चंचल कंकण की मनोहर ध्वनि से युक्त मणिबन्ध वाले करपल्लव से उस विस्मयकारी राजहंस को लीलापूर्वक उठाली।

पाणिपङ्कजस्थित एव सोऽप्यभिमुखीभूय विभाव्य च चेतश्चमत्कारकारिणमस्याः कान्तिविशेषमाशिषमदात् ॥

वह भी उनके हाथ में ही स्थित रहकर, उनकी ओर मुख कर चित्त को चमत्कृत कर देने वाले उनके अलौकिक स्वरूप को पहचान कर आशीर्वाद दिया। हे रम्भोरु, (कदली-सदृश ऊरुवाली दमयन्ती,)

> **'कन्दर्पस्य जगज्जैत्रशस्त्रेणाश्चर्यकारिणा।**
> **रूपेणानेन रम्भोरु दीर्घायुः सुखिनी भव ॥ ६ ॥**

कन्दर्पस्येति ॥ रूपेणेत्युपलक्षणे तृतीया। रम्भावदूरू यस्याः। 'ऊरूत्तर—'इत्यूङि संबुद्धौ ह्रस्वत्वम् ॥ ६ ॥

आश्चर्य उत्पन्न कर देने वाले कामदेव के जगद्विजयी अस्त्र, तुम इस सौन्दर्य से मण्डित होकर चिरकाल तक जीओ और सुखी रहो ॥ ६ ॥

अपिच—

> **निर्माय स्वयमेव विस्मितमनाः सौन्दर्यसारेण यं**
> **स्वव्यापारपरिश्रमस्य कलशं वेधाः समारोपयत्।**
> **कन्दर्पं पुरुषाः स्त्रियोऽपि दधते दृष्टे च यस्मिन्सति**
> **द्रष्टव्यावधिरूपमाप्नुहि पतिं तं दीर्घनेत्रं नलम्' ॥ ७ ॥**

निर्मायेति ॥ दर्पमहंकारं पुरुषाः कं दधते। न कमपीत्यर्थः। स्त्रियाः पुनः कन्दर्पं मन्मथं दधते। सकामा भवन्तीत्यर्थः। अपि पुनरर्थे समुच्चये वा ॥ ७ ॥

सौन्दर्य के उत्तम भाग से जिसका निर्माण कर स्वयं ब्रह्मा आश्चर्य में पड़ गये और वे अपने व्यापार श्रम का कलश जिसके ऊपर रक्खे, जिसे देखकर पुरुष दर्पहीन हो जाते हैं और स्त्रियां कामपूर्ण हो जाती हैं। दर्शनीय

रूप की सीमा को धारण करने वाले उस विशाल नेत्र नल को पति रूप में प्राप्त करो ॥ ७ ॥

[कलाकार मन्दिर बना कर कलश को सबसे ऊपर रखता है। कलश लगा देने के बाद उसे और करने के लिए अवशिष्ट नहीं रह जाता। कलश रख देने का तात्पर्य है कि उसे जितना कौशल दिखाना था वह दिखा चुका। कलाकार ब्रह्मा भी अपनी कला का कलश नल पर ही रखे हैं। नल ब्रह्मा की कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है ॥ ७ ॥

दमयन्ती तु तस्मिन्क्षणे 'क्व संस्कृतवाचः पक्षिणो विवक्षितवाचश्च' इति मनसि विस्मयं भयं च, 'नामाप्याह्लादजननं नलस्य' इति वपुषि वेपथुं रोमाञ्चं च हृदयेऽनुरागमौत्सुक्यं च, समकालमुल्लोलायमानमुद्वहन्ती चिन्तयांचकार ॥

दमयन्ती तो उसी समय, "कहाँ ये संस्कृत बोलने वाला और तथ्यपूर्ण बातों को कहने वाला पक्षी !" यह सोचकर मन में आश्चर्य और भय, "नल का नाम ही आह्लादजनक है।' इस अनुभव से शरीर में कम्प और रोमाञ्च तथा हृदय में प्रेम औत्सुक्य, सब को एक ही साथ तरङ्गित स्थिति में धारण करती हुई सोचने लगी।

'सोऽयं यस्तेन पान्थेन यान्त्या गौरीमहोत्सवे।
नलोऽप्यनल एवासीद्वर्णितो मे पुरः पुरा' ॥ ८ ॥

सोऽयमिति ॥ यो नलः सः कथमनलः। परिहारे त्वनलो वह्निः। स्मरसंतापहेतुत्वात् ॥ ८ ॥

गौरी महोत्सव में जाते समय मेरे सामने उस पथिक ने इसी नल के बारे में वर्णन किया था जो नल होता हुआ भी अनल था ॥ ८ ॥

अथास्याः सखी परिहासशीला नाम नाम्नैव नलस्योद्भिन्नबहलपुलकाङ्कुरामिमामवलोक्य नर्मालापमकरोत् ॥

इसके बाद इसकी परिहासशीला नाम की सखी नल के नाम से ही इसे पूर्ण रोमाञ्चित देखकर कुछ मधुर चर्चा प्रारम्भ कर दी।

कोष्णं किं नु निषिच्यते तव बलात्तैलं सखि श्रोत्रयो-
रन्तस्तित्तिरिपक्षि पत्रमथवा मन्दं मृदु भ्राम्यति।
येनाङ्गेषु निखातमन्मथशरप्रस्फारपिच्छच्छवि-
र्नीलीमेचकितोच्चकञ्चुकरुचं रोम्णां वहत्युद्गमः ॥ ९ ॥

कोष्णमिति ॥ सखीत्यामन्त्रणे । न्विति वितर्के । तव कर्णयोर्मध्ये किं वलातैलं निषिच्यमानमस्ति । किं वा मृदु तित्तिरिपिच्छं मन्दं भ्रमदस्ति । येन हेतुना । अङ्गेषु शरीरावयवेषु । निमग्ना ये कामशराः तेषां प्रस्फाराणि पिच्छानि तद्वच्छविर्यस्य स तथोक्तो रोमणामुद्गमो रोमाञ्चो नील्या ओषधिविशेषेण मेचकितस्य श्यामलितस्य उच्चकञ्चुकस्य कान्ति दधाति । प्रस्फारत्वं पिच्छानामप्रवेशे हेतुः । अन्यथा शरेषु प्रविष्टेषु पिच्छान्यपि कथं न प्रविष्टानि तेन पिच्छच्छविरिति कविराचष्टे ॥ ९ ॥

सखी ! क्या तुम्हारे कानों में कुछ गरम वला तैल छोड़ा गया है ? या तित्तिल पक्षी का कोमल पंख कानों में धीरे-धीरे घुमाया जा रहा है, जिससे तुम्हारे अङ्गों में घुसे हुए कामबाण के स्पष्ट पङ्खों जैसी कान्ति वाला उठा हुआ रोम-समूह नीली (रङ्ग) से रङ्गे हुए चमकीले उत्कृष्ट कञ्चुक की कान्ति को धारण कर रहा है ॥ ९ ॥

[बाणों की पूँछ पर पङ्ख लगाने की परम्परा थी । दमयन्ती के रोमाञ्च के रोम कामबाण के पङ्ख सदृश दीखते हैं । रङ्ग की दृष्टि से वे नीले कञ्चुक की तरह दीखते हैं] ॥ ९ ॥

दमयन्ती तु तस्याः सवैलक्ष्यस्मितमेवोत्तरं कल्पयन्ती शनैः शिरःकम्पतरलितावतंसोत्पला सलज्जा चलद्विलोचनान्तेन तामतर्जयत् ॥

अवादीच्च तं राजहंसम् 'अहो महानुभाव, सर्वथाश्चर्यहेतुरसि ॥

विस्मय के साथ मुस्कुराती हुई धीरे-धीरे शिर कम्पित करने मे हिलते हुए कर्णाभरण वाली लज्जावती दमयन्ती भी अपने चञ्चल कटाक्षों से उसे तर्जित की और राजहंस से बोली—'ओ महानुभाव, सब तरह से आश्चर्य के हेतु हो ।

तथाहि—

द्रष्टव्यानुरूपं रूपम्, महाश्चर्यगर्भाः प्रपञ्चितवाच्या वाचः, सूचितसंस्कारातिरेको विवेकः, सौजन्याश्रयः प्रश्रयः, निष्कारणोपकारधात्री मैत्री ॥

क्योंकि—

तुम्हारा रूप सर्वथा दर्शनीय है । बहुत आश्चर्यपूर्ण तथा विशिष्ट अर्थों से सम्पन्न वाणी है । विचार शक्ति अद्भुत संस्कार की सूचना दे रही है । नम्रता सौजन्य व्यक्त कर रही है । अकारण उपकार करने वाली मैत्री से आप सम्पन्न हैं ।

तत्त्वमनेकधा जनितविस्मयो बहु प्रष्टव्योऽसि ॥

इस तरह बहुत से आश्चर्यों को जन्म देने वाले आप से मुझे बहुत कुछ पूछना है।

किं तु प्रस्तुतं पृच्छामः ॥

कथय। कोऽयमात्मरूपसम्भावितकन्दर्पदर्पदावानलो नलो नाम ॥ यस्यैतानि मन्दरमथनक्षणक्षुभितक्षीरसागरतङ्गभ्रमभ्रान्तिभाञ्जि भ्रमन्ति यशांसि' ॥

किन्तु प्रासङ्गिक बात ही पूछती हूँ।

कहिये, यह नल नाम का व्यक्ति कौन है? जो अपने रूप से कामदेव के अहङ्कार रूप वनाग्नि को उद्दीप्त कर दिया है; जिसके यश मन्दराचल से मथे जा रहे क्षीरसागर की तरङ्गों की तरह चक्कर काटते हुए घूम रहे हैं"।

इत्येवमुक्तः सोऽपि 'सुन्दरि, यद्येवमुपविश्यताम्। अवधीयतां मनः। श्रूयतां सविश्रब्धम्' इत्यभिधाय कथयितुमारब्धवान् ॥

ऐसा कहे जाने पर, उसने भी, "सुन्दरि !,

यदि ऐसी बात है तो बैठिये, चित्त एकाग्र कीजिये, निश्चिन्त होकर सुनिये।" यह कह कर कहना शुरू किया।

'अस्ति समस्तसुरासुरलोककर्णपूरीकृतकान्तकीर्तिकुन्दकुसुमः, कुसुमायुधरूपरमणीयदेहप्रभः, प्रभावयुक्तो विप्रभावश्च, शुचिरनुपतापकारी च, घनागमसमयो न वारिबहुलश्च, शिशिरस्वभावो न जाड्ययुक्तश्च, रामः कुशलवयोरामणीयकेन जनको वैदेहभागेन, नैषधः प्रजानां पतिः, विरञ्च इव नाभिभूतः समरे, वीरो वीरसेनो नाम ॥

अस्तीति ॥ प्रभावो माहात्म्यम्। विप्राणां भां तेजोऽवतीति। विरोधे विगर्यपेतार्थः शुचिः पुण्यम्। विरोधे तु ग्रीष्मः। यद्विश्वप्रकाशः—शुचिः शुद्धेऽनुपहते शृङ्गाराषाढयोः' इति। 'ग्रीष्मे हुतवहेऽपि' इति ॥ घनः प्रचुर आगमः सिद्धान्तो यस्य। वा समुच्चये। अरिः शत्रुः। विरोधे घनागमसमयो वर्षाकालः। स च वारिबहुलो भवति ॥ शिशिरः शीतो माघफाल्गुनौ च। जाड्यं मौर्ख्यं हिमं च। इत्युष्णवर्षाशीतकालव्यतिरेकः। तथा कुशलेन चतुरेण वयोवस्थासौन्दर्येण रामश्चारुः। तथा विदेहा देशास्तेषामयं वैदेहो भागस्तेन जनकाख्यनृपतिप्रतिमः। अन्यत्र रामो दाशरथिः। वै वितर्के। देहस्य भां कान्तिं गच्छति व्याप्नोति इति कृत्वा डप्रत्यये देशप्रभावेण शरीरकान्त्यनुहारिणा रामणीयकेन सौन्दर्येण। कुशस्य लवस्य च जनको जनयिता। नैषधो निषधदेशीयः प्रजापती राजा। समरे युद्धे न कदाचिदभिभूतः। विरञ्चस्तु विष्णुनाभेर्भूतो जातः ॥

अपने उज्ज्वल कीर्तिकुन्द के फूलों से सुरलोक तथा असुरलोक के कानों को भर दिया है। कामदेव की तरह रमणीय शरीर-शोभा से सम्पन्न है। प्रभावयुक्त होता हुआ भी विप्रभाव (प्रभावहीन) है। विरोध। प्रभाव-सम्पन्न है और विप्र+भाव ब्राह्मण में रहता) है। परिहार। शुचि (ग्रीष्म) है लेकिन ताप नहीं देता। (वि) शुचि (पवित्र) है। किसी को ताप (दुःख) नहीं देता। परि। घनागम समय (बादल आने का समय) है लेकिन वारिबहुल (जलबहुल) नहीं है। वि०। घनागम-समय (पर्याप्त वैदिक सिद्धान्त वाला) है और (वा) अरिबहुल (शत्रुबहुल) नहीं है ॥

शिशिर स्वभाव (ठंढा) है लेकिन उसमें जड़ता नहीं है। (वि०) ठंढे स्वभाव का है लेकिन जढ़बुद्धि का नहीं है। परि। कुश और लव की रमणीयता से जैसे राम (प्रशस्त) थे वैसे वह भी कुशल (सुन्दर) अवस्थागत सौन्दर्य के कारण राम (रमणीय) है। वैदेह (राज्य भाग) के कारण जैसे जनक (प्रशस्त) थे वैसे ही वे (निश्चित रूप से) देह (शरीर) की कान्ति के कारण यह भी (आह्लाद का) जनक है। ब्रह्मा जैसे नाभिभूत (नाभिदेश-उत्पन्न) है वैसे वह भी समर (युद्ध) में कभी भी न+अभिभूत (पराजित नहीं) है। निषध देश की प्रजा वह पराक्रमी स्वामी है। उसका नाम वीरसेन है ॥

यस्य च बहुशोभयाङ्गप्रभया सह स्फुरत्युदारा मनोवृत्तिः, अखण्डनयाज्ञया सदृशी राजते राज्यस्थितिः, सज्जया सेनया सह श्लाघनीया कृपाणयष्टिः ॥

यस्य चेति ॥ अत्र प्रथमातृतीययोः श्लेषः। बहुश इति। अभया भयरहिता। तृतीयान्ते बह्वी शोभा यस्यां तया। तथा अखण्डौ नयः षाड्गुण्यं यस्याम्। तृतीयायां न खण्डनमस्याः। तथा सज्शोभनो जयो यस्याः। सेनापक्षे सज्जया प्रवणया ॥

उसकी बहुशः अभया (पूर्ण निर्भीक) मनोवृत्ति बहुशोभा (पूर्ण सौन्दर्य-सम्पन्न) अङ्गप्रभा (देहकान्ति) से ही प्रकट होती है। अखण्डनया (पूर्ण नीतिसम्पन्न) राज्य-स्थिति अखण्डना (अलङ्घनीय) आज्ञा से सुन्दर लग रही है। सज्जया (सुन्दर विजय देने वाली) तलवार सज्जा (तैयार) सेना के साथ सुशोभित हो रही है ॥

[इस अनुच्छेद में विभक्ति श्लेष है। एक शब्द से सभङ्ग श्लेष के आधार पर तृतीया के एकवचन और प्रथमा के एकवचन दोनों निकलते हैं। बहुशोभया—मनोवृत्ति शब्द के विशेषण पक्ष में बहुशः + अभया (अधिक निर्भीक)

और अङ्गप्रभा पक्ष में बहुशोभा (अत्यधिक शोभायुक्त) शब्द के तृतीया का एकवचन।

अखण्डनया—राज्यस्थिति पक्ष में प्रथमा का एकवचन है अर्थात् राज्य-स्थिति अखण्ड (पूर्ण) नीति से सम्पन्न है। आज्ञा पक्ष में अखण्डना शब्द के तृतीया का एकवचन है। अर्थात् अनुल्लङ्घनीय आज्ञाओं से नीति-सम्पन्न राज्यस्थिति सुदृढ़ है।

सज्जया—कृपाणयष्टि पक्ष में प्रथमा का एकवचन है। अर्थात् सुन्दर जय देने वाली कृपाणयष्टि। सेना-पक्ष में सज्जा शब्द के तृतीया का एकवचन है। अर्थात् विजय देने वाली कृपाणयष्टि से तैयार सेना से सुशोभित है।]

यश्च सशृङ्गारो नारीषु, वीरो वैरिषु, बीभत्सः परदारेषु, रौद्रो द्रोहिषु, सहास्यो नर्मालापेषु, भयानकः संग्रामाङ्गणेषु, सकरुणः शरणागतेषु ॥

वह नारियों पर शृङ्गारवान् रहता है। शत्रुओं पर शौर्य दिखाता है। दूसरे की स्त्री को अपने लिए अग्राह्य समझता है। द्वेषियों पर क्रोध प्रदर्शित करता है। नम्रतापूर्ण बात के प्रसङ्ग में मुस्कुराता है। लड़ाई के मैदान में भयङ्कर बन जाता है। शरण में आये हुए लोगों पर दया दिखाता है।

यस्य च चतुरुदधितटीटीकमानशरच्चन्द्रविशदयशोराशिराजहंसस्य, निस्त्रिंशता कृपाणेषु, कुचातुर्यं कलत्रेषु, कूपदेशसेवा पापर्धिकेषु, लुब्धकपर्यायः कैवर्तकेषु, तीक्ष्णता शस्त्रेषु, धर्मच्छेदो धनुर्विद्यायाम् ॥

यस्य चेति ॥ निस्त्रिंशता खड्गत्वम्। कुचाभ्यामातुर्यं दुर्वहभरत्वात्। कूपप्रदेशस्य सेवामृगयाभ्यासेषु तथा लुब्धक इति 'पर्यायः एकार्थं शब्दान्तरम्': तथा धर्मनामा द्रुमो यन्मयं धनुर्विधीयते। तस्य च्छेदः कर्तनम्। कृपाणादिष्वेव निस्त्रिंशतादीनीति परिसंख्योक्त्या न तस्येति शेषः। तस्य राज्ञो 'न। निस्त्रिंशता क्रूरकर्मत्वम्। कुत्सितं चातुर्यम्। तथा कुत्सित उपदेशो येषां तेषां दाम्भिकानां सेवा। तथा कुत्सितो लुब्धो लुब्धकः। तस्य पर्यायः परिणामः। तीक्ष्णता आयःशूलिकत्वम्। धर्मस्य पुण्यस्य च्छेदः।

उसने शरत्कालीन चन्द्रमा की तरह अपनी शुभ्र कीर्तिराशिरूप राजहंसों से चारों समुद्रों के तट को चिह्नित कर दिया है। उसके यहां निस्त्रिंशता खड्ग (तलवार में है, निस्त्रिंशता (क्रूरता) किसी और में नहीं है। कुचातुर्य (कुचों (स्तनों) के भार से आतुरता) केवल स्त्रियों में है। कुचातुर्य (अनैपुण्य) किसी और में नहीं है। कूपदेश सेवा (कूप के पास बैठकर मृगया अभ्यास करने का कार्य) केवल व्याधों में है। दूसरे लोग कु + उपदेश

(अनुचित उपदेश) का सेवन नहीं करते। लुब्धक शब्द का समानार्थक कुछ है तो केवल कैवर्त (केवट) वर्ग ही है। लुब्धक (अनुचित लोभ का पर्याय परिपाक) और किसी में नहीं हुआ है। तीक्ष्णता शस्त्रों में है, कोई आदमी कटु स्वभाव का नहीं है। धर्मच्छेद (धर्म नामक पेड़ की लकड़ी से बने हुए धनुष का भङ्ग) धनुर्विद्या के अभ्यास के प्रसङ्ग में ही होता है। धर्मच्छेद (पुण्य का विघटन) कहीं और जगह नहीं होता ॥

एवमस्य हरस्येव करस्थं कृत्वाशेषमण्डलमनवरतविख्यातविजयाभिनन्दिनः, सुन्दरकैलासनाभिरम्यवनान्तरेषु विहरतः मदननिरुद्धनैषधीपीनोच्चकुचकुम्भावष्टम्भमसृणितवक्षःस्थलस्य सुखेनाभिक्रामन्ति दिवसाः ॥

एवमस्येति ॥ करे राजभागे स्थितमशेषं मण्डलं देशम्। अनवरतप्रथितविजयैर्हृष्टस्य। कं जलम्। एला लता। असनः पीतसालः। तैः सुन्दरैरभिरम्येषु काननविशेषेषु। विचरतस्तस्य सकामनिषधस्त्रीपीनोच्चकुचकुम्भयोरवष्टम्भेन मसृणितं वक्षःस्थलं यस्य तथोक्तस्य सतः सुखेन यान्ति दिवसाः। विहरणक्रमिह हरेण सहौपम्यम्। तदा। करः पाणिः। शेषाख्यो नागः तस्य मण्डलं कुण्डलाकारं वपुः। विजया गौरीसखी। नन्दी हरप्रतीहारः। कैलासो गिरिः नाभिर्मुख्यार्थः ॥

इस तरह भगवान् शंकर जैसे हाथ में शेषनाग लिये रहते हैं और सदा पार्वती की विजया नामक सखी या भंग के कारण प्रसन्न रहते हैं, सुन्दर कैलास पर्वत के नाभि (उत्कृष्ट स्थल) में विहार करते रहते हैं वैसे अशेषमण्डल (सम्पूर्ण देश) को करस्थ (अधिकार में रख) कर सदा प्रशस्त विजयों को प्राप्त कर प्रसन्न होते हुए, सुन्दर + क (जल) एला (इलायची) तथा असन (पीतशाल) के कारण अभिरम्य (रमणीय) वन में विहार करते हुए कामुक निषध देश की रमणियों के कलशसदृश उच्च स्तनों के संस्पर्श से कोमल वक्षःस्थल वाले उस राजा के भी दिन सुख से बीत रहे हैं ॥

कदाचिच्चतुरुदधिवेलावलयितवसुंधराविख्यातमपत्यमभिलषन्ननादरचरणाङ्गुष्ठनिष्ठ्यूतकैलासोन्मूलनागतपतद्दशवदनविरसविरुतविहसितामरमण्डलीमाहतमहिमानमनवरतविरञ्चिरचितविचित्रनामसामवस्तुस्तुतिमनवरतसकललोककल्याणकामधेनुमनुपमवर्चसमर्चयाञ्चकार भगवन्तमम्बिकापतिम् ॥

कदेति ॥ निष्ठ्यूतं निरसनम्। 'निष्टापितम्' इति पाठे तु निःशेषेण स्थापनम्। अविरतम्। विचित्रनामभिर्भर्गभगवत्त्रिनेत्रादिभिः। सामवेदार्थैश्च। विरञ्चेन विरचितस्तुतिम् ॥

किसी समय, चारों समुद्रों से घिरी हुई पृथ्वी भर में प्रसिद्ध एक सन्तान की इच्छा से भगवान् शंकर की स्तुति किया, जो (भगवान् शंकर) कैलास

पर्वत को उखाड़ फेंकने के लिए आये हुए पर्वत सहित, रावण को अनायास ही पैर के अंगूठे से दबा देने के कारण, उसके करुण चीत्कार से हंसते हुए देवसमूह द्वारा पूजनीय महिमा वाले हैं; ब्रह्मा जिनके नामों पर आधारित सामवेद के माध्यम से सदा स्तुति किया करते हैं; संपूर्ण संसार के लिए जो सदा कामधेनु हैं और जिनका तेज अनुपमेय है।

अतिभक्तितोषितहरलब्धवरश्च निरुपमरूपयाऽनुरूपया रूपवत्यभिधानयाप्रधानया प्रियया सह मकरकेतनकेलिफलमनुभवन्नतिचिरमासांचक्रे ॥

अत्यन्त भक्ति से भगवान् शङ्कर को प्रसन्न कर उन्होंने वर प्राप्त किया। अनुपम रूप वाली रूपवती नामकी मनोनुकूल अपनी प्रधान पत्नी के साथ काम क्रीडा के फल का अनुभव करते हुए बहुत दिनों तक सुखपूर्वक रहे।

अतिक्रामति तु कियत्यपि समये संपन्नसत्त्वा समपद्यत रूपवती ॥

कुछ समय बीतने पर रूपवती गर्भवती हुई ॥

तेन च समस्तसंसारवस्तूद्धृतकान्तिकणकलितगर्भारम्भेण, नारायणनाभिरिव विरञ्चोत्पत्तिकमलकन्दबन्धेन, कल्पपादपलतेव पल्लवारम्भोच्छ्वासेन, मनाङ्मेदुरितोदरा रराज राजीवनयना राजपत्नी ॥

संपूर्ण संसार के पदार्थों से निकले हुए कान्तिकणों से निर्मित गर्भ के कारण उस कमलनयना राजपत्नी का उदर थोड़ा बढ़ गया था, अतः वह ब्रह्मा को उत्पन्न करने वाले कलल मूल से (सुशोभित) नारायण के नाभिदेश की तरह और नवीन पल्लव का आविर्भाव करने वाली कल्पवृक्ष की लता की तरह सुन्दर लग रही थी।

क्रमेण च मेचकोच्चचूचुककुचकुम्भकपोलिपाण्डिम्ना निम्नयन्ती मृगलाञ्छनच्छायमवाञ्छदच्छामृतपयः पिष्टमूर्तिमन्मधुसमयमदनमृगाङ्कमण्डलरसेनात्मानमालेप्तुम् ॥

क्रमेणेति ॥ कुचकुम्भस्य चन्द्रमाः। मेचकचूचुकस्य लाञ्छनमुपमानम्। अच्छममृतमेव यत्पयो नीरं तेन पिष्टो घृष्टो योऽसौ मूर्तिमतां मधुसमयमदनमृगाङ्कमण्डलानां रसः तेनालेप्तुमात्मानमियेष ॥

क्रम से श्यामल कान्ति वाले उठे हुए चूचुक विशिष्ट स्तनकलश तथा कपोल की शुभ्रता से मृगलाञ्छन विशिष्ट चन्द्रमा को भी नीचा दिखा रही थी। मूर्तिमान् वसन्त, कामदेव और चन्द्रमण्डल के रस से अपने आपको लिप्त करने की इच्छा कर रही थी।

अग्रतः सखीजनविधृतमपास्य मणिमयमुकुरमण्डलमनवरतनिशा-निर्मलकरवालतलेष्वात्ममुखकमलमवलोकयांचकार ॥

सखियों द्वारा गृहीत रत्नमय दर्पण को छोड़कर शान धराने के कारण निर्मल (चमकती हुई) तलवार में ही हमेशा अपने मुखकमल को देखा करती थी।

[उत्पन्न होने वाली सन्तान अत्यन्त बली एवं साहसी हो, इसलिये, विलासिताद्योतक मणिमय दर्पणों को छोड़कर तलवार से ही दर्पण का कार्य ले रही है।]

निरस्य नीलोत्पलमजरठकण्ठीरवकण्ठकेसरस्तवकमकरोत्कर्णावतंसम् ॥

नीलकमल को छोड़कर 'युवक सिंह के केशर के गुच्छे को कर्णभूषण बना रही थी।

अतिबहलकुङ्कुमाङ्कस्तूरिकापङ्कमपहाय मत्तमातङ्गमदकर्दमेन निजभुजशिखरयोर्विचरयांचकार विचित्रपत्त्रभङ्गान् ॥

अत्यन्त गाढ़े कुङ्कुम से मिश्रित कस्तूरी लेप को छोड़कर मतवाले हाथी के मदपङ्क से अपनी बाहुओं पर सुन्दर पत्र रचना करती थी।

एवमन्तःस्फुरद्गर्भानुरूपदोहदसुखमनुभवन्ती कदाचिदुच्चस्थानस्थिते सौम्यग्रहग्रामे, महाराजजन्मोचितेऽह्नि शुभसंभारकारणायां कालवेकायां जातप्राये प्रभाते प्रभाप्रतानजनितपरिवेषमशेषतेजस्वितेजः-पुञ्जापहारिणमालोहितपादपल्लवोल्लसितपङ्कजच्छायम्, द्यौरिव रविमण्डलम्, उन्नमन्मेघमालेव विद्युल्लोलम्, अरणिरिव वितानवैश्वानरम्, नरपालप्रिया प्रीणितगोत्रं पुत्रमजीजनत्।

एवमन्तरिति॥ द्यौरपि प्रग्रे रविमण्डलं जनयति। तमपि दीक्षितविकृतवेष्टनम्। तथा समस्तदीपप्रभृतितेजस्वितेजोमुषम्। पादाः किरणाः। पुत्रपक्षे आ ईषत् लोहितौ पादपल्लवौ तयोरुल्लसितपङ्कजवच्छाया यस्य। तथा विद्युतां लोलनं लोलो विलासः। मण्डलः पुरुषोऽपि॥

इस तरह भीतर स्पन्दित होते हुए गर्भ के अनुकूल इच्छा विशेष के सुख का अनुभव करती हुई, किसी समय, जब सुन्दर ग्रहों का समुदाय उच्च स्थान पर था, एक महाराज के जन्म के लिए उचित दिन में, सुखसमूह के कारणीभूत मुहूर्त में, जब भोर हो चला था, अपनी कान्ति के विस्तार से गोलाकार परिवेष बनाये हुए समस्त तेजस्वियों के तेजपुञ्ज का अपहरण कर लेने वाले

तथा अपने लाल किरण पल्लव से कमलकान्ति को उल्लसित कर देनेवाले सूर्य-मण्डल को जैसे आकाश, बिजली के विकास को जैसे उमड़ती हुई मेघमाला और विस्तृत अग्नि को जैसे अरणि (लकड़ी) जन्म देती है वैसे ही राजपत्नी ने वंश को तृप्त कर देने वाले पुत्र को जन्म दिया।

तत्र च दिवसे—

सांशुकोन्नतवंशस्य तस्य राज्ञः पुरस्य च।
बभूव लक्ष्मीः सा कापि यया स्वर्गोऽपि निर्जितः ॥ १० ॥

सांशुकेति ॥ राज्ञः पुरस्य च सा काचिदजनि शोभा। यथा स्वर्गच्छतीतिकृत्वा स्वर्गो देवः स्वर्गलक्षणो लोकश्च जितः अंशुना रविणा सह सांशुक उन्नतो वंशो यस्य। रवेर्वंशस्य च तुल्यमुदयनमिष्टम्। प्रत्ने तस्याप्युदितत्वात्। पुरं च सपताकोच्छ्रितवेणुकम् ॥ १० ॥

उस सांशुकवंश (सूर्यवंशी) कुलीन राजा की और सांशुकवंश (वस्त्रविशिष्ट ध्वजा के बाँसवाले) उस नगर की ऐसी शोभा हुई कि स्वर्ग में रहने वाले देव और स्वर्ग दोनों ही जीत लिये गये ॥ १० ॥

[अंशुक किरण और वस्त्र दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। वीरसेन सूर्यवंशी राजा था। स्वर्ग शब्द देव और स्वर्गलोक दोनों का वाचक है। राजपुत्र के जन्म के उपलक्ष्य में नगर में बड़ी ऊँची-ऊँची ध्वजाएँ फहरा रहीं थी। अतः नगर ने अपनी शोभा से स्वर्ग को जीत लिया और राजा भी अपने नवीन वंशाङ्कुर से देवताओं की अपेक्षा अधिक महिमावान् हो गया ॥ १० ॥]

अपिच—

सवृद्धबालाः कालेऽस्मिन्मुक्ताहारविभूषणाः।
प्राप्ताः प्रीतिं पुरे पौरा वनेषु च तपस्विनः ॥ ११ ॥

सवृद्धेति ॥ वृद्धः पितामहादिः बालः पुत्रादिः। ताभ्यां सह। मौक्तिकहारालंकारणाः पौराः। मुनयस्तु सवृद्धकेशाः कूर्चादेरसंस्कारात्। तथा मुक्ता आहारा यैः। तथा व्यपेतभूषाश्च ॥ ११ ॥

और—

उस समय में नगर में नगर निवासी बालक और वृद्ध मुक्ताहार विभूषण (मुक्ताहार से अलङ्कृत) थे और वन में तपस्वी लोग मुक्ताहार विभूषण (उपवास व्रत के कारण मण्डित) थे ॥ ११ ॥

[इतना दान दिया गया कि आबाल वृद्ध सभी मुक्ता के हार से अलङ्कृत हो गये। तपस्वी लोगों ने वन में नल की मङ्गलकामना से उपवास आदि अपने व्रतों को और उग्र कर दिया ॥ ११ ॥]

सूतीगृहे च—

अलंकृतनिशान्तेन तरुणारुणरोचिषा।
प्रदीपानां प्रभा तेन प्रभातेन यथा जिता ॥ १२ ॥

अलमिति ॥ येन प्रभातेनेव प्रदीपानां प्रभा जिग्ये। अलंकृतं निशान्तं गृहं येन। तथा तरुणारुणो मध्याह्नार्कस्तद्वद्रोचिर्यस्य। अत एव दीपप्रभा निष्प्रभा। महात्मनां हि भूयिष्ठेन तेजसा दीपप्रभाप्यभिभूयते। प्रभातेन तु अलमत्यर्थम्। तरुणया नूतनया अरुणस्य रविसारथे रोचिषा। कृतो निशाया रात्रेरन्तो येन। यदि वा अरुणरोचिषा लोहितकान्तिना तरुणोपलक्षितेन प्रभातेन तत्समये हि दिनकरकर-स्पर्शतस्तरवो रक्तीभवन्ति ॥ १२ ॥

रात्रि के अन्तिम प्रहर को अलङ्कृत कर देने वाले तथा मध्याह्नकालीन सूर्य की तरह पर्याप्त कान्ति वाले उस (नवजात शिशु) ने प्रदीपों की कान्ति को जीत लिया ॥

प्रभात पक्ष—नवीन एवम् अरुण कान्ति वाले, रात्रि के अन्तिम क्षणों को मण्डित कर देने वाले उस प्रातः काल ने प्रदीप की प्रभा को जीत लिया ॥ १२ ॥

[रात्रि के अन्त में आने वाला प्रभात जैसे तरुण अरुण की कान्ति से प्रदीप की प्रभा को नष्ट कर देता है उसी तरह उस नवोदित बालक ने अपने भास्वर तेज से दीपकों को हतप्रभ बना दिया। बड़े तेज के सामने छोटा तेज विलीन हो जाता है। उस तेजस्वी बालक के सम्मुख दीपक का तेज म्लान हो गया ॥ १२ ॥]

चिरात्पल्लवितं राजवंशेन, समुच्छ्वसितं राज्यश्रिया, प्रीतं प्रण-यिभिः, प्रनृत्तं पौरैः, प्रमुदितं बान्धवैः, विद्राणं द्रोहिजनैः, उन्नदितं वियत्यदृष्टमङ्गलवादित्रैः, चित्रायितमतिबहलपरिमलपतत्पुष्पवृष्ट्या, विकसितं दिग्वधूवदनारविन्दैः, विलसितमतिसुरभिसुखस्पर्शसमीर-णेन, स्वच्छन्दायितं बन्दीकृतारातिरमणीभिः, आढ्यायितमर्थिलोकेन ॥

चिरादिति ॥ चित्रायितं भक्तिविशेषविन्यासायितम्। कुमारजन्मोत्सवे गुप्तीनां मोचणाद्बन्दीनां स्वाच्छन्द्यम्। आढ्यत्वे त्यागातिशयो हेतुः ॥

बहुत दिनों के बाद राजवंश ने नवीन अङ्कुर धारण किया। राज्यलक्ष्मी ने श्वास लिया। प्रेमी लोग प्रसन्न हो उठे। नागरिक लोग नाचने लगे। बन्धु लोग प्रसन्न हो गये। द्वेषी लोग विदीर्ण हो गये। आकाश में मङ्गल बाजे बज उठे। अत्यन्त गाढ़े पराग बरसते हुए फूलों की वृष्टि से आकाश चित्त-कबरे रङ्ग का हो गया। दिगङ्गनाओं का मुखकमल खिल उठा। अत्यन्त सुखद एवं सुगन्धित वायु ने अपना विलास प्रदर्शित किया। बन्दी बनाये गये शत्रुओं

की पत्नियों ने स्वच्छन्दता का अनुभव किया। याचक लोग धनवान् जैसे हो गये।

किं बहुना—

अवृष्टिनष्टधूलीकमशरन्निर्मलाम्बरम्।
अपीतमत्तलोकं च जगज्जन्मोत्सवेऽभवत् ॥ १३ ॥

अवृष्टीति ॥ वृष्ट्या हि धूली नश्यति। शरदा व्योमलता। पानेनोन्मादः। यच्चेदृशं तदन्तरेणापि जगदजायत स तदुत्पत्तिप्रभावः ॥ १३ ॥

उसके जन्मोत्सव में संसार वर्षा के बिना ही धूलिहीन हो गया। बिना शरत् काल आये ही आकाश निर्मल हो गया। बिना मदिरा पीये ही सब लोग मतवाले हो गये ॥ १३ ॥

[वर्षा से धूलि को नष्ट होना चाहिये, शरत्काल के प्रभाव से आकाश को निर्मल होना चाहिये। मदिरापान से ही लोगों को मत्त होना चाहिये। इन कारणों के बिना ही ये सब कार्य हो रहे हैं, यह सब उस नवजात शिशु का प्रभाव है ॥ १३ ॥]

भूते च विभवभूयिष्ठे षष्ठीजागरणव्यतिकरे, अतिक्रान्तेषु च सूतकदिवसेषु नामकरणोचितेऽह्नि 'न लास्यति धर्मधनान्येष साधुभ्यः' इति ब्राह्मणाः, प्रविश्य तस्य 'नलः' इति नाम प्रतिष्ठापयामासुः ॥

भूते चेति ॥ प्रविश्येति। निमित्तात्सामुद्रिकलक्षणाजन्मलग्नाद्वा साधूनां धनाग्रहणे अन्तर्मुखमभिप्रायमाश्रित्येत्यर्थः ॥

ऐश्वर्यपूर्ण वातावरण में छः दिनों के बीत जाने पर और प्रसूति दोष वाले दिनों के समाप्त हो जाने पर नामकरण के लिए उचित दिन में ब्राह्मण लोगों ने आकर "साधुओं की धर्म सम्पत्ति को यह नहीं लेगा" इसलिये नल नाम रक्खा ॥

क्रमेण च चतुरुदधिवेलावनविकासोचितकीर्तिकुन्दकन्दलैर्विश्वविश्वंभराभिलम्भलम्पाकैः कुमारसेवकैरिव सकलचक्रवर्त्तिचिह्नैरलंकृतावयवो विस्तरजटालवालः, कल्पपादपाङ्कुर इव वर्धितुमारभत ॥

क्रमेणेति ॥ कुमारसेवका युवराजानुचराः। तदुपमैः राजचिह्नै रेखाकृतैश्चक्रचापकुलिशादिभिर्भूषिताङ्गः। तथा विस्तरन्तो जटालाः स्वभावजटाबन्धा बालाः कचा यस्य। वृत्तचूडाकरणस्य हि केशा विजटीभवन्ति। कल्पवृक्षस्तु प्रसरन्मूलालवालः ॥

चारों समुद्रों के तट (पृथ्वी) के विकास के उपयुक्त कीर्ति के मूल, सम्पूर्ण पृथ्वी की प्राप्ति के सूचक, चक्रवर्ती सम्राट की रेखायें उस बालक को सेवक की तरह अलङ्कृत कर रही थीं। कल्पवृक्ष का अङ्कुर जैसे विस्तर जटालवाल

[आलवाल (थाले) में फैलती हुई जटा (जड़) वाला] होकर बढ़ता है वैसे वह विस्तर जटालबाल (बढ़ते हुए जटा युक्त केशों वाला) बालक बढ़ना शुरू किया।

[उसके शरीर में चक्रवर्ती सम्राट् के लक्षण थे। उन लक्षणों से ज्ञात होता था कि वह समुद्रान्त पृथ्वी का विकास करेगा और सम्पूर्ण भूमण्डल पर शासन स्थापित करेगा। यहाँ कल्पवृक्ष और बालक में केवल शब्दसाम्य है। दोनों ही विस्तर जटालवाल हैं। कल्पवृक्ष का अङ्कुर ऊपर की ओर तब बढ़ता है जब उसकी जड़ उसके आलवाल में खूब फैल लेती है। नियम सर्वविध वृक्षों के लिये है। जड़ जब नीचे फैलेगी तभी अंकुर ऊपर की ओर अधिक पल्लवित होंगे। उस बालक के बढ़ते हुए बाल स्वाभाविक जटाओं से युक्त हैं चूडाकर्म संस्कार के पहले बच्चों के बालों में जट बंध जाता है। उसी अवस्था का यहाँ वर्णन है। चूडाकर्म संस्कार के समय मुंडन कराया जाता है। मुंडन के बाद के बालों का स्वाभाविक जटबन्ध नहीं होता।]

विरचितचूडाकरणादिसंस्कारक्रमश्च प्राप्ते विद्याग्रहणकाले निमित्तमात्रीकृतोपाध्यायः स्वयमेव समस्तानवद्यविद्याम्भोनिधेः परं पारमवाप ॥

चूडाकरण संस्कार हो जाने पर विद्याग्रहण के लिये उचित समय में निमित्तमात्र के लिये अध्यापक का अवलम्बन लेकर उसने सम्पूर्ण पवित्र विद्याओं के सागर को अनायास ही पार कर लिया।

तथाहि—

प्रबुद्धबुद्धिर्बौद्धे, सविशेषशेमुषीको वैशेषिके, विख्यातः सांख्ये, रञ्जितलोको लोकायते, प्राप्तप्रभः प्राभाकरे, प्रतिच्छन्दकश्छन्दसि, अनल्पविकल्पः कल्पज्ञाने, शिक्षाक्षमः, शिक्षायाम्, अकृतापशब्दः शब्दशास्त्रे, अभियुक्तो निरुक्ते, सज्जो ज्योतिषि, तत्त्ववेदी वेदान्ते, प्रसिद्धः सिद्धान्तेषु, स्वतन्त्रस्तन्त्रीवाद्येषु, पटुः पटहे, अप्रतिमल्लो झल्लरीषु, निपुणः पणवेषु, प्रवीणो वेणुषु, चित्रकृच्चित्रविद्यायाम्, उद्दामः कामतन्त्रे, कुशलः शालिहोत्रे, श्रेष्ठः काष्ठकर्मणि, सावलपो लेप्ये, पण्डितः कोदण्डे, शौण्डः शारिषु, गुणवान्गणिते, बहुलो बाहुयुद्धेषु चतुरश्चतुरङ्गद्यूतक्रीडायाम्, उपदेशको देशभाषासु, अलौकिको लोकज्ञाने ॥

प्रबुद्धेति ॥ चित्रवृत्तलक्षणं छन्दः। कल्पः पितृदेवताद्याराधनविधिशास्त्रम्। अकारादिवर्णजन्मस्थानानां बोधिका शिक्षा। अन्वयस्य प्रकाशकं निरुक्तम्। अतीन्द्रियशुभाशुभकर्मणां प्रकाशकं ज्यौतिषम् ॥

बौद्धदर्शन में उनकी बुद्धि प्रबुद्ध हो गयी। वैशेषिकदर्शन में विशेष पद्धतियों के जानकार हो गये। सांख्यदर्शन में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर ली। चार्वाक-दर्शन से लोगों को प्रभावित करने लगे। प्राभाकर (मीमांसा) में भी अच्छी प्रतिभा प्राप्त कर ली। छन्दःशास्त्र में भी नूतन-नूतन कल्पनायें करने लगे। कल्प (पितर लोगों की अर्चना विधि के) शास्त्र में पर्याप्त कल्पना प्रवण हो गये। शिक्षा (वर्णों का उत्पत्ति विषयक ज्ञान देने वाले) शास्त्र को तो पढ़ा देने में समर्थ हो गये। व्याकरणशास्त्र के अनुकूल ही पदों का उच्चारण करने लगे। निरुक्त में भी प्रवीणता प्राप्त कर ली। ज्योतिषशास्त्र में भी तैयार हो गये। वेदान्त के रहस्यों की भी जानने लग गये। सिद्धान्त ज्ञान में भी प्रसिद्ध हो गये। वीणा वजाने में भी कुशलता प्राप्त कर ली। नगाड़ा बजाने में पटु हो गये। झाल बजाने में अनुपम हो गये। पणव बजाने में नैपुण्य प्राप्त कर लिया। वेणु विद्या (वंशी बजाने) में प्रवीण हो गये। चित्र विद्या में आश्चर्य उत्पन्न करने लग गये। कामशास्त्र में प्रशस्त, अश्वविद्या (शालिहोत्र) में कुशल, काष्ठकला में श्रेष्ठ, रञ्जन कला में साहंकार, धनुर्विद्या के विद्वान्, द्यूत खेलने में उत्कृष्ट, गणितविद्या में गुणी, बाहुयुद्ध में सफल, चतुरङ्ग द्यूत क्रीडा (एक विशिष्ट ढंग के द्यूत) में चतुर, विभिन्न देश भाषाओं के शिक्षक तथा लोकज्ञान में सर्वथा व्यावहारिक वन गये ॥

किं बहुना—

रसे रसायने ग्रन्थे शस्त्रे शास्त्रे कलास्वपि।
नले न लेभिरे लोकाः प्रमाणं निपुणा अपि ॥ १४ ॥

रस इति ॥ रसः पारदः। रसायनं जरामरणापहं औषधयोगः। ग्रन्थः काव्यशास्त्रादिरचना। शस्त्रं खड्गादि। शास्त्रं व्याकरणतर्कादि। कला गीतनृत्यादयः। एतेषु निपुणा अपि सन्तो लोका नले राज्ञि प्रमाणमियत्तां न प्रापुः ॥ १४ ॥

अधिक क्या कहें—

रस, रसायन, ग्रन्थ, शस्त्र, शास्त्र और कलाओं में निपुण लोग भी नल में (रहने वाले ज्ञान की सीमा तक) नहीं पहुँच सके ॥ १४ ॥

[रस शृङ्गार आदि काव्यरसों और पारद आदि द्रव्य रसों के प्रसङ्ग में प्रयुक्त होता है। पारद आदि रसों से मोक्ष की प्राप्ति होती है, इस तरह की बात रसेश्वरदर्शन में मिलती है। रसायन भौतिक विज्ञान या ओषधि विज्ञान के लिये प्रयुक्त हुआ है। ग्रन्थ काव्य, शास्त्र आदि रचनाओं के लिए प्रयुक्त हुआ है। तात्पर्य यह है कि विद्या के एक-एक क्षेत्र के विशेषज्ञ भी अपनी अपनी विद्याओं में भी यदि नल की परीक्षा करते हैं तो उन्हें पता नहीं लगता कि नल कितनी गहराई में हैं ॥]

क्रमेण शैशवमतिक्रामतोऽस्य सेवकैरिवाङ्गावयवैरप्यनुवृत्तिः कृता ॥

सेवक जैसे स्वामी का अनुकरण करते हैं वैसे उसके विभिन्न अङ्गावयवों ने भी शैशव अवस्था पार करने के समय उसका अनुगमन किया ॥

[नल जब शैशव अवस्था को छोड़कर तरुणता की ओर चला तो उसके अङ्ग भी तरुण हो गये ॥]

तथाहि—

श्रवणासक्तस्य लोचनद्वयमपि श्रवणसंमतिमकरोत् ॥

श्रवणेति ॥ श्रवणे शास्त्राकर्णने आसक्तः । श्रवणसंगतिः कर्णसंगतिः ॥

श्रुतियों को सुनने में वह आसक्त था । इस कार्य में उसके दोनों ही (आन्तरिक एवं बाह्य) नेत्रों ने कान की संगति की ॥

उन्नतस्वभावस्य नासावंशोऽप्युन्नतिं जगाम ॥

उसके उच्च स्वभाव के साथ-साथ नासिका का अग्रभाग भी उच्च हो गया ॥

वक्रोक्तिकुशलस्य केशकलापोऽपि वक्रतां भेजे ॥

वक्रोक्तियों की कुशलता के साथ-साथ उसके केश भी वक्र हो गये ॥

शङ्खनिर्मलगुणस्य कण्ठोऽपि शङ्खाकारमधारयत् ॥

शंख सदृश निर्मल गुणों के साथ उसका कण्ठ भी शंख की आकृति जैसा हो गया ॥

पृथुलतेरंसकूटद्वयमपि पृथुलमभूत् ॥

पृथुलेति ॥ अंसकूटेति कूटशब्दः शिखरार्थः ॥

बुद्धि की पुष्टता के साथ उसके कन्धे भी पुष्ट हो गये ॥

प्रमाणवेदिनो वक्षःस्थलमपि सुप्रमाणमजायत ॥

प्रमाणेति ॥ प्रमाणं तर्कशास्त्रं मानं च ॥

(प्रत्यक्ष अनुमान आदि) प्रमाणों के ज्ञान के साथ उसका वक्षःस्थल भी सुप्रमाण (विशाल) हो गया ॥

मध्यस्थस्य तस्य रोमराजिरपि मध्ये स्थिता शुशुभे ॥

मध्येति ॥ मध्यस्थोऽकृतपक्षपातः । अन्यत्र मध्ये उदरे तिष्ठतीति ॥

सभी बातों में मध्यस्था करने वाले उस (नल) की रोमपङ्क्ति भी उदर मध्य में सुशोभित हो गयी ॥

सुवृत्तस्य बाहुयुगलमपि सुवृत्तमभवत् ॥

सुवृत्तेति। वृत्तं शीलं वर्तुलं च ॥

उस सुवृत्त (सुन्दर स्वभाव वाले) की भुजाएं भी सुवृत्त (सुडौल) हो गयीं ॥

गम्भीरप्रकृतेर्नाभिरपि गम्भीरा व्यराजत ॥

गम्भीरेति ॥ गम्भीरप्रकृतिरलक्ष्यकोपप्रसादः। निम्ना च गम्भीरा ॥

उस गम्भीर प्रकृति (गम्भीर स्वभाव वाले) की नाभि भी गम्भीर (गहरी) हो गयी ॥

पल्लवसुकुमारहृदयस्य हस्तचरणैरपि पल्लवसौकुमार्यमङ्गीकृतम् ॥

उस पल्लव सुकुमारहृदय (पल्लव सदृश कोमल हृदय वाले) के हाथ-पैरों ने भी पल्लव की कोमलता को अपना लिया ॥

अथ किं बहुना—

सोष्णीषमूर्धा ध्वजचक्रपाणिरूर्णाङ्कविस्तीर्णललाटपट्टः।
सुस्निग्धमूर्तिः ककुदुन्नतांसः कस्यैष न स्यान्नयनाभिरामः ॥१५॥

सोष्णीषेति ॥ उष्णीषाकारं शारीरिकं लक्षणमुष्णीषम्। ऊर्णा भ्रूमध्ये शुभरोमावर्तः ॥ १५ ॥

अधिक क्या—

पगड़ी से मण्डित शिर, ध्वज तथा चक्र से चिह्नित हाथ, ऊर्णा (भौहों के बीच की भ्रमरी) से चिह्नित विशाल ललाट, कोमल आकृति तथा उन्नत कन्धे वाला वह (नल) किसकी आँखों के लिये रमणीय नहीं हैं ॥ १५ ॥

अपि च—

आस्यश्रीः संनिभेन्दोः समदवृषककुद्बन्धुरः स्कन्धसंधिः।
स्निग्धा रुक्कुन्तलानामनुहरति दृशोर्द्वन्द्वमिन्दीवरस्य।
स्थानं वक्षोऽपि लक्ष्म्याः, स्पृशति भुजयुगं जानुनो, वृत्तरम्ये
जङ्घे, क्षामोऽवलग्नः, किमु निषधपतेः श्लाघनीयं न तस्य ॥१६॥

मुख की कान्ति चन्द्र की तरह है। कन्धों की सन्धियां मतवाले सांड़ के डील की तरह मनोहर हैं। बालों तथा नेत्रों की मधुर कान्ति नीलकमल युगल की कान्ति का अनुकरण कर रही है। वक्षःस्थल लक्ष्मी का स्थान है। दोनों हाथ जानु को छूते हैं। सुडौल जङ्घे बड़े मनोहर हैं। मध्य (कमर) कृश है। उस निषधपति का क्या प्रशंसनीय नहीं है ॥ १६ ॥

[सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार इन लक्षणों से युक्त मानव चक्रवर्ती सम्राट् होता है ॥]

अस्ति च तस्य नरपतिसूनोः समानशीलवयोविद्यालंकारकान्तिकलापपरिपूर्णदेहः शरीरमात्रद्वितीयोऽप्यद्वितीयहृदयमेकं जीवितमपर उच्छ्वासः सालङ्कायनसूनुः श्रुतशीलो नाम मन्त्री मित्रं च ॥

अस्तीति ॥ अपर उच्छ्वास इति । न परोऽस्मादित्यपर उत्कृष्टः ॥

उस राजपुत्र के समान स्वभाव, अवस्था, विद्या, भूषण, सौन्दर्य तथा कला से पूर्ण शरीर से दो रहने पर भी—हृदय से एक, प्राणों की तरह प्रिय, श्वास की तरह अनिवार्य, सालङ्कायन का पुत्र मन्त्री और मित्र है ॥

एकदा तु पूर्वदिग्वधूकुङ्कुमपङ्कपल्लवितवदनायमाने निरुद्धान्धतमसे सौगन्धिकबन्धुनि बन्धूककुसुमारुणे वियति तरतीव तरुणतरे तरणिमण्डले, मण्डयति कुसुम्भकुसुमकेसरप्रकरायमाणे गगनाङ्गणमम्भोजमुकुलनिद्रामुषि रोचिषां चये, चलिते च विचरितुमुपवनतरुराजिकर्णोत्पले निद्राविरामविधुतपक्षे पक्षिकुले, कृतप्राभातिककर्मणः सभाङ्गणमण्डपमध्यवर्तिनो दत्तसेवावसरस्य राज्ञः प्रविष्टे मन्त्रिणि सालङ्कायने· प्रणामपर्यस्तकर्णोत्पलधवलितसभाङ्गणे यथासतमुपविष्ट प्रस्तुतसेवालापरञ्जितराजनि राजन्यचक्रे, प्रक्रान्ते शास्त्रीयविनोदे, श्रुतिशीलेन सममन्यैश्च क्रीडासहायैरनुचरैरनुगम्यमानो नलः सेवासुखमनुभवितुमागतवान् ॥

एक समय पूर्व दिग् वधू के कुङ्कम पङ्क से निर्मित पल्लव सदृश मुख की तरह प्रतीत होने वाला, कमलों का मित्र बन्धूक फूल की तरह लाल सूर्यमण्डल अन्धकार को नष्ट कर आकाश में तैर रहा था। कुसुम्भ पुष्प के केसरपुञ्ज की तरह गगन प्राङ्गण में कमल कलियों की निद्रा को चुरा लेने वाली किरणें बिखर रही थीं। उपवन का तरुसमूह रूप कर्ण पुष्प विहार के लिये स्पन्दित हो उठा था। निद्रा समाप्त होने के कारण पक्षी अपना पंख फड़फड़ा रहे थे। (ऐसे समय में) सभामण्डप में बैठे हुए राजा द्वारा सेवा का अवसर प्राप्त कर मन्त्री सालङ्कायन सभाभवन आये। आश्रित राजाओं के वर्ग ने प्रमाण के अवसर पर अपने कर्णाभरणों की कान्ति से सभाभवन को धवलित कर दिया; उचित आसन पर आसीन होने के बाद प्रासङ्गिक सेवा विषयक चर्चा से राजा को प्रसन्न कर दिया। शास्त्रीय चर्चा विषयक मनोविनोद प्रारम्भ हो गया। श्रुतिशील के साथ अन्य क्रीडा-सहायक अनुचरों को लिया हुआ नल सेवासुख का अनुभव करने के लिये आया ॥

आगत्य च क्षितितलमिलन्मौलिमण्डलः प्रणम्य पितुः पादारविन्द-द्वयमदूरदत्तमासनं भेजे ॥

आकर पृथ्वी तक शिर झुकाता हुआ पिता के पदकमल युगल को प्रणाम कर समीप में दिये हुए आसन पर बैठा ॥

उपविष्टे च तस्मिन्ननभिवादनादुत्पन्नमन्युरीषत्कोपकम्पितकर-परामृष्टकूर्चाग्रिमग्रन्थिरग्रणीर्मन्त्रिमण्डलस्य भ्रूभङ्गभीषणया शोण-कोणान्तरतरत्तरलतारया दृशाऽभिमुखमस्य सालङ्कायनः प्रणयपरुषा-क्षरमभाषत ॥

उपविष्ट इति ॥ आत्मनोऽप्रणामाद्विदितविनयाकौशलं नलं प्रीतिभाक् पैतृको मन्त्री शिक्षाबुद्ध्या परुषवर्णमवादीत् ॥

उसके बैठ जाने पर प्रणाम न करने के कारण क्रुद्ध कोप के कारण कुछ कांपते हुए हाथ से अपनी मूंछ की शिखा को छूते हुए भौहों की वक्रता के कारण भयङ्कर तथा लाल कोणों के बीच तैरती हुई कनीनिका वाली आँखों से देखते हुए मन्त्रिमण्डल के मुख्य सालङ्कायन ने सामने बैठे हुए नल से प्रेम और रूक्षता भरी बातें कहनी शुरू कीं ॥

कुमार, राजहंसोऽपि 'अहंसरूपः' इति मा स्म मोहवान्भूः ॥

कुमारेति ॥ कुमारेत्यामन्त्रणे । राजमुख्योऽपि हंसस्त्वं सरूपो रूपवानहमित्य-मुना प्रकारेण मोहवान् मा स्म भूः मोहं मा गाः । रूपमदो हि नीचचिह्नम् । यश्च राजहंसः स कथमहं सस्वरूप इति विरोधद्योतकोऽपिशब्दः ॥

राजकुमार, तुम राजहंस होकर भी अहंसरूप (हंससदृश रूप वाले नहीं) हो । विरोध ।

राजहंस (राजाओं में मुख्य) हो । यह ठीक है । लेकिन "अहं + सरूपः" (मैं सुन्दर रूप वाला हूँ) यह अहंकार मत करो । परिहार ।

अनुभवति चमूढः शस्त्रसंघात इव कोशशून्यताम् ॥

ननु यदि रूपाद्दहंकाराद्वा नृपो मूढः स्यात्तत्को दोष इत्याशङ्क्याह—अनुभव-तीति ॥ चकारो यौगपद्ये । यदैव कुतो मुह्यति तदैव कोशेन गञ्जेन शून्यतां व्यति-रेकमनुभवति । यथा चम्वा स्वसेनया ऊढो धृतः शस्त्रनिचयः प्रत्याकारशून्यता-मायाति ॥

मोह से घिरा हुआ आदमी कोशशून्यता का अनुभव करता है जैसे चमू (सेना) द्वारा शस्त्रों के उठा ले जाने पर शस्त्रसमूह कोशशून्यता का अनुभव करने लगता है ॥

[मोहसम्पन्न व्यक्ति अपने कोश (निधि) को नहीं संभाल पाता । वह तो मूर्च्छा में विवेकशून्य पड़ा रहता है । मोह शब्द यदि अहंकार के अर्थ में

लगाया जाय तो भी तात्पर्य यह होगा कि अहंकारी व्यक्ति कहीं कुछ अनुचित कर बैठता है और पर्याप्त निधि का दुरुपयोग करता है। अतः एक दिन कोश शून्य हो जाता है॥

इस पक्ष में च अलग पद है और मूढः अलग। शब्दसंघात पक्ष में चम्वा ऊढः (सेना द्वारा ढोया हुआ) विग्रह करना चाहिये। चमू + ऊढ भिन्नभिन्न पद हैं॥]

अविभवः पुरुषो मेष इव कम्बलस्योपयोगं गच्छति॥

भ्रष्टकोशस्यापि किं तदाह—अविभवेति॥ निर्धनः पुमान् अज इव बलस्य सैन्यस्य शक्तेर्वा कमुपयोगं साफल्यं याति न कमपीत्यर्थः एतेन निष्कोशस्याबलित्वमिति ख्यापितम्। अजस्तु अवेर्मेण्ढाद्भवति स्म। तथा कम्बलस्याच्छादनविशेषस्योपयोगं याति॥

अविभव (निर्धन) पुरुष बल (शक्ति) के किस उपयोग में आ सकता है। अवि (भेड़ों) से भम (उत्पन्न) होने वाला (भेड़ा) कम्वल के उपयोग में आता है॥

[अविभव शब्द का विच्छेद जब अवि + भव है तो इसका अर्थ है "भेड़ से उत्पन्न"। जब अविभव शब्द "नास्ति विभवो यस्य" इस अर्थ का वाचक है तब "ऐश्वर्यहीन" अर्थ का वाचक है। इसी तरह कम्बल शब्द के भी सभङ्गश्लेष के आधार पर दो अर्थ हैं। "अविभवः पुरुषः बलस्य कम् उपयोगं गच्छति!" इस पक्ष में कम्वलस्य का "कम्" उपयोग का विशेषण है। भेड़ वाले पक्ष में "कम्वलस्य" एक शब्द है। तात्पर्य यह कि कोशशून्य आदमी अविभव (धनहीन) हो जाता है। अतः कोई भी बल का कार्य वह नहीं कर सकता॥

प्रद्युम्नजातोऽपि वाणयुद्धव्यतिकरकारिण्या सदोषया यौवनावस्थया निरुद्धोऽनिरुद्ध इव को नाम न क्लेशमनुभवति॥

तस्मादबलस्य का कथेत्याह—प्रद्युम्नेति॥ यतः प्रद्युम्नजातोऽपि प्रकृष्टौजःपुञ्जोऽपि। वाणैः शब्दैर्यद्युद्धं कोलाहलस्तत्संपर्ककारिण्या। सह दोषैरिति दोषान्वितया। तारुण्यावस्थया। निरुद्ध आत्मवशीकृतः को नाम क्लेशं दुःखं नानुभवति। सर्वोऽप्यनुभवत्येवेत्यर्थः। नामाभ्युपगमे। द्युम्नं द्रव्यमपि। वर्णधातुः शब्दार्थो घञन्तः। प्रद्युम्नः कामः। तस्माज्जातोऽनिरुद्धाभिधो वाणाख्येन दैत्येन समं युद्धसंबन्धविधायिन्या यौवनेऽवतिष्ठत इति कृत्वा तारुण्ये स्थितया उषया उषाख्यया पत्न्या सदा निरुद्ध आत्मीकृतो दुःखमनुभूतवानित्यागमः। युद्धव्यतिकरोऽनङ्गसूनोः क्लेशानुभवहेतुः॥

प्रद्युम्न (पूर्ण तेज) से उत्पन्न होकर भी वाणयुद्ध (शब्दकलह) करने का अवसर देने वाली दोषपूर्ण यौवनावस्था से घिरा हुआ कौन नहीं अनिरुद्ध की तरह क्लेश का अनुभव करता ॥

अनिरुद्ध पक्ष—वाण (वाणासुर) के साथ युद्ध की स्थिति उत्पन्न कर देने वाली, यौवनावस्था में स्थित सदा उषा के प्रेम में घिरे हुए प्रद्युम्नजात (कामपुत्र) अनिरुद्ध ने क्लेश का अनुभव किया।

[प्रद्युम्नजात—द्युम्न शब्द तेज का वाचक है। उत्कृष्ट तेजसम्पन्न व्यक्ति भी यौवनावस्था में यदि विचार से नहीं रहता तो अनिरुद्ध की तरह बांधा जाता है। अनिरुद्ध प्रद्युम्न का पुत्र था और कृष्ण का पौत्र। वाणासुर की लड़की उषा की प्रेरणा से एक चित्रकला प्रवीण दैत्यपत्नी ने अनिरुद्ध को उषा के पास उड़ा कर पहुँचा दिया। जब बाणासुर को थता लगा कि अन्तःपुर में एक युवक आ गया है तो उसे पकड़ लिया गया।

प्रद्युम्नजातोऽपि (प्रकृष्ट तेज से जन्मा हुआ भी) बाणयुद्धव्यतिकर-कारिण्या (वाक्कलह का अवसर देने वाली) सदोषया यौवनावस्थया (दोष-पूर्ण यौवनावस्था से) निरुद्ध (घिरा हुआ) कः (कौन) अनिरुद्ध इव (अनिरुद्ध को उषा के पास उड़ा कर पहुँचा दिया। जब वाणासुर को पता लगा कि की तरह) क्लेशम् न अनुभवति (दुःख का अनुभव नहीं करता)।

अनिरुद्धपक्ष—प्रद्युम्नजातोऽपि (प्रद्युम्न का लड़का होता हुआ भी) वाण-व्यतिकरकारिण्या (बाणासुर के साथ युद्ध का अवसर ला देने वाली) यौवना-वस्थया (यौवन की अवस्था में स्थित) सदा उषया (हमेशा उषा से) निरुद्धः (घिरा हुआ) अधिरुद्धः (अनिरुद्ध) क्लेशमनुबभूव) क्लेश का अनुभव करने लगा।]

तत्तात, सुविषमेघवर्त्तिनि विद्युद्विलास इवास्थिरे स्थितस्तारुण्ये मा स्म विस्मर स्मयेन विनयम् ॥

तत्तातेति ॥ तदित्युपसंहारे। तातोति प्रणयपूर्वामन्त्रणे। तस्माद्वत्स। सुष्ठ्वयति-शयेन। विषमे। तथाऽघवर्त्तिनि पापं कारयितरि। अस्थिरे चञ्चले। तथा विशेषेण द्योतन्त इति विद्युतो रोचमाना विलासाः शृङ्गारादयो यस्मिन्। तथाविधे तारुण्ये स्थितः सन्स्मयेन गर्वेण विनयं मा स्म विस्मार्षीः। विद्युद्विलासोऽपि सुष्ठु विषं जलं यत्रेति कृत्वा सुजले मेघे वर्त्तते। तथा अस्थिरो लोलः। तथाविधे ॥

अतः हे वत्स, बिजली के विलास की तरह चञ्चल, उत्कृष्ट (विषम) पाप में रहनेवाली इस यौवन की अवस्था में आकर अहंकार के कारण नम्रता को मत भूलो।

[विद्युत्पक्ष—सुविष (सुन्दर जल वाले) मेघ में रहनेवाला नितान्त चञ्चल बिजली का विलास। तारुण्यपक्ष में सुविषमेऽघवर्तिनि (उत्कट पाप में रहने वाला) पदच्छेद है। विद्युत् विलासपक्ष में सुविष + मेघ + वर्त्तिनि (सुन्दर जलवाले मेघ में रहने वाला)।

अविनीतोऽग्निरिव दहति ॥

विनयविस्मृतौ दूषणमाह—अविनीत इति ॥ अविनयी पुमानग्निरिव दाहमुत्पादयत्यात्मनः परस्य वा। अविरूर्णायुस्तेन नीतो यथाग्निस्तन्नेतारं दहति। ज्वलन्ती हि गड्डरिका स्वीकृता दहतीति लोकोक्तिः। अथवा अविरग्निवाहनम् ॥

अविनीत (उद्दण्ड) आदमी आग की तरह स्वयम् जलता है और दूसरों को भी जलाता है। अथवा अवि (कम्बल) में नीत (लगी हुई) आग की तरह जलता है।

[कम्बल में लगी हुई आग कम्बल को तो जलाती ही है उसके ओढ़ने वाले को भी भला देती है। अविनीत स्वयं नष्ट होता ही है, सम्पर्क रखनेवालों को भी दूषित करता है।]

[यह सोचो कि स्वयं जलने वाले या दूसरों को जलाने वाले कामदेव आदि स्तुति के पात्र बनते हैं। अतः ऐसा करने से हम भी स्तुत्य बन जायेंगे। यह भी नहीं होगा।] क्योंकि—

अजातनयश्छाग इव नाभिनन्द्यते जनेन ॥

नन्वात्मदाहकाः पतिविपत्तौ स्त्र्यादयः परदाहकाः कामत्रिपुरान्तकप्रभृतयश्च श्रूयन्ते। ततश्चाविनयाद्दाहात्मकमपि मां जनः स्तोष्यतीति निरस्यन्नाह—अजातेति ॥ न जातो नयो यस्य स छाग इव न स्तूयते जनेन। स्तुतिमपि न प्राप्नोतीत्यर्थः। छागस्त्वजायास्तनयः सुतः ॥

जो अजात + नय (नीति हीन) होते हैं वे अजा + तनय (बकरी के बच्चे) छाग की तरह लोगों की स्तुति का पात्र नहीं बनते।

[यह सोचो कि मैं जैसा भी रहूँगा, मेरे सहायक तो अच्छे हैं। अतः उनकी सहायता से मेरा कार्य चल जायगा। यह भी सोचना ठीक नहीं है।]

किं च ब्रूमः—

सुसहायशून्यस्य भवतो यस्यामीमांसाभियोगा राक्षसा इव, अन्यायाः पारदारिका इव, अयोगक्रिया लोहकारा इव, अश्रुतागमाः शोकवेगा इव सहायाः ॥

नन्वात्मनः स्वामी यादृक्तादृग्वा भवतु चेत्सुसहायः। तदपि त्वयि नास्तीत्याविष्कुर्वन्नाह—सुसहायेति ॥ यस्य ते ईदृशाः सहायाः। न मीमांसाभियोगो

विचारोत्साहो येषाम्। राक्षसास्तु मांसेऽभियोगो येषां ते। अमी इति तद्विशेषणम्। न विद्यते न्यायो येषामित्यन्याया न्यायरहिताः। उपमाने तु अन्यामन्यसंबद्धामयन्ते गच्छन्तीत्यन्यायाः। परस्त्रीरता इत्यर्थः। अलब्धलाभो लब्धपरिरक्षणं रक्षितविवर्धनं च योगः। तस्य क्रिया नास्ति येषां ते तथोक्ताः असंबद्धकर्माणो वा। पक्षे अयो गच्छतीत्ययोगा लोहगता क्रिया येषाम्। तथा न श्रुत आगमः शास्त्रं यैस्ते। शोकप्रसरस्तु अश्रुताया नयनजलस्यागमो येषु ॥

यह भी कह देता हूँ :—

आप सुन्दर सहायकों से शून्य हैं। राक्षस जैसे मांसाभियोग (मांस भोजन में तत्पर) रहते हैं वैसे ये (आपके सहायक) अमीमांसाभियोग (विचार करने की शक्ति से शून्य) हैं। दूसरे की स्त्री में आसक्त लोग जैसे अन्या + अय (परकीया के पास गमन करने वाले) होते हैं वैसे ये भी अन्याय (अनीति) करने वाले हैं। लोहकार (लोहार) जैसे अयोगक्रिय (लोहे सम्बन्धी कार्य में लगे हुए) होते हैं वैसे ये तुम्हारे सहायक भी अयोगक्रिय (अप्रासङ्गिक एवं निष्प्रयोजन कार्य में लगे) रहते हैं।

शोक वेग में जैसे अश्रुता (आंसू के भाव) का आगम होता है वैसे ये (आपके सहायक) अश्रुतागम (वेदों का श्रवण नहीं करने वाले) हैं ॥

[राक्षस पक्ष में अमी + मांसाभियोगाः पदच्छेद है। अमी का अन्वय सहायाः के साथ है। सहाय पक्ष में अमीमांसाभियोगाः ज्यों का त्यों है। पारदारिका—दूसरे की दारा में आसक्त लोग अन्याय होते हैं। अर्थात् अन्या (परकीया) के पास अय (गमन) करते हैं। इस पक्ष में अन्याय का अन्या + अय विच्छेद है! सहाय पक्ष में तो अनीति का वाचक अन्याय पद ज्यों का त्यों है। अयोगक्रिय—ऐसा व्यापार जो लोह से सम्बन्ध रखता हो। सहाय पक्ष में अप्रासङ्गिक तथा निष्प्रयोजन कार्य। अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति तथा प्राप्त वस्तु की रक्षा को योग कहते हैं। इससे विरुद्ध व्यापार को अयोगक्रिया कहते हैं। अश्रुतागम—शोकवेग में अश्रुतायाः आगमः इस समास में अश्रु के भावों का आगम अर्थ है। सहाय पक्ष में "न श्रुताः आगमाः यैः "इस समास में आगम ज्ञान विहीन अर्थ हैं। अर्थात् शोक का वेग जैसे आंसुओं का भाव ला देता है वैसे उसके सहायकों ने आगम (वेद) को नहीं सुना है। अश्रुतागमत्व रूप साधारण धर्म दोनों में है। अश्रु शब्द से तल् प्रत्यय करने पर अश्रुता बना है ॥]

न च ते दुःशिक्षितनृपकलभव्याकरणमार्गेषु निपुणा नर्तकीव मित्रमण्डली ॥

एवं सहायसंपदं निषिध्य मित्रमण्डलीमवद्ययन्नाह—न चेति ॥ दुःशिक्षितेति नृपकलभेति चामन्त्रणम् ॥ ते तव मित्रमण्डली न च व्याकरणमार्गेषु कुशला। शब्दतत्त्वावबोधे हि नीतिशास्त्राधिगमः। नीत्यवगमे हि कृत्याकृत्यविमर्शनम्। तस्मात्संपदः न च तन्नैपुण्यं भवन्मित्रमण्डलस्यामस्तीति भावः। नर्तकीपक्षे दुःशिक्षितनृपकलेति संबोधनम्। सा च भरतोक्तेषु करणमार्गेषु भव्या प्रशस्ता ॥

हे दुःशिक्षित नृप कलभ (ओ अशिक्षित नृप के बच्चे), तुम्हारी मित्र मण्डली व्याकरण मार्ग में (नीति शास्त्र के उचित व्याख्या मार्ग) में नर्तकी की तरह निपुण नहीं हैं।

नर्तकी पक्ष—हे दुःशिक्षित नृपकल ! (नृपनीति को न जानने वाले) नर्तकी (नाचने वाली) भव्याकरण (उचित अनुकरण करने और हाव भाव दिखाने) में निपुण होती है ॥

[मित्र मण्डली पक्ष में अर्थ करते समय "दुःशिक्षितनृपकलभ" इतना सम्बोधन का रूप है। व्याकरण मार्ग में जो निपुण नहीं रहेगा उसे नीति शास्त्र के ग्रन्थ अच्छी तरह समझ में नहीं आयेंगे। नर्तकी पक्ष में "दुःशिक्षित-नृपकल" इतना सम्बोधन है। अर्थात् नृपकला में तुम अप्रशिक्षित हो। भव्या-करणमार्ग एक पद है। नर्तकी भव्य (सुन्दर) आकरण (अनुकरण) में निपुण होती है। यदि "भव्या" को नर्तकी का विशेषण बनाया जाय तो अर्थ होगा—भरत के बताये हुए विभिन्न करण मार्गों में भव्या (उत्कृष्ट) हैं ॥]

तदायुष्मन्नहितया प्रकृत्या भुजङ्ग इव भयाय लोकस्य ॥

तदेति ॥ तदित्युपसंहारे। आयुष्मन्नित्यामन्त्रणे। अहितया हितेतरया। प्रकृत्या अविनयादिस्वभावेन। अयुक्तसहायमित्रलक्षणया चामात्यादिकया युक्तः संबद्धो भवाँल्लोकस्य भयहेतुः। भुजङ्गस्तु अहेर्भावोऽहिता तया दशनलक्षणया प्रकृत्या युक्तः ॥

आयुष्मन्, आप अपनी अहित प्रकृति के कारण सर्प की तरह लोगों के लिये भयदायक हैं। भुजङ्ग (सर्प) अहिता (सर्प स्वभाव) से लोगों के लिये भयदायक होता है ॥

[अहित शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप अहिता है। प्रकृति शब्द का विशेषण जब वह बनता है तो उसका अर्थ होता है अहितकर स्वभाव। सर्प पक्ष में अहि शब्द से तल् प्रत्यय कर अहिता बनता हैं। भुजङ्ग अपनी अहिता (सर्पोचित भाव) के कारण भयङ्कर हुआ करता है ॥]

उग्रसेनः कंसानुरागं जनयेत् ॥

दुष्टप्रकृतिर्नृपश्चेल्लोकस्य भयाय ततः किमित्याशङ्क्याह—उग्रेति ॥ उग्रा सेना यस्य स कं प्राणिनं सानुरागं कुर्यात्। न कमपीत्यर्थः विरागहेतुरेवेति भावः।

उचितपरिवारो हि जनानुरागाय। परिवारो हि लोकस्योपद्रवं रक्षणं वा कुरुते। उग्रसेनो दैत्यः स कंसासुरस्यानुरागं जनयतीत्यागमोक्तोऽश्लिङ्गनम्।

उग्रसेन (क्रूर शासक) किसको अपने प्रति सानुराग कर सकता है ? (किसी को नहीं)। उग्रसेन दैत्य कंस में अनुराग उत्पन्न करता है ॥

कंसानुराग पद का क्रूर शासक पक्ष में "कम् सानुरागम्" पदच्छेद होगा और उग्रसेन दैत्य पक्ष में "कंस नाम के राजा में अनुराग" अर्थ है। "उग्र है सेना जिसकी" इस विग्रह में तो क्रूरशासक अर्थ है। दैत्यपक्ष में उग्रसेन एक दैत्य का नाम है।

अमृतमथनोद्यतहरिबाहुपञ्जर इव मन्दरसानुगतः को न घृष्यते ॥

चेदमी विरुद्धबुद्धयः सहायादयः। पृथ्वी वा मयि मन्दानुरागा। ततः किं ममेति निरस्यन्नाह—अमृतेति ॥ मन्दो रसः प्रीतिर्येषां तैर्मन्दानुरागया पृथ्व्या चानुगतः को न घृष्यते। उपमाने तु पुरा देवैः दैत्यैरमृतायाम्भोधिर्ममन्थे। तत्र च मुख्यो बलिष्ठश्च विष्णुः। तस्य भुजपञ्जरो मन्दरनाम्नो गिरेर्मन्थानभूतस्य सानूनि तटानि गतः प्राप्तः सन्घृष्टः ॥

अमृत मन्थन के लिये तत्पर भगवान् विष्णु के बाहु जैसे मन्दर + सानुगत (मन्दर पर्वत्त की चोटी से संयुक्त) होकर रगड़े गये वैसे मन्द + रसानुगत (मन्द प्रीति वाले लोगों से घिरा हुआ) कौन आदमी नहीं रगड़ा जाता ॥

शुनीमिवास्थिरतां परिहर ॥

शुनीमिति ॥ तस्मादस्थिरतां चञ्चलत्वं त्यज ॥ शुनी त्वस्थिरता ॥

शुनी (कुतिया) अस्थि + रता (हड्डी चबाने में लगी रहती) है। आप अपनी अस्थिरता (चञ्चलता) छोड़ दे ॥

कुशीलताग्राही मा स्म तैलिक इव केवलं खलोपभोगाय भूः ॥

कुशीलतेति ॥ कुत्सितं शीलं लौल्यादिलक्षणं यस्य स कुशीलः, तस्य भावः कुशीलता। तां गृह्णातीत्येवशीलस्तथोक्तस्त्वं केवलं दुर्जनानामुपभोगाय मा स्म भूः। कुशीलो हि दुर्जनानमेवोपयोगी न साधूनाम्। तैलिकस्तु कुशीलक्षणां लतां गृह्णाति। खलः पिण्याकः स एवोपयोगस्तस्य। अयोविकारः कुशी।

कुशीलताग्राही (दुष्ट स्वभाव वाला) बनकर खलोपभोग (दुष्टों के उपयोग) की सामग्री मत बनो। कुशीलताग्राही (कुशी नामकलता को ग्रहण करने वाला) तैलिक (तेली) केवल खलोपयोग (खल के ही उपयोग में आता) है ॥

[तेली का उपयोग खल में ही होता है। अर्थात् तेल पेरने के ही काम में आता है ॥]

आवर्जय गुणान् ॥

अक्रत्यानि परिहार्य कृत्यमुपदिशन्नाह—आवर्जयेति ॥

[इन त्रुटियों के छोड़ कर] गुणों को अर्जित करो ॥

निर्गुणे धनुषीव सुवंश्येऽपिकस्याग्रहो भवति ॥

सुवंशत्वादेवास्माकं लोकग्रहो भविष्यतीति न विमृश्यं यतः—निर्गुण इति ॥ गुणानामेवाग्रह आदरो जनस्य न केवलं कुलीनानाम्। वेणुसंभूतस्य धनुषोऽपि गुणेन ज्यया आ आभिमुख्येन बाणाकर्षणाय ग्रह आग्रहः ॥

खूब सुन्दर वंश (बांस) से बने हुए धनुष में यदि गुण (प्रत्यंचा) न हो तो उसका कौन सम्मान करता है। उसी तरह सुन्दर वंश (कुल) में उत्पन्न हो कर भी निर्गुण (गुण हीन) होने पर तुम्हारा कौन सम्मान करेगा ॥

अभ्यस्य कलाः ॥

अभ्यस्येति ॥ कला विद्वत्तादिका तामप्यभ्यस्य। असूदैवादिको लुप्तहिप्रत्ययः ॥

कला का अभ्यास करो ॥

निष्कलो वीणाध्वनिरिव प्रशस्यते न पुरुषः ॥

निष्कल इति ॥ वीणाध्वनिस्तु निष्कलः कलयितुमशक्यः ॥

वीणा की आवाज निष्कल (सुंदर स्वरहीन) हो तो जैसे मनुष्य की प्रशंसा का भाजन नहीं होती वैसे निष्कल (वैदुष्य-शौर्य आदि कलाओं से हीन) व्यक्ति को लोग आदर नहीं देते ॥

त्यज जाड्यम् ॥

आवर्जितशौर्यादिगुणोऽभ्यस्तसप्ततिकलः पुरुषो यः स्तब्धः स नश्यते इत्याह—त्यजेति ॥

जड़ता छोड़ो ॥

जाड्ययोगेन हिमानी दूष्यतां याति ॥

जाड्येति ॥ हि यस्माज्जाड्ययोगेन मानी स्तब्धः पुमान्दूष्यत्वमाप्नोति। हिमानी हिमसंहतिः। सापि जाड्यतोऽतिशैत्याद् दूष्येत्यर्थान्तरम् ॥

जड़ता के योग से निश्चित (हि) रूप से मानी (अहंकारी आदमी) दूषित हो जाता है, जैसे जाड्य (अत्यन्त शीतलता) के योग से (हि मानी) हिमालय दूष्य (अप्रशंसनीय) हो गया है ॥

मा स्म मुखरो भूः ॥

वाचाल मत बनो ॥

जाड्यपरित्यागे किं पितृमन्त्रिमुखरस्तर्हि स्यामित्येतदपि निषिध्यन्नाह—मा स्मेति ॥ मुखरो वाचालोऽपि माभूः ॥

कर्णाटचेटीमिव मुखरतां न शंसन्ति साधवः ॥

कर्णाटेति ॥ यस्मान्मुखरस्य भावं मुखरतां वाचालतां साधवो न स्तुवन्ति। कर्णाटचेटी तु मुखे रतं सुरतं यस्याः ॥

जैसे मुख + रता (केवल मुख में ही सौन्दर्य रखने वाली) कर्णाट देश की चेटियों की प्रशंसा साधु लोग नहीं करते वैसे मुखरता (वाचालता) की भी प्रशंसा साधु लोग नहीं करते ॥

भज माधुर्यम् ॥

स्वभाव से मधुर बनो ॥

धवलबलीवर्दपङ्क्तिरिव समाधुर्या वाणी मनो हरति ॥

धवलेति ॥ यस्माद्या वाणी सह माधुर्येण सा मनोहारिणी। न च वाचालतायां वाचो माधुर्यम्। वृषश्रेणी तु समा अविषमा। धुर्या धूर्वाहिनी। धुरं वहतीत्यर्थे 'धुरो यड्ढकौ' इति यत्। अनः शकटम्। अर्णी वा। अक्षाग्रकीलिकामिव हरति वहतीत्यर्थः। वा अथवार्थे ॥

समा + धुर्या (बराबर धुरा को ढोने वाली) उजले बैलों की जोड़ी जैसे मन का हरण करती है वैसे समाधुर्या (माधुर्य गुण विशिष्ट) वाणी मन का हरण कर लेती है ॥

वर्जय वैपरीत्यम् ॥

वर्जयेति ॥ पूर्वोक्तादस्मदुपदेशाद्वैपरीत्यमन्यथाभावं त्यज ॥

विपरीत आचरण को छोड़ो ॥

विपरीतं शवमिव को न परिहरति ॥

यतः—विपरीतेति ॥ विपरीताचारं को न परिहरति। शवं तु विभिः पक्षिभिः परीतं व्याप्तम् ॥

वि (पक्षियों) से + परीत (घिरे हुए) मृतक की तरह विपरीत (प्रतिकूल) आचरण करने वाले लोगों को कौन नहीं छोड़ देता ॥

कमलदीर्घाक्ष, शिक्षाक्रमेऽस्मिन्नपरमप्यभिधीयसे ॥

सुविनीतानामावर्जितगुणानामभ्यस्तकलानामपि प्रायः प्रभवन्ति व्यसनानि, रक्षितव्यप्रमादाश्च। व्यसनेषु स्त्रीष्वत्यासक्तिर्महद्व्यसनम्। द्रव्यशरीरयोः क्षयहेतुत्वात्। स्त्रीव्यसने हि राजयक्ष्मोद्भवः। ततः स्त्रीव्यसनं लक्ष्मीप्रमादं च परिहारयन्नाह—कमलेति ॥ रूपवान्भवान् सर्वस्त्रीप्रियः स्यादतस्तासु विश्वासकरणं तव तत्कमलदलेत्यामन्त्रणेनाभिहितम् ॥

कमल सदृश विशाल नेत्र वाले, राजकुमार, इसी उपदेश परम्परा में कुछ और आप से कहता हूँ ॥

मा गाः स्त्रियाः श्रियो वा विश्वासम् ॥

मागा इति ॥ स्तृणाति दुर्विनीता सती आत्मनः परस्य वा गुणगणं प्रच्छादयतीति स्त्री। यस्यां तु सतीधर्मयोगादस्यार्थस्यान्यथात्वम् । तत्राच्छृणोति कल्याणपरंपराभिः स्वकुलं पतिकुलं चेत्यर्थः। तस्या दुर्विनीतायाः स्त्रिया अबलाया विश्वासं विश्रम्भं मा गाजीः। स्वलोभात्स्वभावाद्वा ता अतीवानुरागं दर्शयन्ति । परं परिणामे विरुद्धा एवेति भावः। तथा विश्वस्मिन्सर्वत्र निक्षेपस्य योग्येऽयोग्ये वा आस उपवेसनं स्थापनं विश्वासः। तं श्रिया लक्ष्म्या मा गाः। धनार्थं हि पितरः पुत्रेभ्यः पुत्राश्च पितृभ्यो द्रुह्यन्तीति । तस्माच्च एवाद्रोहण उपधाशुद्धश्च तत्रैवासौ निक्षेपणीयेति भावः ॥

स्त्री और श्री (लक्ष्मी) पर विश्वास नहीं करना ॥

[स्तृञ् आच्छादने धातु से स्त्री शब्द निष्पन्न हुआ है। जो अपने तथा दूसरे के गुणों को छिपाकर रक्खे, मोहकता शक्ति के कारण गुणी लोग भी जिसमें कर्तव्यच्युत हो जायँ, वह स्त्री पदार्थ है। कुलाङ्गना या पतिव्रता स्त्री के पक्ष में इसी व्युत्पत्ति का भाव होगा—अपने गुणों और सौभाग्य से पतिकुल को जो आच्छादित कर ले वह स्त्री है। पहले भाव वाली स्त्री पर अविश्वास करने के लिये मन्त्री ने उपदेश दिया है।

श्री शब्द के साथ विश्वास शब्द का अर्थ भिन्न है। श्री को विश्व (सब लोगों) पर आस (स्थापन) नहीं करना। अर्थात् रूपये पैसे का देन-लेन सबके साथ नहीं रखना चाहिये। जिसे ऋण आदि दिये जायँ उसकी योग्यता आदि पर विचार कर लिया जाय। अन्यथा यह एक ऐसी चीज है कि अत्यन्त आत्मीय लोग भी इसके लिये विरोध करने लगते हैं ॥]

अधिकमलवसतिरनार्यसंगता स्त्री श्रीश्च कं न प्रतारयति ॥

किमिति स्त्रिया न विश्रम्भणीयम् । श्रीश्च सर्वत्राप्यनिधेयेत्याह—अधीति ॥ अधिको योऽसौ मलः पाप तस्य वसतिरास्पदम् । तथा अनार्यैरसाधुभिः कृतमैत्रीका स्त्री कं पुरुषं न वञ्चयति। सर्वमपि प्रलम्भयतीत्यर्थः। श्रीस्तु अधिकमलं पद्मे वसतिर्यस्याः। कमलं हि तरणशीलम् । सा च तेनाविनाभावसंबद्धा। ततः पद्मासना श्रीः कं पुरुषं न प्रकर्षेण तारयति । किंविशिष्टा। न नारी अनारी अमानुषी। तथा ओ विष्णुः। तत्संगता असंगता ॥

स्त्री पक्ष—अधिक मल (पाप) की वसति (निवासस्थान) तथा अनार्य (दुष्टों) के साथ संगत (मैत्री स्थापित की हुई) स्त्री किसको धोखा में नहीं डाल देती।

श्रीपक्ष—अधिकमलवसति (कमल पर निवास करने वाली) अनारी (अमानुषी देवी) अ (विष्णु) से संगत (युक्त) लक्ष्मी किसको नहीं प्रतारित करती ॥

[श्री पक्ष में अनार्य-संगता पद को "अनार+अ+संगता" रूप में तोड़ना चाहिये। लक्ष्मी अनारी है। अर्थात् नर-पत्नी नहीं है विष्णु देव की पत्नी हैं। अतः देवी हैं। असंगता हैं। अर्थात् अ (विष्णु) से संगत संयुक्त हैं। लक्ष्मी का निवास कमल पर है। कमल पानी के साधारण झोंके से भी कम्पित होता रहता है। ऐसी स्थिति में उस पर रहने वाली लक्ष्मी का कम्पित होना या तरलित होना स्वाभाविक ही है। लक्ष्मी जब स्वयं तरलित है तो उस पर विश्वास करने वाला भी तरलित हो ही जायगा ॥]

या कालकूटद्वितीया नीरोषितापि नार्द्रहृदया भवति। स्वीकृतापि विवाहेन कंसानलङ्घनचापलेनोद्वेजयति ॥

या कलेति ॥ या स्त्री अकालेऽकस्माद्यत्कूटं कपटं द्वितीयं यस्याः। तथा नीरोष्यते स्मेति निरोषिता प्रसादितापयार्द्रहृदया स्निग्धहृदया न भवति। तथा विवाहेनोपयामेन सानलमग्निसाक्षिकं स्वीकृतापि सा स्त्री कं पुरुषं घनेन लौल्येन नोद्वेजयति। श्रीपक्षे कालकूटं विषं द्वितीयमस्याः। तदनन्तरमुत्पन्नत्वात्। तथा नीरे जले उषिता। जलधिपुत्रीत्वात्। परं नार्द्रहृदया। किं तु निर्जलवक्षाः। दैवतानुभावाज्जलेन तद्वक्षो वैसदृश्यं न नीतमिति भावः। तथा आप्नोत्यवश्यमित्यापी स्मृतमात्रागामुको यो विः पक्षी गरुडलक्षणः स वाहो वाहनं यस्य। तथा कंसासुरस्य न अलङ्घनमनलङ्घनम्। अर्थात्कंसस्य लङ्घनं मारणात्मकम्। तथाभूतं चापलं यस्य। अर्थाद्विष्णुस्तेन स्वीकृता। तथा उश्च अश्च वा शिवविष्णू उत्कृष्टौ यौ यस्य स उद्वः (ईश्वरो विष्णुश्च यस्य प्रसन्नः) तस्मिन् जयति। अथवा या श्रीर्विष्णुना स्वीकृतापि सती नीरे उषिता। कालकूटद्वितीयापि सती घनस्य मेघस्य चापलेन विलसितेन कंसमेव जगत्संतापकारित्वादनलमुद्वेजयति पीडयति अर्थाच्छमयितरि विवाहे गरुडवाहने आर्द्रहृदया न न भवति। भवत्येवेत्यर्थः। या किल कालकूटद्विताया सा कथमिवार्द्रहृदयेति विरोधोद्भावनयापिशब्दो भिन्नक्रमे। आर्द्रशब्दोऽत्र स्निग्धार्थः। यदि वा विवाहो विष्णुस्तेनापि श्रीः स्वीकृता। तत उपादेयेत्यर्थः। अपिरत्रापि भिन्नक्रमे ॥

काल (समयसमय) पर कूट (कपट) ही को साथ बनाती है। (अनुनयविनय कर) रोषहीन कर देने पर भी जिसका हृदय नहीं पिघलता। अग्नि आदि को साक्षी देकर विवाह द्वारा स्वीकार करने पर भी लंघनचापल (अवहेलनामूलक चपलता) से स्त्री किसे नहीं व्यथित करती।

लक्ष्मी-पक्ष—कालकूट (विष) ही जिनका द्वितीय (सहोदर बन्धु) है, जो जल में रहती हुई भी स्निग्ध हृदय वाली नहीं है, वि (गरुड़) को वाह

(वाहन) बनाने वाले और संसार को सन्तप्त करने वाले कंस रूप अनल (अग्नि) को (मारने) में घनचापल (अतिशय चपलता प्रदर्शित करने वाले) विष्णु द्वारा अङ्गीकृत हो कर भी अन्य लोगों पर जाकर सुशोभित होती है ॥

[लक्ष्मी की उत्पत्ति के ठीक बाद कालकूट (विष घट) की उत्पत्ति हुई थी। इसी लिये उसे कालकूटद्वितीया कहा गया है। समुद्र की पुत्री होंने के कारण नीरोषिता (जल में निवास करने वाली) कहीं गयी है। लक्ष्मी का पिता समुद्र है। अतः जलीय परमाणुओं का बाहुल्य उसमें स्वाभाविक है। फिर भी उसका हृदय आर्द्र नहीं है। लक्ष्मी किसी का परिग्रह कभी कभी कर लेती हैं और निष्ठुरतापूर्वक कभी भी उस व्यक्ति को छोड़ देती है। यहाँ विष्णु को विवाह कहा गया है, क्यों कि विं (गरुड़ पक्षी) उनका वाह (वाहन) है।

आपि शब्द को वि कां विशेषण बनाया जा सकता है। यथेच्छं क्वचिदपि आप्तुं प्राप्तुं गन्तुं शीलमस्य इति आपी, आपी असौ च विः आपिविः आपिविः वाहो वाहनं यस्य असौ आपि विवाहः, तेन आपिविवाहेन। अर्थात् स्मरण मात्र करने से जो कहीं पहुँच जाय ऐसे गरुड़ रूप वाहन वाले भगवान् विष्णु द्वारा लक्ष्मी गृहीत हैं।

उद्वेजयति—उद्वे+जयति ये दो पद हैं। उश्च अश्च इस इतरेतर योग द्वन्द्व का रूप होगा वो। इको यण चि से उ का व [illegible] हो जायगा। व के द्विवचन का रूप होगा वौ। वौ उत्कृष्टौ यस्य इस विग्रह में उद्व रूप बनेगा। उद्व शब्द के सप्तमी का एकवचन होगा उद्वे। उ का अर्थ शिव है और अ का विष्णु। अर्थात् शिव और विष्णु जिनके उत्कृष्ट हों। शिव और विष्णु जिन पर प्रसन्न हों, वह हुआ उद्व। उद्व पर लक्ष्मी प्रसन्न रहती है।

अस्याः कारणेऽभ्रान्तः समस्तोमन्दरागः सदालोकः, लोलनेत्री-कृता घृष्टा भुजङ्गमण्डली, प्राप्तो जलधी राजकुमारपराभवम् ॥

अस्या इति ॥ अस्याः स्त्रिया हेतोर्लोकः समस्तोऽप्यमन्दरागो दृढानुरागः सन्सदा भ्रान्तः। तथा भुजङ्गानां विटानां मण्डली चपलाक्षीकृता सती घृष्टा विप्रलब्धा। तथा जडा धीरस्येति जडधीर्जडबुद्धिः। राज्ञः सकाशात् कुत्सितो योऽसौ मारः पञ्चबिलवादिबन्धनेन विगोप्यहिंसा स एव पराभवस्तं प्राप्तः। अथवा राज्ञस्तथा कुत्सिताच्च मारात् स्मरात्पराभवं प्राप्नोति कुबुद्धिः। "अपि भ्राता सुतोऽर्घ्यो वा श्वशुरो मातुलोऽपि वा। नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति धर्माद्धि चलितः स्वकात्" इति स्मार्ताः। ततः स्वपितुरपि राज्ञः सकाशाद्राजकुमारस्यान्यायवतः परिभवो युज्यत एव। पक्षे अस्याः श्रियो निमित्ते। मन्दरोऽगः पर्वतः। अभ्रमाकाशमन्तो-ऽस्येत्यभ्रान्तो व्योमावसानः। सम् शोभन आलोकोऽस्येति सदालोकः। सम्य-गस्तः क्षिप्त इत्यर्थः। संपूर्वादस्यतेः क्तः। यद्वा सम्यगस्तः सन्नप्सु भ्रान्तः क्षुब्धोऽ-बभ्रान्तः (अर्थान्तरे भङ्गित्वेन न दोषः)। तथा अलोलनेत्रं लोलनेत्रं कृता

भुजंगमण्डली। नेत्रं मन्थानरज्जुः। तथा जलधिरब्धिः पराभवं मन्थनलक्षणं प्राप्तः। राजकुमारेत्यामन्त्रणे ॥

इसी स्त्री पदार्थ के कारण सभी लोग अमन्द राग (गाढ़ अनुराग) में फँसकर सर्वदा भ्रान्ति में पड़े रहते हैं। चंचल नेत्र (स्वभाव) वाली भुजंग-मंडली (धूर्त्त परिषद्) हमेशा धोखे में पड़ा करती है। जड़ बुद्धि का आदमी कुत्सित स्वभाव वाले राजा कामदेव से पराजय प्राप्त करता है।

[स्त्रीपक्ष में अर्थ करते समय भ्रान्त शब्द के पूर्व खण्डाकार नहीं रखना चाहिए। मन्द राग के पूर्व खण्डाकार समझना चाहिए। जलधी की जगह जडधी समझना चाहिये। डलयोरभेदात् के नियम से ड और ल में अभेद माना गया है। राजकुमार शब्द में राज और कु दोनों ही अंश "मार" शब्द का विशेषण बन कर आये है।]।

श्री-पक्ष में—इस लक्ष्मी के लिए अभ्र (आकाश) के अन्त तक फैला हुआ सदालोक (सुन्दर कान्ति वाला) मंदराचल समस्त (सम्यक् प्रकार से समुद्र के मंथन के अवसर पर समुद्र में डुबाया-फेंका गया)। अचंचल आँख वाली भुजंगमंडली (सर्प-मंडली) भी चंचल आंख वाली बना दी गयी। और रगड़ी गई। हे राजकुमार! इसी के लिए जलधि ने पराभव प्राप्त किया ॥ १०४ ॥

[इस पक्ष में अभ्र + अन्त विच्छेद किया गया है। समस्त सम् उपसर्गक असु क्षेपणे धातु से क्त प्रत्यय करने पर इसका अर्थ हुआ फेंका हुआ। अर्थात् लक्ष्मी के कारण इतनी सुन्दर कान्ति का पर्वत फेंका गया। मन्दराग पद से मन्दर + अग विच्छेद कर मंदराचल अर्थ निकाला गया। लोलनेत्रीकृता शब्द दो अर्थों की ओर संकेत करता है। वासुकि आदि सर्पों को मंथन-रज्जु बनाकर समुद्र मथा गया था। पर्वत की रगड़ खाकर दुःखी सर्पों की आँखें नाच उठी थीं। नेत्र शब्द का 'मथने वाली रस्सी' अर्थ भी होता है। अर्थात् जल्दी जल्दी खींची जाने वाली मंथन रस्सी की तरह सर्पमण्डली रगड़ दी गई। सापों की एक ही हड्डी होती है। उन्हें यदि एक दो बार भी रगड़ दिया जाय तो वे निर्बल हो जाते हैं। इस लक्ष्मी के निमित्त विचारे सर्प बहुत दुःख पाये। जलधी शब्द का इकार दीर्घ रूप में इस लिए दीखता है कि 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' से यहाँ दीर्घ हो गया है ॥

अनयावष्टब्धः को न गुरुवारणयोग्यो भवति, को न वाजिपृष्ठमारोहति कंकणक्वणज्ञातः प्रकटयति, कः कण्ठे हारावमोचनं न कुरुते, को न काञ्चनशृङ्खलामनुभवति। कुरङ्ग इवान्धीभूतः को वागुरावञ्चनं करोति, कः कार्मुकनिर्मुक्तशिलीमुख इव न वैलक्ष्यमागच्छति ॥

अनयेति ॥ अनया स्त्रिया आश्रित कः पुरुषो गुरूणां वारणे निषेधे । वा अथ-वार्थः । आजिः कलहः वञ्चनाया वञ्चनातः (पञ्चम्यास्तसिल्) प्रतारणात् । कं सुखं वञ्चनाकृतं सुखमित्यर्थः । कणन् शब्दायमानः । को न प्रकटयति । कण्ठे गलान्तः हा इति य आरावस्तस्य मोचनम् । कांचनेति कांचिदर्थे । शृङ्खलां बन्ध-नम् । गुरौ गुरुविषये अञ्चना पूजा । कुरङ्गपक्षे वागुराया मृगजालिकाया वञ्चना । पराभवादेः प्रागवस्थाया विसदृशो लक्ष्यत इति विलक्षः । तस्य भावो वैलक्ष्यम् । धनुर्मुक्तबाणस्तु वै स्फुटं लक्ष्यं वेध्यमायाति । पक्षे अनया लक्ष्म्या । गुरुर्महान् वारणो गजः । वाजिपृष्ठं तुरङ्गपृष्ठम् । कंकणं हस्तसूत्रम् । नवमविच्छायम् । चः समुच्चये । नेति निषेधे । अतोऽस्या इत्यर्थः । हारस्य मुक्तासरस्य । अवमोचनं बन्धनम् । काञ्चनस्य शृङ्खलामाभरणविशेषम् । अगौरवार्हे नीचे । अन्धीभूतो निर्विवेकः । अपि तु सविवेकः सन्गुरूनेव पूजयति । वै स्फुटम् । लक्षं शतसहस्रं नाप्नोति ॥

इससे घिरा हुआ कौन आदमी गुरुओं के निषेध का पात्र नहीं बनता अथवा कौन कलह की भूमिका में नहीं चढ़ जाता, कौन धूर्त्तता से बोलता हुआ सुख प्रदर्शित नहीं करता! कौन कण्ठ से 'हा' आराव (आवाज) नहीं निकालता। कौन (किसी के प्रेम बंधन में पड़कर) किसी तरह की शृंखला का अनुभव नहीं करता। कौन गुरु (विशाल) (वासना) का पूजक नहीं बन जाता। धनुष से निकला हुआ बाण जैसे वै + लक्ष (निश्चित रूप से लक्ष) पर पहुँचता है वैसे (स्त्रियों में रागान्वित होकर कौन नहीं वैलक्ष (हतश्री) बन जाता।

मृगपक्ष में—मृग भी अन्धीभूत (भय से विह्वल) होकर वागुरा) जाल के तन्तुओं) से मुक्ति पाने की चेष्टा करता है।

लक्ष्मीपक्ष में—लक्ष्मी से घिरा हुआ कौन आदमी महान् हाथी और घोड़ों की पीठ पर नहीं बैठता अतः (लक्ष्मी की कृपा से) नवीन कङ्कण (सोने से बना हाथ का वलय) कौन नहीं पहनता, कौन आदमी अगुरु का पूजन करता है (अर्थात् लक्ष्मी का कृपापात्र गुरु (बड़े) की ही पूजा करता है। कौन आदमी है (निश्चित रूप से) लाख रुपये नहीं प्राप्त करता।

[स्त्री पक्ष में गुरु का अर्थ आचार्य तथा वारण का अर्थ निवारण है। वाजि शब्द में वा + आजि विच्छेद कर कलह अर्थ किया जाता है। कङ्कणव-वञ्चनातः—(धूर्त्तता से) कणन् (बोलता हुआ) कं (सुख को) कौन नहीं प्रकट करता। हारावमोचनम्—हा (दुःखव्यञ्जक) आराव (ध्वनि) कौन नहीं छोड़ता। कांचनशृंखला—(किसी स्त्री के स्नेहविषयक बंधन) वागुरा वञ्चन—वा + गुरौ + अञ्चन—किसी स्त्री विषयक विशिष्ट वासना में ही पूज्य भाव रखना। मृगपक्ष में वागुरावञ्चन—वागुरा (जालतंतु) से मुक्ति पाने की चेष्टा। वैलक्ष—कान्तिहीनता।

लक्ष्मी पक्ष—गुरुवारण विशाल हाथी, वाजिपृष्ठ—घोड़े की पीठ, कंकण-स्वञ्चनातः—आतः–आ (लक्ष्मी) तसिल् (लक्ष्मी की कृपा प्राप्त कर लेने से) नवं कंकण च कः न प्रकटयति—नवीन कंकण को कौन नहीं प्रकट करता। कांचन शृंखला—स्वर्णमयी शृङ्खला सदृश भूषण। को वा अगुरो अन्चनं करोति--कौन आदमी अगुरु (अश्रेष्ठ) व्यक्ति की पूजा करता है अर्थात् श्रेष्ठ व्यक्ति की ही पूजा करता है। वैलक्ष—निश्चित रूप से लक्ष्य पर पहुँचता है ॥

कस्य न पराभूतिर्भवति। कस्य नापूर्वं यशः समुच्छलति ॥

कस्येति ॥ स्त्रीवशगस्य पराभूतिः पराभवः। प्रतिषेधवाची अः पूर्वो यस्याद्यशः-शब्दस्वरूपात्तदपूर्वं यशोऽयश इत्यर्थः। पक्षे परा प्रकृष्टा भूतिरुन्नतिः अपूर्वमुत्कृष्टं यशः ॥

स्त्री पक्ष—स्त्री के कारण किसका पराजय नहीं होता। किसको अपयश नहीं मिलता।

श्री पक्ष—किसको परा (उत्कृष्ट) कोटि का ऐश्वर्य (भूति) नहीं मिलता। किसका अपूर्व यश नहीं फैलता।

स्त्री पक्ष—नापूर्वयशः—यश के मूल में निषेध ही है, अर्थात् यश नहीं है। किस (दुर्विनीता) स्त्री के प्रेमी का अयश नहीं फैलता ॥

किमतोऽप्यस्याः परमुच्यते ॥

इससे अधिक और क्या कहें ॥

यादवप्रियं शार्दूलमिव शूरं महत्तरं भयान्नोपसर्पति। सुनयना-देवरं सिंहमिव बलभद्रं दृष्ट्वा प्रपलायते। न वसुदेवेऽपि चक्षुः पातयति ॥

स्वस्थावस्थायां स्त्रैणानि वञ्चनाकूटराजपराभवादीन्यभिधाय संप्रति परं परिणामे यत्स्यात्तदाह—यादवेति ॥ दवमुपतापं प्रीणाति दवप्रियं रागिणम्। अथवा दुनोतीति दवः कुतश्चिद्वैगुण्यादुपतापजनको यः प्रियः कान्तस्तं शूरं विक्रान्तं महत्तरं वृद्धं भयान्न समीपे व्रजति। अगमने वार्धकं भये च शूरत्वं हेतुः। शार्दूल-पक्षे दवः काननम्। सुनयेति नयप्रवर्तनप्रोत्साहनायामामन्त्रणम्। नादे शब्दे, वरं प्रियंवदं, बलेन शक्त्या भद्रं, दृष्ट्वापि प्रणश्यति। प्रियमिति शेषः। सिंहस्तु नादे शब्दे वरः सिंहनादस्य प्रतीतत्वात्। तथा वसुदे धनप्रदे। अवे रक्षकेऽपि चक्षुर्नयनं न पातयति। संमुखमपि नालोकत इत्यर्थः। यदि वा वेपतेऽवश्यमिति वेपीति चक्षुर्विशेषणम्। पक्षे यादवा यदुवंश्यास्तेषां प्रियः शूरनामाद्यपुरुषस्तं भयात्स्थितिलङ्घनलक्षणात् नोपसर्पति न तत्समीपे व्रजति। एतेन श्वशुरो वध्वा न स्पृश्यते इति स्थितिरुक्ता। शोभने नयने यस्याः सा देवरं गदनामानं कृष्णस्य गदाग्रजत्वात्। बलभद्रमपि ज्येष्ठसंबन्धेन प्रतीतं वीक्ष्य प्रकर्षेण पलायते स्पर्श-भयात्। तथा वसुदेवः कृष्णस्य पिता ॥

या+दव (जो क्लेश जनक) वीर तथा महान् (वृद्ध) प्रिय के पास नहीं जाती है। जैसे दवप्रिय (जंगलप्रिय) विशाल एवं वीर शार्दूल के पास कोई डर से नहीं जाता ॥

[प्रिय के पास स्त्री के न जाने में उसकी बुढ़ापा कारण है तथा उससे डरने में उसकी वीरता कारण है। स्त्रीपक्ष में या अलग पद है तथा दवप्रिय अलग पद हैं। दवप्रिय का अर्थ क्लेश देने वाला प्रिय है। दव का दूसरा अर्थ जंगल है। शार्दूल पक्ष में—दवप्रिय का अर्थ अरण्यप्रिय है।]

हे सुनय ! (अच्छी नीति के जानकार) नाद (बोलने) में श्रेष्ठ शक्ति के कारण कल्याणकर व्यक्ति को भी देखकर भाग जाती है जैसे पूर्ण बलिष्ठ तथा गंभीर गर्जन करने वाले सिंह को देखकर लोग भाग जाते हैं।

वसुद (संपत्ति देने वाले) अव (रक्षक) पर भी दृष्टि नहीं गिराती। वसुदेवेऽपि इसमें वेपि अंश को निकाल कर चक्षु का विशेषण बनाते हैं। वेपि का अर्थ हुआ 'अधिक कंपनशील।)

श्री पक्ष—लक्ष्मी यदुकुल में उत्पन्न व्यक्तियों के प्रिय शूर नाम के महान् (यदुराज) के पास भय से नहीं जाती है। वह सुनयना देवर (कृष्ण के छोटे भाई गद) तथा बड़े भाई बलभद्र को भी देखकर हट जाती है। वसुदेव (कृष्ण-पिता) पर भी दृष्टि नहीं गिराती।

शूर और वसुदेव लक्ष्मी के श्वशुर कोटि में आते हैं इसलिए उनका स्पर्श करना परंपरा विरुद्ध है। यही बात बलभद्र के लिए भी कही जा सकती है। देवर से भी भागने का तात्पर्य वासनात्मक रूप से न देखना ही है ॥

केवलमनवरतशिक्षितवैदग्ध्यकलापराधात्मिकात्रपापरा परिहृत्य गुणिनो गुरून्परपुरुषे मायाविनि कृतकेशिवधे धृतमन्दरागे रागं बध्नाति ॥

यदीदृशे परमोपकारिणि न प्रेमवती स्त्री, तदान्यत्र कस्मिन्नपि गुणिनि प्रेमबन्धं विधास्यतीति निरस्यन्नाह—केवलेति। नूयते इति नवं प्रशस्यं न नवमनवमप्रशस्यं रतं यस्याः। केवलं बीजक्षयहेतुत्वात्। नहि तस्याः संततिः। रतं च संतत्याः फलम्। तथा विशेषेण दग्धो विदग्धः। तस्य भावो वैदग्ध्यं संतापस्तस्य कला वैदग्ध्यकला शिक्षिता यया। पश्चात्कर्मधारयः। अपराध एवात्मा स्वरूपं यस्याः। तथा न त्रायते नरकाद् अत्रं तथाभूतं यत्पापं कर्मण्युपसर्गं राति ददातीत्यत्रपापरा। गुरून् पित्रादीन् गुणिनः सगुणांश्च प्राज्ञपुरुषान् परिहृत्य परस्याः पुरुषेऽन्यनारीकान्ते मायाविनि कापटिके कृतके कृत्रिमे अशिवमकल्याणं दधातीत्यशिवधे मन्दरागे क्षणप्रेमण्यनुरज्यते। परपुरुष इत्यत्र सर्वनामत्वाद् वृत्तौ पूर्वपदस्य पुंवत्वम्। पक्षे अनवरतं शश्वच्छिक्षितो वैदग्ध्यकलापो दक्षतातिशयो यया सा चासौ राधा-

त्मिका। राधा च कृष्णपत्नी। सापि श्रिया एव भेदः। त्रपापरा सलज्जा सती। गुणिनो गुरूञ्छूरादीन्यदूनामादिपुरुषान् परिहृत्य परपुरुषे मुरारौ रागं प्रीतिं बध्नाति। किंभूते मायां त्रिलोकीनिर्माणलक्षणा वामननृसिंहमहिलात्वादिलक्षणा वा विद्यते यस्य। तथा कृतः केशिनोऽश्वरूपस्य दैत्यस्य वधो येन। तथा धृतो मन्दरनामाऽगोऽद्रिर्येन॥

केवल अनव (अप्रशंसनीय) रत (प्रेम वाली) होती हैं। वैदग्ध्य कला (पीड़ा देने की ही कला) पढ़ी रहती हैं। अपराधात्मिका (अपराध की प्रतिमूर्ति) होती हैं। अत्रपापरा (जिस पाप से अपनी रक्षा न की जा सके ऐसे पापों को उपस्थित कर देने वाली) होती हैं। गुरुओं (पिता आदि पूज्य जनों) तथा गुणी पुरुषों को छोड़कर मायावी,—कृत्रिम अशिवध (अकल्याणकर पक्ष के पोषक तथा निम्न कोटि के प्रेम वाले लोगों के साथ प्रेम करती है।

श्रीपक्ष—हमेशा जिसने केवल वैदग्ध्य कलाप (ज्ञान की विविधता) की ही शिक्षा ली। राधात्मिका (कृष्णपत्नी होने के कारण लक्ष्मी का ही एक रूप) है। त्रपापरा (लज्जाशीला) है। गुणवान् गुरु (शूर आदि श्वशुर कोटि के पुरुषों) के स्पर्श आदि को छोड़कर पर पुरुष (उत्कृष्ट कोटि के पुरुष, पुरुषोत्तम) जिन्होंने मंदर नामक अग (पर्वत) का (धारण) किया था—से प्रेम करती हैं।

तदायुष्मन्नतिगम्भीरगुहा गिरीन्द्रभूरिव हृदयहराश्रेयोऽर्थिनां शरणं न स्त्री श्रीर्वा॥

एवमुक्तकपटानामनार्द्रहृदयत्वादिदोषान्वितानां स्त्रीणां विश्वासं विश्रम्भं श्रीणां च विश्वासं यत्र तत्र निक्षेपं सर्वथा परिहरन्सर्वोऽप्यायुष्मानित्यायुष्मन्निति संबोधनेनाभिहितम्। तदित्युपसंहारे। श्रेयोर्थिनां स्त्री न रक्षित्री। कीदृशी। हृदयं चेतो हरति मोहकारिणी। एतेन क्षयहेतुत्वमुक्तम्। तथा अतिगमतिशयेन बिभेतीति भीर्भीरुः स्त्रीस्वभावत्वात्। अथवा भीर्भयहेतुत्वात्। दुष्टाशयत्वात्। तथा न गौर्वाग्यस्य सोऽगुस्तं जहाति अगुहा। य एव मायामयं वक्तुं वेत्ति क्षणमपि तमेव श्रयतीत्यर्थः। अथवा गौर्धनं्वर्थः। लक्षोपलक्षणम्। तेन निर्धनं विहाय धनिनमेवाश्रयतीति। यदि वा नतौ नम्रतायां गम्भीरा गौर्वाग्यस्य तमपि जहातीत्यर्थः। न च भवादृशाश्चाटूनि कुत्रापि वक्तुं प्रभविष्णवः। सर्वोन्नतत्वात्। यदि वा अतिगमतिशयं भियं राति ददातीति भीरा गौर्यस्य तमतिगम्भीरगं जहाति। हिमाचलभूरपि अतिगम्भीरा गुहाः पाषाणसन्धयो यस्याम्। श्रीश्चाश्रेयोऽर्थिनां न शरणम्। किन्तु श्रेयोऽर्थिनाम्। कीदृशी हृत्स्वान्तं तथाऽयं शुभकर्म हरति। तत्प्राप्त्या शुभकर्मणो भुक्तत्वात्। यदुक्तं नैषधे—'पूर्वजन्मविभवव्ययसृष्टाः संपदोऽथ विपदश्च विमृष्टाः' इति। गौरी अपि हृदये हरो यस्याः। तथा नतिगम्भीरः प्रणामप्रगल्भो गुहः कार्त्तिकेयो यस्याः। तत्पुत्रत्वात्॥

अतः हे आयुष्मन् ! श्रेयोऽर्थी (कल्याण चाहने वाले) लोगों का शरण स्त्री कभी नहीं होती। वह हृदयहरा (मन को चुरा लेती है। अतिगम + भी (अत्यन्त भयंकर) होती है।

अगुहा—(जिसके पास चाटुकारितापूर्ण वाणी नहीं है उसे छोड़ देती) है।

(अगुहा—गौ का अर्थ वाणी है) जिसके पास गो नहीं है उसे बहुव्रीहि समास के आधार पर अगु कहते हैं। ओहाक् त्यागे धातु के आधार पर अगु को छोड़ने वाले को अगुहा कहा गया है। अर्थात् जो छद्मपूर्ण किन्तु मधुर मधुर बोलता है उसी के वश में स्त्री रहती है। जो ऐसा करना नहीं जानता उसको छोड़ देती है। अर्थात् अति गंभीर भय को जो देता है (राति) वह अतिगंभीर गु हुआ और उसे छोड़ने वाली को अति गंभीर गुहा कहेंगे। गिरीन्द्र भू (हिमालय पर्वत की भूमि को भी अतिगंभीरगुहा कहा जा सकता है; क्योंकि उसकी भी गुफाएँ बड़ी विशाल विशाल हैं।]

श्रीपक्ष में—अश्रेयोऽर्थी (अकल्याण चाहने वाले) लोगों का शरण लक्ष्मी नहीं बनती। हृदयहरा—हृदय की—जागतिक वृत्तियों का हरण कर शाश्वत मुक्ति देने वाली तथा अति गंभीर गु (अत्यन्त गंभीर आशय वाली है)

पार्वतीपक्ष में-- गिरीन्द्र भू (हिमालय उनका उत्पत्ति स्थान है) अपने हृदय में हर (शिव) को रक्खी हुई है। तथा उनके पुत्र गुह (कार्तिकेय) नति गंभीर (प्रणाम करने में पूर्ण प्रवीण) हैं॥

शृङ्गारप्रधानास्तात, गाव इव विचारिताः सरसा भवन्ति न स्त्रियः॥

अधुना दुःस्त्रियः सर्वथा परिहार्याः साध्व्या अप्यत्यन्तविश्वासप्रतिषेधद्वारेण 'सेवेत विषयान्काले भुक्त्वा तत्परतां वशी। सुखं हि फलमर्थस्य तन्निरोधे वृथा श्रियः' इति पूर्वकविकथिततनुगासुक्तोऽत्यासक्तिं च निषेधयन्नाह—शृङ्गारेति॥ रूक्षशिक्षावचोभिरास्माकीनैरसौ विमनस्को भविष्यतीति चित्ते धारयन् कृत्यं चोपदिशन् तातेति कोमलमामन्त्रयति। शृङ्गारो रसः प्रधानं यासु। तथा विचारिता विवेचिता गावो गिर एव सरस्याः प्रीतिहेतवो भवन्ति। अथवा गावो विशेषेण चारिता दत्तास्वादवत्तृणकवलाः। तथा शृङ्गस्याग्रमग्रं प्रधानं यासु तास्तथोक्ताः। तथा सरसाः सदुग्धाः। स्त्रियस्तु शृङ्गारो मण्डनं प्रधानं यासाम्। विचारिताः स्तृणन्ति दुःशीलाः सत्यो गुणगणं छादयन्तीति तत्त्वतो विमृष्टाः सत्यो न सरसाः। किंतु वैराग्यहेतवः॥

हे तात ! स्त्रियों में शृङ्गार की प्रधानता रहती है। विचार से देखने पर वे सरस नहीं होतीं। उनके ऊपर तत्त्वतः विचार किया जाय तो वैराग्य ही उत्पन्न हो जायगा।)

गोपक्ष में शृङ्ग का अर (अग्रभाग) उनमें प्रधान होता है। विशेष रूप से (सुन्दर घासों को) चराने पर ही सरस होती हैं ॥

तदेताः कन्दर्पकण्डूकषणविनोदमात्रोपकारिण्यो नात्यन्तविश्वासयोग्याः सर्वथा विश्वस्तं विश्वासमिव नरं कुर्वन्ति स्त्रियः ॥

तदेता इति ॥ तत्तस्माद्धेतोरेताः स्त्रियो नात्यन्तं विश्रम्भार्हाः। कियदेवेत्यर्थः। तत्र हेतुमाह—कंदर्पेत्यादि। सर्वथा विश्रब्धं नरं स्त्रियो विगतश्वासमिव कुर्वन्ति। तत साध्व्योऽपि नात्यन्तं विश्रम्भार्हाः। तथा च चाणक्यः—'अन्तर्गृहगतः स्थविरस्त्रीवरिशुद्धां देवी पश्येत। अपरिशुद्धां न कांचिदभिगच्छेत्'। श्रूयते हि—देवीगृहगतो भ्राता भद्रसेनं जघान मातुः शय्यान्तर्गतश्च पुत्रः कारूपम्' इत्यादि ॥

ये स्त्रियाँ कामजन्य खुजलाहट मिटाकर मनोविनोद कराने में ही उपकारी हैं। इनपर सर्वथा विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि विश्वास किये हुए आदमी को विगतश्वास (मृत) बना देती हैं ॥

श्रियोऽपि दानोपभोगाभ्यामुपयोगं नयेत्। न लोभं कुर्यात्। बहुलोभानुगतः किरणकलापोऽपि संतापयति जनम् ॥

स्त्रीणां दोषान्कण्डूविनोदमात्रफलं चाभिधाय संप्रति श्रीणां फलमाह—श्रियोऽपीत्यादि ॥ लोभे दूषणमाह—बह्विति। लोभेनानुगतः। करौघस्तु बहुलः प्राज्यः। तथा भानुं रविं गतो भानवीय इत्यर्थः ॥

लक्ष्मी भी अगर हों तो दान और उपभोग के माध्यम से उनका उपयोग करना चाहिए। उसमें लोभ नहीं करना चाहिए। बहुत लोभ में पड़ा हुआ आदमी लोगों को सन्तप्त करता है जैसे बहुल (पर्याप्त) भानुगत (सूर्यसंबंधी) किरणें लोगों को सन्तप्त करती हैं ॥

अतः पुत्रः प्राप्स्यसि नचिरान्निजकुलकमलराजहंसीं राज्यश्रियम् ॥ अनवरतं कृतयशोदानन्देहि नारायण इव त्वयि चिरं रंस्यते खल्वियं लक्ष्मीः ॥

यदि लोभवता मया संतप्यते जनस्तत्किमित्याशङ्क्याह—अत इति ॥ अत एतस्माज्जनाच्छ्रियमाप्स्यसि। जनानुरागप्रभवा हि संपदः। अथवा एतस्मात्पूर्वोक्तादस्मदुपदेशात्। प्राप्य च श्रियं निरन्तरं कृतं यशो येन तद्दानं देहि धर्मादिपात्रेषु श्रियं नियुङ्क्ष्वेति भावः। खलु निश्चितमियं लक्ष्मीः पात्रेषु व्यवकलयति त्वयि विष्णाविव बहुकालं सदर्पं स्थास्यति। विष्णौ कीदृशि। कृतो यशोदाख्याया जनन्या आनन्दो येन तस्मिन्। हि स्फुटम् ॥

अतः हे पुत्र ! शीघ्र ही अपने कुलकमल की राजहंसी राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करोगे। हमेशा ऐसा दान करो जिसमे यश उत्पन्न हो। यशोदा को आनंदित करने वाले नारायण की तरह तुम में यह राजलक्ष्मी चिरकाल तक रमण करती रहेगी। पहले उपदेश दिया गया है कि संपत्ति का उपयोग उचित स्थान या पात्र में करना चाहिए। कृतयशोदानंदेहि—में सभङ्गश्लेष के कारण चमत्कार है। कर दिया है यश जिस दान ने ऐसे—कृतयशोदान को दो। नारायण का विशेषण बनाने के लिए—कर दिया है यशोदा के आनंद को जिसने उसमें—कृतयशोदानन्दे—सप्तमी का एक वचन है। हि पृथक् पद रहेगा जो निश्चय अर्थ का बोधक होगा ॥

पाहि प्रजाः ॥ प्रजापो ब्राह्मण इव क्षत्रियोऽपि न लिप्यते पातकैः ॥

बलादपि प्रजाभ्यो वित्तमादाय पात्रेषु मयोपकरणीयमिति मा कृथा हृदि तदाह—पाहीति ॥ पालय प्रजाः यस्मात्प्रजां पाति यः क्षत्रियः स न पापी। ब्राह्मणस्तु प्रकृष्टो जपो यस्य स प्रजापः। जपनं जापः ॥

प्रजाप (प्रकृष्ट जप करने वाला) ब्राह्मण जैसे पापों से लिप्त नहीं होता वैसे प्रजाप (प्रजा का पालन करने वाला) क्षत्रिय भी पापों से लिप्त नहीं होता।

मा च वृद्धिं प्राप्य गुणेषु द्वेषं कार्षीः। व्याकरणे हि वृद्धिर्गुणं बाधते, न सत्पुरुषेषु ॥

मा चेति ॥ वृद्धिं राज्यादिसमृद्धिम्। गणेषु पाण्डित्यादिषु। हि यस्माद्गुण-बाधिका वृद्धिरिति वैयाकरणसमयः ॥

वृद्धि (राज्यसमृद्धि) प्राप्त कर गुणवान् व्यक्तियों से द्वेष मत करना। व्याकरण शास्त्र में ही वृद्धि गुण को बाधती है। किसी सज्जन पुरुष की वृद्धि (प्रगति) गुण से विद्रोह नहीं करती।

[व्याकरण शास्त्र के अनुसार अपवाद शास्त्र उत्सर्ग शास्त्र को बाध लेता है। गुण शास्त्र उत्सर्ग शास्त्र है और वृद्धि शास्त्र अपवाद शास्त्र है। इसीलिए गुण को वृद्धि बाध लेती है। व्याकरण शास्त्र में ही गुण और वृद्धि का बाध्य-बाधकभाव चलता है। आप जैसे राजकुमार की वृद्धि (प्रगति) किसी गुण या गुणी की बाधिका न बने।]

वत्स, मा चैवं चेतसि कृथाश्छान्दसोऽयम्। छान्दसश्च गुरुर्वक्र-स्वभाव एव भवति तत्क्रिमनेनेति। यस्माच्चतुरानन्दिपदः पुण्य-श्लोको भवान्। अतोऽङ्गभावं यान्ति ते वक्रोक्तयोऽपि गुरवः।

सरलतया लघवोऽप्यन्तरङ्गा भवन्ति । किन्तु ते ह्यवसाने कुटिलतामपि दर्शयन्ति ॥

इदानीं शिक्षामभिधायात्मनोपदिष्टे आदरपरं कुमारं कुर्वन्मृदुवचोभिः प्रोत्साहयन्नाह—वत्सेत्यादि ॥ छन्दो वेदः छन्दःशास्त्रं च । गुरुस्तत्त्वोपदेष्टा छन्दोहृल्लघुद्वितीय आकारादिश्च । यस्मात्कारणाद्भवान्पुण्यश्लोकः पवित्रयशाः । तथा चतुरानानन्दयति तथाविधं पदं राज्यलक्षणं यस्य । अतो वक्रवचसोपि गुरवः । तेन च अङ्ग तव भावं भावनां यान्ति । त्वयि भावितात्मानो भवन्तीत्यर्थः । अङ्गेति । कोमलामन्त्रणे । सरलतया एकमार्गतया लघवो लघुवृत्ता अप्यन्तरङ्गाश्चेतोभिप्रेताः स्युः । परं तेऽन्ते कौटिल्यमपि प्रकाशयन्ति । अथ च पुण्यः श्रेयान् श्लोकः पद्यम् । तदा चत्वारि आनन्दीनि पदानि पादा यस्य ते प्रसिद्धा गुरवो वक्राकृतयोऽङ्गभावमवयवत्वं यान्ति । श्लोकस्येति शेषः । सरलतया ऋजुतया लघवो लेखाकृतयोऽन्तरङ्गामध्यगताः स्युः । परमन्ते पादान्ते कुटिला अपि स्युः । 'वा पादान्ते त्वसौ ग्वक्र' इति वचनात् ॥

वत्स, यह न सोचना कि यह सब छन्द (गपोड़ या कपट की उक्तियां) हैं । छान्दस (वेदवेत्ता एवं कल्पनाप्रवीण) गुरु टेढ़े स्वभाव का (रूक्ष बोलने वाला) होता है, लेकिन उससे कोई हानि नहीं होती । उनकी वक्रता पर आपको ध्यान नहीं देना चाहिये, क्योंकि आप पुण्यश्लोक (पवित्र यश वाले) हैं तथा चतुर लोगों को आनन्द देनेवाला राज्य पद आपको प्राप्त है । अतः टेढ़े बोलने वाले भी गुरुजन (अपनी चतुरता के कारण) आपके अङ्गभाव (आत्मीयता) को प्राप्त कर लेंगे । सरल (सीधे स्वभाव के) हो जाने पर लघु (छोटी बुद्धि या छोटे स्वभाव के) लोग भी अन्तरङ्ग (आत्मीय) हो जाते हैं, किन्तु अन्त में वे अपनी कुटिलता दिखाने ही लगते हैं ।

[छन्दःशास्त्रपक्षः—इन्द्रवज्रा, उपजाति आदि छन्दों को बताने वाले छन्दः शास्त्र में गुरु (दीर्घवर्ण) वक्र स्वभाव (टेढ़ी आकृति (ऽ) के होते हैं । छन्दः शास्त्र में गुरुवर्ण का चिह्न (ऽ) टेढ़ा और लघुवर्ण का चिह्न सीधा (।) होता है । लेकिन टेढ़ा होने से क्या होता है ? वक्र आकृति वाले भी गुरु वर्ण चतुरानन्दिपद (आनन्द देने वाले चार चरणों से युक्त) पवित्र श्लोक के अङ्ग भाव (अवयवत्व) को तो प्राप्त करते ही हैं । अर्थात् गुरुवर्णों को भी तो श्लोक के विभिन्न चरणों में स्थान मिलता ही है । लघु वर्ण सीधे (।) लिखे जाते हैं, वे भी श्लोक के भीतर आते हैं किन्तु पाद (श्लोक चरण) के अवसान (अन्त) में कुटिल (टेढ़े-गुरु—ऽ) हो जाते हैं । पादान्तस्थं विकल्पेन—श्लोक के पाद के अन्त में आने वाला ह्रस्व वर्ण भी गुरु हो जाता है ।

[मा चैवं कृथाः—उपर्युक्त योजना के अतिरिक्त इसका यह अर्थ भी सम्भव है—

वत्स, मेरी इन बातों को ज्यों त्यों (अवहेलनापूर्वक) मन में नहीं रखो। वेद वाक्य की तरह इसे समझो। छान्दस गुरु प्रियवक्ता नहीं होता, वह तथ्य वक्ता हुआ करता है। तथ्य बोलने वाले लोग आप जैसे पवित्र आदमी के अङ्ग ही बन जाते हैं। राजा को अत्यन्त सरल भी नहीं होना चाहिए। सरल होने पर लघु (बुद्धि के) लोग उसके विश्वास भाजन बन जाते हैं और अन्त में अपनी कुटिलता दिखाने लगते हैं।

यहाँ छन्दःशास्त्र के आधार पर निर्मित पवित्र श्लोक से पुण्यश्लोक नल की तुलना की गयी हैं। एक श्लोक जैसे चतुरानन्दिपद (चार आनन्द देने वाले पदों (चरणों) से युक्त होता है वैसे नल चतुरानन्दिपद (चतुर लोगों को आनन्द देने वाले (राज्य) पद पर प्रतिष्ठित) हैं। एक श्लोक में जैसे टेढ़ी आकृति वाले गुरु वर्ण स्थान पा जाते हैं वैसे तथ्यविद् गुरु वक्र स्वभाव वाले होने पर भी अपनी चतुरता के कारण राजा के अङ्ग बन जाते हैं। आचार्य चण्डपाल ने अङ्ग शब्द को सम्बोधन माना है। अर्थात् हे अङ्ग (प्रिय)। वक्र बोलने वाले भी गुरु तुम्हारे भाव (श्रद्धा) के पात्र बनते हैं। लघु (ह्रस्व) वर्ण जैसे लिखने में सीधा होता है और पाद के मध्य में रहता है तब तक तो ज्यों का त्यों रहता है किन्तु ज्यों ही पाद के अन्त में पहुँचता है गुरु (ऽ टेढ़ा) बन जाता है। वैसे लघु स्वभाव के लोग अन्तरङ्ग तो बन जाते हैं किन्तु पूर्णतः उन्नति कर जब अन्तिम पद पर पहुँचते हैं तो अपनी कुटिलता दिखाने लगते हैं।]

तत्किं बहुना—

> तथा भव यथा तात त्रैलोक्योदरदर्पणे।
> विशेषैर्भूषितस्तैस्तैर्नित्यमात्मानमीक्षसे ॥ १७ ॥

तथेति ॥ तातेति कोमलामन्त्रणे। तथा तेन प्रकारेण भव यथा तैरस्मदुपदिष्टैः प्रजात्राणादिभिर्विशेषैरुपलक्षितमात्मानं भुव्युषितः पृथ्वीस्थित एव त्रैलोक्यमेव योऽसौ दर्पणस्तत्र नित्यमविनश्वरं पश्यसि। अन्योऽपि तैस्तैराकल्पविशेषैर्मण्डितमात्मानं दर्पणे पश्यतीति। यशोऽर्थमेव प्रयतितव्यमिति भावः ॥ १७ ॥

अधिक क्या कहें—

वत्स ! ऐसा बनो जिससे त्रैलोक्य के आँगनरूप दर्पण में अपने विशेष (दान आदि) गुणों से अलंकृत हो कर तथा इस भू (पृथ्वी) में उषित (स्थित) होकर सदा अपनी पवित्र आत्मा को देख सको।

[अत्यन्त यशस्वी कार्य करोगे तो समूचे ब्रह्माण्ड में तुम्हारा यश फैल जायेगा। इस पृथ्वी में रहते ही रहते अपने यशरूप निर्मल आत्मा को देख

सकोगे। अधिकांश लोग मरने के बाद अपने कार्यों के कारण यशस्वी होते हैं। तुम ऐसा यत्न करो कि जीते ही जीते तुम्हारा अमर यश संपूर्ण संसार में फैल उठे ॥ १७ ॥]

किं चान्यत्—

विभर्ति यो ह्यर्जुनवारि पौरुषं करोति नम्रे च न वा रिपौ रुषम्।
न तेन राज्ञा सहसागराजिता भवेन्मही किं सहसागरा जिता ॥१८॥

विभर्तीति ॥ अर्जुनमेव वृणोत्याच्छादयति वारयति वेत्येवंशीलं निजप्रकर्षेण तच्चरित्रापह्नवकारि पौरुषं यो राजा धत्ते। अथवा नम्र रिपौ शत्रावपि रुषं कोपं न च नैव करोसि। धर्मविजयत्वात्। तेन राज्ञा अगराजिता। अष्टसंख्यकुलाचलालंकृता। तथा सहसागरा ससमुद्रा सहसा बलेन किं मही न जिता भवेत्। जितैवेति भावः ॥ १८ ॥

जो अर्जुन के यश को भी ढंक लेने वाले पराक्रम को धारण करता है तथा नम्र शत्रु पर भी क्रोध नहीं करता वह राजा शीघ्र ही अगराजित (पर्वतों से सुशोभित) तथा सहसागरा (समुद्र सहित संपूर्ण पृथ्वी) को नहीं जीत लेता (जीत ही लेता है।)

(अर्जुनवारि—आच्छादन अर्थ में वृ धातु से तत् स्वभाव अर्थ में णिनि प्रत्यय हुआ है। इसका अर्थ हुआ अर्जुन को ढंक लेने वाला। सहसागराजिता—सहसा + अग + राजिता—(शीघ्र पर्वत मंडित पृथ्वी) सहसागराजिता—सह + सागरा + जिता—समुद्र सहित पृथ्वी जीत ली जाती है। सरल ढंग से यमक अलंकार का बड़ा भव्य निदर्शन है ॥ १८ ॥

अपि च—

'किं तेन जातु जातेन मातुर्यौवनहारिणा।
आरोहति न यः स्वस्य वंशस्याग्रे ध्वजो यथा' ॥ १९ ॥

किमिति ॥ मातुर्जनन्यास्तारुण्यमुषा तेन जातेन किम्। किमपि नेत्यर्थः। यो जातु कदाचिदपि स्वस्यान्वयस्याग्रं नारोहति। अग्रे गण्यतां न यातीत्यर्थः। ध्वजपक्षे वंशो वेणुः ॥ १९ ॥

और भी—जैसे वंश (बांस) के अग्रभाग में ध्वजवस्त्र लक्षित होता है वैसे जो पुत्र अपने वंश (कुल) में अग्रगण्य नहीं बन जाता तो उस माता के यौवन का हरण करने वाले पुत्र से क्या लाभ।

एवमुक्त्वा विश्रान्तवाचि वाचस्पतिसमे मन्त्रिणि राजापि प्रेमार्द्रया दृशा नलमवलोक्य वक्तुमारभत ॥

ऐसा कहकर बृहस्पति सदृश मंत्री के चुप हो जाने पर राजा भी स्नेहपूर्ण दृष्टि से नल को देखकर बोलना शुरू किया ॥

'तात, युक्तमुक्तोऽसि सालङ्कायनेन। कस्यान्यस्य निर्यान्ति वदनारविन्दादेवंविधाः पदे पदेऽर्थसमर्था मृद्व्यो मृष्टाः श्लिष्टाश्च वाचः ॥

तद्दर्शितस्तथानेन निर्वापितदेहः स्नेहः। स्वीकृतस्त्वं मनसा समस्तसाम्राज्यभारोद्वहनधुर्यतां प्रति। तेनायमनुशास्ति ॥

वत्स, सालंकायन ने बहुत अच्छा कहा है। किसके मुखकमल से प्रत्येक पद से गंभीर अर्थों को व्यक्त करती हुई कोमल शुद्ध तथा श्लेषयुक्त वाणी इस तरह निकल सकती है। शरीर को तृप्त करने देने वाले स्नेह को इन्होंने तुम्हारे ऊपर दिखाया। तुमने भी हृदय से समस्त संसार के भारवहन में अपनी समर्थता स्वीकार की। इसीलिए ये तुमको अनुशासित करते हैं।

युज्यते चैतत् ॥

यह उचित भी है।

तथाहि—

संग्रहं नाकुलीनस्य सर्पस्येव करोति यः।
स एव श्लाघ्यते मन्त्री सम्यग्गारुडिको यथा ॥ २० ॥

संग्रहमिति ॥ न निषेधे। अकुलीनस्यानभिजातस्य। सर्पस्य तु नाकुर्वल्मीकस्तत्र लीनस्य। कर्मणामारम्भोपायः पुरुषद्रव्यसंपत्, देशकालविभागो विनिपातप्रतीकारः, कार्यसिद्धिश्चेति पञ्चाङ्गो मन्त्रः गारुडादिविषयश्चेति योगान्मन्त्रिणावमात्याहितुण्डिकौ ॥ २० ॥

नाकु (बिल) में लीन (घुसे हुए) सर्प को पकड़कर जैसे गारुड़िक (सांप बझाने वाला) प्रशंसा का पात्र बनता है वैसे ही अकुलीन (निम्नपरंपरा) के लोगों का संग्रह न कर मन्त्री भी प्रशंसा का पात्र बनता है।

अच्छे मन्त्री का यही लक्षण है कि वह भव्य परंपरा के कुलीन लोगों का संग्रह करे ॥ २० ॥

किं च—

न पश्यसि सांप्रतमिदमस्माकमतिभीरुभूपालमण्डलमिव बलिभिराक्रान्तम्, अशेषमङ्गम्, अतिजीर्णशीर्णकर्पटमिवावरीतुं न शक्यते। काप्युपरिपतितभ्रूचक्रा भीरुभटपेटीव नष्टा दृष्टिः ॥

नेति ॥ वलयस्त्वक्शैथिल्यानि। बलिनो बलवन्तश्च। आवरणं संव्यानम्। अङ्गपक्षे संवरणम्। निःसौष्ठवादशक्यम्। उपरिपतितं शैथिल्यास्रस्तं भ्रूचक्रं

यस्याम् । भीरुभूपालमण्डलीपक्षे तु प्रतिभटानामिति शेषः। भीरवो हि वैरिणि विलोकयति पलायन्ते। पेटशब्दः संघाने त्रिलिङ्गः ॥

नहीं देखते—इस समय मेरे सभी अंग बलियों (चमड़े की सिकुड़न) से आक्रान्त हैं जैसे डरपोक राजे वलि (वलवान् लोगों) द्वारा आक्रान्त होकर शिथित पड़ जाते हैं। अत्यन्त पुराना फटा हुआ कपड़ा जैसे शरीर को ढंक नहीं पाता वैसे ये सिकुड़े हुए चमड़े शरीर के संवरण में असमर्थ हैं। आंखों पर भोहों के लटक आने के कारण दृष्टि वैसे ही नष्ट हो गई है जैसे डरपोक वीर मंडली पर चक्र गिर जाय और वह नष्ट हो जाय ॥

ये हितवर्गोपदेशिनो मुख्यास्तेऽपि सालङ्कायनप्रभृतयो मन्त्रिण इव विरलीभूता दन्ताः। शब्दशास्त्रे हि राजादीनामदन्तता श्लाघ्यते। नान्यत्र ॥

य इति ॥ हितवर्गं हितसमूहमुपदिशन्ति मुख्याश्च प्रधानभूताः सालङ्कायनप्रभृतयोऽमात्या यथा विरलीभूता इव केचित्। न सब तथाविधाः। तथा ये दन्ताः हि स्फुटं तवर्गमुपदिशन्त्युच्चारयन्ति। तवर्गस्य दन्त्यत्वात्। तथा मुखे भवा मुख्याः। तेऽप्यविरला विरलाः सम्पन्ना विरलीभूताः। वलिग्रस्तानां हि मांसमुक्ता दन्ता विरलाः स्युः। मुख्याश्चतुःसंख्या राजदन्ताः। 'राजाहः–' इति सूत्रोक्ता राजादयः ॥

हित-समूह के उपदेश देने वाले सालङ्कायन आदि—प्रमुख मंत्री जैसे थोड़े हैं वैसे दांत भी अब थोड़े ही रह गये। व्याकरण शास्त्र में राजादि शब्दों की अदन्तता (अकारांतता) प्रशंसित होती है—दूसरी जगह नहीं (लोक में राजाओं की अदन्तता (दंतहीनता) प्रशंसा की बात नहीं।)

राजाहः सखिभ्यष्टच्—सूत्र मे समासान्त टच् प्रत्यय होने के कारण ये शब्द अकारान्त रह जाते हैं।

तदिदानीं मम वन्यश्वापदमिव विषयविमुखं मनो वनाय धावति। कृतं च यन्मनुष्यजन्मनि क्रियते ॥

तदिति ॥ विषया इन्द्रियार्था देशाश्च ॥

तो इस समय मेरा मन जंगली जानवर की तरह सांसारिक विषयों से विमुख होकर बन की ओर भागता है। मनुष्य जीवन पाकर जो किया जाता है मैंने सब कर लिया।

जंगली पशु भी विषय (देश या गांवों) को छोड़कर बन की ओर भागता है।

तथाहि—

एता प्राप्य परोपकारविधिना नीताः श्रियः श्लाघ्यता-
मापूर्वापरसिन्धुसीम्नि च नृपाः स्वाज्ञां चिरं ग्राहिताः।

भूभारक्षमदोर्युगेन भवता जाता वयं पुत्रिण-
स्तत्संप्रत्युचितं यदस्य वयसस्तत्कर्म कुर्मो वने ॥ २१ ॥

एता इति ॥ यथाक्रमं धर्मार्थकाममोक्षाणामुपन्यासः ॥ २१ ॥

इन संपत्तियों को प्राप्त कर तथा परोपकार के कार्यों में लगा कर इन्हें प्रशंसा भाजन बना दिया। समुद्र की पूर्वी सीमा से लेकर पश्चिम सीमा तक राजाओं से चिरकाल तक अपनी आज्ञाओं का पालन कराया। पृथ्वी के भार सहने में समर्थ बाहुयुगल वाले आपको प्राप्त कर हमलोग पुत्रवान् भी कहला गये। अतः इस समय इस अवस्था में जो कर्म किया जाता है उसे जंगल में करेंगे।

(भविष्य के अर्थ मे वर्तमान का प्रयोग 'वर्तमान सामीप्ये वर्तमानवद् वा' के नियम से किया गया है। वन जाने के लिये पैर नहीं बढ़ाये हैं किंतु शीघ्र ही जाने वाले हैं इसी लिए वर्तमान का प्रयोग किया गया है।) ॥ २१ ॥

इत्यभिधाय तत्कालमेव मौहूर्त्तिकानाहूयादिदेश—'कथ्यतां यौवराज्याभिषेकोत्सवाय दिवसः' इति ॥

ऐसा कह कर (उसी समय ज्योतिष् शास्त्रियों को बुलाकर आज्ञा दिये— कहिये यौवराज्याभिषेक के लिए दिन।

अथ कथयामासुस्तेऽपि—'देव, श्रूयतामनवद्यतनमेव राज्याभिषेकयोग्यमहः! केन्द्रस्थानवर्त्तिनः सर्वेऽप्युच्चग्रहाः, पुण्यो मासः, पूर्णा तिथिः, श्लाघ्यो योगः, प्रशस्तो वारः शुभं नक्षत्रम्, कल्याणी वेला, विधीयतां यद्विधेयम्' इत्यभिधाय स्थितेषु तेष्वनन्तरमेव 'सुश्रोणि, श्रूयतां यदस्माभिः श्रुतमाश्चर्यम् ॥

अथेति ॥ केन्द्रस्थानं शुभस्थानम् ॥

वे भी बोले—'देव ! सुनिये राज्याभिषेक के लिए अत्यन्त श्लाघ्य दिन है। सभी उच्चग्रह शुभ स्थान में हैं। पवित्र महीना है। पूर्णा तिथि है। प्रशंसनीय योग है। श्रेष्ठ वार है। शुभ नक्षत्र है। कल्याणकर समय है। करिये जो करना है।' ऐसा कहकर अभी ठहरे ही हुए थे तब तक राजा ने कहा—'सुमध्ये ! सुनो यह आश्चर्य।'

उचितमुचितमेतद्धैर्यधाम्नां नृपाणां
वयसि कटुनि कान्तालोचनानां तृतीये।
इति रभसमिवास्य प्रस्तुतं श्लाघमानो
वियति पटुरकस्मादुत्थितस्तूर्यनादः ॥

उचितेति। कटुत्वमत्राप्रियत्वमेव ॥ २२ ॥

तीसरी (वानप्रस्थ) अवस्था में जब रमणियों के लोचन कटु (अप्रिय) हो जाते हैं, धैर्य रूपी तेज रखने वाले राजाओं के लिए यह अत्यन्त उचित है। बड़ी शीघ्रता से प्रस्तुत कार्य की प्रशंसा करती हुई अचानक आकाश में वाद्यध्वनि गूंज उठी ॥ २२ ॥

अपि च—

उपरि परिमलान्धैः सस्वनं संचरद्भि-
र्मधुकरनिकुरम्बैश्चुम्ब्यमाना भरेण ।
अविरलमधुधारासारसंसिक्तभूमिः
सदसि सुरविमुक्ता प्रापतत्पुष्पवृष्टिः ॥ २३ ॥

पराग के कारण मस्त, घूमते एवं भनभनाते हुए भ्रमर-समूह से पूर्णरूप में चुम्बित, लगातार मधु धारा की वर्षा से भूमि को सींचती हुई, देवताओं द्वारा की गई पुष्पवृष्टि राजभवन में उल्लसित हुई ॥ २३ ॥

अवतेरुश्च तत्कालमेवाम्बरतलादुल्लसद्ब्रह्मकान्तिकलापपवित्रीकृताष्टदिग्भागभूमयः सकलसागरसरित्तीर्थाम्बुपूर्णकमण्डलुमृत्कुशकुसुमौषधिरुद्धपाणयो दर्शनादेवापनीतसमस्तकलिकल्मषाः केऽपि कुतोऽपि ब्रह्मर्षयः ॥

उसी समय आकाश से कुछ अलौकिक तेजस्वी महर्षि उतरे जो अपनी ब्रह्मतेजोराशि से आठों दिशाओं की भूमि को पवित्र कर रहे थे। समस्त समुद्रों एवं नदी तीर्थों के जल से पूर्ण कमण्डलु, मिट्टी, कुश, पुष्प तथा ओषधियों को हाथ में लिए हुये थे तथा दर्शन मात्र से समस्त कलि के पापों का हरण कर ले रहे थे।

सहर्षेण सविनयेन सपरिवारेण च चलत्कर्णोत्पलगलद्बहलरजःपुञ्जपिञ्जरितकपोलपालिना पृथ्वीपालेन प्रणम्य कृतातिथेयाः समुचितान्यलंचक्रुरासनानि ॥

प्रसन्नता एवं विनय के साथ परिवार-सहित, दोलायित कर्णपुष्प से गिरते हुए पराग-समूह से पिंगल गंडस्थल वाले राजा द्वारा प्रणामानंतर अतिथि सत्कार पाकर उचित आसन को सुशोभित किये।

कृतकुशलप्रश्नालापाश्च प्रस्तुतकुमाराभिषेकस्य नरपतेः स्वस्वकमण्डलुवारीणि दर्शयामासुः ॥

कुशल प्रश्न-विषयक चर्चा के बाद प्रासंगिक, कुमार (नल) के राज्याभिषेक के लिए (लाये हुए) अपने-अपने कमण्डलु के जल राजा को दिखाये।

इदं मन्दाकिन्याः सलिलमवगाहागतमरुत्-
पुरन्ध्रीणां पीनस्तनशिखरभुग्नोर्मिवलयम् ।
इदं कालिन्द्याश्च प्रविकसिततीरद्रुमलता-
पतत्पुष्पैरन्तःसुरभिततरङ्गं नृप पयः ॥ २४ ॥

स्नान के लिए आई हुई देवताओं की रमणियों के स्थूल स्तनों के अग्रभाग से टूटी हुई तरंग पंक्ति वाला यह जल मंदाकिनी का है। तट के खिले हुए तरुओं एवं लताओं के फूलों से पूर्ण सुगंधित तरङ्गों वाला यह जल हे राजन् ! यमुना का है ॥ २४ ॥

इदं गोदावर्यास्त्रिनयनजटाखण्डगलितं
महाराष्ट्रीनेत्रैः कृतकुवलयं मज्जनविधौ ।
इदं चापि प्रेङ्खन्मुनिजनविकीर्णार्धकमलं
पयो विन्ध्यस्कन्धस्थलविलुलितं नार्मदमपि ॥२५॥ युग्मम् ।

भगवान् शंकर के जटा खण्ड से गिरा हुआ तथा महाराष्ट्र की रमणियों के नेत्रों से स्नान के समय नीलकमल बना हुआ यह जल गोदावरी का है। घूमते हुए मुनियों ने कमलों को आधा-आधा तोड़कर जिनमें बिखेर दिया है तथा जो विन्ध्याचल की चोटी से आविर्भूत हुआ है वह यह जल नर्मदा का है।

(महाराष्ट्र की रमणियों का नेत्र नीलकमल सदृश है। स्नान के समय उनके नेत्रों के प्रतिबिम्ब से जल भी नीलकमलमय बन गया है) ॥ २५ ॥

इतश्च—

तदेतत्पुण्यानां परममवधिं प्राप्तमुदधेः
पयः प्रक्षाल्याङ्घ्री शयनसमये शार्ङ्गधनुषः ।
विहारायोन्मज्जद्वरुणवनितावृन्दवदनैः
क्षणं यत्रोत्फुल्लन्नवकमलखण्डश्रियमधात् ॥ २६ ॥

तदेतदिति। शयनसमये युगान्ते शार्ङ्गधनुषो विष्णोः सम्बन्धिनौ चरणौ प्रक्षाल्य पुण्यानां परमसीमानं गतमुदधेः समुद्रस्य तदेतत्पयो वर्तते। यत्र विहाराय क्रीडार्थमुन्मज्जन्ति यानि वरुणवधूवृन्दवदनानि तैः कृत्वा विकसदम्भोजखण्डशोभां क्षणं दधौ ॥ २६ ॥

सोने के समय, शार्ङ्ग नामक धनुष् वाले भगवान् विष्णु के पैरों को धोकर पुण्य की अंतिम सीमा तक पहुँचा हुआ यह जल समुद्र का है। जहाँ यह (जल) क्रीडा प्रसंग में स्नान करती हुई वरुण-पत्नियों के मुख से खिले हुए नवीन कमल-समूह की शोभा प्राप्त किया था।

[वरुण-पत्नियों के मुख जब जल के ऊपरी भाग में दिखाई पड़ते थे तो लगता था कि नये कमल ही खिले हुए थे] ॥ २६ ॥

राजा तु तत्कालमुन्मीलद्बहलपुलकाङ्कुरकोरकितदेहः किमप्यद्भुतरसेनावेशित इव विधूय शिरश्चिन्तयाञ्चकार ॥

उसी समय राजा का शरीर पूर्ण रूप से रोमांचित हो उठा। कुछ अद्भुत रस के आवेश में आए हुए की तरह शिर को हिलाता हुआ सोचने लगा—

'नूनमयमस्मद्गृहे हरिहरब्रह्मणामन्यतमः कोऽप्यवतीर्णो भविष्यति। यतः क्वायं शिक्षाक्रमः, क्वेयमस्माकमाकस्मिकी यूनोऽस्याभिषेकाय बुद्धिः, क्व चानुकूलकालसंपत्तिः, क्व चामी समस्ताभिषेकोपकरणपाणयो महामुनयः ॥

निश्चित ही यह मेरे घर में विष्णु, शिव या ब्रह्मा में से कोई एक होकर आया होगा। क्योंकि कहाँ यह उपदेशक्रम, कहाँ इस युवक के अभिषेक के लिए अचानक हमलोगों का विचार, कहाँ यह अनुकूल मुहूर्त, कहाँ समस्त सामग्री को हाथ में लिए हुए ये महर्षि।

सर्वथा नमोऽस्तु घटितदुर्घटाय वेधसे। यस्यायमेवमद्भुतो व्यापारः, इत्यवधारयन्नुत्थाय गृहीत्वा तानि तीर्थोदकानि कृत्वा कनककुम्भेषु तात्कालिकास्फालितमृदङ्गझल्लारीरवरभसोल्लास्यविलासिनीवृन्दैरानन्द्यमानो मङ्गलोद्गारमुखरपरिवृतः सह सालङ्कायनेन 'सहस्रं समास्तात एवानुपालयतु राज्यम्' इत्यभिदधानमनिच्छन्तमपि नलं बलान्निवेश्याभिषेकपट्टे स्वयमेवाभिषेकमकरोत् ॥

सर्वथेति ॥ घटितं योजितं दुर्घटं शिक्षाप्रक्रमादिलक्षणं येन तस्मै वेधसे नमः ॥

असंभव पदार्थ को भी सर्वथा संभव कर देने वाले ब्रह्मा को नमस्कार है, जिसका इसी तरह अद्भुत कार्य हुआ करता है। यह सोचता हुआ उठकर उन तीर्थजलों को लेकर एक सोने के घड़े में रखकर तत्काल बजते हुए मृदंग एवं झाल की आवाज पर वेग से उत्कृष्ट लास्य (नृत्य) करती हुई वारांगनाओं से आनंद का अनुभव करता हुआ नल की इच्छा नहीं थी तो भी उसे अभिषेक के आसन पर बैठाकर स्वयम् अभिषेक कर दिया।

परिधाप्य च मङ्गलाभरणवाससी सिंहासनमारोप्य पुत्रप्रेम्णा पुरः स्थित्वा कनकदण्डपाणिः क्षणं प्रातिहार्यमन्वतिष्ठत् ॥

मंगलभूषण तथा वस्त्र पहनाकर, सिंहासन पर बैठा कर, पुत्र स्नेह के कारण स्वयम् हाथ में स्वर्ण दण्ड लेकर प्रतिहारी का कार्य सम्पन्न किया।

सालङ्कायनोऽप्यतिस्नेहेनास्योपरि लम्बितमुक्ताकलापमास्रवत्सुधाधारमिन्दुमण्डलमिव कनकदण्डमापाण्डुरमातपत्रमधारयत् ॥

सालंकायन भी बड़े प्रेम से उसके ऊपर मुक्ता-समूह से खचित अमृत बरसते हुए चन्द्रमण्डल की तरह स्वर्णदण्ड वाले अत्यन्त शुभ्र छत्र धारण किया।

सामन्तचक्रं च चलच्चामीकरचारुचामरकलापव्यापृतकरपल्लवमस्याग्रे विनयमदर्शयत् ॥

सामन्त वर्ग भी हिलते हुए सुवर्ण सदृश सुन्दर चमर-समूह में अपने कर-पल्लव सदृश हाथों को सक्रिय बनाकर उसके आगे विनय प्रदर्शित किया।

मुनयोऽप्युच्चारयांचक्रुश्चतुर्वेदप्रशस्तमन्त्रान्। उत्थाय च गृहीत्वाक्षताञ्शिरसि विकिरन्तोऽस्य पुनरिदमवोचन् ॥

मुनि लोग भी चारों वेदों के प्रशस्त मन्त्रों का उच्चारण किये। उठ कर उसके शिर पर अक्षत छिड़कते हुए बोले—॥

'याः स्कन्दस्य जगाद तारकजये देवः स्वयंभूः स्वयं
स्वःसाम्राज्यमहोत्सवेऽपि च शचीकान्तस्य वाचस्पतिः।
ताभिस्तेऽद्य विरञ्चिवक्त्रसरसीहंसीभिराशास्महे
वैदीभिर्वसुधाविवाहसमये मन्त्रोक्तिभिर्मङ्गलम्,॥ २७ ॥

तारक विजय के अवसर पर ब्रह्मा ने स्कन्द को, स्वर्ग की साम्राज्य प्राप्ति के अवसर पर इन्द्र को, बृहस्पति ने ब्रह्मा के मुख सरोवर में विहार करने वाली हंसी स्वरूप जिन वैदिक मन्त्रोक्तियों से आशीर्वाद दिये, आज पृथ्वी के साथ अपने इस विवाह के अवसर पर उन्हीं उक्तियों से आपकी मंगल कामना हम लोग करते हैं ॥ २७ ॥

अन्यदपि तत्र दिवसे सुभ्रु समाकर्ण्यतां यदद्भुतमभूत् ॥

हे सुभ्रु और भी अद्भुत घटनायें उस दिन घटी उन्हें सुनें—

दिशः प्रसेदुः सुरभिर्ववौ मरुद्दिवो निपेतुः सुरपुष्पवृष्टयः।
कृताभिषेकस्य नलस्य निस्वनाननाहता दुन्दुभयोऽपि चक्रिरे ॥ २८ ॥

नल के अभिषेक होने पर दिशायें प्रसन्न हो गयीं। सुगन्धित हवा बहने लगी। स्वर्ग से देवताओं ने फूलों की वर्षा की। बिना बजाई हुई भी दुन्दुभि ध्वनि करने लगी ॥ २८ ॥

अन्तरिक्षे च कोऽप्यदृश्यमान एवाशीःश्लोकद्वयमपठत् ॥

आकाश में अलक्षित होकर किसी ने दो श्लोक पढ़े—

'अहीनां मालिकां बिभ्रत्तथापीताम्बरं वपुः।
हरो हरिश्च भूपेन्द्र! करोतु तव मङ्गलम् ॥ २९ ॥

अहीति—शिवोऽहीनां सर्पाणां स्रजं तथा तेन प्रकारेण इताम्बरं ताण्डवादिष्वतिविततमूर्त्तित्वाद्व्याप्ताकाशम्। अथ च पराचीनावस्थायां दिगम्बरत्वादिताम्बरं गतवस्त्रम्। यदि वा आ समन्तात्पीतं ग्रस्तमतिविततया छन्नमम्बरमाकाशं येन। तथाविधं वपुर्निस्यं बिभ्रत्। हरिश्च विष्णुर्वनमालीति ख्यातत्वात्। अहीनां पूर्णामेव मालिकाम्। तथा पीताम्बरं हारिद्रवसनं वपुर्बिभ्रत् राजेन्द्र, तव मङ्गलं करोत्वित्यर्थः। केवलं व्याप्तपृथ्वीकम्। इताम्बरमपीत्यपिशब्दार्थः। अष्टमूर्तिर्हि भगवान्। यदाह मल्हणः 'उर्वीसमीरयजमानजलानलार्कसोमाम्बरादिभिः' इति ॥ २९ ॥

हे राजेन्द्र, सर्पों की माला तथा वस्त्रहीन शरीर को धारण करने वाले शिव और अहीन (लम्बी) माला तथा पीतवस्त्र युक्त शरीर धारण करने वाले विष्णु तुम्हारा मंगल करें।

[शिवपक्ष में—तथाऽपि + इताम्बर, यह विच्छेद कर इताम्बर शब्द का गत वस्त्र या वस्त्र हीन अर्थ किया जाता है। इण् गतौ से इत बना है। इसलिये गत का जो अर्थ होगा वही इत का होगा। शिव को पीताम्बर भी कहा जा सकता है, क्योंकि सम्पूर्ण अम्बर (आकाश) को उन्होंने पी लिया है। अर्थात् अपनी व्यापकता से उसे आच्छादित कर लिया है ॥ २९ ॥

अपि च—

लीलया मण्डलीकृत्य भुजंगान्धारयन्हरः।
देयाद्देवो वराहश्च तुभ्यमभ्यधिकां श्रियम् ॥ ३० ॥

लीलयेति ॥ लीलयावज्ञया भुजङ्गान्सर्पान् मण्डलीकृत्य हरः। भुजं मण्डलीकृत्य गां वसुधां धारयन् वराहश्च तुभ्यं समधिकां श्रियं देयात्। अत्र वराह इति नरवराहमूर्तिर्नरसिंहवद्भुजमण्डलीकरणानुरोधाज्ज्ञेयः ॥ ३० ॥

बिना श्रम के सर्पों को गोलाकार बना कर धारण करने वाले शिव तथा अपने हाथ को गोलाकार बनाकर पृथ्वी को धारण करने वाले वराह आपके लिए अधिक लक्ष्मीप्रद हों।

[यहाँ भुजंगान् शब्द श्लिष्ट है। शिव पक्ष में भुजंग शब्द का अर्थ सर्प है। वाराहपक्ष में—(भुजं मण्डलीकृत्य गां धारयन्) हाथ को गोलाकार करते हुए पृथ्वी को धारण किए हुए ॥ ३० ॥

इत्याशास्य विश्रान्तायां वियद्वाचि स्थित्वा च किंचित्कृतोचितापचितिषु गतेषु क्षणादन्तर्धानं मुनिषु 'समुच्छ्रीयन्तां वैजयन्त्यः, बध्यन्तां तोरणानि, सिच्यन्तां चन्दनाम्भोभिः पन्थानः, मण्डयन्तां मसृणमुक्ताफलक्षोदरङ्गावलीभिः प्राङ्गणानि, कुसुमप्रभाञ्जि चत्वराणि'

पूज्यन्तां द्विजन्मानो देवताश्च, दीयन्तां दानानि. गीयन्तां मङ्गलानि, विसृज्यन्तां वैरिवन्द्यः, मुच्यन्तां पक्षिणोऽपि पञ्जरेभ्यः' इति श्रूयमाणेषु परितः परिजनालापेषु लास्योन्मादिनि मृदुमङ्गलोद्गारमुखरे संचरति पुरपथेषु पौरनारीजने स दिवसः संप्राप्तस्वर्गसुखस्येव भुक्ताशेषभुवनस्येवास्वादितामृतरसस्येवानुभूतपरमानन्दस्येव राज्ञः कृतकृत्यतां मन्यमानस्यातिक्रान्तवान् ॥

इस तरह का आशीर्वाद देकर आकाशवाणी के शान्त हो जाने पर कुछ देर तक ठहर कर उचित पूजाओं को कर लेने के बाद एक ही क्षण में मुनियों के अन्तर्धान हो जाने पर, "पताका फहरायी जाय। तोरण बाँधे जायँ। चन्दन जल से मार्ग सींचे जायँ। मुक्ता-मणियों के महीन चूर्ण वाले रंगों से आँगन अलंकृत किये जायँ। ब्राह्मण और देवता पूजे जायँ। दान दिये जायँ।" इस तरह चारों ओर से परिजनों की आवाज आ रही थी। नर्तन में मुग्ध तथा मधुर मंगलमय शब्दों से मुखरित नगरवनितायें पौर मार्ग पर विचरण कर रहीं थीं। वह दिन राजा को स्वर्ण-सुख-प्राप्ति की तरह प्रतीत हो रहा था। अमृत रस के स्वाद की तरह लगता था। परमानन्द की अनुभूति सदृश था। इस तरह राजा अपने को कृतकृत्य समझता हुआ उस दिन को बिताया।

एवमतिक्रामत्सु केषुचिद्दिवसेषु, जरठीभूते महोत्सवव्यतिकरे, गतवति यथायथमामन्त्रितायाते समस्तसामन्तलोके, यौवराज्यरञ्जिते च परितः परिजने जनेश्वरो रिपुपयोधिवडवानलं नलमावभाषे ॥

इस तरह कुछ दिनों के बीत जाने पर, महोत्सव की चहल-पहल के पुराने हो जाने पर, आमन्त्रण पर आये हुए सम्पूर्ण सामन्त-मण्डल के चले जाने पर, यौवराज्य में समस्त प्रजा के अनुरक्त हो जाने पर शत्रु-सागर के वडवानल नल से राजा ने कहा—

'तात-किमपि ब्रूमो यदि न खिद्यसे। संप्रति प्रियं सख्यं श्रेयस्करमस्माकमैणम्, न स्त्रैणम्। आभरणाय योग्या जटाभाराः, न हाराः। साहाय्याय साधवो बुधाः, न बान्धवाः। शयनायोचिता कुशपूलिका, न तूलिका। क्रीडायै वरा वेगवन्तो निर्झरप्रवाहाः न वाहाः। प्रार्थनीयाश्च हरप्रसादा न प्रासादाः ॥

तातेति। स्त्रीणामिदं स्त्रैणम्। 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ' इति नञ् ॥

वत्स, यदि तुम्हें दुःख न लगे तो कुछ कहूँ। इस समय मृग वर्ग से ही मैत्री करना श्रेयस्कर है, स्त्री वर्ग से नहीं। अलंकार के लिए उचित जटाभार ही है, हार नहीं। सहायता के लिए साधु विद्वान् ही उचित हैं, बान्धव नहीं।

शयन के लिए कुश के गुच्छे ही अच्छे हैं, तूलिका (रूई का गद्दा) नहीं। क्रीडा के लिए वेग से बहते हुए झरनों के प्रवाह ही अच्छे हैं, वाह (घोड़े) नहीं। भगवान् शंकर की प्रसन्नता ही प्रार्थनीय है, प्रासाद (महल) नहीं।

तदायुष्मन्नेष दृष्टोऽस्यापृष्टोऽस्याश्लिष्टोऽसि क्षमितोऽसि दुरुक्तमुक्तः इत्यभिधायोत्सङ्गमारोप्य च तत्कालगलद्बहलबाष्पाम्बुप्लाविते वक्षसि निधाय परिष्वज्य च पुनः पुनः पुलककोरकितभुजलताभ्यामन्तर्मन्युभरनिरुध्यमानोत्तरमजस्रमास्रवदश्रुक्लिन्नकपोलमाविर्भवन्मोहमूर्छान्धकारकुञ्चितलोचनमिममाघ्राय मूर्धनि वनाय वनितासहायः प्रतस्थे ॥

तदेति। अन्तर्मध्ये मन्युभरेण दैन्यातिशयेन निरुद्धमानमुत्तरं यस्य ॥

अतः हे चिरञ्जीविन्, तुम्हें देखा, पूछा, आलिंगित किया, क्षमा किया, अभद्र बातें भी कहीं।' यह कह कर उन्हें अपनी गोद में बैठा लिया। तत्काल निकलती हुई अश्रुधारा से भीगे हुए वक्षःस्थल पर रख कर, बार-बार रोमाञ्च के कारण कण्टकित बाहुओं से आलिंगित कर, आन्तरिक क्रोध भार के कारण उत्तर न देते हुए, निरन्तर गिरते हुए आंसुओं से भीगे कपोल वाले, मोह के कारण मूर्च्छा से बन्द आंखों वाले नल के शिर को सूंघकर पत्नी के साथ वन के लिए प्रस्थित हो गये।'

प्रस्थिते च तस्मिन्परिहृतराज्ये राजनि, रजनीवियुज्यमानचलच्चक्रवाकीष्विव कृतकरुणाक्रन्दासु प्रजासु, प्रतिभवनमुच्चलितेषु जरत्पौरजनेषु, 'कल्याणिन् एष पितृप्रणयप्रणामाञ्जलिरस्य क्रमागतकर्मकारिणः श्रुतशीलस्य कृतापराधस्यापि त्वया सहनीयाः कतिपयेऽप्यस्मदनुकम्पयाऽपराधाः। पश्य। पयोराशेर्नोद्वेगाय मृगाङ्कस्य मीलयन्तोऽपि कमलाकरान्कराः। किं न सहन्ते सुमनसोऽपि भ्रमरभरभञ्जनानि' इत्यभिधाय समर्प्य च स्वसुतमुच्चलिते च प्रेम्णानुगतभूभुजि भुजायामनिर्जितसाले सालङ्कायने, बालमत्स्य इव शुष्यत्सरःसलिलसंतापवेपिताङ्गः, करिकलभ इव वियुज्यमानयूथपतिः, पतद्बहलबाष्पबिन्दुसंदोहैर्वक्षसि विधीयमानहारः 'हा तात' इति ब्रुवन्नलो न लोचने तं दिवसं समुदमीलयत् ॥

राज्य को छोड़ कर उस राजा के चले जाने पर रात के समय अपने पति से अलग होती हुई चक्रवाकी की तरह प्रजा ने करुण क्रन्दन किया। घर-घर से नगर के वृद्ध लोग चल पड़े। कल्याणकर! परम्परा से सेवाकार्य करने वाले इस श्रुतिशील का पितृ-स्नेह से प्रणाम है। अपराध करने पर भी हम

पर अनुकम्पाकर कुछ अपराधों को क्षमा करेंगे। देखिए, चन्द्रमा की किरणें कमल-समूह को मुकुलित कर देती हैं, फिर भी समुद्र को क्या तरंगित नहीं करतीं? क्या फूल भ्रमरों के भार और छेदन को नहीं सहते?'' यह कह कर अपने पुत्र को समर्पित कर अपराजेय सालङ्कायन राजा के प्रेम से उनके पीछे चल दिया। सूखते हुए सरोवर जल के सन्ताप से मछली के बच्चे की तरह, यूथपति से बिछुड़ते हुए हाथी के बच्चे की तरह छटपटाता हुआ, गिरते हुए पर्याप्त आँसुओं की पंक्ति से वक्षस्थल पर आंसुओं की लड़ियां बनाता हुआ, हा पिताजी, हा, पिताजी, कहकर विलाप करता हुआ उस दिन आंख नहीं खोला।

केवलममन्दमन्यूद्गारगद्गदया गिरा पुनः पुनरिमं श्लोकमपठत्॥

पर्याप्त क्रोध भार से विह्वल होकर इसी श्लोक को बार बार पढ़ता था।

तत्तातस्य कृतादरस्य रभसादाह्वाननं दूरत-
स्तच्चाङ्के विनिवेश्य बाहुयुगलेनाश्लिष्य संभाषणम्।
ताम्बूलं च तदर्धचर्वितमतिप्रेम्णा मुखेनार्पितं
पाषाणोपम हा कृतघ्न हृदय स्मृत्वा न किं दीर्यसे॥ ३१॥

वत्सल पिताजी का जल्दी जल्दी दूर से बुलाना, गोद में बैठा कर दोनों हाथों से आलिङ्गन कर बोलना, अत्यन्त प्रेम के कारण आधे ही चबाये हुए ताम्बूल को दे देना, आदि व्यवहारों को स्मरण करके भी, हे पत्थर सदृश कृतघ्न हृदय क्यों नहीं फट जाते॥ ३१॥

एतच्चाकर्ण्य दमयन्ती चिन्तितवती—'अहो, स्नेहवानार्द्रहृदयः खल्वसौ महानुभावः। तत्सर्वथास्मत्प्रीतिपात्रं भवितुमर्हति' इत्यवधारयन्ती पुनः पप्रच्छ॥

यह सुन कर दमयन्ती सोचने लगी। ओह, महानुभाव, प्रेमी तथा आर्द्र हृदय के प्रतीत होते हैं। अतः सब तरह से मेरे प्रेम के पात्र बन सकते हैं। यह विचार करती हुई पुनः पूछी॥

'हुं हंस, ततस्ततः'॥

हुं हंसेति। हुमित्यव्ययं प्रश्ने॥

इति विषमपदप्रकाशमेतं दमयन्त्यां तनुते स्म चण्डपालः।
शिशुमतिलतिकाविकासचैत्रं चतुरमतिस्फुटभित्तिचारुचित्रम्॥

इति चण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे चतुर्थ उच्छ्वासः समाप्तः॥

"हाँ तो हँस, इसके आगे क्या हुआ ?

सोऽपि राजहंसः कथामुपसंहर्तुमिच्छन्निमं श्लोकमुच्चारयांचकार ॥

वह राजहंस भी कथा को समाप्त करने की इच्छा से इस श्लोक को पढ़ा—

'सुन्दरादरि, ततश्च—

किमपि परिजनेन स्वेन तैस्तैर्विनोदैः
पितृविरहविषादं सोऽथ विस्मार्यमाणः ।
गमयति परिवर्त्तं वासराणामिदानीं
हरचरणसरोजद्वन्द्वदत्तावधानः ॥ ३२ ॥

इति श्रीत्रिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचरणसरोजाङ्कायां चतुर्थ उच्छ्वासः समाप्तः ॥

सुन्दरि, इसके वाद—

इस समय परिजन लोग कुछ कुछ मनो-विनोद द्वारा पिता के वियोग से उत्पन्न क्लेश को भुलवा रहे हैं। वह (स्वयम्) भगवान् शंकर के चरण कमल में ध्यान लगा कर दिनों को विता रहे हैं ॥ ३३ ॥

चतुर्थ उच्छ्वास समाप्त ।

पञ्चम उच्छ्वासः

अथ विश्रान्तवाचि वाचस्पताविवोच्चारितानघविस्पष्टवर्णौ वर्णित-निषधराजे राजहंसे 'अहं सेवार्थी' इत्यभिधायोपरुध्यमाना कृतोत्त-रासङ्गेन द्विजन्मना श्रुतानुरागेण। 'वत्से, चिरान्मिलितासि' इत्युक्त्वै-वाश्लिष्टा हृदये प्रवृद्धया चिन्तया। 'पुत्रि, कथंकथमपि दृष्टासि' इति संभाष्येवालिङ्गिता सर्वाङ्गेषूत्कम्पजनन्या रोमाञ्चावस्थया। 'तरुणि, त्यज्यतामिदानीं शैशवव्यवहारः, इत्यभिधायेव मुग्धे स्पृष्टा प्रमुखेण मुखे वैवर्ण्येन। 'मुग्धे मुच्यतां स्वच्छन्दभावः' इत्यनुशास्येव ग्राहिता निजाज्ञां गुरुणा मकरध्वजेन दमयन्ती। तथापि क्षणमिव महानुभाव-तामवलम्ब्यानुपलक्षितावस्थमवतस्थे॥

अथेति। अनन्तरं। स्तुतनले हंसे सेवितुकामोऽहमित्युक्त्वैव कृत उत्पादित उत्त-रस्यां दिशि विषये आसङ्ग आसक्तिर्येन। नलाधारत्वादुत्तरस्याः। तथा द्वाभ्यां (तस्मिन्स्मितमखे यूनि यूपदीर्घभुजद्वये १ उ. ५९ श्लोक.) येनोदीच्याध्वगेनोक्तं तस्मादेकस्मात् द्वितीयाद्धंसाज्जन्मोत्पत्तिर्यस्य स तथाभूतः। श्रुतादाकर्णनाद्योऽनु-रागः प्रेमबन्धः। तेनोपरुध्यमाना व्याप्यमाना। कृतवैकक्षकेणाध्ययनानुरागेण विप्रेण दाक्षिण्यं नीयमानेत्यर्थान्तरम्। एवंभूता दमयन्ती प्रकर्षेण वृद्धिं गतया चिन्तया पुत्रि चिरान्मिलिता त्वमित्युक्त्वेव चित्तेऽवष्टब्धा। तथा उत्कम्पं जन-यतीति उत्कम्पजनन्या। प्रमुखेन प्रधानेन। गुरुणा दुर्वहभारेण। अर्थान्तरे तु प्रवृद्धया जरत्या। उद्गतकम्पया जनन्या मात्रा। प्रकृष्टं मुखं यस्य तेन प्रमुखेन। गुरुणा आचार्येण॥

बृहस्पति सदृश स्पष्टतापूर्वक उच्चारण करने वाला वह राजहंस जब निषधराज (नल) का वर्णन कर चुप हो गया, तो उत्तर की ओर से सम्बन्ध रखने वाले तथा केवल श्रवण के आधार पर उत्पन्न होने वाले उस द्विजन्मा अनुराग ने "मैं सेवक हूँ" यह कह कर उसे घेर लिया। "वत्से, बहुत दिनों पर मिली हो", मानो यह कह कर हृदय में बढ़ी हुई चिन्ता ने उसका आलिङ्गन किया। 'पुत्री, किसी किसी प्रकार से दिखाई पड़ी हो।" मानो यह कह कर सम्पूर्ण अङ्गों में कम्पन उत्पन्न करने वाली रोमाञ्च की अवस्था ने आलिङ्गन किया। 'तरुणी, छोड़ो अब लड़कपन का व्यवहार।" मानो यह कर उसके सुन्दर मुख को अत्यधिक उदासी ने छू दिया। 'मुग्धे स्वच्छन्दता छोड़ो।" मानो यह अनुशासन करते हुए आचार्य कामदेव ने दमयन्ती को अपनी आज्ञा

गृहीत करायी। फिर भी वह कुछ क्षण तक अपनी गम्भीर धैर्यशीलता का अवलम्बन कर उस अवस्था को प्रकट न होने दी।

[इस अनुच्छेद में अमूर्त पदार्थों को मूर्त रूप दिया गया है। अनुराग, चिन्ता, अवस्था आदि पदार्थ बोलते हुए दिखाये गये हैं। अनुराग के कृतोत्तरासङ्ग और द्विजन्मा दो विशेषण दिये गये हैं। नल उत्तर का राजा था, उसके प्रति इस अनुराग ने यह आसक्ति लायी है, अथवा यह उत्तर से सम्बन्ध रखने वाला है। अतः इसे कृतोत्तरासङ्ग कहा गया है।

द्विजन्मा—प्रथम उच्छ्वास में ही एक पथिक ने दमयन्ती से नलविषयक चर्चाकर उसके प्रति अनुराग का जन्म दिया था। इस हंस ने भी उसी के आकर्षक वृत्तान्त से उसे अनुराग को पुनः उज्ज्वल बनाया है। अतः दो बार जन्म लेने के कारण इस अनुराग को द्विजन्मा कहा गया है।]

तां च तथा बलात्सरलीभवन्निश्वाससूचितान्तर्मन्मथव्यथावेगाम्, अकाण्डकुण्ठितधैर्यासिधारां, हृत्पुण्डरीके मनोरथानीतनलावलोकनार्थमिवान्तर्मुखीभूतचक्षुर्व्यापाराम्, आकस्मिकस्मरापस्मारेण दाम्यन्तीं दमयन्तीमवलोक्य तदिङ्गिताकारकुशला परिहासव्यसनिनी परिहासशीला नाम सखी 'महानुभाव, नास्माकमद्यापि तद्गुणश्रवणाय श्राम्यति श्रोत्रेन्द्रियम्। न तृप्यति प्रश्नरसायनाय जिह्वा। न सन्तुष्यति विशेषज्ञानाय शेमुषी। नानुरागायोपरमते मनः। तत्कथं कृतवानसि गीतस्येव विस्वरम्, वाद्यस्येव वितालम्, लास्यस्येवान्यथापदप्रचारम्, अत्यन्तरसविच्छेदकारिणं कथाप्रक्रमस्य विरामम्, एतत्परमपि पिपासया पयः पातुमुद्यतस्येवाविरतायां तृषि वारिधारानिवारणम्। इयं सा भुञ्जानस्यार्धतृप्तिः, सोऽयमप्राप्तरतस्य रिरंसाव्याघातः। तन्न युक्तमिवान्तरे विरन्तुम्। निष्कारणोपकारिन्, प्रवर्त्यतां पुण्यराशेस्तस्य स्वरूपाख्यानामृतप्रपामण्डपो, निर्वान्तु च चिरकालमनङ्गग्रीष्मोपतप्ता एवंविधकन्यकाः प्रसारितश्रवणाञ्जलयः' इति दमयन्तीमर्धेक्षणेन कटाक्षयन्ती तं राजहंसमालापयाञ्चकार॥

तां चेति। दमयन्तीं गृह्यमाणां स्मरणपरवशामित्यर्थः। तदिङ्गिताकारेत्यत्रेङ्गितं चेष्टितम्। आकारो मुखरागादिः। वारिधारया विधारणं विच्छेदः। 'निवारणम्' इति वा पाठः। रिरंसायां सत्यां व्याघातोऽन्तरायः। 'रतिव्याघातः' इति पाठे तु स्पष्टमेव॥

बलात्कार बड़ी सरलता से निकलते हुए श्वांसों से आन्तरिक कामव्यथा सूचित हो रही थी। धैर्य कृपाणधारा समय में ही कुण्ठित हो रही थी। मनरूप

रथ पर बैठाकर हृदयकमल में लाये गये नल को देखने के लिये आँखों का व्यापार कुछ अन्तर्मुख सा हो गया था।

[नल विषयक चिन्तन के कारण भावमग्न दमयन्ती की आँखें कुछ निमीलित सी हो गयी थीं।]

अचानक आये हुए इस काम से पकड़ी जा रही दमयन्ती को देख कर उसके संकेत आदि को पहचानने में निपुण, मजाकी स्वभाव की, परिहासशीला नाम की सखी आधे क्षण तक दमयन्ती पर कटाक्ष करती हुई बोली—

"महानुभाव, अभी भी उनके गुणों को सुनने के लिये हम लोगों के कान थके नहीं हैं। प्रश्न रसायन से जिह्वा तृप्त नहीं हो रही है। उनके सम्बन्ध में विशेष ज्ञान प्राप्त करने में मन थक नहीं रहा है। बिना स्वर के ये कौन से गति आप गा गये। बिना ताल के कौन बाजे बजा गये। बिना पैरों को थिरकाये कौन सा नृत्य कर गये, जिसने हम लोगों को मुग्ध कर दिया। इस कथा-प्रसङ्ग की समाप्ति रस को भङ्ग कर रही है। इससे भी अधिक इस प्रसङ्ग में यह कहा जा सकता है कि कथा की समाप्ति उसी तरह की है जैसे प्यास के कारण पानी पीने के लिये तैयार आदमी की प्यास अभी बुझी भी नहीं तब तक पानी की धारा रोक दी जाय। (आपका यह कथा प्रसङ्ग) खाते हुए आदकी की आधी ही तृप्ति है। "संभोग प्राप्त भी नहीं हुआ है तब तक रमण की इच्छा को छिन्न कर देना" इसी को कहते हैं। इस लिये बीच ही में विराम करना अच्छा नहीं है। उस पुण्यराशि (नल) के रूप वर्णन विषयक कथामृत पान कराने वाले मण्डप को विस्तृत कीजिये, जिससे बहुत देर तक काम की उष्णता से तप्त होकर अपनी कर्णाञ्जलि को फैलायी हुई इस तरह की कन्यायें कुछ तृप्ति का अनुभव करें।

सोऽपि 'सुन्दरि, किमन्यत्तस्य समस्तस्त्रीहृदयप्रासादप्रतिष्ठापितप्रतिमस्याद्यापि प्रशस्यते॥

वह भी, "सुन्दरी, और उसकी दूसरी प्रशंसा क्या करूँ, जब कि उसकी मूर्ति समस्त रमणियों के हृदय-प्रसाद कर प्रतिष्ठित हो चुकी है।

यत्र श्रूयमाणे न मधुरो वेणुवीणाक्वणः, दृष्टे नाभिरामः कामः। संभाषिते न सारा सरस्वती, परिचिते न श्लाघ्यममृतम्, अभ्यस्ते नानन्दीन्दुः, प्रसादिते न प्रशंसास्पदं धनदः॥

यत्रेति। श्रूयमाणे नेत्यादौ सप्तम्यन्तात्त्रम्। अभ्यस्ते परिशीलिते॥

जिसके सम्बन्ध में सुनते रहने पर वंशी और वीणा की ध्वनि मधुर नहीं लगतीं, जिसे देखने पर काम भी मधुर नहीं लगता, जिससे बात करने पर

सरस्वती में भी तत्त्व नहीं प्रतीत होता, जिससे परिचय कर लेने पर अमृत भी प्रशंसनीय नहीं रह जाता, जिसके साथ रहने पर चन्द्रमा में भी आनन्द नहीं आता, जिसे प्रसन्न कर लेने पर कुबेर भी प्रशंसा का पात्र नहीं रह जाता।

किं बहुना—

भवति यदि सहस्रं वाक्पटूनां मुखानां
निरुपममवधानं जीवितं चापि दीर्घम्।
कमलमुखि तथापि क्ष्मापतेस्तस्य कर्तुं
सकलगुणविचारः शक्यते वा न वेति ॥ १ ॥

अधिक क्या—

हे कमलवदने, यदि बोलने में प्रवीण लोगों के सहस्र मुख हो जायें, और उन्हें एक लम्बी जिन्दगी मिल, जाय, अनुपम ढंग से वर्णन में वे दत्त-चित्त हो जायं, तो भी उस राजा के गुणों पर विचार कर पायेंगे कि नहीं यह सन्देह की बात है ॥ १ ॥

अपि च—

संसाराम्बुनिधौ तदेतदजनि स्त्रीपुंसरत्नद्वयं
नारीणां भवती नृणां पुनरसौ सौभाग्यसीमा नलः।
सा त्वं तस्य कुरङ्गशावनयने योग्यासि पृथ्वीपते-
रेतत्ते कथितं किमन्यदधुना यामो वयं स्वस्ति ते ॥ २ ॥

संसारेति। स्वस्तियोगे त इति चतुर्थ्यन्तम् ॥ २ ॥

और—

इस संसार सागर में दो ही स्त्री रत्न और पुरुष रत्न उत्पन्न हुए। स्त्रियों में आप और पुरुषों में सौन्दर्य की सीमा पर पहुँचा हुआ नल। मृगशिशु नेत्रे (मृग के बच्चे की तरह आंखों वाली), उस पृथ्वीपाल के साथ विवाह की योग्यता तुम में है, यही कह देता हूँ, और दूसरा क्या कहूँ। आप का मङ्गल हो। अब मैं जाता हूँ ॥ २ ॥

अन्यच्च—

चन्द्रमुखि, महानाम्नि सुसंधिकृति सुसमासाख्याततद्धिते सत्कारके परिभाषाकुशले बलाबलविचारिणि विचार्यमाणे व्याकरणे प्रेष्यमाणे च दूते नापशब्दसम्बन्धो भवति। तत्प्रेष्यतां तथाविधस्तस्यान्तिकं कोऽपि दूतः ॥

चन्द्रेति। चन्द्रमुखीति संबोधनम्। नाम प्रातिपदिकं तद्विषयं प्रकरणमपि नामेत्युपचारे सति महदिति विशेषणस्य सफलत्वम्। नाममात्रस्य महच्छब्देन

व्यवच्छेद्याभावात्। सुष्ठु सन्धिर्वर्णसंश्लेषः कृत्संज्ञकप्रत्ययश्च यत्र। समासस्तत्पुरुषादिः। आख्यातं क्रिया। तद्धितोऽणादिः। कारकमपादानादि। परिभाषा न्यायसूत्राणि। बलाबलं पूर्वापरविधीनां बाधस्थितिः। अपशब्दोऽसाधुशब्दः। दूतपक्षे। नाम संज्ञा। सुष्ठु सन्धिं पणबन्धं करोतीति क्वौ सप्तमी। सुष्ठु समासेन संक्षेपेणाख्यातं कथितं तस्मै हितं येन तस्मिन्। सत्कारके सत्क्रियाजनके। परितो भाषाः संस्कृतप्राकृताद्याः कर्णाटादिदेशभाषा वा तासु दक्षे। बलाबलं शक्त्यशक्ती। अपशब्दोऽपवादः॥

और

दूतपक्ष—

हे चन्द्रवदने, यशस्वी, दोनों पक्षों में सामञ्जस्य स्थापित करा देने वाले, भेजने वाले का हित चाहने वाले, सुन्दर कामना करने वाले, विभिन्न भाषाओं में प्रवीण, शक्ति और अशक्ति पर विचार करने वाले दूत के भेजने पर किसी तरह की आशंका नहीं रह जाती। अतः इसी तरह के किसी दूत को उसके पास भेजो।

व्याकरणपक्ष—प्रातिपदिक, पञ्च सन्धि, समास, आख्यात (तिङन्त), तद्धित, कारक, (असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे आदि) परिभाषाओं के कारण कुशल, (विप्रतिषेधे परं कार्यम् आदि) शास्त्रों के पूर्वापर विचार से पूर्ण व्याकरण शास्त्र के आधार पर विचार करने पर अपशब्द से सम्बन्ध नहीं रह जाता॥

[प्रातिपदिक को महासंज्ञा कहा जाता है।]

'न च बृहत्यासंपदान्विते जगत्याख्याते सत्कृतगुरुगणे शार्दूलविक्रीडिताडम्बरिणि पुण्यश्लोके पर्यालोच्यमाने छन्दसि प्रार्थ्यमाने च तस्मिन्निषधेश्वरे वृत्तभङ्गो भवति' इत्यभिधाय गन्तुमुदचलत्।

ननु यद्यहं दूतं प्रेषयिष्यामि। तदा 'स्वच्छन्दचारिणीयम्' किंवदन्ती भविष्यतीत्याशङ्क्याह—न चेति॥ बृहतीजगतीशब्दौ छन्दोजातिवचनौ तृतीयान्तौ ख्यातपदेन प्रसिद्धार्थेन योज्यौ। तथा सङ्गतैः पदैरन्विते। अथवा छन्दसि कथम्भूते। पदान्विते कथं यथा भवति बृहत्यासं बृहत्यां जातौ आसोऽवस्थानं यस्येति पदान्वयक्रियाविशेषणम्। यदि वा बृहत्या जात्या हेतुभूतया याऽसौ सम्पच्छोभा तयान्विते। पक्षे बृहत्या गुर्व्या सम्पदा श्रियान्विते। जगति लोके आख्याते कीर्तिते। गुरवो विपरीतलकारादयः। आचार्याश्च। शार्दूलविक्रीडितं छन्दोनाम, सिंहविलसितं च। श्लोकः पद्यं यशश्च। वृत्तं पद्यं शीलं च। इह यद्यपि श्लोकोऽनुष्टुप्छन्दो लोके प्रसिद्धम्। तथापि केचित्सर्वमपि पद्यं श्लोकमाहुः॥

नलपक्ष—

बड़ी सम्पत्ति से युक्त, संसार में प्रसिद्ध, बड़ों का सत्कार करने वाले,

पवित्र यश वाले निषध देश के राजा से प्रार्थना करने में किसी तरह का शील-भङ्ग नहीं है।

वेदपक्ष—बृहती तथा जगती छन्द के कारण जो वैदिक सम्पत्ति है उससे अन्वित (युक्त) तथा उसी के कारण प्रसिद्ध, गुरुवर्णों को विशेष स्थान देने वाले, शार्दूलविक्रीडित छन्द की तरह समृद्ध, पवित्र श्लोकों वाले वेद के पर्य्यालोचन में छन्दोभङ्ग दोष नहीं होता। यह कह कर जाने के लिये तैयार हो गया।

[इस अनुच्छेद में प्रयुक्त बृहती और जगती शब्द में हेतौतृतीया कर सम्पदा के साथ उसका अन्वय करना चाहिये। आवृत्ति कर "अन्विते" और "ख्याते" का सम्पदा के साथ अन्वय होगा। अर्थात् बृहती और जगती छन्द के कारण जो वैदिक सम्पत्ति है उससे युक्त और उसके कारण प्रसिद्ध।

शार्दूलविक्रीडिताम्बरिणि—यद्यपि शार्दूलविक्रीडित छन्द लौकिक छन्द है, उससे वेद को समृद्ध बताना उचित नहीं है, फिर भी यह कहना चाहिये कि शार्दूलविक्रीडित छन्द जिस आडम्बर या गरिमा के साथ पढ़ा जाता है उस तरह के महत्त्वपूर्ण छन्दों से युक्त।

पुण्यश्लोके—श्लोक शब्द छन्दःशास्त्र में अनुष्टुप के ही लिये प्रसिद्ध है फिर भी सामान्यतः पद्यात्मक रचनामात्र के लिये इसका व्यवहार होता है।

वृत्तभङ्ग—यह शब्द छन्दोभङ्ग और शीलभङ्ग दोनों अर्थों को व्यक्त करता है। वृत्त के अर्थ छन्द और व्यवहार दोनों हैं।

वेद के पर्यालोचन और निषधेश्वर की प्रार्थना में केवल शाब्दी समानता है। कोई आर्थी समानता नहीं है।

उच्चलितं च तं परिहासशीला पुनर्बभाषे ॥

'महानुभाव, यथेयमनुरागकन्दलैरालापैस्त्वयोक्ता, तथा सोऽपि स्पृहणीयोक्तिभिरभिधातव्यः। यतो न ह्येकहस्ततलेन तालिका वाद्यते, न चैकं तप्तमतप्तेनापरेण लोहं लोहेन संधीयते, नाप्येकं रक्तमरक्तेनान्येन वस्त्रमपि वाससा संयोजितं शोभां लभते। केवलं विद्युगलमेघ भवति' इति ॥

जाने के लिये उद्यत उस हंस से परिहासशीला पुनः बोली—

"महानुभाव, प्रेम को अङ्कुरित करने वाली जैसी बातें आपने इनसे कहीं वैसी उनसे भी उत्सुकता उत्पन्न करने योग्य बातें कहेंगे, क्योंकि एक हाथ से ताली नहीं बजती· एक ठंढा लोहा गरम लोहे से जोड़ा नहीं जाता।

एक रक्त वस्त्र यदि अरक्त (दूसरे रङ्ग वाले या विना रङ्गे हुए) वस्त्र के साथ जोड़ दिया जाय तो शोभा नहीं पाता। केवल विषमता ही होती है।

[इस अनुच्छेद में लोहे की उष्णता तथा आदि शब्द इस बात की व्यञ्जना करते हैं कि दमयन्ती में ही कामजन्य उष्णता तथा अनुराग का संचार नहीं होना चाहिये। हंस को चाहिये कि नल में भी कामविषयक अनुराग की वही मात्रा उत्पन्न कर दे।)

एवंवादिनीं दमयन्ती परिहासशीलामलपत्—

'सखि, किमस्य निष्कारणवत्सलस्यैवमभ्यर्थ्यते ॥

यस्यास्मासु निरपेक्षः पक्षपातः, स्वभावजं सौजन्यम् , अकृत्रिमः स्नेहभावः, अनुपचरितमुपकारित्वम् , अपरिचया प्रीतिः, अनभ्यासं सौहार्दम् , अदृष्टपूर्वा मैत्री ॥

यस्येति ॥ पक्षो मित्राद्यवष्टम्भः पक्षती च। अभ्यासः सामीप्यम् ॥

इस तरह बोलती हुई परिहासशीला से दमयन्ती ने कहा—

"सखि, इस अकारण कृपा करने वाले से इस तरह क्या निवेदन कर रही हो ?"

जिनका हम लोगों की ओर अकारण झुकाव है, जिनकी स्वाभाविक सुजनता है, अकृत्रिम प्रेम है, आडम्बरहीन उपकार भावना है, अपरिचयावस्था में भी प्रेम है, विना समीपवर्ती बने ही सौहार्द मिला है। इस तरह का स्नेह इसके पहले नहीं देखा गया था।

तदेवंविधो निर्निमित्तवन्धुः किमभ्यर्थ्यते। केन याच्यन्ते चन्द्रचन्दनसज्जनाः परोपकाराय। किन्तु कतिपयमुहूर्त्तमैत्रीरञ्जितास्मन्मनसो दुस्त्यजस्याकाण्ड एवास्य गन्तुमुत्सहमानस्य किं ब्रूमः। मा गा इत्यशकुनम् , गच्छेति निष्ठुरता, यदिष्टं तद्विधीयतामित्यौदासीन्यम् , आदर्शनात्प्रियोऽसीति क्रियाशून्यालापः, कस्त्वमेवंविधो दिव्यवाकपक्षिरत्नमित्यप्रस्तुतप्रश्नः, केनार्थीत्यप्रक्रान्तम् , किं ते प्रियमाचरामीत्युपचारवचनम् , कृतोपकारोऽसीति प्रत्यक्षस्तुतिः ॥

इस तरह के अकारण बन्धु से क्या निवेदन करना है। परोपकार के लिये चन्द्रमा तथा चन्दन की शीतलता कौन मांगता है। (बिना मांगे ही मिलती है।) कुछ ही क्षणों की मित्रता से हम लोगों के मानस को अनुरक्त कर दिया है। अतः इसे छोड़ना बड़ा दुःखद है। असमय में ही जाने के लिये साहस किये हुए इससे क्या कहें। "न जाओ" यह कहना अशुभ है। "जाओ" यह कहना निष्ठुरता ही है। "जो अच्छा लगे वह कीजिये" यह कहना उदासीनता

है। "जब से दिखायी पड़े हो तब से मधुर लग रहे हो" यह व्यापारहीन चर्चा है। इस तरह की दिव्य वाणी वाले पक्षियों में रत्न आप कौन हैं?' यह अप्रासङ्गिक प्रश्न है। "किस प्रयोजन से आये हैं ?" यह पूछने का कोई प्रकरण नहीं। "आप का क्या प्रिय करूँ?" यह एक साधारण बात है। "आप ने बड़ा उपकार किया" यह प्रत्यक्ष स्तुति है॥

तन्न जानीमः कल्याणबन्धो, किमुच्यसे। वरमदर्शनमेव भवादृशाम्, न तु लूयमानाङ्गावयवदुःसहो दर्शनव्याघातः। वरमनास्वादितमेवामृतम्, न तु सकृत्पीत्वा पुनरलाभदुःखम्॥

अतः हे कल्याणप्रद मित्र, मालूम नहीं होता कि आप से क्या कहूँ। आप जैसे लोग न दिखायी पड़ें यही अच्छा है, क्योंकि अङ्गों के काटे जाने की अपेक्षा भी अधिक दुःखद यह दर्शन का विच्छेद अच्छा नहीं॥

अतः प्रार्थ्यसे भूयो दर्शनार्थम्, इयं भविष्यति भवत्प्रियस्य कस्याप्युपायनमात्रमस्मदनुस्मरणनाटकसूत्रधारी हारलता' इत्यभिधाय नलमुररीकृत्य 'महानुभाव, द्वाभ्यां श्रुतोऽसि पान्थादस्माद्राजहंसाच्च, द्वाभ्यामुह्यसे वाचा हृदयेन च, द्विकालं स्मर्यसे दिवा नक्तं च. द्वयी गतिरस्माकमिदानीं त्वं वा मृत्युर्वा' इति द्विसंख्यसंदेशार्थमिव द्विगुणीकृत्योन्मुच्य च स्वकण्ठकन्दलादुत्कण्ठितामिव स्वां मूर्त्तिमतीं तस्य मुक्तावलीं गले व्यलम्बयत्॥

"अतः पुनः दर्शन दीजियेगा, यही प्रार्थना है। यह हार लता आप के प्रिय (नल) के लिये उपहार तथा हमारी स्मृतिरूप नाटक के लिये सूत्रधार होगी।" यह कहकर नल को हृदय से स्वीकार कर महानुभाव, दो से सुने गये हो, प्रथम बार उस पथिक से तथा दूसरी बार इस राजहंस से। दो पदार्थों से धारण किये जा रहे हो, वाणी से और हृदय से। दो समय में स्मरण किये जा रहे हो, रात और दिन। इस समय हमारी दो ही गति हैं, तुम या मृत्यु। मानो दो सन्देश के लिये अपने कण्ठ कन्दल (अङ्कुर) से निकाल कर और उसे दुगुना कर उत्कण्ठावस्था की अपनी प्रतिमूर्ति उस मुक्तावली को उसके गले में लटका दी।

सोऽपि "सुन्दरि, सोऽयं स्कन्धीकृतो मया मुक्तावलीच्छलेन तस्य पुरो भवद्वर्णनाभारः" इत्यभिधाय सह तेन विहंगमगणेनोत्पपात॥

सोऽपीति॥ स्कन्धीकृतोऽङ्गीकृतः॥

" सुन्दरी, मुक्तावली के बहाने उस (नल) के सामने आपके वर्णन का भार ही मैंने अङ्गीकार किया है।" यह कहकर वह हंस भी पक्षियों के साथ उड़ गया ॥

उत्पतिते च नभस्तलम् 'आगच्छत, संपद्यन्तां सफललोचनाः, पश्यतापूर्वं श्रीरत्नम्' इति चलत्पक्षपल्लवव्याजेन दूराद्दिक्पालानि-वाह्वयति तीव्रब्रध्नमयूखसंतप्तां दिवमिवोपवीजयति, दिक्कुञ्जरनिरुद्धा-वकाशा अशा इवाश्वासयति, पक्षिमण्डले तस्मिन्विस्मयोन्मुखी सा भूपालपुत्री निर्निमेषं निक्षिप्य चक्षुश्चिरमूर्ध्वैवावतस्थे ॥

उत्पतित इति ॥ दिक्पालानाह्वयतीत्यनेन भाविदिक्पालागमनं सूच्यते ॥

उन पक्षियों के समूह के उड़ जाने पर आश्चर्य से मुख ऊपर उठा कर वह राजकुमारी निर्निमेष दृष्टि को उन्हीं पर लगा कर चिर काल तक उन्हीं की ओर देखती रही। (उड़ते हुए पक्षियों का समूह) अपने पल्लव सदृश पंखों के बहाने मानो यह कहता हुआ दिक्पालों को बुला रहा था, "आओ देखो इस कन्यारत्न को और अपनी आँखों को तृप्त करो" या सूर्य की प्रखर किरणों से सन्तप्त आकाश को पंखा झेल रहा था, या दिग्गजों से घिरी हुई दिशाओं को आश्वासन दे रहा था।

चिन्तितवती च—

'तात तावन्ममाप्येवं न विधत्से प्रजापते।
पक्षौ पक्षिवदुड्डीय येन पश्यामि तन्मुखम् ॥ ३ ॥

वह सोचती थी—

पिता ब्रह्माजी, मुझमें भी पंख क्यों नहीं बना देते कि उन पंखों से उड़ कर उस (नल) का मुख देख सकूँ ॥ ३ ॥

अपि च—

उड्डीय वाञ्छितं यान्तो वरमेते विहङ्गमाः।
न पुनः पक्षहीनत्वात्पङ्गुप्रायं कुमानुषम् ॥ ४ ॥

उड्डीयेति ॥ यद्यपि मनोरथ्यं स्त्री मानुषी पुमान्मानुष इति 'स्त्रीपुंसयोरप-स्यान्ता द्विचतुःषट्पदोरगाः' इति लिङ्गिवचनान्मानुषशब्दस्य स्त्रीपुंसस्य वृत्तिता, तथापि नपुंसकत्वमपि। लिङ्गस्य लोकाश्रयत्वात्। तथा च भवभूतिः—अद्वैतं सुख-दुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यद्विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः। कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारस्थितं भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं ही तद्दुर्लभम्' ॥ ४ ॥

उड़ कर अपने आकाङ्क्षित स्थान पर चले जा रहे ये पक्षी अच्छे किन्तु पंखहीन होने के कारण लंगड़े की तरह यह कुत्सित मानव जीवन अच्छा नहीं ॥ ४ ॥

इति चिन्तयन्ती गतेष्वपि तेषून्मुखी तां दिशमनुविस्मयविस्फार-लोचना निस्पन्दतया काष्ठकल्पामवस्थां दधानां चिरात्सखीभिः सम्बोध्य स्वगृहमनीयत ॥

यह सोचती हुई, उन पक्षियों के चले जाने पर भी उसी दिशा की ओर आश्चर्य के मारे आँखों को फैला कर, निश्चल होकर काठ की दशा को धारण करती हुई, देर तक सखियों द्वारा बुलायी जाने पर अपने घर गयी ॥

ततः प्रभृति च तस्याः सरलीभवन्ति निश्वासा न हासाः, स्खल-न्ति वाचो न शुचः, वर्धते तन्द्रा न निद्रा, द्रवति स्वेदाम्भो न स्तम्भः, मन्दायते स्वरो न स्मरः, वाञ्छा चन्दनाय न स्पन्दनाय, सन्तापशान्तये तद्गुणादानं न स्नानम् , प्रीयते हारो नाहारः, सुखा-याङ्गे लगन्नुद्यानप्रभञ्जनो न जनः ॥

तत इति ॥ प्रभञ्जनो वात एवाङ्गे लगन्सुखाय न परिजनः ॥

उस दिन के बाद निश्वास ही उसके लिये सरल थे. हास नहीं । वाणी ही कम हुई, चिन्ता नहीं । तन्द्रा (जंभाई) ही बढ़ी निद्रा नहीं । पसीने ही निकले, शरीर की अकड़क नहीं गई । स्वर ही मन्द पड़ा, काम मन्द नहीं हुआ । चन्दन की इच्छा हुई, स्पन्दन (घूमने) की नहीं । वेदना की शान्ति के लिये उस नल के गुणों का ग्रहण (श्रवण) ही उपयुक्त था, स्नान नहीं । (शीतलता के लिये कमल शैवाल आदि के) हार ही प्रिय लगते थे, आहार (भोजन) नहीं । अङ्गों को छूता हुआ उपवन का पवन ही अच्छा लगता था, आदमी नहीं ॥

पठति च मुहुर्मुहुरिमं श्लोकम्—

विश्राम्यन्ति न कुत्रचिन्न च पुनर्मुह्यन्ति मार्गेष्वपि
प्रोत्तुङ्गे विलगन्ति नान्तरतरुश्रेणीशिखापञ्जरे ।
खिद्यन्ते न मनोरथाः कथममी तं देशमुत्कण्ठया
धावन्तः पथि न स्खलन्ति विषमेऽप्यास्ते स यस्मिन्प्रियः ॥५॥

विश्राम्यन्तीति ॥ मनसि रथा इव मनोरथाः सङ्कल्पाः । विश्रामादयो रथधर्माः ॥ ५ ॥

बार बार इसी श्लोक को पढ़ती थी— ये मेरे मनोरथ उत्सकतापूर्वक उस देश की ओर दौड़ रहे हैं । कहीं विश्राम नहीं लेते । मार्ग में कहीं (थक

कर) मूर्च्छित नहीं होते। कहीं भी ऊँचे शिखरों से टकराते नहीं। बीच की वृक्ष पङ्क्तियों की ऊँची शाखा रूप चंगुल में फँसकर खिन्न नहीं होते। उस टेढ़े मेढ़े रास्ते में जहाँ वह प्रिय रहता है, कभी विचलित नहीं होते ॥ ५ ॥

तेऽपि राजहंसाः शशाङ्कधरेषु, सप्रपञ्चपञ्चाननेषु, शिवरूपेषु, वनेषु, सुशोभां कौमुदीं दधत्सु, शश्वदनुकृतसामुद्रवृद्धिषु, चन्द्रमण्डलरूपेष्विव सरःसलिलेषु विहरन्तस्तुहिनाद्रिकुञ्जानिव सत्त्रिपथगान्नगनगरग्रामाग्रहारपत्तनप्रदेशानुल्लङ्घयन्तः कतिपयदिवसैरासेदुरुद्यानं निषधायाः ॥

तेऽपीति ॥ हंसा वनेषु सरोजलेषु च विहरन्तो नगादिप्रदेशान् व्यतिक्रामन्तो निषधोद्यानमापुः। कीदृक्षु वनेषु। शशा अङ्के यस्यास्तथाभूता धरा भूमिर्येषु। तथा सच्छद्मानः पञ्चाननाः सिंहा येषु। शिवस्तु शशाङ्कं चन्द्रं धरति। तथा सह प्रपञ्चैः पृथङ्गार्गागमोपदेशलक्षणैर्वर्त्तन्ते तथाभूतानि पञ्चसंख्यानि आननानि वक्त्राणि यस्य। सरोजलेषु कीदृक्षु। कुमुदानामियं कौमुदी शोभा ताम्। चन्द्रमण्डले तु कौमुदी चन्द्रिका ताम्। तद्विशेषणं सुशोभामिति। अनुकरणमनुहरणम्। चन्द्रपक्षे अनु पश्चात्कृता सामुद्री वृद्धिर्येन। चन्द्रोद्गमो हि जलधिविवृद्धये। न विद्यन्ते नावो यत्र तदनु, अनु यथा भवति एवं कृतवृद्धिषु। पूरोत्पीडे हि न केऽपि नावं क्षिपन्तीति। नगनगर-देशान्। कीदृशः। सत्त्राणि ब्राह्मणादीनां भोजनानि यज्ञा वा विद्यन्ते येषु। ते च ते पन्थानश्च सत्त्रिपथास्तान्गच्छन्ति प्राप्नुवन्तीति सत्त्रिपथगास्तान्। हिमाद्रिनिकुञ्जांस्तु सह त्रिपथगया गङ्गया (तस्य द्वित्वम्) ॥

वे राजहंस भी, अपने अंक (गोद) में खरगोशों को धारण की हुई पृथ्वी वाले, कपटपूर्ण सिंहों वाले, शिव के रूप सदृश वनों में, कुमुदों की शोभा धारण करने वाले, निरन्तर समुद्रवृद्धि का अनुकरण करने वाले, चन्द्रमण्डल रूप सरोवर जलों में विहार करते हुए यज्ञों से अलङ्कृत मार्गवाले पर्वतों, नगरों, गाँवों, दानभूमियों और नगरक्षेत्रों को लाँघते हुए कुछ ही दिनों में निषध नगरी के उपवन में पहुँच गये ॥

[इस अनुच्छेद के प्रायः प्रत्येक शब्द श्लिष्ट हैं। वनपक्ष—शशाङ्कधर—शश (खरगोश) अपने अङ्क (गोद) मे जहां की धरा (पृथ्वी) धारण करती है, ऐसे वन को शशाङ्कधर कहा गया है।

सप्रपञ्चपञ्चाननेषु—प्रपञ्च के साथ (शिकार को पकड़ने के लिये) चुपके से कपटपूर्ण भाव में जहां के सिंह बैठे हुए हैं।

इस व्याख्या के अनुसार शशाङ्कधर और सप्रपञ्चपञ्चानन, दोनों ही वन के विशेषण हैं। ये विशेषण शिव पक्ष में भी लगेंगे।

शिवपक्ष—शशाङ्कधरेषु—शशाङ्क (चन्द्रमा) को धारण करने वाले, सप्रपञ्चपञ्चाननेषु—साङ्गोपाङ्ग वेदों से युक्त पांच मुखों वाले।

सुशोभा ·····विहरन्तः—सरोवर पक्ष में—कौमुदी शोभा—कुमुदों से होने वाली शोभा को कौमुदी शोभा कहा गया है। शश्वदनुवृत समुद्रवृद्धिषु—सरोवरों में इतना जल है कि बढ़े हुए पूर्णिमा के समुद्र का सदा अनुकरण करते हैं। समुद्र तो केवल पूर्ण चन्द्र को देखकर बढ़ता है किन्तु ये सरोवर तो सदा बढ़े रहते हैं।

चन्द्रमण्डलपक्ष—कौमुदी (चन्द्रिका) की शोभा धारण किया हुआ रहता है। शश्वदनुकृतवृद्धिषु—अपनी पूर्णता के बाद सदा समुद्र की वृद्धि करता है।

तुहिनाद्रि·········लङ्घयन्त :—नगर ग्राम आदि हिमालय के कुञ्जों की तरह हैं।

तुहिनाद्रि कुञ्ज पक्ष—हिमालय पर्वत के कुञ्ज सुन्दर त्रिपथगा (गंगा) के साथ हैं (अतः उन्हें सत्त्रिपथग कहा जाता है। द्वितीया के बहुवचन में सत्त्रिपथगान् रूप है।

नगर-ग्राम आदिपक्ष—सत्र (यज्ञ, दान आदि) कार्य जिन मार्गों में चल रहे हैं वे मार्ग सत्त्रिपथ हुए। उन मार्गों के साथ जिन नगरों और गांवों का सम्बन्ध है वे सत्त्रिपथग हुए। अर्थात् वे पवित्र आत्मा वाले हंस शोभा सम्पन्न धार्मिक मार्गों से गये जिनमें यज्ञ, दान आदि के कार्य चल रहे थे। ऐसे मार्ग से जाने का फल यह भी था कि कोई व्याध आदि हिंसक तत्त्व उनकी यात्रा के बाधक नहीं हुए। दूसरा लाभ यह भी था कि धार्मिक लोगों द्वारा बिखेरे गये भोज्य पदार्थों से भोजन का काम भी सम्पन्न हो गया।

अग्रहार—अग्र (ब्राह्मण भोजन) के लिये राजकीय सम्पत्ति से अलग किये गये क्षेत्र को अग्रहार कहते हैं। "अग्रं ब्राह्मण भोजनं, तदर्थं ह्रियते राजधनात् पृथक् क्रियते क्षेत्रादिरिति अग्रहारः ॥ नीलकण्ठः ॥

क्षेत्रोत्पन्नशस्यादुद्धृत्य ब्राह्मणोद्देश्येन स्थाप्यं धान्यादिः, गुरुकुलावृत्त ब्रह्मचारिणे देयः क्षेत्रादिः, ग्रासभेदश्च। वाचस्पत्यम्, तारानाथः।

खेत में उत्पन्न अन्न से निकाल कर ब्राह्मण के लिये जो अन्न रक्खा जाय उसे या गुरुकुल से लौटे हुए ब्रह्मचारी को दी जाने वाली भूमि को अग्रहार कहते हैं। ग्राम विशेष का भेद भी अग्रहार है ॥

क्रीडितुमारभन्त च स्वच्छन्दम् ॥

स्वच्छन्द खेलना भी प्रारम्भ कर दिये।

अथ तेषामन्यतमामवलोक्य क्रीडातडागपङ्कजपञ्जरे राजहंसी-मागत्य त्वरया हंसदर्शनोत्सुकं सरोरक्षिका राजानं व्यजिज्ञपत्—

क्रीडासरोवर के कमलों के बीच उनमें से एक राजहंसी को देखकर सरोवरपालिका ने बड़ी शीघ्रता से हंस को देखने के लिये उत्सुक राजा को सूचित किया—

'देव, हंसवार्त्तामनुदिनं पृच्छति देवस्तदद्य काचित् ॥
कुरुते नालकवलनं दूरं विक्षिपति गर्भजम्बालम् ।
त्वदरिवधूरिव राजन्नुद्यानसरोगता हंसी ॥ ६ ॥

कुरुत इति ॥ राजन् नृप, उद्यानतडागगता हंसी नालस्य विसकाण्डस्य कवलनं ग्रासं कुरुते । तथा गर्भे मध्ये यो जम्बालः कर्दमस्तं च दूरं परिक्षिपति । वधूस्तु उद्यानेन पलायनेन सरोगता रोगवत्ता यस्याः । यथा अलकस्य वलनं न कुरुते । गर्भजातं बालं दूरे क्षिपति । भीत्या हि गर्भः पतति ॥ ६ ॥

"श्रीमन् , हंस की बात प्रति दिन पूछते रहते हैं तो आज आपके उपवनसरोवर में कोई एक हंसी कमल तन्तुओं को खा रही है और बीच के पङ्क को बाहर फेंक रही है । (इस तरह का कार्य करती हुई) वह आप के शत्रुओं की पत्नियों की तरह लग रही है ॥ ६ ॥

[यह पद्य श्लेष के माध्यम में अरिवधू और हंसी दोनों पक्षों में लगेगा । हंसी पक्ष :—

उद्यानसरोगता (उद्यान सरोवर में आयी हुई) हंसी नालकवलन (विस-तन्तुओं का भोजन) करती है और गर्भ (बीच) के जम्बाल (कीचड़) को दूर फेंकती है ।

अरिवधूपक्ष :—शत्रुपत्नी भी उद् + यान (डर के मारे जोर से भागने) के कारण सरोगता (रोग की अवस्था) प्राप्त कर गर्भज (गर्भस्थ) बाल (सन्तान) को फेंक देती है । और अलक (केशों) का वलन (बन्धन) नहीं करती । जोर से भागने के कारण गर्भस्राव हो जाता है । विधवा होने के कारण वेणीबन्धन नहीं करती ॥ ६ ॥]

अपि च—

अभिलषति नालमशनं स्वपिति नवाम्भोजपत्रशयनेऽपि ।
नीरागमना नृपते तव रिपुवनितायते हंसी ॥ ७ ॥

अभिलपतीति ॥ नालं कमलकाण्डमशनमाहारं वाञ्छति । स्वपित्यपि नूतना-ब्जपत्रशय्यायाम् । नीरे आगमनं यस्याः । रिपुवनिता तु नीरागं वैराग्योपेतं मनो यस्याः । अत एवालमत्यर्थमशनं नाभिलषति । नापि कमलदलतल्पे शेते । वा अथवार्थे ॥ ७ ॥

राजन्, पानी में आयी हुई वह हंसी बिसतन्तु भोजन की अभिलाषा करती है। नवीन कमलपत्रों की शय्या पर सोती भी है। तुम्हारे शत्रुओं की पत्नियों की तरह आचरण कर रही है ॥ ७ ॥

[हंसीपक्ष—नीरागमना (सरोवर जल में आकर) नाल (बिस तन्तु रूप) अशन (भोजन) चाहती है। नव + अम्भोजपत्र + शयन (नवीन कमल पत्र की शय्या) पर सोती है।

रिपुवनितापक्ष—नीराग + मना (वैराग्यपूर्ण चित्तवृत्ति वाली) रिपुपत्नी न + अलम् + अशनम् (पूर्ण भोजन नहीं) करती है! न+वा+अम्भोज पत्र+शयन (न तो कमलपत्र की शय्या) पर सोती है।

अर्थात् शोक सन्तप्त रिपुपत्नी का चित्त राग सम्पन्न न रहकर नीराग सम्पन्न हो गया है। उदासी के मारे उसे भोजन भी अच्छा नहीं लगता। अब वह कमलपत्रशय्या जैसे कोमल आसन पर सोती भी नहीं। नीरागमना, नालम् अशनम् और नवाम्भोजशयन ये साधारण शब्द हैं क्यों कि इनका अन्वय हंसी और रिपुपत्नी दोनों पक्षों में हुआ है ॥)

राजापि तस्याः श्लिष्टार्थमिदमार्यायुगलमवधारयन्स्तोकस्मित-सुधाधवलिताधरपल्लवः 'लवङ्गिके, यथा कथयसि तथा तेऽभ्यागता हंसाः कथमन्यथा तस्याः खल्वेकाकिन्याः संभवः' इति तद्वार्त्तया यावदास्ते ॥

तावन्नीलोत्पलदलदीर्घलोचना चन्द्रमुखी बन्धूककुसुमकान्तदन्त-च्छदा नीलांशुकपटीं परिदधाना पक्कलमञ्जरीगौराङ्गी प्रकाशहासा हंसैरनुगम्यमाना। मूर्त्तिमती शरदिव वनपालिका प्रविश्य।

तावदिति॥ यावत्तद्वार्त्तयास्ते नृपस्तावत्। शरदुपमा वनपालिका प्रविश्य देवेत्यभिधाय तं राजहंसं राज्ञः पादयोर्निधाय प्रणामं चकार। नीलोत्पलदलादीनि लोचनादीनामुपमानानि। दन्तच्छद ओष्ठः। नीलमंशुकं वासस्तस्य पटी उत्तरी-यम्। परिपाके हि शालिर्गौरः स्यादतस्तन्मञ्जरीवद्गौरमङ्गं यस्याः। प्रवृद्धाः काशाः काशपुष्पाण्येव हासो यस्याः॥

राजा भी श्लिष्ट अर्थों से सम्पन्न उसकी दोनों आर्याओं पर विचार करता हुआ' "लवङ्गिके, जैसे बता रही हो उससे यह प्रतीत होता है कि वे हंस भी आ ही गये हैं। अन्यथा अकेली उसकी सम्भावना कैसे की जा सकती है।" इसी तरह उसके साथ बात कर ही रहा था तब तक शरत् काल की प्रति-मूर्ति जैसी एक वनपालिका आयी। उसके बड़े-बड़े नयन नीले कमल सदृश थे। मुख चन्द्रमा की तरह था, ओष्ठ बन्धूक पुष्प सदृश मनोहर थे। नीला

वस्त्र पहनी हुई थी। उसके अङ्ग पके हुए धान की बाल सदृश गोरे थे। हास्य शुभ्र प्रकाशपूर्ण था। हंसों से अनुगत थी।

[वनपालिका का उपमान यहाँ शरत्काल है। शरत् भी उल्लसित कमलों से सुशोभित रहता है, चन्द्रमा का प्रकाश उन दिनों में अत्यधिक प्राञ्जल बन जाता है। बन्धूक फूल भी खूब खिलते हैं। चने, गेहूँ आदि की हरियाली भी बढ़ जाती है। धानों की बालें पक कर पीली हो जाती हैं। हंस भी मानसरोवर से लौट आते हैं! काश पुष्प खिल आता है। वनपालिका के विभिन्न अङ्गों में शरद्वधू की ये सारी समानतायें पायी जाती हैं। इसीलिए उसे शरत् की प्रतिमूर्ति कहा गया है।]

'देव, सोऽयं कथमप्यागतो रणरणककारणमपराधी विहंगः' इत्यभिधाय तं राजहंसमुभयकरकमलाञ्जलिगतमुत्फुल्लपाण्डुपङ्कजार्धमिव पुरः पादारविन्दयोर्निधाय राज्ञः प्रणाममकरोत् ॥

"देव, उत्कण्ठा उत्पन्न करने वाला अपराधी यह वही हंस है।" यह कह कर अपने (लाल) कमल सदृश हाथों की अञ्जलि में सफेद कमल के खिले हुए आधे अंश की तरह उस हंस को लेकर राजा के चरण-कमल के सम्मुख रख कर प्रणाम की।

[वनपालिका की अरुण अञ्जलि में वह शुभ्र राजहंस लाल कमलों के गुच्छे में खिले हुए सफेद कमल के आधे अंश की तरह लग रहा था।]

राजापि 'सारसिके, साधु कृतम्। तत्क्रियतामशून्यः स्वाधिकारः। गम्यतामिदानीं 'यथास्थानम्' इत्यभिधाय तुष्टिप्रदानपरितोषितां तां लवङ्गिकासहितां विसृज्य, विरलीकृतपरिजनः प्रत्युज्जीवनौषधमिव प्राणरक्षाक्षरमिव स्वस्थीकरणमणिमिवाश्वासनाभेषजमिवाह्लादनकन्दमिव तमग्रेस्थितमानन्दनिःस्पन्दपक्ष्मपालिना चिरं चक्षुषाऽवलोक्य बहुमानयन्मुग्धस्मितेन स्वागतमपृच्छत् ॥

सोऽपि 'देव' दर्शनामृतमनुभवतो ममाद्य स्वागतम्' इत्यभिधायोपश्लोकयांचकार ॥

राजा भी, "सारसिके, अच्छा किया तुमने। अब जाओ अपनी जगह पर और चरितार्थ करो अपने अधिकार को।" यह कह कर सन्तोष लायक दान देकर लवङ्गिका सहित उसे विदा कर, नौकरों को भी वहाँ से कम पर संजीवनी ओषधि सदृश, प्राणरक्षा के अक्षरों सदृश, स्वस्थ करने वाले मणि सदृश

और प्रसन्नता के मूल सदृश आगे बैठे हुए उस हंस को आनन्द के मारे निर्निमेष दृष्टि से देख कर उसे बहुत आदर देता हुआ मुस्कुराहट के साथ स्वागत वचन कहा। उसने भी, "देव, आपके दर्शन रूप अमृत का अनुभव कर मेरा स्वागत हो गया।" यह कह कर उनकी स्तुति की।

देव—

प्रसृतकमलगन्धं नीरसंसक्तकण्ठं
धृतकुवलयमालं जातभङ्गोर्मिकं च।
त्वयि कृतरुषि भीतास्तावदास्तां तडागं
निजमपि च कलत्रं शत्रवो नाद्रियन्ते ॥ ८ ॥

प्रसृतेति ॥ प्रसृतः कमलानामब्जानां गन्धो यत्र। तथा नीरेण संसक्तो युक्तः कण्ठः पालिप्रान्तो यस्य। तथा धृता कुवलयानां नीलोत्पलानां माला येन। तथा जाता उत्पन्ना भङ्गास्तरङ्गा ऊर्मयः कल्लोला यत्र। एतच्चतुष्टयमपि तडागादरहेतुः। देव, त्वति रुष्टे यद्भीताः शत्रवस्तडागमेवंविधं नाद्रियन्ते। यावत्कलत्रमपि। तत्किंविशिष्टम्। प्रसृतः के मूर्धिन मलगन्धो यस्याः। स्तनाभावात्। तथा निर्गतो रसो वक्त्रामृतकला शृङ्गारादिर्वा यत्र। तथा सक्तोऽन्तर्लग्नः कण्ठो यस्य। तथा धृता कुत्सितवलयानां सुवर्णाद्यभावात्काचादिवलयानां माला येन। तथा जातभङ्गा भग्ना ऊर्मिका अङ्गुलीयकं यस्य ॥ ८ ॥

"देव, कमलों की गन्ध से व्याप्त, जल से पूर्ण, कमलपङ्क्ति को धारण किये हुए, चलती हुई वक्र तरङ्गों वाले तडाग को कौन कहे, आपके क्रोध करने पर (इन विशेषणों से युक्त) अपनी भी पत्नी को आपके शत्रु आदर की दृष्टि से नहीं देखते ॥ ८ ॥

[इस श्लोक के प्रथम दो चरण श्लिष्ट हैं। दोनों चरणों की पदावली तडाग और कलत्र दोनों पक्षों में लगती है। तडागपक्ष—प्रसृतकमलगन्धं—कमल की गन्ध जहाँ फैली हुई है। नीरसंसक्तकण्ठं—जिसके कण्ठ (तट) के बराबर तक जल लगा हुआ है। धृयकुवलयमालं—जो कुवलय (कमल) की माला धारण कर रक्खा है। जातभङ्गोर्मिकं—जिसमें टेढ़ी टेढ़ी लहरियां तरङ्गित हो रही हैं। कलत्रपक्ष—प्रसृतकमलगन्धं—प्रसृत (फैल गया है) क (शिर) पर मल गन्ध जिनमें नीरसम्—शोक के कारण शृङ्गार आदि की विलासपूर्ण चेष्टायें जिनकी समाप्त हो गयी हैं। शोक-सन्ताप के कारण नीरस बन गई हैं। सक्तकण्ठं दुर्बल हो गयी हैं। धृत + कु + वलय + मालम्—धन के अभाव और सन्ताप की अधिकता के कारण कु (कुत्सित काच आदि का) वलय (कंकण) और माला धारण की हुई हैं। जातभङ्गोर्मिकम्—जिनके हाथों की ऊर्मिका (अंगुठी) समाप्त हो गयी है।

जल, पुष्प, गन्ध आदि रमणीय पदार्थों से सम्पन्न आपके सरोवर की शोभा के बारे में क्या कहना है। आप जब क्रुद्ध हो जाते हैं तो आपके उल्लास को व्यक्त करने वाले इस सरोवर को कौन कहे अपनी पत्नियों को भी नहीं देख सकते। शत्रु के उल्लास को आदरपूर्वक नहीं ही देखा जाता है। अतः आपके सरोवर को वे लोग आश्चर्य से नहीं देखते इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। आश्चर्य की बात यही है कि ये अपनी पत्नियों को भी आदर के साथ नहीं देखते।

यहाँ तडाग और कलत्र दोनों के विशेषण समान ही हैं, किन्तु इन विशेषणों से तडाग की प्रसन्नता तथा उल्लास की स्थिति व्यक्त होती है और इन्हीं विशेषणों से कलत्र की अत्यन्त विपन्न स्थिति ज्ञात होती है॥

किं चान्यत्—

असमहरिततीरं विस्रजम्बालशेषं
स्फुटकुमुदपरागोल्लाससंपद्वियुक्तम्।
वयमिह बहुशोकं दृष्टवन्तो वनान्ते
त्वदरियुवतिलोकं ग्रीष्ममासे सरश्च॥ ९॥

असमेति॥ हरितते: सिंहपद्धतेः सकाशादीरः क्षेपस्तासो हरिततीरः, असमो हरिततीरो यस्य। अथवा मा लक्ष्मीस्तया सह समं, न सममसममश्रीकम्। यथा हरिततीर्वानरपङ्क्तीरीरयति क्षिपति। पश्चात्कर्मधारयः। तथा विगतस्रजं विगतमालम्। तथा बालशेषं हतभर्त्रादित्वात्। तथा स्फुटं कु कुत्सा यस्य तं स्फुटकम्। तथा उद्गतोपरागस्य रागाभावस्योल्लासो यस्य। स चासौ संपद्वि-युक्तश्च। अथवा स्फुटा कुत्सितोदरभरणादिमात्रजा मुद्यस्य स स्फुटकुमुत्। तथा-पगतो रागोल्लासो यस्य। स्फुटकुमुच्चासावपरागोल्लासश्च स्फुटकुमुदपरागोल्लासः, स चासौ संपद्वियुक्तश्च। बहुः शोको यस्य। ईदृशं त्वदहितस्त्रीजनमपश्याम। ग्रीष्मे सर इव। तदपि कीदृक्। समं हरितं तीरं यस्य तत्समहरिततीरं, न सम-हरिततीरमसमहरिततीरं, विषमं शुष्कं च तीरं यस्येत्यर्थः। तथा विस्र आमगन्धिको जम्बालः कर्दम एव शेषो यत्र। तथा विकसितकुमुदरेणूल्लाससमृद्धिरहितम्। नास्ति कं जलं यत्रेत्यकम्। बहुश इति क्रियाविशेषणम्॥ ९॥

तीर पर अनुपम हरी हरी घास लगी है। अभद्र गन्ध युक्त कीचड़ ही बच गया है। कमलों की पराग सम्पत्ति का विकास स्पष्टतः नष्ट हो चुका है। वन के पास ग्रीष्मकालीन सरोवर और आपके शत्रुओं की पत्नियों को बहुत शोकपूर्ण स्थिति में मैंने बहुत बार देखा है॥ ९॥

[इस पद्य में अधिकांश पद अरियुवतिलोक और सरोवर, दोनों पक्षों में लगते हैं।

सरोवरपक्ष—पानी के हट जाने से भूमि की आर्द्रता के कारण (असमहरिततीरम्) तटीय भाग अनुपम ढंग से हरा हो गया है। जल के कम हो जाने से (विस्रजम्बालशेषम्) दुर्गन्धपूर्ण कीचड़मात्र अवशिष्ट रह गया है। खिले हुए कुमुदों की पराग सम्पत्ति से स्पष्टतः हीन हो गया है। मैंने बहुधा: (बहुत बार) उस ग्रीष्मकालीन अक (अल्पजल वाले) सरोवर को देखा। क का अर्थ जल है। क के साथ अल्प अर्थ में नञ् समास हुआ है।

अरियुवतिलोकपक्ष—असम+हरि+तति+ईरम्—बडे बड़े सिंहों के समूह से डरायी जा रही हैं। विस्रजम्—पति के नष्ट हो जाने के कारण माला आदि शृङ्गार के साधनों को छोड़ चुकी हैं। बालशेषम्—पति के नष्ट हो जाने पर केवल बच्चे ही अवशिष्ट रह गये हैं।

स्फुट कुमुत्—भोजन वस्त्र मात्र प्राप्त हो जाने से होने वाली कुत्सित प्रसन्नता का पात्र बन गयी हैं। उनमें (अपराग) वैराग्य का ही उल्लास है। संपद्वियुक्त—सम्पत्ति से हीन हो गयी हैं। मैंने उन्हें वनों के बीच बहुशोक (शोक-पूर्ण स्थिति) में देखा है ॥]

राजापि 'श्लेषोक्तिनिधे, तथा गृहीत्वास्मन्मनो गतवानसि, यथा सुखसंवित्तिशून्याः संतापारम्भिणो रणरणकाङ्कुरप्ररोहकाः कथमप्यस्माकमेतेऽतिक्रान्ता दिवसाः ॥

राजा भी, "श्लिष्ट वचनों के सागर, आप मेरे मन को इस तरह लेकर चले गये थे कि ये सुख और चेतना से शून्य, सन्ताप उत्पन्न करने वाले दिन किसी-किसी तरह बीते।

तत्कथय। का नामाभिनन्दनीया सा दिक्, यस्यां विहारमकरोः। के ते सफलचक्षुषो जनाः, यैश्चिरमालोकितोऽसि। के लब्धसुभाषितामृतरसास्वादाः, यैः संभाषितोऽसि। के प्राप्तप्राणितव्यफलाः यैः सह गोष्ठीमनुष्ठितवानसि ॥

तो कहिये, वह कौन सी प्रशंसनीय दिशा है जहाँ आपने विहार किया। वे कौन से सफल नेत्र वाले लोग हैं जो आपका चिरकाल तक अवलोकन किये। मनोहर उक्ति सुधा का आस्वादन करने वाले वे लोग कौन हैं जो आपसे बातें किये। किसने अपने जीवन का फल प्राप्त किया जिसके साथ आपने गोष्ठी की !

स्पृहणीयसंगम, गते त्वयि तर्कशास्त्रमिव प्रस्तुतपरमोहम्, व्याकरणमिव भूतनिष्ठमिदमस्माकमासीन्मनः ॥

स्पृहेति ॥ प्रकृतोत्कृष्टमोहं मनः, शास्त्रं तु प्रस्तुतः परम ऊहो वितर्को यत्र । भूता संजाता निष्ठा क्लेशो यत्र मनसि, व्याकरणे तु भूतेऽतीतकाले निष्ठासंज्ञः प्रत्यययो यत्र ॥

आकाङ्क्षणीय संगति वाले हंस, तुम्हारे चले जाने पर मैं तर्कशास्त्र की तरह परमोह (उत्कृष्ट मोह) में पड़ गया । व्याकरणशास्त्र की तरह मन भूतनिष्ठ (क्लेशयुक्त) हो गया ॥

[तर्कशास्त्र में परमोह (परक+ ऊह = विशिष्ट तर्क) किया जाता है । व्याकरणशास्त्र भूतनिष्ठ (भूत अर्थ में निष्ठा प्रत्यय होते) हैं । क्त और क्तवतु प्रत्ययों को निष्ठा कहते हैं ।]

'तदेह्येहि' इत्यभिधाय स्वयं करकमलतलेनोत्क्षिप्य सस्नेहं परामृशत् ॥

"आओ आओ" यह कह कर स्वयं ही अपने करकमलों से उठा कर बड़े प्रेम के साथ उस पर हाथ थपथपाये ।

सोऽपि 'एष महान्प्रसादो यदेवमनुकम्पतेऽस्मान्देवः' इत्यभिधाय गमनादारभ्य दमयन्तीदर्शनालापव्यतिकरमशेषं हारलतार्पणपर्यन्तमाचचक्षे ॥

वह हंस भी, "यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आप हम पर इतनी कृपा करते हैं ।" यह कह कर दमयन्ती से साक्षात्कार और वार्तालाप विषयक चर्चा से लेकर हारलता प्रदान तक की सारी बातें उनसे कह सुनाया ।

आख्याय च चरणेनैकेन ग्रीवाग्रादाकृष्य तां तथास्थितामेव मुक्तावलीमिदमवादीत् ॥

यह सब कहने के बाद एक चरण से अपनी गर्दन में से उसी तरह रक्खी हुई मुक्ता माला को निकाल कर बोला—

'उन्मादिनी मदनकार्मुकमण्डलज्या
सौभाग्यभाग्यपरवैभववैजयन्ती ।
मुक्तावली कुलधनं नरनाथ सैषा
कण्ठग्रहं तव करोतु भुजेव तस्याः ॥ १० ॥

हे नरेन्द्र, उन्मत्त बना देने वाली, कामदेव के धनुर्मण्डल की प्रत्यञ्चा, ऐश्वर्य और दैव की अत्युत्कृष्ट पताका, कुल-धन रूप यह मुक्ता की माला उस दमयन्ती की बाहुलता की तरह आप के कण्ठ का आलिङ्गन करे ॥ १० ॥

अपि च—

प्रेमप्रपञ्चनवनाटकसूत्रधारी मूर्त्ता मनोभवनृपस्य नियन्त्रणाज्ञा ।
तस्याः स्वयंवरपरिग्रहहेतुरेषा हारावली हृदि पदं भवतः करोतु ॥११॥

और—

प्रेम के विस्तार रूप नवीन नाटक का सूत्रधार, सम्राट कामदेव की निरोधाज्ञा की मूर्तिमती आकृति, उस दमयन्ती को स्वयम्वर में परिगृहीत करने के लिये निमित्तभूत यह रत्नावली आप के हृदय में स्थान प्राप्त करे ॥ ११ ॥

राजा तु तामादाय निरूप्य च चिरं चिन्तयांचकार ॥

राजा तो उसे लेकर बहुत देर तक देखता हुआ सोचने लगा ॥

'आनन्दिसुन्दरगुणामलकोपमान-
मुक्ताफलप्रचयमद्भुतमुद्वहन्ती ।
एषा च सा च नयनोत्सवकारिकान्ति-
श्चेतोहरा हृदि पदं न करोति कस्य' ॥ १२ ॥

आनन्दीति ॥ गुणस्तन्तुः शौर्यादिश्च । आमलकोपमानानां मुक्ताफलानां मौक्तिकानां प्रचयं समवायम् । अद्भुतमाश्चर्यकारिणम् । वहन्ती । दमयन्ती तु मलात्पापान्मालिन्याद्वा, कोपात्क्रुधो, मनाद्गर्वात्साहश्याद्वा मुक्ता भ्रष्टा । तथाद्भुतं चित्रं फलानां प्रचयं वहन्ती परिणेतुरिति शेषः । चेतोहरा मनोज्ञा । अन्यत्र चेतसि हरोऽस्याः । एवंभूतेयं मुक्तावली सा च कस्य हृदि वक्षसि चेतसि च, पदमवस्थानं न करोति, सर्वस्यापि करोत्येवेत्यर्थः ॥ १२ ॥

आनन्द देने वाली, सुन्दर गुणों (सूत्रों) में गुथी हुई, आंवले सदृश मुक्ता फलों को धारण करने वाली, चित्त को चुरा लेने वाली और आंखों को आनन्द देने वाली यह रत्नावली और वह दमयन्ती जो आनन्द उत्पन्न करती है— सुन्दर (उदारता आदि) गुणों से युक्त है । मल, कोप तथा मान (चिन्ता) की स्थिति में गिरी हुई हैं, (पुण्यों के) फल समूह को धारण की हुई है, चित्त में हर (शिव) को रक्खी है, शरीकान्ति आंखों को आनन्द देने वाली है, किसके हृदय में स्थान नहीं बनाती ॥ १२ ॥

इति चिन्तयन्द्विगुणामेकगुणीकृत्य पुनः सस्पृहमैक्षत ॥
हंसस्तु विहस्य परिहासमकरोत् ॥

[यहां रत्नावली और दमयन्ती के समान विशेषण हैं ॥]

यह सोचता हुआ द्विगुणित की हुई उस रत्नावली को एक गुणित कर बड़ी उत्कण्ठा से फिर उसे देखने लगा ।

[जो दोहरी की गयी उसे एकहरी कर दिया । हंस को लानी थी इसलिये दोहरी कर छोटी कर दी गयी थी । राजा ने अच्छी तरह देखने के लिये एकहरी कर दी ॥]

'तया दत्ता मयानीता स्वयमाह्लादिनी त्वया ।
इत्यनेकगुणाढ्येषा कथमेकगुणीकृता' ॥ १३ ॥

तया दत्तेति ॥ गुणाश्चारुतादयस्तन्तुसरिका च ॥ १३ ॥

हंस ने हँसकर परिहास किया—उसके द्वारा दी गयी और मेरे द्वारा लाई गयी, स्वयं ही आनन्द की अभिव्यञ्जिका यह रत्नावली अनेक गुणों वाली है। इसे आपने एक गुण वाली कैसे कर दिया ॥ १३ ॥

राजापि परिहासेनान्तःसूत्रं दर्शयन् 'पक्षिपुंगव, किं न पश्यस्येकगुणैवेयम् ॥

राजा ने भी उसके भीतर के तन्तु को दिखाता हुआ कहा, "देखते नहीं, पक्षिवर, इसमें एक ही गुण (तन्तु) है" ।

अथवा—

कः करोति गुणवान्गुणसंख्यां श्लाघ्यजन्ममहसः स्फुटमस्याः ।
कुम्भिकुम्भपरिणाहिनि तस्याः स्वैरमास्यत यया कुचयुग्मे' ॥ १४ ॥

कः करोतीति ॥ परिणाहो विशालता ॥ १४ ॥

अथवा—

"उत्पत्तिकाल से ही स्पष्ट रूप से प्रशंसनीय तेजवाली इस रत्नाली के गुणों की संख्या का कौन गुणी आदमी वर्णन कर सकता है। (एक समय) यह हाथी के कुम्भस्थल सदृश विशाल स्तनयुगल पर स्वेच्छया रह चुकी है।" ॥ १४ ॥

इत्यभिधाय नीत्वा च निजकण्ठकन्दलम्, 'इहास्ते सा तव पूर्वप्रणयिनी' इत्यन्तःस्थितां दमयन्तीं दर्शयितुमिव हृन्मध्यवर्तिनीं तामकरोत् ॥

यह कह कर अपने कण्ठदल को आगे बढ़ा कर "यह है तुम्हारी पूर्व परिचिता प्रेमिका" मानो अपने हृदय के भीतर ठहरी हुई दमयन्ती को दिखाने के लिये हृदय के बीच में उसे कर दिया।

[वह रत्नावली बहुत दिनों तक दमयन्ती के हृदय पर लोट चुकी है। इस समय उसके गले से निकल कर नल के पास आ गयी है। नल उसे गले में पहन रहा है। गले से लटकती हुई वह माला हृदय तक आती है। दमयन्ती को नल अपने हृदय में ला चुका है। इसीलिए कहता है, "रत्नावली, तुम ऐसा न समझना कि दययन्ती के हृदय से दूर आ गयी हो। लो देखो, यहीं तुम्हारी पूर्व परिचित दमयन्ती रहती है।" मानो इसी भाव से माला को पहनता है ॥]

कृत्वा च किंचिदनुच्चस्मितं मधुरमधुरया वाचा 'विहंगपुंगव, पुनः कथ्यतां कीदृशी सा, कीदृग्रूपा, किं च वयः, कीदृशी लावण्य-संपत्, को विनोदः, कीदृशं वाग्वैदग्ध्यम्, किं प्रियम्, का गोष्ठी इति श्रुतामप्यपूर्वामिव तद्वार्तामादरेण पृच्छन्नागच्छंश्च चटुलकरकृतशरसं-धानस्यानवरतविरचिताद्भुतभ्रमणकर्मकार्मुकवलयस्य लक्ष्यतां मकर-केतोरविदितापक्रमानतिबहून्वेलालवानवतस्थे ॥

कुछ मुस्कुराता हुआ अत्यन्त मधुर वाणी में, "पक्षिवर, फिर कहिये। वह कैसी है, किस रूप की है, क्या अवस्था है, किस तरह की सौन्दर्य-सम्पत्ति है, कैसा विनोद है, कैसा वाग्विलास है, क्या प्रिय है, कैसी गोष्ठी है", यह सुनकर भी न सुने हुए की तरह आदर के साथ पूछता हुआ चंचल हाथों से शर सन्धान किये हुए निरन्तर विलक्षण ढंग से धनुष को घुमाने वाले कामदेव के धनुष का लक्ष्य बनता हुआ बहुत क्षणों तक जिनके व्यतीत होने का प्रकार ज्ञात नहीं हुआ, बैठा रहा।

स्थिते च विभूष्य मध्यमं नभोभागं भगवति भासुरभासि भास्वति, श्रवणपुटपथमवतरति च प्रहरावसानप्रहारभांकारिभेरीरवे, 'वयस्य, विश्रम्यतामिदानीममन्दारतरुपरिकरितरोधसि मन्दिरोद्यानारविन्द-दीर्घिकायामेवं प्रार्थ्यसे च न गन्तव्यमविसर्जितेन त्वया पूर्ववत्, इति नियम्य तं राजहंसं स्वयमप्याह्निकायोदतिष्ठत् ॥

कान्तिपूर्ण भगवान् सूर्य के आकाश के मध्यभाग में चले जाने पर, प्रहर की समाप्ति के अवसर पर बजाये गये नगाड़े के शब्द के कानों में जाते रहने पर, "मित्र मन्दार वृक्षों से घिरे हुए तट वाले इस भवन के उद्यानस्थित कमलपूर्ण बावली में विश्राम करो, यही प्रार्थना है। पहले की तरह अनुमतिविना ही फिर न चले जाना।" इस तरह राजहंस को कह कर स्वयं भी दैनिक कार्य करने के लिये उठ खड़ा हुआ।

एवं च—

शिथिलितसकलान्यव्यापृतेस्तस्य राज्ञः
परिहृतनिजबन्धोर्यान्ति हंसेन सार्धम्।
दिनमनु दमयन्तीवृत्तवार्ताविनोदै-
रविदितपरिवर्त्ता वासराः शारदीनाः ॥ १५ ॥

शिथिलितेति ॥ दिनमनु दिनं लक्षीकृत्य। एतेन रात्रिनिषेधः। पक्षिणो हि निशि नीडे नीलीयन्ते। तापहेतवोऽपि दिवसा हंसवार्त्तया अविदितपरिवर्त्ताः। शरदि भवं शारदं रूपमुष्णत्वातिशयादि तद्विद्यते यस्यासौ शारदी इनो येषु ते शारदीनाः ॥ १५ ॥

अपने बन्धुओं को समीप में रहने के लिये मना कर दिया था। अन्य कार्यों को भी छोड़ दिया था। हंस के साथ दमयन्ती सम्बन्धी चर्चा के विनोद में शरत्कालीन दिन यों ही व्यतीत हो जाते थे। उनके व्यत्यय के प्रकार का पता नहीं चलता था। पता नहीं लगता था कि दिन कब समाप्त हो गया। ॥ १५ ॥

[सुख के अधिक चण समाप्त हो जाते हैं किन्तु उनकी समाप्ति के प्रकार का पता नहीं चलता। पक्षी से वार्ता का प्रसङ्ग है इसीलिए कवि दिन की चर्चा करता है। क्योंकि रात को वे पक्षी अपने घोसले में छिप जाते हैं। ऐसी स्थिति में उनकी उपलब्धि असम्भव हो जाती है। इसी तरह भवभूति ने भी समयव्यत्य की चर्चा उत्तररामचरित में की है—अविदितगतयामा रात्रिरेवं व्यरंसीत् ॥ १५ ॥]

एकदा प्रस्फुरत्प्रभातारम्भप्रभया प्रभिद्यमाने नवनीलाञ्जनिकाकुसुम-कान्तिनि तमसि, विलीनलाक्षाम्भोभिरिव सिच्यमानायां शनैः शची-दयितदिशि मन्दमुन्मिषत्कमलमुकुलोच्छलच्चटुलालिचक्रवालकलकले-नोन्निद्रितेन तन्द्रामुद्रितोन्मिषच्चक्षुषा चलच्चञ्चूकोटिकण्डूयन-विरामधुतपक्षरोमराजिना राजहंसकदम्बकेनानुगम्यमानो विहाय विहंगमः सरस्तीरम्, उपसृत्य किंनरमधुरगीतध्वनिविनिद्रितमावश्य-कावसाने राजानम् , इदमवदीत् ॥

एकदेति ॥ नीलाञ्जनिका तापिच्छः ॥

एक दिन प्रातः कालीन किरणें छिटक रही थीं। तापिच्छ पुष्प सदृश कान्ति वाला अन्धकार समाप्त हो रहा था। गले हुए लाह से मानो इन्द्र की (पूर्व) दिशा सींची जा रही थी। खिलते हुए कमलों की कलियों में से उछल कर निकलने वाले चंचल भ्रमर समूह की गुञ्जार ध्वनि से जगा हुआ जंभाई के कारण बन्द आंखों को खोलता हुआ, चंचल चोंच के अग्रभाग से शरीर को खुजला लेने के बाद पंख के रोमों को कम्पित कर, राजहंस वर्ग के आगे आगे चल कर, सरोवर तट को छोड़ कर, किन्नरों को मीठी गीत ध्वनि से उचित समय पर जगे हुए राजा के पास जा कर बोला—

'देव, विज्ञापयामो देवस्य दर्शनम् , अनालेप्यं चन्दनम् , अस्पर्शं कर्पूरपांसुपटलोद्‌धूलनम् , अपातव्यममृतम् । अनास्वाद्यं रसायनम्, अलेह्यं मधु । कुतः किलैतदनुभवतामस्माकमपि वर्षसहस्रेणापि परि-तोषः । किं तु तिरयति स्वातन्त्र्यं प्राणिनां परपरिग्रहो दुस्त्यजाश्च जल-जन्मोऽपि जन्मभूमयो भवति । अवगमिष्यति च विश्रब्धमेतत्सर्वमपि

देवो यादृशा येन च जन्मान्तराराधनोपरोधेन प्रेषिता वयम्। अनवसरः खल्वयमस्य कथाप्रक्रमस्य। तथादिशतु देवोऽस्मान्गमनाय। न च प्रस्तुतानुचरालापेषु वयं विस्मरणीयः। किमन्यज्जन्म च जीवितं च तदेव श्लाघ्यं मन्यामहे, यत्र प्रसङ्गेन भवादृशा अनुस्मृतिं कुर्वन्ति। तदेष प्रस्थानप्रार्थनाप्रणामः' इत्युक्तवन्तमिममवनिपालः कथमपि विसर्जयामास ॥

देवेति आस्तां मनुष्याणाम्, अस्माकमपि पक्षिजातीयानामपीत्यपिशब्दार्थः। तिरयति तिरस्करोति ॥

श्रीमन् , मैं आप का दर्शन चाहता हूँ जो एक तरह का न लेपने योग्य चन्दन है, अस्पृश्य कर्पूर धूलि की राशि में स्नान है। न चखने लायक पौष्टिकपेय है। न पीने लायक अमृत है। न चाटने लायक मधु है' यदि हम इसका सहस्र वर्षों तक भी अनुभव करते रहें तो सन्तोष कहां हो सकता है। किन्तु विवाह प्राणियों की स्वतन्त्रता छीन लेता है। जल में रहने वाले लोगों की भी जन्मभूमि दुस्त्यज होती है। जैसे और जिस जन्मान्तरीय पुण्य के कारण हमलोगों को आपने भेजा यह सब सुस्थिर हो कर आप स्वयं समझेंगे। इन सब कथाओं को कहने का अवसर नहीं है। अच्छा, अब आज्ञा दें, हम लोगों को जाने के लिए। भृत्यों की प्रासङ्गिक चर्चा में हमें भूलेंगे नहीं। उसी जीवन और जन्म को हम श्लाध्य मानते हैं जिसे प्रसङ्गतः आप जैसे लोग याद करते हैं। अच्छा तो, यह चलते समय का मेरा प्रार्थना-द्योतक प्रणाम है।" इस तरह कहते हुए उस हंस को राजा ने किसी किसी तरह जाने की अनुमति देदी ॥

गते च तस्मिन्नविस्मरणीयोपकारे कादम्बकदम्बकेश्वरे, श्रवणप्रणालिकया प्रविश्य मानसं सरस्तरलयन्त्यां विदर्भराजहंससुतायां, प्रहरति प्रत्यङ्गमनङ्गधानुष्के, समीपवनविकासिकुन्दमकरन्दास्वादमदमेदुरगिरां गच्छति श्रवणपथमतिमधुरे मधुलिहां झंकारे, आकर्णपूरीकृतकार्मुकगुणे रणरणकारम्भिणि तत्रावसरे ॥

गते चेति ॥ तस्मिन्हंसवृन्दनेतरि। श्रवणमाकर्णनमेव प्रणाली जलमार्गस्तया। कृत्वा मानसं चेत एव सरस्तडागम्। अथ च मानसाख्यं देवतडागं कर्मतापन्नम्। विदर्भराज एव हंसस्तस्य पुत्र्यां तरलयन्त्यां सत्याम्। तथा प्रवणीकृतधनुर्गुणे अनङ्गधनुर्धरे। तथा मधुलिहां मधुरगिरां झंकारे कर्णे गच्छति औत्सुक्यकारिणि चावसरे सति। 'हंसो विहंगभेदे स्याल्लिर्लोभनृपतावपि' ॥

अविस्मरणीय उपकारी उस हंस वर्ग के चले जाने पर श्रवण-नालिका द्वारा मन सरोवर में प्रवेश कर विदर्भराज हंस की पुत्री विक्षुब्ध करने

लगी। प्रत्येक अङ्ग में कामदेव अपना धनुष मारने लगा। समीप के वन में खिले हुए कुन्द पुष्प के पराग का आस्वाद लेकर मद के कारण गम्भीर आवाज वाले भ्रमरों की अत्यन्त मधुर ध्वनि कानों में पहुँच रही थी। कामदेव ने अपने धनुष् को कानों तक चढ़ा रक्खा था। अतः वह अवसर बड़ा ही उत्कण्ठाकारी था।

आविर्भूतविषादकन्दमसमव्यामोहमीलन्मन-
श्चिन्तोत्तानितनिर्निमेषनयनं निःश्वासदग्धाधरम्।
जातं स्थानकमुत्सुकस्य नृपतेस्तत्तस्य यस्मिन्नभूत्
प्रेयान्पञ्चमराग एव रिपवः शेषास्तु सर्वे रसाः॥ १६॥

आविरिति॥ उत्कण्ठितस्य नृपतेस्तत्स्थानकमवस्थान्तरं जातम्। यत्र (स्थानके) पञ्चमे पञ्चमाख्ये रागविशेषे रागो रसवत्ता स एव प्रियः। शेषास्तु रसा विषयानुरागा रिपवः॥ १६॥

राजा की ऐसी अवस्था हो गयी थी जिसमें विषाद का अङ्कुर निकल आया था। विषम मोह ने मन को व्यथित कर लिया था। चिन्ता के कारण आँखें निरन्तर पलकशून्य बनी रहती थीं। गरम श्वासों के कारण ओष्ठ सूख गये थे। उस समय उसे केवल कोकिल का स्वर अच्छा लगता था, शेष सभी रस शत्रु जैसे प्रतीत होते थे॥ १६॥

ततश्च वृश्चिकदंशदुःसहव्यथामवस्थामनुभवन्निव, कण्टकैश्चरणमर्मणि विध्यमान इव, मुहुर्मुहुर्मुर्मुरपुञ्जराजीवाङ्गानि धारयन्नुग्रग्रीष्मानिलोल्लोलैरालिङ्ग्यमानो, मनागपि न क्वापि शर्म लेभे॥

ततश्चेति॥ तापातिरेकात्प्रतिक्षणं क्षणमात्रशुष्कत्वान्मुर्मुरः पुञ्जो येषां तानि मुर्मुरपुञ्जानि, तथाभूतानि राजीवानि येष्वङ्गेषु तानि। मुर्मुरस्तुषवह्निः। यद्विश्वप्रकाशः—'मुर्मुरस्तुषवह्नौ स्यान्मन्मथे रविवाजिनि'॥

इसके बाद बिच्छू के डंक मारने की तरह असह्य पीड़ा की अवस्था का अनुभव करता हुआ, कांटे से चरण के मध्य भाग में विंधे हुए की तरह, बार बार निर्धूम अंगारों की राशि में अङ्ग कमल को रखता हुआ कहीं भी थोड़ा भी आराम नहीं पा रहा था।

तथापि—

श्च्योतच्चन्द्रमणिप्रणालशिशिराः सौगन्ध्यरुद्धाम्बरै-
र्निर्गच्छन्नवधूपधूमपटलैः संभिन्नवातायनाः।
सौधोत्सङ्गभुवो विकीर्णकुसुमाः पूर्णेन्दुरश्मिश्रिया
रम्यायां निशि नो हरन्ति हृदयं हृद्यं किमुद्वेगिनाम्॥ १७॥

श्च्योतदिति ॥ क्षरच्चन्द्रकान्तप्रणालशीताः । सुगन्धितनभोभिर्धूपधूमैर्मिश्र-गवाक्षाकीर्णपुष्पाः । प्रासादभूमयः परिपूर्णचन्द्रेण रमणीयायामपि रात्रौ चेतो हरन्ति उद्वेगायेत्यर्थः। राज्ञ इति शेषः। युक्तं चैतत्। दुःखितानां किं हृद्यम्। न किमपीति भावः ॥ ॥ १७ ॥

जो चन्द्रकान्तमणि के चूते हुए जलप्रवाह से शीतल हो गयी है, सुन्दर गन्ध से आकाशमण्डल को घेरते हुए नवीन धूप से निकलते हुए धूम मण्डल से जिसके गवाक्ष भर गये हैं और जहाँ फूल बिखरे हुए हैं, वह भव्य भवन की भूमि पूर्ण चन्द्र की कान्ति से रमणीय रात्रि के समय उनके हृदय का हरण नहीं करती क्योंकि उद्वेगपूर्ण आदमियों के लिये कोई भी चीज श्लाघ्य नहीं होती ॥ १७ ॥

अपि च—

हृद्योद्यानसरस्तरङ्गशिखरप्रेङ्खोलनायासिताः
संभोगश्रमखिन्नकिंनरवधूस्वेदोदबिन्दुच्छिदः ।
सायं सान्द्रविनिद्रकैरववनान्यान्दोलयन्तः शनै-
रङ्गेऽङ्गारसमाः पतन्ति पवनाः प्रालेयशीता अपि ॥ १८ ॥

हृद्योद्यानेति ॥ रम्यतडागोर्मितरलनेन खेदिताः। तथा किंनरीस्वेदजलबिन्दु-मुषः। वनानि कम्पयन्तः। शनैरङ्गे लगन्तो हिमसमा अपि वायवोऽङ्गारा इव पतन्ति ॥ १८ ॥

रमणीय उपवन सरोवर की लहरियों के अग्रभाग से टकराने के कारण थका हुआ, सम्भोग के परिश्रम से थकी हुई किन्नर रमणियों के पसीनों की बूँदों को समाप्त करने वाला, घने तथा खिले हुए कमल-वनों को धीरे-धीरे कम्पित करता हुआ सायंकालीन, बर्फ की तरह ठंडा पवन भी उसके अङ्गों में अङ्गार की तरह लगता है ॥ १८ ॥

तदाप्रभृति चास्य प्रायः प्रीतिरभूद्दाक्षिणात्यजनेष्वेव, पुलकमकरो-न्नामापि विदर्भदेशस्य, श्रुतापि श्रवणयोः सुखमजीजनद्दक्षिणा दिक् ॥

उसी समय मे इसका स्नेह दक्षिण के लोगों में ही केन्द्रित हो गया। विदर्भ देश का नाम भी रोमाञ्च उत्पन्न कर देता था। कानों तक पहुँची हुई दक्षिण दिशा सुख उत्पन्न कर देती थी।

किं बहुना—

लिप्तेवामृतपङ्केन स्पृष्टेवानन्दकन्दलैः ।
आसीद्दिग्दक्षिणा तस्य कर्णयोर्मनसो दृशोः ॥ १९ ॥

दक्षिण दिशा उसके कान, मन तथा नेत्र में अमृत पङ्क से लिपी हुई और आनन्द के अङ्कुर से स्पृष्ट सी लगती थी।

[दक्षिण दिशा का नाम उसके सम्पूर्ण अङ्गों में तृप्ति का अभिव्यञ्जन करता था] ॥ १९ ॥

दमयन्त्यपि हंसदर्शनदिवसादारभ्य भ्रमद्भृङ्गकुलकलकलोन्नादितपर्यन्तेषु, प्रत्यग्रोल्लूनपुष्पपल्लवास्तरणेषु, विचलद्विनोदविहंगेषु विहरति नासन्नोद्यानलतामण्डपेषु, न च विकचकुवलयकह्लारकुशेशयसारवारिणि रणच्चटुलचञ्चरीकचक्रवाकचक्रे क्रीडति क्रीडासरसि न च स्पृशति पाणिनापि माणिक्यमालामण्डनानि, न च रचयति रुचिरालकवल्लरीभङ्गान्तरालेषून्मिषत्कुसुमविन्यासान्, न च क्वचिदुच्चहंसतूलिकातल्पेऽपि कोमलकपोलावष्टम्भभाजि निद्रासुखमनुभवति, केवलमधिपाण्डुगण्डस्थलस्थापितपाणिपल्लवा प्रेषयन्ती प्रतिक्षणमुत्तरस्यां दिशि दृशं तद्देशागतान्गगने पक्षिणोऽपि सस्पृहं पश्यन्ति, तत्रत्यानध्वगानपि बन्धुबुद्ध्यालापयन्ती, तन्मण्डलगताय मरुतेऽप्यपनीतोत्तरीयांशुका हृदयमर्पयन्ती दिनं दिनमनङ्गेनाभ्यभूयत ॥

दमयन्ती भी हंस के दर्शन के दिन से पास के ही उपवन वाले लता कुञ्ज में घूम रही थी, जहाँ का सम्पूर्ण भाग उड़ते हुए भ्रमर वर्ग की कल-कल ध्वनि से गूँज उठा था। अभी अभी तोड़े गये पुष्पपल्लवों का विस्तार बनाया गया था। विनोद के लिये रक्खे गये पक्षी घूम रहे थे। खिले हुए नील, लाल तथा शुभ्र कमलों के कारण सरोवरजल महत्त्वपूर्ण बन गया था। चंचल भ्रमरों और चक्रवाकों का समूह वहाँ घूम रहा था। वहाँ भी वह नहीं खेल सकती थी। हाथों में अलङ्कारों को पहने हुए थी किन्तु वलय (नामक) भूषण को छूती नहीं थी। वि०। हाथ ही उसका भूषण था अतः अलङ्कारों को नहीं छूती थी। अथवा उस समय हाथ ही अलङ्कार और अलङ्कार्य दोनों का कार्य कर रहे थे। मनोहर केशों की वेणी की वक्रता के बीच खिलते हुए फूलों को नहीं लगाती। हंस की तरह शुभ्र, रुई की गद्दी पर अपने कोमल कपोल भाग को रख कर निद्रा-सुख का अनुभव नहीं कर पाती। केवल अपने पाणि पल्लव पर (चिन्ता के कारण) पीले कपोल को रख कर सदा नेत्रकान्ति को उत्तर दिशा की ओर की हुई, आकाश में उस दिशा से आये हुए पक्षियों को भी उत्सुकता से देखती हुई, उस दिशा के पथिकों को भी बन्धु समझ कर बातें करती हुई, उस दिशा से आयी हुई हवा के लिये भी ऊपर के वस्त्र को हटा कर हृदय अर्पित करती हुई दिन प्रति दिन काम से पराजित हो रही थी।

तथाहि—

लास्यं पांसुकणायते नयनयोः, शल्यं श्रुतेर्वल्लकी,
नाराचाः कुचयोः सचन्दनरसाः कर्पूरवारिच्छटाः।

तस्याः काप्यरविन्दसुन्दरदृशः सा नाम जज्ञे दशा
प्राणत्राणनिबन्धनं प्रियकथा यस्यामभूत्केवलम् ॥ २० ॥

नृत्य उसकी आँखों में धूलि कण की तरह लगता था। वीणा का स्वर कानों में कांटे की तरह प्रतीत होता था। चन्दन-रस से युक्त कर्पूरजल की धारा उसके स्तनों पर वाण की तरह लगती थी। कमल सदृश सुन्दर नेत्रवाली उस दमयन्ती की कोई अपूर्व ही दशा हो गयी थी। उस समय उसके प्राणों की रक्षा के लिये प्रिय की कथा ही उपयुक्त थी ॥ २० ॥

एवमनयोरन्योन्यप्रेषितप्रच्छन्नदूतोक्तिवर्धितानुरागयोः चलन्त्यङ्गानि न मनोरथाः परिवर्त्तते चक्षुर्न हृदयम्, कृशतामेत्यङ्गयष्टिर्नोत्कण्ठा, मन्दतां यात्युत्साहो नाभिलाषः, स्फारीभवति निःसहता न निद्रा, वर्धते चिन्ता न रतिः, शुष्यत्यधरपल्लवो नाग्रहरसः ॥

एवमिति ॥ तां दिशं प्रति चलन्त्यभिमुखीभूय निवर्तन्ते। एवं चक्षुरपि ॥

इस तरह एक दूसरे के भेजे हुए गुप्त दूत की उक्ति से बढ़े हुए अनुराग वाले इन दोनों के अङ्ग तो कम्पित हुए किन्तु मनोरथ नहीं। आंखें इधर उधर चली किन्तु हृदय नहीं। अङ्गलतिका में दुर्बलता आयी किन्तु उत्कण्ठा में नहीं। उत्साह शिथिला हुआ किन्तु अभिलाषा नहीं। चिन्ता बढ़ी किन्तु रति नहीं। असहनीयता स्पष्ट थी किन्तु निद्रा नहीं। अधरपल्लव सूखा किंतु एक दूसरे की प्राप्ति के सम्बन्ध में आग्रह रस नहीं सूखा।

किं बहुना—

कर्पूराम्बुनिषेकभाजि सरसैरम्भोजिनीनां दलै-
रास्तीर्णेऽपि विवर्त्तमानवपुषोः स्रस्तस्रजि स्रस्तरे।
मन्दोन्मेषदृशोः किमन्यदभवत्सा काप्यवस्था तयो-
र्यस्यां चन्दनचन्द्रचम्पकदलश्रेण्यादि वह्नीयते ॥ २१ ॥

अधिक क्या—

जो कर्पूर के जल से सींचा गया है, सरस कमलिनी के पत्ते बिछे हुए हैं, मालायें बिखरी हुई हैं ऐसे विस्तरे पर भी करवटें बदलते हुए निर्निमेष दृष्टि वाले उन दोनों की दूसरी ही दशा हो गयी है। चन्दन, चन्द्रमा और चम्पे की दल पंक्ति आदि पदार्थ आग की तरह लग रहे हैं ॥ २१ ॥

आसीच्च तयोः कृतान्योन्यगुणप्रश्नालापजपयोः पुनरुक्तावर्त्तितनामधेयस्वाध्याययोः संकल्पसमागमाबद्धध्यानयोः स्मरानले स्वं हृदयं जुह्वतोस्तप्यमानयोरङ्गीकृतमौनव्रतयोरपि वियोग एव, न योगः ॥

आसीच्चेति ॥ कृतोऽन्योन्यगुणप्रश्नालाप एव जपो जाप्यं यकाभ्याम्। पुनरावर्त्तितं नामैव स्वाध्यायो ययोः। संकल्पे चित्तकर्मणि यः समागमस्तत्राबद्धं ध्यानं यकाभ्यान्। कामाग्नौ स्वचेतो होमयतोः। तप्यमानयोः। मौनिनोरप्यनयोर्वियोगो विरह एवासीत्। न योगः। योगः संबन्धोऽध्यात्मविषयश्च। अन्यस्य जपं स्वाध्यायं ध्यानं होमं तपो मौनं व्रतं च कुर्वतो योगलाभः स्यात्। तप्यमानेति संतापपक्षे कर्मकर्तरि, तपःपक्षे तु कर्तरि, तपेः कर्मविषयत्वात् ॥

एक दूसरे के गुण-विषयक प्रश्न सम्बन्धी चर्चा रूप जप में लगे हुए हैं। बार-बार का नामग्रहण ही उनका स्वाध्याय बन गया है। चित्त में जो मिलन-विषयक धारणा बन गयी है उसी में ध्यान को केन्द्रित कर लिये हैं। काम (यज्ञ) की आग में अपने-अपने हृदय का हवन करते हुए मौनव्रत धारण कर तपस्या में लीन हैं। यह दशा उन दोनों के लिये वियोग (विशिष्ट ढंग की योग-साधना) की है। योग (मिलन) की नहीं।

[इतनी तपस्या करने के बाद भी विरह की ही मात्रा अधिक है। मिलन के लिये कोई अनुकूल सामग्री तैयार नहीं है।]

कदाचित्तु तरुणजननयनकुरङ्गवागुरामनङ्गगजेन्द्रमदप्रवाहढक्काम-पहसितसुरासुरसुन्दरीरूपश्रियं श्रृङ्गाररसराजधानीमवलोक्य यौवनावस्थां दमयन्त्याः 'कोऽस्याः किलानुरूपः पतिर्भवेत्' इति, चिरं चिन्ताकुलो विदर्भेश्वरः स्वयं स्वयंवरधर्मप्रारम्भाय समं मन्त्रिभिर्मन्त्रनिश्चयं चकार ॥

किसी समय युवक जनों के नेत्रमृग को बांध लेने वाली रस्सी, कामगजेन्द्र के मद-प्रवाह की गड़गड़ाहट, देव और दानव रमणियों के सौन्दर्य को नीचा दिखा देने वाली, श्रृङ्गार रस की राजधानी दमयन्ती की यौवनावस्था को देखकर, "कौन इसका अनुकूल पति होगा" इस विषय की चिन्ता में बहुत देर तथा व्याकुल रहकर स्वयं ही विदर्भ राजमन्त्रियों के साथ स्वयंवर धर्म को प्रारम्भ करने का सिद्धान्त स्थिर किये ॥

न चिराच्च प्राच्यप्रतीच्योदीच्यदाक्षिणात्यनरपतिनिमन्त्रणे सप्राभृतान्प्रगल्भप्रायान्प्रधानप्रेष्यान्प्रेषयामास ॥

शीघ्र ही पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण दिशाओं के राजाओं को निमन्त्रण देने के लिये उपहारों के साथ पूर्ण दृढ़ एवं मुख्य दूतों को भेजा ॥

प्रस्थितं कंचिदुदीच्यनरपतिनिमन्त्रणाय प्रबुद्धवृद्धब्राह्मणमाप्तसखीमुखेन दमयन्ती श्लिष्टार्थमिदमवादीत् ॥

उत्तर के राजाओं को निमन्त्रण देने जाने के लिये तत्पर किसी विद्वान् वृद्ध ब्राह्मण से अपनी विश्वासपात्र सखी द्वारा श्लेषभरी भाषा में दमयन्ती बोली—

'भूपालामन्त्रणे तात तथा संचार्यतां यथा।
नलोप्यागमबुद्धिः स्यात्प्रार्थ्यसे किमतः परम्' ॥ २२ ॥

भूपेति ॥ तातेति संबोधने। नृपनिमन्त्रणे तथा संचार्यतां यथा आगमावनतिः शास्त्रप्रतीतिर्लोप्या न स्यादिति बाह्यार्थः। इष्टार्थस्तु नलनामापि नृपो यथागमनबुद्धिर्भवेदिति ॥ २२ ॥

हे तात, राजाओं को निमन्त्रित करने में ऐसा कीजियेगा कि आगमबुद्धि (शास्त्रीय पद्धति) न लोप्य (लुप्त या तिरस्कृत न) हो। यही प्रार्थना है।

द्वितीय पक्ष—हे तात, राजाओं को निमन्त्रित करते समय ऐसी पद्धति अपनाइयेगा कि नल भी आने की धारणा बना लें। यही निवेदन है। इससे अधिक क्या कहें ॥ २२ ॥

सोऽप्यवगतश्लोकार्थस्तथाविधमेव प्रत्युत्तरमदात् ॥

'केनापि व्यवहारेण कयापि प्रौढलीलया।
करिष्याम्यागमस्यार्थे रभसेन नलङ्घनम् ॥ २३ ॥

केनेति ॥ आगमस्य शास्त्रस्य। अर्थे लङ्घनं न करिष्यामीति बाह्यार्थः। इष्टार्थस्तु आगमनस्यार्थे रभसेनौत्सुक्येन घनं निविडं नलाख्यं नृपं करिष्यामि आनेष्याम्येवेत्यर्थः ॥ २३ ॥

वह भी श्लोक का अर्थ समझकर वैसा ही उत्तर दिया—

किसी भी विशेष कला तथा किसी भी विशेष युक्ति से ऐसा यत्न करूंगा कि आगम (शास्त्रीय मार्ग) का लोप न हो।

ईप्सित पक्ष—किसी भी युक्ति तथा किसी भी प्रौढ़ कला से नल को शीघ्र लाने के लिये बड़ा घना प्रयास करूंगा ॥ २३ ॥

तदायुष्मति सुखमास्ताम्' इत्यभिधाय गतवान् ॥

अथ नातिचिरेणागतस्तया रहः समाहूय स ब्राह्मणः सोमशर्मा नर्मालापलीलया दमयन्त्या बभाषे ॥

'आयुष्मति, आप सुखपूर्वक रहें,। यह कहकर चला गया।

बिना अधिक देर के लौटे हुए सोमशर्मा नामक ब्राह्मण को बुलाकर दमयन्ती कोमल शब्दों में बोली—

'आहूतोदीच्यभूपेन तातादेशविधायिना।
नालीकापि त्वया वार्ता विद्वन्नावेदिता मम' ॥ २४ ॥

आहूतेति ॥ आकारितोत्तरनृपेण त्वया विद्वन्नलीकापि वार्ता न कथितेति बाह्योऽर्थः। आन्तरस्तु नलस्येयं नाली वार्ता सा कापि त्वया नाभ्यधायि ॥ २४ ॥

विद्वन्, पिता जी की आज्ञा पूर्ण करने वाले आपने उत्तर के राजाओं को निमन्त्रित किया, किन्तु इस सम्बन्ध में झूठी भी बात मुझ से नहीं बतायी ॥ २४ ॥

[केवल 'नालीका' शब्द श्लिष्ट है। अर्थात् उत्तर के राजाओं को आपने निमन्त्रित किया किन्तु नालीक (नल सम्बन्धी कोई समाचार) नहीं बताये ॥ २४ ॥]

सोऽपि 'एष कथयामि श्लेषोक्तिकुशले, श्रूयताम्' इत्यभिधाय विहसन्नाख्यातुमारब्धवान् ॥

उसने भी, "श्लिष्ट बातों को कहने में चतुर दमयन्ती, लो, अभी कहता हूँ।" यह कह कर हँसता हुआ कथा कहना प्रारम्भ किया—

इतो निर्गत्य मया मण्डलेश्वरामन्त्रणक्रमेण परिभ्रमताऽभ्रंकषानेककूटकोटिस्थपुटितकटकस्य निषधनाम्नो महीध्रस्य दक्षिणारण्यस्थलीषु मृगया-सक्तः ॥

यहाँ से चलकर विभिन्न मण्डलाधिपतियों को निमन्त्रित कर परिभ्रमण करते हुए, अनेक चोटियों में फैले हुए निषध नामक पर्वत के दक्षिण वाले जंगल की भूमि पर शिकार खेलने में लगे हुए—

माद्यन्मांसलतुङ्गपुंगवककुत्कूटान्नतांसस्थलः
कालिन्दीजलकान्तिकुन्तलशिराः पूर्णेन्दुबिम्बाननः।
एकः कोऽपि मनोहरः पथि युवा दृष्टः स यस्मिन्सकृद्-
दृष्टे नष्टनिमेषया मम दृशा लब्धं फलं जन्मनः ॥ २५ ॥

मस्त, पुष्ट, उच्च तथा उत्तम कोटि के पर्वत शृङ्ग की तरह उन्नत कन्धे वाले, यमुना जल की नीली कान्ति की तरह केशों वाले, पूर्णिमा के चन्द्र जैसे मुख वाले किसी एक मनोहर युवक को रास्ते में निर्निमेष दृष्टि से देखकर मैंने जन्म का फल प्राप्त कर लिया ॥ २५ ॥

तेनापि 'दाक्षिणात्योऽयम्' इति निश्चित्य साभिलाषमाभाषितोऽस्मि ॥ मयापि कृतोचितालापेनोक्तम् ॥

उसने भी, "यह दक्षिण देश का आदमी है।" यह समझ कर बड़ी दिलचस्पी से मुझसे बातें कीं। मैंने भी उसके उचित ढंग से बात कर लेने के बाद कहा—

'यथेयमाकृतिर्लोकलोचनानन्ददायिनी।
तव भद्र तथा सत्यं सत्यागोऽसि नलोभवान्' ॥ २६ ॥

यथेयमिति ॥ सन् शोभनस्त्यागो यस्य । तथा न त्वं लोभवान् । असीत्यव्ययं युष्मदर्थे । पक्षे सत्यागस्त्वम् । तथा नलाख्यो भवान् इति पृथग्वाक्यद्वयम् । एकवाक्यतायां तु भवानसीति मध्यमपुरुषो दुर्लभः ॥ २६ ॥

श्रीमन्, लोगों के नेत्रों को आनन्द देने वाली जैसी आपकी यह आकृति है उससे यह ज्ञात होता है कि आप लोभवान् (लोभी) नहीं हैं और सत्त्याग (सुन्दर त्याग करने वाले) हैं।

[सत्याग शब्द को कर्ता बनाकर त्वं का आक्षेप कर असि क्रिया का उपपादन किया जायगा। अन्यथा भवान् का असि क्रिया के साथ अन्वय उपपन्न नहीं होगा। अलौकिक सौन्दर्य समन्वित आप की आकृति से यह स्पष्ट है कि "नलो भवान्" आप नल हैं। लोभवान् न ऐसा अन्वय इसलिये किया जाता है कि अपरिचयावस्था में नाम का प्रकथन अस्वाभाविक न हो जाय ॥ २६ ॥

एवमुक्तः सोऽपि मनाङ्मुग्धस्मितमेवोत्तरं कल्पितवान् ॥

अथ प्रथमवयोविभूषिताङ्गस्तुङ्गतुरंगमारूढो गाढग्रथितपरिकरः करेण कोदण्डमाकलयंस्तद्द्वितीयो युवा तमेव देशमागतवान् ॥

ऐसा कहने पर वह भी मधुर मुस्कान के साथ उत्तर सोचने लगा।

पहली अवस्था (यौवन) से अलङ्कृत, एक ऊँचे अश्व पर आरूढ़, कमर में पेटी बाँधा हुआ, हाथ में धनुष लिया हुआ, एक दूसरा युवक उसी स्थान पर आया।

आगत्य च बालनीलनलशालिनि शिलोच्चयस्थलीप्रदेशे कांचित्काञ्चनकुम्भकान्तिकुचकण्ठलुठितकुसुममालिकामवलोकयन्निदमवादीत् ॥

आकर नवीन एवं श्यामल नल घास से सुशोभित पर्वत के उच्चतर प्रदेश पर किसी स्वर्णिम कुम्भ कान्ति वाले स्तनों एवं गले में पुष्पमाला धारण की हुई नायिका को देखता हुआ बोला—

'युवराज, पश्य—

नद्यास्तीरे विदर्भायाः कापि गोपालबालिका ।
गाः समुच्चारयत्येषा क्षेत्रीकृत्य नलं वरम्' ॥ २७ ॥

नद्या इति ॥ विशिष्टदर्भाया नद्यास्तीरे । काप्यनिर्दिष्टनामा । गोपी । वरं श्रेष्ठं नलं (डं) तृणविशेषम् । केदारीकृत्य । गा धेनूः । समुत् सहर्षा । चारयति । श्लेषवक्रोक्त्या तु विदर्भाभिधानाया नद्यास्तीरे, कापि । महनीयमहिमा, गोपालस्य भूपस्य, बालिका सुता, नलं राजानं, वरं वरयितारं क्षेत्रीकृत्याश्रयीकृत्य, गिरः समुच्चारयति । वर ईप्सायाम्, वर्यत इति वरः । क्षेत्रं सद्भूमिः ॥ २७ ॥

युवराज, देखो, विदर्भ (अधिक के कुशों से युक्त) नदी के तट पर यह कोई

गोपालपुत्री (ग्वाले की लड़की) उत्कृष्ट नल संज्ञक घास वाले स्थान को खेत समझ कर गायों को प्रसन्नतापूर्वक चरा रही है ॥ २७ ॥

द्वितीय पक्ष—विदर्भ नामक नदी के तट पर कोई गोपालपुत्री (राजा की लड़की) नल नामक वर को अपनी इच्छा का विषय बनाकर गो (वाणी) का उच्चारण कर रही है ॥ २७ ॥

[विदर्भायाः—विशिष्ट दर्भों से युक्त नदी अथवा विदर्भ नाम की नदी। गाः—वाणी या गाय। क्षेत्रीकृत्य—मन का विषय बनाकर या गाय के चरने का क्षेत्र बनाकर या समझ कर। समुत्—(मुद्रा सहिता) प्रसन्नतापूर्वक। चारयति (चरा रही है) समुच्चारयति—नल विषयक बातों का सम्यक् उच्चारण कर रही है। नल एक घास का नाम है। एक पक्ष में नल शब्द से नल राजा अर्थ है ॥ २७ ॥

एतदाकर्ण्य मयाप्युक्तम्—'महानुभाव, न केवलमियमन्यापि क्वापि क्वापि' इति ॥

इत्युक्तवन्तं मामवलोक्य भावितार्थः स पुनः सस्मितमवोचत् ॥

यह सुन कर मैंने कहा, श्रीमन्, केवल यही नहीं कहीं कोई दूसरी भी।

ऐसा कहने पर प्रासङ्गिक अर्थों को समझ कर मुस्कुराते हुए उसने कहा—

'इयं च सा च—

अनुभवतु चिराय चञ्चलाक्षीरसपरिणामफलानि गोपपुत्री।
अपसरति महोद्यमेन यस्याः कथमपि संप्रति नैषधेऽनुरागः' ॥२८॥

अनुभवत्विति ॥ गोपालिका क्षीरस्य सपरिणामानि यानि फलानि क्षैरेयीदधिघृतप्रभृतीनि तान्यनुभवतु चिराय। चञ्चला लोला गोचारणवशात्। यस्याः संप्रत्येष धेनुरागो महोद्यमेन हेतुना। कथमपि केनापि प्रकारेण न निवर्तते। श्लेषे तु गोपपुत्री भूपपुत्री दमयन्तीलक्षणा चञ्चलाक्षी लोलनेत्रा शृङ्गारादिरसपरिपाकफलान्युपभुङ्क्ताम्। यस्या संप्रति नैषधे नले महोद्यमेऽनुरागः प्रेमबन्धः। कथमपि नापसरति ॥ २८ ॥

यह भी और वह भी—

चंचला गोपपुत्री (ग्वाले की लड़की) जिसका इस समय यह धेनुराग (गोविषयक प्रेम) किसी भी तरह कम नहीं होता, क्षीर के सपरिणामफल (दही घी आदि का) चिरकाल तक अनुभव करे।

द्वितीय पक्ष—चंचलाक्षी गोपपुत्री (चंचल नेत्रों वाली पृथ्वीपाल की लड़की) जिसका नैषध (नल) में लगा हुआ अनुराग बड़ा यत्न करने पर भी नहीं घटता, शृङ्गार प्रभृति रसों की परिपक्वावस्था का चिर काल तक अनुभव करे।

[गो के अर्थ पशु और पृथ्वी दोनों हैं। अतः गोप के भी पशुपाल तथा

पृथ्वीपाल दो अर्थ होंगे। चंचलाक्षीरसपरिणामफलानि—पशुपालपुत्री पक्ष में चंचला एक पद है और क्षीर + सपरिणामफलानि दूसरा। भूपालपुत्री दमयन्ती पक्ष में चंचलाक्षी + रसपरिणामफलानि यह विच्छेद है। अर्थात् चंचल नेत्रों वाली दमयन्ती नल के अनुराग को प्राप्त कर श्रृङ्गार के श्लाघनीय फल को प्राप्त करें। नैषधेनुरागः—एष धेनुरागः न अपसरति—इस गोपपुत्री का धेनुराग हट नहीं रहा है। दमयन्ती पक्ष में नैषधेऽनुरागः न अपसरति—नल में जो इसका अनुराग हो गया है वह हट नहीं रहा है। महोद्यमेन—दमयन्ती पक्ष में महोद्यमे सप्तम्यन्त है और नल का अन्वय अपसरति क्रिया से है। ग्वाले की लड़की के पक्ष में यह पद तृतीया एक वचन है ॥२८॥]

आस्तां तावदन्यत्। अध्वन्य, कथय कुतः प्रष्टव्योऽसि, किं च कियद्वाद्यापि वर्त्मातिक्रमितव्यम्' इति ॥

छोड़िये दूसरी बातों को पथिक जी, कहिये, आपको कहां से पूछा जाय। अभी तक कितना रास्ता तय करने के लिये बाकी है।

अथ कथितस्ववृत्तान्तेन मयापि 'कोऽयमशेषमनुष्यमस्तकमणिः, कश्च भवानपि स्वप्रज्ञाप्राग्भारपराङ्मुखीकृतपुरंदरगुरुः' इति पर्यनुयुक्तः स पुनरुक्तवान् ॥

मैंने अपना सब वृत्तान्त कह दिया और उनसे पूछा, "समस्त मनुष्यों में श्रेष्ठ ये कौन हैं, और अपनी प्रज्ञावैभव से देवेन्द्र गुरु बृहस्पति को भी नीचा दिखाने वाले आप कौन हैं?" तब उसने कहना शुरू किया—

'अयमसौ सौम्य, समस्तशस्त्रशास्त्रकोविदो विदारितवैरी वैरसेनिर्नलः। किमन्यदहमपि श्रुतशीलो नामास्यैवाज्ञाकारी, इत्यभिधाय विश्रान्तवान् ॥

"सौम्य, सम्पूर्ण शस्त्रों तथा शास्त्रों के विद्वान्, शत्रुदल को विदलित किए हुए ये वीरसेन के पुत्र नल हैं। अधिक क्या बताऊँ, मैं भी इन्हीं का आज्ञाकारी हूँ। मेरा नाम श्रुतिशील है।" यह कह कर वह चुप हो गया।

नलोऽपि कृत्वा त्वदाश्रयास्तास्ताः प्रकटितप्रेमकन्दलाः कथाः, समर्थ्य च स्वयंवरामन्त्रणमुत्सुकतया तत्कालमेवोड्डीय गन्तुमीहमानः संभाषितेन स्मितेनालोकितेन च माममृतवर्षेणेवाह्लादयन्ननिच्छन्तमपि प्रतिग्राह्य च बलादनर्घ्याणि स्वाङ्गाभरणानि चिरादेव व्यसर्जयत् ॥

नल भी तुम्हारे निमित्त प्रेमाङ्कुर व्यक्त करने वाली उन-उन कथाओं को कह कर उत्सुकतापूर्वक स्वयंवर में आने के लिए निमन्त्रण का समर्थन कर

तत्काल ही मानो उड़कर पहुँच जाना चाह रहा था। सम्भाषण से, मुस्कुराहट से और दर्शन से मुझे अमृतवर्षा की तरह आनन्दित करता हुआ, मैं नहीं चाहता था तो भी बलात्कार अपने बहुमूल्य अलङ्कारों को देकर कुछ देर के बाद छुट्टी दी।

स्वयं च मृगयाव्यसनितया मृगयालुभिः सह—

धीरं रङ्गन्तमारुह्य सारं रंहसि वाजिनम्।
हारं रम्यं गले बिभ्रत्स्वैरं रन्तुमगात्पुनः॥ २९॥

धीरमिति॥ धीरमत्रासं रङ्गन्तं वल्गन्तं रंहसि वेगे सारमुत्कृष्टं वाजिनमश्वमारुह्य कण्ठे हारं गुणं बिभ्राणः स्वच्छन्दं क्रीडितुं पुनरप्यगात्॥ २९॥

शिकार का अभ्यासी होने के कारण स्वयं भी वह शिकारियों के साथ—धैर्यशील, दौड़ में उत्कृष्ट, फड़कते हुए घोड़े पर चढ़ कर गले में सुन्दर हार पहना हुआ, पुनः स्वेच्छया विहार करने चला गया॥ २९॥

तदायुष्मति, स्वामिसुते यथा मया तत्कथाप्रश्नानुराग उपलक्षितस्तथा निश्चितमचिरादयमेष्यति' इत्यभिधाय स ब्राह्मणः स्वगृहमगात्॥

"चिरञ्जीविनी राजपुत्री, जिस तरह उसने मुझ से बातों तथा प्रश्नों में प्रेम प्रदर्शन किया उससे निश्चित है कि वह शीघ्र ही आयेगा।" यह कह कर वह ब्राह्मण अपने घर चला गया।

गते च तस्मिन्दमयन्ती 'श्लाघ्यः स कः कालः, धन्यः स कतमो वासरः, सलक्षणा सा का नाम वेला, यस्यामिदमिन्दुदर्शनेनेव कुमुदमस्मच्चक्षुस्तदालोकनेन कमप्यानन्दमनुभविष्यति, इति चिन्तयन्ती कान्यपि दिनानि कयाप्यवस्थया व्यनैषीत्॥

उसके चले जाने पर दमयन्ती, "वह कौन सा स्पृहणीय समय होगा, वह कौन सा धन्य दिन होगा, वह कौन सी शुभ शकुन की वेला होगी, जब चन्द्रदर्शन से कुमुद की तरह मेरी आँखें उनके दर्शन से आनन्द का अनुभव करेंगी।" इस तरह सोचती हुई कुछ दिनों को किसी किसी तरह व्यतीत किया।

अथ नलोऽप्यामन्त्रितस्तेन ब्राह्मणेन रणरणकेन च, प्रेरितो मन्त्रिणा मदनेन च, परिवृतः सेनयोत्कण्ठया च, तत्कालमेव विदर्भमण्डलाभिमुखमुदचलत्॥

नल भी उस ब्राह्मण और मनोगत उत्सुकता से आमन्त्रित होकर, मन्त्री और कामदेव द्वारा प्रेरित होकर सेना और उत्कण्ठा से परिवेष्ठित होकर शीघ्र ही विदर्भ देश की ओर चल दिया॥

चलिते च चतुरङ्गबलचलनचूर्णितशिलोच्चयचक्रवाले चक्रिचक्रचङ्क्रमणचीत्कारबधिरितककुभि विषमवैरिवृन्दवनवैद्युतानले नले, चलन्तश्चटुलतरचरणप्रहाररणितधरणिमण्डलाः कान्तकाञ्चनरचनारोचिष्णवश्चकासांचक्रुश्चक्रवर्त्तिवाहोचिताः साश्चर्यमपर्यन्तपर्यायाः पर्याणितास्तुरङ्गाः, शृङ्गारिताश्च चलच्चारुचामरावधूलनालंकृतकपोलभित्तिभागसंलगितभृङ्गसंगीतमुखरितमुखमण्डलाः कथमप्याधोरणनिरुध्यमानशौर्यविकारस्फुरणाः स्फुरत्कुम्भभित्तिसिन्दूरा दूरापसारितस्यन्दनाः स्यन्दमानामन्दमदकर्दमितमेदिनीकाः कम्पयांबभूवुर्भुवं भूरिभारभुग्नाङ्गपन्नगशिरःशिथिलावष्टम्भामिभेन्द्राः ॥

उत्कृष्ट शत्रु वर्ग रूपवन के लिये अग्नि सदृश नल की चतुरङ्गिणी सेना के चलने पर शिला समूह चूर्णित हो गये। सर्पमण्डल के चीत्कार से दिशायें बधिर हों उठीं। चमकते हुए स्वर्णालङ्कारों से सुशोभित चक्रवर्ती राजा की सवारी के लिए उपयुक्त, सर्वथा अद्वितीय, सजे हुए घोड़े उद्‌भासित हो रहे थे। चलते हुए सुन्दर चँवर के कम्पन से गजेन्द्रों के कपोल भाग मण्डित हो गये थे। वहाँ लगे हुए भ्रमरों के संगीत से उनका मुखमण्डल शब्दायित हो उठा था। वीरता के कारण उन्मत्त वे हाथी हस्तिपालों द्वारा किसी-किसी तरह रोके जा रहे थे। वे रथों को दूर हटा दिये थे। उनकी चूती हुई मदधारा से पृथ्वी पङ्कयुक्त हो गई थी। उनके पर्याप्त भार से संकुचित अङ्गवाले सर्पों ने अपनी शिरःफणाओं के टेक को शिथिल कर दिया था। पृथ्वी काँप उठी थी।

किंबहुना। तत्रावसरे—

पूर्वापरपयोराशिसीमासंक्रान्तसैनिके।
तस्मिन्सस्मार भूर्भाराद्वराहवपुषो हरेः॥ ३०॥

पूर्वेति॥ पूर्वापरसागरावधिसंक्रान्तचमूचरे तस्मिन्नले भूर्मेदिनी भाराद्धेतोर्हरेः सस्मार। 'अधीगर्थ'-इति सूत्रेण कर्मणि षष्ठी॥ ३०॥

अधिक क्या कहे—

उस समय जब पूर्व और पश्चिम समुद्र तक उसके सैनिक फैले तो पृथ्वी भार के कारण वराह शरीरधारी भगवान् का स्मरण करने लगी॥ ३० है

[वराह अवतार धारण कर पृथ्वी का भार धारण एक बार भगवान् किये थे। इसीलिये नल की सेना के असह्य भार से व्यथित होकर पृथ्वी पुनः भगवान् का स्मरण की॥ ३०॥]

अपि च—

आसीत्पिण्डितपाण्डुपङ्कजवनं श्वेतातपत्रैः क्वचि-
न्मायूरातपवारणैः क्वचिदभूदुन्नालनीलोत्पलम्।

उन्मेघं क्वचिदूर्ध्वधूलिपटलैस्तस्य प्रयाणेऽभव-
त्प्रोद्वीचि क्वचिदम्बरं सर इव प्रेङ्खत्पताकापटैः ॥ ३१ ॥

आसीदिति ॥ सितच्छत्त्रैः पिण्हितपुण्डरीकवनं, श्रीकरीभिः सनीलोत्पलं, रेणुपटलैरुन्नतमेघं, क्वचिच्चलध्वजाञ्चलैः प्रवृद्धोर्ध्वतरङ्गं, तडागमिवाम्बरमाकाशं तत्प्रयाणेऽभूत। प्राच्यदेशे महासरःसु मेघा अम्भो ग्रहीतुमुन्नमन्त इति प्रसिद्ध्योन्मेघत्वमुक्तम् ॥ ३१ ॥

उसकी यात्रा के अवसर पर आकाश में कहीं शुभ्र छत्रों से मुकुलित श्वेत कमलों का वन बन गया था। कहीं मयूरपंख से बने हुए छत्रों से ऊपर की ओर नालदण्ड दिये हुए नीलकमलों का वन बन गया था। ऊपर की ओर उठी हुई धूलि से उन्नत मेघ बन गये थे। फड़फड़ाते हुए ध्वजवस्त्रों से लहरियाँ बन गयी थीं। अतः आकाश सरोवर जैसा प्रतीत होता था ॥ ३१ ॥

[राजा के सैनिक प्रयाण के अवसर पर आकाश एक महान् सरोसर बन गया था। श्वेत छत्रों का समूह शुभ्र कमलवन की शोभा सम्पन्न कर रहे थे। दण्डसहित मयूर पंख के छत्र नीलकमलवन की शोभा सम्पन्न कर रहे थे। उठी हुई धूलि मेघ का दृश्य सम्पादित कर रही थी। ध्वजवस्त्र सरोवर-लहरी को दृश्यपूर्ण कर रहे थे। यह जनसामान्य में प्रसिद्धि है कि मेघ बड़े सरोवरों, झीलों और सागरों में पानी लेने के लिये आते हैं। इसी प्रसिद्ध के आधार पर कवि ने आकाश को सरोवर बनाकर वहां मेघ दिखाने का प्रयास किया है ॥ ३१ ॥]

जाताश्च जङ्घाजघनस्पृशो, वक्षःस्थलीलोलनलम्पटा, ग्रीवाग्रहणाग्रहिण्यः, प्रसभं लगन्त्यो वस्त्रेषु, निस्त्रपाः स्त्रिय इव, नखपदाभिघातोद्यताः चुम्बन्त्यश्चिबुककपोलाधरचक्षूंषि सैनिकानाम्, अतिप्रसरेण शिरोऽवलग्नाः, प्रबला धूलयो, वियदावरणाश्च चक्रुरुच्चैरतिप्रसङ्गमासन्नवननिकुञ्जेषु ॥

जाताश्चेति ॥ धूलयो निर्लज्जाः स्त्रिय एव। जंघेत्यादीन्युभयत्र समानानि। नखा अश्वादीनां खुराः, पदं पादविन्यासस्तेषामभिघातादुत्थिताः पक्षे नखक्षतपदयोश्चाभिघाते उद्यताः सोद्यमाः। बलात्सैन्यात्प्रबुद्धाः, पक्षे प्रवृद्धवीर्याः। वियदावरणा नभश्छादिन्यो विगच्छद्वस्त्राश्च। वियन्नभः। विपूर्वस्येणः शतरि च वियदिति। अतिप्रसङ्गमतिव्याप्तिं, पक्षे रतिप्रसङ्गं सुरतप्रबन्धम् ॥

जंघा और जघन को छूती हुई, वक्षःस्थल के मर्दन के लिये लोलुप, गलबाही देने के लिये आग्रह करने वाली, हठात् वस्त्रों में लिपटती हुई निर्लज्ज स्त्रियों की तरह खुर के विघात से उठकर पदस्पर्श करने में उद्यत, अधिक प्रसार से सफेद धूलियां सैनिकों के शिर में लगती हुई उनके चिबुक, कपोल, ओष्ठ तथा

नेत्रों को चूमती हुई, समीप के अरण्यकुञ्जों को आकाश का आवरण बन कर छा ली ॥

[यहाँ धूलि और निर्लज्ज स्त्रियों में पूर्ण समानता बतायी गयी है ।]

कूजन्तश्च कोटिशः कोदण्डमण्डलाग्रव्यग्रपाणयः, पाणिनीया इवाधिकरणकर्मकुशलाः समुल्लसन्तो विचेलुर्वल्गनपटवो लाम्पट्योल्लुण्ठितरिपुपुरः पुरः पदातयः ॥

कूजन्तश्चेति ॥ पदातयो विचेलुः । किं कुर्वन्तः । कोटिशोऽनेकधा कूजन्तः शब्दायमानाः । तथा कोदण्डेन धनुषा मण्डलाग्रेण चासिना व्याकुलाः पाणयो येषां ते । तथाधिकं रणकर्मणि कुशलाः । पाणिनीयपक्षेऽधिकरणकर्मणी कारके । लाम्पट्येनोल्लुण्ठिता अरिपुरोऽरिनगर्यो यैः । पुरोऽग्रतः ॥

हल्ला करते हुए, बार-बार धनुष तथा तलवार पर हाथों को चंचलता से फेरते हुए पाणिनि के अनुयायियों की तरह अधिकरण कर्मकुशल (अधिक + रण कार्य में निपुण) थे । धृष्टता से नगरियों को लूटकर बड़े उल्लास के साथ पैदल चलने वाले सैनिक आगे बढ़े ।

[अधिकरण और कर्म कारक के विचार में जैसे पाणिनी के अनुयायी कुशल होते हैं वैसे वे सैनिक अधिक+रण+कर्म (कार्य) में कुशल 'निपुण' थे ।]

तत्र च व्यतिकरे—

मन्दं मन्दरमन्दिरेषु शयितानुन्निद्रयन्किनरान्-
मेरोर्मस्तककन्दरे प्रतिरवानुत्थापयन्नुल्बणः ।
आध्वं धावत यात मुञ्चत पुनः पन्थानमेवंविध-
स्त्रैलोक्यं बधिरीचकार बहलः सैन्यस्य कोलाहलः ॥ ३२ ॥

उस समय—

मन्दराचल के भवनों में सोये हुए किन्नरों को धीरे से जगाते हुए, मेरु की उच्चतर कन्दराओं में उत्कट प्रतिध्वनि करते हुए, 'बैठो, दौड़ो, छोड़ो फिर इस रास्ते को ।" सैनिकों का इस तरह का कोलाहल तीनों लोकों को बधिर बना रहा था ॥ ३२ ॥

एवमसौ क्रीडितानेकपामरान् गिरीन् ग्रामांश्च बहुतरङ्गोपशोभिताः सरितः सीम्नश्च व्यूढपत्त्ररथान् पथः पादपांश्च लङ्घयन्, सालसहिताः पुरीर्नारीश्च सेवमानः, पच्यमानगोधूमश्यामलाः क्षेत्रभुवो भिल्लपल्लीश्च परिहरन्, विधवाः शत्रुसीमन्तिनीरटवीश्चातिक्रामन्, परिवारीणि बन्धुकुलानि सरांसि च बहुमानयन्, नाति चिरेण रविरथतुरंगपरिहृतविषमशिरःशिखरसहस्रमजस्रममरगणगन्धर्वसिद्धरुद्धस्कन्धमध्यं विन्ध्याचलमनुससार ॥

एवमिति ॥ अमुना प्रकारेणासौ नल इदमिदं कुर्वंस्तरणिरथाश्वत्यक्ताधित्यकामध्यं विन्ध्याद्रिमनु लक्षीकृत्य ससार। किं कुर्वन्। लङ्घयन्। कान्। गिरीन्द्रान् ग्रामांश्च। संप्रत्युभयानपि विशिनष्टि। क्रीडिता अनेकपा गजा अमराश्च देवा येषु। पक्षे पामरा ग्राम्याः। सरितो बहुभिस्तरङ्गैरलंकृताः। सीमानश्च बहुतरं यथाभवत्येवं गोपैर्गोपालैः शोभिताः। विशेषेणोढानि पत्त्राणि वाहनानि रथाश्च यैः। पक्षे पत्त्ररथः पक्षी। सालेन प्राकारेण सहिताः। नार्यः सालसा हिताश्च। अलसशब्दो भावप्रधानो लक्षणादिवत्। पचेलिमैर्गोधूमैः सस्यविशेषः श्यामलाः। पक्षे तु गोर्भूमेर्धूमो गोधूमः। ततः पच्यमानः परिपाकं गच्छन् बहुलीभवन्योऽसौ गोधूमस्तेन श्यामलाः। न तु पच्यमाना चासौ गौश्चेति। टच्प्रसङ्गात्। कृष्यावनी हि दग्धा समधिकं फलतीति। तथा च (रघुवंशे नवमे सर्गे) कृष्यां दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो बीजप्ररोहजननीं ज्वलनः करोति'। गोशब्दो भूम्यर्थो न धेन्वर्थोऽनौचित्यात्। विर्विशेषे विगमे च। धवो भर्ता तरुविशेषश्च। परिवृण्वन्ति परिवारीभवन्ति परिवारीणि। अन्यत्र परि समन्ताद्वारि जलं येषु ॥

इस तरह अनेक हाथियों और देवताओं से युक्त गाँवों और पर्वतों में क्रीडाकर, बहुत तरङ्गों से सुशोभित नदियों तथा अधिकांश गोपों से अलंकृत पर्वतीय सीमाओं, विशेषरूप से पत्र (अश्व) और रथ से युक्त मार्गों तथा पत्ररथ (पक्षियों) से युक्त पेड़ों को लांघते हुए, साल (चारदीवारी) से युक्त नगरियों और अलसाई स्त्रियों का सेवन करता हुआ, पकने की स्थितियों में आये हुए समृद्ध गेहूँ के पौधों कारण श्यामल रंग की क्षेत्रभूमियों और जलती हुई आग के धूम से श्यामल भीलों के गाँवों को छोड़ता हुआ, धव (पति) हीन शत्रुपत्नियों तथा विशिष्ट ढंग के धव नामक वृक्षों से युक्त जंगलों को लाँघता हुआ, चारों तरफ से घेरकर रहने वाले बन्धुजनो को सम्मानित करता हुआ, चारों तरफ से जल से भरे हुए सरोवरों की प्रशंसा करता हुआ, शीघ्र ही, भगवान् सूर्य के रथों के घोड़ों से वञ्चित, हजारों उच्च शिखर रूप शिरों को धारण करने वाले, निरन्तर देवों, गन्धर्वों और सिद्धों द्वारा घिरे हुए मध्यभाग वाले विन्ध्याचल को लक्ष्य कर चला।

ततश्च—

दिशि दिशि किमिमानि प्रच्यवन्तेऽन्तरिक्षा-
दविरतमुत देवी भूतधात्री प्रसूते।
इति शबरवधूभिस्तर्क्यमाणान्यवापुः
सपदि विपुलविन्ध्यस्कन्धमध्यं बलानि ॥ ३३ ॥

इसके बाद—

"सभी दिशाओं में आकाश से यह क्या चू रहा है, अथवा समस्त प्राणियों को धारण करने वाली देवी पृथ्वी निरन्तर यह सब क्या उत्पन्न कर रही

हैं ?" इस तरह की उद्‌भावना करती हुई शबर युवतियां विशाल विन्ध्याचल की चोटियों के बीच शीघ्र ही इस सेना को प्राप्त कीं (देखीं) ॥ ३३ ॥

श्रुतशीलस्तु तुङ्गश्रृङ्गरङ्गत्सारङ्गाङ्गनासु नक्षत्रासन्नाकाशावकाशविशद्वंशजालजटिलासु चलच्चित्रचित्रककरिकलभकदम्बकसंचारशबलासु हारिहरिताङ्कुररमणीयासु वनस्थलीषु निक्षिप्तचक्षुषमवलोक्य राजानमिदमवादीत् ॥

ऊँचे-ऊँचे पर्वत शिखरों पर मृगवधुएं घूम रही थीं। तारों के समीप रिक्त आकाश में प्रवेश करते हुए बाँसों के कारण वह भूमि घनीभूत प्रतीत हो रही थी। चलते हुए आश्चर्यजनक रङ्ग-विरङ्ग के हाथियों के बच्चों से विविध रङ्गों से चित्रित हो गयी थी। सुन्दर हरे अङ्कुरों के कारण रमणीय थी। ऐसी उस वनस्थली पर दृष्टि देकर श्रुतिशील ने राजा से कहा ॥

'देव'—

माद्यद्दन्तिकपोलपालिविगलद्दानाम्बुसिक्तद्रुमाः
क्रीडत्क्रोडकुलार्धचर्वितपतन्मुस्तारसामोदिताः।
अन्तःसुस्थितपान्थमन्थरमरुल्लोलल्लतामण्डपाः
कस्यैता न हरन्ति हन्त हृदय विन्ध्यस्थलीभूमयः ॥ ३४ ॥

माद्यदिति ॥ मुस्तायाः कन्दविशेषस्य रसेन निर्यासेनामोदिताः । अन्तर्मध्ये सुस्थिताः पान्था यासु। तथा मन्थरमरुता मन्दानिलेन लोलन्तश्चलन्तो लतामण्डपा यासु। पश्चात्कर्मधारयः ॥ ३४ ॥

देव, क्या ही सुन्दर यह विन्ध्याचल की भूमि है जहाँ मतवाले हाथियों के कपोलस्थल से बहते हुए मदजल से पेड सींच उठे हैं, खेलते हुए सूकरों के आधे चबाये हुए मुस्ता के रस से जो सुगन्धित हो गयी है, भीतर की ओर पथिकजन मजे में बैठे हुए हैं, मन्द-मन्द हवा से लतामण्डप डोल रहा है, किस का मन नहीं हर लेती ॥ ३४ ॥

इतश्च पश्यतु देवः—

एषा सा विन्ध्यमध्यस्थलविपुलशिलोत्सङ्गरङ्गत्तरङ्गा
सम्भोगश्रान्ततीराश्रयशबरवधूशर्मदा नर्मदा च।
यस्याः सान्द्रद्रुमालीललिततलमिलत्सुन्दरीसंनिरुद्धैः
सिद्धैः सेव्यन्त एते मृगमृदितदलत्कन्दलाः कूलकच्छाः ॥३५॥

इधर देखें श्रीमान्—

विन्ध्याचल के बीच की बड़ी-बड़ी शिलाओं की गोद में थिरकती हुई लहरियों वाली, तीरभूमि पर स्थित, सम्भोग श्रम से श्रान्त शबर युवतियों

को आराम देने वाली यह वह नर्मदा नदी है जिसकी घनी वृक्ष-पक्तियों की मधुर छाया से सुन्दरियों से लिपटे हुए सिद्ध लोग मृगों द्वारा रौंदे गये अङ्कुरों वाले तटप्रदेश का उपभोग कर रहे हैं ॥ ३५ ॥

अपि च। अन्तरेऽप्यस्याः—

मज्जत्कुञ्जरकुम्भमण्डलगलद्दानाम्बुनः सौरभाद्-
भ्राम्यद्भृङ्गकुलावलीः कुवलयश्रेणीः समाबिभ्रतः।
कल्लोलाः कलिकालकल्मषमुषः प्रोल्लीलकलीलाकृतः
स्वःसोपानपरम्परा इव वियद्वीथीमलंकुर्वते ॥ ३६ ॥

मज्जदिति ॥ भृङ्गकुलानां कुवलयान्युपमानम्। बिभ्रत इति कल्लोलविशेणं जसन्तम्। 'नाभ्यस्ताद्'–इति नुमभावः ॥ ६६ ॥

स्नान करते हुए हाथियों के कुम्भस्थल से चूते हुए मद जल की सुगन्ध के कारण गूंजते हुए भ्रमर वर्गों और कमलश्रेणियों को धारण करने वाली, उत्कृष्ट विलास सम्पन्न, कलि के पापों को नष्ट करने वाली नर्मदा की तरङ्गें स्वर्ग सीढ़ियों (सोपान) की पङ्क्ति की तरह आकाश मार्ग को अलङ्कृत कर रहीं हैं ॥ ३६ ॥

इतश्चास्यास्तीरे—

अंसस्रंसिजलार्द्रजर्जरजटाजूटैर्मनाङ्मन्थरा-
स्तिम्यत्तारवतन्तुनिर्मितकुथत्कौपीनमात्रच्छदाः।
शीतोत्कण्टकितास्थिशेषतनवः स्नात्वोत्तरन्तः शनै-
रेते पश्य पतन्ति पिच्छिलशिलाजाले जरत्तापसाः ॥ ३७ ॥

अंसेति ॥ तरुषु जातास्तारवाः। ते च ते तन्तवश्च। पिच्छिलं मसृणं कर्दमिलम् ॥ ३७ ॥

देखिये जल से भींगी हुई शिथिल जटायें कन्धे तक लटक रहीं हैं, आर्द्र वल्कल तन्तुओं से निर्मित अत्यन्त पुराना कौपीनमात्र वस्त्र धारण किये हुए हैं, ठंढी के कारण रोंगटे खड़े हो गये हैं, शरीर में हड्डी ही अवशिष्ट रह गयी है, देखिये, ऐसे वृद्ध तपस्वी स्नान कर धीरे-धीरे पिच्छिल (फिसलने वाले) शिला समूह पर उतर रहे हैं ॥ ३७ ॥

इतोऽपि—

पश्यैताः करिकुम्भसंनिभकुचद्वन्द्वोल्लसद्वीचयः
क्रीडन्त्यब्जविकासभासि पयसि स्वैरं पुलिन्दस्त्रियः।
उन्मीलन्नवनीलनीरजधिया पक्ष्मान्तरे नेत्रयो-
र्यासां हस्ततलाहता अपि परिभ्राम्यन्ति भृङ्गाङ्गनाः ॥ ३८ ॥

इधर भी—

देखो, हाथियों के कुम्भस्थल सदृश स्तनयुगल से जल तरङ्ग को सुशोभित करती हुई, कमलों के विकास के कारण इस मनोहर जल में शबर युवतियाँ खेल रही हैं, जिनके नेत्र भाग के पलकों को विकसित हो रहे कमल समझ कर (आयी हुई) भ्रमर वधुएँ हस्तलता से भगायी जाने पर भी चक्कर काट रही हैं ॥ ३८ ॥

[शबर युवतियाँ स्नान कर रही हैं। उनके उन्नत स्तनों के झोके से पानी तरङ्गित हो उठा है। उनके पलकों को कमल समझ कर भ्रमरियाँ उनके सामने भनभना रही हैं। युवतियाँ अपने हाथों से उन्हें किसी-किसी तरह हटा पाती हैं ॥ ३८ ॥

इतोऽप्यवलोकयतु देवः—

वालोन्मीलत्कुवलयवनं विस्तरद्गन्धरुद्ध-
भ्राम्यद्भृङ्गैरनुकृतपयःपूर्णमेघान्धकारम्।
हर्षात्पश्यत्ययमतितरां तीरचारी मयूरो
मुग्धः पार्श्वे भ्रमति च भयाच्चक्रवच्चक्रवाकः ॥ ३९ ॥

बालेति॥ विस्तरता प्रसरता गन्धेन रुद्धाः। अत एव भ्राम्यन्तो भृङ्गास्तैरनुकृतः पयःपूर्णमेघोऽन्धकारश्च येनेति वनविशेषणम्। मेघाद्धि मयूरस्य हर्षः। अन्धकाराच्च रात्रिशङ्कया चक्रवाकस्य भयम् ॥ ३९ ॥

नवीन, विकसित हो रहे, कमलवन की फैलती हुई गन्ध में बधे हुए और चक्कर काटते हुए भ्रमरों के प्रतिबिम्ब से सरोवर का जल पूर्ण मेघ की तरह अन्धकाराच्छन्न दीखता है। अतः तटप्रदेश पर घूमने वाले मयूर उसे प्रसन्नता के साथ देख रहे हैं किन्तु भोला-भाला चक्रवाक डरता हुआ उसके पास चक्र की तरह घूम रहा है ॥ ३९ ॥

[भ्रमरों का प्रतिबिम्ब काले मेघ और रात्रि दोनों तरह की भ्रान्तियों को उत्पन्न कर रहा है। मयूर तो उसे मेघ समझ कर आनन्द मानते हैं किन्तु चक्रवाक उसे रात्रि समझ बैठता है। रात्रि में वह अपनी प्रियतमा से वियुक्त हो जाता है। अतः रात्रि से वह खूब डरता है। इस प्रतिबिम्ब को रात्रि समझ कर दुःख के मारे चक्र जैसा नाच रहा है। वर्णित सामग्री से जल की अतिशय सौरभसम्पन्नता व्यक्त हो रही है ॥ ३९ ॥]

इदं च—

कुररभरसहं सहंसमालं मुदितमयूरचकोरचक्रवाकम्।
क इह सुरुचिरं विलोक्य प्रचरमते रमते नरो न रोधः ॥ ४० ॥

कुरुरेति ॥ प्रवरा मतिर्यस्य तत्संबोधनम् । इह रोधस्तटं विलोक्य को नरो न रमते क्रीडस्येव सर्वः। कथंभूतम् । कुरराणां भरमतिशयं सहते। तथा सह हंसमालया तथा मुदिता मयूराश्चकोराश्चक्रवाकाश्च यत्र । यतः सष्ठु रुचिरम् ॥४०॥

ओ प्रज्ञासम्पन्न महाराज, जहाँ कुरर भरे हैं, हंसों की पङ्क्ति है, प्रसन्न मयूर और चक्रवाक हैं ऐसे इस रमणीय तट को चिरकाल तक देख कर किस आदमी का मन यहाँ नहीं लगता ॥ ४० ॥

इतश्च—

बककृतनिनदं नदं न दम्भात्कृतसवनं सवनं भजन्त एते ।
निरुपमविभवं भवं स्मरन्तः प्रशमधना मुनयो नयोपपन्नाः ॥ ४१ ॥

बकेति ॥ प्रशम एव धनं येषां ते मुनयो नययुक्ताः । अनुपमसामर्थ्यं भवमीश्वरं स्मरन्तो बकैः कृतशब्दम् । तथा न दम्भात्कपटादपि तु धर्मवासनया कृतं सवनं स्नानं यत्र तम् । तथा सह वनैः सवनं वनयुक्तम् । नदं जलाधारविशेषम् । एते भजन्ते ॥ ४१ ॥

इधर—

शान्ति सम्पत्ति को रखने वाले नीतिसम्पन्न ये मुनि इस नदी तट पर जहाँ कपटपूर्वक स्नान करने वाले बगुले बोल रहे हैं, अनुपम ऐश्वर्य को धारण करने वाले भव (भगवान्, शंकर) को स्मरण करते हुए आडम्बर-शून्य यज्ञ कर रहे हैं ॥ ४१ ॥

[बगुले पानी में गोता इसलिये नहीं लगाते कि उन्हें पवित्र होना है । उनका उद्देश्य होता है पानी में कपटपूर्ण ढंग से चोंच दबाकर मछलियों को पकड़ना ॥ ४१ ॥]

विधूतपाप्मानः खल्वमी महानुभावाः ॥

तथाहि—

मुहुरधिवसतां सतां मुनीनामपविपदां विपदाङ्कपङ्कभाञ्जि ।
तटनिकटवनानि नर्मदायाः कथमिभवन्ति भवन्ति कल्मषाणि ॥४२॥

मुहुरिति ॥ इभवन्ति गजवन्ति तथा वीनां पक्षिणां पदमङ्के यत्र तथोक्तं पङ्कं भजन्ते तानि नर्मदायास्तटसमीपवनानि कर्मभूतानि अधिवसतां सतां विदुषाम् । अपगता विपद्येभ्यस्तादृशां मुनीनां कथं कल्मषाणि पापानि भवन्ति । भवन्त्ये-वेत्यर्थः ॥ ४२ ॥

निश्चित ही ये लोग सर्वथा निष्पाप हैं, क्योंकि—

पक्षियों के चरणों से चिह्नित पङ्क वाले तथा हाथियों से भरे हुए नर्मदा नदी के समीपवर्ती वनों में निवास करने वाले सज्जनों एवं मुनियों को पाप कैसे छू सकते हैं ॥ ४२ ॥

[वि + पद + अङ्क—पक्षियों के पैरों से चिह्नित। इभवन्ति—हाथियों से युक्त। नर्मदा नदी के पवित्र जल से समीपवर्ती वन भूमि पङ्किल हो ही गयी है। रेंगते हुए पक्षियों के पैरों के चिह्न उस पर पड़ गये हैं। जंगल इतने घने हैं कि हाथी आदि महान् एवं हिंस्र जानवर वहां मजे में रह सकते है। भयंकर जंगलों तथा कठिन परिस्थितियों में रहने के कारण मुनियों का तपस्यात्मक महत्त्व और बढ़ गया है ॥ ४२ ॥]

इतश्च—

क्वचित्प्रवरगैरिकासमसमुल्लसत्पल्लवं
लवङ्गलवलीलतातलचलच्चकोरं क्वचित्।
क्वचिद्गिरिसरित्तटीतरुणविस्फुरत्कन्दलं
दलन्निचुलमञ्जरीमधुनिरुद्धभृङ्गं क्वचित् ॥ ४३ ॥

क्वचिच्चटुलकोकिलाकुलितनूतचूताङ्कुरं
कुरङ्गकुलसेवितप्रबलसालमूलं क्वचित्।
क्वचित्प्रवरसंचरत्सुरवधूपदैः पावनं
वनं नयति विक्रियामिह मनो मुनीनामपि ॥ ४४ ॥ युग्यम् ॥

क्वचिदिति ॥ प्रवरं गैरिकं यत्र। तथा असममप्रतिमम्। सर्वोत्कृष्टमिति यावत्। तथा समुल्लसन्तः पल्लवा यत्र। पश्चाद्यथायुक्ति कर्मधारयः। गैरिकशब्दो नपुंसकः। 'प्रवरगैरिकोपम' इति वा पाठः ॥ ४३–४४ ॥

कहीं लाल रंग के अनुपम ढंग से चमकते हुए पल्लवों वाली लवङ्ग और लवली लताओं के नीचे चकोर घूम रहे हैं। कहीं पर्वतीय नदियों के तट पर होनहार चमकते हुए अङ्कुरों वाले वेंत की खिली हुई मञ्जरियों के पराग में भौंरे अंटके हुए हैं ॥ ४३ ॥

कहीं आम का नवीन कलिकाङ्कुर चंचल कोयलों से भरा हुआ है। कहीं विशाल साल वृक्षों की छाया मृगसमूह से सेवित हो रही है। कहीं उत्तमकोटि की देवाङ्गनाओं के चरणों से पवित्रित यह अरण्य मुनियों के चित्त में भी विकार ला देता है ॥ ४४ ॥

तदिदमद्यतनं दिवसमस्य सैन्यस्याध्वश्रमापन्नखेदापनुत्तिनिमित्तमधिवसतु देवः ॥

तदिति ॥ खेदापनुत्तिः खेदापनोदः ॥

अतः सैनिकों के मार्गश्रम की निवृत्ति के लिये आप आज के दिन यहीं निवास करें।

यत्र—

बायुस्कन्धमवष्टभ्य स्फारितैः पुष्पलोचनैः ।
वियद्विस्तारमेते हि वीक्षन्त इव पादपाः ॥ ४५ ॥

वायुस्कन्धमिति ॥ स्कन्धः संहत्यर्थोऽसार्थश्च । कुतोऽत्रावासः । हि यस्मात् तुङ्गाः पुष्पिताश्चात्र पादपाः सन्ति ॥ ४५ ॥

जहां हवा के कन्धे पर चढ़कर पुष्परूप नेत्रों को खोल कर ये पेड़ मानो आकाश का विस्तार देख रहे हैं ॥ ४५ ॥

अपि च येषाम्—

स्कन्धशाखान्तरालेषु पश्य जीमूतपङ्क्तयः ।
लम्बमाना विलोक्यन्ते चलद्वल्गुलिका इव ॥ ४६ ॥

और जिनकी मुख्य शाखाओं के बीच लटकती हुई बादलों की पंक्तियां रेंगती हुई वल्गुलिका की तरह दीख रहीं हैं ॥ ४६ ॥

येषां च—

उच्चैः शाखाग्रसंलग्ना मन्ये नूनं वनौकसाम् ।
कुर्वन्ति पुष्पसंदेहं निशि नक्षत्रपङ्क्तयः ॥ ४७ ॥

उच्चतर शाखाओं से संयुक्त ये नक्षत्र पंक्तियां रात में निश्चित ही वनवासियों को फूल का सन्देह उत्पन्न कर देती हैं ॥ ४७ ॥

[पेड़ इतने ऊँचे हैं कि रात को ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी शाखायें तारों को छू रही हैं । शाखाओं से सम्बद्ध प्रतीत होने वाले तारे फूल की तरह लग रहे हैं । वनवासी अचानक उन्हें फूल समझ बैठते हैं ॥ ४७ ॥]

इतश्च—

एतेषु प्रचण्डपवनाहततरुतलगलितसुगन्धिविविधविकचकुसुमप्रकरमकरन्दमापीय पुनः शिखरशाखाभिमुखमुत्पतन्त्यो विभान्ति दुरारोहतया कृताः केनापि निःश्रेणय इव श्रेणयो मधुलिहाम् ॥

इधर—

प्रचण्ड वायु के झोंके से पेड़ों के नीचे गिरे हुए तरह-तरह के खिले हुए फूलों का मधु पीकर पुनः पेड़ों की ऊँची शाखाओं की ओर उड़ती हुई भ्रमर पङ्क्तियाँ मानो किसी के द्वारा निष्पंक्तिबद्ध की तरह कर दी गयी हैं, क्योंकि पेड़ इतने ऊँचे हैं कि भ्रमर उन पर चढ़ नहीं पाते ॥

इतश्च—

निश्चलानां सैन्यभयेन तुङ्गतरुशिखरपञ्जरपुञ्जितगोलाङ्गूल-

मण्डलानां निर्यन्नवप्ररोहाङ्कुराकाराः कुर्वन्ति वनदेवतानां क्रीडान्दोलनदोलारज्जुशङ्कामधोविलम्बिलाङ्गूललतिकाः ॥

सैनिकों के भय से चुपचाप बड़े बड़े पेड़ों की ऊँची डालियों की छाया में इकट्ठे हुए लंगूर बन्दरों की, निकलते हुए नवीन अङ्कुर के आकारवाली नीचे लटकती हुई पूंछें वनदेवताओं के खेलने के लिए झुला की रस्सी की आशंका उत्पन्न कर दे रही हैं।

[वन्दरों की लम्बी-लम्बी पूँछें रस्सी की तरह लटकी हुई हैं। ऐसा लगता है कि वनदेवता लोगों की झूले की रस्सी लटकी हों।]

इतश्च—

चकासत्युड्डीयमानास्तरुशिरःशिखरशाखाग्रस्खलनविलग्नग्रहगणविमानपङ्क्तिपताका इव विहगावलयो निश्चलम् ॥

इधर उड़ती हुई पक्षिपंक्तियां पेड़ों की ऊँची डालियों से टकरा कर अंटके हुए तारों के विमानसमूह की पताका की तरह सुशोभित हो रही हैं।

[पेड़ इतने ऊँचे हैं कि ग्रहगण (तारकण) उनसे चिपके हुए-से प्रतीत होते हैं। पेड़ों की शाखाओं के अग्रभाग में उड़ती हुई पक्षियों की मण्डली उन तारक विमानों की पताका की तरह प्रतीत होती है]।

इतश्च—

विजृम्भमाणमञ्जरीजालेषु सर्वर्तुविकासिसहकारवनेषु वनदेवताभिरुद्दामदवदहनप्रतीकारार्थमनागतमेव संगृहीतवारिगर्भाम्भोदपटलमिवालोक्यते कोकिलाकुलकदम्बकम् ॥

इधर—

सभी ऋतुओं में विकसित होने वाले आम के बगीचों में खिलती हुई मञ्जरियों पर कोयलों के घने समूह को वनदेवताएं जंगल की विशाल अग्नि को बुझाने वाले जल भरे मेघ की तरह देख रही हैं।

इतश्च—

विकसितसितपुष्पपिण्डपाण्डुरशिखराः सुधाधवलितोर्ध्वभूमयो विलासप्रसादा इव कुसुमसायकस्य जराधवलमौलयः कञ्चुकिन इव वनदेवतानाम्, उन्मादयन्ति मनोऽमन्दमुचुकुन्दपादपाः ॥

इतश्चेति ॥ गोलाङ्गूलानां कृष्णमुखमर्कटानां लाङ्गुललतिकाः पुच्छवल्लयः। अतिलोमशत्वान्निर्यन्नवप्ररोहाङ्कुर आकारो यासाम् ॥

खिले हुए सफेद पुष्पों के कारण श्वेत शिखर वाले मुचुकुन्द के पेड़ चुने

से पुते हुए विलास भवन की छत की तरह तथा कामदेव के पके बाल वाले कञ्चुकी की तरह वनदेवताओं के मानस को उन्मत्त बना देते हैं।

तदेवंविधेषून्मुकुलविगलितबहलमकरन्दसीकरासारसुरभितभूतलेषु मुग्धमृगपरिहृतदावानलज्वालायमानोन्मदशबरसीमन्तिनीचरणप्रहारविकशिताशोककाननेषु नवजलधरनिकुरम्बकान्तितमालतरुशिरःस्थितशब्दानुमेयमाद्यन्मयूरमण्डलेषु मदनालसपुलिन्दराजसुन्दरीशिक्ष्यमाणवनकपोतकुक्कुटकुक्कुहकुलकुहरितेषु कूजत्कुररपरिवारितसरःपरिसरेषु चलच्चकोरसारसरवरमणीयेषु विहरतु देवः सह सैन्येन नर्मदोर्मिमन्दानिलान्दोलितलतापल्लवेषु वनेषु ॥

तदेवमिति ॥ मुग्धमृगेत्यादि वनविशेषणम् । लौहित्यान्मुग्धमृगैर्दावानलभ्रान्त्या कुसुमिताशोककाननानि परिहृतानीति भावः ॥

इस तरह के जंगल में आप ससैन्य विहार करें। यहाँ की पृथ्वी खिलती हुई कलियों के गाढ़े पराग बिन्दुओं की वर्षा से सुगन्धित हो गई है। अशोकवन शबर युवतियों के पद प्रहार से खिल उठे हैं। इनके इस विकास को वनाग्नि की ज्वाला समझ कर भोले मृग (जंगल) छोड़ दिये हैं। नवीन मेघसदृश कान्ति धारण किये हुए तमाल वृक्ष के ऊपर बैठे हुए मतवाले मयूर केवल शब्दमात्र से पहचाने जाते हैं। कामातुर, तन्द्रायुक्त शबरपतियों की युवतियों द्वारा सिखाये जाते हुए कुक्कुटों और कुक्कुहों की ध्वनि से गुञ्जित हो उठा है। सरोवर का तट कूजते हुये कुररों से घिरा हुआ है और भ्रमणमग्न सारसों की ध्वनि से रमणीय प्रतीत हो रहा है। नर्मदा की लहरियों के कारण बोझिल बने हुये मन्द पवन से लता पल्लव कम्पित हो रहे हैं।

राजापि श्रुतशीलेन दर्शितांस्तांस्तान्देशानवलोक्य चिन्तितवान् ॥

राजा भी श्रुतिशील द्वारा दिखाये हुये उन-उन स्थानों को देखकर सोचने लगा।

'कृतक्रीडाः क्रौडैर्मदकलकुरङ्गीहृतमृगाः
परिभ्राम्यद्भृङ्गाः परभृतकुलाक्रान्ततरवः।
वनोद्देशाः पौष्पैः सुरभितदिगन्ताः परिमलै-
र्न चेतः कस्यैते विलसितविकारं विदधति ॥ ४८ ॥

सूकर खेल चुके हैं, मद के कारण मनोहर मृगियां मृगों को अपनी ओर आकृष्ट कर ली हैं. भौंरे झूम रहे हैं, कोयल से वृक्ष भरे हुये हैं, पुष्पों के पराग से दिशायें सुरभित हो गयी हैं; ऐसा यह वनप्रदेश किसके चित्त में विकार का विलास नहीं उत्पन्न कर देता ॥ ४८ ॥

इतश्च—

वीचीनां निचयाः स्पृशन्ति जलदानुद्गन्धिसौगन्धिका
नृत्यत्केकिकदम्बकानि विकसद्वीरुन्धि रोधांसि च।
धत्ते सैकतमुन्नदन्मदकलक्रौञ्चावलीसारसा-
नस्याः पद्मपरागपिङ्गपयसः सेव्यं च सिन्धोर्न किम् ॥४९॥

वीचीनामिति ॥ उद्गन्धिसौगन्धिका वीचिनिचया जलदान् स्पृशन्ति। रोधांसि च स्पृशन्ति। तदेवं यस्याः सिन्धोः, किं वा न सेव्यम्। चकारो वार्थे ॥ ४९ ॥

उत्कृष्ट गन्ध वाले कमलों से पूर्ण तरङ्गों का समूह मेघों को छू रहा है; तटप्रदेश पर मयूरवर्ग नाच रहा है; लतायें पल्लवित हो रही हैं; बालुकामयी भूमि बोलते हुए सुन्दर युवक क्रौञ्चों के समूह तथा सारस पक्षियों को धारण कर रही हैं; कमलों के पराग से पीले जल वाली इस नदी की कौन सी चीज ग्रहण करने योग्य नहीं है ॥ ४९ ॥

तदुचितमिहाद्य दिवसमावासं कर्तुम्' इति विचिन्त्य भ्रूकोण-संज्ञाज्ञापितसेनासन्निवेशस्तत्कालमेव 'विरचयत तुरङ्गममन्दुराः सरसदीर्घदूर्वानलनीलनिम्नस्थलीषु, कुरुत कायमानानि सरित्सेव्य-सैकतेषु, उन्नमयत पटकुटीः कूलकाननेषु, आलानयत मदमत्तमतङ्ग-जान् मदकण्डूकपोलकाषसहेषु सरलसालसल्लकीसर्जार्जुनस्कन्धेषु, दूरमुत्सारयत शैवलशिलाजालकाष्ठकूटकण्टकपटलानि, समीकुरुत विषमभूभागान्' इति सेनापतिप्रमुखमुखरलोककलकलमुत्तालमुत्थित-मसहमानस्तद्विरामावसरं प्रतिपालयन्नेकान्तेऽन्यतमप्रदेशे तस्याः सरितः सूक्ष्ममुक्ताफलक्षोदधवलवालुकापुलिनपृष्ठ पवास्थानगोष्ठीं बबन्ध ॥

तदुचितमिति ॥ मन्दुरा वाजिशाला। कायो मात्यत्रेति कायमानं लोकप्रसिद्धया रोहिषादितृणमयावासविशेषः। मदमत्तमतङ्गजानिति। मदेन वीर्यविपाकेन मत्ता नत्वौषधादिप्रयोगात्। जालानि मर्कटिकाख्यक्रमिकृतगृहाणि। कूटं वप्रम् ॥

अतः आज यहीं पर ठहर जाना अच्छा है। यह सोचकर कटाक्षमात्र के संकेत से सेना के विश्राम की सूचना दिया। "अतः तत्काल ही लम्बी-लम्बी दूब और नल घासों वाली हरी जगह पर घोड़ों के रहने की जगह बनाओ। निवास के लिए बालुकामय तट पर कुटीर बनाओ। नोल पत्थरों वाले जंगलों में तम्बू तानो। अधिक खुजलाहट व्यक्त करने वाले कपोलों के घर्षण को सह सकने में समर्थ सीधे-सीधे इन साल, सल्लकी, सर्ज और अर्जुन वृक्ष के तनों में मदमत्त हाथियों को बांध दो। शैवालों, पत्थरों, काष्ठों तथा काँटों को दूर

हटाओ। ऊँची नीची जमीनों को बराबर करो।" इस तरह सेनापति आदि मुख्य लोगों के बोलने पर जनसामान्य से उठी हुई जोरों की कलकल ध्वनि को न सहता हुआ उस कोलाहल बन्द होने के अवसर की प्रतीक्षा में उस नदी का एक एकान्त स्थान पर जहाँ बालुकामयी भूमि मुक्तामणि के चूर्णित सूक्ष्म कणों के कारण धवल हो गयी थी, अपनी निवास गोष्ठी की रचना किया।

अथ नातिदूरे पुरोऽस्य शीतशैवलचक्रवाले चरतश्चक्रवाककदम्ब-कस्य मध्ये कोऽप्युत्क्षिप्य रक्षपुटम्, उन्नमय्य ग्रीवाग्रम्, अनङ्ग-परवशो दूरादुपसर्पन्ननुरागिणीं काञ्चिच्चक्रवाकीं, दर्शितचाटुचातुर्य-श्चक्रवाकयुवा दृष्टिपथमवातरत् ॥

इनके समीप ही शीतल शैवालपुञ्ज में चरते हुए चक्रवाक वर्ग के बीच से अपने पंखों को फड़फड़ा कर, गर्दन को ऊपर उठाकर, कामवशीभूत कुशल, चाटुकारिता दिखाता हुआ, किसी अनुरागिणी चक्रवाकी की ओर आता हुआ कोई चक्रवाक युवक उन्हें दीख गया।

अपरे च चत्वारो राजहंसास्तामेव चक्रवाकीं कामयमानास्तमा-पतन्तमन्तरान्तरा निपत्य स्खलयाम्बभूवुः ॥

और भी चार राजहंस उसी चक्रवाकी को चाहते थे। अतः आते हुए उस चक्रवाक युवक को बीच-बीच में हमला कर रोक दिये।

तांश्चावलोक्य राजा विहसन्नासन्नवर्तिनं श्रुतशीलमाबभाषे ॥

'वयस्य, विलोक्यतामिदमसमञ्जसम् ॥

उन्हें देख कर हंसते हुए राजा ने श्रुतिशील से कहा—

मित्र, यह विषमता देखा।

अमी राजहंसाः सतीष्वपि स्वजात्युचितानुचरीषु कथमन्यासक्ता-मपीमां चक्रवाककामिनीं कामयन्ते ॥

न खल्वेषामियमनङ्गभूमिः ॥

न खल्विति ॥ यथा चक्रावाकी चक्रवाकस्य सजातीया, एवं मनुष्यजातेर्नलस्य मानुषी दमयन्त्युचिता। यथा हंसानां सानुचिता, एवं लोकपालानामपि दमयन्तीति ॥

इन्हीं की जाति वाली, इनके पीछे चलने वाली राजहंसियों के रहने पर भी ये राजहंस दूसरे में अनुरक्त इस चक्रवाक युवती को क्यों चाह रहे हैं?

इन लोगों के काम का पात्र यह नहीं है।

अथवा—

किमु कुवलयनेत्राः सन्ति नो नाकनार्य-
स्त्रिदिघपतिरहल्यां तापसीं यत्सिषेवे।

हृदयतृणकुटीरे दीप्यमानेस्मराग्ना-
वुचितमनुचितं वा वेत्ति कः पण्डितोऽपि ॥ ५० ॥

किमु इति ॥ ह्रस्वा कुटी कुटीरः। 'ह्रस्वे' इत्यधिकारे 'कुटीशम'-इति सूत्रेण रप्रत्ययः ॥ ५० ॥

या—क्या नीलकमल सदृश नेत्र वाली स्वर्ग की रमणियाँ नहीं थीं कि स्वर्ग के स्वामी इन्द्र तपस्विनी अहल्या के साथ रमण किये ? जब हृदयरूप तृण मन्दिर में काम की आग धधक उठती है तो विद्वान् भी उचित अनुचित पर विचार नहीं करता है ॥ ५० ॥

एवंवादिनि राजनि, अकस्मात्कोमलकण्ठकुहरप्रेङ्खोलनालंकारसुन्दरोऽमन्दमूर्च्छनावच्छिन्नसरसस्वरस्वरूपः प्रसन्नप्रयुज्यमानतानविशेषाभिव्यक्तिस्पष्टश्रुतिसुभगो गगने गान्धारग्रामगामी गीतध्वनिरुदचरत् ॥

राजा इस तरह कह ही रहे थे कि अचानक कोमल कण्ठनली से निकलने के कारण अलङ्कार सदृश, सुन्दर द्रुतगामी मूर्च्छनाओं से युक्त मधुर स्वर विशिष्ट, बहुत अच्छी तरह प्रयुक्त तान के माध्यम से प्रकट, स्पष्टरूप से कानों को मधुर लगने वाली, गान्धारपद्धति की गीतध्वनि आकाश में गूज उठी।

अवाहीच्च चलदलिपटलपीयमानापूर्वपरिमलोद्गारिपारिजातमञ्जरीमकरन्दबिन्दुवर्षवाही वायुः ॥

भनभनाते हुए भ्रमर वर्ग द्वारा पीये जाते हुए अपूर्व पराग बरसने वाले परिजात पुष्पों की मञ्जरी के परागकणों की वर्षा ढोने वाली हवा बही।

अथ कौतुकौत्तानितराननेन नरपतिनाप्यदृश्यत, शातकुम्भभङ्गपिशङ्गप्रभामण्डलमध्यवर्तिनः प्रधानपुरुषस्याग्रे गृहीतजात्यजाम्बूनददीर्घदण्डः कुण्डलालंकारवानुन्मिषन्मन्दारमुकुलमालामण्डितमौलिरवतरन्नम्बरान्निर्निमेषः सुवेशः पुरुषः ॥

स्वर्णखण्ड की तरह पीत कान्ति राशि के बीच किसी प्रमुख पुरुष के आगे उत्तम स्वर्ण का दण्ड लिये हुए, कुण्डल पहने, खिलती हुई मन्दार कलियों की माला से शिर को अलंकृत किये, पलकहीन, सुन्दर वेष से मण्डित, आकाश से उतरते हुए किसी पुरुष को उत्सुकता से ऊपर की ओर मुँह उठाकर राजा ने देखा।

अवतीर्य च सोऽतिविस्मयविस्फारितविलोचनमवनिपालमवादीत् निषधेश्वर, त्वरितमुत्तिष्ठ। अर्घाय सज्जो भव ॥ किं न पश्यसि—

उतरकर उसने अत्यन्त आश्चर्य के कारण खुली हुई आंखों वाले उस पृथ्वी-पाल से कहा—"निषधपति, शीघ्र उठिये। पूजन के लिये तैलार हो जाइये। क्या देखते नहीं ?

अवतरति घृताचीस्कन्धविन्यस्तहस्तः
श्रुतिसुखकृतगीते किंनरे दत्तकर्णः।
किमपि सपरिरम्भं रम्भयारभ्यमाण-
व्यजनविधिरधीशः स्वर्गिणामेष देवः॥ ५१॥

यह देवताओं के स्वामी इन्द्र हैं। घृताची नामक अप्सरा के कन्धे पर हाथ रक्खे हैं। कानों को सुख देने वाली गीतियों को गाने वाले किन्नरों की ओर कान लगाये हैं। अपूर्व आलिङ्गनपूर्वक रम्भा (अप्सरा) पंखा झल रही है॥५१॥

अपि च—

विरचितपरिवेषाः स्वाभिरङ्गप्रभाभि-
र्भुवनवहनभारोद्धारधुर्यांसपीठाः।
उरसि परिविलोलद्दीर्घदामान एते
यमवरुणकुबेराः स्वामिनो लोकपालाः॥ ५२॥

और—संसार का भार धारण करने में समर्थ उत्कृष्ट कन्धों वाले, अपनी अङ्गकान्ति से छटा मण्डल बनाये हुए, वक्षःस्थल पर हिलती हुई लम्बी मालायें पहने हुए, ये लोकपाल स्वामी यम, वरुण और कुबेर हैं।" ॥ ५२ ॥

राजा तु तदाकर्ण्य ससंभ्रमोत्थानवशवलितोत्तरीयाञ्चलस्खल-त्कनककंकणरणत्कारमुखरितमाधाय मूर्ध्नि संपुटितपाणिपल्लवयुगल-माश्चर्यरसरभवशमुच्छ्वास्यमानसर्वाङ्गपुलकः कतिपयपदान्यभिमुखं सह परिजनैनोच्चलितवान्॥

राजा तो यह सुनकर घबड़ाहट के साथ उठने के कारण फड़फड़ाते हुए दुपट्टे के अञ्चल के संस्पर्श से सोने के कंकण जिनमें मुखरित हो उठे थे ऐसे करपल्लव युगल को जोड़कर शिर से लगाया। आश्चर्य रस के आवेश में लम्बी सांसे भर रहा था। पूरे अङ्गों में रोमाञ्च हो आया था (इस तरह की मुद्रा में) अपने नोकरों के साथ कुछ कदम सामने की ओर बढ़ा।

अथ सकलसुरशिरःशेखरायमाणचरणरेणुरनेकनाककामिनीकुच-कुम्भकुङ्कुममञ्जरीमुद्राङ्कितविपुलवक्षःस्थलीदृश्यमानमहानीलमणि-मण्डननिभभव्यवृत्रशस्त्रव्रणः, श्रवणशिखरारोपितप्रत्यग्रपारिजातमञ्ज-रीगलद्बहलकिञ्जल्ककणानुपान्ते गायतस्तुम्बुरोः साक्षादमृतायमान-

गीतरसतुषारानिव परिपूर्णकर्णोद्गीर्णान् कपोलपालिलग्नानुद्वहन्, अनवरतशचीचुम्बनसंक्रान्तताम्बूललाञ्छनायमानाच्छाच्छहरिचन्दननिरुद्धबन्धुरस्कन्धसंधिः, अन्धक इव हारयष्ट्यास्फालितवक्षःस्थलः, विन्ध्यगिरिरिव सहस्राक्षः, पन्नगेन्द्र इव कुण्डली पातालमुद्भासमानश्च, *कलिकालशापावतीर्णसरस्वतीगीतप्रवाह इव मत्तमातङ्गगामी, दिशि दिशि विकीर्णकनककपिशांशुरंशुमानिवाविकृतपद्मरागारुणप्रभामण्डलमण्डनः, सह लोकपालैर्मघवान्पुरंदरः पूर्वदिग्भागाम्बरादवातरत् ॥

अथ सकलेति ॥ अथानन्तरं पूर्वदिग्भागव्योम्नः पुरन्दरोऽवातरत् । हारयष्टिर्मुक्तालता । अन्यत्र हरस्येयं हारी यष्टिः शूललक्षणा । अन्धको दैत्यविशेषः । सहस्रमक्षीणि यस्य । 'बहुव्रीहौ'–इति समासान्तः षच् । विन्ध्यपक्षे सहस्रशब्दः प्राचुर्यवचनः । अक्षा बिभीतकाः । कुण्डलं कर्णालंकारः तद्वान् । तथा पाता रक्षिता । अलमत्यर्थं रोचमानश्च । पन्नगेन्द्रस्तु कुण्डलाकारः । तथा पाताले सुरपातालभुक्तया भासमानः । मत्तमातङ्ग औचित्यादैरावणः क्षीबचाण्डालश्च । पद्मरागस्य मणेर्यदरुणं लोहितं प्रभामण्डलं तन्मण्डनमस्य । अंशुमांस्तु अविकृतः पद्मानां रागोऽरुणस्य प्रभा मण्डलं बिम्बम् । एतानि मण्डनं यस्य ॥

* कलिकालेति ॥ पुराणादौ किल श्रूयते—पुरा सरस्वतीदधीच्योर्देवत्वविषये संवादे जायमाने क्रुद्धेन दधीचिना शप्ता सती सरस्वती कलिकाले चाण्डालकुलेऽवततार । अतएव कलिकाले चाण्डाला एव मधुरं गायन्तीति विवृतिनामकटीका ॥

इसके बाद अपनी चरणधूलि से देवताओं के शिर को अलंकृत करने वाले महाराज इन्द्र लोकपालों के साथ पूर्व दिशा की ओर से उतरे। उनका विशाल वक्षःस्थल अनेक रमणियों के स्तनकलश पर बने हुए कुङ्कुम के मञ्जरी-चिह्नों से चिह्नित था और उस पर वृत्रासुर के शस्त्रों के चिह्न विशाल नीलमणि के अलङ्कार की तरह सुन्दर लग रहे थे। कानों पर अत्यन्त नवीन पारिजात की मञ्जरी रक्खी हुई थी। उससे निकलते हुए गाढ़े पराग-बिन्दु कपोलभाग पर अँटके हुए थे। ऐसा प्रतीत होता था कि समीप में गाते हुए तुम्बुरुओं के साक्षात् अमृतसदृश गीतरस के कण जब कानों में भर गये और उनके ठहरने के लिये स्थान न रहा तो बाहर निकल आये थे। सदा शची (इन्द्राणी) के चुम्बन से लगे हुए ताम्बूल-चिह्न सदृश भव्य हरिचन्दन के लेप से ऊँचे-नीचे कन्धों के जोड़ सुन्दर लग रहे थे। अन्धकासुर के वक्षःस्थल पर हारयष्टि (शंकर जी का त्रिशूल) लगी हुई थी वैसे इनके वक्षःस्थल पर भी हारयष्टि (मुक्ता की माला) लगी हुई थी। विन्ध्याचल जैसे सहस्राक्ष (बहुत से रुद्राण के पौधों से युक्त) है वैसे वे भी सहस्राक्ष (हजार नेत्रों वाले) थे। सर्पराज जैसे कुण्डली (फेटा बनाये रहते) हैं और पाताललोक को उद्भासित करते हैं वैसे ये भी कुण्डली (कुण्डल धारण किये

हुए) थे और पातालमुद्भासमानः (अलं पाता, पूर्णरक्षक तथा भव्य कान्ति वाले) थे। कलि के समय में शाप के कारण अवतार ली हुई सरस्वती का गीतप्रवाह जैसे मत्तमातङ्गगामी (मतवाले चाण्डाल में संगत रहता) है वैसे वे भी मत्तमातङ्गगामी (मतवाले हाथी पर चढ़कर चलने वाले) थे। विभिन्न दिशाओं में स्वर्ण की तरह पीतकान्ति बिखेर रहे थे। विशुद्ध पद्मरागमणि की अरुण कान्ति से अलंकृत होकर सूर्य सदृश प्रतीत होते थे।

[इन्द्र-पक्ष में पातालम् शब्द का विच्छेद अलं पाता है। (पाता + अलम्)। अर्थात् इन्द्र पर्याप्त रक्षक हैं। उद्भासमानः—भव्यकान्तियुक्त हैं। सर्पराज-पक्ष में पाताल शब्द लोक का वाचक है। पाताल लोक अंधेरे से भरा रहता है। सर्पराज के मणि से ही वह उद्भासित होता है।

मत्तमातङ्गगामी—एक बार दधीचि और सरस्वती में विवाद हो गया। दधीचि के शाप के फलस्वरूप सरस्वती को कलियुग में चाण्डाल के घर अवतार लेना पड़ा। तभी से कहा जाता है कि कलि में मधुर गीत प्रवाह चाण्डालों में ही पाया जाता है। इसी बात को ध्यान में रखकर गीतप्रवाह को मत्तमातङ्गगामी कहा गया है ॥]

अवतीर्य चक्षुषां सहस्रेणोन्मीलन्नीरजवनानुकारिणा निरूप्य पादयोः पुरः पतितमष्टाङ्गाश्लिष्टभूतलमिमम्, ऐरावतकुम्भकूटास्फालनकर्कशाङ्गुलिना, दुर्दान्तदैत्यदानववधूवैधव्यदानशालामूलस्तम्भेन, शचीकुचकलशसंस्पर्शसंक्रान्तकुङ्कुमपत्त्रवल्लीकेन, दक्षिणपाणिना, सहेलमुन्नमय्य मूर्ध्नि पस्पर्श ॥

उन्होंने उतर कर खिलते हुए कमलवन सदृश अपने हजारों नेत्रों से, पैरों के सामने साष्टाङ्ग पृथ्वी पर पड़े हुए उस (राजा) को देखकर शीघ्र ही उठाकर उनके शिर पर दाहिना हाथ फेरा। उनके हाथ की अंगुलियां ऐरावत के क्लिष्ट कुम्भस्थल के स्पर्श से कर्कश हो गयी थीं। उनका हाथ बड़ी कठिनाई से दमन किये जाने वाले दानवों की पत्नियों के लिये वैधव्य दान रूप भवन का आधार-स्तम्भ था और उनमें शची के स्तन कलश के स्पर्श से कुङ्कुम की बनी हुई पत्र-रचना मुद्रित हो गयी थी।

कृत्वा च कुशलप्रश्नालापव्यवहारानुच्चैः काञ्चनासनं समुल्लसन्मणिमयूखमञ्जरीजालजटिलमवनिभुजा स्वभुजोपनीतमध्यतिष्ठत् ॥

कुशलप्रश्नविषयक व्यावहारिक बातों के बाद वे राजा द्वारा अपने हाथों से लाये हुए खिलती हुई मञ्जरी सदृश मणिकिरणपुञ्जवाले स्वर्ण के ऊँचे सिंहासन पर बैठे।

उपविष्टेषु यथोचितासन्नमासनेषु यमवरुणकुबेरप्रमुखेषु देवेषु क्रमेण कृतोचिताचारः पुरः पृथ्वीपृष्ठ एव विनयान्निषद्य निषधेश्वर-पुरंदरमवादीत् ॥

समीप में ही यम, वरुण, कुबेर आदि गणप्रमुख देवताओं के उपयुक्त आसन पर बैठ जाने पर क्रम से उचित सत्कार कर नम्रतापूर्वक पृथ्वी पर ही उनके सामने बैठकर निषध-सम्राट् इन्द्र से बोले—

दिष्ट्या दिवौकसां नाथ जातो युष्मत्समागमात् ।
आकल्पं कीर्तनीयानां श्रेयसामस्मि भाजनम् ॥ ५३ ॥

देवताओं के स्वामी ! भाग्य की उत्कृष्टता के कारण आपके आगमन से सर्वदा के लिये मैं प्रशंसनीय मङ्गलों का पात्र बन गया हूँ ॥ ५३ ॥

अपि च—

इष्ट्वा क्रतून्युगशतानि तपश्चरित्वा
वाञ्छन्ति संगमसुखं मुनयोऽपि येषाम् ।
तेषामनुग्रहकृतां स्वयमेत्य मेऽद्य
युष्माकमादिशत किं प्रियमाचरामि ॥ ५४ ॥

और—

यज्ञ कर और सैकड़ों युगों तक तपस्या कर, मुनि लोग जिनके मिलने की आकाङ्क्षा करते हैं वह आप कृपाकर स्वयं ही आ गये हैं। अतः आज्ञा दीजिये, मैं आपका क्या प्रिय करूँ ॥ ५४ ॥

इति प्रकाशितप्रश्रयालापे पार्थिवपुंगवे पुरंदरो दरदलितकुन्द-कलिकाकान्तदन्तद्युतिद्योतिताधरदलमीषद्विहस्य लीलावलितकंधरः कुबेरमुखमवलोकयाञ्चकार ॥

इति प्रकाशितेति ॥ दरदलितेत्यत्र दरेत्यव्ययमीषदर्थे ॥

इस तरह राजा के नम्रतापूर्ण संलाप व्यक्त करने पर इन्द्र थोड़ी खिली हुई कुमुद की कली सदृश चमकते हुए दाँतों की कान्ति से अधरदल को प्रकाशित करते हुए मुस्कुरा कर लीलापूर्वक कन्धे को घुमाकर कुबेर का मुख देखने लगे।

सोऽपि 'निषधेश्वर, श्रूयतामस्मदागमनकारणम् ॥

वे भी, 'निषधेश्वर, सुनिये हम लोगों के आगमन का प्रयोजन।

'अस्ति विदर्भाधिपतेर्भीमभूमिपालस्य सुता सुतारनयननिर्जितेन्दीवरा वरार्थिनी निजकान्तितिरस्कृतत्रिदिवनारीरूपसंपत्तिः कुन्ददन्ती दमयन्ती नाम ॥

विदर्भ देश के राजा भीम अपनी लड़की—जिसने अपनी सुन्दर कनीनिका वाली आखों से नीलकमलों को भी जीत लिया है, अपनी कान्ति से स्वर्ग की रमणियों को भी तिरस्कृत कर दिया है, के लिये वर की खोज में हैं।

तस्याश्च चम्पकदलावदातदेहायाः किल स्वयंवरमहोत्सवः सांप्रतं प्रस्तुतः' इति नारदादधिगम्य वयमपि विदर्भाधिपतिपुरं प्रस्थिताः ॥

चम्पक दल-सदृश स्वच्छ देहवाली उस (दमयन्ती) का स्वयंवर महोत्सव होने वाला है। नारद द्वारा यह बात जानकर हम लोगों ने विदर्भ-नरेन्द्र की नगरी के लिये प्रस्थान किया है।

किंतु लघयति पुरुषं स्वमुखेनार्थिभावो यतस्तत्र गत्वापि दमयन्तीं किं ब्रूमो वयमिन्द्रादयो लोकपालास्त्वामर्थयामह इत्यसदृशं महिम्नोऽस्मद्विधेषु, स्पृहणीयरूपासि कं नोत्सुकयसीत्यनुचितमपरिचितेषु चाटुचातुर्यम्, अजरसः खल्वमरा वयमिति ग्राम्यः स्वप्रशंसोपक्रमः, प्राप्नुहि त्रयाणामपि लोकानामाधिपत्यमस्मत्सङ्गमादिति महत्प्रागल्भ्यप्रलोभनम्, अल्पायुषो मनुष्यास्तदस्माकं देवानां मध्ये कश्चिद्वृणीष्वेति पापीयः परदोषोदाहरणद्वारेणाभ्यर्थनम् ॥

किन्तु अपने ही मुख से अपनी याचकता का वर्णन करना व्यक्ति को हल्का बना देता है। वहाँ जाकर भी हमलोग दमयन्ती से क्या कहें। यदि यह कहें कि "हम इन्द्र आदि लोकपाल तुम्हारी याचना करते हैं", तो यह हम जैसे लोगों की मर्यादा के प्रतिकूल है। "तुम्हारा रूप बड़ा ही आकाङ्क्षणीय है अतः किसे नहीं उत्कण्ठित कर देती हो" इस तरह की चाटुकारितामूलक कुशलता किसी अपरिचित व्यक्ति पर दिखाना अनुचित है। "हम देवजन कभी वृद्ध नहीं होते" यह असभ्य ढंग की अपनी प्रशंसा होगी। "हम लोगों के साथ से तीनों लोकों का साम्राज्य प्राप्त करो" यह अत्यन्त धृष्टतापूर्ण प्रलोभन होगा। "मनुष्य अल्पायु होते हैं अतः हम देवताओं में से ही किसी को चुनो" इस तरह दूसरों में दोष दिखाकर याचना करना पापपूर्ण कार्य है।

अतो देशकालकार्योक्तिकुशलस्त्वमुच्यसे। गच्छाग्रे, भव दूतो देवानामशेषवैदग्ध्यविशेषोक्तिकोविद, किमन्यदिह शिक्ष्यसे, तैस्तैरुपायैः ताभिस्ताभिः कलाभिः, तैस्तैः प्रलोभनप्रकारैः, क्रियतां देवकार्यम्, आर्याणां प्रायः परोपकारकरणार्थमेव जन्म च जीवितं च, न च भवन्तमस्मदनुभावादन्यः कोऽपि कन्यान्तःपुरे रहस्यपि वर्त्तमानां विदर्भेश्वरसुतामुपसर्पन्तमुपलक्षिष्यते' इत्यभिधाय व्यरंसीत् ॥

तुम देश, काल, कार्य तथा बोलने में अत्यन्त निपुण हो। अतः तुम से कहा जाता है, "आगे चलो। देवताओं का दूत बनो। समस्त सहृदयोचित

विशेष उक्तियों के विद्वान्, तुम्हें क्या सिखाना है। उन उन उपायों से, उन उन कलाओं से, उन उन प्रलोभन-प्रकारों से, देवताओं का कार्य करो। आर्यों को प्रायः परोपकार ही करने के लिये जीवन और जन्म मिला है। हम लोगों के प्रभाव से कन्यान्तःपुर के एकान्त में भी बैठी हुई विदर्भराज की लड़की के पास जाते हुए तुम्हें कोई भी दूसरा आदमी नहीं देख सकेगा।' यह कहकर रुक गये।

नलोऽप्येतदाकर्ण्य तदिदं सङ्कटम् 'इतो व्याघ्र इतस्तटी, इतो दवाग्निरितो दस्यवः, इतो दुष्टदन्दशूक इतोऽप्यन्धकूपः' इति न्यायात्। इतः कर्णान्तकृष्टशरासनो मर्मप्रहारी प्रहरति मकरध्वज इतश्चायमेतेषामलङ्घनीय आदेशः। तन्न जानीमः किमत्रोत्तरम्। एकत्रार्थेऽस्माकं भवतां च प्रवृत्तिरिति प्रणयप्रार्थनाभङ्गकारिणी विहतविनया प्रतिकूलोक्तिः, अनभिज्ञोऽस्मि दूतोक्तीनामिति शाठ्यम्, असमर्थोऽस्मि संदिग्धक्रियाकारितायामित्याज्ञालङ्घनम्, आज्ञालङ्घनं च सेतुबन्धनमिव स्खलयति श्रेयःस्रोतः, षण्ढमुखदर्शनमिव वर्धयत्यलक्ष्मीम्, रजस्वलाभिगमनमिव हरत्यायुः, इत्यनेकविधमवधार्य 'न नाम दुरधिगमाः केऽपि पदार्थास्तत्रभवतामशेषजगदीश्वराणाम्, न च न जानीथ ममापि प्रसिद्धमध्यवसायम्, एवं स्थितेऽप्येष वः करोम्यादेशम्, आदिष्टपरामर्शो न श्रेयानादेशकारिणः, किंतु बलीयान्परतो विधिः प्रमाणम्' इत्यभिधाय भक्त्या भयेन च देवानां दौत्यादेशं समर्थितवान्॥

नल ने भी सुनकर, "यह बड़ा संकट है। 'एक ओर व्याघ्र है तो दूसरी ओर खाई का किनारा। एक ओर जंगल की आग है तो दूसरी ओर लुटेरे। इधर दुष्ट सर्प है तो उधर अन्धकूप (विशाल गड्ढा)' इस न्याय के अनुसार एक ओर तो कानों तक बाणों को खींच कर हृदय पर चोट पहुँचाने वाला कामदेव प्रहार कर रहा है और दूसरी ओर इन लोगों की अलङ्घनीय आज्ञा है। मालूम नहीं होता यहाँ क्या उत्तर है।

"एक ही वस्तु के लिये हमारी और आप लोगों की प्रवृत्ति है" यह स्नेहपूर्ण प्रार्थना को नष्ट कर देने वाली विनयहीन प्रतिकूल उक्ति होगी। "मैं दूत की तरह बोलना नहीं जानता' यह शठता होगी। "सन्दिग्ध कार्यों को करने में मैं असमर्थ हूँ" यह आज्ञा का उल्लङ्घन करना होगा। आज्ञा का लङ्घन कल्याण की धारा को सेतुबन्ध की तरह रोक देता है। नपुंसक के मुख-दर्शन की तरह अमङ्गल को बढ़ाता है। रजस्वला से मिलन की तरह आयु को नष्ट करता है। इस तरह बहुत बार विचार कर, समस्तलोकों के स्वामी, आप लोगों के लिये कोई चीज अप्राप्य नहीं है। हमारे प्रसिद्ध उद्यम को आप लोग नहीं जानते हैं ऐसी बात नहीं। ऐसा होने पर भी यह आप लोगों

की आज्ञा का पालन करता हूँ। दी हुई आज्ञा के ऊपर विचार करना आज्ञा-कारियों के लिये उचित नहीं होता। बड़ों की आज्ञा ही प्रमाण होती है" यह कह कर भक्ति तथा भय से देवताओं की आज्ञा का पालन किया।

स्थित्वा च कञ्चित्क्षणमुचितालापलीलया कृत्वा च कांश्चिदन्योन्यप्रस्तुतप्रियव्यवहारान्, आपृच्छ्य, यथागतं गतेष्वथ तेषु देवेषु निषधेश्वरश्चिरं चिन्तयाञ्चकार॥

उचित वार्ताक्रम में कुछ देर तक ठहर कर, प्रसङ्गप्राप्त कुछ प्रिय व्यवहारों का सम्पादन कर, अतीत के सम्बन्ध में कुछ पूछ जाँच कर देवताओं के चले जाने पर निषधपति देर तक सोचता रहा।

तदिदम्, अनुच्छ्वासविरामं मरणम्, अमोहं मूर्च्छनम्, अरोगमङ्गव्यथनम्, अशल्यप्रवेशमन्तःशूलम्, अदारिद्र्यो निद्राविघातः॥

,'यह तो श्वास के रहते ही मरण है। विना मोह की ही मूर्च्छा है। विना रोग के ही अङ्गों की पीड़ा है। विना शल्य-प्रवेश के ही आन्तरिक उग्र वेदना है। विना दरिद्रता के आये ही निद्रा का अभाव है।

किमन्यत्—

तस्यामाकर्णितानुरागायां यन्ममाद्य दीर्घदौर्जन्यदोहदिना दैवेनाकस्मिकमौत्सुक्यानुरागव्यवसायं वन्ध्यमध्यवसितं कर्तुम्॥

और क्या—

सुन लेने मात्र से उसमें मैं अनुरक्त हो गया हूँ। आज मेरे उत्कण्ठापूर्ण प्रेमविषयक यत्न को नष्ट कर देने के लिये अपनी विशाल दुर्जनता से कष्ट देने वाले भाग्य ने ठान लिया है।

इदानीं किमत्र श्रेयो यस्माद्, अनुपयोगं गमनम्, श्लाघ्यं निवर्तनम्, अपार्थकमासनम्, असाधीयानध्यवसायः॥

इस समय यहाँ क्या मङ्गलमय तत्त्व होगा जिससे गमन अनुपयोगी हो, लौटना प्रशस्त हो, वहाँ बैठना व्यर्थ हो और यत्न निरर्थक हों।

इति चिन्ताकुले नले भयान्मूकीभूतेष्वासन्नवर्तिषु परिजनेषु प्रणयात्प्रावरणप्रान्तप्राच्छादितवदनभागं किमप्यासन्नमुपसृत्य शनैस्तत्कालयोग्यालापैश्चतुशीलयञ्शीलज्ञः श्रुतशीलो नलमावभाषे॥

नल के चिन्ताकुल हो जाने पर सभी समीपवर्ती मौन थे। प्रेम-पीड़ा के कारण उसने अपनी चादर से मुख ढक लिया। ऐसी स्थिति में कुछ समीप आकर

विचारवान् श्रुतशील तत्काल प्रसङ्गानुकूल बातों से अनुरञ्जन करता हुआ नल से बोला—

'देव, जानामि देवस्य देहं दहति दहन इव दारु दारुणो दौत्यचिन्ताभारः। को नाम सामान्योऽपि स्वयमभिलषितेऽर्थे दूतत्वदासभावमङ्गीकुर्यात्। विशेषतोऽनुरागिण्यङ्गनाजने। तथापि किं न जानाति देवो, यथा याचको ब्राह्मण इव निर्वेदः कस्य संतोषाय, विषवैद्य इव विषादः संदेहकारी शरीरस्य, भीमाभिमन्युनिरुद्धं कुरुबलमिव मनो महान्तं संतापमनुभवति ॥

देवेति ॥ निर्वेदः खेदो वेदरहितश्च। विषादोऽतीव शोचनम्। यश्च विषं कालकूटमादयति। भीमो रौद्रोऽभितो मन्युर्दैन्यं तेन निरुद्धम्। कुरुबलं तु भीमेन मध्यमपाण्डवेनाभिमन्युना चार्जुनसुतेन निरुद्धम् ॥

"देव, जानता हूँ कि यह कठिन दूत-कार्य की चिन्ता का भार आप के शरीर को काष्ठ की तरह जला रहा है। कौन साधारण आदमी भी अपने अभिलषित तत्त्व के सामने दूत जैसे दास कार्य को स्वीकार करेगा और उसमें भी प्रेमपूर्ण अङ्गनाओं के विषय में ? फिर भी क्या आप नहीं जानते कि निर्वेद (वेदज्ञान विहीन) भिक्षुक ब्राह्मण की तरह निर्वेद (खेद) किसके लिये सन्तोषकर होता है ! विषाद (विषखाने वाले) विषवैद्य की तरह विषाद (पश्चात्ताप) किसके शरीर को सन्देह में नहीं डाल देता ? भीम और अभिमन्यु से घिरी हुई कुरु सेना की तरह भीम (रौद्र) तथा अभिमन्यु (उत्कृष्ट क्रोध) से घिरा हुआ मन अत्यधिक वेदना का अनुभव करता है।

तदलमनेन वातूलीभ्रमेणेव मीलयता चक्षुरुद्वेगेन ॥

तदलमिति ॥ उद्वेगो दुःखम्। वातूलीभ्रमस्तु उदूर्ध्वं वेगः ॥

ऊपर की ओर उठने वाली हवा के चक्कर की तरह उद्वेग के मारे इन आँखों को निमीलित करना व्यर्थ है।

किं देवेन न श्रुतम्, अमृतमथनावसरे सुरासुरकरपरिवर्त्यमानमन्दरमन्थाननिर्घोषबधिरितसमस्तरोदःकंदरादिवापि दूरोच्छलितदुग्धतुषारासारतारकितनभसः, समुत्पन्नानेककौस्तुभादिवस्तुविस्ताराद्दुद्गच्छद्दर्पसरोमुखमण्डलैः क्षणमिव विहितविकचनलिनखण्डशोभाद्, अनेकाश्चर्यकुक्षेः क्षीरसागरादजनि जनितजगद्विस्मया स्मरजननी हस्तस्थिततरुणारविन्दा देवी देदीप्यमानपुण्यलक्ष्मा लक्ष्मीः ॥

क्या आपने नहीं सुना है ? अमृत के लिये समुद्र-मन्थन के अवसर पर देव और दानव अपने हाथों से मन्दराचल रूप मन्थन दण्ड चला रहे थे।

उसकी आवाज से सम्पूर्ण क्षितिज गुफाएँ बधिर हो गयी थीं। दूर से ऊपर की ओर छलके हुए दुग्ध कणों की घनघोर वर्षा से गगनमण्डल ताराङ्कित जैसा हो गया था। कौस्तुभमणि आदि पदार्थ बिखरे हुए थे। ऊपर की ओर आती हुई अप्सराओं के मुखमण्डल से खिले हुए कमल-समूह सदृश शोभा हो रही थी। इस तरह के अनेक आश्चर्यों वाले क्षीर सागर से विश्व को आश्चर्य में डाल देने वाली काम को उत्पन्न करने वाली, हाथ में खिला हुआ कमल ली हुई, स्पष्ट पवित्र लक्षणों से युक्त देवी लक्ष्मी उत्पन्न हुई।

यस्याः सर्वाङ्गलावण्यमधु विकचलोचनचषकैरापीय पीयूषजुषो मदनमदपरवशाः परस्परमेवेर्ष्यन्तश्चक्रुश्चक्रपाणिना समं सङ्गरम् ॥

उसके सर्वाङ्ग सौन्दर्य मधु को खिले हुए लोचन-चषक (नेत्र रूप प्याले) से पीकर अमृत से स्नेह रखने वाले इन देवों ने कामोन्मत्त होकर आपस में ही एक दूसरे से ईर्ष्या करते हुए चक्रपाणि (विष्णु) से लड़ाई छेड़ दी।

अथ सा सर्वानभ्यन्तरान्तरापततस्तानुल्लङ्घ्य मन्दरगिरिशिखर-शातकुम्भनिकषोपलायितबाहोर्भगवतश्चिक्षेप क्षेपीयः कण्ठे वैकुण्ठस्य स्वयंवरकुसुममालाम् ॥

अथ सेति ॥ अतिशयेन क्षिप्रं क्षेपीयः। 'स्थूलदूर'–इत्यादिना सिद्धम् ॥

इसके बाद उस (लक्ष्मी) ने बीच बीच में पड़े हुए उन सभी देवताओं को छोड़कर मन्दराचल पर्वत के स्वर्णमय शिखरों के लिये कसौटी के पत्थर सदृश (नीली) भुजाओं वाले भगवान् (विष्णु) के कण्ठ में वैकुण्ठ की स्वयंवर माला शीघ्र ही पहना दी।

एवं साऽपि कदाचिच्चम्पककलिकाकलापगौराङ्गी रागिणी त्वयि वञ्चयिष्यति देवान्। वञ्चितो यतः पूर्वमात्ममुखमण्डलश्रिया शशी, तिरस्कृतो मदनः सौभाग्येन। सकृत्प्रनृत्तायाश्च किमवगुण्ठनेन। विधेरिव वामभ्रुवामचिन्त्यानि चरितानि भवन्ति ॥

एवं सापीति ॥ सकृत्प्रनृत्तायाः स्तोकमपि नर्तितुमारब्धवत्याः किं नीरङ्गया: ॥

इसी तरह चम्पे की कलियों के समूह सदृश गौर अङ्गों वाली, तुम में अनुरक्त वह भी सम्भवतः देवताओं को वञ्चित कर देगी। क्योंकि पहले उसने अपने मुखमण्डल की शोभा से चन्द्रमा को वञ्चित किया है। सौन्दर्य से कामदेव को अपहसित किया है। [अतः देवताओं की अवहेलना करने की उसकी आदत पड़ गयी है। एकबार चन्द्रदेव तथा कामदेव का तिरस्कार कर चुकी है तो अब इन्द्र आदि लोकपालों के तिरस्कार में उसे कोई कठिनाई नहीं है।]

क्योंकि एक बार जो नाच चुकी है उसे घूंघट लगाने से क्या लाभ। ब्रह्मा की तरह स्त्रियों का चरित भी विचारगम्य नहीं होता।

किमु न स्मरति देवो दिवि विश्रुतमर्थसारं स्वर्लोकादवतीर्य पुरा गीतं गन्धर्वगायनैर्गीतगोष्ठीस्थितस्याग्रे युगलमिदमार्ययोर्देवस्य ॥

क्या आपको स्मरण नहीं है? गोष्ठी में बैठे हुए आपके आगे स्वर्गलोक में भी प्रसिद्ध अर्थतत्त्वों वाले दो आर्या छन्दों के गीत गन्धर्व गायकों ने गाये थे।

क्वचिदपि कार्यारम्भेऽकल्पः कल्याणभाजनं भवति।
न तु पुनरधिकविषादान्मन्दीकृतपौरुषः पुरुषः ॥ ५५ ॥

क्वचिदिति ॥ कल्पोऽनिर्विण्णः। तु पुनरिति शब्दौ संभूयवाचकत्वात्पुनरर्थमेव द्योतयतः। यथापि चेति समुच्चयः ॥ ५५ ॥

असमर्थ आदमी भी कार्य के अनुकूल यत्न करते रहते हैं तो कहीं भी कल्याण का पात्र बन जाते हैं। शक्तिशाली भी अधिक विषाद के कारण अपना पुरुषार्थ यदि मन्द कर देता है तो वह कल्याण का पात्र नहीं बनता ॥ ५५ ॥

अपहस्तितान्तरायानर्थानुररीकृतान्प्रसाधयतः।
विधिरपि बिभेति तस्मान्निरतिशयं साहसं यस्य ॥ ५६ ॥

समस्त विघ्नों को दूर कर स्वीकृत कार्यों को करते हुए अत्यन्त साहसी आदमी से ब्रह्मा भी डरते हैं ॥ ५६ ॥

एवमनेकधा प्रस्तुतपुराणपुरुषाख्यानप्रपञ्चप्रक्रमेणातिक्रान्ते भूम्नि दिवसे मङ्गलोद्गार इव वाञ्छितार्थसिद्धेः, तर्जनहुंकार इवान्तरायाणाम्, ओंकार इवोत्साहस्मृतेः, पुण्याहध्वनिरिव हृदयप्रसादप्रासादस्य, पुनर्नवीकृतानुरागस्तम्भोत्तम्भनस्य तस्य नरपतेः शिश्राय श्रुतिं श्रुतशीलेन श्रावितमिममेवार्थं समर्थयन्निव मध्याह्नशङ्खध्वनिः ॥

इस तरह अनेक प्रकार से प्रसङ्ग प्राप्त भगवान् विष्णु के चरित कहते कहते दिन के एक विशेष भाग के व्यतीत हो जाने पर ईप्सित पदार्थ की सिद्धि के लिये मङ्गल द्योतक उद्गार की तरह, विघ्नों को डांटने वाले हुंकार की तरह, उत्साहस्मृति की ललकार की तरह हृदय की प्रसन्नतारूप भवन की पुण्याहध्वनि की तरह मध्याह्नकाल की शंख ध्वनि श्रुतिशील द्वारा सुनाये हुए अर्थों को मानो समर्थन करती हुई पुनः नये किये गये अनुरागस्तम्भ से उठे हुए राजा के कानों तक पहुंची।

राजा तु तमाकर्ण्य विसर्जितपरिजनस्तत्रैव पुलिनमध्ये मध्याह्नसमयसमुचितव्यापारमकरोत् ॥

राजा ने तो उसे सुन कर अपने परिजनों को छोड़ कर उसी तट पर मध्याह्न-कालिक सन्ध्या आदि समयोचित कार्यों को किया।

अनन्तरमतिक्रान्तेषु केषुचिन्मुहूर्तेषु गगनमध्यतलाद्विलम्बमाने मनाङ्मार्तण्डमण्डले चण्डवात्याहतशुष्कपत्त्रमिव दण्डप्रान्त-प्रचलितकुलालचक्रमिव तेन पुरंदरादेशभ्रमेण भ्रान्तमात्मनो मनः क्वाप्येकान्तकमनीयनर्मदाप्रदेशदर्शनविनोदेन स्वस्थीकर्तुमिच्छन्निच्छानुकूलकतिपयाप्तपरिजनपरिवृतः श्रुतशीलस्कन्धावष्टम्भविहारो विहाय दूरमिव शिविरसंनिवेशम्, इतस्ततस्तरुणतमालमण्डपमण्डलितमयूरहारिणा चलच्चकोरचक्रवाकचक्रवालवलयितेन स्नानागततापसपदपंक्तिखर्वितदूर्वाङ्कुरेणापसरत्पयःपूरतरङ्गितवालुकेन पुलिनप्रान्तेन प्राचीं दिशमयासीत्॥

इसके बाद कुछ समय व्यतीत होने पर आकाश के मध्य भाग से सूर्य-मण्डल के लटक जाने पर प्रचण्ड वायु के झोंके से शुष्क पत्र सदृश, दण्डे के अग्रभाग से चलाये हुए कुम्भकार के चक्र सदृश उस इन्द्र की आज्ञा रूप चक्कर में घूमते हुए मन के अनुरञ्जन द्वारा कहीं नर्मदा के एकान्त और मनोहर स्थान को देखकर अपने आप को स्वस्थ करना चाहता था। कुछ आप्त अनुचरों के बीच श्रुतशील के कन्धे पर हाथ रखकर शिविर से कुछ दूर पर घूम रहा था। इधर उधर प्रौढ़ तमाल छाया के नीचे इकट्ठे हुए मयूरों के कारण मनोहर, चलते हुए चकोरों, चक्रवाकों और चक्रवालों से घिरे हुए, स्नानार्थ आये हुए तपस्वियों की पदपंक्ति से टूटी हुई दूर्वा घास वाले, खिसकते हुए जल के नीचे गई हुई कम्पित वालुका वाले तट से होता हुआ पश्चिम दिशा की ओर गया।

[यहाँ तट का वर्णन किया गया है। पानी की साधारण लहरों से निकटतम तट की वालुकायें कभी पानी के नीचे जाती हैं, कभी पानी के खिसक जाने पर ऊपर आ जाती हैं। पानी के आने जाने के कारण उनमें कम्पन भी बना रहता है।]

तत्र च चटुलचञ्चरीककुलाकुलितविविधवीरुधां तलेषु विचरतोऽस्य रसातलविनिर्गताः पन्नगाङ्गना इव नागमदहारिण्यस्तमालकन्दलीकोमलाङ्गयष्टयः श्रोणीभरालसगमनास्त्रिवलीतरङ्गिततनुमध्यलतिकाः, काश्चित्कण्ठकन्दलावलम्बितमातङ्गमौक्तिकलताः स्फुरन्नक्षत्रवलयाः कृष्णपक्षरात्रय इव कृतक्रीडाशरीरपरिग्रहाः, काश्चिदुभयश्रवणावसक्तदन्तिदन्तपत्त्रप्रभाधवलितमुखमण्डलाः सुरसरित्सलिलसंवलितकालिन्दीजलदेवता इव नर्मदयामन्त्रिताः, काश्चित्परि-

धानीकृतरक्तपल्लवास्तडिल्लतालेखामेखलाश्चलदम्बुवाहपङ्क्तय इव विन्ध्यस्कन्धानुबन्धिन्यः, काश्चिन्मातङ्गमदमण्डलमिलन्मधुकरकरालिताः सकलनीलोत्पलवनलक्ष्म्य इवान्यजलाशयेभ्यो महानदीमवतरन्त्यः, काश्चिल्लोहिताशोककुसुमस्तबककृतकर्णावतंसोत्तंसास्त्रिपुरपुरन्ध्रय इव हरशरानलज्वालाकुलितशिरसो धूमश्यामलाः सलिलमनुसरन्त्यः, काश्चिल्ललितलीलामृगैरनुगम्यमानाः शरीरवत्योऽञ्जनशैलस्थलाधिदेवता इव तीर्थावगाहनानुरागिण्यः, कश्चिज्जराजर्जरशबरकञ्चुकिकरावलम्बलीलागामिन्यः स्फुरदिन्द्रनीलशिलापुत्रिका इवेन्द्रजालिकैः संचार्यमाणाः कृष्णाञ्जनिकाकुसुमकान्तयः. काश्चिच्चिपिटनासाः कुन्दकान्तदन्तपङ्क्तयो मायूरपिञ्छगुच्छावनद्धकर्बुरकबरीकलापाश्चलद्वलयमूखरकरतलोत्तालतालिकारम्भरमणीयरसिकरासकक्रीडानिर्भराः कादम्बमधुपानघूर्णितदृशो दृष्टिपथमवतेरुरपराह्णमज्जनागतास्तरुणकिरातकामिन्यः ॥

तत्र चेति ॥ चटुलालिकुलाकुलितवीरुन्मूलेषु विचरतो नृपतेर्दृष्टिपथमवतीर्णाः किरातकामिन्यश्चिरं चिक्रीडुरिति सम्बन्धः । कथंभूताः । नागमदेन गजमदजलेन हारिण्यस्तेनालंकृतत्वात् । पन्नगाङ्गनास्तु नागानां वासुकिप्रभृतीनां मदं गर्वं हरन्ति मुष्णन्ति कृतक्रीडाशरीरपरिग्रहा मूर्ता रात्रयः सनक्षत्रा इव । मुक्तानां नक्षत्राणि स्त्रीणां रात्रय उपमानम् । दन्तपत्रप्रभाणां सुरसरित् स्त्रीणां कालिन्द्युपमानम् । रक्तपल्लवानां तडिल्लता स्त्रीणामम्बुवाहपङ्क्तिरुपमा । लोहिताशोककुसुमानां हरशरासनज्वाला स्त्रीणां च श्यामत्वेन धूम उपमा । कृष्णाञ्जनिका तापिच्छलता ॥

वहां दोपहर के बाद स्नान करने के लिये आयी हुई किरातों की तरुण रमणियां चंचल भ्रमरों से व्याप्त विभिन्न वृक्षों के नीचे घूमते हुए राजा की दृष्टि में पड़ीं । वे पाताल लोक से आयी हुई नागमदहारिणी (सर्पों के मद का हरण करने वाली) सर्प पत्नियों की तरह नागमदहारिणी (हाथी के मद को अङ्गराग रूप में लगाने से सुशोभित) थी । उनके अङ्ग तमाल के अङ्कुर सदृश कोमल थे । कुछ ने अपने नवीन अङ्कुर सदृश कण्ठ में लता सदृश गजमुक्ता की मालाएँ लटका ली थीं । अतः ऐसा प्रतीत होता था मानो चमकते हुए नक्षत्रों से युक्त कृष्ण पक्ष की रात्रियाँ क्रीडा शरीर धारण की हुई हों ।

[रात जैसी काली थीं और तारकमण्डल की तरह मुक्तामाला पहने थीं ।]

दोनों कानों में लगे हुए हाथी दांत निर्मित कर्णभूषणों की कान्ति से कुछ के मुखमण्डल धवलित हो गये थे । ऐसा प्रतीत होता था कि देवनदी गंगा

के जल से घिरी हुई यमुना जल की अधिष्ठात्री देवियां नर्मदा के आमन्त्रण पर आयी हुई थीं।

[हाथी दाँत से बने कर्णभूषणों की कान्ति गंगा का दृश्य उपस्थित करती है और उनके शरीर की नीलिमा यमुना के स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती है।]

कुछ रक्त पल्लव तथा विद्युल्लता सदृश करधनी पहने हुई थीं। अतः विन्ध्याचल की चोटियों पर मंड़राती हुई मेघमाला सदृश लग रही थी। हाथियों के मदपुञ्ज (से बने हुए अङ्गराग से लिप्त शरीर) पर भनभनाते हुए भ्रमरों द्वारा और काली बना दी गयी थीं। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि सभी नीलकमल-वनों की लक्ष्मियाँ विभिन्न जलाशयों से आकर उस महानदी नर्मदा में उतर रही थीं। कुछ लाल अशोक कुसुमों के गुच्छों को कानों पर रक्खे हुई थीं। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि शिवजी की बाणाग्नि की ज्वाला से व्यग्र बुद्धि वाली, धूम के कारण नीली, त्रिपुरासुर की रमणियां पान में उतर रही थीं।

[अशोक के लाल फूलों के गुच्छे कानों में आग की तरह लगते थे और उनकी शरीरगत नीलिमा धूम की नीलिमा की याद दिलाती थी।]

कुछ के पीछे सुन्दर मृग दौड़ रहे थे। अतः तीर्थों के स्नान में अनुराग रखने वाली अञ्जन पर्वत की शरीरधारिणी अधिष्ठात्री देवियों की तरह लगती थीं।

[अत्यन्त कालिमा के कारण अञ्जन पर्वत की अधिष्ठात्री देवी से संतुलित की गयी हैं। सभ्य लोग अपने साथ कोई पालित जानवर लेकर चलते थे। जैसे इस शताब्दी के लोग कुत्ता लेकर चलते हैं। देवियां भी मृग लेकर चलती थीं। इसीलिये मृगों से अनुगत शबर तरुणियों को अञ्जनशिला की अजिष्ठात्री देवियों से सन्तुलित किया गया है।]

कृष्णाञ्जन पुष्प की क्रान्ति सदृश कान्ति वाली कुछ तो अत्यन्त वृद्ध किरात कञ्चुकियों के हाथ पर अवलम्ब देकर घूम रही थीं। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि इन्द्रनीलमणि की पुत्तलिकायें इन्द्रजाल खेलने वाले लोगों द्वारा चलायी जा रही थीं। कुछ की नाक चिपटी थी। दाँत कुन्द पुष्प की तरह सुन्दर थे। बंधे हुए मयूरपंखों के गुच्छों से वेणियां चितकबरीं हो गयी थीं। कङ्कणों के कारण अधिक शब्द करने वाले करतलों द्वारा अधिक जोर से तालियां बजाती हुई रमणीय एवं सुन्दर रास-क्रीडा में मस्त थीं। कदम्ब का मद्य पीने के कारण उनकी आँखें गुर्रायी हुई सी थीं।

ततश्च ताः सूक्ष्ममुक्ताफलधवलवालुकापुलिनपृष्ठे लब्धपदभागाः स्वैरं स्वैरमनुच्चचरणचलनक्रमात्क्वणितनूपुररवाकृष्टकलहंसकुलमनाकुलकलगीततरङ्गासन्नरङ्गितकुरङ्गमनङ्गभावभूयिष्ठमनुभूय तीरविहारसुखम्, अनन्तरमक्रूरजलचरमवेगवहत्सलिलमुत्फुल्लविविधविकसिताम्बुजजातिजीवितजीवंजीवकमुत्कूजितकुररमारसितसारसमुन्मदहासिहंसावतंसमुरःप्रमाणाच्छोदकमतिरमणीयं ह्रदमवातरन् ॥

ततश्चेति ॥ अम्बुजजातिभिर्जीविता जीवंजीवाः पक्षिविशेषा यत्र। शेषाद्विभाषा, इति कप्। अम्बुजजातिरेव जीवितं येषामिति वा। अतिप्रियत्वात्। उरःप्रमाणं वक्षोदघ्नमुदकं यत्र। अगाधे हि पयसि न जलक्रीडा ॥

इसके बाद मुक्तामणियों के चूर्ण से धवल वालुका वाले तटप्रदेश पर पैर रख कर (इच्छानुसार बिना बहुत पैर उठाये ही चलने के कारण नूपुरों की मधुर ध्वनि से मनोहर हंसों को आकृष्ट कर लेती थीं। धीर गीतलहरी से समीपवर्ती मृगों के मानस को तरङ्गित कर दे रही थीं। कामभाव से सम्पन्न तट-विहार-सुख का अनुभव कर रही थीं।

इसके बाद छाती भर निर्मल पानी वाले अत्यन्त रमणीय सरोवर में उतरीं। वहाँ क्रूर जलचर नहीं थे। पानी में बहुत वेगवान् प्रवाह नहीं था। विविध ढंग के खिले हुए कमल वर्ग से जीवंजीव नामक पक्षी प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे। कुरर बोल रहे थे। सारस मधुर ध्वनि कर रहे थे। पूर्ण प्रसन्न हंस ही उसके अलङ्कार थे।

अवतीर्य च ताः काश्चित्पन्नगपतिपुरन्ध्र्य इवोद्गीर्णविषगण्डूषाः, काश्चिद्राक्षसप्रमदा इव रक्तोत्पलाकृष्टिव्यसनिन्यः, काश्चिद्गोपालाङ्गना इव गृहीतपुण्डरीकाक्षाः, काश्चित्कार्तिकेयशरपङ्क्तय इव विश्लेषितक्रौञ्चाः, काश्चित्कुरुसेना इव धार्तराष्ट्रशकुनिमार्गणानुधावमानाः, काश्चिद्रात्रय इव विघटितचक्रवाकमिथुनाः, काश्चिच्चकोराङ्गना इव चञ्चूकृतदीर्घकमलनालैः शशधरकरनिर्मलजलमास्वादयन्त्यः, काश्चित्करिण्य इव सरसबिसाग्राणि ग्रसमानाः काश्चिज्जलयन्त्रपुत्रिका इव संपुटितमुखपाणिपल्लवयुगलाग्ररन्ध्रोन्मुक्तसूक्ष्मवारिधाराः, काश्चिद्भीरुनार्य इव प्रियवारितरणाः, स्तनगण्डशैलशिखरास्फालनोल्ललत्तरङ्गान्तरतरत्तरुणतामरसरससुरभिसलिलमवगाहमानाश्चिरं चिक्रीडुः ॥

अवतीर्येति ॥ विषं जलं, गरश्च। रक्तोत्पलं रक्ताब्जं, रक्तेनोत्कृष्टं पलं मांसं च। गृहीतपुण्डरीके अवलोकितसिताम्बुजे अक्षिणी यासाम्। चक्षुषो हि ग्रहणमवलोकनमेव। यथा श्रोत्रपानमाकर्णनम्। अथवा शौर्यान्नेत्रन्यस्ताब्जाः। अन्यत्र पुण्ड-

रीकाचः कृष्णः क्रौञ्चः पक्षी गिरिश्च । धृतराष्ट्रो दुर्योधनस्य पिता, शकुनिर्मातुलः । पक्षे धृतराष्ट्रो हंसः । यद्विश्वः—'धृतराष्ट्रः सुराज्ञि स्यात्पक्षित्तन्त्रियभेदयोः' । शकुनिः पक्षी । अचञ्चूनि चञ्चूनि कृतानि चञ्चूकृतानि । अन्यत्र चञ्च्वां कृतानि धृतानि यानि दीर्घकमलनालानि तैः शशधरकरनिकरवन्निर्मलं जलम् । अन्यत्र किरणनिकर एव निर्मलजलम् । चकोर्यो हि चन्द्रकरान्पिबन्ति । प्रियं वारिणो जलस्य तरणं यासाम् । अन्यत्र वारितो निषिद्धो रणो यकाभिः । ता वारितरणाः, प्रियाणां वारितरणाः प्रियवारितरणाः ॥

सर्पराज की पत्नियाँ जैसे विष (जहर) का कुल्ला करती हैं वैसे उनमें से भी कुछ पानी में उतर कर विष (जल) का कुल्ला कर रही थीं।

राक्षसपत्नियां जैसे रक्तोत्पलाकृष्टिव्यसनिनी (रुधिरपूर्ण उत्कृष्ट पल (मांस) खींचने की आदत वाली) होती हैं वैसे ही कुछ रक्तोत्पलाकृष्टिव्यसनिनी (लाल कमल तोड़ने की अभ्यासी) थीं। गोपपत्नियां जैसे गृहीतपुण्डरीकाक्ष (कृष्ण को (आदर से) ग्रहण करती) हैं वैसे वे भी गृहीतपुण्डरीकाक्ष (कमल सदृश नेत्र धारण कर रही) थीं। कार्तिकेय के बाण जैसे विश्लेषित क्रौञ्च (क्रौञ्च पर्वत को छिन्न कर देने वाले) हैं वैसे वे भी विश्लेषितक्रौञ्च (पक्षियों को अलग करने वाली) थीं।

कौरवों की सेना जैसे धार्तराष्ट्र (दुर्योधन) और शकुनि के बताए हुए मार्ग से चलती थी वैसे वे भी धार्तराष्ट्र शकुनि मार्ग (धार्तराष्ट्र (हंस) नामक शकुनि (पक्षी) के मार्ग) से दौड़ रही थीं। जैसे रात्रि के कारण चक्रवाक का जोड़ा विलग हो जाता है वैसे उन्हें भी देख कर विलग हो जाता था।

[अत्यन्त काली होने के कारण इन्हें भी रात ही समझता था।]

चकोरपत्नियां जैसे चन्द्रकिरण रूप निर्मल जल का आस्वादन चोंच से करती हैं वैसे वे भी लम्बे कमल दण्ड को चोंच बना कर चन्द्रकिरण सदृश निर्मल जल पी रही थीं। कुछ हथिनियों की तरह कमलतन्तु के अग्रभाग को खा रही थीं। कुछ जलयन्त्रपुत्तलिका की तरह करपल्लव युगल की बन्द अञ्जलि बनाकर उसमें पानी की थोड़ी-थोड़ी धारा गिरा रही थीं। कायर नारियाँ जैसे प्रियवारित + रणा (अपने प्रिय को लड़ाई में जाने से रोकती) हैं वैसे वे भी प्रिय + वारि + तरणा (वारितरण) (जल में तैरना पसन्द करती) थीं। स्तनशिला की चोटियों से टकराने के कारण उत्पन्न होने वाली तरङ्गों के बीच पूर्ण विकसित कमलों के मधु से सुगन्धित जल में स्नान करती हुई वे देर तक खेलती रहीं।

[रक्तोत्पलाकृष्टिव्यसनिनी—राक्षसपत्नीपक्ष में उत्पल शब्द का अर्थ उत्कृष्ट मांस है। राक्षसपत्नियाँ जैसे रुधिरपूर्ण मांस खींचने में अनुरक्त रहती

हैं वैसे वे शबर तरुणियाँ रक्त (लाल) अत्पल (कमल) तोड़ने की अभ्यासी थीं। मनोविनोद के लिये फूलों को तोड़ लेती थीं।

गृहीतपुण्डरीकाक्ष—गोपवधुएँ पुण्डरीकाक्ष (कमल सदृश नेत्र वाले) भगवान् कृष्ण को आदरपूर्वक पकड़ती हैं। वे शवर युवतियां भी पुण्डरीक सदृश नेत्र धारण करती हैं। इस पक्ष में गृहीत शब्द धारण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

विश्लेषितक्रौञ्च—कार्तिकेय जी ने अपने बाण से क्रौञ्च पर्वत का भेदन कर दिया था। शवर युवतियों ने भी क्रौञ्च पक्षियों को अलग कर दिया है।

क्रौञ्च शब्द यदि यहाँ पक्षिसामान्य का वाचक माना जाय तो भी संगति वैठ जाती है क्योंकि सब पक्षी रात को अपने अपने घोंसले में चले जाते हैं। वे नायिकायें इतनी काली हैं कि उन्हें देख कर पक्षियों को रात्रि का भान हो जाता है अतः वे भाग जाते हैं। क्रौञ्च बक का ही एक भेद है। जल के समीप रहने वाली यह एक विहग जाति है। विनोदप्रिय शबराङ्गनायें सरोवर तट पर इधर उधर दौड़ती घूमती हैं अतः पक्षी वहाँ से भाग गये हैं। इस प्रकार भी विश्लेषितक्रौञ्चाः का उपपादन किया जा सकता है।

धार्तराष्ट्रशकुनिमार्गाः—धृतराष्ट्र का पुत्र होने के कारण दुर्योधन को धार्तराष्ट्र कहा जाता है। कुरुसेना दुर्योधन और शकुनि के बताए हुए मार्ग के आधार पर चलती थी। तरुणियां भी धार्तराष्ट्रशकुनि मार्ग से दौड़ रही हैं। धार्तराष्ट्र शब्द हंस का भी वाचक हैं। शकुनि का अर्थ पक्षी है। अर्थात् हंस पक्षी के रास्ते से दौड़ रही हैं। विनोद के लिये हंसों को पकड़ना चाहती हैं अथवा सरोवर तट का रास्ता हंसों का ही मुख्य मार्ग है। इस समय वे युवतियाँ भी उन्हीं के रास्ते में चल रही हैं।

चञ्चूकृतदीर्घकमलनालैः—चकोरपत्नियां चन्द्रकिरण को ही अपनी चोंचों से पीती हैं। चकोरपत्नी पक्ष में शशधरकरनिर्मलजलम् में रूपक है। अर्थात् चन्द्रकिरणरूप निर्मल जल को चकोरवधुएँ पीती हैं। शबर युवतियाँ कमलनाल को चोंच बनाकर चन्द्रकिरण सदृश निर्मल जल पीती हैं। इस पक्ष में उपमा है। कमलनाल का मध्य भाग फोफड़ होता है। उसके एक भाग को पानी में लगा दिया जाय और दूसरे भाग को मुँह में लगा कर ऊपर की ओर हवा खींची जाय तो कमलनाल के मध्य से मुँह में पानी आ जायगा, शबरयुवतियां इसी विनोदबहुल ढंग से जल का आस्वादन कर रही हैं।

जलयन्त्रपुत्रिका—मुँह में पानी भर कर दोनों हाथों से मुँह को बन्द कर के दोनों हाथों के बीच साधारण छिद्र बनाकर धीरे धीरे पानी गिरा रही हैं। ऐसी स्थिति में वे जलयन्त्रपुत्रिका की तरह लगती हैं। पानी का फव्वारा बनाते समय लोग कहीं सर्प का मुख बना देते हैं कहीं गैंड़े का

मुख बना देते हैं। उन्हीं मुखों से पानी की धारा निकलती है। कहीं-कहीं आदमी का भी आधार बना कर मुख से पानी बहाने का शौक देखा जाता है। इसी आकृति को ध्यान में रख कर यह तुलना यहाँ निर्दिष्ट की गयी है।

प्रियवारितरणा—कायर नारियाँ अपने प्रिय को रण में जाने से मना कर देती हैं। इस पक्ष में प्रिय + वारित + रणा यह विच्छेद है। अर्थात् प्रिय को वारित (निवारित) कर दिया है रण से जिसने। शबर युवति पक्ष में—प्रिय (पसन्द) है वारि (जल में) तरण (तैरना) जिनको। अर्थात् कुछ युवतियां जल में तैर रही हैं। तैरना उनकी मनपसन्द क्रीड़ा है।]

अवनिपतिरपि विस्मयविस्मृतनिमेषोन्मेषनयनस्ताश्चिरमवलोक्य चिन्तयाञ्चकार ॥

राजा भी आश्चर्य के मारे निर्निमेष दृष्टि से उन्हें देर तक देख कर सोचने लगा—

जातिर्यत्र न तत्र रूपरचना नेत्रोत्सवारम्भिणी
रूपश्रीरपि यत्र तत्र सुलभः श्लाघ्यो न जन्मोदयः।
इत्येकस्थसमस्तसुन्दरगुणप्रद्वेषमभ्यस्यतो
धातस्तात वृथाश्रमस्य भवतः सृष्टिक्रमो दह्यताम् ॥ ५७ ॥

जहाँ सुन्दर जाति है वहाँ आँखों को आनन्द देने वाली रूप रचना नहीं; और जहां सौन्दर्यलक्ष्मी है वहां प्रशंसनीय कुल नहीं उपलब्ध होता। "एक ही जगह सभी अच्छे गुण रहें" इस बात से द्वेष का अभ्यास रखने वाले और व्यर्थ परिश्रम करने वाले, हे तात ब्रह्मन्! आप का यह सृष्टि-क्रम नष्ट हो जाय ॥ ५७ ॥

तथा हि—

ग्रीवालम्बितपद्मनाललतिकाः कर्णावतंसीकृत-
प्रत्यग्रोन्मिषतासितोत्पलदलैः संदिग्धनेत्रद्वयाः।
कस्यैता जलदेवता इव कुचप्राग्भारभुग्नोर्मयः
स्नानासक्तपुलिन्दराजवनिताः कुर्वन्ति नोत्कं मनः ॥ ५८ ॥

क्योंकि—

स्नान में लगी हुई जलदेवता की तरह ये किरातपतियों की रमणियां—जो गले में मृणाल की माला पहनी हुई हैं, नवीन विकसित नीलकमलों के दलों को, जो दो नेत्रों की भ्रान्ति उत्पन्न कर दे रहे हैं, कानों में पहनी हुई हैं, स्तनों के प्रथम प्रहार से लहरियों को चूर्णित कर दे रही हैं—किसके मन को उत्कण्ठित नहीं कर देतीं ॥ ५८ ॥

अपि च—

एतस्याः करिकुम्भसंनिभकुचप्राग्भारपृष्ठे लुठद्-
गुञ्जागर्भगजेन्द्रमौक्तिकसरश्रेणीमनोहारिणि ।
दूरादेत्य तरङ्ग एष पतितो वेगाद्विलीनः कथं
को वान्योऽपि विलीयते न सरसः सीमन्तिनीसंगमे ॥ ५९ ॥

एतस्या इति ॥ मौक्तिकसरो मुक्तादाम ॥ ५९ ॥

बीच-बीच में गुञ्जे से युक्त गजमुक्ता की माला की लड़ियों के कारण मनोहर इसके करिकुम्भ सदृश स्तनों के प्रथम अंश में दूर से आकर टकराता हुआ यह प्रवाह विलीन हो गया। दूसरा भी कौन ऐसा सरस आदमी है जो स्त्री सङ्गम की स्थिति में विलीन नहीं हो जाता ॥ ५९ ॥

इयं तु—

निजप्रियमुखभ्रान्त्या हर्षेणाचुम्बदम्बुजम् ।
दष्टाधरा तु भृङ्गेण सीत्कारमकरोन्मृदु ॥ ६० ॥

अपने प्रिय के मुख की भ्रान्ति से प्रसन्नता के कारण इसने कमल का चुम्बन किया। भ्रमर ने इसके अधरोष्ठ को काट लिया। अतः कोमलतापूर्वक सी-सी कर रही है ॥ ६० ॥

अन्यापि—

अविरतमिदमम्भः स्वेच्छयोच्छालयन्त्या
विकचकमलकान्तोत्तानहस्तद्वयेन ।
परिकलित इवार्घः कामबाणातिथिभ्यः
सलिलमिव वितीर्णं बाल्यलीलासुखाय ॥ ६१ ॥

खिले हुए कमल सदृश हाथों को उठाकर स्वेच्छया निरन्तर इस जल को उछालती हुई ऐसी लग रही है, मानों कामबाण के अतिथियों (कामियों) को अर्घ दे रही है और शैशवसुलभ सुखों को तिलाञ्जलि दे रही है ॥ ६१ ॥

[बाल्यकाल की परिसमाप्ति तथा यौवन के प्रारम्भ का संकेत इस पद्य में किया गया है ॥ ६१ ॥]

अस्याश्च—

कर्णमूलविषये मृदु गुञ्जन्पाणिपल्लवहतोऽपि हठेन ।
एष षट्पदयुवा हरिणाक्ष्याश्चुम्बति प्रिय इवास्यसरोजम् ॥६२॥

करपल्लव से मना किये जाने पर भी यह भ्रमर-युवक कानों के समीप कुछ मधुर गुञ्जार करता हुआ बलात्कार प्रिय की तरह इस हरिणसदृश नेत्रों वाली नायिका के मुख कमल का चुम्बन करता है ॥ ६२ ॥

इतोऽप्येषा—

भ्रमकरं मकरं मकरन्दिनीं कमलिनीमलिनीमलीनीकृताम् ।
तरलयन्तमवेक्ष्य महाभयादुदतरत्सरितस्त्वरितैः पदैः ॥६३॥

भ्रमकरमिति ॥ मकरन्दोऽस्त्यस्यां मकरन्दिनीम् । तथा अलिनीभिर्भृङ्गीभिर्मलिनीकृतां कलिनीं तरलयन्तं क्षिपन्तं भ्रमकरमावर्तकरं मकरं यादोविशेषं विलोक्य यदुत्पन्नं महाभयं तस्मात्त्वरितैरुत्तालैः पादक्रमैरसौ शवरसुन्दरी सरित उत्तीर्णा ॥

इधर यह भी—

अलिनी (भ्रमरियों) द्वारा मलिन बनायी हुई कमलिनी को उद्वल्लित करते हुए और (पानी में) चक्कर उत्पन्न करते हुए घड़ियाल को देखकर डर के मारे जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाकर नदी से बाहर निकल गयी ॥ ६३ ॥

एताश्च—

मन्दायते दिनमिदं मदनोऽपि सज्ज-
स्तत्कि न गच्छत गृहानिति पद्मिनीभिः ।
मीलत्सरोजगतभृङ्गरुतैरिवोक्ताः
स्नात्वा शनैरनुसरन्ति तटं तरुण्यः ॥ ६४ ॥

"अब दिन समाप्त हो रहा है । कामदेव ने भी अपनी तैयारी कर ली है । तुम लोग घर क्यों नहीं जा रही हो ?" मानों इस तरह, मुकुलित होते हुए कमलों के बीच भ्रमरों की गुनगुनाहट रूप शब्दों के माध्यम से कमलिनियों द्वारा कही गयी तरुणियां स्नान कर तट की ओर आ रही हैं ॥ ६४ ॥

[भ्रमरों के शब्द के बहाने कमलिनियों ने मानो तरुणियों से घर जाने के लिये कहा, क्योंकि सन्ध्या हो चली थी और काम ने अपनी तैयारी कर ली थी ॥ ६४ ॥]

एवमनेकविधविलासासक्तशबरसुन्दरीदर्शनाह्लादपुलकिते विविधवितर्ककारिणि पङ्कनिमग्नजरत्करेणुकायमाननिःस्पन्ददृशि तत्कालमुत्पन्नया मनाङ्मन्मथव्यथया धीरतया च स्पृहया च विचिकित्सया च जिघृक्षया च जिहासया च समकालमाकुलिते हृदये संकीर्णभावभाजि राजनि, राजीववनविराजिते तस्मिन्नर्मदाह्रदे सलिलक्रीडासुखमतिचिरमनुभूय तीरभुवि सेव्यसितसैकतस्थलीमलंकुर्वाणासु च तासु शवरराजसुन्दरीषु श्रुतशीलश्चिन्तितवान्—

इस तरह विविध विलासों में लगी हुई किरात युवतियों को देखकर आनन्द के मारे उसे रोमाञ्च हो गया । कई तरह के तर्क मन में उठने लगे । कीचड़ में फसी हुई बुढ़िया हथिनी की तरह आंखें निर्निमेष हो गयीं । तत्काल उत्पन्न

काम की पीड़ा की स्थिति में एक ही समय धैर्य, आकर्षण, संशय, ग्रहण और त्याग की विभिन्न भावभरी इच्छाओं से राजा का हृदय भर गया। कमलवन से सुशोभित नर्मदा नदी के उस सरोवर में देर तक जलविहार कर किरात-पतियों की युवतियां श्वेत वालुकामयी रमणीय तटभूमि पर आ गयीं। श्रुतशील सोचने लगा—

'उन्मादि यौवनमिदं शबराङ्गनानां
देवोऽप्ययं नववयाः कमनीयकान्तिः।
रेवातटं चलचकोरमयूरहारि
किं स्यान्न वेद्मि जयिनी च मनोभवाज्ञा ॥ ६५ ॥

"शबर युवतियों का यह उन्मादक यौवन है। महाराज भी अत्यन्त सुन्दर कान्तिवाले नवयुवक हैं। चञ्चल चकोर और मयूरों के कारण यह रेवा का तट अत्यन्त मनोहर हो गया है। कामदेव की विजयशील आज्ञा का वातावरण प्रस्तुत है। ऐसी स्थिति में क्या होगा, यह समझ में नहीं आता ॥ ६५ ॥

[शृङ्गार के आलम्बन शबर युवतियाँ और नल तथा चकोर, मयूर, रेवा-तट आदि उद्दीपन सामग्री का उचित प्रयोग यहाँ हुआ है ॥ ६५ ॥]

तथाहि—

विकलयति कलाकुशलं, हसति शुचिं, पण्डितं विडम्बयति।
अधरयति धीरपुरुषं, क्षणेन मकरध्वजो देवः ॥ ६६ ॥

विकलयतीति ॥ अधरयति विधुरयतीत्यर्थः ॥ ६६ ॥

क्योंकि—

महाराज कामदेव एक क्षण में कलाकुशलों को भी विकल कर देते हैं। पवित्र को भी हास्यास्पद बना देते हैं। विद्वान् को भी धोखे में डाल देते हैं और धीर पुरुष को भी नीचा दिखा देते हैं ॥ ६६ ॥

अपि च—

मध्ये त्रिवलीत्रिपथे पीवरकुचचत्वरे च चपलदृशाम्।
छलयति मदनपिशाचः पुरुषं हि मनागपि स्खलितम् ॥ ६७ ॥

चंचल नेत्रवाली रमणियों के कमर, त्रिवली (उदर की पेटी) रूप त्रिमार्ग तथा स्थूल स्तनरूप चौराहे पर थोड़ा भी विचलित पुरुष को कामपिशाच परेशान कर डालता है ॥ ६७ ॥

[यह लोकसामान्य में प्रसिद्ध है कि चौराहे पर पिशाच रहते हैं। यदि कोई अपवित्र आदमी उस रास्ते से जाता है तो उसे पकड़ लेते हैं। स्त्रियों की

त्रिवली को त्रिमार्ग और स्तनों को चौराहा कहा गया है। इन पर विचलित होने पर कामपिशाच बहुत परेशान करता है ॥ ६७ ॥]

तदस्तु प्रस्तुतरसानुनयेनैव प्रभूणां मतयो निवर्त्यन्ते निषिद्ध-निषेवणात्, न प्रतिकूलतया' इत्यवधारयन्नवनिपतिमवादीत् ॥

तदस्त्विति ॥ निषिद्धस्य निषेवणं सेवनमाग्रहस्तस्मात्सकाशात् प्रभूणां मतयः प्रकृतरसानुमत्यैव व्यावर्त्यन्ते, न प्रतिकूलतया हठात् निषिद्धस्यानभिजातसङ्गमा-देराग्रहं कुर्वाणः प्रभुः सहायसंपदानुजीविना निवार्यः। परं तदभिमतं प्राक् पुर-स्कृत्य दोषं च दर्शयित्वा। सहसा निवार्यमाणो हि पराभवमिव मन्येत ॥

अच्छा, स्वामियों की बुद्धि को निषिद्ध पदार्थ के सेवन की ओर से प्रासंगिक वातावरण के अनुकूल चर्चा द्वारा ही निर्वतित किया जा सकता है, प्रतिकूल चर्चा द्वारा नहीं।" यह विचार करता हुआ राजा से बोला—

'देव' रमणीयः खल्वयं प्रदेशः ॥

महाराज, निश्चित ही यह रमणीय स्थान है।

तथाह्यत्र—

आह्लादयन्ति मृदवो मृदितारविन्द-
निष्यन्दिमन्दमकरन्दकणान्किरन्तः।
एते किरातवनितास्तनशैलगण्ड-
संघट्टजर्जररुचः सरितः समीराः ॥ ६८ ॥

क्योंकि यहाँ—

आमर्दनप्राप्त कमलों से चूने वाले मधुबिन्दुओं को बिखेरती हुई, किरात-पत्नियों के स्तनशैल के तट से टकराने के कारण जर्जर कान्तिवाली नदी की कोमल (मन्द) हवा आनन्द दे रही है ॥ ६८ ॥

एताश्च—

उपनदि पुलिने पुलिन्दवध्वः स्तनपरिणाहविनिर्जितेभकुम्भाः।
शिथिलितसलिलार्द्रकेशबन्धाः किमपि मनभोववैभवं वहन्ति ॥ ६९ ॥

और इन—

शबर पत्नियों ने भी स्तनों की विशालता से हाथियों के कुम्भस्थल को जीत लिया है, जल से आर्द्र वेणीवन्धन को शिथिल कर दिया है और नदी के समीप-वर्ती तट पर कामदेव के अपूर्व ऐश्वर्य को धारण कर रही हैं ॥ ६९ ॥

इतश्चावलोकयतु देवः—

सरसिजमकरन्दामोदमत्तालिगीत-
श्रवणसुखनिमीलच्चक्षुषः किंचिदेते।

अपि दिवसमशेषं निश्चलाङ्गाः कुरङ्गाः
पुलिनभुवि विहाराहारवन्ध्या वसन्ति ॥ ७० ॥

सरसिजेति ॥ अपिर्भिन्नक्रमे ततोऽशेषमपि दिवसमित्यर्थः ॥ ७० ॥

इधर भी देखें श्रीमान्—

निश्चल अंगों वाले ये मृग कमल की मधुमय गन्ध में मस्त भ्रमरों का गान सुनकर सुख के मारे आंखों को कुछ बन्द कर भ्रमण और भोजन दोनों को छोड़कर इस तट पर सारा दिन व्यतीत कर देते हैं ॥ ७० ॥

इतोऽपि—

पद्मान्यातपवारणानि नलिनीपत्राणि पर्यङ्किका
दोलान्दोलनदोहदोऽपि च चलद्वीचीचयैः पूर्यते ।
आहारो बिसपल्लवं पुलिनभूर्लीलाविहारास्पदं
रेवावारिणि राजहंसशिशवस्तिष्ठन्ति धन्याः सुखम् ॥ ७१ ॥

पद्मानीति ॥ अत्रातपत्राप्रभृतयो राजधर्मा राजहंसशिशुपक्षावनीयाः ॥ ७१ ॥

और इधर—

जहाँ धूप निवारण करने वाले छाते का काम कमल करते हैं, कमलिनी-पत्र पलंग का कार्य कर रहे हैं; चञ्चल तरङ्गसमूह झूला झूलने की इच्छा पूर्ण कर दे रहे हैं; भोजन का काम मृणालपल्लव से चलता है; लीलापूर्वक विहार करने का स्थान यह तटीय प्रदेश है; ऐसे रेवा के जल में भाग्यवान् राजहंसों के बच्चे सुखपूर्वक निवास करते हैं ॥ ७१ ॥

इहापि—

चिरविरचितचाटुश्चन्द्ररेखायमाणः
प्रथमरसविसाग्रग्रासलीलार्पणेन ।
इह रमयति हंसीं राजहंसो रिरंसुः
पुलकयति च चञ्चूकोटिकंडूयनेन ॥ ७२ ॥

यहाँ—

रमण की इच्छावाला यह राजहंस बहुत देर से चाटुकारिता करता है, चन्द्र की तरह अपनी आकृति बनाता है। प्रथम रस (उत्कृष्ट प्रेम) से मृणाल के अग्रभाग का समर्पण करता है। चोंच के अग्रभाग से खुजलाकर हंसी को पुलकित और अनुरक्त करता है ॥ ७२ ॥

अपि च—

इह चरति चकोरः कोरकं पङ्कजाना-
मिह चलदलिचक्राच्चक्रवाको बिभेति।

इह रमयति जीवंजीवको जीवीतेशा-
मिह वहति विकारं हारि हारितकोऽपि ॥ ७३ ॥

इह चरतीति ॥ प्रतिष्ठमानभृङ्गवृन्दाच्चक्रवाको बिभेतीति तपस्विनीभ्रान्त्येति शेषः। जीवंजीवकः पक्षी जीवितेशां रमयतीति सम्बन्धः ॥ ७३ ॥

और इधर देखिये—

यहां चकोर कमल की कलियों को चर रहा है। चञ्चल भ्रमर वर्ग से चक्रवाक डरता है। जीवंजीवक पक्षी अपनी प्राणप्रिया के साथ खेल रहा है। मनोहर हारीतक (तोता) भी (काम) विकृति का अनुभव कर रहा है ॥ ७३ ॥

एवमसौ निषधेश्वरः श्रुतशीलेन प्रज्ञापूर्वमपरमणीयप्रदेशान्तर-दर्शनव्याजेनान्तरितशबरसुन्दरीदिदृक्षाग्रहो गृहान्प्रति प्रत्यावृत्तः ॥

इस तरह श्रुतशील ने बुद्धिमानी के साथ दूसरे रमणीय प्रदेश को दिखाने के बहाने किरात कामिनियों को देखने की इच्छा को मोड़कर निवास-स्थान की ओर नल को लौटा लिया।

चिन्तितवांश्च—

'कथं नु सा दमयन्ती पुरंदरप्रमुखेषु लोकपालेष्वर्थिषु मया मनुष्यजन्मना लब्धव्येति। निवारयिष्यन्ति च तां खलु दिव्य-सम्बन्धार्थिनो बान्धवाः। तत्किमिह शरणम्' इति विमुक्तदीर्घनिः-सहनिःश्वासमसकृच्चिन्तयति राजनि 'राजन्, रामाजनः पद्म इव वारितः सुतरां प्रवर्तते। नाललस्य दीर्घमनुरक्तस्य जायतेऽपरागो नाप्यलीकाभिनिवेशोऽस्य हीयते। किंचान्यदन्यपरिग्रहवर्तिनीनामपि स्त्रीणामन्यत्रापि रागाग्रहो भवति। यतः पश्य वरुणप्रतिग्रहेऽपि प्रतीचीयं मयि रागिणी भविष्यति' इत्येवमिममाश्वासयन्निव भग-वान्भानुरुत्तुङ्गतरुशिखराणि करैः पतनभयादिवावलम्बमानः शनै-र्गगनतलादवतीर्य प्रतीचीं दिशमयासीत ॥

कथं नु सेति ॥ इन्द्रादिवरेषु सत्सु मयि विषये कीदृगनुरागः, बन्धवोऽप्येनां दिव्यसंबन्धार्थित्वात्तेष्वेव प्रोत्साहयिष्यन्ति, इति चिन्तयति राज्ञि शनैः क्रमेणाम्ब-रादवतीर्य भगवान्भानुः पश्चिमामगात्। किं कुर्वन्। इमं नृपमित्यमुना प्रकारेणा-श्वासयन्निव। तमेव प्रकारमाह—अहो॰ राजंस्त्वया चेतसि नैतच्चिन्तनीयम्। यद्दिव्यसम्बन्धार्थिनो बन्धव एतां निवारयिष्यन्तीति तदेषास्मत्तो विरज्यतीति। यतो रामाजनो वारितो निषिद्धोऽतीव प्रवर्तते। तथाऽस्य स्त्रीजनस्य दीर्घमनु-रक्तस्य बहुकालं सानुरागस्य सतोऽलमत्यर्थं न रागापायः स्यात्। तथास्यालीकोऽ-प्यभिनिवेशो न हीयते। किं पुनर्याह्वरवरस्यभिनिवेशः। यथा पद्मोऽब्जं वारितो

जलात्प्रवर्तते। तथास्य रक्तस्य सतो नालं काण्डं दीर्घमनु सह परागो मकरन्दः स्यात्। तथाली भृङ्गो कं जलं तयोरभिनिवेशः प्रवेशः सोऽप्यस्य न हीयते न हीनः स्यात्। किं चान्यदुच्यते। स्वीकृतानामपि स्त्रीणां पुरुषान्तरे रागानुबन्धः। यस्मात्संप्रत्यपि पश्य त्वं वरुणस्वीकृतापि पश्चिमाशा ममापि विषये रागिणी भविष्यतीति। पद्मशब्द उभयलिङ्गः॥

इन्द्र आदि प्रमुख लोकपाल जिसके याचक हैं उस दमयन्ती को मनुष्य योनि में उत्पन्न मैं क्यों न प्राप्त करूँ? देवताओं से सम्बन्ध रखने की कामनावाले उसके बान्धव उसे रोकेंगे भी। ऐसी स्थिति में क्या उपाय है? इस तरह लम्बे-लम्बे असह्य श्वासों को भरता हुआ राजा सोच रहा था तब तक, "राजन्, स्त्रीजन कमल की तरह वारित होने पर और प्रवृत्त होते हैं। पूर्ण अनुरक्त हो जाने पर इनके अनुराग का अपराग (अभाव) नहीं किया जा सकता। इनकी झूठी प्रवृत्ति भी निर्वारित नहीं की जा सकती। अधिक क्या कहें? विवाहित स्त्रियों का भी दूसरे लोगों से हठपूर्वक प्रेम देखा जाता है। क्योंकि, देखो, पश्चिम दिशा का विवाह वरुण से हुआ है, फिर भी यह मुझमें अनुरक्त होगी।" मानो इस तरह का आश्वासन देते हुए भगवान् सूर्य मानो गिरने के भय से ऊँचे पेड़ों के अग्रभाग से करों (किरणों) की टेक लेकर धीरे-धीरे आकाश से उतर कर पश्चिम की ओर चले गये।

[स्त्रियों को कमल की तरह बताया गया है। कमल वारि से उत्पन्न होते हैं। यहाँ वारि शब्द से तसिल् प्रत्यय हुआ है। स्त्रीपक्ष में वारितः रामाजनः का विशेषण है। इसका अर्थ है—निवारित करने पर भी। वारितः एक ऐसा साधारण धर्म है जो स्त्रीजन और कमल दोनों में लगता है। कमल वारितः (जल से) उत्पन्न होता है और स्त्रीजन वारितः (निवारित) होने पर भी प्रवृत्त होता है।

रक्तस्य अस्य नालम् दीर्घम्—लाल कमल का नालदण्ड बड़ा होता है और उसमें पराग भी होता है। जायतेऽपरागः इस योग में कमलपक्ष में खण्डाकार (ऽ) नहीं माना जायगा। अतः इसका तात्पर्य होगा "जायते परागः" अर्थात् लम्बे नालदण्ड वाला लाल कमल परागपूर्ण होता है। नाप्यलीकोऽभिनिवेशोऽस्य हीयते—अली (भ्रमर) और क (जल) इन दोनों में इसका अभिनिवेश (प्रवेश) बन्द नहीं होता। अर्थात् भ्रमर और जल से इनका सम्बन्ध रहता ही है।

स्त्री भी यदि किसी में अनुरक्त हो जाती है तो निवारित करने पर भी नहीं मानती। दीर्घम् अनुरक्तस्य स्त्रीजनस्य न अलम् अपरागः जायते—स्त्रीजन जब पूर्णरूप से अनुरक्त हो जाता है तो उसके प्रेम का अभाव पूर्णतः

नहीं होता। अलीकोऽपि अभिनिवेशोऽस्य न हीयते—इसकी झूठी भी प्रवृत्ति घटती नहीं। परिणीत स्त्रीयां भी दूसरे में अनुरक्त हो जाती हैं। इसी बात के समर्थन के लिये कहा गया कि पश्चिम दिग्वधू का परिणय वरुण के साथ हुआ है, किन्तु वह कान्तिशील भगवान् सूर्य को देखकर रोगान्वित हो रही है। उसके आकर्षण में जल्दी गिर न जाय, मानो इस भय से पेड़ों का सहारा अपने करों (किरणों) से ले रहे हैं। सन्ध्या का समय है। अस्त होते हुए भगवान् सूर्य की किरणें पेड़ों की डालियों पर दीख रही हैं। सन्ध्या राग से पश्चिम की दिशा अरुण हो गयी है।]

अम्बरान्तःप्रसारितकरे रागिणि रक्तया परियुक्ते तु पश्चिम-ककुभाऽम्भोजिनीजीवितेश्वर ॥

अम्बरान्तरिति ॥ नभोन्तःप्रसारितांशौ रक्तान्विते रक्तया पश्चिमया दिशा युक्ते सत्यम्भोजिनीजीवितेश्वरे रवौ प्राच्या चिन्तितम् ॥

अम्बर (आकाश वस्त्र) में कर (किरण पाणि) फैलाकर रागपूर्ण होकर रागिणी पश्चिम दिशा के साथ कमलिनी के प्राणप्रिय (सूर्य) के चले जाने पर—

[भगवान् सूर्य पर नायक और पश्चिम दिशा पर नायिका व्यवहार का आरोप किया गया है। अम्बर शब्द आकाश और वस्त्ररूप अर्थ का उपास्थापन करता है। कर शब्द किरण और पाणि का वाचक है। राग शब्द से लाल रंग और अनुराग दोनों अर्थ समझे जाते हैं। कमलिनी के प्राणप्रिय सूर्य अनुराग प्रदर्शन करते हुए रागिणी पश्चिम दिग्वधू के साथ चले गये।]

पूर्वाहं विहितोदयाहमसकृत्तन्मां विहायाधुना
यस्यामस्तमुपैति तां कथमयं रागी जघन्यामगात्।
इत्येवं श्लथितांशुके दिनपतौ याते दिशं पश्चिमा-
मीर्ष्यारोषविषादिनीव तमसा प्राची ककुल्लक्ष्यते ॥ ७४ ॥

तदाह—पूर्वेति ॥ आद्याहम्। तथासकृद्विहितोदयाहं तस्माद्यस्यामस्तमेति जघन्यां च निकृष्टां तामिमां रागी आरक्तः सन् रविर्मां विहाय कथमगात्। पश्चिमां दिशं गते शिथिलांशावंशुमति विषये य ईर्ष्यारोषोऽसूयाकोपस्तस्माद्विषादिनी च सती पूर्वा दिक् तमसान्धकारेण लक्ष्यते। अन्यामपि प्रथमां कृतोदयां विहाय अस्तंकारिणीं निकृष्टां च यदा रागी विलास याति, तदा तस्मिञ्शिथिलितवाससि पूर्वा स्त्रीर्ष्याविषादिनी तमसा तमोभावेन प्राप्यते ॥ ७४ ॥

"पहली मैं हूँ। अनेकों बार मैंने उसका उदय किया है। फिर भी इस समय मुझे छोड़कर बड़े प्रेम से कैसे उस पापिनी के साथ चला गया जहाँ सदा उसका ह्रास ही होता है।" इस तरह ईर्ष्या, क्रोध और विषाद से भरी हुई पूर्व दिशा

अंशुक (किरण वस्त्र) को शिथिल कर दिनपति (सूर्य) के पश्चिम दिशा के साथ चले जाने पर अन्धकारयुक्त दिखाई पड़ती है ॥ ७४ ॥

[पूर्वा शब्द पूर्व दिशा और प्रथम, दोनों अर्थ का वाचक है। प्रगाढ़ अनुराग उन्नति और अवनति की प्रतीक्षा नहीं करता, भगवान् सूर्य की सदा उन्नति हुई हैं पूर्व दिग्वधू के साथ। पश्चिम के सम्पर्क में वे जब भी गये हैं, उनकी अवनति हुई है। उनका उदय पूर्व के साथ होता है और अस्त पश्चिम के साथ। फिर भी रागिणी पश्चिमा के साथ राग होने पर उदयदायिनी पूर्वा को उन्होंने छोड़ ही दिया। पूर्व की ओर जो अँधेरा छा गया है वह है पूर्व दिग्वधू का ईर्ष्या, कोप और विषाद से मलिन हुआ मुख ॥ ७४ ॥]

विश्लेषाकुलचक्रवाकमिथुनैरुत्पीडमाक्रन्दिते
कारुण्यादिव मीलितासु नलिनीष्वस्तं च मित्रे गते।
शोकेनेव दिगङ्गनाभिरभितः श्यामायमानैर्मुख-
निःश्वासानलधूमवर्तय इवोद्‌गीर्णास्तमोराजयः ॥ ७५ ॥

विश्लेषेति ॥ उत्कृष्टा पीडा यत्रेत्युत्पीडमित्याक्रन्दिक्रियाविशेषणम् ॥ ७५ ॥

वियोग के भय से चक्रवाक का जोड़ा जोर से क्रन्दन करने लगा। मानो करुणा के मारे कमलिनियाँ बन्द हो गयीं। सूर्य अस्त हो गये। मानो शोक के मारे दिगङ्गनाओं का मुख काला जैसा हो गया। उनके निःश्वासरूप अनल की धूमपङ्क्ति सदृश अन्धकार श्रेणियाँ फैल गयीं ॥ ७५ ॥

[चक्रवाक रात को अपनी प्रिया से वियुक्त हो जाता है। वियोग भय के कारण करुण क्रन्दन कर रहा है। उसकी सहानुभूति में कमलिनियाँ बन्द हो गयी हैं। दिग्वधुओं का मुख काला हो गया है। निःश्वास अनल की धूम-श्रेणी ने भूमण्डल को आक्रान्त कर लिया है ॥ ७५ ॥]

तथाविधे च वेलाव्यतिकरे राज्ञः संध्यावसरमावेदयितुमस्यासन्नविहारि हारि लीलाकिंनरमिथुनमिदमगायत्—

ऐसे ही समय सन्धि के अवसर पर सन्ध्या विधि की सूचना देने के लिये समीप में विहार करता हुआ मनोहर किन्नर युगल गान करने लगा—

'रक्तेनाक्तं विनिहितमधोवक्त्रमेतत्कपालं
तारामुद्राः किमु कलयता कालकापालिकेन।
संध्यावध्वाः किमु विलुठिता कौङ्कुमी शुक्तिरेवं
शङ्कां कुर्वञ्जयति जलधावर्धमग्नार्कबिम्बम्' ॥ ७६ ॥

रक्तेनेति ॥ अधस्ताद्वक्त्रं यस्य तदधोवक्त्रमधोमुखम्। तथा रक्तेन रुधिरेणाक्तं लिप्तम्। तत्तथाभूतं कपालं काल एव कापालिकस्तेन तारा नक्षत्राण्येव मुद्रा रुच-

काख्यानि हस्तपादादीनामस्थ्याभरणानि कलयता युञ्जानेन किमुपन्यस्तम् । किञ्चिति वितर्के। किंवा संध्यैव या वधूस्तस्याः सम्बन्धिनी कौङ्कुमी शुक्तिर्विपरीत-मधोमुखी लुठिता । एवमित्थं शङ्कामुत्पादयत्समुद्रेऽर्धमग्नार्कबिम्बं जयत्यधुना ॥७६॥

"काल कापालिक रुधिर भरे कपाल का मुख नीचा कर तारक मुद्राओं को धारण कर रहा है क्या ? सन्ध्या वधू की कुङ्कुमभरी शुक्ति उलट गयी है क्या ?" समुद्र में आधा डूबा हुआ सूर्य का विम्ब इन विभिन्न शंकाओं को उत्पन्न कर रहा है" ॥ ७३ ॥

[अवघड़ पंथ के लोग कपाल हाथ में लिये रहते हैं। भस्म आदि के विभिन्न चिह्नों से अपने को चित्रित किये रहते हैं। रक्त, मदिरा आदि पदार्थों को पीते रहते हैं। भगवान् सूर्य का सन्ध्या के समय आधा अंश अस्त हो गया है और आधा बाकी है। वह लाल विम्ब ऐसा लगता है जैसे कापालिक (अवघड़) ने अपने कपाल में रक्त भरकर उसे उड़ेल दिया हो या उलट दिया हो। आकाश के छिटकते हुए तारे उसके शरीर के विभिन्न चिह्नों की तरह लग रहे हैं। काल (समय) को ही यहाँ कापालिक बनाया गया है। समय ही तो व्यापारयिता है जैसे कपाल आदि उड़ेलने का व्यापारयिता कापालिक है। दूसरी उद्‌भावना है शक्ति के साथ। सूर्य का विम्ब ऐसा लगता है मानो सन्ध्या वधू की कुङ्कुम रखने वाली रंग की सितुही उलट गयी है ॥ ७६ ॥]

अथ क्रमेण गगनमन्दाकिनीतीरतापसैर्विकीर्यमाणेषु संध्यार्घाञ्जलि-जलबिन्दुबुद्बुदेष्विव किंचिदुन्मीलत्सु विरलतरतारास्तबकेषु, वासरविरामवादितवाद्येष्वमरसदनेषु, दह्यमानबहलधूपधूमम़ञ्जरी-ष्विव वियति विहरन्तीषु तनुतिमिरवल्लरीषु, स्वपत्पतत्रिकुलकोला-हलेन वासार्थिश्रान्तागताध्वगस्वागतालापमिव कुर्वाणासु वन-राजिषु, अन्यत्र परिभ्रमणपरिहारार्थमिव पद्मिनीनां कोशपानमा-चरत्सु चञ्चलचञ्चरीकेषु, रत्युत्सवोत्साहावेशमहामन्त्राक्षरेष्विव श्रूय-माणेषु महासरित्कूलकुलायनिलीनजलकुक्कुहकुहरितेषु, रामायण-व्यतिकरेष्विव मन्दोदरीप्रहस्तप्रबोधितोत्सिक्तदशाननेषु संध्याप्रदीपेषु जाते जरत्कुम्भकारकुक्कुटकुटुम्बपक्षपिच्छविच्छाये मनाक्तमोनुविद्धे संध्यारागे राजा विषादविस्मृतसंध्याह्निकः परिजनानुबन्धात्संध्यां ववन्दे ॥

अथेति ॥ कोशः कर्णिका शपथविशेषश्च। वयमन्यत्र न यास्याम इत्यर्थे पद्मि-नीनां समीपे कोशपानम् कुर्वत्सु भृङ्गविलासिषु। वामोदरीप्रकृष्टपाणिज्वलिततैल-सिक्तवर्तिमुखेषु दीपेषु । रामायणसंपर्केषु तु मन्दोदरीनाम्न्या पत्न्या प्रहस्तेन सेनान्या प्रकर्षेण बोधित उत्सिक्तः उद्रिक्तः सन् दशाननो रावणो येषु तथाभूतेषु । कुम्भकारः कुक्कुटः पक्षिविशेषः ॥

इसके बाद क्रम से आकाशगङ्गा के तटप्रदेश के तपस्वियों द्वारा दी गयी सूर्यार्घ की अञ्जलि के बिखरे हुए बिन्दुओं के बुद्बुद की तरह कहीं-कहीं तारों के गुच्छे निकल रहे थे। दिन की समाप्ति के अवसर पर देव-भवनों में बाजे बज रहे थे। जलते हुए पर्याप्त धूप की धूम मञ्जरी की तरह आकाश में पतली तिमिर (अन्धकार) लतायें फैल रही थीं। सोते हुए पक्षियों के कलरव के बहाने, निवास की कामना से आये हुए श्रान्त पथिकों के लिये वनपङ्क्ति स्वागतवाणी बोल रही थी। चंचल भ्रमर कमलिनियों के यहां कोशपान (शपथग्रहण) कर रहे थे कि अब वे किसी दूसरी जगह भ्रमण करने नहीं जायेंगे। महानदी की तटगत गुफाओं में घुसे हुए जल की ध्वनियां कामोत्सव-विषयक उत्तेजना के महामन्त्राक्षर की तरह सुनायी पड़ रही थीं। रामायण के प्रसङ्ग में जैसे मन्दोदरी और प्रहस्त नामक सेनापति द्वारा प्रबोधित घमंडी रावण पाया जाता है वैसे ही मन्दोदरी (मन्द (कृश) उदर वाली) रमणियों के प्रहस्त (उत्कृष्ट हाथों) से सम्बोधित (जलाये) गये उत्सिक्त (तेल से भरे हुए) दीप दिखायी पड़ रहे थे। थोड़े अन्धकार से मिश्रित सन्ध्या का रंग वृद्ध कुम्भकार संज्ञक कुक्कुट समुदाय के पंख के गुच्छे की तरह हो गया था। राजा विषाद के कारण दैनिक सन्ध्या कार्य भूल गया था। अतः परिजनों द्वारा निवेदनपूर्वक याद दिलाये जाने पर उसने सन्ध्या-वन्दन किया॥

[रावणपक्ष में उत्सिक्त पद का अर्थ घमंडी है और दीपपक्ष में "तैल-पूर्ण" अर्थ है। कुक्कुटों (मुर्गों) की एक कुम्भकार जाति होती है। घड़ा बनाने वाले कुम्भकार से यहाँ तात्पर्य नहीं है। अर्थात् कुम्भकार जाति वाले वृद्ध मुर्गे के पंख समुदाय का जैसा रंग होता है वैसा ही रंग उस समय अल्प अन्धकार मिश्रित सन्ध्या का भी हो गया था॥]

ततश्च क्रमेण—

> रजनिमवनिनाथः सांध्यकर्मावसाने
> हरचरणसरोजद्वन्द्वसेवां विधाय।
> मृदुकलितविपञ्चीपञ्चमप्रायगीत–
> श्रवणसुखविनोदैस्तां स तस्मिन्ननैषीत्॥ ७७॥

इति श्रीत्रिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचरण-सरोजाङ्कायां पञ्चम उच्छ्वासः समाप्तः॥

इति विषमपदप्रकाशमेतं दमयन्त्यास्तनुते स्म चण्डपालः।
शिशुमतिलतिकाविकासचैत्रं चतुरमतिस्फुटभित्तिचारुचित्रम् ॥

इति चण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे पञ्चम उच्छ्वासः समाप्तः ॥

इसके अनन्तर क्रम से—

सन्ध्या विधि के समाप्त हो जाने पर भगवान् शंकर के चरणारविन्द का अर्चन कर उस राजा ने मधुर वीणा के प्रायः पञ्चम स्वर से अनुगत गीत के श्रवणसुख के साथ वहीं पर उस रात को बिताया ॥ ७७ ॥

पञ्चम उच्छ्वास समाप्त ।

षष्ठ उच्छ्वासः

अथ द्विजजननिकायकीर्णसंध्याञ्जलिजलैरिव क्षाल्यमाने मनाग्विमलतां व्रजति तिमिरमलिनेऽम्बरे, मालाकारेणेव प्रभातप्रभोद्भेदेनावचीयमानेषु गगनपुष्पवाटिकाकुसुमेष्विव नक्षत्रेषु, निद्रापहारहुङ्कार इवोत्थिते प्रभातभेरीध्वनौ, नरपतेः प्रबोधनार्थमदूरे वैतालिकः पपाठ ॥

अथ द्विजेति ॥ अथ निशातिवाहनानन्तरम् । अम्बरं व्योम वस्त्रं च । व्योम्नः स्वभावस्वच्छस्यापि मालिन्यक्षालने भाक्ते । वस्त्रपक्षे तिमिरवन्मलिनम् ॥

इसके बाद, द्विजाति वर्ग सन्ध्या कार्य के निमित्त सूर्यार्घ की अञ्जलि दे रहा था। अन्धकार से मलिन आकाश मानो उन (अञ्जलियों) से धोये जाने के कारण कुछ निर्मल हो रहा था। मालीसदृश प्रातःकालीन कान्ति के विकास द्वारा आकाश पुष्पवाटिका के पुष्पसदृश तारे चुने जा रहे थे। निद्रा को चुरा लेने वाले हुंकारसदृश नगाड़े की ध्वनि उठ रही थी। ऐसे समय में राजा को जगाने के लिये थोड़ी दूर पर वैतालिक ने (एक श्लोक) पढ़ा—

उदयगिरिगतायां प्राक्प्रभापाण्डुताया-
मनुसरति निशीथे शृङ्गमस्ताचलस्य ।
जयति किमपि तेजः सांप्रतं व्योममध्ये
सलिलमिव विभिन्नं जाह्नवं यामुनं च ॥ १ ॥

उदयेति ॥ उदयाद्रिगतप्रथमप्रभापाण्डिम्नि निशीथे चान्धकारेऽस्ताचलशृङ्गं गन्तुं प्रवृत्ते किमपि सर्वोत्कृष्टं तेजो जयति। तत्र कविरुत्प्रेक्षते—सांप्रतमिदानीं नभोमध्ये जाह्नवं गाङ्गं, यामुनं च कालिन्दीयं, सलिलं विभिन्नं संगतमित्यर्थः। व्योम्नि जाह्नव्येवासीत्। यमुनायाः संभेदः सांप्रतमेव। अत एवास्मिन्वृत्ते 'यमुनात्रिविक्रमः' इति नाम कविरवापत्। तथा च—'प्राच्याद्विष्णुपदीहेतोरपूर्वोऽयं त्रिविक्रमः। निर्ममे विमलं व्योम्नि यत्पदं यमुनामपि'। प्रभया पाण्डुता प्रभाकृत उद्योतः प्रकाश इति यावत्। न तु प्रभायाः। पाण्डुतेति समासः। उदये प्रभाया आरक्तत्वात्। प्रकाशस्तु इन्द्रनीलादीनामपि पाण्डुरेव। जाह्नवी देवताधिष्ठात्री यस्येति देवतार्थेऽण्। अन्यथा शैषिकच्छः स्यात् ॥ १ ॥

प्रातःकालीन कान्ति से उदयगिरि प्रकाशित हो रहा है। रात्रि अस्ताचल की चोटियों की ओर खिसक रही है। इस समय गंगा और यमुना जल के सम्मिश्रण की तरह कोई अलौकिक तेज सुशोभित हो रहा है ॥ १ ॥

[आकाश में गङ्गा का ही रहना प्रसिद्ध है। गंगा और यमुना का संगम पृथ्वी में ही प्रसिद्ध है। अस्ताचल की ओर अन्धकार की उपस्थिति बताकर और उदयाचल की ओर प्रकाश की स्थिति बताकर आकाश में भी गंगा और यमुना का संगम कवि ने करा दिया है। महाकवि श्रीत्रिविक्रमभट्ट की इस अनोखी कल्पना पर सहृदयों ने इन्हें यमुना-त्रिविक्रम की उपाधि दी है। प्रकाश गंगा की धवल धारा का प्रतिनिधित्व करता है और अन्धकार यमुना की नील धारा का ॥ १ ॥]

अपि च—

यात्यस्ताचलमन्धकारपटले जातेऽरुणस्योदये
तापिच्छच्छदपद्मरागमहसोर्मध्यं ककुब्भागयोः।
अन्तर्विष्णुविरञ्चयोरिव मनाग्लिङ्गोद्भवभ्रान्तिकृत्-
तेजः पाण्डुरपिञ्जरं च किमपि श्यामं च तद्वोऽवतात् ॥२॥

यातीति ॥ अस्तगिरिं गच्छति तमःसमूहे पश्चिमायाः कृष्णायाः, संपन्नारुणोदयायाः पूर्वस्याश्च लोहिताया दिशोर्मध्ये पाण्डु पिञ्जरं श्यामं वा किमपि दुर्लक्ष्यं मनाक् स्तोकोदयं तेजोऽर्थात्प्रकाशात्मकं वो युष्मान्पातु। प्रकाशारुणोदयतमःशेषसमुदायरूपत्वात् पाण्डु पिञ्जरं श्यामं चेत्युक्तम्। तदित्यनेन क्षिप्तं यच्छब्दवाच्यमुपमानमाह—अन्तरित्यादि ॥ दिग्भागयोर्विष्णुविरञ्चौ, प्रकाशात्मनश्च तेजसो लिङ्गोद्भव उपमानम्। अथवा सत्त्वं पाण्डु तदेव विष्णुः, रजः पिञ्जरं तदेव स्रष्टा, तमः श्यामं तदेव च हरः, एतत्त्रयीमयश्च रविरित्यागमिकसमयः। तदुक्तम्—'सत्त्वं शुभ्रं स हरिर्लोहितपीतं रजः स जगत्कर्ता। कृष्णं तु तमः स भवो भानुश्चैतत्त्रयीमूर्तिः'। अभिधानकारोऽप्याह—'द्वादशात्मा त्रयीतनुः'। एतेन पाण्डु तेज इत्युक्ते सत्त्वस्य, पिञ्जरमित्युक्ते रजसः, श्याममित्युक्ते तमसः प्रतीतिरिति। ततश्च तमोन्वितायाः अपाच्या अरुणान्वितायाश्च प्राच्या मध्ये मनागीषल्लक्ष्यं किमप्यद्भुतवैभवं तदुत्कृष्टं पाण्डु पिञ्जरं श्यामं च तेजोऽर्थात् सत्त्वरजस्तमस्त्रयीमयं त्रयीतनुलक्षणं वो युष्मानवतु। अमुमेवार्थं सत्त्वरजस्तमसां संज्ञान्तरेण विष्णुविरञ्चलिङ्गोद्भवलक्षणेन द्रढयन्नाह—अन्तरित्यादि। 'पुरा स्वमाहात्म्यार्थं विवदमानयोर्द्रुहिणनारायणयोः शिवेन स्वस्य लिङ्गोद्भवस्योर्ध्वाधोमानविज्ञानं महत्त्वहेतुः पण उक्तः' इत्यागमः ॥ २ ॥

अन्धकार समूह के अस्ताचल की ओर चले जाने पर और सूर्य के उदित हो जाने पर दोनों दिशाओं के बीच तापिच्छ तथा पद्मरागमणि जैसी कान्ति हो गयी थी। विष्णु और ब्रह्मा के बीच लिङ्गोत्पत्ति विषयक भ्रम फैला देनेवाले स्वरूप की तरह सफेद, केसरिया और श्याम रंग का तत्कालीन तेज आपकी रक्षा करे ॥ २ ॥

[भगवान् सूर्य को त्रयी तनु कहा गया है। उनमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों के रंग का होना आवश्यक है। उदय के समय सूर्य का समीपतर स्थान

शुभ्र दीखता है। प्रकाश और अन्धकार के सम्मिश्रण वाला स्थान पिञ्जर (केसरिया) रंग का दीखता है। जहाँ प्रकाश का पूर्ण प्रभाव नहीं पहुँच सका है वहाँ कालिमा बनी ही है। उदयकाल में सूर्य का बालतेज इन तीनों ही तत्वों का दर्शन कराता है। सत्त्वगुणप्रधान होने के कारण विष्णु को शुभ्र, रजोगुणप्रधान होने के कारण ब्रह्मा को पिञ्जर, तमोगुणप्रधान होने के कारण शिव को कृष्ण (काला) कहा गया है। इन तीनों ही रंगों के संवलित रूप को धारण करने वाले भगवान् सूर्य आपकी रक्षा करें।

एक बार ब्रह्मा और विष्णु के बीच होड़ लग गयी कि दोनों में कौन बड़ा माना जाय। बड़े विवाद के बाद यही निश्चय किया गया कि श्री शिवजी के लिङ्ग के अन्तिम छोर का जो पता लगा लेगा उसी को बड़ा समझा जायगा। ब्रह्मा ऊपरी भाग का पता लगाने के लिये गये और विष्णु निचले भाग का। विष्णु नीचे जाते-जाते थक गये किन्तु उस लिङ्ग की सीमा का पता न लगा। उन्होंने अपनी असमर्थता स्वीकार कर ली। ब्रह्मा को भी ऊपरी भाग का पता न लगा किन्तु उन्होंने बताया कि उन्हें ऊपरी सीमा का पता लग गया। उनके इस मिथ्या भाषण पर शिवजी नाराज हो गये और विष्णु की महत्ता स्वीकार कर ली गयी। इसी बात का यहां निर्देश किया गया है। विवाद के समय ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों उपस्थित हुए थे। उस समय जैसा रंग था या दृश्य था वैसा ही दृश्य सूर्योदय के समय में हुआ है ॥ २ ॥]

अनन्तरमुत्तिष्ठतोत्तिष्ठतानयत गजवाजिवेगसरीः संयोजयत शकटानि, वेष्टयत पटकुटीः, मुकुलयत मण्डपिकाः, संवृणुत काण्डपटान्, उन्मूलयत कीलकान्, उद्वहत वेगाद्वहनीयभाण्डम्, भारयत करभकलभान्, उत्क्षिपत क्षीणोक्षकान्, उत्तरत सरितम्, अपसरत पुरतः, कुरुत संचारसहं मार्गम्, इत्यनेकविधप्रयाणाकुललोककोलाहले समुच्छलति, नदत्सु प्रस्थानवादित्रेषु, समुत्थाय नरपतिरावश्यकशौचावसाने नर्मदाम्भोभिषेकपूततनुरनुबध्य सांध्यविधिम्, अधिकृत्य भगवन्तमुदयगिरिशिरःशिखरभाजं भास्करम्, इमं श्लोकमपठत् ॥

अनन्तरमिति ॥ वेगसरी वेसरी। काण्डपटो गुणलयनी ॥

इसके बाद, "उठो, उठो। हाथी, घोड़े और ऊँटनियों को लाओ। गाड़ियों को जोड़ो। पटकुटीरों को लपेटो! तम्बुओं को समेटो। तम्बुओं के किनारे वाले पर्दे को बटोरो। खूंटियों को उखाड़ो। ले चलने लायक बर्तनों को जल्दी ले चलो। ऊँटों और हाथियों के बच्चों को लादो। क्षीण (फूटे हुए) बर्तनों को फेंको। नदी में उतरो। सामने की ओर बढ़ो। रास्ते को चलने लायक

बनाओ।" इस तरह प्रस्थान कार्य में व्यग्र लोगों को अनेक प्रकार की ध्वनियाँ उठ रही थीं। प्रस्थानसूचक बाजे बज रहे थे। राजा ने उठकर शौच आदि कार्य के बाद नर्मदा जल के स्नान से पवित्र होकर, सन्ध्या आदि कार्य कर, उदयाचल के शृङ्ग पर ठहरे हुए भगवान् सूर्य को प्रणाम कर यह श्लोक पढ़ा :—

'जयत्यम्भोजिनीबन्धुर्बन्धूकारुणरश्मिकः।
वैद्रुमो वासरारम्भकुम्भः पल्लववानिव' ॥ ३ ॥

वन्धूक (अड़हुल) पुष्पसदृश अरुण कान्ति वाले, कमलिनियों के प्रिय भगवान् सूर्य दिन के प्रारम्भ में विद्रुम मणि निर्मित, किसलय पल्लव से मण्डित घड़े की तरह सुशोभित हो रहे हैं ॥ ३ ॥

[उदय के समय जो पूर्ण पिण्ड का लाल गोलक दिखाई पड़ता है उससे कुम्भ की और उस गोलक से विच्छुरित होने वाली किरणों की किसलय से तुलना की गयी है ॥ ३ ॥]

अभ्यर्च्य च पञ्चोपचारैः सुरासुरगुरुं गौरीपतिं तत्प्रियस्य भगवतो नारायणस्यापि वाञ्छितार्थसिद्धये स्तुतिमकरोत् ॥

राजा ने देवों और दानवों के पूज्य, पार्वतीपति, भगवान् शंकर का पञ्चोपचार पूजन कर आकाङ्क्षित अर्थ की सिद्धि के लिये, उनके प्रिय भगवान् नारायण की भी स्तुति की।

'जयत्युदधिनिर्गतस्मरविलोललक्ष्मीलस-
द्विलासरसमन्थरस्फुटकटाक्षलक्षीकृतः।
अमन्दरयमन्दरभ्रमणघृष्टहेमाङ्गदः
सुरारिवधनाटकप्रथमसूत्रधारो हरिः ॥ ४ ॥

जयत्युदेति ॥ सुरारिवधनाटकस्य प्रथमे प्रस्तावनायां सूत्रधारः ॥ ४ ॥

समुद्र से निकली हुई काम-चञ्चल लक्ष्मी के रमणीय विलास रस के मन्द एवं विकसित कटाक्षों द्वारा लक्षित, मन्दराचल को बड़ी तेजी से घुमाने के कारण घिसे हुए स्वर्ण कंकण वाले, देवद्रोहियों के वधरूप नाटक के प्रथम सूत्रधार श्री हरि का मङ्गल हो ॥ ४ ॥

जयत्यमलकौस्तुभद्युतिविराजितोरःस्थलः
सहेलहतदानवो नवतमालनीलद्युतिः।
विनम्रसुरमस्तकच्युतविकासिपुष्पावली-
विकीर्णमधुसीकरस्नपितपादपीठो हरिः ॥ ५ ॥

कौस्तुभमणि की निर्मल कान्ति से जिनका वक्षःस्थल सुशोभित है, बिना किसी विशेष यत्न के जिन्होंने दानवों को समाप्त कर दिया है, नवीन तमाल की तरह जिनके शरीर की कान्ति नीली है, नम्र देवताओं के मस्तक से गिरी हुई पुष्पपंक्ति के बिखरे हुए मधुकणों से जिनका पादपीठ (खड़ाऊँ) सिक्त हो गया है ऐसे भगवान् सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ ५ ॥

जयत्युदरनिःसरद्वरसरोजपीठीपठ-
च्चतुर्मुखमुखावलीविहितरम्यसामस्तुतिः ।
अलब्धमहिमावधिर्मधुवधूविलासान्तकृ-
ज्जगत्त्रितयसम्भवो भवभयापहारी हरिः ॥ ६ ॥
जयत्यसुरसुन्दरीनयनवारिसंवर्धित-
प्रतापतरुरुल्लसत्तरुणकेकिकण्ठच्छविः ।
दलत्कनककेतकीकुसुमपत्त्रपीताम्बरः
सुराधिपनमस्कृतः सकललोकनाथो हरिः ॥ ७ ॥

जिनके उदर से निकले हुए कमल के आसन पर बैठकर ब्रह्मा चारों मुखों से रमणीय सामवेद की स्तुति पढ़ते रहते हैं, जिनकी महिमा की सीमा नहीं पायी गयी है, जिन्होंने मधु दैत्य की पत्नी के विलास का अन्त कर दिया है, खिलते हुए स्वर्णकेतकी के फूल की तरह पीत जिनके वस्त्र हैं, देवेन्द्र जिन्हें प्रणाम करते हैं ऐसे समस्त लोकों के स्वामी भगवान् सर्वोत्कृष्ट हैं ॥६–७॥

जयत्यखिललोकजिन्नरककालकेतूद्गमो
मदान्धदशकन्धरद्विरददुष्टपञ्चाननः ।
हिरण्यकशिपुप्रियामुखसरोजचन्द्रोदयः
सुरेन्द्ररिपुसिंहिकासुतशिरःकुठारो हरिः ॥ ८ ॥

जयतीति ॥ नरको भौमासुरः ॥ ८ ॥

समस्त लोकों पर विजय करने वाले, नरकासुर के विनाश के लिये पुच्छल तारे के उदय की प्रतिमूर्ति, हिरण्यकशिपु की रमणियों के मुखकमल के लिये चन्द्रोदय, मदान्ध रावणरूप हाथी के लिये भयङ्कर सिंह; देवेन्द्रशत्रु सिंहिका-पुत्र राहु के शिर के लिये कुठार भगवान् हरि सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ ८ ॥

[धूमकेतु का उदय किसी अलौकिक आपत्ति का सूचक होता है। नरकासुर के लिये भगवान् धूमकेतु के उदय की ही तरह थे। क्योंकि उन्होंने उसका विनाश किया था। हिरण्यकशिपु की पत्नियों का मुख यदि कमल है तो भगवान् उनके लिये चन्द्रोदय हैं। चन्द्र के उदित होने पर कमल मुकुलित हो जाते हैं। भगवान् ने हिरण्यकशिपु का वध कर उसकी कान्ताओं को म्लान

बना दिया। सिंहिका के लड़के का नाम राहु था। वह इन्द्र का विद्रोही था। भगवान् उसका शिर काट लिये थे ॥ ८ ॥]

जयत्यमरसारथिर्मदनतप्तलक्ष्मीलसत्-
पयोधरयुगस्थलीसरसचन्दनस्थासकः।
अचिन्त्यगुणविस्तरः सकलकेशिकंसाङ्गना-
कपोलफलकोल्लसत्तिलकभङ्गहारी हरिः ॥ ९ ॥

जयतीति ॥ अमराणां सारथिर्नेता अग्रणीरिति यावत् ॥ ९ ॥

देवताओं के अग्रणी, कामसन्तप्त लक्ष्मी के स्तनयुगलरूप भूमि पर आर्द्र चन्दन के स्थासक, अवर्ण्य गुण विस्तार वाले, केशी और कंस की समस्त स्त्रियों के कपोलस्थल पर सुशोभित होने वाली तिलक रचना को समाप्त करने वाले भगवान् सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ ९ ॥

[किसी आर्द्र पदार्थ को हाथ में लेप कर किसी भित्ति या स्थान पर थापा मारते हैं। उस पर हाथ की आकृति उभड़ आती है। उसी उभड़ी हुई हाथ की आकृति को स्थासक कहते हैं। सरस चन्दन का स्थासक उष्ण स्थल को शीतल और सुगन्धित बनाने के लिये लगाया जाता है। काम-सन्तप्त लक्ष्मी के लिये भगवान् स्थासक हैं। शैत्योत्पादक हैं। सौभाग्यवती स्त्रियां तिलक आदि से अपने को प्रसाधित करती हैं। विधवायें अपना प्रसाधन नहीं करतीं। भगवान् ने केशी और कंस का वध कर उनकी पत्नियों के श्रृङ्गार का प्रसङ्ग ही समाप्त कर दिया है ॥ ९ ॥]

जयत्यसमसाहसः सकललोकशोकान्तकृत्
सहस्रकरभासुरस्फुरितचारुचक्रायुधः।
विहङ्गपतिवाहनः कलुषकन्दनिर्मूलनः
समस्तभुवनावलीभवनशिल्पधारी हरिः ॥ १० ॥

समस्त भुवनमण्डलरूप भवन के शिल्पी भगवान् जिनका साहस अनुपम है, जो समस्त जनों के दुःख का निवारण करते हैं, सूर्य की तरह चमकने वाला, चंचल एवं मनोहर अस्त्र जिनका चक्र है, पक्षिराज गरुड़ जिनके वाहन हैं, पाप के अन्तर्निहित मूलों को जो समाप्त कर डालते हैं, सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ १० ॥

जयत्यमलभावनावनतलोककल्पद्रुमः
पुरन्दरपुरःसरत्रिदशवृन्दचूडामणिः।
अरातिकुलकन्दलीवनविनाशदावानलः
समस्तमुनिमानसप्रवरराजहंसो हरिः ॥ ११ ॥

निर्मल भावना से विनम्र बने लोगों के लिये कल्पद्रुम, इन्द्रप्रमुख समस्त देववर्ग में शिरोमणि, शत्रुवर्गरूप होनहार वन के लिये वनाग्नि और समस्त मुनिजनों के मानस के मुख्य राजहंस भगवान् सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ ११ ॥

[मुनिजनों का हृदय मानसरोवर है। भगवान् उसके मुख्य राजहंस हैं। राजहंस के लिये जैसे मानसरोवर बड़ा प्रिय है वैसे भगवान् के लिये मुनिजनों का हृदय बड़ा प्रिय है ॥ ११ ॥]

एवमभिवन्द्य देवदेवम्, समारुह्य विजयिवारणेन्द्रस्कन्धम्, अग्रतः प्रधावितानेककरितुरगपरिजनः, पुरः पुरोधसा निवर्त्तिते महानदीयागे, युगसहस्रपरिवर्त्तवृत्तान्तसाक्षिणीम्, अनवरततपस्यद्ब्रह्मर्षिप्रतिष्ठितशिवलिङ्गरुद्धरोधसम्, अनेकसुरसुन्दरीसेविततीरसंकेतलतामण्डपाम्, अनवरतमज्जद्वनगजमदामोदसुरभिततरङ्गाम्, अपरगङ्गाम्, अपरसागरराजमहिषीम्, अपरमार्कण्डेयतपःसिद्धिसखीम्, समुत्तीर्य भगवतीं मेकलकन्याम्, उत्फुल्लपल्लविताङ्कोल्लसल्लकीसरलसालसर्जार्जुननिम्बकदम्बजम्बूस्तम्बोदुम्बरखदिरकरञ्जाञ्जनाशोकसौभाञ्जनकप्रायैस्तरुभिराकीर्णम्, अभिमतं मतङ्गजानाम्, अनुभूतसारं सारङ्गैः, शिशिरतरं तरङ्गानिलैः, स्वर्गवनसमं समञ्जरीकैर्लताजालकैरुल्लङ्घ्य दक्षिणं नर्मदातीरपुण्यारण्यम्, अग्रतो, गगनवीथिमिव सिंहराशिराजितामुत्पतङ्गामुत्थितवृश्चिकामाविर्भूतसार्द्ररोहिणीमूलां च, छन्दोजातिमिव शार्दूलविक्रीडितमनोहरां हारिहरिणीमन्दाक्रान्तामनवरतवसन्ततिलकोद्भासितामतिविचित्रचम्पकमालां च, सीतामिव बहुकोटरावणवृतामुत्पन्नकुशलवां च, लङ्कामिव संचरद्द्विगुणपञ्चाननविभीषणां चारुपुष्पकामकाण्डाडम्बरितमेघनादां च, गीतविद्यामिव ततावनद्धघनसुषिरवंशस्वनमनोहरामनेकतालभेदां निषादऋषभमध्यमग्रामयुक्तां च, चित्रविद्यामिवानेककण्टकपत्रलतास्थानकविषमामृज्वागततापसां च, कलियुगशिवशासनस्थितिमिव महाव्रतिकान्तःपातिभिः कालमुखैर्वानरैः संकुलामनेकधाभिन्नस्रोतसं च, कापालिकखट्वाङ्गयष्टिमिव समुद्रोपकण्ठलग्नाम्, मायामिव शम्बराधिष्ठिताम्, मरुभूमिमिव करीरैः केसरिप्रसवैरसंचाराम्, अतिचारुचन्दनैः कृतगोरोचनाविशेषकैरक्षतदूर्वावाहिभिरारब्धमङ्गलाचारैरिव तृणस्थलैरलंकृताम्, विविधव्याधां विन्ध्याटवीमवगाहमानो मेषवृषमिथुनयुजः सधनुषः सकुम्भकन्यानेकत्र राशीभूतान् गिरिग्रामपारलोकानालोकयन्, 'इयं गगनवीथीव चित्रशिखण्डिमण्डिता सरित्तीरभूमिः, इयं सरिदिव

बहुतरङ्गोपशोभिता गोष्ठवसतिः, इयं च नक्षत्र मध्यगतापि न विशाखा तरुपङ्क्तिः, इयं पुष्पवत्यपि न दूषितस्पर्शा वीरुत्, इयं संनिहित-मधुदानवापि हरिप्रिया वंशजालिः, इयं कृतमातङ्गसङ्गापि न परिहृता द्विजैः सल्लकीसंततिः, इमे च केचित्सशिखण्डिनो महाद्रुपदाः, केऽपि विच्छिन्नकीचकवंशा वृकोदराः, केचित्सपुण्डरीकाक्षाः पाण्डुसंतानकाः केऽप्युद्धृतभुवो महावराहाः, केऽप्युत्कृष्टसुरभिश्रीद्रुमावलिहरिकरा-कृष्टपन्नगनेत्राः स्फुरन्मणिभित्तयोऽमन्दरागाः केऽपि सस्थाणवो दुर्गाश्रयाः श्रूयमाणगजवदनचीत्काराः सगुहाः कैलासकूटायमानाः सेव्याः खल्वमी विन्ध्यास्कन्धसंधिसानवः इति मन्त्रिसूनुना श्रुत-शीलेन सह विहितविदग्धालापः, कयापि वेलया कमप्यध्वानमतिक्रम्य काप्यपरिमितपतन्निर्झरजलतुषारस्पर्शमञ्जरितपादपपुष्पपरिमलमि-लन्मधुकरझङ्कारहारिणि रममाणशबरमिथुनसंमर्दमृदितामन्दमृदु-शाद्वले जलस्थलीप्रदेशे श्रान्तसैनिकानुकम्पया प्रयाणविच्छेद-मकरोत् ॥

एवमिति ॥ समुत्तीर्य भगवती मेकलकन्याम्। उत्फुल्लेत्यादौ लकारानुप्रासा-द्धेतोः केचित् 'अल्लोल्ल' इति पठन्ति, तच्च प्राकृते। संस्कृते त्वङ्कोठ इति। तथा उल्लङ्घ्य दक्षिणभागस्थितं मतङ्गजानां गजानामभिमतं नर्मदातीरं पुण्यारण्यम्, अग्रतो विविधविन्ध्याटवीमवगाहमान इति सम्बन्धः। कथंभूतां विन्ध्याटवीम्। सिंहराशिर्मृगेन्द्रवृन्दं ज्यौतिषोक्तः पञ्चमो राशिश्च। तेन राजिताम्। तथा पतङ्गः शलभः सूर्यश्च। वृश्चिकोऽली अष्टमराशिश्च। पुनः किंभूताम्। आविर्भूता सह आर्द्रेण शृङ्गबेरेण, रोहिणी ओषधिविशेषो, मूलो मूलकश्च यस्याम्। पक्षे आर्द्राः रोहिणी मूलानि ताराः। शार्दूलविक्रीडितेन सिंहविलसितेन मनोहरा। तथा हरिणीभिश्चारुभिर्हरिणीभिर्मन्दमाक्रान्ताम्। सर्वदा वसन्तैस्तिलकैश्च तरुविशेषैर्भू-षिताम्। तथा अतिविचित्रा चम्पकानां माला श्रेणी यस्याम्। पक्षे शार्दूलविक्री-डितं हरिणी मन्दाक्रान्ता वसन्ततिलका चम्पकमाला च छन्दांसि। तथा बहुभिः कोटरावणैर्वृतां छन्नाम्। कोटराणां वनमिति कृत्वा 'वनगिर्योः संज्ञायां—' इति सूत्रेण पूर्वपदस्य दीर्घः। 'वनंपुरगा—' इति सूत्रेण णत्वम्। कुशो दर्भः। लवो लेशः। सीतां तु बहुकोटेन प्राज्यकौटिल्येन रावणेन रक्षसा प्रार्थिताम्। तथा उत्पन्नौ कुशलवौ स्वसुतौ यस्याः। तथा संचरद्भिर्विगुणैर्विरज्जुभिः पञ्चाननैः सिंहैर्विशेषेण भीषणाम्। तथा चारुपुष्पमर्थाद् मनोहरसरोजं कं जलं यस्याम्। अत एवानवसरे-ऽपि आडम्बरितो विस्तृतो मेघनादस्तण्डुलीयको यस्याम्। लङ्का तु द्वौ गुणौ येषां पञ्चानां ते द्विगुणा दशेत्यर्थः। तत्संख्यान्याननानि यस्य स दशमुखो, विभीषणश्च तद्भ्राता संचरन्त्यस्याम्। पुष्पकं विमानम्। मेघनादो रावणात्मजः। गीतविद्या-मिवेति। तता विस्तीर्णा अवनद्धाः सुश्लिष्टा घनसुषिरा बहुविवरा वंशा वेणवस्तेषां स्वनेन रम्याम्। तालास्तरुविशेषाः। निषादाः शबराः। मध्ये भवो मध्यमः।

ग्रामः खेटकम्। पक्षे ततेन तन्त्रीगतेन अवनद्धेन पौष्करेण च घनेन कांस्यकृतेन सुषिरसंज्ञकवंशस्वनेन च मनोज्ञाम्। यद्यपि 'ततं तन्त्रीगतं ज्ञेयमवनद्धं तु पौष्करम्। घनं कांस्यकृतं प्रोक्तं सुषिरं वांशयमेव च' इति भरतः। तथाप्यत्रानेकविषयत्वाद्वंशस्वनोपादानमसंदेहार्थमुचितमेव। अनेकतालभेदाश्चच्चत्पुटादयो यस्याम्। तथा निषादेन स्वरेण मध्यमसंज्ञकग्रामेण युक्ताम्। चित्रविद्यामिवेति। कण्टकैः सूत्रैः पत्रैः पर्णैः, लताभिर्वल्लीभिः, शाखाभिर्वा स्थानकैश्चालवालैर्विषमाम्। तथा ऋजवोऽकुटिला आगताः स्वापार्थे प्राप्तास्तापसा मुनयो यस्याम्। चित्रविद्यापक्षे कलिकाकण्टक–शाखा–त्रिभङ्गि–संज्ञाभिश्चत्वारः पत्त्रावयवाः। एतैर्मिलित्वा शिशु–सकल–स्वस्तिक–वर्धमान–सर्वतोभद्राख्याणि पञ्च पत्त्राणि निष्पद्यन्ते। तदत्र शाखापर्यायो लताशब्दः। तथा स्थानकानि पार्श्वागत–ऋजु–ऋज्वागत–द्व्यर्धाक्ष–अर्धऋजु–गमनालीढ–स्वरित–त्रिभङ्गि–संज्ञानि। तैर्विषमाम्। स्थानकशब्देनैव ऋज्वागतं गतार्थमपि व्यापकत्वात्पृथगुक्तम्। प्रायो हि चित्रे ऋज्वागतमेव लिख्यते। तपसि भवानि तापसानि। मयूरासनोष्ट्रासनादीनि करणानि तापसाख्यानि। तत ऋज्वागते तापसानि यस्याम्। यद्वा ऋज्वागतेन तापं स्यतीति केचित्। ऋज्वागतेन दुःखापहारिणीमित्यर्थः। कलियुगेति। अप्सु रतिरब्रतिः। महती अब्रतिर्येषां ते महाब्रतिका वृक्षास्तेषामन्तर्मध्ये पतन्त्यभीषणं तैः कृष्णमुखैर्मर्कटैश्छन्नाम्। तथा स्फुटितप्रस्रवणाम्। पक्षे महाव्रतिकाः कापालिकाः।

तदन्तःपातिभिस्तदन्तर्भूतैः कालमुखैर्वा शैवदर्शनविशिष्टैर्नरैराचिताम्। बहुधा भिन्नप्रवाहाम्। स्रोतोऽत्र लक्षणया प्रवाहः। आम्नाय इति यावत्। कृतयुगे ह्येकमेव शिवशासनमभूत्, कलौ तु बह्वाम्नायमिति भावः। श्लेषचित्रादिषु बवयोरैक्यम्। तथाहि 'मालामुत्पलकन्दलैः प्रविकचैरायोजितां बिभ्रती, वक्त्रेणासमदृष्टिपातसुभगेनोद्दीपयन्ती स्मरम्। काञ्चीदाम नितम्बसङ्गि दधती व्यालम्बिना वाससा, मूर्तिः कामरिपोः सितांशुकधरा पायादुमाया जगत्'। अस्यार्थः—'कामरिपोः शिवस्य मूर्तिः पायात्। कीदृशी। विगतकेशैरुत्क्रान्तपलशिरोदलैरायोजितां मालां बिभ्रती। तथा विषमदृष्टिपातसुभगेन वक्त्रेण स्मरं दहन्ती। तथा नितम्बसङ्गि काञ्चीदामप्रायं व्यालं सर्पं दधती। तथा वाससा वस्त्रेण विना व्यतिरिक्ता। तथा सितांशुकं चन्द्रं धरतीति। पलं मांसम्। कमित्यव्ययं शिरोऽर्थम्। उमापक्षे व्यालम्बिना लम्बमानेन। शेषं सुगमम्'। समुद्रस्याम्भोधेरुपकण्ठे कूले लग्नाम्। यद्विस्तु समुद्रं मुद्रान्वितं यदुपकण्ठं गलसमीपं तत्र लग्नाम्। मुद्रा भूषणास्थिग्रन्थिः। शम्बरः श्वापदविशेषो दानवविशेषश्च। शम्बरेण हि विनिर्मिता माया। अत एव शाम्बरीत्युच्यते। मरुभूमिमिति। न संचारो गतिर्यस्याम्। केसरिणां सिंहानां प्रसवैः पोतैः। कीदृग्भिः। करिणमीरयन्ति तैः। पक्षे करीरैस्तरुविशेषैः। तथा केसरिणः किञ्जल्कोपेताः प्रसवाः पुष्पाणि यत्र तथाविधैः। अतिचेति। चन्दनस्तरुस्तद्रसश्च। कृतो गवां रोचनाविशेषोऽभिलापातिशयो यैः। पक्षे गोरोचना गन्धद्रव्यविशेषः। सा चातीव मङ्गल्या तस्या विशेषस्तिलकम्। अक्षतामलूनां दूर्वां वहन्त्यभीक्ष्णम्। पक्षेऽक्षतस्तण्डुलादिः। दूर्वेति समानम्। तथा एकस्मिन्स्थाने समूहीकृतनानानगग्रामप्राकृतजनानवलोकयन्। कीदृशान्। मेषाणां वृषाणां मिथुनानि युञ्जन्ति धारयन्ति। तथा सह धनुषा कोदण्डेन सधनुषः। तथा सकुम्भा मङ्गलार्थं मस्तक-

न्यस्तकलशाः कुमार्यो येषु। राशिसमूहो ज्यौतिषोक्तो मेषादिश्च मेषवृषमिथुन-कुम्भकन्याराशिविशेषसंज्ञाः। मन्त्रिसूनुना श्रुतशीलेन सह 'इयं च गगनवीथ्यादि' 'इमे च केचित्सशिखण्डिनः' इत्यादि च विहितविदग्धालापः प्रयाणविच्छेदम-करोत्। यदुक्तं तद्व्याख्यायते। तद्यथा। चित्राश्चित्रवर्णाः शिखण्डिनो मयूराः। पक्षे चित्रशिखण्डिनः सप्तर्षयः। बहुतरमिति क्रियाविशेषणम्। गोपैर्वल्लवैः शोभिता। सरित्तु बहुभिस्तरङ्गैरुपशोभिता। गोष्ठं गोकुलम्। नक्षत्रमध्यं गता। न विगतशाखा च। एतेन तरूणामुच्चता साभोगता चोक्ता। विशाखा हि नक्षत्र-मध्यं न गतेति विरोधसूचकोऽपिशब्दः। पुष्पवती कुसुमिता रजस्वला च। नदूषितस्पर्शा मृदुत्वात्। रजस्वला स्वस्पृश्येति विरोधः। संनिहितेभ्यो मधुदा क्षौद्रप्रदः। नवा अविच्छाया। हरिः सिंहः। या च हरेर्विष्णोः प्रिया वल्लभा सा कथमासन्नमधुसंज्ञकदैत्येति विरोधः। मातङ्गा गजाः श्वपचाश्च। द्विजाः पक्षिणो विप्राश्च। इमे चेति। महद् द्रुपदं वृक्षस्थानं येषु तथोक्ताः। तथा सह शिखण्डिभि-र्मयूरैः अथ च महाद्रुपदाः क्षत्रविशेषाः। द्रुपदतनयश्च शिखण्डी। चित्र-शिखण्डिमण्डितेत्यनेन पूर्वमटव्यां मयूरसद्भाव उक्तः। इदानीं विन्ध्यस्कन्धे ष्विति न पौनरुक्त्यम्। विच्छिन्नाः पृथग्भूताः कीचकाः सच्छिद्रा वंशाश्च निश्छिद्रा येषु। वृका अरण्यश्वान उदरे मध्ये येषु। वृकोदरो भीमोऽपि। स च विशेषेण छिन्नकीचकाख्यराजान्वयः। पाण्डुः संतानकस्तरुविशेषो येषु। तथा पुण्डरीकैः सिताम्भोजैस्तैश्च विभीतकैः सह। पाण्डोः संताना एव संतानकाः सुताः पाण्डवास्ते तु पुण्डरीकाक्षेण विष्णुना सह महान्तो वराहा येषु। तथा उत्कर्षेण हृता विस्तारेण रुद्धा भूर्यैः। महावराहो विष्णुः। स चोत्क्षिप्त-पृथ्वीकः। अमन्दो रागो येभ्यस्तेऽमन्दरागाः। तथा उत्कृष्टा मनोज्ञाः सुरभयश्च-म्पकाः श्रीद्रुमाश्च पिप्पलास्तेषामावलिस्तत्र हरयः कपयस्तैराकृष्टानि पन्नगनेत्राणि येषु। इत्यमन्दरागत्वे हेतुः। पक्षे मन्दराख्योऽगोऽद्रिः। तदोत्कृष्टोपधृता सुरभिः श्रीर्लक्ष्मीद्रुमः पारिजातश्च यैः। मन्दरेण हि सुरभिप्रभृतीन्यम्भोधेरुद्धृतानि। सुरभिर्धेनुः। इह तु प्रस्तावात्कामधेनुः। यद्विश्वप्रकाशः—'सुरभिश्चम्पके स्वर्ण-जातीफलवसन्तयोः। संधौ पले सौरभेय्याम्' इति। तथा बलेर्दैत्यस्य हरे-र्विष्णोश्च करैराकृष्टं भ्रामितं पन्नगो वासुकिलक्षणं नेत्रं मन्थानमाकर्षणरज्जुर्यैत्र। कैलासकूटा इवाचरन्तः। स्थाणुः स्थिरपदार्थः शिवश्च। दुर्गा विन्ध्यवासिनी देवी गौरी च। दुर्गं आश्रयो येषामिति वा। तथा आकर्ण्यमाना गजानां वदनचीत्कारा बृंहितानि येषु। कैलासे च। गजवदनो हेरम्बः। गुहा पाषाणसंधिः। गुहः कार्तिकेयः॥

इस तरह भगवान् विष्णु को प्रणाम किया। विजयी गजेन्द्र पर आरूढ़ हुआ। अनेक हाथियों और घोड़ों पर आरूढ़ परिजनों को आगे दौड़ा दिया। पुरोहितों के सम्मुख महानदी याग सम्पन्न किया। इसके बाद सहस्रों युगों के परिवर्तनविषयक वृत्तान्तों की साक्षी, निरन्तर तपस्या में लगे हुए ब्रह्मर्षियों द्वारा पूजित शिवलिङ्गों से घिरी हुई, अनेक देवरमणियों द्वारा सेवित तटीय लतामण्डपों वाली, अवगाहन करते हुए वनैले हाथियों की मदगन्ध से सुगन्धित

तरङ्गों वाली, अभिनव गंगा, समुद्र की दूसरी राजपत्नी, मार्कण्डेय ऋषि की तपस्या की दूसरी साक्षी, मेकल नामक पर्वत की पुत्री नर्मदा नदी को पार किया। इसके बाद विकसित एवं पल्लवित अङ्कोल, सल्लकी, सीने-सीधे साल, सर्ज, अर्जुन, नीम, कदम्ब, जामुनसमूह, गुल्लर, खैर, करञ्च, अञ्जन, अशोक तथा सौभाग्यजनक आदि वृक्षों से व्याप्त, हाथियों का आकाङ्क्षित, मृगों का प्रिय स्थान, तरङ्ग-स्पृष्ट वायु के कारण अतिशय शीतल, मञ्जरीयुक्त लता-जाल के कारण स्वर्ग-सदृश, नर्मदा-तट के दक्षिणभागीय पवित्र अरण्य को पार किया और विन्ध्याटवी का भ्रमण किया।

आकाश-वीथियां (गगन-मार्ग) जैसे सिंह राशि (सिंह-नामक राशि) से सुशोभित रहती हैं, उत्पतङ्ग (उत्कृष्ट सूर्य) से युक्त रहती हैं, वृश्चिक-संज्ञक राशि तथा आर्द्रा, रोहिणी और मूल नक्षत्रों से युक्त होती हैं वैसे वह विन्ध्याटवी भी सिंहराशि (सिंहसमूह) से सुशोभित थी। उत्पतङ्ग (उत्कृष्ट पक्षियों) से युक्त थी। डंक ऊपर किये हुए वृश्चिकों (बिच्छुओं), आर्द्र (शृङ्गवेर), रोहिणी और मूल नामक पौधों से मण्डित थी। छन्दवर्ग जैसे शार्दूलविक्रीडित, हरिणी, मन्दाक्रान्ता वसन्ततिलका और चम्पकमाला छन्दों के कारण मनोहर है वैसे वह विन्ध्याटवी भी शार्दूलविक्रीडित, (सिंहों के विलास) से युक्त थी। हारिहरिणीमन्दाक्रान्ता (मनोहर हरिणियों द्वारा मन्दतापूर्वक आक्रान्त) थी। निरन्तर वसन्त एवं तिलक (वृक्ष) से प्रफुल्लित थी। अत्यन्त विचित्र चम्पकमाला (चम्पे की पङ्क्तियों) से मण्डित थी। सीता जैसे बहुकोट रावण (अत्यन्त कुटिल रावण) द्वारा घिर गयीं थीं और कुश तथा लव को उत्पन्न को थीं वैसे ही वह विन्ध्याटवी बहु+कोटरावण (बहुत से खोखलों से पूर्ण जंगलों) से घिरी हुई थी और कुश के लव (अंश) को उत्पन्न की हुई थी।

[विन्ध्याटवी-पक्ष में बहुकोटरावण पद का विच्छेद बहु + कोटर + वन है। 'कोटराणां वनम्' इस विग्रह में समास होने पर "वनगिर्योः संज्ञायां कोटरकिंशुलुकादीनाम्" (पा० सूत्र) से वन के पूर्ववर्ती 'र' के अ को दीर्घ हो गया और 'वनं पुरगामिश्रकासिध्रकाशारिकाकोटराग्रेभ्यः" (पा० सूत्र) से उत्तरपदवर्ती वन के न को ण हो गया। ऐसे पेड़ों के जंगल वहाँ थे जिनमें बहुत से खोखले थे।]

लंका जैसे संचरद् + द्विगुणपञ्चानन + विभीषणा (घूमते हुए पांच के दुगुने (दश) मुँह वाले रावण और विभीषण से युक्त थी, चारु + पुष्पका (सुन्दर पुष्पक विमान से सम्पन्न) थी, अकाण्डाडम्बरित + मेघनादा (असमय में भी मेघनाद (रावणपुत्र) के गर्जन से व्याप्त रहती) थी वैसे वह (विन्ध्याटवी)

भी सञ्चरद् + वि + गुण + पञ्चानन + विभीषणा (घूमते हुए बन्धन-विहीन पञ्चानन (सिंहों) के कारण विभीषण (भयङ्कर) थी। चारुपुष्पका (सुन्दर फूलों से मण्डित) थी। अकाण्डाडम्बरितमेघनादा (असमय में भी बादलों के गर्जन से व्याप्त) थी।

[विन्ध्याटवी-पक्ष में विगुण + पञ्चानन + विभीषणा पद में विगुण का अर्थ बन्धन हीन है। गुण शब्द का अर्थ रस्सी है। वि का अर्थ विगत है। अर्थात् रस्सी से रहित वे सिंह हैं। बन्धनहीनता के ही कारण वे विभीषण (बड़े भयङ्कर) हैं।]

गीत विद्या जैसे तत (वीणाध्वनि), अवनद्ध (पौष्करध्वनि), घन (झाल की ध्वनि), सुषिर (वेणु की ध्वनि), अनेक ताल (चञ्चत् पुट आदि) और निषाद, मध्यम ग्राम आदि स्वर से युक्त होती है वैसे वह (विन्ध्याटवी) भी तत (फैले हुए), अवनद्ध (काफी घने, एक दूसरे से सटे हुए), घन सुषिर (बहुत छिद्रों से युक्त), वंशस्वन (वेणुओं की ध्वनि) के कारण मनोहर, अनेक ताल वृक्षों से युक्त, निषादों (किरातों) और मध्यम ग्राम (मध्यवर्ती ग्रामों) से मण्डित थी।

[गीत विद्या और विन्ध्याटवी दोनों ही पक्षों में स्वन शब्द का अर्थ ध्वनि है। वंश के पूर्ववर्ती तत, अवनद्ध आदि सभी विशेषण विभिन्न वाद्यों की ध्वनि के ही वाचक हैं। फिर भी यहाँ वंश स्वन का उपादान स्पष्टार्थक है। आचार्य भरत ने कहा है—"ततं तन्त्रीगतं ज्ञेयम्, अवनद्धं तु पौष्करम्। घनं कांस्यकृतं प्रोक्तं सुषिरं वांश्यमेव च॥" वीणा की आवाज को तत कहते हैं। मृदङ्ग की आवाज अवनद्ध, झाल की आवाज घन और वंशी की आवाज को सुषिर कहते हैं।]

चित्र विद्या की तरह वह विन्ध्याटवी अनेक कण्टक (कांटे), पत्र (पत्ते), लता, स्थानक (आलवाल, थाले) के कारण ऊँची, और ऋजु तापस (सीधे सादे तपस्वियों) के आगमन से युक्त थी।

[चित्र विद्या में कलिका, कण्टक, शाखा और त्रिभङ्गी नामक चार पत्रावयव प्रसिद्ध हैं। इन्हीं के मिश्रण से शिशु, सकल, स्वस्तिक, वर्धमान और सर्वतोभद्र नामक पाँच पत्र निष्पन्न होते हैं। यहाँ शाखा शब्द लता का पर्याय है। पार्श्वागत, ऋजु, ऋज्वागत, द्व्यर्धाक्ष, अर्धऋजु, गमनालीढ, त्वरित और त्रिभङ्गी नामक स्थानक होते हैं। स्थान शब्द के कह देने से ही ऋज्वागत भी गतार्थ हो जाता किन्तु चित्र में ऋज्वागत का अधिकांश प्रयोग होता है, इसलिये उसका पृथक् प्रयोग हुआ है। मयूरासन, उष्ट्रासन आदि को

तापस संज्ञा दी गयी है। ऋज्वागत नामक स्थानक की सुन्दरता से चित्र विद्या ताप का हरण करती है।]

कलियुग की शिवशासन-स्थिति की तरह महाब्रतिक (जल से प्रेम रखने वाले बड़े-बड़े पेड़ों) के बीच कालमुख (काले मुँह वाले) वानरों (बन्दरों) से संकीर्ण हो गयी थी और वहाँ विविध झरने बह रहे थे।

[विन्ध्याटवी-पक्ष में वृक्षों का महाब्रतिक कहा गया है। अप् का अर्थ है जल। अप् (जल) से जिनकी रति (प्रेम) हो उन्हें अब्रतिक (अप् + रतिक) कहा गया है। महत् शब्द के साथ अव्रतिक के जुड़ने पर महाब्रतिक बन गया। अर्थात् जल से स्नेह रखने वाले बड़े-बड़े पेड़ों के बीच-बीच में काले मुख वाले बन्दर भरे थे। जगह-जगह पर झरने गिर रहे थे।

कलियुग + शिवशासन + स्थिति—कलियुग में शिवोपासना की पद्धति से विन्ध्याटवी की समानता बतायी गयी है। कलि की शिवोपासनापद्धति महाब्रतिकान्तःपाती (कापालिक लोगों के समीप रहने वाले) लोगों से अथवा काल-मुख-नर (शिव की उपासना करने वाले मनुष्यों) से व्याप्त रहती है। महाब्रतिक कापालिक को कहते हैं। काल + मुख शिवोपासक को कहते हैं। वानर शब्द में "वा" का अथवा अर्थ है और नर का मनुष्य। शिवोपासना की पद्धति में कापालिक समीपवर्ती लोग तथा शिवोपासक अधिक पायें जाते हैं। यह पद्धति भिन्न स्रोतस् (विविध धाराओं (सम्प्रदायों) वाली हो गयी है। सत्ययुग में इस उपासना की एक ही धारा थी अब इसकी अनेक धारायें हो गयी हैं।]

कापालिक की खट्वाङ्गयष्टि जैसे समुद्रोपकण्ठलग्ना होती है वैसे वह (विन्ध्याटवी) भी समुद्रोपकण्ठलग्ना (समुद्र के तट तक फैली हुई) थी।

[कापालिक खट्वाङ्गयष्टि धारण करते हैं। खट्वाङ्ग भगवान् शिव का एक अस्त्र है। शिवोपासकों का एक वर्ग कापालिक है। ये लोग मृत मनुष्य की खोपड़ी हाथ में लिये रहते हैं। भोजन उसी में करते हैं और पानी भी उसी से पीते हैं। शंकर जी के अनुकरण में उनके अस्त्र खट्वाङ्ग को भी धारण करते हैं। खट्वाङ्ग (टेढ़ी-मेढ़ी छड़ी) की मुठिया के पास मुद्रा लगी रहती है। अतः उस यष्टि के उपकण्ठ को समुद्र (मुद्रा सहित) कहा गया है। उस छड़ी की मुठिया के पास अलंकार के रूप में हड्डी लगायी गयी रहती है उसे मुद्रा कहते हैं। समुद्रोपकण्ठत्व रूप साधारण धर्म विन्ध्याटवी और खट्वाङ्गयष्टि दोनों में है।]

माया की तरह शम्बराधिष्ठित थी।

[शम्वर नाम का एक दैत्य था। माया का निर्माण उसी ने किया था। इसी लिये माया को शाम्बरी कहते हैं। माया जैसे शम्वर नामक दैत्य से अधिष्ठित है वैसे ही वह विन्ध्याटवी शम्बर (हिंसक जन्तुओं) से अधिष्ठित थी।]

मरुभूमि जैसे करीर नामक वृक्ष के केसरिप्रसव (पराग पूर्ण फूलों) के कारण असंचरणीय (अगम्य) होती है वैसे वह विन्ध्याटवी भी करीरकेसरिप्रसव (हाथियों को चीत्कार करा देने वाले सिंहों के बच्चों) के कारण असंचरणीय (अगमनीय) है।

[मरुभूमि में करीर (करील) के पेड़ अधिक होते हैं। इन कटैले पौधों के कारण वह भूमि अगम्य होती है। केसरिप्रसव करीर का विशेषण है। प्रसव का अर्थ यहाँ पुष्प है। केसर से युक्त पदार्थ को केसरी कहा जा सकता है अतः केसरिप्रसव का अर्थ हुआ पराग पूर्ण पुष्प। विन्ध्याटवी पक्ष में करीर शब्द का अर्थ है हाथी को चीत्कार करा देने वाला। करी (हाथी) को जो ईरण (चीत्कार) करावे वह करीर है। केसरिप्रसव तो सिंह-शिशु अर्थ में प्रयुक्त हुआ ही है। अर्थात् वह विन्ध्याटवी हाथियों की चिग्घाड़ करा देने वाले सिंहों के बच्चों के कारण अगम्य थी। सिंह-शिशुओं के डर से चलना असम्भव था।]

मङ्गलकार्यस्थल की तरह अत्यन्त सुन्दर चन्दन, गोरोचन-अक्षत-दूर्वा (अखण्डित दूर्वा) वाली तृण-स्थली से अलङ्कृत थी। विभिन्न व्याधों से व्याप्त थी।

मङ्गल कार्य के अवसर पर भी चन्दन, गोरोचन, अक्षत (तण्डुल), दूर्वा आदि पदार्थों का संग्रह किया जाता है। पूजन के स्थल पर इनकी थोड़ी-थोड़ी मात्रा संगृहीत की जाती है। विन्ध्याटवी में तो इन सभी पदार्थों के विशाल वन हैं। इससे उसकी पूजनीय-स्थानता और बढ़ी हुई है।]

(विन्ध्याटवी में ही घूमता हुआ वह) इकट्ठे हुए बहुत से पर्वतीय गाँवों के ग्रामवासियों को देखा। कुछ लोग मेष (भेड़) और वृष (बैल) के मिथुन (जोड़े) को लिये हुए थे। कुछ लोग सधनुष (धनुष के साथ) थे। कन्यायें सकुम्भ (घड़ा ली हुई) थीं।

[मेष, वृष, मिथुन, धन, कुम्भ, कन्या, ये विभिन्न राशियों के नाम हैं। श्लेष के माध्यम से इनका भी यहाँ स्मरण दिलाया गया है। अगले वाक्यांश में विन्ध्याटवी के विभिन्न पदार्थों का वर्णन है।]

"यह नदी तट की भूमि आकाश-मार्ग की तरह चित्र शिखण्डियों (चित्र वर्ण के मयूरों) से अलङ्कृत है।"

[आकाश-मार्ग चित्रशिखण्डियों (सप्तर्षि तारों) से अलङ्कृत है ।]

नदी जैसे बहुतरङ्गोपशोभित (बहुत जललहरियों से सुशोभित होती है वैसे यह गोष्ठवसति (पशु बहुल गाँव) भी बहुतरम् + गोप + शोभित (अधिकांश ग्वालों से सुशोभित) है ।

यह वृक्ष-पंक्ति नक्षत्रों के मध्य तक पहुँची हुई है और विशाखा (शाखाओं से विहीन) नहीं है ।

[विभिन्न नक्षत्रों की गणना में विशाखा भी एक नक्षत्र है । नक्षत्र मध्यगत होते हुए भी विशाखा (नक्षत्र) से हीन बताना विरोध का मूल है । क्योंकि जो नक्षत्र मध्यगत होगा वह विशाखा से भी संयुक्त रहेगा ही । विशाखा शब्द का शाखा-विहीन अर्थ कर विरोध का परिहार किया जाता है]

यह लता पुष्पवती (फूलों से लदी) है और इसका स्पर्श दोषजनक नहीं है ।

[पुष्पवती (रजस्वला) का स्पर्श दोषजनक माना जाता है । लता पुष्पवती है फिर भी उसका स्पर्श दोषमूलक नहीं है । पुष्पवती होती हुई भी दूषितस्पर्शा नहीं है । यही विरोध है । पुष्पवती शब्द का पुष्पपूर्ण अर्थ कर लेने पर विरोध का परिहार हो जाता है ।]

यह मधुदा (मधु देने वाले छत्तों से युक्त) नवीन बांसों की पङ्क्ति हरि-प्रिया (सिंहों को प्रिय) है ।

[जो सन्निहित + मधुदानवा (मधुदानव के पास रहने वाली नायिका) होगी वह हरिप्रिया (भगवान् विष्णु की प्रिया) कैसे होगी । विरोध । मधुदा और नवा को वंशजालिः का विशेषण बना देने पर विरोध का परिहार हो जाता है । मधु देने वाली नवीन बांसों की पंक्ति । मधु के छत्तों से युक्त वंश-जालि को मधुदा कहा गया है ।]

यह सल्लकी वृक्ष की पंक्ति मातङ्गों (हाथियों) से स्पृष्ट है और द्विजों (पक्षियों) से छुटी नहीं है ।

[मातङ्ग (चाण्डाल) से स्पृष्ट है फिर भी द्विज (ब्राह्मण) से छुटी नहीं है । यह विरोध है ।]

[इसके बाद विन्ध्याचल की तटीय चोटियों का वर्णन है ।]

ये शिखर महाद्रुपद (बड़े-बड़े पेड़ों की भूमि) हैं और सशिखण्डी (मयूरों से युक्त) हैं । अतः द्रुपदपुत्र शिखण्डी से युक्त महाद्रुपद (क्षत्रिय वंश) की तरह हैं । वृकोदर (भीम) जैसे विच्छिन्न कीचक-वंश (कीचक राजा के वंश को समाप्त कर दिये) थे वैसे ये कोई शिखर भी वृकोदर (भेड़ियों को अपने उदर (गुफाओं) में लिये हुए) हैं और विच्छिन्न कीचक

वंश (सच्छिद्र तथा निश्छिद्र दोनों तरह के बांस यहाँ से काटे गये) हैं। पाण्डु-सन्तानक (पाण्डु की सन्तान युधिष्ठिर आदि) जैसे पुण्डरीकाक्ष (विष्णु) के साथ थे वैसे ही कुछ (शिखर) पाण्डु-सन्तानक (पीत रंग के सन्तानक नाम के वृक्ष से युक्त) हैं और पुण्डरीक (कमल) तथा अक्ष (रुद्राक्ष आदि के पौधों) से युक्त हैं। महावराह (भगवान् विष्णु) जैसे उद्धृत-भू (पृथ्वी का उद्धार किये) थे वैसे ये भी महावराह (बड़े-बड़े सूकरों से युक्त) हैं और उत् + हृत + भू (पृथ्वी के पर्य्याप्त भाग को अपनी विशालता से छेंके हुए) हैं। कुछ शिखरों पर उत्तम कोटि के सुरभि (चम्पा) और श्रीद्रुम (पिप्पल) की तरुपंक्तियों में (स्थित) हरिकर (वन्दरों के हाथों) ने पन्नग-नेत्र (सर्प नेत्रों) को आकृष्ट कर लिया है मणिभित्तियाँ चमक रहीं हैं। अतः अमन्दराग (पर्याप्त आकर्षण वाले) हैं।

[इन विशेषणों के कारण वे शिखर-समुद्र की तरह हैं। समुद्र भी उत्कृष्ट-सुरभि श्री-द्रुमावलि-हरि-कराकृष्ट-पन्नग-नेत्र हैं और स्फुरन्मणिभित्ति तथा मन्दराग हैं। उत्कृष्ट (उत्तम) सुरभि (कामधेनु) श्रीद्रुम (पारिजात) आदि पदार्थों के समूह को प्राप्त करने के लिये हरिकर (भगवान् विष्णु के हाथों) द्वारा पन्नग (वासुकिनाग रूप) नेत्र (मन्थन-रस्सी) आकृष्ट (खींची गयी) थी। मणि की भित्तियाँ वहाँ स्फुरित हो रही थीं। मन्दर नाम का अग (पर्वत) वहाँ रक्खा गया था। मथने की रस्सी को नेत्र कहते हैं। भगवान् विष्णु ने अपने हाथों से मन्दराचल को मन्थन-दण्ड बनाकर और वासुकि नाग को मन्थन-रस्सी बना कर समुद्र का मन्थन किया था। विन्ध्य-स्कन्ध पक्ष में अमन्द-राग अन्वय करता है और समुद्र पक्ष में मन्दर + अग।

विन्ध्य के शिखर पर्याप्त आकर्षण वाले हैं। वन्दरों के हाथों ने सर्पों की आँखों को आकृष्ट कर लिया है। चम्पे का फूल अधिक सुगन्धित होता है और पिप्पल के पेड़ में अधिक खोखले होते हैं। गन्ध और खोखले दोनों ही सर्पों को अधिक प्रिय हैं। बन्दरों के हाथों को बड़े गौर से देखते हैं कि वे किधर जाते हैं। बन्दर भी साँपों के विरोधी होते हैं। आकृष्ट शब्द के अर्थ खैंच लाना और अपनी ओर आकृष्ट कर लेना दोनों हो सकते हैं। खैंच लेना अर्थ भी संगत है, क्योंकि वन्दर साँप के मुह को हाथ में पकड़ लेते हैं और उसे पेड़ में या जमीन में रगड़ने लगते हैं। रगड़ते रगड़ते उसके मुँह आँख आदि को समाप्त कर डालते हैं। अतः खैंच लेना या समाप्त करना अर्थ भी यहाँ उचित ही है।]

कोई (शिखर) सस्थाणु (वृक्षों से युक्त) हैं और दुर्गाश्रय (दुर्ग (अगम्य) आश्रय (स्थान) वाले) हैं।

[सस्थाणु (शिवजी की मूर्तियों से युक्त) हैं और दुर्गा के भी आश्रय (मन्दिर) वहाँ बने हैं उन शिखरों पर कुछ सस्थाणु (शिवोपासक) हैं और कुछ दुर्गा (विन्ध्यवासिनी) को ही आश्रय (शरण) मानने वाले शाक्त जन हैं ।]

कुछ सगुह (गुफाओं से युक्त) हैं । श्रूयमाणगजवदनचीत्कार (कुछ पर हाथियों के चीत्कार सुने जा रहे) हैं । अतः कैलास के शृङ्गों की तरह हैं ।

[कैलास की चोटी भी सगुह (कार्तिकेय से युक्त) है और वहाँ गजवदन (गणेश) जी का चीत्कार सुनायी पड़ता है ।]

इसलिये ये विन्ध्याचल की तटीय चोटियाँ सर्वथा सेवनीय हैं ।" इस तरह मन्त्रिपुत्र श्रुतशील के साथ वैदुष्यपूर्ण बातें कर कुछ ही समय में मनोहर मार्ग को पार कर थके हुए सैनिकों पर कृपा कर एक अत्यन्त सुन्दर स्थान पर यात्रा स्थगित किया जो पर्याप्त रूप से गिरते हुए झरनों के स्पर्श से उगे हुए वृक्ष पुष्पों के पराग के लिए झूमते हुए भ्रमरों के कारण मनोहर हो गया था ।

तैस्तैश्चिरन्तनवासरव्यापारैरहःशेषसहितामतिवाह्य तामपि निशामनन्तरमुन्मिषत्पक्ष्मपक्षिपक्षावधूनितपवनैरिवापनीयमानेषु गगनचत्वरचर्चाप्रकरपाण्डुपुष्पपुञ्जकेषु नक्षत्रेषु, स्वविरहोत्पन्नतमःकलङ्ककलुषितानि मनाक्कुङ्कुमपङ्कपिञ्जरैः करैः परामृश्य प्रसादयति दिननाथे दिङ्मुखानि, पुनः पूर्वक्रमेण प्रस्थानमकरोत् ॥

उन उन पुरातन दैनिक कार्यों के साथ अवशिष्ट दिन और रात को भी विताकर प्रातःकाल जब जंभाई लेते हुए पक्षी अपने फड़फड़ाते हुए पंखों की हवा से आकाश मार्ग में फैले हुए श्वेत पुष्प-राशि सदृश नक्षत्रों को मानों बहार रहे थे, अपने विरह से उत्पन्न अन्धकार रूप कलङ्क से कलुषित दिशाओं के मुख को भगवान् सूर्य कुङ्कुम-लेप से लिप्त अपने करों से प्रसन्न कर रहे थे, पुनः पहले की तरह यात्रा शुरू किया ।

[प्रातः काल में स्वाभाविक ढंग से तारे तिरोहित हो जाते हैं । कवि कल्पना करता है कि पक्षी अपने पंख की हवा से उन तारों को बटोर रहे थे । भगवान् सूर्य के तिरोहित हो जाने के कारण दिग्वधुएँ विरहवेदना से उदास थीं उनका मुख म्लान हो गया था । अन्धकार को ही म्लानता के रूप में लिया गया है । प्रातःकाल सूर्य अपने हाथों में कुङ्कुम लगाकर दिग्वधुओं के मुह को उज्वल बना रहे थे । किरणों से दिशाओं को उद्भासित कर रहे थे ।]

एवमपसरन्मार्गान्मार्गान्नीवारीणि वारीणि सहंसनिनदान् नदान् सकरेणुरेणुस्थलमाच्छादितदिशि खराणि शिखराणि लङ्घयन् सुनीरागान् गिरिगहनग्रामाँस्तपस्विनश्च मानयन्नेकदा नातिदूर इवोत्ककादम्बकदम्बचुम्ब्यमानाम्बुजराजिरजोरञ्जिताम्भसि सरित्तीरे तरुतलोपविष्टमेकमध्वश्रान्तमध्वनीनमिदं चारुश्लोकयुगलमतिमधुरगीततरङ्गरङ्गिताक्षरं गायन्तमद्राक्षीत् ॥

एवमिति ॥ मार्गादीनां लङ्घनादिकं कुर्वन्। अध्वानमलंगामी इत्यध्वनीनस्तं चाटुश्लोकयुगं गायन्तमद्राक्षीत्। अपसरत्सैन्यभयान्निवर्तमानं मार्गं मृगसमूहो येभ्यस्तांस्तथोक्तान्। नीवारोऽस्त्येष्विति। सह हंसनिनदैः। नदो जलाधारः। सह करेणुभिर्गजैः। आच्छादिता दिशो यैस्तान्याच्छादितदिशि। खराणि तीक्ष्णानि। सुष्ठुनीरं जलमगाश्च तरवो येष्विति। पक्षे सुष्ठु निर्गतरागान्। मानयन्निति मानिरुपभोगार्थः पूजार्थश्च। उपभोगे यथा 'मानयिष्यन्ति सिद्धाः, सोत्कण्ठानि प्रियसहचरीसंभ्रमालिङ्गितानि' ॥

भागते हुए मार्ग (मृग समूह) वाले रास्ते को, नीवारि (नीवार धान से सम्पन्न) वारि (जल) को, हंस ध्वनि-युक्त नदों को, करेणु (हथिनियों) से युक्त रेणु स्थलों (धूलिबहुल स्थानों) को और दिशाओं को घेरे हुए तीक्ष्ण पर्वतों को पार किया। सुनीर (सुन्दर जल) और अग (वृक्ष) वाले पर्वतीय घने गाँवों और सुनीराग (पूर्ण वैराग्य-सम्पन्न) तपस्वियों को सम्मानित किया। समीप में ही उत्कण्ठित हंसों का समूह कमलों को चूम रहा था। उनके पराग से नदी-तट का जल रञ्जित हो गया था। वहीं पर पेड़ की छाया के नीचे मार्ग के थके हुए एक राही को देखा जो माधुर्य की तरङ्गों में तैरते हुए इन दो सुन्दर श्लोकों को गाया।

तव सुहृदुपभुक्तश्रीफलः कामकेलिं
जनयति वनितानां कुङ्कुमालोहितानाम्।
श्रयति स च समूहो मेखलाभूषितः सन्
जनयति वनितानां कुंकुमालोऽहितानाम् ॥ १२ ॥

तवेति ॥ तव सम्बन्धी सुहृन्मित्रजनो भुक्तलक्ष्मीफलः कुङ्कुमेन आ ईषल्लोहितानां वनितानां जनितात्यर्थरागाणां योषितां मन्मथलीलां जनयति। 'वनिता जनितात्यर्थरागयोषिति' इति विश्वप्रकाशः। तथा अहितानां समूहो मेखलाभुवि गिरिमध्यभुवि उषितः कुमालः कुत्सितस्रक् सन् वैरत्यागात्सज्जनतायाः ब्रह्मचर्यादियोगाच्चतिताया बर्हिपत्रवसनादिसम्बन्धाद्वनितायाः शबरस्वस्य कुं भूमिकां श्रयति। स चेति चकारात् सुहृदहितसमूहयोरन्यीन्यमयमकितपादस्थितविशेषणाभ्यां शब्दश्लेषद्वारेण सम्बन्धः। तद्यथा, मेखलया कटिपट्टिकया भूषितः सुहृत् अहितसमूहोऽपि अनुभुक्तविभवः। अत्र प्रथमतृतीयपादौ विशेषणगतश्लेषेणालंकृतौ द्वितीयचतुर्थौ तु सम्पूर्णयमकेन ॥ १२ ॥

मित्र पक्षः—तुम्हारा मित्र-मण्डल लक्ष्मी के फल का अनुभव कर रहा है। कुङ्कुमराग-रञ्जित प्रेमपूर्ण कान्ताओं की कामलीला को उत्पन्न कर रहा है। (कभी कभी) मेखला (करधनी) से भूषित होकर वनिता (स्त्री) की कु (भूमिका) को धारण करता है। कु (पृथ्वी रूप) माला को धारण करता है।

शत्रु पक्षः—आपके अहितों (शत्रुओं) का समूह पर्वत की तटीय भूमि पर बसता है। कुमाल (कुत्सित मालाओं को धारण करता) है। अतः सज्जन, यति (संन्यासी) और वनी (वनवासी) के धर्म का धर्म धारण करता है। और श्रीफल (बिल्व फल) का भोजन करता है ॥ १२ ॥

[मित्र पक्ष—उपभुक्त + श्रीफलः—मित्र वर्ग लक्ष्मी के फल का अनुभव कर रहा है। कुङ्कुम रंग से रञ्जित पूर्ण प्रसाधित स्त्रियों में भी अपने प्रति राग उत्पन्न कर देता है। अधिक ऐश्वर्य सम्पन्न होने के कारण उच्च वर्ग की रागपूर्ण स्त्रियों को आकृष्ट कर लेता है। रागभरी स्त्री को वनिता कहते हैं। मेखला + भूषितः—करधनी से अलंकृत है। कुमालः—कु (पृथ्वी) ही उनकी माला है। पृथ्वी के लोगों को वे माला की तरह हृदय से लगाते हैं। कु शब्द पृथ्वी का वाचक है किन्तु यहाँ पृथ्वीस्थ लोगों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वनीतानां कुम् श्रयति—आपका मित्र-मण्डल इतना रसिक है कि करधनी आदि पहन कर स्वयम् स्त्री की भूमिका में उतर आता है। नृत्य आदि कार्य में भाग लेता है।

शत्रुपक्ष—आपके अहित लोगों का समूह उपभुक्त + श्रीफल (बिल्वफल खाता) है। जंगल में रहने के कारण उसे दूसरा कोई भोजन नहीं मिलता। कुमाल (कुत्सित मालायें धारण करता) है। मेखला + भू + उषित—(पर्वत की तराई वाली भूमि में रह रहा) है। सन्+जनयति वनितानां कुम् श्रयति। (सन्+ + जन + यति + वनितानां कुम् + श्रयति)। सन् और जन को मिलाकर सज्जन बनाते हैं जिसका अर्थ होता है शिष्ट व्यक्ति। सज्जन, यति (संन्यासी) और वनी (वनवासी) का द्वन्द्व समास हुआ है। वनी के आगे जो तल् प्रत्यय दीखता है उसका सज्जन, और यति शब्द से भी अन्वय होगा, क्योंकि द्वन्द्व के अन्त में आनेवाले अंश का प्रत्येक के साथ अन्वय होता है। द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं प्रत्येकमपि सम्बध्यते। अर्थात् आपके शत्रु सज्जनता, यतिता और वनिता (वनवासिता) की भूमिका में हैं। पर्वत के बीच जमीन पर सोते हैं। किसी से सम्पर्क न होने के कारण रागद्वेष-विमुक्त हैं। अतः सज्जनता की भूमिका में हैं। पत्नियों से वियुक्त हैं। जंगल में मारे मारे फिरते हैं। अतः ब्रह्मचर्य आदि नियमों का पालन हो जाता है। इसलिये संन्यासी का धर्म यतिता भी उनमें है। बाहर रहते हैं। घास-वल्कल आदि पहनते-ओढ़ते हैं अतः वनिता (वनवासी का धर्म) भी उनमें प्राप्त है ॥ १२ ॥

अपि च—

त्वत्तो भयेन नृप पश्य जनो वनेषु
कान्त्या जितस्मर तिरोहितवानरीणाम्।
शाखामृगश्चपल एष गिरेरुपत्य-
कां त्याजितः स्मरति रोहितवानरीणाम्॥ १३॥

त्वत्त इति॥ नृपेति संबोधनम्। कान्त्या सौन्दर्येण जितस्मरेति तद्विशेपणम्। पश्येत्याभिमुख्यकरणे। अरीणां जनस्त्वद्भयेन वनेषु तिरोहितवान्। जितस्मरेत्यनेन 'स्मरोऽपि किल त्वया जित इति तिरोहितोऽभूत्' इति प्रतीयते स्मृतिगोचर एव न तु दृश्यते इत्यन्वर्थात्। तथा एष प्रत्यक्षवर्ती शाखामृगो वानरश्चपलो लोलः। अनेनैव वनवासिना रिपुजनेन गिरेरुपत्यकामधोभूमिकां त्याजितो रोहित-वानरीणां मर्कटीनां स्मरति। वानरीणामिति 'अधीगर्थ—' इति सूत्रेण कर्मणि षष्ठी॥ १३॥

जितस्मर, (अपने सौन्दर्य से कामदेव को जीत लेने वाले महाराज) देखिये, आप के भय से शत्रुओं के आदमी जंगलों में छिप गये हैं। यह चंचल शाखा मृग (बन्दर) पहाड़ की चोटी को छोड़ कर रोहितवानरी (लाल मुह वाली बन्दरी) का स्मरण कर रहा है॥ १६॥

[द्वितीय और चतुर्थ चरण में यमक है। द्वितीय चरण के तिरोहित-वान्+अरीणाम् विग्रहवाले पद का कर्ता जनः है। अर्थात् अरीणाम्+जनः+तिरो-हितवान्। शत्रुओं के आदमी छिप गये हैं। चतुर्थ चरण के तिरोहितवानरी-णाम् एक समस्त पद है। अर्थात् लाल मुह वाली वानरियों को वन्दर याद कर रहा है। 'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' इस नियम से यहाँ कर्म में षष्ठी हुई है। यहाँ राजा को जितस्मर कहा गया है। उसने अपने सौन्दर्य से कामदेव को जीत लिया है। जीता तो प्रतिद्वन्द्वी को ही जाता है। अतः काम भी उसका प्रतिद्वन्द्वी (शत्रु) हुआ। वह भी हार कर छिप गया है। इसीलिए तो दिखाई नहीं पड़ता। यह भी कहा जा सकता है कि वह जंगल में ही छिप गया है। इसीलिए अरण्य का प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त मनोहर हो गया है। उसकी नीरव भूमि उद्दीपक बन गयी है॥ १३॥

'अहो नु खल्वयमनल्पशास्त्रीयसंस्कारामृतसंपर्कपल्लवितप्रज्ञाङ्कुरः कोऽपि कुशलः काव्यवक्रोक्तिषु पथिकयुवा योग्यः, सम्भाषणस्य' इत्यवधारयति राजनि ससंभ्रममुत्थाय स्थित्वा च पुरः स पान्थः सप्रणाममिमं श्लोकमपाठीत्॥

अहा, यह तो निश्चित ही काव्य वक्रोक्ति में अत्यन्त कुशल पथिक युवक है। इसका प्रज्ञाङ्कुर (बुद्धि रूप अङ्कुर) पर्याप्त शास्त्रीय संस्कार सुधा से सींच

कर पल्लवित किया गया है। अतः इससे बात करनी चाहिए।" राजा यह सोच ही रहा था कि वह पथिक जल्दी से उठा और खड़ा होकर प्रणाम करता हुआ इस श्लोक को पढ़ा—

'वेधा वेदनयाश्लिष्टो गोविन्दश्च गदाधरः।
शंभुः शूली विषादी च देव केनोपमीयसे' ॥ १४ ॥

वेधा इति ॥ वेदनया पीडया आश्लिष्टः सम्बद्धः। गदेन रोगेण अधरो विधुरः। शूलं रुग्विशेषोऽस्य। अत एव विषादान्वितः। तस्माद् देव केनोपमीयसे त्वमिति वाच्योऽर्थः। तत्त्वतस्तु वेदानां नयेन मतेनाश्लिष्टः। गदा कौमोदकी। अथवा गदो भ्राता सोऽधरोऽनुजो यस्य। शूलमायुधम्। विषमत्तीति विषादी नीलकण्ठत्वात् ॥ १४ ॥

"देव, ब्रह्मा वेदना (व्यथा) से युक्त हैं, गोविन्द गद (रोग) से (अधर) पीड़ित हैं, शम्भु शूल (रोग) और विषाद से भरे हैं। आपको उपमा हम किससे दें ॥ १४ ॥

[संसार के बड़े लोगों के उपमान इन्हीं तीनों देवों में से कोई बनते हैं। इन तीनों में कुछ न कुछ कमी है अतः आपकी तुलना मैं किससे करूँ ?

ब्रह्मा 'वेदनया' युक्त हैं। वेदना शब्द के तृतीया का एकवचन है। गद (रोग) से गोविन्द अधर (पीड़ित) है। शम्भु शूली (शूल) रोग सम्पन्न और विषादी (विषाद) सम्पन्न हैं। वास्तव पक्ष—ब्रह्मा वेद + नय + आश्लिष्ट (वैदिकज्ञान से संयुक्त) हैं। यहाँ वेदनय शब्द के साथ आश्लिष्ट शब्द समस्त हुआ है। गोविन्द कौमोदकी नामक गदा को धारण करते हैं। शम्भु शूली (शूल अस्त्र धारण करने वाले) हैं और विषादी (विषभक्षण करने वाले) हैं। इसमें किसी एक से आपकी तुलना कैसे की जाय। आप में सबों की विशेषतायें भरी हुई हैं। ब्रह्मा की तरह आप ज्ञान सम्पन्न हैं। गोविन्द की तरह प्रसिद्ध अस्त्रधारी हैं। शिव की तरह सहिष्णु हैं। भगवान शिव जैसे विष सदृश असह्य पदार्थ को पचाकर विश्व का मङ्गल चाहते हैं वैसे आप भी स्वयं विविध परेशानियों को उठाकर भी संसार का मङ्गल चाहते हैं ॥ १४ ॥]

राजा तु तदाकर्ण्य क्षणमात्रहोपरोधविस्मयहर्षरसैः समकालमाप्लावितमनाः प्रथममुत्फुल्लया दृशा, ततो मुग्धस्मितार्घ्येण, तदनु सर्वाङ्गीणभूषणप्रदानेन, तमभ्यर्च्य 'पान्थ, कथय केयमुत्तुङ्गकल्लोलदोलाधिरूढानुच्चचञ्चूत्क्षिप्तमृणालवलयान्कूजतः कलहंसानक्षसूत्रिणः प्रवर्त्तितब्रह्मयज्ञोद्गारमुखरमुखांस्तीरतापसानिव दिवमारोपयितुमुद्वहन्ती सरित्, तरुणतरुतलमलंकुर्वाणः प्रसन्नसरस्वतीकः कश्च भवान्' इति सप्रणयमपृच्छत् ॥

राजा स्विति ॥ मृणालवलयानामक्षसूत्रम्, उत्कूजनस्य ब्रह्मयज्ञोद्गारः राजहंसानां तापता उपमानम् । ब्रह्मयज्ञो वेदाध्ययनम् ॥

यह सुन कर एक क्षण तक आग्रह, बन्धन, आश्चर्य और हर्ष रस से एक ही समय राजा का मन तरङ्गित हो उठा। पहले तो प्रफुल्लित नेत्रों से, फिर मधुर मुस्कान से, इसके बाद सम्पूर्ण अंगों के भूषण दान से उसका सम्मान कर नम्रता से पूछा—"पथिक, कहो, इन उच्चतर तरङ्गरूप डालियों पर बैठे हुए अपने उन्नत चञ्चुओं से कोमल कमल-तन्तुओं को ऊपर की ओर फेंक कर कूजते हुए, अक्षसूत्र को धारण किये हुए, ब्रह्मयज्ञ में मन्त्रोच्चारण की ध्वनि से मुखरित मुख वाले तट के तपस्वियों की तरह इन राजहंसों को स्वर्ग तक पहुँचाने के लिए बहती हुई यह कौन सी नदी है? और इस घने वृक्ष की छाया में अत्यन्त मधुर बोलने वाले आप कौन हैं? ॥

[राजहंसों के उपमान तीर के तपस्वी हैं। तपस्वी जैसे पवित्र जल में स्नान करते हैं वैसे ये हंस भी उसमें गोता लगा रहे हैं। तापसजन अक्ष-सूत्र धारण करते हैं तो हंस मृणाल-सूत्र धारण कर रहे हैं। तापस लोग ब्रह्मयज्ञ वैदिक मन्त्रों की ध्वनि करते हैं तो ये हंस भी कूजन कर रहे हैं। इन सब कारणों से हंसों की पर्याप्त समानता मुनियों से हो गयी है ॥]

सोऽपि 'सभ्रमरया कूलकीचकवेणुलतया सदृशी नावातरण-योग्या किमियमप्रसिद्धा महापदी देवस्य' इत्यभिधाय कथयितुमा-रब्धवान् ॥

सोऽपीति ॥ किमियं सरिद्देवस्य न विदिता, यासौ नावा वेडया तरणयोग्या । शब्दायमानकीचकवंशवल्लया । सभ्रमरया सभृङ्गया । सदृशी । वंशवल्ल्यपि अवाते वाताभावे रणस्य शब्दस्य योग्या न भवति । सरिदपि सभ्रमः सावर्तो रयो जवो यस्या इति सभ्रमरया ।

वह भी, "तट के छिद्र-बहुल बाँसों की तरह नावातरण योग्य (नौका से पार करने योग्य), भ्रम (आवर्त) और रय (वेग) युक्त यह महानदी श्रीमान् के लिये अप्रसिद्ध है?" यह कहकर (विवरण देना) शुरू किया ॥

[छिद्र बहुल बांस (कीचक) पक्ष—सभ्रमरया—भ्रमरों से युक्त, नावातरणयोग्या नं + अवात + रण + योग्या । अवात (हवा के न रहने पर) रण (ध्वनि) के योग्य नहीं। छिद्रबहुल बांस तब तक आवाज नहीं करते जबतक हवा नहीं बहती। हवा बहने पर ही उनमें से ध्वनि निकलती है। नदी सभ्रमरया (आवर्त और वेग से युक्त) है और लता भी सभ्रमरया है। सभ्रमरा शब्द के तृतीया के एकवचन सभ्रमरया है। नावातरण योग्या भी दोनों ही हैं ॥]

'भानोः सुता संवरणस्य भार्या तापी सरित्सेयमघस्य हन्त्री ।
यस्याः कुरुः सूनुरभूत्स यस्य नाम्ना कुरुक्षेत्रमुदाहरन्ति ॥ १५ ॥

भानोरिति ॥ संवरणः क्षत्रियविशेषः ॥ १५ ॥

"सूर्य की लड़की, राजा संवरण की पत्नी, पापों की विनाशिका, यह वही यमुना नदी है जिसके पुत्र कुरु हुए। उन्हीं के नाम पर कुरुक्षेत्र कहा जाता है ॥ १५ ॥

[तापी, यमुना और यमी ये पर्याय-वाचक शब्द हैं ॥ १५ ॥]

एतस्याः सलिलावगाहसमये कुर्वन्ति नित्यं नृणां
नीरन्ध्रोन्नतकर्कशस्तनतटीसंघट्टपिष्टोर्मयः ।
भ्राम्यद्भृङ्गनिभालकैः क्षणमिव व्यालोलनेत्रैर्मुखै-
रुत्फुल्लोत्पलगर्भपङ्कजवनभ्रान्तिं महाराष्ट्रिकाः ॥ १६ ॥

एतस्या इति ॥ उत्फुल्लोत्पलानि गर्भे मध्ये यस्य पङ्कजवनस्य । महाराष्ट्रिकाः स्त्रियः ॥ १६ ॥

स्नान के समय घने ऊँचे एवं कर्कश स्तनतट से इसकी लहरियों को चूर्णित करती हुई महाराष्ट्र की नायिकायें अपने चंचल भ्रमर-सदृश बालों तथा चंचल मुखों और नेत्रों से मनुष्यों को पानी के बीच सदा कमल वन की भ्रान्ति उत्पन्न करती हैं ॥ १६ ॥

[नेत्र और मुख कमल की तरह हैं और बाल भ्रमर की तरह हैं। अचानक देखकर लोगों को भ्रान्ति हो जाती है कि पानी में आदमी के मुख नेत्र और केश नहीं हैं अपितु कमलों के ऊपर भ्रमर मंडरा रहे हैं ॥ १६ ॥]

अपि च—

यद्येतस्याः सकृदपि मरुन्नर्तिताम्भोजराजि-
प्रेङ्खत्पत्रव्यजनविधुतं वारि नीहारहारि ।
रोधोभाजां पिबति कुसुमैर्वासितं पादपानां
पीयूषाय स्पृहयति ततः किं कचिन्नाकिलोकः ॥ १७ ॥

तट के पुष्पों से सुगन्धित, वायु द्वारा नचाये गये कमल-समूह के चंचल पत्ररूप पंखे से कम्पित इस नदी के मनोहर जलकण को यदि स्वर्ग के लोग एक बार भी पीलें तो क्या वे अमृत की इच्छा करेंगे ? ॥ १७ ॥

मामपि पुष्कराक्षनामानं वार्तिकमवगच्छतु देवः ॥

मामिति ॥ वार्त्तायां नियुक्तो वार्तिकः ।

मुझे भी आप पुष्कराक्ष नामक वार्तिक समझें ॥

[सन्देश-वाहक या किसी वार्ता-विशेष की जानकारी के लिये नियुक्त व्यक्ति को वार्तिक कहते हैं ॥]

तथाहि—

स्थित्वा त्वदागमनमार्गमुखे गवाक्षे
वार्ताविशेषमधिगन्तुमिहायताक्ष्या ।
संप्रेषितो निषधनाथ तथास्मि यस्याः
क्रीडागिरिस्त्वमसि मुग्धमनोमृगस्य ॥ १८ ॥

स्थित्वेति ॥ गवाक्षे स्थित्वा तया आयताक्ष्या' दीर्घदृशा वार्तान्तरं ज्ञातुमिह प्रेषितोऽहम् । यस्या मुग्धमनोमृगस्य त्वं क्रीडागिरिः । मृगो हि गिरौ मनस्वयि रमते ॥ १८ ॥

निषधराज, तुम्हारे आगमनमार्ग की सामने वाली खिड़की पर बैठ कर वार्ता-विशेष को जानने के लिये उस विशालाक्षी दमयन्ती द्वारा भेजा गया हूँ जिसके भोले मनरूप मृग के लिये आप ही क्रीडा-शैल हैं ॥ १८ ॥

[जिस ओर से आप का आगमन होगा उसी के सामने वाली खिड़की पर बैठ कर आप के सन्देश या समाचार की प्रतीक्षा कर रही है। मृग का मन जैसे पर्वत पर रमता है वैसे उस दमयन्ती का मन आप में रमता है ॥ १८ ॥]

पश्यति च श्वस्तनेऽहनि मार्गश्रमक्लान्तमितो नातिदूर इवोत्तुङ्ग-सरलसालसर्जार्जुननिचुलनिचयान्तरचलच्चटुलचकोरमयूरहारीतहंस-कुलकोलाहलिनि पयोष्णापुलिनपरिसरे स्थितं तया प्रहितमाप्तं क्रीडाकिन्नरमिथुनम् ॥

मार्गश्रम से थका हुआ, यहाँ से थोड़ी दूर पर ऊँचे और सीधे साल, सर्ज, अर्जुन और निचुल वृक्षों के नीचे घूमते हुए चञ्चल चकोर, मयूर, हारीत और हंसों के कोलाहल से मनोहर पयोष्णी नदी के तट पर ठहरा हुआ, उस (दमयन्ती) के द्वारा भेजा हुआ क्रीड़ा किन्नर का जोड़ा कल आप से मिलेगा ।

'इयं च वाच्यतां तया स्वहस्तकिसलयलिखिताक्षरगर्भा भूर्ज-पत्रिका' इत्यभिधाय पुरोऽस्य लेखपत्रिकां व्यसृजत् ॥

यह वाचिये, उसके किसलय सदृश कर द्वारा लिखे गये अक्षरों से गर्भित भूर्ज-पत्रिका । यह कह कर उनके सामने चिट्ठी रख दिया ॥

राजापि पार्श्वपरिजनेनोत्क्षिप्यार्पितां तामतिबहलपुलकाङ्कुरकण्ट-कितप्रकोष्ठकाण्डेन पाणिना स्वयमुन्मुच्य सादरमवाचयत् ॥

समीपवर्ती परिजन द्वारा उठाकर दी जाने पर राजा भी पर्याप्त रोमाञ्च के कारण कण्टकित कलाई वाले हाथों से स्वयं खोलकर आदर के साथ उसे पढ़ा।

'नलोऽपि मां प्रत्यनलोऽसि यत्तद्भवादृशां नैषध नैष धर्मः।
तथाबलानां बलवद् ग्रहीतुं न मानसं मानसमुद्रयुक्तम् ॥ १९ ॥

नल इति ॥ नैषध इत्यभिजनान्तामन्त्रणेन कुलीनत्वोक्तिरुक्तम्। मानसमुद्रेत्यनेन च सबलानामेव पराजयो नाबलानाम्। मां प्रति त्वं नलाख्योऽपि सन्ननलो बहिरुत्कंठाजनकत्वेन संतापक इत्यर्थः। न नलोऽनल इति विरोधः। परिहारस्तु प्रागेव व्याख्यातः। न चैष भवादृशां धर्मो यस्मादहमबला तस्मात्त्वाबलानां दुर्बलानां मानसं चेतो ग्रहीतुं न युक्तम्। बलवद्दिति क्रियाविशेषणं हठादित्यर्थेऽव्ययम् ॥१९॥

"नैषध ! नल होकर भी तुम मेरे लिये अनल हो। मानरूप सागर से युक्त अबलाओं के मानस इस तरह ग्रहण करना तुम जैसों का धर्म नहीं है ॥ १९ ॥

[नैषध इस सम्बोधन से उसकी उच्च परम्परा की ओर संकेत किया गया है। अर्थात् इतनी उच्च परम्परा में तुम्हारा उद्भव है फिर भी अबल (निर्बल) को तुम इस तरह सता रहे हो। तुम्हारे जैसे आदमी के लिये यह व्यवहार नितान्त अनुचित है ॥ १९ ॥]

अपि च—

निपतति किल दुर्बलेषु दैवं तदवितथं ननु येन कारणेन।
बलवति न यथा तथाबलानां प्रभवति कृष्टशरासनो मनोभूः ॥२०॥

निपततीति ॥ अबलाः स्त्रियोऽशक्ताश्च ॥ २० ॥

दैव भी दुर्बलों को ही सताता है, यह एक निश्चित सत्य है। इसीलिये तो कामदेव अपने धनुष को जिस तरह निर्बलों और अबलाओं पर सजाता है उस तरह बलवानों पर नहीं ॥ २० ॥

[मुझे जितना काम सन्तप्त कर रहा है उतना आपको नहीं। यह एक सामान्य नियम है कि दुर्बल आदमी अधिक कामुक होते है ॥ २० ॥]

अपि च—

कदा किल भविष्यन्ति कुण्डिनोद्यानभूमयः।
उत्फुल्लस्थलपद्माभभवच्चरणभूषिताः ॥ २१ ॥'

अतः यह जिज्ञास्य है—

कब यह कुण्डिन नगर के उपवन की भूमि पूर्ण विकसित स्थल-कमल सदृश (आपके) चरणों से अलङ्कृत होगी ?" ॥ २१ ॥

इति लेखलिखितप्रणयसुभाषितामृतरसप्लवेनाप्लावितहृदयः, 'विधे, विधेहि मे पक्षिण इव पक्षयुगलमुड्डीय येन तां पश्यामि' इति चिन्तयन्नरपतिः पुरतः स्थितं तं प्रियावार्तिकमाश्लिष्यन्निवोच्चरोमाञ्च-निचयेन, पिबन्निवाभिलाषतृषितया दृशा, स्नपयन्निव मधुरस्मितामृत-रसेन, पुनः पुनः सादरमभाषत ॥

लेख के प्रणय-पूर्ण सुभाषित सुधा की धारा से राजा का मानस भर गया। "भगवन्, पक्षियों की तरह मुझ में भी दो पंख बना दो कि उड़ कर उसे देखूं।" इस तरह सोचता हुआ राजा सामने बैठे हुए प्रिया के सन्देश-वाहक से अपने रोमाञ्च-समूह द्वारा मानो आलिङ्गन करता हुआ, अभिलाष-पूर्ण प्यासी आँखों से मानो पीता हुआ, मधुर मुस्कान के अमृत-रस से नहलाता हुआ बड़े स्नेह से बार-बार बात किया।

'पुष्कराक्ष, सा सर्वथा विजयते राजपुत्री। यस्याः प्रसन्नमुदार-सत्कान्तिश्लिष्टं सुकुमारमनेकालंकारभाजनं वयो वचनं च, सप्रश्रयः प्रगल्भो विवेकवान्विदग्धबुद्धिर्भवद्विधः परिजनश्च ॥

पुष्करेति ॥ प्रसन्नं निर्मलम्। उदारं रम्यम्। सत्कान्ति तेजस्वि। श्लिष्ट सुघ-टितसर्वावयवम्। सुकुमारं मृदु। अनेकालंकारभाजनं बहुभूषणपात्रम्। वयःशब्देन तदाधारभूतं शरीरमुच्यते। पक्षे प्रसन्नं झटित्यर्थप्रतीतिकृत्। महार्थमुदारम्। औज्ज्वल्यं कान्तिः। मसृणत्वं श्लेषः। अजरठं सुकुमारम्। अनुप्रासोपमा-दयोऽलंकाराः ॥

"पुष्कराक्ष, वह राजपुत्री सब तरह से उत्कृष्ट है, जिसका शरीर निर्मल, रमणीय, तेजस्वी, सुडौल, एवं कोमल है और विविध भूषणों से मण्डित है, वाणी स्फुट अर्थ से सम्पन्न, गम्भीर, उज्ज्वल, मसृण एवं सुकुमार है और अनुप्रास, श्लेष आदि अलंकारों से युक्त है; नम्र, निर्भीक, विवेकयुक्त तथा परिपक्व बुद्धि के आप जैसे लोग जिसके परिजन हैं।

तत्कथय 'कथनीयकीर्तिः क्वास्ते कथमास्ते कं विनोदमनुतिष्ठति केन व्यापारेण परिणामयति वासरं वाऽसौ भवत्स्वामिसुता' इत्येव-मुक्तः स पुनः पल्लवयन्ननुरागकन्दलं नलमलपत् ॥

तो, कहिये प्रशंसनीय यश वाली, आपके स्वामी की पुत्री कहाँ रहती है? कैसी रहती है? किस वस्तु से मनो-विनोद करती है? किस कार्य में अपना दिन बिताती है?' ऐसा कहे जाने पर उनके अनुराग को पुनः पुनः पल्लवित करता हुआ उनसे (पुष्कराक्ष) बोला—

त्वद्देशागतवायसाय ददती दध्योदनं पिण्डितं
त्वन्नाम्नः सदृशे दृशं निदधती वन्येऽपि मुग्धा नले।

त्वत्संदेशकथार्थिनी मृगयते तान्राजहंसान्पुनः
क्रीडोद्यानतरङ्गिणीतरुतलच्छायासु वापीषु च ॥ २२ ॥

त्वद्देशेति ॥ तव नामापि दुर्लभं ततोऽस्य सदृशे समुचिते। 'नाम्ना त्वत्सदृशे' इत्याद्यः पाठः। स तु स्पष्ट एव ॥ २२ ॥

"आपके देश की ओर से आये हुए कौवों को दही-भात का कवल देती है। तुम्हारे नाम से समानता रखने वाले जङ्गली नल नामक घास पर भी आँख लगायी रहती है। तुम्हारी सन्देश-कथा की इच्छुक वह विनोदवनों, नदियों और पेड़ों की छाया तथा जलाशयों पर उन राजहंसों को खोजती चलती है ॥ २२ ॥

अपिच। सांप्रतं तथा—

त्वद्देशागतमारुतेन मृदुना संजातरोमाञ्चया
त्वद्रूपाञ्चितचारुचित्रफलके निर्वापयन्त्या दृशम्।
त्वन्नामामृतसिक्तकर्णपुटया त्वन्मार्गवातायने
नीचैः पञ्चमगीतिगर्भितगिरा नक्तंदिनं स्थीयते ॥ २३ ॥'

त्वद्देशागतेति ॥ नीचैरिति निभृतम्। प्रच्छन्नरागत्वात् ॥ २३ ॥

इस समय वह—

आपके देश की ओर से आई हुई कोमल हवा से रोमाञ्चित हो उठती है। आपके सौन्दर्य की प्रतिकृति वाले उस सुन्दर चित्रपट्ट पर अपनी आँखों को शान्त करती है। आपके नामामृत से अपने कानों को सींचती है। एकान्त में पञ्चम स्वर भरे गीतों को गाती हुई आपके मार्ग के सम्मुख वाले गवाक्ष के पास दिन-रात बैठी रहती है।" ॥ २३ ॥

एवमनुगुणमनुरागस्य, सदृशं शृङ्गारस्य, सहोदरमादरस्य, प्रियं प्रेमप्रपञ्चस्य, प्रोत्साहनमनङ्गस्य, अनुकूलमुत्कण्ठायाः, समुचितमभिनिवेशस्य, कौतुकजननं जल्पति पुष्कराक्षे, श्रवणकुतूहलिनि विस्मृतान्यव्यापारे तन्मयतामिवानुभवति भूभुजि, जरठीभवत्सु पूर्वाह्णवेलालवेषु, गगनमध्यासन्नवर्त्तिनि व्रजति तीव्रतां ब्रध्नमण्डले, स्खलयति पथि पथिकानसह्योर्मिणि घर्मजाले, जलाशयाननुसरत्सु पिपासाकूततरलिततारकेषु श्वासिषु श्वापदेषु, पङ्किलकूलकर्दमविमर्दोद्यतेषु सरित्परिसरवनविहारिकरिवराहमहिषमण्डलेषु, विटपिकोटरकुटीरनीडनिलयनिलीयमानेषु संपुटितपक्षेषु पक्षिषु, कूलकुलायकोणकूणितकोकूयमानकुक्कुहेषु गिरिसरित्सुरङ्गाङ्गणेषु रङ्कुरङ्गचर्वितखर्वदूर्वानलनीलनिम्नशाद्वलस्थलस्थितये हिण्डमानासु कारण्डवशि-

खण्डिमण्डलीषु, शिशिरनिवासवाञ्छया कूजत्सु करञ्जनिकुञ्जपुञ्जित-कपिञ्जलकपोतपोतकेषु, वहति मनाङ्म्लानकोमलकुसुमकोशकोष्णा-मन्दमकरन्दबिन्दूद्गारिणि तापीतीरतरङ्गस्पर्शसेव्ये मध्याह्नमरुति, श्रमवशविलोलमीलन्नयननीलोत्पलासु बहलतरुतलच्छायामाश्र-यन्तीषु सीदत्सैनिकनितम्बिनीषु प्रस्तावपाठकः पपाठ ॥

एवमिति ॥ एवं ब्रध्नमण्डलादिष्वीदृशेषु सत्सु प्रस्तावपाठकः पपाठ। पिपासाया आकूतेनाभिप्रायेण तरलिता तारा कनीनिका यैः। श्वासान्वितश्वापदैः। गिरिसरितां सुरङ्गाः संधयस्तदङ्गणेषु ॥

इस तरह पुष्कराक्ष प्रेम के अनुकूल, शृङ्गार के सदृश, आदर के समगुण, प्रेम-प्रपञ्च के प्रिय, काम के उद्दीपक, उत्कण्ठा के अनुगुण, प्रवृत्ति के उचित संभाषण कर रहा था। सुनने की उत्कण्ठा में राजा भी समस्त अन्य कार्यों को भूल कर तन्मय जैसा हो गया था। असह्य धूप पथिकों को मार्ग से स्खलित कर रही थी। प्यास की व्याकुलता से चंचल-कनीनिका वाले जंगली जानवर हांफते हुए जलाशय की ओर जा रहे थे। नदी के तट तथा वन में विहार करने वाले हाथी, सूकर और भैंसों का समूह पङ्कपूर्ण नदी-तट के कीचड़ के मर्दन में व्यस्त था। पक्षी अपनी पंखों को समेट कर पेड़ों के खोखले रूप कटी के घोसले में छिप रहे थे। तट-गत घोसलों के एक देश में कुक्कुट पक्षी कूकू कर रहे थे। मयूरों और चक्रवाकों का समूह पर्वतों, नदियों और सुरङ्गों के बीच घूमते हुए मृगों द्वारा चरे गये दूर्वादल तथा नल-नामक नीले तृण वाली तलहटी की भूमि खोजी जा रही थी। कपिञ्जल और कपोत के बच्चे करञ्ज वृक्ष के नीचे इकट्ठे होकर ठण्ढी जगह पर निवास की आकाङ्क्षा से कूज रहे थे। दोपहर की धूप के कारण कुछ म्लान कोमल फूलों के कोश में रहने वाले (दोपहर की धूप के कारण) कुछ उष्ण पराग-बिन्दुओं की पर्य्याप्त वर्षा करने वाली, तापी (यमुना) नदी के तटीय तरङ्गों के सम्पर्क के कारण सेव्य, दोपहर की हवा वह रही थी। सैनिकों की थकी हुई कान्ताएँ श्रम के कारण अपने चञ्चल नयन-कमल को मुकुलित करती हुई घने पेड़ों की छाया का आश्रय ले रही थीं। ऐसे अवसर पर प्रस्ताव पाठक ने पढ़ा —।

'विचित्राः पत्त्रालीर्दलयति गलत्स्वेदसलिलै-
रमन्दं मृद्नाति प्रमदकरिकुम्भस्तनतटीः।
प्रबन्धेनाक्रामञ्जनजघनजङ्घोरुयुगलं
श्रमः सेनाङ्गेषु प्रसरति शनैः कामुक इव ॥ २४ ॥

विचित्रा इति ॥ अनेकविधाः पत्त्रालीर्वाहनश्रेणीर्विलेपनपत्त्रवल्लीश्च दलयति। तथा मत्तकरिकुम्भानेव स्तनतटीरमन्दं खेदयति। प्रबन्धेन सातत्येन प्रकृष्टबन्धनेन च।

करणविशेषेण। प्रयाणारूढत्वात्कन्दर्पभावाच्च। जघनं च जङ्घे चोरुयुगलं च प्राण्यङ्गत्वात्समाहारः। ततः कर्मधारयः। तदाक्रमत्कामीव श्रमः सेनाया अङ्गेषु हस्त्यश्वादिषु प्रसरति ॥ २४ ॥

सेना के विभिन्न अङ्गों में श्रम (थकावट) कामुक की तरह धीरे धीरे फैल रहा है। विविध पत्रालियों (सवारियों) को वहते हुए पसीने के जल से व्यथित कर रहा है। मतवाले हाथियों के कुम्भस्थल रूप स्तनतट को म्लान कर रहा है। पैदल सैविकों के जंघा, जघन ऊरु-युगल पर आक्रमण कर रहा है ॥ २४ ॥

[कामुक पक्ष—कामुक भी अपने पसीने के जल से कामिनी के अङ्गों पर की गयी पत्र-रचना को विदलित कर देता है। मतवाले हाथी के कुम्भस्थल-सदृश स्तनतट का जोरों से मर्दन करता है। कामिनी जन के जघन, जङ्घा और ऊरुद्वय पर गाढ़ बन्ध के साथ आक्रमण करता है। कहना यही है कि सेना के घोड़े हाथी पसीने से लथ-पथ हो गये हैं और सैनिक बिलकुल थक गये हैं ॥ २४ ॥]

अपि च—

> कूजत्क्रौञ्चं चटुलकुररद्वन्द्वमुन्नादिहंसं
> क्रीडत्क्रोडं निपतितलतापुष्पकिञ्जल्कहारि।
> अस्याः सान्द्रद्रुमवनतलश्रान्तसुप्ताध्वनीनं
> रोधः सिन्धोः स्थगयति भवत्सैनिकानां प्रयाणम्' ॥ २५ ॥

कूजदिति ॥ क्रौञ्चकूजनादीनि विशेषणानि रोधसो रम्यताहेतुत्वात्सैन्यप्रयाण-स्खलनसाधनानि ॥ २५ ॥

जहाँ क्रौञ्च पक्षी कूज रहे हैं, चंचल कुररों का जोड़ा (विलासमग्न) है, हंसों का उत्तम कलरव हो रहा है, सूकर खेल रहे हैं, थके हुए पथिक घने वृक्ष-वन की साया में सो रहे हैं, और गिरे हुए लता-पुष्पों के पराग से जो मनोहर बन गया है, ऐसे इस नदी-तट को आपके सैनिकों का अभियान आक्रान्त कर रहा है ॥ २५ ॥

राजा तु तदाकर्ण्य 'बाहुक, बाहूनां बहुमतो बाहुल्यादिहैव वासः, तद्वद सैनिकान्, अवतरत तापीतीरतरुतलाश्रयान्, आश्रयत श्रम-च्छिदच्छायाः, कुरुत पटकुटीः, कारयत कायमानानि, मुञ्चतामन्द-मृदुशाद्वलेष्वबलान्बलीवर्दकान्, कूर्दयत कर्दमे महिषान्, खादयत वेसरीभिर्वंशकरीराङ्कुरान्, प्रचारयत क्रमेण क्रमेलकान्, अवगाह्या-वसाने पृष्ठावकीर्णपुलिनपङ्कपांसवो विहरन्तु स्ववशं वंशस्तम्बेषु स्तम्बेरमाः, तरुबुध्नेषु बध्नीत तीव्रवेगान्वेगसरान्, अवतरन्तु

तापीतीरतरङ्गेषु तुरंगाः, शिशिरतरङ्गानिलान्दोलितविविधविकच-मञ्जरीजालजटिलेषूत्फुल्ललताखण्डमण्डपेषु मध्याह्नसमयमतिवाहयन्तु किन्नरमिथुनानि' इति सेनापतिमादिदेश ॥

राजा त्विति ॥ काथमानानि तृणमयगृहाणि । वंशानां करीरागामङ्कुराः ॥

राजा तो यह सुन कर, "बाहुक ! अधिकांश लोगों को यहीं का वास अभिमत है। अतः सैनिकों को कहो । तापी नदी के तटगत वृक्षों की छाया के नीचे उतरें। थकावट को नष्ट कर देने वाली छाया में ठहरे। भैंसों को कीचड़ में उछलावें। गदहों को बाँस और करीर के कपोलों को खिलावें। ऊँटों को क्रम से घुमावें। स्नान कर लेने के बाद तट के कीचड़-कणों को पीठ पर फेंकते हुए हाथी अपनी इच्छा के अनुसार बाँस के जङ्गलों में विहार करें। जोर से भागने वाले खच्चरों को पेड़ों के मूल में बाँध दें। यमुना के तटीय तरङ्गों में घोड़े उतरें। किन्नर-मिथुन ठण्डी लहरियों से स्पष्ट वायु द्वारा कम्पित, विविध खिली हुई मञ्जरियों से व्याप्त विकसित लता-समूह के मण्डपों में दो पहर का समय बितावें।" ऐसी सेनापति को आज्ञा दिया।

स्वयमपि पुष्कराक्षसूचितार्धपथश्रमखिन्नकिन्नरमिथुनदिदृक्षया कृतमृगयाविनोदव्यपदेशी दिशि दक्षिणस्यामातस्तोकपरिवारपरिवृतो झरन्निर्झरझात्कारिवारिरमणीयासु रममाणपुलिन्दनितम्बिनीवदनचन्द्रबिम्बितासु सान्द्रद्रुमद्रोणीषु विचरितुमारभत ॥

स्वयं भी पुष्कराक्ष द्वारा सूचित, आधे रास्ते में ही श्रम के कारण थके हुए किन्नर-मिथुनों को देखने की इच्छा से शिकार द्वारा मनो-विनोद के बहाने कुछ प्रामाणिक परिजनों के साथ दक्षिण दिशा की ओर विहार करने के लिये चल पड़ा। वहाँ घने वृक्षों को सींचने वाली नहरें गिरते हुए झरनों की झा-झा ध्वनि से मनोहर थीं। रमण करती हुई किरात-कान्ताओं का वदनचन्द्र उनमें प्रतिबिम्बित था।

पुरः स्थितश्चास्य वर्त्म दर्शयन् जात्यतरतुरंगमारोपितः पुष्कराक्षोऽप्यभाषत ॥

एक उत्तम कोटि के घोड़े पर पुष्कराक्ष आगे आगे रास्ता दिखाता हुआ बोला।

'देव, मार्कण्डेयप्रमुखमहामुनिनिवासपवित्रिताः पुण्याः खल्विमाः पयोष्णीपरिसरवनभूमयः ॥

श्रीमान्, पयोष्णीतट के ये वन-स्थल मार्कण्डेय जैसे बड़े-बड़े मुनियों के निवास के कारण पवित्र एवं पुण्य हो गये हैं।

तथाहि—

श्रूयते किलास्मादुद्देशात्पूर्वदिग्भागे भगवतः पुराणपुरुषावतारस्य परशुरामस्य जनयितुर्जमदग्नेराश्रमः। ततोऽपि नातिदूरेण सुरासुरमौलिमालामुकुलमुक्तमकरन्दबिन्दुस्नपितपादारविन्दस्य भगवतः स्वस्वेदप्रसरप्रवर्त्तितपयोष्णीप्रवाहस्य महावराहस्यायतनम् ॥

क्योंकि—

हम लोग जहाँ हैं इससे पूर्व दिशा में भगवान् विष्णु के अवतार परशुराम के पिता जमदग्नि का आश्रम था, ऐसा सुना जाता है। उस स्थान से थोड़ी ही दूर पर देवों और दानवों के शिर में लगी हुई माला की कलियों के पराग से स्नान किये हुए चरण कमल वाले भगवान् महावराह, जिनके अपने पसीने की धारा से पयोष्णी नदी का प्रवाह निकला है, की कुटी है।

इतोऽप्यवलोकयतु देवः—

सैषा चलच्चन्द्रकिचक्रवाकचञ्चच्चकोराकुलकूलकच्छा।
स्वःसीमसोपानलहत्तरङ्गा गङ्गाप्रतिस्पर्धिपयाः पयोष्णी ॥ २६ ॥

सैषेति ॥ चन्द्रकी मयूरः। कच्छाः काशादिक्षेत्रप्रदेशाः। स्वःसीमेत्यत्र स्वरित्यव्ययं स्वर्गार्थम् ॥ २६ ॥

महाराज, इधर भी देखें—

जहाँ मयूर और चक्रवाक घूम रहे हैं, चञ्चत् ध्वनि करते हुए चकोरों से तट व्याप्त है, स्वर्ग की सींमा तक पहुँचने वालीं सीढ़ियों की तरह तरङ्गे हैं, जल जिसका गंगा के साथ प्रतिस्पर्धा करता है ऐसी यह पयोष्णी नदी है ॥ २६ ॥

यस्याः पश्यैते—

मुक्तास्रैः श्रूयमाणां सिकतिलपुलिनप्रान्तविश्रान्तपान्थै-
रुन्धानं मञ्जुगीतप्रियहरिणकुलान्यम्बुपानागतानि।
सांध्यध्यानावसाने क्षणमिव मुनयः संनिधौ पङ्कजाना-
मोङ्कारोच्चाररम्यं मधुकरमधुरध्वानमाकर्णयन्ति' ॥ २७ ॥

मुक्तेति ॥ सिकतास्यास्तीत्यर्थे इलच्। मधुकरध्वानस्योत्कण्ठाजनकत्वात्पान्थानां मुक्ताश्रुत्वम्। गीतप्रियत्वाद्धरिणानां रोधो मुनीनां च देवत्रयीवेदत्रयीवाचिन्योंकारे लीनत्वात् तत्प्रतिनिधौ मधुकरध्वाने बहुमानः। तथा च 'त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरानकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति। तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम्' ॥ २७ ॥

देखिये जिसके—

यहाँ की मधुर मधुकर-ध्वनियाँ कमलों के समीप पानी पीने के लिये आये हुए मधुर गीत से अधिक स्नेह रखनेवाले हरिणों को रोक रही हैं; बालू भरे तट के एक देश में विश्राम करने वाले आँसू टपकाते हुए पथिकों द्वारा सुनी जा रही हैं; सायंकाल ध्यान की समाप्ति के अवसर पर मुनि लोग (उन ध्वनियों को) ओंकार सदृश रमणीय समझ कर सुन रहे हैं ॥ २७ ॥

[वियुक्त पथिकों के लिए नदी का बालुका-बहुल ऐकान्तिक तट ही उद्दीपन के लिए पर्याप्त था, तबतक मधुकरों की मधुर ध्वनि भी मिल गयी जो उन्हें बिना रुलाये नहीं छोड़ी। हरिण सभी सुखों की अपेक्षा कर्ण सुख को अधिक महत्त्व देते हैं। इसी लिए मधुकरों की ध्वनि उन्हें रोक रही है। मुनियों के लिए भी वह आकर्षण की चीज हो गयी है, क्योंकि उनकी प्रियतर ध्वनि ओंकार की उसमें पर्याप्त समानता है ॥ २७ ॥

राजा तु 'नमस्याः खल्वमी महानुभावाः ॥

राजा तो, "ये महानुभाव प्रणम्य हैं।

तथाहि—

मृगेषु मैत्री मुदितात्मदृष्टौ कृपा मुहुः प्राणिषु दुःखितेषु।
येषां न ते कस्य भवन्ति वन्द्याः कौशेयकौपीनभृतो मुनीन्द्राः' ॥२८॥

मृगेष्विति ॥ मैत्री मुदिता करुणा इति तिस्रोऽपि चेतःप्रसादिन्यो भावनाः। कौशेयकौपीनभृत इति निःसङ्गत्वोक्त्या पापकारिषूपेक्षाप्यभिहिता ॥ २८ ॥

क्योंकि—

मृगों के साथ जिनकी मित्रता है, आत्मदर्शन में ही जिनकी प्रसन्नता है, दुःखी प्राणियों पर जिनकी कृपा है ऐसे कौशेय रङ्ग के कौपीन पहनने वाले मुनि किसके लिये वन्दनीय नहीं है।"

इत्यवधारयँस्तान्ववन्दे ॥

यह सोचता हुआ प्रणाम किया।

मुनयोऽपि 'सोऽयं सोमपीथी निषधनाथः' इत्यनुध्यानादवगम्य प्रयुक्तब्रह्मोक्ताशिषः, अनुगृह्णन्त इवार्द्रार्द्रैर्दृष्टिपातैः, आश्वासयन्त इव प्रियस्वागतप्रश्नालापेन, स्नपयन्त इव दरहसितदन्तज्योत्स्नामृतप्लवेन, आह्लादयन्त इवादरेण, दत्त्वार्घ्यमनन्तरमिदमवोचन् ॥

मुनयोऽपीति ॥ दरं अर्धं यद्धसितं तेन दन्तज्योत्स्ना सैवामृतप्लवस्तेन। दरेत्ययमीषदर्थे ॥

मुनि भी, "यह वही सोमपान-कर्ता, निषध देश का राजा है।" ध्यान शक्ति द्वारा यह जानकर, वेदोक्त आशीर्वाद देकर स्नेहार्द्र-दृष्टि से मानों अनु-

गृहीत कर रहे थे। मधुर स्वागत-प्रश्नविषयक बातों से आश्वासन सा दे रहे थे। मुस्कुराते हुए दाँतों की कान्ति से सुधा की धारा से नहला सा रहे थे। आदर द्वारा प्रमुदित सा कर रहे थे। (इन भावाभिव्यञ्जनों के बाद) अर्घ्य देकर बोले—

'आयुष्मन्, अस्मदीयमिह धर्मोपदेशप्रदानमेव प्रथममातिथेयमतिथिजनेष्वतोऽभिधीयसे। पुण्यं पयोऽस्याः सरितः तदेतदवगाह्य कुरु पुण्यमयमात्मानम्॥

"आयुष्मन्, अतिथि लोगों के लिये हम लोगों का यहाँ पहला आतिथेय धर्मोपदेश ही है। अतः तुम से यही कहा जाता है कि इस नदी का जल पुण्य है। इसमें स्नान कर अपने आपको पुण्यमय बना लो।

तथाहि—

पर्वतभेदिपवित्रं जैत्रं नरकस्य बहुमतङ्गहनम्।
हरिमिव हरिमिव हरिमिव वहति पयः पश्यत पयोष्णी' ॥ २९ ॥

पर्वतेति॥ राजन्। पश्यत यूयमवलोकयत। पर्वतविदारकं पावनं नरकस्य दुर्गतेर्जैत्रं पराभविष्णु। अत एव बहुमतं बहुमाननीयम्। गहनमगाधम्। पयः पाथः। कर्मभूलम्। पयोष्णी वहति धारयति। उपमाने हरिशब्दत्रयमिन्द्रविष्णुसिंहार्थम्। तत्क्रमेण विशिष्यते। तद्यथा पर्वतभेदी गिरिविदारको यः पविर्वज्रं तं त्रायते धारयति वज्रधरम्। नरकस्य भौमासुरस्य जैत्रमभिभावुकं विष्णुम्। मतङ्गान्मुनिविशेषादीपदूना बहुमतङ्गा गजा मतङ्गादुत्पन्नत्वात्। तान् हन्तीत्यच्। क्विब्वा। अथवा बहुमतङ्गान्हन्तीति सिंहम्॥ २९॥

क्यों कि देखो—

यह पयोष्णी नदी इन्द्र, विष्णु तथा सिंह की तरह पर्वत तोड़कर निकलने वाले, पवित्र, नरक को जीत लेने वाले (दुर्गति से बचाने वाले), अत्यन्त माननीय एवम् अगाध जल ला रही हैं" ॥ २९ ॥

[विष्णुपक्षः—पर्वतभेदिपवित्रम् (गोवर्धन पर्वत उठाने वाले और पवित्र) नरकस्य जैत्रम् (नरकासुर को जीतने वाले) बहुमतम् (बहुतों के द्वारा सम्मानित) गहनम् (दुर्ज्ञेय) भगवान् विष्णु हैं।

इन्द्रपक्षः—पर्वतभेदिपवित्रम् (पर्वतों के पंखों को काट लेने वाले और पवि (वज्र) को धारण करने वाले या वज्र से लोगों की रक्षा करने वाले) जैत्रम् (विजयी) नरकस्य बहुमतम् (मनुष्यों द्वारा सम्मानित) गहनम् (अविजेय)।

सिंहपक्षः—पर्वतभेदिपवित्रम् (पर्वतभेदि (कन्दराओं) में रहने वाला और नृसिंह भगवान् के आंशिक स्वरूप को धारण करने के कारण या

भगवती का वाहन होने के कारण पवित्र) नरकस्य जैत्रम् (मनुष्य को जीत लेने वाला) बहु + मतङ्ग + हनम् (बहुत से हाथियों को मार गिराने वाला) ।

पयोष्णीजलपक्षः—

पर्वतभेदिपवित्रम्—(पर्वतीय चट्टानों को तोड़कर निकलने वाला, अत्यन्त निर्मल) नरकस्य जैत्रम् (दुर्गति से बचाने वाला) बहुमतम् (सर्व-पूजित) गहनम् (अगाध) ।

प्रथम एवं द्वितीय चरण के विशेषणों के चार अर्थ हैं। पयोष्णी नदी भगवान् वराह के स्वेद-बिन्दु के प्रवाह से निकलती है अतः उसका पवित्र होना स्वाभाविक है। श्लेष द्वारा कवि ने इसे बहुविध अवतार के देवों के समान सिद्ध किया है। पयोष्णी का जल पापों को नष्ट करने में सिंह, विष्णु और इन्द्र जैसा शौर्य-सम्पन्न है। यहाँ वीर रस की ध्वनि है। श्लेष से अनुप्राणित उपमा अलङ्कार है ॥ २९ ॥]

राजापि 'एवमेतत्—

महावराहाङ्गविनिर्गतायाः किमन्यदस्याः परतः पवित्रम् ।
यदीयमालोकनमप्यघानि निहन्ति पुंसां चिरसंचितानि ॥ ३० ॥

महावेति ॥ आदिवराहाद्विनिःसृताया अमुष्याः परतः परतः परमन्यदपरं किं पवित्रं न किमपीत्यर्थः ॥ ३० ॥

राजा भी, "यह ठीक ही है—

महावराह के अङ्गों से निकली हुई इस नदी से पवित्र और क्या हो सकता है जिसका दर्शन भी मनुष्यों के चिर संचित पापों को नष्ट कर देता है ॥ ३० ॥

तदेष करोमि भवतामादेशम्' इत्यभिधाय यथाविधि स्नानाय सरिन्मध्यमवातरत् ॥

अतः लीजिये, आप लोगों की आज्ञा का पालन कर ही देता हूँ।" यह कह कर विधिपूर्वक स्नान करने के लिये नदी में उतरा।

अवतीर्य च मन्त्रमार्जनप्राणसंयमसंध्यासूक्तजपपितृतर्पणादिसमुचिताह्निकावसाने रक्तकमलगर्भमर्घ्याञ्जलिमुत्क्षिप्य भगवतो भास्करस्य स्तुतिमकरोत् ॥

अवतीर्येति ॥ मन्त्रमार्जनं मन्त्रस्नानम् । प्राणसंयमः श्वासप्रश्वासरोधने करन्यासोऽङ्गन्यासश्च विद्यते यत्र तत् संध्यासूक्तम् ।

उतर कर मन्त्र द्वारा स्नान, प्राणायाम, सन्ध्या, पुरुषसूक्त आदि का पाठ, जप, पितृतर्पण आदि दैनिक कार्यों के अन्त में लाल कमल से अर्घ्य देकर भगवान् सूर्य की स्तुति किया।

जयति जगदेकचक्षुर्विश्वात्मा वेदमन्त्रमयमूर्तिः।
तरणिस्तरणतरण्डकमघपटलपयोनिधौ पुंसाम् ॥ ३१ ॥

संसार के एकमात्र नेत्र, सम्पूर्ण विश्व के हृदय, मनुष्यों के पाप पुञ्ज रूप सागर को पार करने के लिये तरण्डक (नौका) भगवान् तरणि (सूर्य) सर्व-प्रशस्त हैं ॥ ३१ ॥

[भगवान् सूर्य को "त्रयी तनुः" वेद मूर्ति कहा गया है ॥ ३१ ॥]

तदनु च चटुलचञ्चरीककुलाकुलितकमलकुड्मलगलद्बहलमकरन्द-सुरभिततरङ्गमुत्पतत्कपिञ्जलं जलमवगाह्य चिरमुत्तीर्य तीरमापृच्छ्य मुनिजनमभिवाद्य च पुनः पुलिनपालिपर्यटनाय प्रस्थितः प्रणयादनुव्रजतो मुनीन्निवर्तयन्निदमवादीत् ॥

तदनन्तर चञ्चल भ्रमरों से व्याप्त कमल-कलियों से गिरते हुए पर्याप्त पराग से सुगन्धित तरङ्ग तथा उड़ते हुए कपिञ्जलों से अलंकृत जल में स्नान करने के बाद तट पर आकर देर तक मुनियों का पूजन और प्रणाम कर तटपंक्ति पर घूमने के लिये चल पड़ा। स्नेह से पीछे पीछे चलते हुए मुनियों को लौटाता हुआ कहा—

'चक्रधरं विषमाक्षं कृतमदकलराजहंससंचारम्।
हरिहरविरिञ्चिसदृशं भजत पयोष्णीतटं मुनयः' ॥ ३२ ॥

चक्रेति ॥ चक्रवाकधरम्। विषमविभीतकम्। तथा कृतो मदकलराजहंसानां संचारो येन तथाविधम्। पयोष्णीतटं यूयं भजत। मुनय इति सम्बोधनम्। हरिहरविरिञ्चिसादृश्यं विशेषणत्रयेण। तदा चक्रं सुदर्शनं धारयति विष्णुः विषमाण्यक्षीण्यस्य त्रिनेत्रत्वाद्धरः। कृतो मदकलराजहंसेन कृत्वा सञ्चारो येन स ब्रह्मा; हंसवाहनत्वात् ॥ ३२ ॥

चक्रवाक को धारण करने वाले, बड़े-बड़े रुद्राक्ष आदि के वृक्षों से मण्डित और प्रौढ़ एवं सुन्दर राजहंसों की गति से युक्त विष्णु, शिव और ब्रह्मा सदृश पयोष्णी तट का मुनि लोग सेवन करें ॥ ३२ ॥

[यहाँ पयोष्णी तट के तीन उपमान हैं। हरि (विष्णु), हर (शिव) और विरिञ्चि (ब्रह्मा)। भगवान् विष्णु जैसे चक्रधर (चक्र धारण करने वाले) हैं वैसे यह भी चक्रधर (चक्रवाक पक्षी को धारण करने वाला) है।

भगवान् शंकर जैसे विषमाक्ष (त्रिनेत्र) हैं वैसे यह भी विषमाक्ष (बिभीतक वृक्षों) से युक्त है। भगवान् ब्रह्मा जैसे मद-कल-राजहंस-संचार (प्रौढ़ एवं सुन्दर राजहंस को वाहन बनाये हुए) हैं वैसे यह भी प्रौढ़ तथा सुन्दर राजहंसों की गति से युक्त है ॥ ३२ ॥]

एवमुक्तास्तेऽप्यार्द्रहृदयाः स्वल्पपरिचयेनाप्युपचितोचितप्रणयाः प्रियंवदतया प्रियमाशशंसुः ॥

राजा के इस तरह कहने पर स्वल्प परिचय रहने पर भी प्रगाढ़ स्नेह वाले वे आर्द्रचित्त मुनि मधुरभाषिता के साथ प्रिय आशीर्वाद दिये—

'सुगमस्तवास्तु पन्थाः क्षेमा दिग्देवताः शिवा शकुनाः ।
अभिलषितमर्थमचिरात्साधयतु भवानविघ्नेन' ॥ ३३ ॥

"आप का मार्ग सुगम हों। दिग्देवतायें कल्याणकर हों। मङ्गलमय शकुन हों। शीघ्र ही अपनी आकाङ्क्षित वस्तु को निर्विघ्न प्राप्त करें' ॥३३॥

इत्यभिधाय व्यावृत्तेषु मुनिषु कौतुकादितस्ततः संचरच्चटुलषट्चरणचक्रचुम्बनाकूततरलितपुष्पपरागपटलपांसुलिततरुतलेषु वहत्सुरभिशिशिरकोमलपवनेषु वनेषु, वनेचरमिथुनमन्मथक्रीडानुकूलेषु कूलेषु, पुलिन्दडिम्भकाध्यासितफलितबदरीषु दरीषु, पुञ्जितकुञ्जरेषु, निकुञ्जेषु, दुर्दर्शभानुषु सानुषु, सानुचरश्चरन्नेकस्मिन्नतिनिबिडसंधिसंनिवेशे शिलान्तरालप्रदेशे, प्रियतममुद्दिश्य पठन्त्याः किंनर्याः साश्चर्यमार्यागीतिमिमामशृणोत् ॥

इत्यभिधायेति ॥ पुलिन्दडिम्भैरध्यासितासु कासु फलवद्बदरीषु, न केवलं फलवद्बदरीषु, तथा दरीषु। चकारादिमन्तरेणापि समुच्चयः स्यादेव। तद्यथा माघे दशमसर्गे,–सावशेषपदमुक्तमुपेक्षा स्रस्तमाल्यवसनाभरणेषु। गन्तुमुत्थितमकारणतः स्म द्योतयन्ति मदविभ्रममासाम्'। अध्यासितास्विति व्यस्तमेव। न च फलिन्यो बदर्यो यास्विति दरीविशेषणम्। 'नद्यृतश्च" इति कप्प्रत्ययस्य दुर्निवारत्वात्। बाहुलकाश्रयणात्कप्प्रत्ययाभाव इति तु न युक्तम् ॥

यह कह कर मुनि लोग चले गये। भनभनाता हुआ चञ्चल भ्रमर-समूह चूमने की उत्कण्ठा से फूलों को कम्पित कर रहा था। अतः उनके पराग से वृक्ष केवल धूलि-धूसरित हो गये थे। वन में सुगन्ध, शीतल एवं मन्द हवा वह रही थी। तट के स्थान शबर दम्पतियों की काम-क्रीड़ा के अनुकूल थे। बैर फल से युक्त गुफाओं में किरातों के बच्चे बैठे थे। निकुञ्जों में हाथी इकट्ठे हुए थे। पर्वतों की चोटियाँ सूर्य के कारण मुश्किल से देखी जा रही थीं। परिजनों के साथ इधर-उधर उत्कण्ठापूर्वक घूमता हुआ राजा घने

पर्वत सन्धिवाले एक स्थान पर एक शिला के कोने अपने प्रिय को निमित्त कर पढ़ती हुई किन्नरी की आर्या छन्द वाली इस गीति को बड़े आश्चर्य से सुना—

'विपिनोद्देशं सरसं केतकमकरन्दवासितवियत्ककुभम्।
ग्राममिमं वा सर संकेतकमकरन्दवासितवियत्ककुभम्' ॥ ३४ ॥

विपिनेति ॥ सरसं सजलम् तथा केतकमकरन्देन वासितं वियन्नभः ककुभश्च दिशो येन तथाभूतम्। विपिनप्रदेशम्। अथवा इमं पुरोवर्तिनं ग्रामं सर व्रज। कीदृश ग्रामम्। संकेतयति निवासयति अनुकूलत्वान्निवासहेतुर्भवतीति संकेतकम्। तदेवानुकूल्यमाह–अकरमिति। न विद्यते करो राजग्राह्योंऽशो यत्र। पर्वतीयत्वादकरम्। आसनमासितं सद्भावः। दवस्यासितादृश्यन्तां विश्लिष्यन्तः ककुभास्तरवो यत्र। यदि वा 'षिञ् बन्धने' आङ्पूर्वस्य आसयनमासितम्। आबन्ध इत्यर्थः। यद्वा सिताः सम्बद्धाः। दवेन असिता असंबद्धा वयः पक्षिणो यत्र। तथा यद् वहत् कं पयो यस्यां सा चासौ कुश्च तया भातीति। इणः शतरि यद्वहदित्यर्थः ॥ ३४ ॥

जंगल के इस सरस स्थान पर चलो जहाँ का आकाश और दिशाएँ केवड़े के पराग से सुरभित हैं अथवा इस गाँव में चलो जहाँ के (गृहपालित) पक्षी जंगल से असम्बद्ध हैं और जहाँ का बहता हुआ जल और भूतल अत्यन्त भव्य हैं ॥ ३४ ॥

[इस पद्य में यमक की बड़ी अच्छी योजना है। ग्रामपक्ष—संकेतक—निवासयोग्य। अकरम्—कररहित। पहाड़ी गांव है। दया के कारण राजा ने कर माफ कर दिया है। दवासितवि—दव (जंगल) से असित (असंबद्ध) हैं वि (पक्षी) जहाँ के। मनोरञ्जन के लिए लोग घरों में पक्षियों को पाले हैं अतः पिंजड़े में बन्द रहने के कारण उन्हें जंगल में जाने का अवसर नहीं मिलता। यत्+क+कु+भ—यत् (बहता हुआ) क (जल) कु (पृथ्वी) भ (भव्य) है। 'इण् गतौ धातु के शतृ प्रत्यय का रूप यत् है। बहते हुए अर्थ में इसका यहाँ प्रयोग हुआ है। दवासितवि और यत्ककुभ इन बहुव्रीह्यन्त पदों का कर्मधारय हुआ है। अर्थात् इस सामने वाले गांव में चलो जो संकेतक, अकर, दवासितवि, यत्ककुभ है।

अरण्य-स्थान पक्ष में तो मकरन्दवासित-वियत्ककुभम् का सीधा अर्थ है—पराग से सुगन्धित कर दिया है आकाश और दिशाओं को जिसने ॥३४॥]

तदनु पुनस्तत्प्रतिवादिना किन्नरेण च पठ्यमानामिमामार्यामश्रौषीत् ॥

तदिति ॥ किञ्चिन्नराः किञ्चित्पचयश्वादिरूपमिश्राः किंनराः ॥

तदनन्तर उसके प्रतिवादी किन्नर द्वारा पढ़ी जाती हुई इस आर्या को सुना—

'अजनि रजनिः किमन्यत्तरणिस्तरतीव पश्चिमपयोधौ ।
घनतरुणि तरुणि विपिने क्वचिदस्मिन्नेव निवसामः' ॥ ३५ ॥

अजनीति ॥ घनास्तरवो यस्मिन् तस्मिन्विपिने । तरुणीति सम्बोधनम् ॥ ३५ ॥

ओ तरुणि ! रात हो चली, अधिक क्या कहें, सूर्य पश्चिम सागर में तैरने सा लगा है । हम लोग इसी घने वृक्षों वाले जंगल में निवास कर लें ॥ ३५ ॥

["घने हैं तरु (वृक्ष) जिसमें" इस विग्रह में घनतरुणि शब्द विपिने का विशेषण है । अर्थात् सप्तमी का एकवचन है । दूसरा तरुणि पद तरुणी शब्द का सम्बोधन है ॥ ३५ ॥]

एवमन्योन्यालापमाकर्ण्य किंनरमिथुनस्य विस्मितो नरपतिः अहो माननीयमहिमोद्दामा दमयन्ती यस्याः परिचारिणः पक्षिणोऽपि श्रवणस्पृहणीयामेवंविधसुभाषितामृतमुचं वाचमुच्चारन्ति ॥

किन्नर-मिथुन की इस तरह की आपस की बात सुनकर राजा आश्चर्य में पड़ गया । दमयन्ती अपनी प्रशंसनीय महिमा के कारण सर्वथा उत्कृष्ट है, जिसके समीप रहने वाले पक्षी कानों को प्रिय लगने वाली मनोहर उक्ति रूप सुधा बरसती हुई वाणी बोल रहे हैं ।

प्रथममिह तावदाभिजात्यवित्तविद्याविवेकविभवैरनाकुले कुले जन्म ततोऽप्यनुरूपरूपसंपत्तिस्तदनु श्लाघानुगुणगुणलाभस्ततोऽपि च शुचिविदग्धस्निग्धपरिजनावाप्तिरिति महती भाग्यपरम्परा' इति चिन्तयन्ननतिदूरवर्तिनः पुष्कराक्षस्य मुखमवलोकयांचकार ॥

प्रथममिति ॥ आभिजात्यादीनि अहंकारकृतवैक्लव्यस्य कारणानि । कुले एवैभिरनाकुले । अनुगुणोऽनुरूपः ॥

प्रथमतः तो उत्तम परम्परा, सम्पत्ति, विद्या, विचार और ऐश्वर्य के होते हुए भी अहंकार-रहित ऐसे कुल में जन्म, इसके अतिरिक्त वंशानुकूल ही सौन्दर्य-सम्पत्ति, उस पर प्रशंसा के ही सदृश गुणों की प्राप्ति, इसके अतिरिक्त बुद्धिमान् एवं स्नेहपूर्ण परिजनों की उपलब्धि, यह बहुत बड़ी सौभाग्य-शृङ्खला है ।" यह सोचता हुआ थोड़ी दूर पर स्थित पुष्कराक्ष के मुख की ओर देखा ।

पुष्कराक्षोऽपि पुरःसृत्य तं किंनरमभाषत ॥

पुष्कराक्ष भी आगे बढ़ कर किन्नर से बोला—

'सुन्दरक, कान्तामुखावलोकनासक्तः समीपमागतानप्यस्मान्न पश्यसि ॥

'सुन्दरक, अपनी प्रिया का मुंह देखने में लगे हो ? समीप में भी आये हुए हम लोगों को नहीं देखते ?

तदितो दत्तदृष्टिर्भव ॥

· इधर जरा देखो –

स एव निषधेश्वरः कुसुमचापचक्रं विना
प्रसादितमहेश्वरः स्मर इवागतो मूर्तिमान् ।
विलोकय विलोचनामृतसमुद्रमेनं नृपं
विधेहि नयनोत्सवं कुरु कृतार्थतामात्मनः ॥ ३६ ॥

स एवेति ॥ एष निषधेश्वरो नलः कुसुमचापचक्रं विनाभूतो मूर्तिमान् प्रसादित-महेश्वरः स्मरः । एतावता पूर्वस्मराद्व्यतिरेकोक्तिः । यतः पूर्वं कुसुमचापचक्रं धत्ते। नच मूर्तिमान् दग्धाङ्गत्वात् । तथा प्रकोपितमहेश्वरः । यदा तु प्रसाधितेति पाठः, तदा प्रसाधिता अलङ्कृता महान्त ईश्वराश्चाणाक्षिना येन तादृग् निषधेश्वरः । स्मरस्तु साधयितुं वशीकर्तुं प्रारब्धो महेश्वरः शिवो येन । कुसुमान्येव चापचक्रं धनुर्मण्डलम् ॥ ३६ ॥

वह निषध-सम्राट् आ गया जो पुष्पवाण समूह को धारण किये बिना ही भगवान् शङ्कर को प्रसन्न किया हुआ मूर्तिमान् काम की तरह यह है । आंखों के लिये अमृत-सागर इस राजा को देखो, नेत्रोत्सव मनाओ और अपने आप को कृतार्थ करो ॥ ३६ ॥

[यहाँ कामकी अपेक्षा नल को उत्कृष्ट बताया गया है । काम फूलों का बाण धारण करता है । नल विना फूलों का बाण धारण किये ही काम है । काम शंकर जी को रुष्ट किया था । नल शंकर जी को प्रसन्न किया है । काम अनङ्ग (अङ्गहीन) है, नल मूर्तिमान् (साङ्ग) है । इन विचित्रताओं से सम्पन्न नल को देखकर अपने आप को कृतार्थ करो ॥ ३६ ॥]

त्वमपि विहंगवागुरे परमरहस्यसखी देव्याः सा हि त्वच्चक्षुषा पश्यति, त्वत्कर्णाभ्यामाकर्णयति, त्वन्मनसा मनुते ॥

पक्षिमोहिका, तुम भी (देखलो), क्यों कि देवी की तुम एकान्त सखी हो । तुम्हारी हीं आंखों से वह देखती हैं, तुम्हारे कानों से सुनती हैं और तुम्हारे ही मन से कुछ निश्चय कर पाती हैं ।

तदिह दमयन्तीमनोरथपान्थपिपासाच्छिदि लावण्यपुण्यह्रदेऽस्मिन् राजनि निर्वापय चक्षुः' इति किंनरमिथुनमभिमुखीकृत्य नरपति-मवादीत् ॥

दमयन्ती के मनोरथ-पथिक को शान्त करने वाले, सौन्दर्य के पवित्र सरोवर इस राजा में अपनी आंखें तृप्त कर लो ।" इस तरह बोलता हुआ किन्नर-मिथुन को सामने कर राजा से कहा—

'देव, तदेतत्किनरमिथुनम्, इदं हि द्वितीयमिव हृदयं देव्याः, प्रियं प्राणेभ्योऽपि प्रेम्णा प्राभृतमेतत्प्रहितं तुहिनाचलचक्रवर्तिना देवस्य, देवेन देव्यै दत्तम्। तया च दमयन्त्याः समर्पितं परं पात्रं मन्त्रगीतेः ॥

देवेति ॥ तुहिनाचलस्य हिमाचलस्य चक्रवर्तिना नृपेण प्राभृतं प्रहितमेतत्। भीमायेति शेषः। मन्त्रा गीयन्तेऽस्यामिति मन्त्रगीतिः ॥

महाराज यही वह किन्नर-मिथुन है। यह देवी का द्वितीय हृदय है। हिमालय के चक्रवर्ती राजा ने बड़े प्रेम से महाराज (भीम के लिये इन्हें उपहार में दिया था। महाराज ने इन्हें देवी को दे दिया और देवी ने दमयन्ती को समर्पित कर दिया। गुप्त मन्त्रणा के ये उत्तम पात्र हैं।

तथाहि—जातख्याति जातिषु, गीतयशो गीतकेषु, वर्धितमानं वर्धमानेषु, सारमासारितकेषु, निपुणं पाणिकासु, धाम साम्नाम्, आचार्यकमृचाम्, आलयः कलादिभेदानाम्, रसगीत्यामपि सुस्वरं स्वरालापेषु, अवग्राम्यं ग्रामरागेषु, विचित्रभाषं भाषासु. प्रवर्तकं नर्तनानाम्, कारणं करणमार्गस्य, वाद्येष्वपि प्रवीणं वीणावेणुषु, लब्धपाटवं पटहेषु, अप्रतिमल्लं झल्लरीषु ॥

जातेति ॥ जातयो नन्दयन्तीप्रभृतयः। वर्धमानान्यासारितकानि पाणिकाः सामानि ऋचः कलादिभेदा गीतविषया भरतशास्त्राद्गम्याः। मध्यमादयः सप्तस्वराः षड्जमध्यमगान्धारास्त्रयो ग्रामाः। भाषाः षट्त्रिंशत्। कला गीतवाद्याद्या मुहूर्तभेदाश्च। करणानि तलपुष्पपुटादीन्यष्टोत्तरशतसंख्यानि ॥

नन्दयन्ती आदि जातियों में इनकी बड़ी ख्याति है। गीत के प्रसङ्ग में इनका बहुचर्चित यश है। वर्धमानों में इनका बड़ा सम्मान है। आसारितकों के ये सार हैं। पाणिकाओं में बड़े निपुण हैं। सामगान में इनका प्रशंसनीय स्थान है। ऋचाओं के आचार्यकल्प हैं। कलाभेदों के मित्र हैं। रसगान के प्रसङ्ग में स्वरालाप करने में इनका स्वर बड़ा अच्छा है। ग्रामरोगों में भी निपुण हैं। विभिन्न भाषाओं में भी इन्हें विचित्र वक्तृता प्राप्त है। बहुत से नृत्य-प्रकारों के ये आविष्कारक हैं। (तल पुष्पपुटी आदि) कारण मार्गों के जन्मदाता हैं। वीणा, वेणु आदि वाद्यों में प्रवीण हैं। नगाड़ा बजाने में भी इन्हें पाटव प्राप्त है। झाल बजाने में तो अप्रतिम हैं।

[वर्धमान, आसारितक, पाणिक, साम, ऋक्, कला आदि गीत के विषय हैं। मध्यम आदि सात स्वर है। षड्ज, मध्यम और गान्धार दो ग्राम कहलाते हैं। तल पुष्पपुटी आदि एक सौ आठ कारण होते हैं। संगीत के ये सब पारि-

भाषिक शब्द हैं। व्यावहारिक कार्यों के अतिरिक्त किन्नरों की सबसे अधिक उपयोगिता संगीतमूलक मनोरञ्जन में ही है। अतः इस विषय में इतना अधिक नैपुण्य सर्वथा स्वाभाविक है।]

किंबहुना—

कालमिव कलाबहुलं सर्वरसानुप्रवेशि लवणमिव।
तव नृप सेवां कर्तुं किंनरयुगलं तया प्रहितम्॥ ३७॥

कालमिति॥ कला गीतवाद्याद्या मुहूर्तभेदाश्च विदन्त्यधीयते वा कलाः कलविदः। तेषां समूहः कालम्। तद्यथा। कालशास्त्रविषये। बहुलं तन्निष्ठं भवति। तथेदमपि समग्रकलाप्रवीणम्। रसाः शृङ्गाराद्यास्तिक्ताद्याश्च। समयार्थे तु कालशब्दे पुंस्त्वं स्यात्। यदा तु 'काल इव कलाबहुलम्' इति पाठः। तदा कालः कलाभिर्निमेषोन्मेषाद्यंशरूपाभिर्बहुलो व्याप्तः। इदं तु कलाभिर्गीतनृत्यादिभिर्व्याप्तम्। कालोऽवसरः आत्मसमर्पणायावसर इव प्रेषित इति भावः॥ ३७॥

अधिक क्या—

काल (मुहूर्त विद्या के विद्वत् समूह) की तरह ये कलाबहुल (विविध कलाओं से पूर्ण) हैं। नमक की तरह सभी शृङ्गारादि रसों में इनकी गति है। राजन्, आप की सेवा के लिये इस तरह का किन्नर-युगल उसने भेजा है॥३७॥

[काल :—ज्योतिष् शास्त्र में कला, उन्मेष, निमेष, पल आदि शब्द समय के अंशसूचक हैं। कला का अध्ययन करने वालों और उसके जानकारों के समूह को काल कहते हैं। अर्थात् कला-पल आदि का विद्वद्वर्ग जैसे कलाबहुल होता है, दिन, रात, कला, पल का हिसाब लगाता रहता है वैसे वह किन्नर-मिथुन भी कलाबहुल (विभिन्न कलाओं का श्लाघ्य जानकार है)। लवण :—नमक जैसे तिक्त, अम्ल, कटु और कषाय सभी रसों में अपनी सत्ता रखता है उसी तरह इन किन्नरों की गति सभी रसों के प्रसङ्ग में अबाध है॥ ३७॥]

'तदेतदात्मपरिग्रहेणानुगृह्यताम्, इत्यभिधाय विश्रान्तवाचि तस्मिन्स किंनरयुवा किमप्युपसृत्य मृगमदमिलन्मलयजरसोल्लासिलेखालाञ्छितललाटपट्टार्पितकरकमलमुकुलं प्रणतिप्रेङ्खितमणिकर्णावतंसतया सह प्रियया प्रणाममकरोत्॥

अतः इन्हें आप अपना समझ कर अनुगृहीत करें।" यह कह कर उस (पुष्कराक्ष) के चुप हो जाने पर वह किन्नर युवक कुछ आगे बढ़ कर कस्तूरी-मिश्रित चन्दन रस के मनोहर तिलक से अङ्कित ललाट तक मुकुलित कर-कमलों को पहुँचाता हुआ, नम्र होने के कारण हिलते हुए मणिमय कर्णभूषण से मण्डित अपनी प्रिया के साथ (राजा को) प्रणाम किया॥

उक्तवांश्च—

लब्धार्धचन्द्र ईशः कृतकंसभयं च पौरुषं विष्णोः ।
ब्रह्मापि नाभिजातः केनोपमिमीमहे नृप भवन्तम् ॥ ३८ ॥

लब्धेति ॥ अर्धं चन्द्रस्य अर्धचन्द्रः शशिकला गलापहस्तनं च । तत्तु निन्दाभासे । तद्युक्त ईश्वरः । कृतं कंसस्य भयं येन तत्पौरुषं विष्णोः । निन्दाभासे तु कृतकं कृत्रिमम् । सभयं भयान्वितम् । वैष्णवतो नाभेर्जातो ब्रह्मा । निन्दाभासे तु अभिजातः कुलीनः पश्चान्नञ्योगः ॥ ३८ ॥

बोला भी—

"राजन्, ईश (भगवान् शंकर) अर्धचन्द्र (गलहस्त) प्राप्त किये हुए हैं । विष्णु का पराक्रम भी कृतक (कृत्रिम) और सभय (भय सहित) है । ब्रह्मा भी न + अभिजात (कुलीन नहीं) हैं । आप की तुलना किससे करूँ ?" ॥ ३८ ॥

[शिव, विष्णु और ब्रह्मा जो तीन महान् देव हैं सबों में कुछ न कुछ दोष है । अतः आप की तुलना किससे करूँ । वर्णित विशेषण आपाततः देवताओं की निन्दा का आभास कराते हैं, किन्तु विशेषणों के वास्तविक अर्थ समझ जाने पर देवताओं का स्वाभाविक स्वरूप ही ज्ञात होता है । निन्दा की प्रतीति नहीं होती ।

प्रशंसापक्षः—ईश (शिव) अर्धचन्द्र (खण्ड चन्द्र) को धारण कर रहे हैं । विष्णु का पराक्रम कृत-कंस-भय (कंस को भय उत्पन्न कर देने वाला) है । ब्रह्मा नाभिजात (नाभि से उत्पन्न) हैं ।

बलात्कार से किसी के गले में हाथ लगाकर निकाल देने की विधि को अर्धचन्द्र कहते हैं । अर्थात् शिव अपमानित हैं और आप सम्मानित हैं, विष्णु का पराक्रम कृत्रिम और सभय है जब कि आपका पराक्रम वास्तविक एवं निर्भय है । ब्रह्मा न अभिजात हैं और आप अभिजात (कुलीन) हैं । अतः आपकी तुलना किस से करूँ ? ॥ ३८ ॥]

इदं च—

अरुणमणिकिरणरञ्जितलिखिताक्षरमङ्गुलीयकाभरणम् ।
तस्याः करकिसलयमिव तव करकमले चिरं लगतु ॥ ३९ ॥

अरुणेति । अनयाशिषा पाणिग्रहणं सूचितम् । अरुणमणिः पद्मरागादिः । लिखितान्यक्षराणि यस्मिन् । करकिसलयं स्वरूपम् । तथा मणिकिरणैराभरणरत्नकान्तिभिः कलितम् । तथा लिखितान्यक्षराणि येन ॥ ३९ ॥

यह—

लालमणि की किरणों से रञ्जित, खुदे हुए अक्षरोंवाली अंगूठी उस

(दमयन्ती) के कर-किसलय की तरह आप के कर-कमलों में चिरकाल तक रहे ॥ ३९ ॥

[कर-किसलय पक्ष—दमयन्ती का हाथ भी अरुणमणि-निर्मित भूषणों के रंग से रञ्जित है। विद्याऽभ्यास के समय बहुत से अक्षरों को लिखा भी है। अतः अरुणमणिरञ्जितत्व और लिखिताक्षरत्व दोनों धर्म अंगूठी की तरह हाथ में भी हैं ॥ ३९ ॥]

अनया च—

तव सुभग रम्यदशया तयेव रक्तान्तनेत्रमण्डनया।
चीनांशुकयुगलिकया क्रियतामङ्गे परिष्वङ्गः ॥ ४० ॥

तवेति ॥ दशा वस्त्रान्तसूत्रमवस्था च नेत्रं चित्रवस्त्रविशेषोऽक्षि च ॥ ४० ॥

और इसने—

हे सुन्दर ! मनोहर किनारी वाली, लाल रंग तथा विविध चित्रों से अलंकृत यह शिल्क वस्त्र की जोड़ी तुम्हारे अंगों में उस (दमयन्ती) की तरह आलिङ्गन करे ॥ ४० ॥

[यहाँ दमयन्ती उपमान है। रम्यदशया और रक्तान्तनेत्रया ये दोनों विशेषण चीनांशुक-युगलिका और दमयन्ती दोनों पक्षों में लगेंगे। दमयन्ती पक्ष :—रम्यदशया—विविध सौभाग्य सम्पत्ति से पूर्ण होने के कारण रमणीय दशा वाली है। रक्तान्तनेत्रया—नेत्रों का प्रान्त भाग लालिमा से मण्डित है। दशा-वस्त्र की किनारी और अवस्था का वाचक है। नेत्र शब्द नयन और विविध चित्रों से चित्रित अत्यन्त चमकीले एक वस्त्र विशेष के लिये प्रयुक्त होता है ॥ ४० ॥]

अयं च—

उज्ज्वलसुवर्णपदकस्तस्याः संदेशकथनदूत इव।
रुचिरमणिकर्णपूरः श्रयतु श्रवणान्तिकं भवतः ॥ ४१ ॥

उज्ज्वलेति ॥ उज्ज्वलं सुवर्णं पदं यस्य। पक्षे उज्ज्वलान्यग्राम्याणि शोभन वर्णानि पदानि वचनानि यत्र ॥ ४१ ॥

और यह—

उज्ज्वल स्वर्ण-निर्मित ये मनोहर मणिखचित कर्णभूषण सन्देश कहने वाले दूत की तरह आप के कानों के समीपवर्ती बनें ॥ ४१ ॥

[सन्देशवाहक दूत भी कान्ति गुण विशिष्ट सुन्दर पदों से युक्त वाक्यों का प्रयोग कानों के पास जाकर करता है ॥ ४१ ॥]

किंचान्यत्—

आनन्ददायिनस्ते कुण्डिननगरे कदा भविष्यन्ति।
त्वन्मुखकमलविलोलन्नागरिकानयनषट्पदा दिवसाः ॥ ४२ ॥

दूसरी बात यह बतावें कि—

वे आनन्ददायक दिन कब होंगे जब कुण्डिनपुर में नगरवधुओं के नेत्र-भ्रमर आप के मुखकमल पर चञ्चल बनेंगे ॥ ४२ ॥

एवमाविर्भावितप्रश्रयमुज्ज्वलितानुरागमुदीरितादरमाप्यायितप्रणयमभिधाय स्थितवति किंनरे, नरेश्वरो दमयन्तीप्रहितप्राभृतानि स्वयमादरेण गृहीत्वा, 'सुन्दरक, तस्याः संदेश एवास्माकं कर्णपूरः, परिकरोऽयं मणिकर्णावतंसः। तस्याः सुगृहीतेन नाम्नैव वयं मुद्रिताः प्रपञ्चोऽयमङ्गुलीमुद्रालंकारः तदनुरागेणैव वयमाच्छादिताः पुनरुक्तमाच्छादनयुगलमपरं च युवां प्रेषयन्त्या तया किं न प्रहितमस्माकम्, किमन्यत्त्वत्तोऽपि प्रियं प्राभृतं भविष्यतीति। तदेहि शिविरमनुसरामः' इत्यभिधाय बहु मानयन्किंनरमिथुनमतिचपलकपिकुलान्दोलिततरुशिखराग्रगलितशिलास्फालनस्फुटत्फलरससुगन्धिता स्रवत्कुसुममकरन्दद्रवार्द्रितपांसुपटलेन वर्त्मना निजावासमुदचलत् ॥

एवमिति ॥ कर्णपूरोऽवतंसः कर्णयोः पूरणं च। मुद्रिता अपरस्त्रीनाम्नां दुष्करप्रवेशा कृता ॥

इस तरह नम्रता-प्रदर्शनपूर्वक स्वच्छ अनुराग, आदरपूर्ण उक्ति एवं प्रगाढ़ प्रेम के साथ (अपनी बातें) कहकर किन्नर के चुप हो जाने पर नरपति (नल) दमयन्ती द्वारा भेजे गये उपहारों को स्वयम् आदर के साथ लेकर, "सुन्दरक, उनका सन्देश ही हमारे लिये कर्णपूर है। यह परिजन मणि कर्णभूषण हैं। उनके नाम से ही हम मुद्रित हैं। यह अंगुलि का मुद्रालंकार (नामाङ्कित अंगूठी) प्रपञ्चमात्र है। उनके प्रेम से ही हम ढँक गये हैं। यह वस्त्रयुगल पुनरुक्त जैसा लगता है। आप दोनों को भेजकर उन्होंने क्या नहीं भेज दिया। आप लोगों से बढ़कर और क्या सुन्दर उपहार हो सकता है। अच्छा, आइये डेरे पर चलें!" यह कहकर किन्नर को बहुत मानता हुआ अपने आवास की ओर ऐसे रास्ते से चला जो चंचल बन्दरों द्वारा हिलाये गये पेड़ों के अग्रभाग से गिरने और शिलातल की चोट से फटे हुए फलों के रस से सुगन्धित हो गया था और धूलि चूते हुए पुष्प मकरन्दों की तरलता से आर्द्र हो गयी थी ॥

[इस अनुच्छेद में कर्णपूर, मुद्रित तथा आच्छादन पदों के प्रयोग महत्त्वपूर्ण हैं—

दमयन्ती का सन्देश ही कर्णपूर है। कानों को तृप्त करने में उसके मधुमय सन्देश को जितनी सफलता मिल सकती है उतनी इन बाह्य अलंकरणों को नहीं। उसके नाम से ही मैं मुद्रित हो गया हूँ। मेरे भीतर किसी दूसरे के लिये स्थान नहीं है। मैं उसके नाम से बिलकुल सीमित हो गया हूँ। यदि वस्त्र आच्छादन का ही कार्य करता है तो उसका कार्य तो उसके स्नेह ने ही पुर्णकर दिया। अतः किये हुए कार्य को करने के कारण ये पदार्थ पुनरुक्त मात्र हैं।]

उच्चलिते च पश्चिमाम्भोनिधिसलिलक्षालितपादपल्लवे वासार्थिनीवास्तगिरिगह्वरं विशति वियद्वीथीपान्थे विवस्वति, क्रमेण तस्यां दिशि दिनकररथचक्रचङ्क्रमणचूर्णनोच्चलन्मन्दरगिरिगैरिकाधूलिपटलोल्लोल इवोल्लास संध्यारागः॥

उच्चलित इति॥ पान्थो हि सलिलेन चरणौ प्रक्षाल्य वासागारं प्रविशति॥

सम्पूर्ण संसार का भ्रमण कर पश्चिम समुद्र के जल से अपने पाद (किरण)-पल्लव को धोकर आकाश-मार्ग के पथिक, भगवान् सूर्य निवास की कामना वाले यात्री की तरह अस्ताचल की कन्दरा में प्रवेश कर रहे थे। क्रम से उस दिशा में सूर्य-रथ के चक्कों के चलने से चूर्णित होकर उठे हुए मन्दराचल के लाल धूलि-पटल की लालिमा (सन्ध्या राग) उमड़ पड़ी थी।

[पथिक दिन भर रास्ता चलकर सन्ध्या को जब कहीं ठहरता है और वास-निकेतन में प्रवेश करता है तो अपने पैरों को धो लेता है भगवान् सूर्य भी दिन भर घूमे हैं। शाम को अस्तगिरि की गुहा रूप अपने भवन में जाने के पहले पश्चिम समुद्र में अपने किरण रूप पाद-पल्लव को धो लेते हैं। सन्ध्या को यहाँ नायिका रूप में चित्रित किया गया है। भगवान् सूर्य को अपनी ओर आते देख उसका राग (प्रेम) उमड़ पड़ा है।]

तेन च संवलितानि विजृम्भितुमारभन्त जम्भनिसुम्भनककुभिविपीनजरत्कृकवाकुकंधरारोमरोचींषि तमांसि॥

तेन चेति॥ जम्भनिसुम्भन इन्द्रः॥

अतः जम्भशत्रु (इन्द्र) की दिशा (पूर्व) में जंगल के वृद्ध मयूर की गर्दन की रोमपङ्क्ति की तरह अन्धकार फैलने लगा

ततश्च नष्टचर्याकीडयेवादर्शनमयान्तीषु दिक्कन्यकासु, वनमुनिहोमधूमगन्धेन संतर्प्यमाणासु वनदेवतासु, निद्रान्धसिन्धुरयूथेष्विवोन्नतवप्रस्थलीषु परिणमत्सु शनैस्तिमिरेषु, जाते मनाग्भिन्नाञ्जनपत्त्रस्तवकिते निशामुखे, नरपतिस्तेन किंनरमिथुनेन सार्धमर्धपथायात-

प्रज्वलितदीपिकापाणिपरिजनपरिकरितः शरणागतकपोतमुत्पतितोलूककृतशब्दं शिविमिव शिविरसंनिवेशमविशत् ॥

ततश्चेति ॥ नष्टचर्या शिशुक्रीडाविशेषः । निद्रान्धेत्यादौ परिणामः, परिपाकस्तिर्यक्प्रहारदानं वा । निशासु हि कपोताः पारावताः शरणं नीडमागच्छन्ति, उलूकाश्च घूका उड्डीयन्ते । उपमाने तु 'नारदकृतां शिविप्रशंसामसूयन्तौ कपोतोलूकरूपधारिणौ सुरौ सत्त्वं जिज्ञासमानौ शिविनृपमागतौ' इत्थमागमः ॥

इसके बाद, नष्टचर्या (एक तरह की बच्चों के खेल) की तरह दिगङ्गनाएँ अदृष्ट होती जा रही थीं। वन में रहने वाले मुनियों के होम के धूम की गन्ध से वनदेवताएँ लुप्त हो रही थीं। अंगड़ाइयां लेते हुए हाथियों के समूह की तरह ऊँचे स्थानों पर अन्धकार आक्रमण कर रहा था। स्वरूप विकसित अञ्जन पर्वत के गुच्छे की तरह रात हो जाने पर राजा उस किन्नर-मिथुन के साथ आधे रास्ते में जलती हुई दीपिका हाथ में लेकर आये हुए परिजनों से समन्वित होकर शरण में आये हुए कबूतर और उड़ते हुए उलूक की रक्षा के लिये वचन देने वाले राजा शिवि की तरह अपने शिविर में प्रवेश किया।

[नारद द्वारा शिवि की प्रशंसा सुनकर अग्नि और इन्द्र क्रमशः कपोत और बाज बन कर शिवि की परीक्षा करने आये थे। कपोत को बाज खदेड़ता हुआ आया। कपोत शिवि के शरण में आया। उन्होंने कपोत की रक्षा के लिये कपोत बराबर अपने शरीर का मांस बाज को खाने के लिये दिया।

यहाँ शरणागतकपोतम् और उत्पतितोलूककृतशब्दम् ये दोनों शब्द शिविम् और शिविरसंनिवेशम् दोनों में पृथक्-पृथक् अन्वित होते हैं।

राजा ऐसे शिविर में प्रवेश किया जिसमें रात होने के कारण कपोत शरण लिये थे, दिन भर के छिपे हुए उल्लू रात को जहाँ से उड़ भागे थे और सैनिक जहाँ कृतशब्द (बातचीत कर रहे) थे। रात को कबूतर शिविर में आकर शरण लिये थे और दिन भर के ठहरे हुए उल्लू भाग चुके थे। शाम का समय था इस लिये सैनिकों की धूम मची थी। उल्लू दिन भर छिपे रहते हैं रात को ही उन्हें दिखाई पड़ता है इसलिये घूमते हैं। कपोत रात में अपने घोसले में चले आते हैं।

शिवि पक्ष — शरणागत + कपोत और उत्पतित + उलूक के लिये (रक्षा का) वचन देने वाले। शिविर की तुलना शिवि से की गयी है।]

तत्र च क्रमेण कृतकरणीयस्त्वरमाणपाचकवृन्दोपनीतमुत्पतत्पाकपरिमलस्पृहणीयमत्युष्णमेदुरमांसोपदंशमाज्यप्राज्यमुपभुज्य पुष्कराक्षकिंनरमिथुनाप्तजनैः सह मधुररससारमाहारम्, अनन्तरमाचान्तः

शुचिचन्दनोद्वर्त्तितकरः कर्पूरपारीपरिकरिततांम्बूलोज्ज्वलवदनारविन्दः 'सुन्दरक, कमपि प्रस्तारय विद्याविनोदं त्वयापि विहंगवागुरिके, गीयतां किमपि मधुरम्' इति मृदुमणिपर्यङ्किकासुखासीनः किंनरमिथुनमादिदेश ॥

तत्र नेति ॥ कर्पूरस्य पारी शकलम् ॥

वहाँ दैनिक कार्य कर लेने के बाद पुष्कराक्ष, किन्नर-मिथुन, और शिष्ट जनों के साथ जल्दी जल्दी पाचकवर्ग द्वारा लाये हुए, उड़ती हुई भोज्य-गन्ध के कारण मनोहर, अत्यन्त गरम, पोषक मांसों को आस्वादित करता हुआ घी में तले हुए रसमय भोज्यों को खाया। आचमन के बाद पवित्र चन्दन में हाथ फेर कर कर्पूरखण्ड-मिश्रित ताम्बूल से मुख-कमल को सुशोभित कर, "सुन्दरक, कुछ विद्या-विनोद का प्रसङ्ग छेड़ो। पक्षि-सुन्दरी, तुम भी कुछ मधुर गाओ।" यह मणिमय कोमल पर्यङ्क पर सुखपूर्वक बैठ कर किन्नर-मिथुन को आदेश दिया।

दर्शिते च वांशिकेन वंशमुखोद्गीर्णगान्धारपञ्चमरागस्थानके स्थिरीकृतमध्यमश्रुतिप्रसन्नप्रेङ्खोलनाप्रयोगमुचितस्थानकृतकांस्यतालमकठोरतारस्वरम्, आकर्षदिव हृदयम्, अभिषिञ्चदिवामृतेन श्रवणेन्द्रियम्, अस्तं नयदिवान्यविषयसंधानम्, अनुच्चप्रपञ्चितपञ्चमं विपञ्चीस्वरसंदर्भितमभूत्तत्किमपि गीतम् ॥

वंशी बजाने वाले वंशी के मुख से निकले हुए गान्धार और पञ्चम राग के स्थानक दिखाये। कहीं मध्यम स्वर, कहीं उचित स्थल पर झाल द्वारा ताल देने के कारण कोमल उच्च स्वर वाली वीणा के स्वर से मिश्रित सामान्य पञ्चम स्वर का वह अत्यन्त मनोहर गीत हृदय को मानों खींच सा रहा था। अमृत से श्रोत्रेन्द्रिय को सींच सा रहा था। अन्य विषय के चिन्तन को समाप्त सा कर रहा था।

यत्र—

प्रसरति रणरणकरसः कुण्ठयति हठेन चित्तमुत्कण्ठा।
स्मरति स्मरोऽपि धनुषः प्रगुणीकृतनिशितबाणस्य ॥४३॥

जिसमें—

ऐसे मनोहर संगीत के कारण जब रणरणक (उत्कण्ठा) रस फैला रहा था और चित्त को हठात् खिन्न बनाता चला जा रहा था। काम भी अपनी सजी हुई प्रत्यञ्चा एवं तीखे बाण वाले धनुष का स्मरण करने लगा ॥ ४३ ॥

एवंविधे च व्यतिकरे वैतालिकः पपाठ—

'सकलविषयवृत्तीर्मुद्रयन्निन्द्रियाणां
हृदि विदधदवस्थां कांचिदुन्मादिनीं च ।
ध्वनिरनुगतवीणानिक्वणः कोमलोऽयं
जयति मदनबाणः पञ्चमः पञ्चमस्य ॥ ४४ ॥

सकलेति ॥ पञ्चमस्य रागस्य ध्वनिर्जयति कथंभूतः । पञ्चमः पञ्चानां पूरणो मदनबाणः ॥ ४४ ॥

ऐसे अवसर पर वैतालिक ने पढ़ा—समस्त इन्द्रियों की विषय-प्रवृत्ति को रोकती हुई, हृदय में कोई उन्मादक स्थिति उत्पन्न करती हुई वीणा के स्वर से मिश्रित कामदेव के पञ्चम बाण स्वरूप पञ्चम स्वर की यह कोमल ध्वनि अपूर्व है ॥ ४४ ॥

अपि च—

प्रियविरहविषादस्यौषधं प्रोषितानां
विविधविधुरचिन्ताभ्रान्तिविश्रान्तिहेतुः ।
अयममृततरङ्गः कर्णयोः केन सृष्टो
मधुररसनिधानं निःस्वनः पञ्चमस्य ॥ ४५ ॥

प्रियेति ॥ अत्र पञ्चमस्येत्याख्या । न तु पञ्चानां पूरणस्येति व्युत्पत्त्यर्थः ॥४५॥

जिनके पति परदेश चले गये हैं ऐसी वियुक्त कान्ताओं के प्रिय-वियोग से होने वाले क्लेश की दवा, वियोगजन्य विभिन्न चिन्ताओं और भ्रान्तियों की स्थिति में आराम देने वाली, कानों के लिये अमृत-लहरी, मधुर रसों का निकेतन, पञ्चम स्वर की इस ध्वनि का निर्माण किसने किया ॥ ४५ ॥

अपि च—

अयं हि प्रथमो रागः समस्तजनरञ्जने ।
यस्य नास्ति द्वितीयोऽपि स कथं पञ्चमोऽभवत्' ॥४६॥

अयमिति ॥ प्रथमः प्रधानभूत आद्यः । द्वितीयः समानो द्वयोः पूरणश्च । स कथं पञ्चानां च पूरणोऽथ च पञ्चम इति संज्ञा ॥ ४६ ॥

समस्त लोगों का मनोरञ्जन करने वाला यह पहला राग जिसका दूसरा कोई भी नहीं है, पाँचवा कैसे हो गया ? ॥ ४६ ॥

[जो अपनी उत्कृष्टता के कारण इतना महान् है कि उसके बाद की दूसरी श्रेणी में रखने के लिये भी कोई राग नहीं हैं वह पञ्चम कैसे हो जायगा ? विरोध । पञ्चम स्वर इतना सुन्दर राग है कि उससे किसी दूसरे की

तुलना ही नहीं है इसीलिये वह अद्वितीय है। पञ्चम का अर्थ योग्यता-क्रम से पञ्चम श्रेणी नहीं है। परिहार ॥ ४६ ॥

इति विधिधमुदञ्चत्पञ्चमोद्गारगर्भं-
पठति मधुरकण्ठे धाम्नि वैतालिकेऽस्मिन्।
अपहरति च चित्तं किंनरद्वन्द्वगीते-
सुखमय इव निद्रानिःस्पृहो लोक आसीत्॥ ४७ ॥

इतीति ॥ परब्रह्मालोकनसमयसमुल्लासितसान्द्रानन्दमय इव। रहस्य हि तत्त्वं परब्रह्मास्वादसोदरत्वं पूर्वाचार्यैर्व्यवहार्यत। सुखमय इव निद्रानिमीलित इवेत्यु-भयत्रापीवशब्दो योज्यः। अथवा सुखमयः सन्निद्रानिमीलित इवेतीवशब्दो भिन्नक्रमे ॥ ४७ ॥

इस प्रकार कई तरह से पञ्चम स्वर के प्रति उद्गार प्रकट करता हुआ मधुर स्वर में वैतालिक बोल रहा था। किन्नर-युगल का गीत लोगों का चित्त आकृष्ट कर रहा था। सुखमयता के कारण लोग निद्रा के प्रति निःस्पृह हो गये थे॥ ४७ ॥

एवमनवरतमारोहावरोहमूर्च्छनाभङ्गिते गीतामृतस्रोतसि निमग्नमनसि कठोरितोत्कण्ठे रणरणकारम्भभाजि राजनि 'रजनि' किं न विरमसि। दिवस, किं नाविर्भवसि। अध्वन् किं न स्तोकतां व्रजसि। कुण्डिननगर, किं न नेदीयो भवसि। श्रम, किमन्तरायोऽसि। विधे, किमुत्क्षिप्य न मां तत्र नयसि' इत्यनेकधा चिन्तयति स किंनरयुवा प्रक्रमोचितश्लेषमिदमवादीत्॥

उतार-चढ़ाव से पूर्ण मूर्च्छनाओं की लहरी में राजा का मन तरङ्गित हो रहा था, गीत की अमृतधारा में गोता लगा रहा था। उत्कण्ठा से कठोर हो गया था और उत्सुकता के वेग से भर गया था। "रात, क्यों न समाप्त हो जाती हो? दिन क्यों न प्रकट हो जाते हो? रास्ता, क्यों नहीं कम हो जाते? कुण्डिन नगर, क्यों नहीं समीप आ जाते? श्रम, क्यों प्रतिबन्धक बनते हो? दैव, क्यों न मुझे फेंक कर वहाँ पहुँचा देते?" इस तरह सोच ही रहा था कि किन्नर-युवक प्रसङ्गानुकूल इस श्लोक को बोला—

"वर्धमानोल्लसद्रागा सुजातिमृदुपाणिका।
दमयन्ती च गीतिश्च कस्य नो हृदयंगमा॥ ४८ ॥

वर्धमानेति ॥ वर्धमानो वर्धिष्णुः। न तु हीयमानः। उल्लसन् रागोऽनुरागो यस्याम्। सुष्ठु शोभना क्षत्रियाख्या यस्याः। पाणिः करः॥ पक्षे वर्धमाने ताल-

विशेषे उल्लसन्. रागः श्रीरागादिर्यत्र। जातयो नन्दयन्तीप्रभृतयः। पाणयः सम-पाण्यादयः ॥ ४८ ॥

उन्नतिशील, अनुरागवहुल, क्षत्रिय कुल में उत्पन्न कोमलकरों वाली दमयन्ती तथा वर्धमान ताल, श्री आदि राग, नन्दयन्ती आदि जाति, समपाणि आदि पाणियों वाली यह गीति किसके लिये हृदयस्पर्शी नहीं हैं ? ॥ ४८ ॥

[गीतिपक्ष में वर्धमान, राग, जाति एवं पाणिका शब्द पारिभाषिक हैं। संगीत के इन विभिन्न तत्त्वों से युक्त यह गीति और अनुराग आदि विभिन्न स्पृहणीय गुणों से अलङ्कृत दमयन्ती किसके लिये प्रिय नहीं हो सकती ? ॥ ४८ ॥]

अपिच—

साप्यनेककलोपेता साप्यलंकारधारिणी।
सापि हृद्यस्वरालापा किंत्वसाधारणा तव ॥ ४९ ॥

सापीति ॥ कला विज्ञानकौशलम्। अलङ्कार आभरणम्। स्वरः शब्दः। आलापो मिथोभाषणम्। गीतिपक्षे 'पताकेनावकुञ्चिश्च विरलाङ्गुलिना च या। आवाप इति विज्ञेया कलाविद्भिस्तु सा कला' इत्यावापादयः सप्त कलाः। अलंकारा उपमारूपकादयः। स्वराः षड्जादयः सप्त। आलाप आलप्तिः। परं किं तु दमयन्ती असाधारणा अनन्यविषयत्वादेकाश्रया। गीतिस्तु साधारणा जाति-साधारणा चेति ॥ ४९ ॥

और भी (बहुत सी साधारणतायें (समानतायें) इस गीति में और दमयन्ती में हैं। जैसे—)

वह भी अनेक कलाओं से विभूषित है, वह भी अनेक अलङ्कारों को धारण करती है, उसकी भी बात और स्वर हृदयस्पर्शी हैं; किन्तु तुम्हारे ही लिये होने के कारण वह असाधारण है ॥ ४९ ॥

[गीति पक्षः—गीति में आवाप आदि सात कलायें होती हैं। उपमा, रूपक आदि अलङ्कार होते हैं। आलाप (दीर्घस्वर) होते हैं।

दमयन्ती पक्षः—दमयन्ती में भी चित्र-विज्ञान आदि कुशलतामूलक कलायें हैं। कटक-कुण्डल आदि अलङ्कारों को वह भी धारण करती है। उसके भी आलाप (संलाप) मधुर हैं।

इतने अंश तक तो दमयन्ती और गीति में समानता है किन्तु गीति स्वर साधारण है।

किसी भी स्वर में गीति का प्रयोग किया जा सकता है। किसी भी जाति में उसका प्रयोग किया जा सकता है। दमयन्ती असाधारण है, क्योंकि वह नल मात्र के लिये है, और किसी के लिये नहीं ॥ ४९ ॥]

अपि च—

संगीतका त्वदौत्सुक्यात्त्वां स्मरन्ती समूर्च्छना ।
किं तु तस्यास्त्वयि स्वामिँल्लयभङ्गो न दृश्यते' ॥ ५० ॥

सङ्गीतेति ॥ त्वय्यौत्सुक्यं त्वदौत्सुक्यं तस्माद्धेतोः । सम्यग् गीतं ख्यातिरस्याः । इति सर्वत्र त्वदुक्ता गीयत इति भावः । तथा त्वां स्मरन्ती सह मूर्च्छनया वर्तते इति समोहा ॥ गीतिस्तु सङ्गतं गीतं स्वरगुणदूषणग्रामश्रुतियतिमूर्च्छनालक्षणं यस्याम् । तथा 'स्वरः सन्तर्जितो यत्र रागत्वं प्रतिपद्यते । मूर्च्छनामिति तां प्राहुर्मुनयो ग्रामसम्भवाम्' । सा चैकविंशतिविधा । यदुक्तम्–'सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनास्त्वेकविंशतिः' इति यथोक्तया सह समूर्च्छना । इत्येतावता दमयन्तीगीत्योः साम्यमुक्तम् । अधुना तु भेदं निरूपयति—किंत्विति ॥ लयस्तत्परता । द्रुतमध्यविलम्बितलक्षणश्च ॥ ५० ॥

प्रसिद्ध कीर्तिवाली (वह दमयन्ती) तुम में उत्सुकता के कारण तुम्हें याद करती करती मूर्च्छित हो जाती है किन्तु स्वामिन्, तुम में उसकी तत्परता नष्ट नहीं होती ॥ ५० ॥

[यहाँ भी दमयन्ती और गीति में कुछ समानता दिखाकर कुछ असमानता भी दिखाई गयी है; जिससे दमयन्ती की उत्कृष्टता व्यक्त हो रही है ।

दमयन्ती पक्षः—संगीत का :—सुन्दर गीत (कीर्ति) वाली है । समूर्च्छना—तुम्हें याद करती करती मूर्च्छित हो जाती है ।

गीतिपक्ष—संगीत का स्वर, गुण, दूषण, ग्राम आदि लक्षणों से युक्त है । समूर्च्छना २१ मूर्च्छनाओं से विशिष्ट है । संगीतकात्व और समूर्च्छनात्व मूलक समानता दोनों में है । विषमता यही है कि गीति में द्रुत, मध्य, विलम्बित आदि लय का भङ्ग होता है किन्तु दमयन्ती में लय (तत्परता और तल्लीनता) का अभाव नहीं है ॥ ५० ॥]

एवमुक्तवति किंनरेश्वरे किमप्यलीककोपकुटिललोलद्भ्रूवलयावलितकंधरमवलोक्य किंनरी वक्तुमारभत ॥

किन्नर पति के ऐसा कहने पर कुछ मिथ्या कोप के कारण भ्रूपङ्क्तियों को चंचल बनाती हुई गर्दन घुमा कर बोलना शुरू की ।

'सुन्दरक' मा मैवं वादीः ॥

'सुन्दरक ऐसा न कहो ।"

शुष्काङ्गी घनचार्वङ्ग्याः सुवाचः काकलीस्वरा ।
दमयन्त्याः कथं गीतिः सादृश्यमवगाहते ॥ ५१ ॥

शुष्केति ॥ शुष्कमवकृष्टमङ्गमवयवो यस्याः। कु ईषत् कलोऽस्यामिति (गौरादित्वान्ङीषि) काकलिः निषादसंज्ञः स्वरो यस्याः। वैसादृश्यपक्षे शुष्कमनार्द्रम्। काकली श्लेष्मवैगुण्याद् द्विधाभूतः स्वरः ॥ ५१ ॥

शुष्काङ्गी (कृश अङ्गों वाली), सुगठित तथा आकर्षक अवयवों वाली, सुन्दर वाणी और मधुर स्वर वाली दमयन्ती की समानता गीति कैसे धारण कर सकती है ? ॥ ५१ ॥

[गीति पक्ष—गीति शुष्काङ्गी (नीरस स्वरूप वाली) है। यद्यपि वह कहीं सरस भी होती है फिर भी कोई कोई गीति नीरस भी हो जाती है।

दमयन्ती तो आद्यन्त अशुष्क है। गीति काकलीस्वर (खर-खर स्वर वाली) है। गाने वाले को कफ वगैरह आ गया तो स्वर बिगड़ जायगा अतः उसमें खरखरापन का आना स्वाभाविक है।

दमयन्ती पक्षः—इस पक्ष में शुष्काङ्गी का शुष्क शब्द कृश अर्थ का वाचक है। कृशाङ्गी होना नायिका के लिये गुण की बात है। काकलीस्वरा (मधुर स्वर वाली) ॥ ५१ ॥]

अपि च—

गीतेर्ग्रामाः किल द्वित्राः सा तु ग्रामसहस्रभाक्।
कूटतानघना गीतिः कथं तस्याः समा भवेत् ॥ ५२ ॥

गीतेरिति ॥ षड्जमध्यमगान्धाराख्यो ग्रामाः। गान्धारस्य स्वर्गविषयत्वाद् द्वावेवेति द्वित्राः। ग्रामः खेटकं च। कूटतानाः पञ्चत्रिंशत्। तैर्घना। दमयन्ती तु न कपटविस्तारबहुला ॥ ५२ ॥

गीति के तो दो ही तीन ग्राम होते हैं, उसके तो सहस्रों ग्राम हैं। कूट, तान, और घन वाली गीति उस (दमयन्ती) के समान कैसे हो सकती है ? ॥ ५२ ॥

(गीति में षड्ज, मध्यम और गान्धार तीन ग्राम होते हैं। गान्धार को यदि केवल स्वर्ग में ही प्रयोज्य माना जाय तो दो ही बच जाते हैं। इसी लिये द्वित्रा शब्द का प्रयोग किया गया है। पैंतिस कूट तान होते हैं। अत एव गीति कूटतानघना (कूटतान से भरी हुई) है। दमयन्ती कूट (छल) के तान (विस्तार) के घन (बहुलता) से रहित है। उसमें छल-प्रपञ्च की बहुलता नहीं है। अतः दमयन्ती और गीति में कोई तुलना नहीं है ॥ ५२ ॥

किं चान्यत्—

ज्वरितेव बहुलङ्घनप्रयोगप्रकाशितमूर्च्छना बहुलकम्पा च, उन्मत्तेव बहुभाषा बहुताला च, वेश्येव बहुगा बहुदृष्टरागा च, अटवीव बहुककुभभेदा बहुलनिषादस्थानका च गीतिरियम् ॥

ज्वरितेत्यादि ॥ लङ्घनमुद्ग्राहितादधिकोच्चारणम् । पक्षे लङ्घनं शोषणम् । अनशनमिति यावत् । प्रयोगे उच्चारणे प्रकाशिता मूर्च्छना उत्तरमन्द्रादिका यस्याम् । पक्षे प्रकृष्टा योगाः क्वाथादयः । मूर्च्छना मोहः । कम्पोऽङ्गकृतं स्वरकृतं च चलनम् । उन्मत्तेति । भैरवीप्रभृतयः षट्त्रिंशद्भाषा । तालश्चञ्चत्पुटादिः । उन्मत्ता तु बहु भाषते तालिकाश्च दत्ते । वेश्येवेति । रागः श्रीरागादिः । तया बहुलष्टक्कनामा रागो यस्याम् । वेश्या तु बहुसु रागोऽस्या इति बह्वासक्तिः । प्रभूतठक्करगामिनी च । ठक्शब्दोपलक्षिता क्रीडया कराहतिः ठक्करा । गमेः प्राप्त्यर्थाड्डः । अटवीति ॥ ककुभो ध्वनिर्विशेषः । निषादः स्वरविशेषः । स्थानकं मन्द्रमध्यमतारलक्षणम् । अटवीपक्षे ककुभोऽर्जुनवृक्षः । निषादाः शबराः । स्थानकान्यालवालाः शिविरसंनिवेशश्च । एवं ज्वरिताद्युपमानप्रतिपादितदोषा गीतिः कथंकारमिव दमयन्तीसमा ॥

ज्वरग्रस्त स्त्री की तरह गीति अत्यधिक उच्चारण द्वारा मूर्च्छनाओं को प्रकाशित करती है, बहुत कम्प व्यक्त करती है। पगली स्त्री की तरह विविध ढंग की उक्तियों और तालों से युक्त होती है। वेश्या की तरह बहुगा (बहुत गान वाली) तथा विविध रागों वाली होती है। जंगल की तरह बहुत ककुभ (ध्वनि) युक्त, निषाद (स्वर) और स्थानक (मन्द, मध्यम, तार आदि स्थानकों वाली) होती है।

[ज्वरित स्त्री पक्ष :—ज्वर से पीड़ित स्त्री बहु + लङ्घन + प्रकाशित + मूर्च्छना होती है। बहु (अधिक) लङ्घन (उपवास) प्रयोग (करने) से दुर्बल होकर प्रकाशित मूर्च्छना (मूर्च्छित हुआ करती) है। अत्यधिक उपवास के कारण मूर्च्छा व्यक्त करती है।

बहुलकम्पा :—ज्वरावेग में आकर शरीर को कंपाती रहती है।

गीति पक्ष :—बहुलं + घन + प्रयोग + प्रकाशित + मूर्च्छना बहुत अधिक उच्चारण द्वारा विभिन्न मूर्च्छनाओं को व्यक्त करती है। बहुलकम्पा :—स्वर तथा आलाप के कारण विविध कम्पनों से युक्त होती है। गाते समय लोग जोर से उच्चारण करते हैं जिससे विभिन्न मूर्च्छनायें व्यक्त होती हैं और आलाप लेते समय स्वरों में उतार-चढ़ाव के अवसर पर कम्पन भी होता है। कम्प एक स्वर भी होता है।

उन्मत्त स्त्री पक्ष—पगली स्त्री बहुभाषा (बहुत कुछ अनावश्यक ढंग से बड़बड़ाती रहती) है। बहुताला (पागलपन के मारे कभी ताली बजाती है या ताल गरजाती) है।

गीति पक्ष :—बहुभाषा :—गीति, भैरवी आदि छत्तिस भाषाओं से समन्वित होती है। बहुताला—चञ्चत्पुट आदि तालों से मण्डित होती है।

वेश्या पक्षः—बहुगा—वेश्या बहुतों के पास जाती है। बहुदृष्टरागा—उसका अनुराग बहुतों के प्रति देखा जाता है।

गीति पक्ष—बहुगा—बहुत गान युक्त होती है। बहु + इष्ट + रागा—श्री आदि विविध राग उसमें पाये गये हैं या देखे गये हैं।

अटवी पक्ष :—बहु + ककुभभेदा :—जङ्गल में विविध प्रकार के ककुभ (अर्जुन वृक्ष) पाये जाते हैं। बहुलनिषादस्थानका = बहुत से निषाद (किरात) और स्थानक (अलवाल (थाले) और कुटीर) से जंगल भरे रहते हैं।

गीति पक्ष :—बहुककुभभेदा—विविध ककुभ (ध्वनियों) के भेद से युक्त। बहुल + निषाद + स्थानका—बहुत निषाद (स्वर) और मन्द्रमध्यम, तार आदि सांगीतिक तत्त्वों से युक्त। जो ज्वरित स्त्री की तरह क्षीण है, पागल की तरह बुद्धिहीन है, अटवी की तरह अव्यवस्थित है ऐसी गीति स्वस्थ, बुद्धिमती और व्यवस्थित दमयन्ती के समान कैसे हो सकती है ?]

तद्वरमिदमुच्यताम्—

वेदविद्योपमा देवी मनोहरपदक्रमा।
उद्द्योतिता पुराणाङ्गमन्त्रब्राह्मणशिक्षया ॥ ५३ ॥

वेदेति ॥ पदक्रमः पदन्यासः। पुराणं जीर्णं वपुर्येषाम्। तथा मन्त्रप्रधानब्राह्मणानां पुरोधःप्रभृतीनां च शिक्षयोपदेशेनोद्द्योतिता। वेदविद्या तु पदक्रमाभ्यासमभिधीयते। पुराणानां मार्कण्डेयादीनाम्। अङ्गानां शिक्षाकल्पादीनाम्। मन्त्रब्राह्मणस्य ग्रन्थविशेषस्य शिक्षयाभ्यासेन भूष्यते। अन्तःपुरे हि वृद्धा एवाधिक्रियन्ते। यदुक्तम्—'आशीतिकाश्च पुरुषाः पञ्चाशत्काश्च योषितः। बुध्येरन्नवरोधानां शौचमागारिकाश्च ये' ॥ ५३ ॥

अच्छा हो यदि यह कहा जाय—

पुराने अवयवों वाले, मन्त्र (मन्त्रणा) में प्रधान स्थान रखने वाले वृद्ध ब्राह्मणों की शिक्षा से उद्भासित, मनोहर ढंग से पदविन्यास करने वाली देवी (दमयन्ती) वेदविद्या की तरह है ॥ ५३ ॥

[वेदविद्या पक्ष :—वेदविद्या मनोहर-पद-क्रमा होती है। उसका स्वाध्याय पदपाठ और क्रमपाठ के माध्यम से किया जाता है। वेदपाठ के एकादश प्रकार होते हैं—संहितापाठ, पदपाठ, क्रमपाठ, चर्चा, श्रावक, चर्चक (क्रमचर्चक), श्रवणीपार, क्रमपार, चट (क्रमचट), जटा (क्रमजट), दण्ड (क्रमदण्ड)। पुराणाङ्गमन्त्र ब्राह्मणशिक्षया उद्भासित रहती है। मार्कण्डेय, भागवत आदि पुराणों, व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त, कल्प आदि अङ्गों और मन्त्र ब्राह्मण ग्रन्थों से उज्ज्वल है। देवी दमयन्ती भी

पुराणाङ्ग मन्त्र ब्राह्मण शिक्षया उद्भासित है। पुराने अङ्गों वाले सचिवालय के मुख्य ब्राह्मणों द्वारा प्रशिक्षित, मनोहर-पदक्रमा (सुन्दर पद-विन्यास करने वाली) है। दमयन्ती के शिक्षक वृद्ध ब्राह्मण थे। इन ब्राह्मणों का कार्य मन्त्रणा देना भी था। पुरोहित आदि उच्च कोटि के लोग उसके शिक्षक थे। वेद विद्या की तरह उसका स्वरूप स्थिर है ॥ ५३ ॥].

किं त्वियमेकपथा, सा तु दृष्टशतपथा' इत्येवमनेकविधवक्रोक्तिविशेषैरभिनन्दयति दमयन्तीकिंनरमिथुने, भूतभूयिष्ठायां विभावर्याम्, सुरसङ्घ इवादृश्यमानमानुषे निशीथे, स्थगितवति भृङ्गभासि तमसि भुवनम्, अनन्तरमवसरपाठकः पपाठ ॥

किंत्वियमिति। इयं दमयन्ती एकमार्गा। वेदविद्या तु दृष्टशतपथाख्यग्रन्था। भूयिष्ठं भूता अतिक्रान्ता, भूतभूयिष्ठा। आहिताग्न्यादित्वात्। निशीथे तमोऽतिशयान्मानुषादर्शनम्। सुराणां समूहे च स्वभावात् ॥

किन्तु यह तो एकपथा (एक नल-मार्ग पर चलने वाली) है। वह (वेदविद्या) तो दृष्टशतपथा (सैकड़ों मार्ग देखी है या शतपथ ग्रन्थ के अनुसार देखी गयी) है। इस तरह अनेक प्रकार की वक्रोक्तियों से दमयन्ती के किन्नर-मिथुन विनोद कर रहे थे तब तक काफी रात बीत चली। देव-समूह सदृश रात्रि में मनुष्य नहीं दिखाई पड़ते थे। भ्रमर सदृश कान्ति वाला अन्धकार संसार को आच्छादित कर चुका था। ऐसे समय में अवसर-पाठक ने पढ़ा—

[यहां देवसङ्घ से रात्रि की तुलना की गयी है। देवसंघ अदृश्यमान मानुष होता है। देवताओं के समूह में मनुष्य नहीं दिखाई पड़ते। रात्रि भी अदृश्यमान-मानुष है। अन्धकार की अतिशयता से उसमें भी मनुष्य नहीं दिखाई पड़ते।]

'उपरम रमणीयात्किंनरद्वन्द्वगीता-
दभिभवति निशीथो नाथ नेत्राणि पश्य।
मदनवशविलोलल्लोचनाम्भोरुहाणां
मिलतु कुलवधूनां सेवको लोक एषः ॥ ५४ ॥

"महाराज! देखिये, रात्रि नेत्रों को परास्त कर रही है। किन्नर-युगल के मनोहर गीत से विराम ग्रहण कीजिये जिससे कि काम के वशीभूत चञ्चल नेत्र कमलोंवाली कुलवधुओं का यह सेवक समूह (उनसे) मिल सके ॥ ५४ ॥

[परिजन अपनी प्रियाओं के साथ यात्रा कर रहे थे। राजा जब तक जग रहे थे तब तक उनका जगना और उनकी सेवा में रहना आवश्यक था। रात काफी जा चुकी थी परिजनों की कान्ताएँ उनकी प्रतीक्षा में थीं। इसी लिये

अवसर-पाठक राजा को विश्राम करने के लिये कह रहा है। राजा के विश्राम करने पर ही परिजनों को अपनी प्रियाओं से मिलने का अवसर मिलेगा। सेवक शब्द यहाँ शुद्ध प्रेमी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। कुलाङ्गनाओं के साथ मिलन का प्रसङ्ग है। अतः सेवक पद ज्यादा औचित्यपूर्ण है॥ ५४॥

अपि च—

शतगुणपरिपाट्या पर्यटन्नन्तराले
कमलकुवलयानामर्धरात्रेऽपि खिन्नः।
उपनदि दयितायाः क्वापि शब्दं निशम्य
भ्रमति पुलिनपृष्ठे चक्रवच्चक्रवाकः॥ ५५॥

दुःखी चक्रवाक आधी रात में भी नीलकमलों के बीच सैकड़ों तरह से घूमता हुआ नदी के किनारे कहीं प्रिया के शब्द को सुनकर तट पर (बेचैन होकर) चक्र की तरह नाच रहा है।" ॥ ५५॥

अथ यथाप्रियं प्रेषितपरिजनो रजनिशेषमतिवाहयितुमनुरूपं निरूप्य किंनरमिथुनस्य शयनमासन्ननिद्रागृहे हंसपिच्छच्छायाच्छ-प्रच्छदपटाच्छादितहंसतूलतल्पमभजत्॥

यह सुनकर, परिजनों को अपनी-अपनी आकाङ्क्षित जगह पर भेजकर रात्रि के अवशिष्ट भाग को बिताने के लिये समीपवर्ती निद्रागृह के पास किन्नर-युगल को अनुकूल शय्या देकर राजा स्वयं हंस-पंख की कान्ति जैसी कान्ति वाली निर्मल चादर से आच्छादित हंस सदृश, रूई वाली शय्या पर लेटा।

तत्र च दमयन्त्यनुरक्तोऽयमितीर्ष्ययेवानायान्त्यां निद्रायां द्रोणी-द्रुमान्तरालसुप्तोत्थितविविधविहंगविरुतानि विनिद्रवनदेवतापठ्यमान-प्राभातिकपुण्यकीर्तनानीवाकर्णयन्ननेककालप्रणालिकापर्यायेण पर्य-स्तेऽस्तगिरिमस्तके मुक्तास्तबकितनीलवितानपट इव तारातिमिरपटले, पट्टांशुकवैजयन्तीष्विव भविष्यति दिनकरोदयोत्सवे नभस्तलमलं-कुर्वतीषु पूर्वस्यां दिशि प्रभातप्रभावल्लरीषु, वल्लकीक्वाणरमणीये श्रयति श्रवणपथमीषदुन्मिषत्कमलमुकुलमुखमुक्तमधुकरमन्द्रध्वनौ, ध्वस्तनिद्रेण प्रभातोचितषड्जानुविद्धशुद्धभाषामालपतानेन किंनर-मिथुनेन गीयमानमिमं श्लोकमशृणोत्॥

तत्रेति॥ द्रोण्यां द्रुमास्तेषामन्तरालं द्रोणीद्रुमान्तरालम्। मध्ये निम्नः प्रान्तयो-श्चोन्नतस्तरुराजिविराजितो नौसदृशः पर्वतादिभूभागो द्रोणी। यदाह मुकुटताडितक-नाटके बाणः—'आशाः प्रोषितदिग्गजा इव गुहाः प्रध्वस्तसिंहा इव, द्रोण्यः कृत्त-

महाद्रुमा इव भुवः प्रोत्खातशैला इव। विभ्राणाः क्षयकालरिक्तसकलत्रैलोक्यकष्टां दशां, जाताः क्षीणमहारथाः कुरुपतेर्दैवस्य शून्याः सभाः'॥ यया प्रणालिकया काल इयानिति ज्ञायते, सा कालप्रणालिका ताम्रमयघटिका। अथवा प्रकृष्टा नाडिकैव डलयोरैक्ये प्रणालिका। नाडिका कालविशेषः। तथा च 'अहोरात्रं च विद्वद्भिः कथ्यते षष्टिनाडिकम्'। यथा च—'स्नात्वा तिष्ठति कुन्तलेश्वरसुता वारोऽङ्गराजस्वसु-र्द्यूते रात्रिरियं जिता कमलया देवी प्रसाद्याद्य च। इत्यन्तःपुरसुन्दरीः प्रति मया विज्ञाय विज्ञापिते, देवेनाप्रतिपत्तिमूढमनसा द्वित्राः स्थितं नाडिकाः।' अन्यदपि प्रणालिकया जलपद्धत्या परिक्षिप्यते। ताराणां मुक्ताः, तिमिरपटलस्य नीलवितानपट उपमा॥

"यह दमयन्ती में अनुरक्त है।" मानो इस ईर्ष्या से निद्रा नहीं आ रही थी। नौका सदृश आकृति वाली (ऊँची-नीची) पर्वतीय भूमि के पेड़ों के बीच सो कर उठे हुए पक्षियों का कलरव जगी हुई वनदेवता द्वारा पढ़े जा रहे प्रातः-कालीन पवित्र कीर्तन की तरह सुन रहा था। समय गति के क्रम से तारे और अन्धकार अस्ताचल के मस्तक पर मुक्ता के गुच्छों से युक्त नीले तम्बू के वस्त्र की तरह बिखरे थे। भविष्य में होने वाले सूर्योदयोत्सव के उपलक्ष्य में आकाश को अलंकृत करती हुई पूर्व दिशा की प्रातःकालीन कान्तिलताएँ सिल्क वस्त्र से बनी हुई पताका की तरह लग रही थीं। थोड़ी-थोड़ी चिटकती हुई कमल कलियों के मुख से निकले हुए भ्रमरों की गम्भीर ध्वनि वीणा की झङ्कृति की तरह लग रही थी। प्रातः काल के अनुकूल षड्ज ध्वनि युक्त शुद्ध भाषा में किन्नर-युगल द्वारा गाये जाते हुए इस श्लोक को सुना—

'धुतरजनिविरामोन्मीलदम्भोजराजि-
स्तनुतुहिनतुषारानुद्गिरन्गन्धवाहः।
कलितकलभकुम्भभ्रमभ्रान्तिषूद्धाटितेषु
स्खलति निधुवनान्तश्रान्तकान्ताकुचेषु॥ ५६॥

"पवन ने रात के अन्त में खिलती हुई जमल-पंक्ति को हिला दिया है। छोटे-छोटे ओस के बिन्दुओं को बरस रहा है और रतिक्रीडा के अन्त में थकी हुई कान्ताओं के स्तनों पर जो हाथी के बच्चे के कुम्भस्थल की भ्रान्ति उत्पन्न कर दे रहे हैं, स्खलित हो रहा है"॥ ५६॥

तदनु पुनः प्रभातप्रहतप्रयाणभेरीरवविनिद्रितस्यापूरयतः सम-विषमवनविभागानुत्कल्लोलजलनिधेरिव चलतः सैन्यसमूहस्य कल-कलमाकर्णयन्नुत्थाय कृतोचिताचारश्चारुचर्चितचन्द्रचूडचरण-श्चटुलखुरचारीप्रचारेणाडम्बरिततताण्डवस्य खण्डपरशोः पदलीला-मिवाभ्यस्यता स्फुरद्घुरघुरायमाणघोणाग्रस्खलत्खलीनवशविगलित-

बहललालाजलप्लवेन वनभुवि फेनिलजलनिधिमिवाकारयता जात्यतर-तुरगसैन्येन परिवृतः पूर्वप्रस्थानस्थित्या प्रतस्थे ॥

इसके बाद पुनः प्रातःकाल बजाये गये प्रस्थानसूचक नगाड़े की आवाज से जगे हुए, वन के ऊँचे-नीचे स्थलों को भरते हुए, कल्लोलपूर्ण समुद्र की तरह उमड़ते हुए सैन्य-समूह के कलकल स्वर को सुनकर जगा और दैनिक कार्य किया। भगवान् शंकर का अच्छी तरह पूजन किया। खुर की विशिष्ट गति से उछलते हुए, मानो ताण्डवनृत्य करते हुए भगवान् शंकर की पद-लीला का अनुकरण करते हुए, फड़फड़ाती हुई तथा घुर-घुर ध्वनि करती हुई नासिका के अग्रभाग से खिसकते हुए लगाम धारण करने के कारण गिरते हुए लार की जलधारा से मानो वनस्थली पर फेनिल जलनिधि का आह्वान करते हुए उत्तम कोटि के घोड़ों वाले सैन्य के साथ पूर्व प्रस्थान के अनुसार पुनः चल पड़ा।

स्थपुटस्थलीस्थितं स्थूलमेकव्यग्रमग्रे राजा गजग्रामण्यमवलोक्य पुष्कराक्षमभाषत ॥

राजा सामने की ओर एक ऊची-नीची अव्यवस्थित जगह पर चुपचाप ठहरे हुए एक मोटे हाथी को देखकर पुष्कराक्ष से कहा—

'भद्र—

सालानकमनालानमत्युन्नतमनुत्नतम् ।
दन्तवन्तमदन्तं च पश्यैनमगजं गजम् ॥ ५७ ॥

सालेति ॥ अलीनां समूह आलं तदेव प्रत्यायकत्वात्पटहस्तेन सह। मदविधुर-गजे भृङ्गाः समीपीभवन्ति। तेन च मत्तो ज्ञायत इति भावः। तथा अनालानं वन्यत्वान्निरर्गलस्तम्भम्। तथातीवोन्नतमुच्चम्। तथा नास्ति उन्नता प्रेरणा-स्येति स्वच्छन्दचरमित्यर्थः। यद्वा अनुन्नेत्यासन्नणम्। तमिति गजविशेषणम्। दन्तवन्तं दन्तुरम्। अदन्तं तृणादिकमदन्तं। अगजं गिरिजं गजं पश्येति सम्बन्धः। अथवा सालांस्तरूनदन्तम्। तथा अकमकुत्सितम्। सर्वलक्षणपरिपूर्णम्। तच्च 'उच्चैःकुम्भः—' इत्यादिना वक्ष्यति। अत्र 'किम्' क्षेपे। शेषं पूर्ववत् ॥५७॥

"भद्र, भ्रमरसमूह रूप नगाड़े से युक्त, शृङ्खलारहित, प्रेरणाविहीन, अत्यन्त उन्नत, दाँतों से युक्त (वृक्षादि को) खाते हुए इस पहाड़ी हाथी को देखो ॥ ५७ ॥

[सालानकम् :—सह = स + आल + आनक = सालानकम्। अलि (भ्रमर) के समूह को आल कहते हैं। आनक का अर्थ नगाड़ा है। आल (भ्रमर समूह) और आनक (नगाड़े) से सहित जो होगा वह सालानक कहलायेगा। गजमद का

आस्वादन करने के लिये भ्रकरों का समूह कुम्भस्थल पर भनभनां रहा है। अतः भ्रमर ही आनक 'नगाड़े' का काम कर दे रहे हैं। राजकीय हाथियों के कुम्भ पर युद्ध के समय नगाड़ा रखकर बताया जाता है। यह जंगली हाथी है। इस पर नगाड़े का काम भ्रमर ही करते हैं।

अनालानम्—आलान (शृङ्खला) रहित । जंगली हाथी है इसलिये उसमें शृङ्खला नहीं है। अत्युन्नतम् (अत्यन्त उच्च) हे अनुन्न ! तम् (उसे) देखो। नुन्न का अर्थ है। प्रेरित। अनुन्न का अर्थ है अप्रेरित। अथवा अनुन्नत है। अर्थात् अकड़ कर नहीं खड़ा है। साधारण एवं स्वाभाविक स्थिति में खड़ा है। दन्तवन्तम् (दाँतवाले) अदन्तम् (खाते हुए) अग + जम् (अग (पर्वत) से उत्पन्न होने वाले) गजम् (हाथी) को देखो। परिहार पक्ष के सभी अर्थ ये ही हैं। आपाततः विरोध की प्रतीति यहाँ होती है। सालानक है फिर भी अनालान हैं। अत्युन्नत है फिर भी अनुन्नत है। दन्तवान् है फिर भी अदन्त है। अगज है फिर भी गज है ॥ ५७ ॥]

अयं हि मन्मथविलासेषु परं वैदग्ध्यमवलम्बते ॥

कामक्रीडा में यह अत्यन्त निपुण है।

तथाहि—

मृदुकरपरिरम्भारम्भरोमाञ्चितायाः
सरसकिसलयाग्रग्रासशेषार्पणेन ।
मदमुकुलितचक्षुश्चाटुकारी करीन्द्रः
शिथिलयति रिरंसुः केलिकोपं प्रियायाः ॥ ५८ ॥

क्योंकि—

रसिकता से आंखों को निमीलित कर चाटुकारिता करने वाला यह गजेन्द्र सरस तथा नवीन पत्तों के अग्रभाग का कवल देकर अपने कोमल कर (शुण्ड) के आलिङ्गन से रोमाञ्चयुक्त प्रिया के कोप को रमण की इच्छा से शिथिल कर रहा है ॥ ५८ ॥

अपिच—

उपनयति करे करेणुकायाः किसलयभङ्गमनङ्गसङ्गताङ्गः ।
स्पृशति च चलदक्षिपक्ष्मलेखं मुखमखरेण करेण रेणुदिग्धम् ॥५९॥

कामयुक्त अङ्गवाला (यह हाथी) हथिनी के कर (शुण्ड) में, कोमल पत्र खण्ड दे रहा है। चंचल पक्ष्म-पंक्तियों से अलंकृत नेत्र वाले उसके धूलि धूसरित मुख को अपने कोमल कर (शुण्ड) से छू रहा है ॥ ५९ ॥

अथवा विवेकपूर्वव्यवहारविचारेष्वमी मानुषेभ्यः स्तोकमेवाव-हीयन्ते ॥

(ऐसा प्रतीत होता है कि) विवेकपूर्ण व्यवहार और विचार में मनुष्य की अपेक्षा ये थोडा ही कम होते हैं।

तथाहि—

श्रूयते पुरा किल नारायणनाभ्यम्भोरुहकुहरकुटीमधिशयानस्य वेदविद्यां निगदतो भगवतः पितामहस्य बृहद्रथन्तरविकीर्णभासमानानि सामानि गायतः सामस्तोभरसनिष्यन्दादुदपद्यन्तैरावतसुप्रतीककुमुदवामनाञ्जनप्रभृतयोऽष्टौ दिग्गजेन्द्राः ॥

श्रूयत इति ॥ सामस्तोभरसनिष्यन्दादिति। सामनि स्तोभ आसक्तिस्तस्माद्रसस्य स्वेदस्य निष्यन्दः स्रावस्तत इत्यर्थः। स्तोकरसपाठे तु रस आसक्तिः। निष्यन्दः स्वेदः ॥

सुना जाता है कि पुराने जमाने में जब नारायण के नाभिकमल की कुटी में लेटकर ब्रह्मा वेद गा रहे थे। बृहद्रथन्तर के फुटकल सुन्दर सामों को गाते समय सामस्तोम के रसविन्दु से ऐरावत, सुप्रतीक, कुमुद, वामन, अञ्जन आदि आठ दिग्गजेन्द्र उत्पन्न हुए।

तेभ्योऽभवन्भद्रमन्द्रमृगसंकीर्णजातयो गिरिचरनदीचरोभयचारिणः करिणः ॥

उनसे भद्र, मन्द्र और मृग नामक पर्वत में घूमने वाली, नदी पर चरने वाली और पर्वत तथा नदी दोनों पर भ्रमण करने वाली क्रमशः संकीर्ण जातियाँ उत्पन्न हुई।

प्रसिद्धं चैतत्। 'सामजा गजाः' इति ॥

यह प्रसिद्ध है कि हाथी साम से उत्पन्न हुए हैं।

केचित्पुनरन्यथा कथयन्ति—

कुछ लोग दूसरी तरह कहते हैं—

किल सकलसुरासुरकरपरिवर्त्यमानमन्दरमन्थानमथितदुग्धाम्भोनिधेरजनि जनितजगद्विस्मयो लक्ष्मीमृगाङ्कसुरभिसुरद्रुमधन्वन्तरिकौस्तुभोच्चैःश्रवसां सहभूः शशधरकरकान्तिरैरावतः। तत्प्रसूतिरियमशेषवनान्यलंकरोतीति ॥

समस्त देवों और दानवों के हाथों से घुमाये जाते हुए मन्दराचल रूप मन्थदण्ड से क्षीर सागर के मथने पर संसार को आश्चर्य में डाल देने वाला

चन्द्र की कान्ति सदृश शुभ्र ऐरावत लक्ष्मी, चन्द्रमा, कामधेनु, कल्पवृक्ष, धन्वन्तरि, कौस्तुभ तथा उच्चैःश्रवा के साथ ही उत्पन्न हुआ। उसी की सन्तान समस्त वनों को अलंकृत कर रही है।

तदेष भद्रजातिर्भविष्यति।

यह तो भद्रजाति का होगा, क्योंकि—

तथाहि—

उच्चैःकुम्भः कपिशदशनो बन्धुरस्कन्धसंधिः
स्निग्धाताम्रद्युतिनखमणिर्लम्बवृत्तोरुहस्तः।
शूरः सप्तच्छदपरिमलस्पर्धिदानोदकोऽयं
भद्रः सान्द्रद्रुमगिरिसरित्तीरचारी करीन्द्रः॥ ६०॥

कुम्भस्थल ऊँचे हैं, दाँत पीले हैं, कन्धों के जोड़ मनोहर हैं, नख मणि की तरह लाल और चिकने हैं, वक्षःस्थल गोल है, शुण्ड विशाल है, मदजल सप्तच्छद के मकरन्द की गन्ध से स्पर्धा करता है, घने पेड़ों, पहाड़ों और नदियों के तट पर विहार करने वाला, यह वीर गजेन्द्र बड़ा ही भव्य है॥ ६०॥

तन्मोदतामयम्, अनुरागिणोर्दम्पत्योः क्रीडारसविघातः कृतो न श्रेयान्' इत्यभिधाय, हृतहृदयः, स्वैरं रममाणमृगमिथुनविलासैरुल्लासितपुलकः कुसुमितकाननानिलैरुत्कम्प्यमानः, झरन्निर्झरोपान्तपादपतलचलत्केलिकिलकेकिकेकारवैर्विनोद्यमानः समीपचरसेवकसुभाषितैश्च, सममसमं च, निम्नगात्रमनिम्नगात्रं च ग्रावविषममग्रावविषमं च, सश्वापदमश्वापदं च, सपादपमपादपं च, विन्ध्यस्कन्धमुल्लङ्घ्य, 'देव, विलोक्यतामिह विषमविषाणि पन्नगकुलानि द्रोणीगहनं च, इह शरासनकरम्बाणि वनानि पापर्द्धिकपुलिन्दवृन्दं च, इह बहुसुखानि शबरद्वन्द्वानि रत्नाकरस्थलं च, इह सुमधुराणि फलानि कीचकवनं च, इहामोदितविश्वककुम्भि कुसुमानि सरित्तीरं च, इह सत्प्रभावन्ध्यानि दवदग्धारण्यानि मुनिमण्डलं च' इति विविधवनप्रदेशान्दर्शयतः पुष्कराक्षस्य विचित्रवचनोक्तीर्भावयन् क्रमेणातिक्रम्य शिखरपरम्परां परैरसह्यः सह्याचलमवततार॥

तदिति॥ उच्चैःकुम्भ इत्याद्यभिधाय तेनैव करिणा हृतहृदयो मृगमिथुनविलासादिभिः पुलकाद्युपेत ईदृशं विन्ध्यमतिक्रम्य 'देव, वीक्ष्यताम् इह विन्ध्यस्कन्धे इदमिदमिति वनप्रदेशान्दर्शयतः पुष्कराक्षस्य वक्रोक्तीर्भावयन्नतिक्रान्तशिखरपरम्परः सह्यमयात्। केलये किलतीति केलिकिलः ('इगुपध' इति कः) क्रीडापात्रम्।

केलिकिलानां केकानुकारप्रवृत्तानां च केकारवैर्विनोद्यमानः। सह मया श्रिया समं सश्रीकम्। असमं विषमम्। न समोऽस्येति कृत्वा उत्कृष्टं वा। निम्नगा नदीस्त्रायत इति कः। तथा अनिम्नमुच्चं गात्रं मूर्तिर्यस्य। ग्रावभिर्दृषद्भिर्विषमम्। अग्रे अव-विषमं समम्। अवेति नञर्थे। श्वापदं हिंस्रपशुः। अश्वानामपदमभूमिम्। समनिर्जलो हि देशोऽश्वीयः। अयं च ग्रावविषयो निम्नगाधारश्च। सह पादपैर्वृक्षैः। तथा अपादान् गूढपदः पातीत्यपादपम्। शून्ये हि सर्पादिप्राचुर्यम्। अथवा अतिवैषम्या-त्संचरतां पदान् न पातीत्यपादपम्। इह विषेति॥ विषमं विषं येषु पन्नगकुलेषु। द्रोणीगहनेषु तु विषमा विषाणिनो दन्तिनः शृङ्गिणो वा शम्बरादयो यत्र। इह शरेति॥ शरेण मुञ्जेन असनेन बीजकवृक्षेण च करम्बाणि शबलानि। पुलिन्दवृन्दं तु शरासनं धनुः करे यस्य। तथा बाणाः सन्त्यस्येति बाणि सशरम्। इह बेति॥ बहु सुखं येषां तानि बहुसुखानि। स्थलं तु बहु विपुलम्। तथा सुष्ठु खानिराकरो यत्र। बहुशब्द वैपुल्येऽपि। इह सुमेति॥ सुष्ठु मधुराणि वनं तु सुष्ठु मधु यत्र तत्सुमधु। तथा रणन्त्यवश्यं रणि। सच्छिद्रा हि वंशा वायुवशाद्रणन्तीति। इहामदिति॥ आमोदिताः सुरभिता विश्वाः सर्वाः ककुभो दिशो यैः। तीरं तु आमोदिता हर्षिता वयः पक्षिणः श्वकाः शुनःसंज्ञा वृकाः कुम्भिनश्च गजा यत्र। आमोदो हर्षेऽपि। यद्विश्वप्रकाशः—'आमोदो गन्धहर्षयोः।' यदा तु विश्वा शुण्ठी कुम्भी च वल्लीविशेषः। तदा बहुव्रीहौ 'शेषात्'—इति कब्दुर्वारः। सादृश्यवृत्तेः शुनः। संज्ञाप्रतिकृत्योः कन्। इह सेति॥ सती शोभना प्रभा कान्तिस्तया वन्ध्यानि रहितान्यरण्यानि मुनिमण्डलं तु सत्प्रभावम्'। तथा ध्यानमस्यास्तीति ध्यानि॥

अच्छा, यह करे आनन्द का अनुभव। अनुरागी दम्पतियों के क्रीड़ारस में विघ्न डालना अच्छा नहीं।" यह कह कर विह्वल हो उठा। स्वच्छन्द विहार करते हुए मृगदम्पतियों के बिलास (दर्शन) से रोमाञ्चित हो गया। पुष्पित काननों की हवा से काँप उठा। गिरते हुए झरनों के समीप वाले पेड़ों के नीचे क्रीडापात्र, मयूरों की ध्वनियों और समीपवर्ती सेवकों के सुभाषितों से मनो-विनोद करता हुआ सम (शोभा-सम्पन्न) एवं विषम (ऊँचे-नीचे) निम्नगात्र (नदियों की रक्षा करने वाले) ग्राम-विषम (चट्टानों के कारण विषम) और अग्रवा-विषम (आगे कुछ दूर सम) सश्वापद (हिंसक जन्तुओं से युक्त) और अश्वापद (अश्वों के न चलने योग्य) सपादप (वृक्षों से युक्त) और अपादप (पादरहितों (सर्पों) की रक्षा करने वाले) विन्ध्य स्कन्ध को पार कर, "देव, देखिये यहाँ भयङ्कर विषवाले सर्पों के जत्थे हैं और यह घनी पर्वत भूमि बड़े-बड़े शृङ्गों वाले मृगों से अलंकृत है। यहाँ शर और असन वृक्षों से वन चितकबरे रंग का हो गया है और व्याधों का समूह धनुष तथा बाणों से युक्त है। यहाँ किरात दम्पतियाँ बहुत सुखी हैं और रत्नाकर का स्थान भी बहुत सुन्दर खानि (खजाने से युक्त) है। यहाँ सुन्दर मीठे फल हैं और कीचक वन सुन्दर मधु से युक्त है तथा राणि (ध्वनियुक्त) है। ये फूल समस्त

दिशाओं को सुगन्धित कर दिये हैं और इस नदी-तट के पक्षी, भेड़िये और हाथी प्रसन्न हैं। वन की आग से जला हुआ यह जङ्गल सुन्दर कान्ति से शून्य है और यह मुनिसमूह कान्तिमान् तथा ध्यानमग्न है।" इस तरह वन के विविध भागों को दिखाते हुए पुष्कराक्ष की श्लेषपूर्ण बातों पर विचार करता हुआ क्रम से विविध चोटियों को पार कर शत्रुओं के लिये असह्य सह्याचल नामके पर्वत पर उतरा।

[विषम विषाणि से लेकर मुनिमण्डलम् तक अधिकांश स्थलों पर लिंग-श्लेष और वचन श्लेष दोनों हैं। कहीं सामान्य श्लेष भी है।

विन्ध्य स्कन्ध सम है और विषम है। विरोध। सम (मा (लक्ष्मी) से युक्त है इस लिये सम) है। विषय (ऊँचा-नीचा) है। परिहार।

निम्न गात्र है और अनिम्न गात्र है। विरोध। निम्नगा (नदियों) का त्राण (रक्षा) करने वाला है अतः निम्नगा + त्र है और बहुत उच्च (अनिम्न) शरीर (गात्र) वाला है इस लिये अनिम्न + गात्र है। परिहार

ग्राव + विषम है फिर भी अग्राव + विषम है। विरोध। ग्राव + विषम (पत्थरों के कारण ऊंचा नीचा) है और अग्राव + विषम (आगे कुछ दूर पर ढालू जमीन है और कुछ ऊँची नीची भी) है। परिहार। सश्वापद है फिर भी अश्वापद है। विरोध। श्वापद (हिंसक जन्तुओं) से युक्त है और बहुत ऊँचा नीचा होने के कारण अश्वों के चलने योग्य नहीं है।। परिहार।

सपादप है फिर भी अपादप है। विरोध। सपादप (पादपों से युक्त) है और अपादप इस लिये है कि अपाद (पदविहीन (सर्पों) की रक्षा करता है। विन्ध्य स्कन्ध की अन्धकारबहुल गुफाओं में सर्प मजे में रह रहे हैं। परिहार।

विषम, विषाणि से लेकर मुनि-मण्डलम् तक लिङ्ग श्लेष और वचन श्लेष हैं।

विषमविषाणि—जब यह पन्नग कुल का विशेषण है तो इसका विग्रह है—विषम है विष जिनका। अर्थात् पन्नग कुल अत्यन्त विषधर हैं। जब यह द्रोण गहनम् का विशेषण है तो एकवचन है और पन्नगकुलानि के साथ बहुवचन है।

द्रोणी + गहनम्—नौका की आकृति वाली, चारों तरफ ऊँची और बीच में गहरी पथरीली या पहाड़ी जमीन को द्रोणी कहा गया है। द्रोणी का गहन स्थल विषमविषाणि है। विषम (बड़े-बड़े) विषाणी (शृङ्ग वाले जानवर) जिस द्रोणी गहन में रहते वह विषम-विषाणि है। विषमविषाणिन् शब्द के नपुंसक लिंग प्रथमा का एकवचन है।

शरासनकरम्बाणि— यह पद भी वनानि और पापर्द्धिक-पुलिन्द-वृन्दम् दोनों पक्षों में लगेगा।

वन पक्ष वन शर और असन नामक वृक्षों से करम्ब (कर्बुरित रंग का) हो गया है।

पुलिन्द-वृन्द पक्ष—इस पक्ष में शरासनकरम् एक पद है और वाणि एक पद है। दोनों पापर्द्धिक-पुलिन्द वृन्दम् के विशेषण हैं। शरासम (धनुष्) जिसके कर में है वह वृन्द शरासनकरम् हुआ। बाण हैं जिनके पास वे बाणि हुए। बाणिन् शब्द के नपुंसक लिंग प्रथमा का एकवचन वाणि है।

बहु + सुखानि— यह पद शवर-द्वन्द्व और रत्नाकर स्थल दोनों में लगेगा। शबर द्वन्द्वः—बहुत है सुख जिनको वे बहुसुखानि हैं। बहु-सुख शब्द का नपुंसक, प्रथमा, बहुवचन। रत्नाकरपक्ष—बहुत से सुन्दर खानि (खजाना) है जिसमें वह बहुसुखानि है। इस पक्ष का बहुसुखानि नपुंसक लिंग के प्रथमा का एकवचन है।

सुमधुराणि—फल पक्ष में—पूर्ण मधुर अर्थ है। कीचक वन पक्ष—यहाँ सुमधु और राणि पृथक्-पृथक् पद हैं। दोनों ही पद न० प्र० एकवचन हैं। सुन्दर है मधु जिस में वह सुमधु है। रणन (ध्वनन) कार्य सम्पादित होता है जिस से वह राणि कहलाता है। राणिन् शब्द का न० प्र० एकवचन। छिद्र युक्त बाँसों के वन को कीचक वन कहते हैं। बांस के वन में मधुमक्खियाँ मधु का छत्ता लगाती हैं। बांस के छिद्रों में जब हवा का आगमन-निर्गमन होता है तो उनसे ध्वनि निकलती है।

आमोदित-विश्वककुम्भि :—कुसुम पक्ष—आमोदित (सुगन्धित) कर दिया है विश्व (समस्त) ककुभ् (दिशाओं) को जिन फूलों ने। आमोदित-विश्वककुभ् शब्द के नपुंसक लिङ्ग प्रथमा का बहुवचन रूप है।

सरित्तीर पक्ष—प्रसन्न हैं वि (पक्षी), श्वक (जंगली कुत्ते = भेड़िये) और कुम्भी (हाथी) जिस नदी तट पर वह वि + श्वक + कुम्भि कहलाता है। यह नपुंसक प्रथमा का एकवचन है।

सत्प्रभावन्ध्यानिः—अरण्यपक्ष–सत्प्रभा (सुन्दर कान्ति) से वन्ध्य (शून्य) जंगल के जिस भाग में आग लग जाती है वह भाग कान्तिहीन हो जाता है। मुनिमण्डल पक्ष में सत्प्रभावत् एक पद है और ध्यानि दूसरा पद है। अर्थात् मुनि लोग सत्प्रभावत् (सुन्दर कान्ति से युक्त) हैं और ध्यानि (ध्यानमग्न) हैं।]

रमणीयतया स्निग्धतया च पुनः परिवर्तितमुखो विलोक्य विन्ध्य-दक्षिणमेखलाशिखरश्रेणीपादपान् पुष्कराक्षमभाषत ॥

'भद्र, दुस्त्यजाः खल्वमी विन्ध्यतटीतरवः ॥

रमणीयता और कोमलता के कारण पुनः मुख फेर कर विन्ध्याचल के दक्षिणी तट शिखर समूह के वृक्षों को देख कर पुष्कराक्ष से बोला—कल्याणिन्, ये विन्ध्यातट के पेड़ बड़ी कठिनाई से छोड़े जा सकते हैं।

तथाहि—

आवासाः कुसुमायुधस्य शबरीसंकेतलीलागृहाः
पुष्पामोदमिलन्मधुव्रतवधूझङ्काररुद्धाध्वगाः ।
सुस्निग्धाः प्रियबान्धवा इव दृशो दूरीभवन्तश्चिराल्
कस्यैते न दहन्ति हन्त हृदयं विन्ध्याचलस्य द्रुमाः ॥ ६१ ॥

क्योंकि—

किरात-कान्ताओं के संकेत वाले विलास गृह काम के घर हैं। पुष्पगन्ध से मिलती हुई भ्रमरवधुओं की झंकृति से पथिक रुक जा रहे हैं। चिरकाल के लिये आँखों से दूर हो रहे प्रिय बन्धु की तरह विन्ध्याचल के ये पेड़ किसके हृदय को व्यथित नहीं कर देते ? ॥ ६१ ॥

अपि च—

भ्राम्यद्भृङ्गभरावनम्रकुसुमश्च्योतन्मधूद्गन्धिषु
च्छायावत्सु तलेषु पान्थनिचया विश्रम्य गेहेष्विव ।
निर्यन्निर्झरवारिवारिततृषस्तृष्यन्ति येषां फलै-
स्ते चन्दन्तु फलन्तु यान्तु च परामभ्युन्नतिं पादपाः ॥ ६२ ॥

और—

झूमते हुए भ्रमरों के भार से नवे हुए फूलों से मधु टपकने वाले, उत्कृष्ट गन्ध एवं छाया युक्त पेड़ों के नीचे घर की तरह विश्राम करते हुए पथिकों के समूह बहते हुए झरने के जल से प्यास बुझाकर जिन के फलों से तृप्ति का अनुभव करते हैं वे वृक्ष प्रसन्न रहें, फलें और अत्युत्तम उन्नति प्राप्त करें ॥६२॥

अपि च—

यत्र न फलितास्तरवो विकसितसरसीरुहाः सरस्यो वा ।
न च सज्जनाः स देशो गच्छतु निधनं श्मशानसमः ॥ ६३ ॥

यत्र नेति ॥ देशश्मशानयोः समतायामरतिजनकत्वं हेतुः ॥ ६३ ॥

और—

जहाँ फले हुए पेड़ नहीं हैं, खिले हुए कमलों की बावलियाँ नहीं हैं और जहाँ सज्जन नहीं हैं, वह श्मशान सदृश स्थान नष्ट हो जाय ॥ ६३ ॥

तत्कथय कदा पुनरिमां विन्ध्यवनवीथीं विचित्रपत्त्रलकुचां दमयन्तीमिव निर्विघ्नमलोकयिष्यामः ॥

तत्कथयेति ॥ विचित्रपत्त्रा लकुचास्तरवो यस्याम् । दमयन्ती तु विविधपत्त्रवल्लीयुक्तस्तनी । पत्त्रं लात इति के पत्त्रलौ ॥

तो कहिये, पुनः कब विचित्र + पत्रल + कुचा (विविध पत्र रचना युक्त स्तनों वाली) दमयन्ती की तरह विचित्र + पत्र + लकुचा (सुन्दर पत्रों वाले लकुच वृक्षों से युक्त) इस विन्ध्याटवी को निर्विघ्नतापूर्वक देख सकेंगे ?

तथाहि—

पीनोन्नमद्घनपयोधरभारभुग्न-
मध्यप्रदेशरुचिमल्लवलीलतायाः ।
उत्कण्ठितोऽस्मि चलदेणदृशः प्रियाया-
स्तस्याश्च पर्वतभुवो वनवीथिकायाः ॥ ६४ ॥

पीनोन्नेति ॥ कठिनस्तनभरेण भुग्ने नम्रे उदरे रुचिं सवलन्ते धारयन्ति इत्यणि तथोक्ता वल्य एव लता यस्याः । वली उदररेखा । तथा चलतामेणानामिव दृशौ यस्याः । वनवीथीपक्षे पयोधरो मेघः । रुचिमती तेजस्विनी लवली नाम्नी लता तथा । चलदेणानां दृक् दर्शनं यस्याम् ॥ ६४ ॥

स्थूल, उच्च, तथा घने स्तनों के भार से कुछ नवे हुए उदर भाग में कान्तिशील वलीलता (पेटी) वाली, चंचल हरिण नेत्र सदृश नेत्र वाली उस प्रिया के लिये और इस पर्वत में उत्पन्न होने वाली वनवीथियों के लिये उत्कण्ठित हूँ ॥ ६४ ॥

[प्रिया के सभी विशेषण वनवीथिका पक्ष में भी लगते हैं । वनवीथी पक्ष— जहाँ पीन (बड़े-बड़े उमड़ते हुए घने बादलों से युक्त मध्य भाग में कान्तिमती लवली की लता हैं और जहाँ चलते हुए हरिण देखे जाते हैं । दमयन्ती पक्ष अनुवाद भाग में देखें ॥ ६४ ॥]

अपि च—

सानूनां सानूनां विलोक्य रमणीयतां च सानूनाम् ।
सालवने सालवने विहरिष्यति सह मयाऽत्र कदा ॥ ६५ ॥

सानूनामिति ॥ सानूनां तटानां सम्बन्धिनो ये सानवो मार्गास्तेषां रमणीयतामनूनां परिपूर्णां विलोक्य अलवनेन सह यत् सालानां सर्जतरूणां वनं तस्मिन्मया समं कदा सा विहरिष्यति । अत्र प्राच्यः सानुशब्दस्तटार्थोऽन्यश्चाध्वार्थः । यद्विश्वः—'सानुः शृंगे बुधे पद्यायां पल्लवे वने' । यदि वा 'णू स्तवने' आनवनमानूः प्रशंसा तथा सह वर्तन्त इति सानूनि येषां स्तुत्यानामित्यर्थः ॥ ६५ ॥

तट वाले मार्गों की अनल्प रमणीयता को देखकर न कटे हुए इस साल वन में मेरे साथ वह कब विहार करेगी ॥ ६५ ॥

[सानूनाम् (तटवाले) सानूनाम् (मार्गों की) अनूनाम् (अनल्प) रमणीयताम् (रमणीयता को) देख कर सालवने (न कटे हुए) सालवने (सर्ज नामक वृक्षों के वन में) सा (वह) मेरे साथ कब विहार करेगी ? एक सालवने का अर्थ "न कटा हुआ" है । लवन का अर्थ है कटना । न लवन = अलवन और अलवन सहित सालवन । अर्थात् जिसे काटा छाँटा नहीं गया है । प्रथम सानु शब्द तट का वाचक है और द्वितीय सानु शब्द मार्ग का । 'सानुः शृङ्गे बुधे मार्गे पद्यायां पल्लवे वने ।' विश्वः ॥ ६५ ॥]

सखे सखेदा इव वयम् , तत्कथय कियद्दूरेऽद्यापि स विदर्भविषयः, यत्र ब्रह्माण्डशुक्तिसंपुटमध्यमुक्ताफलगुलिकया तयालङ्कृतं 'तत्कुण्डिनं नगरम्' इत्यभिदधाने निषधनाथे तैस्तैरालापैरनुवर्त्तितोक्तिः पुष्कराऽक्षोऽप्यभाषत ॥

'देव; प्राप्ता ननु वयम् ॥

सखे इति ॥ ब्रह्माण्डमेव शुक्तिसंपुटः । सा च तन्मध्ये मुक्ताफलगुलिका साधुमुक्ताफलम् । गुलिकाकारत्वात् । एतावता स्थूलवृत्तत्वम् ॥

मित्र, हम लोग थक से गये हैं । तो बताओ, अभी वह विदर्भ देश जहाँ ब्रह्माण्ड रूप शक्ति-सम्पुट (सीप) में शुद्ध मुक्तामणि सदृश उस दमयन्ती द्वारा अलंकृत वह कुण्डिन नाम का नगर है, कितनी दूर है ?...ऐसा कहने पर उन-उन (प्रेमबहुल प्रासङ्गिक) बातों से संबद्ध बातें करता हुआ पुष्कराक्ष भी बोला—"देव हम लोग पहुँच गये ।"

इदं हि—

वीरपुरुषं तदेतद्वरदातटनामकं महाराष्ट्रम् ।
दक्षिणसरस्वती सा वहति विदर्भा नदी यत्र ॥ ६६ ॥

वीर पुरुषों से युक्त वरदा के तट पर यह महाराष्ट्र देश है जहाँ दक्षिण (देश) की सरस्वती विदर्भा नदी बहती है ॥ ६६ ॥

[महाराष्ट्र में वरदा और विदर्भा नाम की दो नदियाँ हैं । दक्षिण पूर्व में बहती हुई विदर्भा नदी गोदावरी में गिरती है ॥ ६६ ॥

इहाकरभया सिंहलद्वीपभुवा सदृशी, बहुदया त्यागिजनतया तुल्या समृद्धनया भूनिखातकृपणजननिक्षेपकुम्भिकया समाना, प्रजा ॥

इहेति । न कराद्राजदेयांशाद्भयं यस्यां साऽकरभया । भुवा तु न करभा यस्यामिति करभरहितया तथा बह्वी दया यस्यां सा बहुदया । त्यागिनां जनतया

तु बहु ददातीति बहुदा तया बहुदया। जनानां समूहो जनता। 'ग्रामजन-' इति समूहे तल्। समृद्धो नयो यस्यां सा समृद्धनया। कुम्भिकया तु समृत् मृत्तिकोपेतं धनं यस्यां तया समृद्धनया॥

यहाँ की प्रजा सिंहल द्वीप की तरह अ+कर+भया (करके भय से मुक्त) हैं। बहुत देने वाली उदार जनता की तरह बहु+दया (बहुत दया से युक्त) है। कृपण लोगों द्वारा पृथ्वी में गाड़ कर रक्खी जाने वाली मिट्टी से युक्त और धन से भरी हुई कुम्भिका की तरह समृद्ध + नया (न्यायसम्पन्न) है।

[प्रजा अकरभया है। उसे कर का भय नहीं है। राजा की ओर से कर की छूट दे दी गयी है। सिंहल द्वीप में करभ (हाथी) नहीं होते हैं। जहाँ करभ नहीं हों वहाँ की भूमि अकरभा कहलाती है। अकरभा शब्द के तृतीया का एक वचन अकरभया है। बहुदया—प्रजा बहुत दया युक्त है। बह्वी दया यस्या असौ बहुदया प्रजा। बहुत देने वाली जनता बहुदा कहलाती है। बहुदा शब्द की तृतीया का एक वचन बहुदया है।

समृद्धनया—प्रजा समृद्ध (सम्पन्न) नय (नीति) वाली है। मिट्टी में गड़ी हुई कृपण की धनभरी कुम्भिका भी समृद्धना है। मृत् (मिट्टी) से सहित पदार्थ समृत् है। समृत् धन है जिसमें वह है समृद्धना। समृद्धना शब्द की तृतीया का एक वचन है समृद्धनया। कृपण लोग अपने धन को मिट्टी के नीचे घड़े में बन्द कर रखते हैं। इस अनुच्छेद में उपमान कोटि के शब्द प्रथमान्त हैं। शब्दों का आकृति-साम्य ही साधारण धर्म है जैसे सिंहल द्वीप की भूमि से भी अकर-भया इस आनुपूर्वी का अन्वय है और प्रजा से भी। समृद्धनया और बहुदया की भी यही स्थिति है।]

इह समकरन्दानि कमलवनानि राजराजन्यचक्रं च, इह बहु-धामानि नगराणि लोकहृदयं च, इह सारम्भाणि कृपाणकुलानि दश-रूपकप्रेक्षणं च, इह बहुकृपाणि जनमनांसि प्रजापालबलं च इह महा-विप्राणि ग्रामपुरपत्तनानि मेषगोष्ठं च॥

इहेति॥ सह मकरन्देन वनानि। राजन्यचक्रं तु समः करो राजांशो यस्य। तथा दानमस्यास्तीति दानि। इह वेति॥ बहूनि धामानि गृहाणि येषु। हृदयं च बहुधा अनेकधा मानोऽस्यास्तीति मानि। इह सेति॥ सह आरम्भैरुपक्रमैः कुलानि। प्रेक्षणकं तु सारमुत्कृष्टम्। तथा भाणो रूपकविशेषः सोऽस्यास्तीति भाणि। यदाह धनिकः—'भाणस्तु धूर्तचरितं कृतं स्वेन परेण वा। 'यत्रोपवर्णयेदेको निपुणः पण्डितो विटः'। इह वेति॥ बह्वी कृपा येषु तानि। बलं च बहु। तथा कृपाणः खड्गोऽस्यास्तीति। इह मेति॥ महान्तो विप्रा येषु। गोष्ठं तु महान्तोऽवयो मेण्ढास्ते एव प्राणिनो बलवन्तो यत्र॥

यहाँ कमलवन परागपूर्ण है। सामन्त राजाओं का वर्ग समान कर (मालगुजारी) लगाता है और दान देता है। नगर बहुत भवनों से युक्त है और लोगों का हृदय बहुधा मानी है। तलवारें हमेशा तैयार रहती हैं। नाटक प्रकरण आदि का मण्डल दशरूपक दर्शन उत्कृष्ट भाण नामक रूपक से युक्त है। प्रजा की रक्षा करने वाली सेना बहुकृपाणों से युक्त है और जनता के मन से कृपा भरी है। ग्राम, नगर और राजधानियाँ महाब्राह्मणों से युक्त हैं और मेष-गोष्ठ (भेड़ों के रहने वाले स्थान) बड़े-बड़े बलवान् भेड़ों से युक्त हैं।

[समकरन्दानि-कमलवनानि के साथ तो इस का "परागपूर्ण या मकरन्द सहित" अर्थ है। राजराजन्य पक्ष में यहाँ दो पद हो जाते हैं। समकरम् और दानि। राजसमूह अपनी-अपनी प्रजा पर समान ही कर लगाता है। ऐसा नहीं कि कोई क्रूर राजा अपनी सुख-सुविधा के लिये प्रजा पर अधिक कर लगा देता हो। समानः करः यस्य तत् समानकरम् राजराजन्यम्।

दानि—यह भी राजराजन्य का विशेषण है। राजसमूह दान देने वाला है इस लिये उसे दानि कहा गया है। पुंल्लिङ्गरूप तो इसका दानी होगा। किन्तु नपुंसकलिंगान्त राजन्य शब्द का विशेषण होने के कारण दानि हो गया। दानिन् शब्द का नपुंसक लिङ्ग प्रथमा एकवचन है।

बहुधामानि—बहुत है धाम (भवन) जिस नगर में उन्हें बहुधामानि नगराणि कहा गया है।

लोकहृदय पक्ष में बहुधा और मानि पृथक्-पृथक् पद हैं। लोगों का हृदय बहुधा मनस्वी है। मानिन् शब्द की नपुंसकलिंगान्त प्रथमा का एक-वचन है।

सारम्भाणि—कृपाण-कुल पक्ष में यह पद नपुंसक, प्रथमा का बहुवचन है। कृपाणसमूह सदा सारम्भ (सयत्न या तैयार) रहता है। दशरूपक प्रेक्षण-पक्ष में सारम् और भाणि पृथक्-पृथक् पद हैं। रूपक के दश भेद होते हैं—नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अङ्क और ईहामृग। इसी लिये इसे दशरूपक कहा जाता है। सारम् (उत्कृष्ट) भाणि (भाण नामक रूपक से युक्त) दशरूपक दर्शन है। लोग भाण नामक रूपक को बहुत अधिक पसन्द करते हैं। भाणिन् शब्द का न० प्र० एक-वचन है।

बहुकृपाणि—जब यह जनमनांसि का विशेषण है तब तो बहुकृप शब्द का नपुंसकलिंगान्त प्रथमा बहुवचन है। जनसामान्य के मन में बहुत कृपा है। जब यह प्रजापालबलम् का विशेषण बनता है तो बहुकृपाणिन् शब्द का

नपुंसकलिंगान्त प्रथमा एकवचन है। प्रजा की रक्षा करने वाली सेना के पास पर्याप्त कृपाण हैं। उस समय नगरों में पहरा देने वाली पुलिस तलवार लेकर पहरा देती थी।

महाविप्राणि—ग्राम, नगर, और पत्तन महाब्राह्मणों से युक्त हैं। इस पक्ष में न० प्र० बहुवचन है। ब्राह्मण शब्द के पूर्व महत् शब्द का प्रयोग बहुत पहले अच्छा माना जाता था। बाद में चल कर इसके अर्थ की अवनति हो गयी। महाब्राह्मण का अनुत्तम ब्राह्मण अर्थ हो गया। मेषगोष्ठ पक्ष में यह शब्द न० प्र० एकवचन है। महा + अवि + प्राणि (बड़े-बड़े भेड़ रूप प्राणी जिसमें रहते) हैं, भेड़शाला में बड़े-बड़े भेड़ पाले गये हैं।]

इयं च गगनवीथीव पूर्वोत्तराफाल्गुनीराशिवायूपयुक्ता ब्राह्मणाग्रहारभूमिः ॥

इयं चेति ॥ पूर्वस्यामुत्तरस्यां चाफल्गु सारमुत्कृष्टं नीरं यस्याम्। तथा शिवा कल्याणी। तथा यूपैर्यज्ञकीलैर्युक्ता। गगनवीथी तु पूर्वा उत्तराः फल्गुन्यो राशयो मेषाद्या वायुः पवनस्तैरुपयुक्तोपयोगीकृता ॥

राजा द्वारा ब्राह्मणों के लिये दी गयी यह भूमि आकाश-मार्ग की तरह पूर्व और उत्तर में अफल्गु (पर्याप्त) जल से भरी है। शिवा (कल्याणकारिणी) है। यूप (यज्ञस्तम्भों) से युक्त है, आकाशवीथी पूर्वा, उत्तरी, फल्गुनी नक्षत्रों (मेष, वृष आदि) राशियों और वायु के उपयोग में लायी जाती है। [पूर्वोत्तरा फल्गुनी राशिवायूपयुक्तास्वरूप साधारण धर्म आकाशवीथी और अग्रभूमि दोनों में है।]

इतश्च—

आरुह्यैताः शिखरिसदृशान्ग्राममध्योच्चकूटा-
न्न्योन्यांसप्रणिहितभुजाः संगताः कौतुकेन।
प्रेक्षावेशादविचलदृशो योषितः पामराणां
पश्यन्त्यस्त्वां निभृततनवो लेख्यलीलां वहन्ति ॥ ६७ ॥

आरुह्येति ॥ शिखरी गिरिः। कूटा अवकरोत्कराः प्रेक्षायामवलोकने आवेश आग्रहः। पामराः प्राकृतजनाः ॥ ६७ ॥

इधर—

गांव के बीच पर्वत सदृश ऊँचे स्थानों पर चढ़कर ग्रामीणों की स्त्रियां एक दूसरे के कन्धे पर हाथ रखकर कौतूहल से इकट्ठी होकर, देखने की उत्कट उत्सुकता से निर्निमेष दृष्टि से तुम्हें देखती हुई निश्चल शरीर होकर चित्र बना रही हैं ॥ ६७ ॥

किं चान्यत्—

नृप चलसि यथा यथा त्वमस्मिन्नपि वदनानि तथा तथा चलन्ति।
तरलितनयनानि पामरीणां पवननिर्नर्तितपङ्कजोपमानि ॥ ६८ ॥

और दूसरी बात यह कि—जैसे जैसे आप इस स्थान की ओर बढ़ते हैं वैसे वैसे हवा से कम्पित कमल सदृश चंचल नेत्र वाले इन स्त्रियों के मुख भी चलते हैं ॥ ६८ ॥

[राजा ज्यों ज्यों उनकी दृष्टि के समीप आता है त्यों त्यों उनकी स्वरूपगत विशेषताओं के सम्बन्ध में कुछ कहती सुनती, चित्र बनाती, सौन्दर्य विशेष का वीक्षण करती हुई ग्राम्य-वधुओं के नेत्र और मुख क्रियाशील हैं ॥ ६८ ॥]

अपि च—

उत्कम्पाद्गलितांशुकेषु रभसादत्यन्तमुच्छ्वासिषु
प्रोत्तुङ्गस्तनमण्डलेषु विलुठद्गुञ्जावलीदामसु।
आसां स्वेदिषु दृश्यते मृगदृशां संक्रान्तबिम्बो भवा-
नाश्लिष्यन्निव गोपिकाः कृतबहुप्राकाम्यरूपो हरिः ॥ ६९ ॥

उत्कम्पादिति ॥ अप्रांशुकत्वं स्वेदित्वं च स्तनमण्डलस्य निरावरणत्वेन नृपप्रतिबिम्बस्य संक्रान्तौ हेतुः। प्राकाम्यं महासिद्धिविशेषः। प्राकाम्येण रूपाणि प्राकाम्यरूपाणि। कृतानि बहूनि प्राकाम्यरूपाणि येन ॥ ६९ ॥

कम्पन के कारण इनके वस्त्र नीचे गिर गये हैं, वेग के कारण जल्दी जल्दी श्वास ले रही हैं, हिलते हुए गुञ्जे की मालाओं वाले स्वेद बिन्दु युक्त इनके स्तनमण्डलों पर आपका प्रतिबिम्ब पड़ गया है। (ऐसी स्थिति में) विविध रूप धारण कर गोपियों का आलिङ्गन करते हुए हरि की तरह आप लग रहे हैं ॥ ६९ ॥

[जितनी गोपियाँ होती थीं हरि उतने शरीर धारण कर उनके साथ विलास करते थे। सभी नारियों के स्तनमण्डल पर राजा का प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ता है अतः ऐसा लगता है कि नल भी हरि की तरह कई शरीर धारण कर प्रत्येक अङ्गना से मिल रहा है ॥ ६९ ॥

अहो नु खल्वाश्चर्यमिदमेतासां तथाविधनेपथ्यनिरपेक्षाप्युन्मादयति यूनो मनो युवतीनां यौवनश्रीः ॥

अहो न्विति ॥ तथाविधमुदारं हारकुण्डलादिरूपं नेपथ्यम् ॥

ओह, यह निश्चय ही आश्चर्य की बात है कि उस तरह के विशिष्टवस्त्र और अलङ्कार की अपेक्षा न करती हुई युवतियों की शोभा युवकों का मन हर ले रही है।

तथाहि—

माल्यं मूर्धनि कर्णिकारकलिकाः पिष्टातकं चन्दनं
मुक्तादाम गले च काचमणयो लाक्षामयाः कङ्कणाः ।
रागोऽङ्गेषु हरिद्रया नयनयोरत्युल्बणं कज्जलं
वेषोऽयं विरसस्तथापि हृदयं ग्राम्या हरन्ति स्त्रियः ॥ ७० ॥

माल्यमिति ॥ हरिद्रा तण्डुलचूर्णम् । पिष्टातकं विलेपनम् ॥ ७० ॥

क्यों कि:—

कर्णिकार की कलियाँ ही इनके शिर की माला हैं। चूर्णित किया हुआ उबटन ही इनका चन्दन है, गले में कांच की मणियाँ ही मोती की माला हैं। आँखों में ज्यादा ज्यादा काजल है। इनका वेष तो नीरस है फिर भी ये (ग्राम्यवधुएँ) चित्त जो आकृष्ट कर ले रही हैं ॥ ७० ॥

इतश्च—

कन्दलितकन्दविशेषाः कर्कशकर्कटिका विशालकालिङ्गाः कूष्माण्डमण्डितमण्डपाः सुवृत्तवृन्ताका सुहस्तितहस्तिकर्णपुनर्नवाः स्थूलमूलकाः पिण्डितपलाण्डवो वास्तूकवास्तुभूतभूतलाः संजीवितजीवन्तिकाः सर्षपराजिकाराजिराजिताः सरित्सारिणीसारिवारिसेचनसुकुमारपल्लवितविविधशाकाः शाकवाटिकाः ॥

कन्दलितेति ॥ शाकवाटिकाः । सुहस्तितेति ॥ हस्तः कन्दलोद्भेदः संजातोऽस्येति । तारकादित्वादितच् । हस्तिकर्णः पुनर्नवा च वल्लीभेदौ । वास्तूकेन शाकविशेषेण वस्तुभूतं गणनार्हं भूतलं यासु । राजिकानां राजसर्षपाणां राज्या राजिता ॥

इधर—

तरकारी की वाटिका में कन्द अङ्कुरित हुए हैं, कर्कश ककड़ी लगी हुई है। ये वड़े-वड़े कलिङ्ग (Cucumber) के पौधे लगे हुए हैं। कूष्माण्ड की लता से यह मण्डप अलंकृत है। ये गोल भंटे हैं। पुनर्नवा और एरण्ड अंकुरित हुए हैं। जड़ में मोटे-मोटे गोल प्याज हैं। बथुआ के साग से यहाँ का भूतल महत्त्वपूर्ण हो गया है। जीवन्तिका (गिलोय) के पौधे हरे भरे हैं। सरसों की क्यारियां सुन्दर लग रही हैं। नदी की नहरों से उत्तम सिंचाई के कारण विविध प्रकार की तरकारियाँ उगी हुई हैं।

इतश्च—

विकसन्मुचुकुन्दानन्दिनो मकरन्दस्यन्दिसुन्दरसिन्दुवाराः पामरीसंकेतनिकेतकेतकीवनाः कम्राम्रातकाः कुडमलितकङ्कोलफलाः कोरकितकुरण्टकाः पल्लवितवल्लीकाः फुल्लन्मल्लिकोल्लासिनः सुजात-

जातयो विचित्रशतपत्त्रिकास्ताण्डवितपाण्डुपिण्डितागुरुकरवीरवीरुधो दृश्यमानसर्वर्तुपुष्पाः पुष्पायुधावासा आरामाः ॥

इधर—

ये बगीचे खिलते हुए मुचुकुन्द के कारण आनन्दप्रद हैं। यहाँ सुन्दर सिन्दुवार का मकरन्द चू रहा है। यह पामर-युवतियों का संकेत-स्थान, केवड़े का जंगल है। ये सुन्दर आम्रातक हैं। कङ्कोल-फल में कलियां आ गयी हैं। कुरबक भी कुड्मलित हो गये हैं। खिली हुई मल्लिका से उल्लास व्यक्त हो रहा है। यहाँ सुन्दर जाति-पुष्प हैं। विचित्र वचा वृक्ष हैं। पीले तथा सुडौल शीशम और करवीर वृक्षों की लताएँ हिल रही हैं। सभी ऋतुओं के फूल दिखाई पड़ते हैं। ये उद्यान कामदेव के निकेतन हैं।

इतश्च—

नातिदूरे दक्षिणदिशि दृशं निवेशयतु देवः ॥

और इधर—

थोड़ी दूर पर दक्षिण की ओर श्रीमान् अपनी दृष्टि लगावें।

> एतास्ताः परिपक्वशालिकलमाः सुस्वादुदीर्घेक्षवो
> वप्रप्रान्तहरित्तृणस्थलचलत्पीनाङ्गगोमण्डलाः ।
> दृश्यन्ते पुरतः सरोरुहवनभ्राजिष्णुनीराशयाः
> प्रान्तोन्नादिविचित्रपत्त्रिनिचयाः सस्यस्थलीभूमयः ॥ ७१ ॥

एता इति ॥ विचित्रपत्त्रिणो विविधपक्षिणः ॥ ७१ ॥

ये वे अन्न के खेत हैं जहाँ पके हुए शालिधान लगे हैं, मीठे-मीठे बड़े बड़े इक्षुदण्ड (ईख) हैं। पर्वतीय तराई की हरी घासों के बीच हृष्ट-पुष्ट गायों का समूह चर रहा है। आगे कमल वनों से सुशोभित जलाशय दिखाई पड़ रहे हैं। किनारे (मेड़ों) पर विविधि पक्षियों का समूह चल रहा है ॥ ७१ ॥

अपिच—

> स्वःसौन्दर्यविडम्बि कुण्डिनमिदं सैषा विदर्भा नदी
> सा चेयं वरदा स चायमनयोः पुण्याम्भसोः सङ्गमः।
> अस्यैवोन्मदहंसहारिणि तटे सेनास्थितिः कल्प्यतां
> यस्मिन्मत्तकरीन्द्रकुम्भकषणक्रीडासहाः पादपाः' ॥ ७२ ॥

सौन्दर्य में स्वर्ग की विडम्बना करने वाला यह कुण्डिन नगर है। यही वह वरदा नदी है और यही वह विदर्भा है। यही इन दोनों पवित्र जल वाली नदियों का संगम है। मदकल हंसों से मनोहर इसी के तट पर सेना का

पड़ाव रक्खा जाय जहाँ के पेड़ मतवाले गजेन्द्रों के कुम्भस्थल की खुजलाहट रूप क्रीडा को सह सकते हैं ॥ ७२ ॥

एवमनेकधा दर्शनीयप्रदेशप्रकाशनव्याजेन विनोदलीलां पल्लवयति पुष्कराक्षे, 'प्राप्ताः कुण्डिनपुरम्' इत्युच्छ्वसितहृदयो निषधेश्वरः परमपरितोषात्पारितोषिकप्रदानपूर्वमिदमवादीत् ॥

इस तरह अनेक प्रकार से दर्शनीय स्थलों की व्याख्या के वहाने पुष्कराक्ष के उत्तम मनोविनोद करते रहने पर "हम लोग कुण्डिनपुर पहुँच गये।" इस उक्ति से प्रसन्न होकर राजा नल बड़े सन्तोष के साथ पारितोषिक देता हुआ बोला—

'भद्र, भवतः सौकुमार्यमाधुर्यमधुविश्रम्भसंदर्भितभङ्गश्लेषगर्भाभिर्गीर्भिराक्षिप्तमनसामस्माकमविदितखेद इव, अदृष्टसविषमविभाग इव, अनुत्पादितस्वेदलव इव, अर्धगव्यूतिमात्रशेषोऽतिक्रान्तः क्रीडाविहारभूमिसमो महानपि मार्गः। समुचितश्चायं सेनानिवेशस्य सरित्सङ्गमोपकण्ठवनविभागः ॥

"कल्याणिन्! आपकी कोमल, मधुर एवं मधुमय प्रसंग-सहित भङ्गश्लेषगर्भित वाणी से हम लोगों का मन आकृष्ट था। अतः इतने महान् मार्ग को जो अब एक ही क्रोश बाकी है, विना थकान का अनुभव किये, ऊँची नीची जगहों के विभागों को विना देखे, विना पसीनों के कणों के उत्पन्न हुए, पार कर गये। नदी संगम के समीपवर्ती वन का यह स्थान सेना के ठहरने के लिये उपयुक्त है।

तथा हि—

इह भवतु निवासः सैनिकानामिहापि
श्रमतरलतुरंगग्रासयोग्या तृणाली।
इह हि कवलयन्तः पल्लवान्वारणेन्द्रा
विदधतु तरुखण्डे गण्डकण्डूयनानि ॥ ७३ ॥

अतः—

सैनिक लोग यहाँ विश्राम करें। यहाँ भी श्रम से थके हुए घोड़ों के खाने लायक घास है। यहाँ वर पल्लवों को खाते हुए गजेन्द्र पेड़ों के तनों में कपोलों की खुजलाहट मिटावें ॥ ७३ ॥

इतश्चात्यन्तमनोहरतयास्माकमासनयोग्याः सरित्सङ्गमोत्सङ्गभूमयः॥

इधर नदी-संगम के मध्यवर्ती स्थान अत्यन्त मनोहर होने के कारण हम लोगों को बैठने योग्य हैं।

तथा हि—

अपसृताम्बुतरङ्गितसैकता निचुलमण्डपनृत्तशिखण्डिकाः ।
कुररसारसहंसनिषेविताः पुलकयन्ति न कं पुलिनश्रियः ॥७४॥

क्योंकि—

पानी के हट जाने के कारण तरङ्ग की आकृति वाली वालुका की रेखायें बन गयी हैं। निचुलकुञ्जों में मयूर नाचते हैं। कुरर, सारस और हंसों से सेवित यह तट की शोभा किसको रोमांञ्चित नहीं कर देती ॥ ७४ ॥

[पानी में जैसे ऊँची नीची लहर आती हैं। पानी हट जाने पर तरङ्गों की रेखायें शुष्क तटमण्डल पर चिरकाल तक दिखायी पड़ती रहती हैं ॥७४॥]

इत्यभिधाय 'भद्र, यथाक्रममकृतान्योन्यसम्बाधकलहम्, अनुपद्रुततीर्थायतनम्, अलुण्ठितासन्नोद्यानम्, अच्छिन्नचैत्यद्रुमम्, अविच्छिन्नकमलवनं निवेशय सेनाम्' इति सेनापतिमादिदेश ॥

सोऽपि यथादिष्टमनुतिष्ठन्निदमवादीत् ॥

अच्छिन्नचैत्यद्रुमेति ॥ चैत्या ग्रामप्रदेशप्रसिद्धवृक्षाः ॥

यह कह कर, "भद्र, विना एक दूसरे संघर्ष से कलह किये, विना तीर्थगृहों में किसी तरह का उपद्रव किये, समीपवर्ती उद्यान को विना लूटे, यज्ञ स्थल के पेड़ों को विना काटे तथा कमल वन को विना हानि पहुँचाये सेना को ठहराओ।" यह सेनापति को आज्ञा दिया।

'भजत बलसमूहाः खर्वदूर्वास्थलानि
स्थविरशुकविशीर्यत्पक्षपिच्छच्छवीनि ।
उपनदि मृदुवीचीवायुनाऽन्दोलितानां-
कुसुमितलतिकानामन्तरालेष्वमूनि ॥ ७५ ॥

भजतेति ॥ यद्यपि पक्षपिच्छयोरभिधानकृता न भेदः प्रत्यपादि तथापि महदेवान्तरम् । यतः पक्षशब्देन पक्षती एव । पिच्छशब्देन तदंशोऽभिधीयते ॥ ७५ ॥

वह भी आज्ञानुसार कार्य करता हुआ बोला—

नदी के पास कोमल तरङ्गों की हवा से कम्पित, खिली हुई लताओं के बीच, वृद्ध सुग्गों के झरते हुए पंखों के अंश की कान्ति सदृश कान्ति वाले, छटी हुई दूर्वाघास से युक्त इस स्थान पर सैनिक वर्ग ठहरे ॥ ७५ ॥

अपि च—

स्मरविहरणवेदीं षट्पदापानशालां
तटमनु वनमालां सस्मया मास्म भाङ्क्षुः ।

कमलवनविहारानन्तरं यत्र तैस्तै-
मर्दनमदविनोदैरासते राजहंसाः ॥ ७६ ॥

स्मरेति ॥ तटयन्विति ॥ तटं लक्ष्यीकृत्य । सस्मयाः सगर्वाः सन्तो भवन्तो वनमालां मा स्म भाङ्क्षुः । अन्यत्सकलं भङ्गनिषेधकारणम् । आसते इति बहुवचनान्तम् ॥ ७६ ॥

तट के पास की यह वनश्रेणी कामदेव की विहरण-भूमि है। भ्रमरों की मधुशाला है। कमल वन में विहार कर लेने के बाद राजहंस यहाँ काममद के विनोद के साथ ठहरते हैं। अहंकार के मारे आपलोग इसे नष्ट न करें ॥ ७६ ॥

अपि च—

सुरसदननिवासं सैनिका मास्म कुर्वन्-
सरिति मुनिकुटीनां भङ्गमुल्लुण्ठनं वा।
इह निषधनृपाज्ञा तस्य यः क्वापि कोऽपि
क्लममुषि तरुखण्डे खण्डनं वा करोति' ॥ ७६ ॥

और—

जो कोई कहीं भी थकावट मिटाने वाले पेड़ों के तनों को काटता है उन सबके लिये निषधराज की यह आज्ञा है कि देवमन्दिरों में सैनिक निवास न करें और नदी तट पर बने हुए मुनि-कुटीरों को तोड़ने और लूटने का कार्य न करें ॥ ७७ ॥

[तम्बू वगैरह तानने के लिये लकड़ी की आवश्यकता होती है। इसी लिये सैनिक पेड़ों की लकड़ियों को काट रहे हैं। राजा सोचता है कि सैनिक मुनियों के कुटीरों को उजाड़ कर वहीं से लकड़ी आदि सामान लेकर तम्बु न तानने लगें या शिविर बनाने के आलस्य से देवमन्दिरों में जाकर न ठहर जायँ। सैनिक जहाँ ठहरते थे वहाँ के आस पास के लोगों को बहुत कष्ट देते थे। राजा इसी आशंका से उन्हें मना करता है। प्राचीन भारत में मन्दिर इतने विशाल आकार के होते थे कि उसमें बड़ी-बड़ी सेनायें भी विश्राम कर सकती थीं ॥ ७७ ॥]

एवमनुशासति बलानि बहूनि बहुधा बाहुके, तत्क्षणादुत्तम्भितैः प्रेङ्खत्पताकापटपल्लवविराजितैः प्रयाणयोग्ययन्त्रचित्रशालागृहैः सञ्चारिणि गन्धर्वनगर इव रमणीये, हरिततोरणैरुड्डीनशुकावलीमय इव, गैरिकारक्तोन्नमितपटकुटीभिरुत्फुल्लकिंशुकमय इव, श्वेतांशुकमण्डपैश्च ताण्डवितबृहत्पुण्डरीकखण्डमय इव, जाते सरित्सङ्गसङ्गिनि

शिविरसंनिवेशे, क्रमेणाक्रान्तसकलदिङ्मुखेषु निषधेश्वरागमनवार्तानिवेदनदूतेष्विव विदर्भराजधानीधामनिर्गतेषु बहलसैन्यधूलिपटलेषु, रसति विपक्षक्षितिपालकर्णपुटीकटुनि नवजलधरध्वनितगम्भीरे तत्कालप्रहतशङ्खसहप्रयाणझल्लरीझांकृते, स्वयंवरयातसमस्तराजन्यचक्रकर्णकर्तरीषु पठ्यमानासु सानन्दवन्दारुवन्दिवृन्दारकवृन्देनोच्चैर्नलनाममालासु, क्षणादेवोत्तम्भितशातकुम्भस्तम्भभवने मृदुमसृणास्तरणभाजि जात्यवैदुर्यपर्यन्तपर्यङ्किकायां सुखनिषण्णे राजनि, सुस्थिते च परिजने, नातिदूरवर्तिनि कुण्डिने दण्डपाशिकस्योच्चैर्वागुदतिष्ठत् ॥

एवमिति ॥ बन्हार्विस्यत्र वदिः स्तुत्यर्थः ॥

इस तरह बाहुक (सेनापति) ने सैनिकों को बहुत प्रकार से अनुशासित किया। नदी-संगम की भूमि पर शिविर बनाया गया। तत्काल खड़ी की गयी फड़फड़ाती हुई पताका के वस्त्र-पल्लवों और जङ्गम यन्त्रनिर्मित चित्रशाला-गृहों के कारण वह गन्धर्वनगर सदृश सुन्दर लग रहा था। हरे तोरणों के कारण उड़ती शुक-पंक्ति से बना हुआ सा लगता था। गैरिक और लालवर्ण की उठायी हुई कुटियों से खिला हुआ किंशुकमय प्रतीत होता था। श्वेत वस्त्रों से बनाये हुए मण्डपों से खिला हुआ विशाल कमल-वन सदृश प्रतीत होता था।

क्रम से पर्याप्त सैनिकों के (पैर से उठा हुआ) धूलि समूह समस्त दिशाओं में आक्रमण करता हुआ नल के आगमन की वार्ता की सूचना देने वाले दूतों की तरह विदर्भ राजधानी के घरों में घुस गया। विपक्ष राजाओं की कर्ण-कुटी में कटु लगने वाली नवीन मेघ के गर्जन सदृश गम्भीर, तत्काल बजाये गये शंख के साथ प्रयाण की सूचना देने वाली झाल की झनकार बज उठी। स्वयम्बर में आये हुए समस्त राजसमूह के कानों में चाकू की तरह प्रतीत होने वाली नल की नाममाला को स्तुति करने वाले बन्दियों का मुख्य वर्ग पढ़ने लगा। शीघ्र ही उठाये गये स्वर्ण-निर्मित खम्भों वाले भवन में कोमल एवं स्निग्ध विस्तर से युक्त, उत्तम वैदूर्य मणि से खचित पाटियों वाले पलंग पर राजा के बैठ जाने पर, परिजनों के सुस्थिर हो जाने पर कुण्डिन नगर के थोड़ी ही दूर पर दण्डपाशिक की उच्च ध्वनि उठी—

'सिच्यन्तां राजमार्गाः कलशमुखगलच्चन्दनाम्बुच्छटाभिः
स्तम्भाः प्रेङ्खत्पताकाः कुसुमपरिकरास्तोरणाङ्काः क्रियन्ताम्।
स्थाप्यन्तां पूर्णकुम्भाः प्रतिनगरगृहं प्राङ्गणे धान्यमिश्रैः
सिद्धार्थैः स्वस्तिकालीर्लिखत नरपतिर्नैषधः प्राप्त एषः ॥७८॥

"कलश के मुख से गिरते हुए चन्दन जल की धारा से राजमार्ग सींचे जायँ। खम्भों पर झण्डे फहरा दिये जाँय। प्रत्येक घर के आँगन में धान्यों (जव, अक्षत, आदि सप्त धान्यों) से युक्त सफेद सरसों से भरे हुए कलश रक्खे जाँय। स्वस्तिक चिह्न लिखे जाँय क्योंकि निषध देश के सम्राट् (महाराज नल) आ गये ॥ ७८ ॥

अपिच—

सत्काञ्च्यश्चन्दनार्द्रस्तनकलशयुगामुक्तमुक्तावलीकाः
पात्राण्यादाय दूर्वादलदधिकुसुमोन्मिश्रसिद्धार्थभाञ्जि।
सोत्तंसा हंसपिच्छच्छविवसनभृतो वर्तिताश्चर्यचर्या
नार्यो निर्यान्तु तूर्यध्वनिलयललितं गीतमुच्चारयन्त्यः ॥७९॥

सत्काञ्च्येति ॥ आमुक्तं योजितम् ॥ ७९ ॥

करधनी पहन कर, चन्दन से आर्द्र स्तन-कलश-युगल पर मुक्ता की मालायें लटका कर, दूर्वा दल, दही और पुष्प से मिश्रित सफेद सरसों से युक्त पात्रों को लेकर, भूषणों से मण्डित होकर, हंस पंख की कान्तिसदृश वस्त्रों को पहन कर, आश्चर्यजनक सजावट के साथ वाद्य-ध्वनि और लय से ललित गीतों को गाती हुई नारियाँ निकलें ॥ ७९ ॥

अपिच—

अपि भवत कृतार्थाः पौरनार्यश्चिरेण
व्रजतु निषधनाथश्चक्षुषां गोचरं वः।
ध्रुवमयमवतीर्णः स्वर्गलोकादनङ्गो
हरचरणसरोजद्वन्द्वलब्धप्रसादः ॥ ८० ॥

इति श्रीत्रिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचरण-
सरोजाङ्कायां षष्ठ उच्छ्वासः ॥ ६ ॥

इति विषमपदप्रकाशमेतं दमजन्त्यां तनुते स्म चण्डपालः।
शिशुमतिलतिकाविकासचैत्रं चतुरमतिस्फुटभित्तिचारुचित्रम् ॥ १ ॥
इति श्रीचण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे षष्ठ उच्छ्वासः समाप्तः ॥

और—

पुराङ्गनाएँ कृतार्थ हों। निषध-सम्राट् (नल) आप लोगों की आँखों के सामने चिरकाल तक रहें। निश्चित ही ये भगवान् शङ्कर के चरण कमल युगल का आशीर्वाद प्राप्त कर कामदेव का अवतार बनकर आये हैं ॥ ८० ॥

[भगवान् शंकर की प्रसन्नता के बिना कामदेव सांग नहीं हो सकता, अनङ्ग ही रहेगा। नल शरीरधारी कामदेव का अवतार है। नल रूप में कामदेव तब अवतीर्ण हुआ है तब उसने भगवान् शङ्कर का आशीर्वाद प्राप्त कर लिया है। शरीरधारी काम की उपपत्ति के लिये शिव जी के आशीर्वाद की योजना अत्यन्त भव्य है ॥ ८० ॥]

षष्ठ उच्छ्वास समाप्त।

सप्तम उच्छ्वासः

एवमविश्रान्तमतितारस्वरेण पुरः पौरपुरंध्रिमण्डलान्युद्दण्डयतो दण्डपाशिकस्य कलकलमाकर्णयत्यास्थानस्थिते राजनि, प्रविश्य प्रणामप्रेङ्खोलितगलकन्दलावलम्बितजाम्बूनदस्थूलश्रृङ्खलास्फालित-वक्षःस्थलः स्थविरवयाः सवेषः प्रतीहारः सविनयमुक्तवान् ॥

एवमिति ॥ उद्दण्डयतो गाढमुत्साहयतः । दण्डपाशिकस्तलारः । दडपाशोऽस्य-स्येति । 'अत इतिठनौ' इति ठन् । जाम्बूनदस्य कनकस्य स्थूला श्रृङ्खला आभरणविशेषः ॥

इस अरह निरन्तर उच्च स्वर से नगर के वधूमण्डल को जोर से उत्साहित करते हुए दण्डपाशिक की कलकल ध्वनि को राजा सुन रहा था, इतने ही में एक अपने पद के अनुकूल वेष धारण किया हुआ वृद्ध प्रतीहार जिसके प्रणाम के लिये आगे बढ़े हुए ग्रीवाङ्कुर से लटकती हुई सोने की सिकरी वक्षःस्थल से टकरा रही थी, विनयपूर्वक बोला—

देव, धृतमाङ्गल्यकल्पवेषाः पुष्पफलाक्षतपूर्णस्वर्णपात्रपाणयः पुरःस्थिता अधीयाना ब्राह्मणाः कुण्डिनपुरपौराः पुरंध्रयश्च देवदर्शनार्थितया द्वारि सेवावसरमनुपालयन्ति ॥

देवेति ॥ धृतो माङ्गल्ये कल्पो दक्षो वेषो मण्डनं यैः ॥

"श्रीमन् , मङ्गलवेष धारण किये हुए, हाथों में फूल, फल और अक्षत से पूर्ण स्वर्णपात्रों को लिये हुए, सामने की ओर स्थित (मङ्गलगान) पढ़ते हुए ब्राह्मण, कुण्डिनपुर के नागरिक और नगर-वधुएँ अपने दर्शन के निमित्त द्वार पर सेवा की प्रतीक्षा कर रही हैं ।

कथयन्ति चैवमदूरे विदर्भेश्वरोऽपि देवं द्रष्टुमायाति ॥

लोग कहते हैं कि विदर्भ-पति भी आप को देखने के लिये समीप में ही आ रहे हैं ।

लग्न इव श्रूयते च शङ्खस्वनविदर्भितो विदर्भोपकण्ठे पठद्बन्दि-वृन्दकोलाहलः ॥

विदर्भ के पास शङ्ख ध्वनि से युक्त वन्दीजन समूह कोलाहल (एक दूसरे से मिश्रित सा) सुनायी पड़ रहा है ।

'तदादिशतु देवो यथाकर्त्तव्यम्' इत्यभिधाय स्थिते तस्मिन् 'भद्रभूते, त्वरितं प्रवेशय विदर्भाधिपस्य परिजनं स्वयमपि तदर्धपथमनुसर' इति नलो दौवारिकमादिदेश ॥

तदेति ॥ भद्रभूतिरिति द्वाःस्थस्य नाम । तस्य चामन्त्रणम् ॥

अतः कर्तव्यमार्ग को श्रीमान् आदिष्ट करें।" यह कह कर उसके रुक जाने पर, 'भद्रभूति, विदर्भपति के परिजनों को शीघ्र लाओ और स्वयं भी उनके आधे रास्ते में जा कर अगवानी करो।" नल ने दौवारिक को यह आदेश दिया।

सोऽपि—'यथाज्ञापयति देवः' इत्यभिधाय यथादिष्टमकरोत् ॥

अनन्तरमनतिचिरादितस्ततो दोधूयमानचारुचामरकलापपवननर्तितकर्णकुवलयः वल्गुवल्गनोल्ललनलङ्घनलास्यलीलापदैः पथि प्लवमानमिव तरलतुरंगमधिरूढः कनककलशशिखरैरेकदेशस्फुरितविद्युत्स्तबकैरकाण्डाडम्बरितमेघमण्डलैरिव मायूरातपत्रखण्डैराच्छादितगगनान्तरालः, शस्त्रोद्वहनकिणाङ्कितकठोरकण्ठोपकण्ठैः कठिनप्रकोष्ठलुठल्लोहवलयैरूर्ध्वबद्धोद्भटजूटकैरलककरालमौलिभिरर्धोरुकपरिधानैर्निशातकुन्तपाणिभिरभितस्त्वरितपातिभिः पत्तिभिरनुगम्यमानः, मनाङ्मृदुमृदङ्गध्वनिकरम्बिते कोमलकांस्यतालशालिनि वांशिकवाद्यमानवंशनिस्वने दत्तकर्णः, कर्णिकारगौराङ्गोऽङ्गणस्य नातिदूरेऽप्यदृश्यत भीमभूमिपालः ॥

अनन्तरमिति ॥ वल्गु यद्वल्गनं विक्रममाणता । उल्ललनमुच्चैर्विलसनम् । लङ्घनं फाला । लास्यं नृत्यभूमिः । तेषु लीलापदैः प्लवमानं तरन्तमिव । आसनस्थैर्येणानुद्धातसुखत्वात् । मायूरातपत्रसमूहानां मेघमण्डलानि, सौवर्णकलशानां विद्युत्तय उपमानम् ॥ कठिनेति ॥ राजपुत्रा हि प्रकोष्ठे मणिकूर्परान्तरे दार्ढ्याय लोहवलयानि धारयन्ति । जूटकः केशबन्धविशेषः । अलकाः कुटिलाः करालाः सटालत्वाद्रौद्रा मौलयः संयतकेशा येषाम् । अर्धे ऊरू प्रमाणमस्य तदर्धोरुकम् । येन वाससा कटीप्रभृति अर्धोरुपर्यन्तमाच्छाद्यते ॥

वह भी, "श्रीमान् की जैसी आज्ञा" यह कह कर आज्ञानुसार कार्य किया।

इसके बाद शीघ्र ही आंगन के थोड़ी दूर पर कर्णिकार सदृश शरीर वाले महाराज भीम दिखायी पड़े। इधर-उधर पुनः पुनः घुमाये जाते हुए चवरमण्डल की हवा से उनके कानों में लगे हुए कमल नाच उठे थे। एक चंचल अश्व पर जो अपने अत्यधिक उमंग, उछाल एवं छलांगों के कारण थिरकते हुए पैरों से आकाश में तैरता हुआ सा प्रतीत होता था, बैठते थे। स्वर्ण-

कलश के शिखरों के भाग से चमकते हुए विशुद्ध गुच्छों से युक्त असमय में ही मड़राते हुए मेघ-मण्डल की तरह मयूर-पङ्ख-निर्मित्त छातों से आकाश का एक भाग ढक गया था। चारों तरफ से उमड़ते हुए सैनिक जिनके कठोर कन्धों पर शस्त्रों के ढोने के चिह्न बन गये थे, कठोर कलाइयों में लोहे के कंकण लगे थे, विशाल जटाजूटों को ऊपर की ओर उठाकर बाँधे हुए थे, बालों के कारण उनके शिर बड़े भयङ्कर प्रतीत होते थे, आधे ऊरुभाग तक ही वस्त्र पहने हुए थे, हाथ में तीक्ष्ण भाले लिये हुए थे, खूब जल्दी-जल्दी चल रहे थे, उनका अनुगमन कर रहे थे। मन्द तथा कोमल मृदङ्गध्वनि से मिश्रित, झाल के मधुर ताल से सुशोभित वंशीवादक द्वारा बजाये जा रहे वेणु की ध्वनि में कान लगाये थे।

ततश्च चामरग्राहिणीहस्तपल्लवमवलम्बमानः सहेलमुत्थाय प्रथममुत्थितेन संभ्रमवशवल्गितवक्षःस्थलावलम्बितकुसुमदाम्ना विसर्पिकर्पूरकुङ्कुमसिलन्मृगमदामोदेन त्वरितसंपातपतत्पटवासपांसुना सामन्तचक्रेण परिकरितः कतिपयपदानि निषधेश्वरस्तदभिमुखमगात्॥

ततश्चेति॥ पटवासो वासःसुरभीकरणद्रव्यम्। परिकरितः परिवारितः॥

तदनन्तर चवरधारिणी सेविका के कर-पल्लव के सहारे उठ कर निषधपति अपने सामन्त राजाओं, जो उससे भी पहले (अपने आसनों से) उठ खड़े हुए थे, शीघ्रता से उठने के कारण जिनके वक्षःस्थल पर लटकती हुई मालायें हिल रही थीं, कपूर, और कुङ्कुम से मिश्रित कस्तूरी की गन्ध जिनके शरीर से फैल रही थी, जल्दी जल्दी चलने के कारण पावडर की धूलि झर रही थी, के साथ उनके सम्मुख कुछ कदम आगे बढ़ा।

सोऽपि सत्वरोपसृतस्य ताम्बूलप्रसेविकावाहिनः पुरुषस्य स्कन्धमवष्टभ्य दूरादेव तुरंगपृष्ठादवातरत्॥

सोऽपीति॥ चर्मनिर्मितं पर्णपूगाद्यास्पदं प्रसेविका स्थगितेति ख्यातिः॥

वह भी शीघ्रतापूर्वक दौड़ कर आये हुए ताम्बूलपात्र ले चलने वाले सेवक के कन्धे पर हाथ देकर दूर ही से (इन्हें देखकर) घोड़े की पीठ से उतर गये।

एवमन्योन्यनयनसंपातस्मिताननौ समकालमीषन्नमितमौलिमण्डलौ समसमयप्रसारितभुजौ सरभसमाश्लेषवशविशीर्यमाणहारावलीगलन्मुक्ताफलच्छलेनाङ्गेष्वमान्तमिव प्रथमप्रेमामृतनिष्यन्दिबिन्दुविसरमुद्गिरन्तावन्योन्यमाशिश्लिषतुः॥

एक दूसरे पर एक दूसरे की दृष्टि पड़ी। मुँह पर मुस्कराहट आयी। एक ही समय दोनों के शिर झुके। एक ही समय हाथों को फैलाकर शीघ्रता-पूर्वक आलिङ्गन करने के कारण भग्न हुई हारपंक्तियों के गिरते हुए मुक्ताफलों के बहाने अंगों में न अंटते हुए प्रगाढ़ स्नेह सुधा के चूते हुए बिन्दुओं को प्रवाहित करते हुए एक दूसरे का आलिङ्गन किये।

[रत्न की माला दोनों ही राजे पहने हुए थे। मिलन के समय एक दूसरे के वक्षःस्थल की रगड़ से मालाओं की लड़ियाँ भग्न हो गयीं। उनकी एक एक मुक्तायें बिखर गयीं। वे बिखरी हुई अलग-अलग मुक्तायें ऐसी लग रही थीं मानो स्नेह सुधा के प्रवाह से जब दोनों के हृदय भर गये तो मुक्तारूप से बाहर उनकी बूँदें छिटक रही थीं।]

तथाविधे च व्यतिकरे, प्रपथे प्रेक्षकाणां दक्षिणोत्तरदिक्पालयोर्धर्मराजधनदयोरिव समागमे महान्नयनोत्सवो हर्षोत्कर्षकलकलश्च ॥

उसी समय दक्षिण और उत्तर दिशा के स्वामी धर्मराज और कुबेर के मिलन की तरह (दक्षिण दिशा के सम्राट् भीम और उत्तर के चक्रवर्ती नल के मिलन से) दर्शकों के नेत्रों को बड़ा आनन्द हुआ और आनन्द के मारे कलकल ध्वनि गूँज उठी।

तदनु पुनः प्रधावितप्रतीहारोपनीतम्, अतिविचित्रत्रिभङ्गिभङ्गोत्कीर्णकर्णाटिकारूपरमणीयस्तम्भिकावष्टम्भम्, अज्जृम्भमाणमाणिक्यमकरमुखमुक्तमौक्तिकसरविराजितम्, अपूर्वकर्मनिर्मितभव्यव्यालावलीकीर्णमुखालंकृतम्, उच्चकाञ्चनसिंहासनद्वितयमुभौ भेजतुः ॥

तदन्विति ॥ सिंहासनादौ ह्युत्तम्भनस्तम्भिकासु पश्चिमभागे त्रिभङ्गिभङ्गेन स्थानकविशेष चित्रेण स्त्रीरूपमुत्कीर्यते। मौक्तिकसरो मुक्ताहारः। व्यालः सिंहादिर्हिंस्रसत्त्वम्। तदावली काष्टन्तादिनिर्मिता शोभार्थं क्रियते ॥

इसके बाद दौड़कर प्रतीहार द्वारा लाये गये दो ऊँचे स्वर्ण निर्मित सिंहासनों पर बैठ गये। उन (सिंहासनों) के उपरिभागीय स्तम्भों पर कर्णाटक-सुन्दरियों के आकर्षक एवं अत्यन्त विचित्र त्रिभङ्गी चित्र खुदे हुए थे। जंभाई लेते हुए मकर के मुख से लटकती हुई मोती की माला (के चित्र) से मण्डित थे। अग्रभाग में अपूर्व कलाकारिता के साथ बनायी गयी सुन्दर हिंसक जन्तुओं की श्रेणी से अलंकृत था।

अन्योन्यकुशलप्रश्नसुखालापव्यतिकरविरामे च विदर्भेश्वरो निषधनाथमवादीत् ॥

तदनन्तर एक दूसरे के कुशल-प्रश्नविषयक सुखमय वार्तालाप से विराम ले लेने पर विदर्भराज नल से बोले।

'अद्यास्मत्कुलसंततिः सुकृतिनी धन्याद्य दिग्दक्षिणा
पुण्यप्राप्यसमागमातिथिजना जाताः कृतार्थाः श्रियः।
श्लाघ्यं जन्म च जीवितं च निजमप्यद्यैव मन्यामहे
यत्रास्मत्सुकृतोदयेन बहुना यूयं गृहानागताः ॥ १ ॥

अद्येति ॥ पुण्यैः प्राप्यः समागमो येषां तथोक्ता अतिथिजना यासु। श्रियां ह्येतदेव फलम्। यदतिथयः सत्क्रियन्ते ॥ १ ॥

आज हमारे वंश की प्रजा पुण्य-पूर्ण हो गयी है, दक्षिण दिशा धन्य हो गयी है, पुण्य से प्राप्त होने वाले अतिथि जन का समागम प्राप्त कर राजलक्ष्मी कृतकृत्य हो गयी है, हम भी अपने जन्म और जीवन को आज ही प्रशंसनीय समझते हैं जब हमारे महान् पुण्योदय से आप लोग हमारे घर पधारे हैं ॥ १ ॥

इतः प्रभृति च—.

आ ब्रह्मावधिविस्तरत्कविगिरो गीर्वाणकर्णातिथेः
कीर्तेः पूर्णकलेन्दुसुन्दररुचो यास्याम्यहं पात्रताम्।
किं चान्यज्जनितक्लमोऽप्ययमभूदाकण्ठतृप्तस्य मे
युष्मत्सङ्गसुखामृतेन सफलः संसारचक्रभ्रमः' ॥ २ ॥

आब्रह्मेति ॥ कविवर्ण्यायाः स्वर्गतायाः इन्दुशुभ्रायाः कीर्तेः पात्रमहम् ॥ २ ॥

आज से—

ब्रह्मलोक तक फैलने वाली कविवाणी का विषय, देवताओं के कानों के अतिथि, पूर्णचन्द्र की सुन्दर कान्ति सदृश कीर्ति का पात्र बन जाऊँगा दुख देने वाला भी यह संसार चक्र का मेरा भ्रमण आप लोगों के मिलन-रूप सुखामृत से मुझे पूर्णतः तृप्त कर सफल हो गया ॥ २ ॥

[मैं आज ऐसी कीर्ति का पात्र बन गया जो ब्रह्मलोक तक फैली रहेगी। कवि लोग उसकी व्यापकता का वर्णन मर्त्यलोक तक ही न कर ब्रह्मलोक तक करेंगे। "हमारी कीर्ति ब्रह्मलोक तक फैली है' इस बात को कविलोग सादर स्वीकार करेंगे। देवताओं के कान में हमारी कीर्ति अतिथि की तरह सम्मानित होगी। वह उतनी ही शुभ्र एवं तृप्ति-कर होगी. जितनी चन्द्रिका। संसार में दुःख तो होता है किन्तु अमृत जैसा कोई रसायन मिल जाय तो दुःख नष्ट हो जाता है। आप लोगों का अतिथिरूप में मिलन एक तरह का अमृत है। इसे पाकर संसार-भ्रमणमूलक क्लेश सफल हो गया। यदि इस संसार में नहीं आया होता तो आप लोगों जैसे अतिथि कैसे उपलब्ध होते ॥२॥]

इत्यभिधाय प्रवणं प्रणयस्य, प्रगुणं गुणवान्, अनुकूलं कुलक्रमस्य, योग्यं भाग्योदयस्य, सदृशं देशकालस्य, समानं मानोत्सवसंततेः, सरूपं रूपसंपदाम्, उचितमाचारस्यातिथेरातिथेयमगर्वः कुर्वन्, दुर्वारवैरिवारणान्वारणान् , वायुवेगातुरगान् , समुल्लसितांशुमञ्जरीजालजनितेन्द्रचापचक्रभ्रममप्रमाणं माणिक्यम् , एकत्र ग्रथितताराप्रकरानुकारान्हारान्, उज्ज्वलभांसि वासांसि सलावण्याः पण्यनारीश्च स्वयमुपढौकयांचकार ॥

इत्यभिधायेति ॥ (अतिथेः) तस्य राज्ञोऽगर्वः सन्नातिथेयं कुर्वन्भीमभूपो वारणादिकमुपढौकयांचकार । वारणा निषेधका गजाश्च ॥

यह कह कर प्रेम के अनुकूल, गुणों के अनुगुण, वंशपरम्परा के योग्य, भाग्योदय के उपयुक्त, देश-काल सदृश, सम्मान तथा उत्सव-परम्परा के समान, रूपसम्पत्ति के सदृश और आचार-परम्परा के उचित गर्वरहित होकर अतिथि सत्कार कर अदम्य शत्रुओं को निवारित कर देने वाले हाथियों, वायु के वेग को भी नीचा दिखा देनेवाले घोड़ों, विच्छुरित हो रही किरणमञ्जरीसमूह से इन्द्रधनुष की भ्रान्ति उत्पन्न कर देनेवाली अतुल मणिराशि, एक जगह पिरोये गये तारकों का अनुकरण करने वाले हार, उज्ज्वल कान्ति वाले वस्त्र और सुन्दरी वारविलासिनियों को स्वयम् उपहार में दिये ।

प्रथमसमागमेऽप्यप्रमेयप्रेमारम्भरभसोल्लासितहृदयः पुनः सोत्कर्षहर्षोद्भेदगद्गदाक्षरमिदमवादीत्—

प्रथम मिलन में भी अतुल प्रेम-प्रकर्ष से प्रसन्न होकर अतिशय आनन्द भरी वाणी में बोले—

आसेतोः कपिकीर्तनाङ्कशिखरादाराच्च विन्ध्यावधे-
रा पूर्वापरसिन्धुसीमविषयस्त्वन्मुद्रया मुद्र्यताम् ।
अद्यास्मद्गृहमागतस्य भवतो जाता विधेया वयं
स्वीकारः क्रियतां किमन्यदपरं प्राणेषु चार्थेषु च ॥ ३ ॥

आसेतोरिति ॥ कपिकीर्तनाङ्कानि शिखराणि यस्येति सेतुविशेषणम् । सेतोः कपिभिः कृतत्वात् ॥ ३ ॥

कपियों की कीर्ति को प्रकट करने वाले शिखरों से युक्त (समुद्र के) सेतु से लेकर विन्ध्याचल के पास तक और पूर्व एवं पश्चिम के तट-प्रदेश तुम्हारे शासन से शासित हों । आज हमारे घर आये हुए आपके हम सभी आज्ञाकारी बन गये । अधिक क्या कहें—मेरे प्राणों और अर्थों पर भी आप अपना स्वामित्व स्वीकार करें ॥ ३ ॥

[सेतु का विशेषण कपि-कीर्तनाङ्कशिखर दिया गया है। भगवान् राम द्वारा बंधवाया गया समुद्र का सेतुबन्ध कपियों (बन्दरों) की कीर्ति का प्रतीक है। नल और नील दो बन्दर थे। उन्हें वर मिला था कि यदि वे अपने हाथ से किसी पत्थर को छू देंगे तो वह पानी पर तैरने लगेगा। इन्हीं दो बन्दरों के हाथ से स्पृष्ट पत्थरों का सेतु बना था। अतः यह कहा जा सकता है कि सेतु कपियों की कीर्ति का प्रतीक है ॥ ३ ॥]

एवमुपबृंहयति प्रेम, प्रकाशयति प्रियंवदताम्, उद्योतयत्युदारताम्, दर्शयत्यादरम्, आविर्भावयति सर्वभावम्। भीमभूभुजि नलोऽपि 'सरलस्वभावः स्वच्छार्द्रहृदयोऽयं महानुभावः' इति चिन्तयन् "अलमलमखिलात्मसर्वस्वोपनयनेन, भवद्दर्शनमेवास्माकमिह सार्णवसुवर्णपूर्णवसुमतीलाभादपि परमो लाभः। नहि प्रियतमदर्शनसुखाद्वित्तलाभसुखमतिरिच्यते। नच भवद्विभवेऽप्यस्माकं परस्वबुद्धिर्नापि भवच्छरीरेऽप्यनात्मभावः। किंचान्यदेवविधसूक्तसूनृतामृतगर्भगीर्भिरानन्दयतास्मन्मनो महानुभावेन किंन कृतमभिहितं वा प्रणयोचितम्" इति ब्रुवाणस्तं बहु मानयामास ॥

इस तरह प्रेम को बढ़ाते हुए, मधुर भाषिता को प्रकट करते हुए, उदारता प्रकाशित करते हुए, समस्त भावों को प्रकट करते हुए राजा भीम को देखकर नल भी, "ये महानुभाव बड़े सरल स्वभाव तथा स्वच्छन्द एवं सरस हृदय के हैं।" यह सोचता हुआ, "रहने दिया जाय, सर्वस्व समर्पण की आवश्यकता नहीं, आप के दर्शन ही समुद्र सहित सुवर्ण भरी पृथ्वी लाभ से भी अधिक लाभप्रद हैं। अतिशय प्रियव्यक्ति के दर्शन-सुख की अपेक्षा वित्तलाभ अधिक सुखप्रद नहीं होता। आप की सम्पत्ति में मुझे परधन की बुद्धि नहीं है। आप के शरीर में भी मेरी अनात्मभावना नहीं है। इस तरह के सुभाषितों तथा सत्य एवं माधुरी भरी वाणी से हमारे चित्त को आनन्दित करते हुए आपने प्रेम के अनुकूल क्या नहीं किया और क्या नहीं कहा ?" यह कहता हुआ उन्हें बहुत सम्मानित किया।

एवंविधे च व्यतिकरे वैतालिकः प्रस्तुतमपाठीत् ॥

ऐसे अवसर पर वैतालिक प्रासङ्गिक तथ्ययुक्त पद्य पढ़ा—

'आपूर्वापरदक्षिणोत्तरककुप्पर्यन्तवेलावना-
दाज्ञां मौलिषु मालिकामिव नृपाः कुर्वन्तु दीर्घायुषोः।
ब्रह्मस्तम्बविलम्बिकीर्तिलयोर्विस्तारिलक्ष्मीकयो-
रन्योन्यस्य दिनानि यान्तु युवयोः स्नेहेन सौख्येन च ॥४॥

आपूर्वेति ॥ ब्रह्मस्तम्बो ब्रह्माण्डम् ॥ ४ ॥

पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं की समुद्र-तट पर्यन्त भूमि के राजे आप दोनों की आज्ञा को माता की तरह शिरोधार्य करें। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में आप लोगों की कीर्ति फैले। राजलक्ष्मी व्यापकता प्राप्त करें। परस्पर प्रेम और ऐश्वर्य के साथ आप लोगों के दिन व्यतीत हों ॥ ४ ॥

एवमुपक्रमाविरुद्धविद्वदालापलीलया परस्परमाश्यानतुहिनशिलाशकलाकारकर्पूरपारीपरिकरिततताम्बूलार्पणप्रणयेन च परितुष्टपरिजनपरिहासगोष्ठ्या च किमप्यभिनवम्, किमपि पुरातनम्, किमप्युत्पाद्यम्, किमपि यथावस्थितं जल्पाकजनजल्पितं भावयन्तौ तस्थतुः स्थवीयसीं वेलाम् ॥

एवमिति ॥ आश्यानमविलीनं यत्तुहिनं हिमं तस्य शिलाशकलं तदाकारस्य कर्पूरस्य पारी शकलं तया परिकरितस्य सम्बद्धस्य ताम्बूलस्यार्पणप्रणयेन। अतिशयेन स्थूला स्थवीयसी। स्थूलदूर-' इत्यादिना सिद्धम् ॥

इस तरह प्रसङ्गानुकूल वैदुष्यपूर्ण वाग्विनोद करते हुए एक दूसरे को न गले हुए हिमशिला-खण्ड सदृश कर्पूर खण्ड मिश्रित ताम्बूल समर्पण द्वारा प्रेम प्रदर्शन किये।

सन्तुष्ट परिजनों की परिहास-गोष्ठी में कुछ नवीन, कुछ प्राचीन, कुछ कल्पित, कुछ वास्तविक, कुछ तथाकथित लोगों द्वारा कही हुई बातों की चर्चा में बहुत देर तक बैठे रहे।

अनन्तरमनुसरति मध्यभागमम्बरस्यांशुमालिनि नलः 'स्वगृहानलंकुर्वन्तु भवन्तः' इति प्रश्रयेण विदर्भेश्वरं विससर्ज ॥

इसके बाद जब भगवान् सूर्य आकाश के मध्य भाग की ओर जा रहे थे नल, "अपने आवास को श्रीमान् अलंकृत करें।" इस तरह कहता हुआ बड़ी नम्रता से विदर्भपति को विदा दिया।

गते च तस्मिन् 'अहो वात्सल्यम्, अहो परमौदार्यम्, अहो लोकवृत्तकौशलम्, अहो वाग्विभववैदग्ध्यम्, अहो प्रश्रयोऽस्य विदर्भराजस्य' इति तद्गुणप्रवणाः कथाः कुर्वन्नाप्तजनपरिजनेन सह मुहूर्तमिवासांचक्रे ॥

उनके चले जाने पर, "ओह विदर्भपति का कैसा वात्सल्य है, कैसी उदारता है, लोक-वृत्तान्त में कितनी कुशलता है, वाणी और सम्पत्ति की कितनी प्रगाढ़ता है और कैसी नम्रता है।" इस तरह अपने प्रामाणिक

परिजनों के साथ उन्हीं की गुणसम्बन्धी परिजनों की चर्चा करता हुआ कुछ समय तक बैठा रहा।

चिन्तितवांश्च—

'अनुगुणघटनेन यद्यपीयं भवति हि हस्तगतेव कार्यसिद्धिः।
भयतरलभुजंगवक्रवृत्तेस्तदपि न विश्वसिमो वयं विधातुः॥ ५॥

अन्विति॥ अनुगुणानामनुकूलानां घटनेन संयोजनेन हि स्फुटं सिद्धिर्हस्तगतैव भवति। भयेन तरलो लोलः। तरलत्वं चात्र वक्रतातिशयहेतुः॥ ५॥

अनुकूल घटनाओं के कारण यद्यपि कार्य की सफलता हस्तगत की तरह प्रतीत हो रही है, फिर भी डरे हुए सर्प की तरह टेढ़े व्यवहार वाले दैव पर हमें विश्वास नहीं होता॥ ५॥

तथाहि—

अङ्गाः कङ्ककलिङ्गवङ्गमगधाः सर्वेऽप्यमी पार्थिवा
दिक्पालाश्च मरुत्पतिप्रभृतयः कन्यार्थिनः संगता।
नो विघ्नः कथमेष्यतीह घटनां कार्यं यतस्तत्क्षणा-
न्नानाभङ्गिभिरिन्द्रजालसदृशं दैवं हि चित्रीयते॥ ६॥

अङ्ग, कङ्ग, कलिङ्ग, वङ्ग और मगध के ये राजे और इन्द्र आदि दिक्पाल उस कन्या के लिये इकट्ठे हुए हैं। ऐसी स्थिति में पता नहीं यह कार्य कैसे होगा, क्योंकि दैव विभिन्न वक्रताओं से तत्काल ही इन्द्रजाल की तरह आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाता है॥ ६॥

अथवा—

का नाम तत्र चिन्ता प्रभवति पुरुषस्य पौरुषं यत्र।
वाङ्मनसयोरविषये विधौ च चिन्तान्तरं किमिह'॥ ७॥

का नामेति॥ यत्र कार्ये पुरुषस्य पौरुषं भवति तत्र का चिन्ता, नैवेत्यर्थः। विधौ दैवे पुनर्वाङ्मनसयोरगोचरे किं चिन्तान्तरम्, तदेव प्रमाणमित्यर्थः। अन्तरशब्दो विशेषार्थः। उभयथापि चिन्ता न कार्येति भावः। वाक् च मनश्च वाङ्मनसे। 'अचतुर–'इति सूत्रेण सिद्धम्॥ ७॥

अथवा—

जहाँ पुरुष का पौरुष कार्य कर सकता है उस विषय में चिन्ता की क्या बात है और वाणी तथा मन के अविषय दैव में क्या चिन्ता करनी है?॥ ७॥

[जहाँ तक पौरुष कार्य करता है, मैं सर्वथा सफल रहूँगा। पुरुषार्थ-सम्बन्धी सफलता की ओर तो थोड़ी भी चिन्ता नहीं करनी है। भाग्य

सम्पन्न होने वाले कार्य की ओर भी चिन्ता नहीं करनी है, क्योंकि उसमें पुरुषार्थ का कोई हाथ नहीं रहता। वह अकस्मात् ही सिद्ध होता है। तात्पर्य यह कि किसी भी तरह चिन्ता की बात नहीं करनी है ॥ ७ ॥]

एवमनेकवितर्कभङ्गभाजि भूभुजि, भुजबलशालिषु विसर्जितेषु सेवकसामन्तेषु, विरलीकृते परितः परिजने, परिहासपेशलालापाप्त-जनगोष्ठीप्रक्रमेणातिक्रान्ते स्तोकसमये, भूरिभव्याभरणावरणरमणीय-रूपाः, काश्चिदार्द्रक्रमुकफलहस्ताः, काश्चित्कक्षावलम्बितताम्बूलीपत्र-पिण्डकरण्डकाः, काश्चित्पिहितपट्टांशुकपटलिकापाणयः, काश्चि-त्काश्मीरकरम्बितकस्तूरिकामोदामन्दचन्दनभाञ्जि भाजनानि भजमानाः, काश्चिद्वाननालिकेरजम्बीरबीजपूरकपूरितपात्रीपाणयः काश्चिदसंख्य-खण्डखाद्यविशेषानमूल्यमाङ्गल्यमाल्याभरणानि च सकौतुकमादाय दमयन्त्या प्रहिताः प्रथमप्रबोधितप्रतीहारसूचिताः प्रविविशुरन्युब्जाः कुब्जिका वामनिकाश्च ॥

एवमिति ॥ वानानि सार्द्राणि नालिकेरजम्बीरबीजपूराणि तैः पूरिता या पात्री सा पाणौ यासाम् । वानं शुष्कं फलम् । न्युब्जा अधोमुख्यः पश्चान्नञ्योगः । दिदृक्षा-रसेनोर्ध्ववदना इति भावः । एतच्च कुब्जिकादीनां विशेषणम् ॥

इस तरह राजा विविध तर्क-वितर्क में मग्न था। पराक्रमी सेवक सामन्त-राजे चले जा चुके थे। सब ओर से परिजन लोग कम हो चुके थे। परिहास-पूर्ण मधुर वाग्विनोद करने वाले वरिष्ठ जनों की गोष्ठी में कुछ समय बिता रहा था, जब तक पर्याप्त सुन्दर भूषण एवं वस्त्र से रमणीय कान्ति वाली, हाथों में ताजा क्रमुक फल ली हुई, कोई ताम्बूल-पत्र की पोटली से भरा हुआ डब्बा बगल में लटकायी हुई, कोई हाथ में बन्द शिल्क वस्त्र की पोटली ली हुई, कोई कश्मीर की कस्तूरी-मिश्रित पूर्ण गन्धयुक्त चन्दनों से भरी हुई पेटियाँ ली हुई, कोई ताजा नारियल तथा नारंगी की फांकियों से भरी हुई थालियों को ली हुई, कोई अनेक मधुर भोज्य पदार्थों तथा बहुमूल्य माङ्गलिक मालाओं और आभूषणों को कौतुकपूर्वक ली हुई, दमयन्ती द्वारा भेजी गयी (उत्कण्ठा के मारे) ऊपर की ओर मुंह उठायी हुई कुबड़ी और नाटी दूतियाँ सबसे पहले जगाये गये प्रहरी द्वारा (अपने आगमन की सूचना देकर) भीतर की ओर ले जायी गयीं।

प्रविश्य च सविस्मयाः स्मररूपातिशायिनं नरपतिमवलोक्य 'साधु भोः स्वामिनि, साधु। स्थानेऽभिनिविष्टासि, योग्ये जाताग्रहासि, पात्रे जातस्पृहासि, लप्स्यसे जन्मफलम्, अवाप्स्यसि स्त्रीस्वभाव-

भाग्यम्, अनुभविष्यसि यौवनसुखानि, मानयिष्यसि संसारफलमहोत्सवम्। अहो वन्दनीया सा कापि पुरुषरत्नाकरकुक्षिर्जननी, यस्यां सकलसंसारनरहारावलीमध्यमहानायकोऽयमुत्पन्नः' इत्यवधारयन्त्यो मनाङ्नामितमौलिदोलितसीमन्तमुक्ताफलाः 'स्वामिन्नयमस्मदीयः प्रणामः, अन्यापि कापि काचित्प्रणमति' इत्यभिधाय स्मयमानवदनकमलाः सलीलमवनिपालं प्रणेमुः॥

भीतर आकर काम-सौन्दर्य को भी जीत लेने वाले राजा को आश्चर्य के साथ देख कर, "वाह! स्वामिनी वाह! उचित स्थान में प्रवृत्त हो, योग्य वस्तु के लिये आग्रह की हो, पात्र में दिल लगायी हो, जन्म-फल प्राप्त करोगी, स्त्री-स्वभाव के सौभाग्य को प्राप्त करोगी, यौवन सुख का अनुभव प्राप्त करोगी, संसार के सुखमय महोत्सवों को मनाओगी, अहो, वह पुरुषरत्न की निधि-रूप उदरवाली, अलोकसामान्य माता वन्दनीय है जिसमें समस्त संसार की मानव-माला के मध्य मणि (सुमेरु) सदृश महानायक जन्म लिया है।" यह सोचती हुई, नम्र होने के कारण शिर के मध्य भाग में लगे हुए कम्पित मणियों वाली वे दूतियाँ लीलापूर्वक राजा को प्रणाम की।

अन्योन्यकृतसंबोधनाश्च सहर्षमिदमवोचन्॥

एक दूसरे को सम्बोधन करती हुईं बड़ी खुशी के साथ बोलीं—

हंहो हंसि चकोरि चन्द्रवदने चन्द्रप्रभे चन्दने
चम्पे चङ्गि लवङ्गि गौरि कलिके कक्कोलिके मालति।
एत प्राप्नुत जन्मजीवितफलं लावण्यलक्ष्मीनिधौ
सौभाग्यामृतनिर्जरे नरपतौ निर्वान्तु नेत्राणि वः॥ ८॥

हंहो इति॥ हंहो इति संबोधने। एत आगच्छत॥ ८॥

ओ हंसी, चकोरी, चन्द्रवदना, चन्द्रप्रभा, चन्दना, चम्पा, चंगी, लवङ्गी, गौरी, कलिका, कक्कोलिका, मालती, आओ, जन्म-फल प्राप्त करो, सौभाग्य रूप अमृत के लिये देवता तथा सौन्दर्य के सागर, इस नरपति में आप लोगों की आँखें शान्त हों॥ ८॥

अपि च—

कुन्दे सुन्दरि चन्द्रि नन्दनि हले दिष्ट्याद्य वर्धामहे
देव्याः सोऽयमनङ्गसुन्दरवपुः प्राणेश्वरः प्राप्तवान्।
तस्याः संप्रति यत्कृते कृशतनोः क्रीडावने शाखिनां
दीर्घश्वासमरुद्भिरग्निपरुषैर्म्लायन्ति ते पल्लवाः॥ ९॥

कुन्द इति ॥ चन्द्रेरन्तादाह्लादार्थाद्गौरादित्वान्ङीष्। वर्धामह इति हर्षाति-शयोक्तिः ॥ ९ ॥

और—

ओ कुन्दा, सुन्दरी, चन्द्री, नन्दनी, आज सौभाग्य से हमलोग बढ़ रही हैं, क्योंकि कामदेव से भी अधिक सुन्दर वह यह देवी के प्राणप्रिय प्राप्त हो गये हैं, जिनके लिये इस समय दुर्वल शरीर वाली उस (दलयन्ती) के अग्नि से भी अधिक उष्ण लम्बे श्वासों की हवा से वे पल्लव भी मलिन हो जाते हैं ॥ ९ ॥

अपि च—

यं श्रुत्वैव मनोभवालसदृशा देव्या धृतोन्मादया
नीयन्ते गृहदीर्घिकातटतरुच्छायाश्रये वासराः।
प्राप्तः शोणसरोजपत्रनयनो निःशेषसीमन्तिनी-
भ्राम्यन्नेत्रपतत्रिविश्रमतरुः सोऽयं नलो नैषधः' ॥ १० ॥

यं श्रुत्वेति ॥ नेत्राण्येव पतत्रिणः पक्षिणस्तेषां विश्रामतरुः ॥ १० ॥

और—

जिन्हें सुन कर ही उन्मादपूर्ण कामालस नेत्रों वाली देवी घर की बावली के तटवर्ती पेड़ों की छाया में दिन व्यतीत कर रही है वही यह, लाल कमल-दल सदृश नेत्र वाले, समस्त सुन्दरियों के घूमते हुए नयन-विहङ्गों के विश्राम वृक्ष, निषधपति नल हैं ॥ १० ॥

[सुन्दरियों के नेत्रों का विश्राम स्थल नल है जैसे घूमते हुए पक्षियों के विश्राम स्थल पेड़ हुआ करते हैं। महाराज नल समस्त रमणी-नेत्र-विहङ्गों के विश्राम वृक्ष हैं ॥ १०]

एवमन्योन्यमभिधाय समीपमुपसृतास्ताः क्षितिपतिस्त्वनुराग-तरङ्गतरत्तारकेण सादरं दूरोत्क्षिप्तपक्ष्मणा चक्षुषा संतोषपुञ्जमञ्जूषिका इव, आनन्दकन्दलीरिव, अमृतपङ्कपुत्रिका इव, मधुमासविकसितसह-कारमञ्जरीरिव, दमयन्तीप्रेषिताः सस्पृहमवलोकयन् 'इत एत कुशलं तत्रभवतीनाम्, उपविशत, गृह्णीत ताम्बूलम्, आवेदयत भवत्स्वामिनी-संदेशम्,' इति ससंभ्रमं संभाषयामास ॥

एवमिति ॥ एवं परस्परमभिधाय समीपं गतास्ताः प्रेमोर्मिचञ्चत्कनीनिकेन सादरं दूरोत्क्षिप्तपक्ष्मणा चक्षुषा सस्पृहमवलोकयन् क्षितिपतिः ससंभ्रमम् 'इत एत—' इत्याद्यालपत् ॥ संतोषपुञ्जमञ्जूषिका इत्यादि तासां विशेषणानि ॥

इस तरह एक दूसरे के साथ बातें कर समीप में आयी हुई, दमयन्ती द्वारा प्रेषित उन दूतियों को राजा प्रेम-तरङ्ग में तैरती हुई कनीनिका वाले

तथा ऊपर उठे हुए पलकों वाले, नेत्रों से सन्तोष-राशि की पेटी की तरह, आनन्द के अङ्कुर की तरह, अमृत से सनी हुई मिट्टी की पुत्तलिका की तरह, वसन्त की खिली हुई आम्र-मञ्जरी की तरह उत्कण्ठापूर्वक देखता हुआ, "आइये इधर, कुशल हो आप लोगों का, बैठिये, पान लीजिये, अपनी स्वामिनी का सन्देश कहिये।" इस तरह उत्सुकता के मारे घबड़ाया हुआ सा बातें किया।

ताश्च "महानयं प्रसादः" इति ब्रुवाणाः समुपविश्य 'राजाधिराज, राजीवदलदीर्घाक्षी क्षेमवार्त्तां पृच्छति 'न नाम देवस्यापघने घर्मांशु-घर्मोर्मिनिर्मितः कोऽपि खेदः समपद्यत, न वा समविषममार्गलङ्घन-श्रमेण कापि परिमाथिनी परिजनस्य ग्लानिरभूत्, बहूनि दिनानि देवेनाध्वनि विलम्बितम्। इदं च तया प्राणेश्वरस्य प्रियं प्राभृतं प्रहितम्, इदमुक्तम्, इदमेकान्तसंदिष्टम्, इदं प्रकाशप्रश्रयाप-लीलायितम्, इति राजानमञ्जसा जजल्पुः।

ताश्चेति ॥ ननामेति। देवस्य, अपघने शरीरे न नामेत्यभ्युपगमगर्भायां पृच्छायाम्। न वेति पक्षान्तरगर्भायाम् ॥

वे भी, "बड़ी कृपा है।" यह कहती हुई बैठ कर, "महाराज, कमलदल सदृश विशाल नेत्रों वाली (दमयन्ती) आप का कुशल-समाचार पूछ रही हैं। क्या भगवान् सूर्य की किरण-लहरी से कोई क्लेश तो नहीं हुआ? ऊँची नीची जमीन को लांघने के परिश्रम से परिजनों को कोई अतिशय कष्ट तो नहीं हुआ? रास्ते में आप बहुत दिन लगाये। उन्होंने आप के लिये यह प्रिय उपहार भेजा है। यह उनका गुप्त सन्देश है। यह उनकी प्रत्यक्ष, नम्रतापूर्ण आलाप लीलायें हैं।" इस तरह राजा के साथ सरलतापूर्वक बातें कीं।

सोऽपि स्मरव्यापारकोरकिताभिः शृङ्गाररसलेकपल्लविताभि-र्मुग्धस्मितांशुमञ्जरिताभिरमृतच्छटाभिरिव वाग्भिः किमपि सरलाभिः, किमपि नर्मोक्तिकुटिलाभिः, किमपि कथयन् किमपि पृच्छन्, किमपि संदिशन्, अनुजल्पमनुजल्पितम्, अनुहासमनुहसितम्, अनु-सुभाषितमनुसुभाषितम्, अनुप्रियमनुप्रीतम्, प्रसादप्रदानोद्दीपि-तोद्दामानुरागास्ताः कुर्वन्नतिचिरमिव गोष्ठीलीलयावतस्थे ॥

सोऽपीति ॥ नल एवमेवं कुर्वन् गोष्ठीविलासेनास्थात्। जल्पितमनुलक्ष्यीकृत्य जल्पितं कुर्वन्। ता उद्दीपितानुरागाः कुर्वन् इत्येवं कुर्वञ्छब्द उभयत्रापि संबध्यते। 'अनुजल्पमनुजल्पितम्' इति यदा क्वचित्पाठः, तदा अनुजल्पितमिति क्रियाविशेषणम्। अनुगतं जल्पितं यत्रेति। अनु जल्पमित्यादिषु तु अनुयोगे द्वितीया ॥

वह भी कामव्यापार से कुडमलित, शृंगार रस के सिञ्चन से पल्लवित, मनोहर मुस्कान की छटा से मञ्जरित, अमृत के छींटे सदृश वाणी से कुछ सीधे एवं कुछ नम्रतापूर्ण उक्ति-वक्रता से कुछ पूछता हुआ, कुछ सन्देश देता हुआ, बात में बात मिलता हुआ, हँसी पर हसी करता हुआ, सुभाषित पर सुभाषित कहता हुआ, प्रियों के अनुकूल प्रसन्नता व्यक्त करता हुआ, प्रसन्नता प्रदर्शन द्वारा उन सबों को पूर्णतः अनुरक्त करता हुआ देर तक गोष्ठी में मनोविनोद करता रहा।

'अहो नु खल्वस्य नरपतेः, अनश्लीलं शीलम्, अनाहार्यमौदार्यम्; अवञ्चनं वचनम्, अदैन्यं दानम्, अस्मयं स्मितम्, अविचारगोचरं गाम्भीर्यम्, इति भावयन्त्यस्ताश्च कांचिदुचितविनोदैरतिवाह्य वेलाम्, अनुभूय किमपि गोष्ठीसुखम्, आख्याय च किञ्चिदिव दमयन्तीविनोदविलासव्यतिकरम् 'आज्ञापयतु देवोऽस्मान्गमनाय, भवद्वार्तामृतपानार्थिनी देवी त्वरिताऽस्मत्प्रत्यावृत्तिमवेक्षमाणा तिष्ठति' इत्यभिधायानुमता यथागतमगच्छन् ॥

"ओह इस राजा का स्वभाव अश्लीलता शून्य है, उदारता अकृत्रिम है, वाणी में वञ्चना का नितान्त अभाव है। दान में दैन्य नहीं हैं, मुस्कुराहट में अहंकार नहीं है, गाम्भीर्य अत्यन्त स्पष्ट है।" इस तरह सोचती हुई वे भी उचित विनोद के साथ कुछ समय बिता कर, कुछ गोष्ठी सुख का अनुभव कर, कुछ दमयन्ती के विलास प्रसंग की चर्चा कर, "आज्ञा दें श्रीमान् जाने के लिये क्योंकि आप के वार्तामृत पान के लिये उत्कण्ठित देवी शीघ्र ही हम लोगों के लौटने की प्रतीक्षा कर रही हैं।" यह कह राजा की अनुमति से यथास्थान चली गयीं।

गतासु च तासु, प्रगल्भं प्रज्ञायाम्, अचरमं वाचि, कुशलं कलासु, निपुणं नीतौ, सप्रतिभं सभायाम्, आश्चर्यभूतमाहूय पर्वतकनामानं वामनकमुपायनीकृत्य कर्कशकर्कन्धूफलस्थूलोज्ज्वलमुक्तावलीमुख्यभव्यभूषणांशुकादिसंमानदरपरितोषितेन पुष्कराक्षपुरःसरं किंनरमिथुनेन सह दमयन्तीं प्रति प्रेषयामास ॥

उन सबों के चले जाने पर बोलने में प्रवीण, कलाओं में कुशल, नीति में निपुण, सभा में प्रतिभासम्पन्न, आश्चर्यजनक पर्वतक नामक बौने को बुलाकर उसे उपहार रूप में समर्पित कर, कर्कश बैर (फल) सदृश बड़े-बड़े चमकदार मोतियों के हार आदि मुख्य एवं भव्य भूषणों तथा शिल्क वस्त्रों को सम्मान पूर्वक देकर आदर से उन्हें सन्तुष्ट कर पुष्कराक्षसहित किन्नर-मिथुन के साथ दमयन्ती के पास भेज दिया।

स्वयं च शाङ्खिकमुखमरुत्पूर्यमाणशङ्खस्वनविभिन्नभांकारिमध्याह्न-भेरीरवेण निर्यद्वेलाविलासिनीचरच्चरणाभरणरणन्मणिनूपुरझंकारेण च निवेद्यमाने मध्याह्नसमये माध्याह्निककरणायोदतिष्ठत् ॥

स्वयं भी शंखवादक के मुख की हवा से भरे हुए शंख की ध्वनि के अतिरिक्त गम्भीर ध्वनि करने वाले नगाड़े की ध्वनि से और जाती हुई वाराङ्गनाओं के चरणों के अलङ्कार, नूपुरों की झंकृति से मध्याह्नकाल समझ कर तत्कालीन कृत्य करने के लिये उठा।

क्रमेण च निःसृते समस्तसेवकजने, विश्रान्ततूर्यतालगीतासु निर्यातनर्तकीविरहखेदादिव मूकीभूतासु, नृत्यशालासु निःशब्दतया सुप्तास्विवार्थाधिकारककुटीषु, शून्यतया मध्याह्नतन्द्रीमूर्च्छितेष्विव समस्तमण्डपेषु, संक्रान्तसेवाविलासिनीचरणकुङ्कुमपदपङ्क्तितया विकीर्णविकसितरक्तारविन्द इव प्रकाशमाने राजभवनाङ्गणे, घनं ध्वनन्तीषु भोजनावसरशङ्खकाहलासु, प्रधावमानेषु प्रत्यास्वादक-जनेषु. परिमृज्यमानास्वतिथिसत्त्रशालासु, सज्जीक्रियमाणेष्वग्राशन-ब्राह्मणेषु, प्रवेश्यमानासु गोग्रासयोग्यासु कपिलासु पुण्यगवीषु, प्रक्षाल्यमानेषु वायसबलिस्तम्भशिखरफलकेषु, बहिर्दीयमानेषु, दीनानाथभिक्षुकभैक्ष्यपिण्डेषु, समुपलिप्यमानासु भोजनस्थानवेदीषु संचार्यमाणेषु चकोरपञ्जरेषु, निवेद्यमाननैवेद्यासु पूज्यराज्याधिदेवतासु, वैश्वदेवाहुतिगन्धवाहिनि वहति विविधान्नपाकपरिमलमनोहरे महानसमरुति, निर्वर्तितमज्जनादिक्रियाकलापे भजति भोजनभुवं भूभुजि, बहिः सूपकारकलकलः समुल्ललास ॥

क्रमेणेति ॥ महानसं पाकस्थानम् ॥

क्रम से सभी सेवक चले गये। वाद्य, ताल और गीत बन्द हो गये। नर्तकियाँ चली गयीं। उनकी विरहव्यथा से मानो नृत्यशालायें मौन हो गयीं। निःशब्दता के कारण ऐसा प्रतीत होता था कि अर्थाधिकारियों के कुटीर सो गये थे। शून्यता के कारण ऐसा लगता था कि सभी भवन मध्याह्नकालीन निद्रा में मूर्च्छित हो रहे थे। राज-भवन के प्राङ्गण में सेवा में लगी हुई रमणिओं के चरण-कुङ्कुम के चिह्न बिखरे हुए लाल कमल की तरह चमक रहे थे। भोजन काल के शंख और काहल जोर से बज रहे थे। विभिन्न स्वादिष्ट तत्त्वों के बनाने वाले पाचक इधर उधर दौड़ रहे थे। अतिथि-भोजनालय धोये जा रहे थे। सबसे पहले भोजन करने वाले ब्राह्मण तैयार किये जा रहे थे। गोग्रास देने योग्य कपिल रंग की पवित्र गायें लायी जा रही थीं। काकबलि देने के लिये

खम्भों के ऊपर के फर्श धोये जा रहे थे। बाहर दीन, अनाथ और भिक्षुकों को भोजन-पिण्ड दिये जा रहे थे। भोजन स्थान की वेदियाँ लिपी जा रही थीं। चकोरों के पिंजड़े घुमाये जा रहे थे।

राज्य की पूज्य अधिदेवताओं को नैवेद्य समर्पित किया जा रहा था। वैश्य देव के लिये दी हुई आहुति के गन्ध को ढोने वाली विविध पक्वान्नों की गन्ध से मनोहर पाचनालय की हवा वह रही थी। स्नानादि समस्त क्रियाओं से निवृत होकर राजा भोजन-स्थल पर आया त्यों ही पाचकवृन्द की कलकल ध्वनि हुई।

'आज्यं प्राज्यमभिन्नकुन्दकलिकाकल्पश्च शाल्योदनो
धूपामोदमनोहरा शिखरिणी स्वादूनि शाकानि च।
पेयास्वाद्यकवल्यलेह्यबहुलं नानाविधं भुज्यतां
भोज्यं भीममहानृपस्य सुतया संप्रेषितं सैनिकाः॥ ११॥

आज्यमिति॥ अभिन्नकुन्दकलिकया कल्प्यते उपमीयते इति। यावत्। कले-रवन्तात् 'अचो यत्' इति सूत्रेण यत्। केचित्तु पवर्गोपधं पठन्ति॥ ११॥

सैनिकों! महाराज भीम की कन्या द्वारा भेजे गये पर्याप्त घृत, अविकसित कुन्द की कलिका-सदृश भात, धूप की गन्ध से मनोहर, मसाले युक्त दही, स्वादिष्ट तरकारियों, पीने, चखने, खाने और चाटने लायक विविध भोज्यों को आप लोग खायें॥ ११॥

अहो नु खल्वमी मत्स्यमांसैर्विरहितमुदीच्यप्रतीच्यप्राच्यजनाः प्रियसक्तवो भोक्तुमेव न जानन्ति॥

विरलः खलु दाक्षिणात्येषु मांसाशनव्यवहारः॥

तदाकर्ण्यतां भो नैषधाः॥

ओह, ये उत्तर, पश्चिम और पूर्व के लोग जिन्हें सक्तु बहुत प्रिय है, मछली और मांस से रहित भोजन ही करना नहीं जानते।

दक्षिण के लोगों में मांस खाने का व्यवहार बहुत कम है।

निषधवासियो, सुनो—

'आज्यप्राज्यपरान्नकूरकवलैर्मन्दां विधाय क्षुधां
चातुर्जातकसंस्कृतो नु शनकैरिक्षो रसः पीयताम्।
संभारस्पृहणीयतेमनरसानास्वाद्य किंचित्ततः
स्निग्धस्तब्धदधिद्रवेण सरसः शाल्योदनो भुज्यताम्॥१२॥

आज्यप्राज्यमिति॥ 'त्वगेलापत्रकं चैव त्रिगन्धं च त्रिजातकम्। तदेव मरिचै-र्युक्तं चातुर्जातकमुच्यते' तेन संस्कृतः कृतगुणान्तरश्चातुर्जातकसंस्कृतः। सरलः

सुनिष्पन्नदीर्घतण्डुलपाकजः। अतिक्लिन्नतादिदोषरहितश्च। दधिद्रवो वस्त्र-गालितं दधि ॥ १२ ॥

पर्याप्त घी में बने हुए अन्न और कूर नामक चावल के भात से भूख शान्त कर इलायची, नागकेसर और मिर्च से युक्त ईख का रस पीजिये। विविध मसालों से स्वादिष्ट तरकारियों के रस का कुछ आस्वादन कर चिकने तथा गाढ़े श्रीखण्ड से भात को सरस कर खाइये" ॥ १२ ॥

राजा तु प्रतीहार 'विनिश्चीयतां किमयं बहिः कलकलव्यतिकरः' इत्यभिधाय तत्कालयोग्यपरिजनपरिवृतो भोक्तुमुपाविशत् ॥

त्वरितं च गत्वागतश्च स प्रतीहारो विज्ञापयांबभूव ॥

'देव, दमयन्त्या प्रहिताः सूपकाराः सैन्यजनम्, आब्राह्मणान्त्यज-गोपालकम्, आकरितुरगवाहनम्, आसामन्तनियुक्तकम्' आस्वाद्यै-स्तैस्तैरन्नविशेषैर्भोजयन्ति ॥

राजा तो, "प्रतीहार, देखो यह बाहर क्या कोलाहल हुआ है?" यह कह कर स्वयं भोजन करने बैठ गया।

प्रतीहार शीघ्र ही गया और लौट कर बताया।

"राजन्, दमयन्ती द्वारा भेजे गये पाचक सैनिकों, ब्राह्मणों, अन्त्यजों, गोपालकों, हाथी, घोड़े आदि वाहनों, सामन्तों तथा कर्मचारियों को उन उन सुन्दर भोज्य पदार्थों से तृप्त कर रहे हैं।

लग्नः सर्वतो दृश्यन्ते पर्वताः पक्वान्नस्य, राशयः शाल्योदनस्य, स्तूपा सूपस्य, निर्झराः सर्पिषः, सिन्धवो मधुनः, निकाराः शर्करायाः, स्रोतांसि दधिदुग्धयोः, शैलाः शाकानाम्, निपानानि पानकानाम्, कुल्याः फलरसानाम्, कूटाः कषायाम्ललवणतिक्तमधुरोपदंशानाम् ॥ एवमकार्पण्यमिच्छया भोजितं सैन्यम् ॥

ये पक्वान्न के पहाड़ चारों ओर दीख रहे हैं। ये भात की राशियाँ हैं। ये दाल के ढेर हैं। ये घी के झरने है। ये मधु के सागर हैं। ये चीनी की राशियाँ हैं। ये दूध और दही की धारायें हैं। ये तरकारियों के ढेर हैं। ये पेय पदार्थों के स्थान हैं। ये फल-रसों के प्रवाह हैं। ये कसैले, खट्टे, नमकीन, तीते तथा मधुर अँचारों की राशियाँ हैं। बड़ी उदारता के साथ सैनिकों को इच्छानुसार खिला दिया गया।

अपिच—

मुक्तान्ते घृतदिग्धहस्ततलयोरुद्वर्तनं चन्दनं
पश्चान्नागरखण्डपाण्डुरदलैस्ताम्बूलदानक्रमः।

एकैकस्य मृणालतन्तुमृदुनी दत्ते ततो वाससी
देव्या किंचिदचिन्त्यमेव भवतः सैन्यातिथेयं कृतम् ॥ १३ ॥

भुक्तान्त इति ॥ वनवासदेशोद्भवानि नागवल्लीदलानि नागरैर्विदग्धैश्चर्व्यन्ते खण्डयन्ते इति नागरखण्डसंज्ञानि ॥ १६ ॥

भोजन के बाद घी से चिकने हाथों पर चन्दन का उबटन देकर नागर-खण्ड से बने हुए पान दिये गये। प्रत्येक को कमल-तन्तु की तरह एक जोड़े कोमल वस्त्र दिये गये। इस तरह देवी ने सैनिकों का अद्भुत सत्कार किया। ॥ १३ ॥

इयं च रसवती देवस्य तथा स्वहस्तपल्लवपरिमलनसंस्कृतैः पाक-विशेषैरलङ्कृत्य स्वमुद्रया मुद्रिता प्रहिता' इत्यभिधाय व्यरंसीत् ॥

इयं चेति ॥ स्वहस्ताभ्यां परिमलनं यथोचितगन्धद्रव्यक्षेपेण सुरभीकरणम् ॥

उसने अपने ही कर पल्लव से विभिन्न सुगन्धित पदार्थों द्वारा संस्कृत (सुगन्धित) विविध भोज्यों को सजाकर उसपर अपनी मुहर लगाकर यह रसोई आप के लिये प्रेषित किया है।" यह कह कर चुप हो गया।

राजा तु मनाक्तरलितशिराः सस्मितम्—'अहो निरतिशयमुदार-गम्भीरमुचितव्यवहारहारि लीलायितं तस्याः, स्पृहणीयपरिमलश्चायम-पूर्व इव कोऽपि पाकक्रमः ॥

राजा तो कुछ शिर हिलाता हुआ मुस्कराहट के साथ "ओह, उसकी चेष्टायें अत्यधिक उदारता के कारण गम्भीर तथा उचित व्यवहार के कारण मनोहर हैं। हृदयहारी परिमलों से युक्त यह भोज्य सामग्री भी अपूर्व ही है।

तथाहि—

इदमम्लमप्यनम्लास्वादम्, इदमीषत्कषायमपि मधुरतां नीतम्, इदमेकरसमप्यनेकरसीकृतम्, इदमतिमृष्टतयाऽमृतमप्यतिशेते, रसव-त्यामपि रसवती विदर्भराजात्मजा' इति विभावयंस्तांस्तया प्रहितान् पाकविशेषानादरेणास्वादयामास ॥

इदमिति ॥ रसवत्यामपि रसवती रसिका रागिणीति यावत्। तात्पर्यवतीति च ॥

क्योंकि—

यह खट्टा होता हुआ भी चखने में खट्टा नहीं लगता, यह थोड़ा कषाय होता हुआ भी मीठापन लिया हुआ है। यह एक रस होता हुआ भी अनेक रसों से पूर्ण कर दिया गया है। अत्यन्त मधुरता के कारण यह अमृत से भी आगे बढ़ता जा रहा है। वह विदर्भपति की कन्या रसोई में भी बहुत

प्रवीणा है।' इस तरह विचार करता हुआ उसके द्वारा भेजे हुए विभिन्न भोज्य तत्त्वों को बड़े आदर से चखा।

चिन्तितवांश्च—

षड्रसाः किल वैद्येषु भरतेऽष्टौ नवापि वा।
तया तु पद्मपत्राक्ष्या सर्वमेकरसीकृतम्॥ १४॥

षडिति॥ एकरसीकृतमुत्कृष्टास्वादीकृतम्। चमत्कृतत्वात्। आत्मविषये एकानुरागीकृतं वा। यदनेकरसं तत्कथमेकरसीभवेदिति विरोधं पुनरर्थस्तु शब्द-उद्भावयति॥ १४॥

और सोचा भी—

आयुर्वेद में छः रस तथा भरत के नाट्यशास्त्र में आठ रस सुने जाते हैं किन्तु उस पद्मनेत्रा ने तो सब रसों को एक रस कर दिया है।॥ १४॥

तथाहि—

अग्रस्थामिव चेतसः पुर इव व्यालम्बमानां दृशो-
र्जल्पन्तीमिव रुन्धतीमिव मनाङ् मुग्धं हसन्तीमिव।
निद्रामुद्रितलोचना अपि वयं तां विश्वरूपायितां
पश्यामो बहिरन्तरे निशि दिवा मार्गेषु गेहेषु च॥ १५॥

तथाहीति॥ अनेनात्मानुभवसंभावनाद्वारेणैकरसत्वमेव व्यनक्ति॥ अग्रस्थामिति॥ विश्वं रूपमस्येति विश्वरूपो हरिः॥ १५॥

क्योंकि—

चित्त के आगे स्थित, आँखों के सामने वर्तमान, कुछ कहती हुई, रोकती हुई, मधुरतापूर्वक थोड़ा हँसती हुई, संसार के रूपों में व्याप्त उसे हम निद्रा के कारण आँखों के बन्द हो जाने पर भी घर में. मार्ग में, दिन में, रात में, बाहर और भीतर सब जगह देखते हैं"॥ १५॥

एवमवधारयन् अतृप्त इव तया प्रहितेषु स्वहस्तपक्वपाकरस-विशेषेषु, असन्तुष्टस्तत्कथायाम्, आचम्य, चन्दनागुरुपरिमलेन पाण्डुरितपाणिपल्लवः, लवङ्गकक्कोलकरम्बितताम्बूलमुत्सर्पिकर्पूरपरिमल-मादाय, विकीर्णविविधकुसुमप्रकरहारिणी यक्षकर्दमाच्छच्छटोच्छोटितपर्यन्तभित्तिभागे लम्बितप्रलम्बजाम्बूनदपद्मदाम्नि धूपधूमामोदिनि चूर्णितकर्पूररङ्गरेखाभाजि भोजनान्तरमपरेऽपराह्नविनोद-मण्डपे मनाग्विश्रम्य रणरणकाक्रान्तहृदयो दूरदिगन्तालोकनकुतूहलितः सरित्तीरोत्तम्भिताभ्रंलिहसौधस्कन्धभूमिमारुह्य च तस्या-

मूर्ध्वं एव भ्रियमाणमायूरातपत्रयुगलः, सलीलालसपदैरितस्ततः परिक्रामन्, नेदीयसि सरित्संगमाम्भसि मध्याह्नमखिलमवगाहन-सुखमनुभूय तीरमुत्तीर्णासु तिमिरशङ्कया कृतदूरचङ्क्रमणैश्चक्रवाक-चक्रवालैराकुलमवलोक्यमानासु, पुलिनपांसुविहरणविरामे विकसित-विविधवीरुन्धि रोधांसि दन्तीषु दन्तिपंक्तिषु दत्तदृष्टिः, विरलनलिनी-पत्रान्तरालसुप्तोत्थितस्य, किंचिदवाञ्चितचटुलचञ्चोः, चरतः चटुल-चञ्चरीकिणि विकचकमलवने, राजहंसकुलकलापस्य करिकलभदन्त-दण्डपाण्डुविसकांडभङ्गटंकारानाकर्णयन्, अपराह्नमज्जनागताभिः कुंडिनपुरपुरन्ध्रिभिराश्चर्यरसोन्मिमुषितनिमेषैर्निष्कम्पनीलोत्पलपलाश-लीलायमानैर्नेत्रपुटैरापीयमानमुखेन्दुद्युतिः, दर्शिततरङ्गभ्रूभङ्गया, दूरोच्छलद्वालशफरीच्छलेन विस्फारितविलोचनया, सरित्संगमसलि-लाधिदेवतयापि विलोक्यमानरूपसंपत्तिरिव, क्षणमविरलचलच्चञ्चरी-कचक्रचुम्बिताम्बुरुहासु क्रीडाकमलसरसीषु, क्षणमुपान्तपङ्क्तीभूत-मञ्जरितसहकारराजिषु स्मरवाजिवाह्यालीषु, क्षणमुत्पतत्पताकापट-पल्लवराजितासु भीमभूपालान्तःपुरप्रासादपङ्क्तिषु, क्षणमवकीर्णकुसुम-रङ्गावलीरम्यासु नगरवीथीषु विश्रान्तविलोचनश्चिरमवतस्थे ॥

एवमिति ॥ उत्तम्भितस्य तत्कालरोपितस्य जङ्गमस्य चित्रकूटाख्यस्याभ्रंलिह-सौधस्य स्कन्धभूमिमारुह्य तस्याभितस्ततः परिक्रामन्, निकटतरे नदीसंभे-दोदके कृतजलक्रीडासु, तमोभ्रान्त्या चक्रैराकुलमालोक्यमानासु, कृतधूलीस्नानासु, तटीः पाटयन्तीषु न्यस्तदृष्टिः, वने चरतो हंसवृन्दस्य विसभङ्गरवाञ्शृण्वन्, कुण्डिनस्त्रीभिर्दृश्यमानमुखेन्दुश्रीः, उच्छलच्छफरीच्छलविलोकितया जलदेवतया वीक्ष्यमाणरूपसम्पदिव क्षणमेकं सरसीषु क्षणं चूतालीषु क्षणं गृहालीषु क्षणमव-रोधभवनपङ्क्तिषु क्षणं पुरपद्धतिषु विश्रान्तनेत्रो नलश्चिरमस्थात्। सादरेक्षणं नेत्र-पानम्। तच्च पत्रपुटैर्युक्तमिति नेत्रपुटैरापीयमानेत्युक्तम्। कण्टकादिदोषरहितासु तरुराजिराजितासु च भूमिषु वाहवाहना। तथा च—'रम्या समतला लोष्टकील-कण्टकवर्जिता। वाह्यालीभूमिरभ्यर्णतरुराजिविराजिता' इति। एतदेव पङ्क्ती-भूतेत्यादिनोक्तम्। हिङ्गुलहरितालादिविचित्रवर्णकचित्रहेतुत्वात्कुसुमान्येव रङ्गा-वली विचित्रवर्णकुसुमभक्तिः ॥

इस तरह सोचता हुआ उसके द्वारा भेजे गये और उसी के द्वारा पकाये गये भोज्य रसों से अतृप्त सा ही रह गया। उसकी चर्चा से पेट नहीं भर सका। आचमन किया। चन्दन, अगुरु आदि गन्ध द्रव्यों से पल्लव सदृश हाथों को स्वच्छ कर लवङ्ग और शीतलचीनी मिश्रित पान तथा सुगन्धित कपूर का चूर्ण ग्रहण किया।

इसके बाद अपराह्न के समय एक दूसरे विनोद-मण्डप में जिसकी भित्ति टंगे हुए विविध पुष्पों से मनोहर थी, सुगन्धित पदार्थों के मिश्रण से बनी हुई धारा से धुली हुई थी, स्वर्ण-कमल की मालायें लटकी हुई थीं, धूप के धूम की सुगन्धि गमक रही थी, चूर्ण किये हुए कपूर से सफेद चिह्न बने हुए थे, थोड़ा विश्राम किया।

उस समय उसका हृदय उत्कण्ठा से भर गया था। सुदूर दिशाओं की ओर देखने के लिये मन कुतूहलित हो गया था। अतः नदी तट पर बने हुए गगनचुम्बी प्रसाद पर चढ़ा। वहाँ मयूर-पंख के दो छाते लगे हुए थे। लीलापूर्वक धीरे-धीरे इधर-उधर घूम रहा था। समीप में ही नदी संगम के जल में दोपहर के समय समस्त स्नान-सुखों का अनुभव कर तीर पर निकले हुए हाथियों के यूथों को देखा। उन (काले हाथियों) को अन्धकार समझकर दूर से ही चक्कर लगाते हुए चक्रवाक व्याकुलतापूर्वक देख रहे थे। तट की धूलि में बिहार करने के बाद खिले हुए विविध पौधों से युक्त तटस्थली का मर्दन कर रहे थे। कहीं-कहीं पर पाये जाने वाले कमल-पत्रों के एकदेश पर सोकर उठे हुए, अपने चञ्चल चोचों को थोड़ा नीचे किये हुए, चपल भ्रमरों से मण्डित कमलवन में चरते हुए राजहंसों द्वारा तोड़े जाते हुए हाथी के बच्चों के दांतों की तरह शुभ्र कान्तिवाले कमल-दण्डों की ध्वनियाँ सुना। अपराह्न समय में स्नान के लिये आयी हुई कुण्डिनपुर की वधुएँ आश्चर्य रस की लहरियों में डूबते हुए पलकशून्य, कम्पनहीन, नील कमलपत्र के विलास को प्रस्तुत करने वाले नेत्रों से उनके मुखचन्द्र की कान्ति को पी रही थीं। तरङ्ग रूप भ्रूभङ्गिमा दिखा कर, दूर से उछलती हुई छोटी मछलियों के बहाने आँखों को खोलकर मानो नदी संगम की जलदेवता उनकी रूप-सम्पत्ति को देख रही थी। कुछ समय तक क्रीडा कमल बावलियों को जिनके कमलों को भनभनाते हुए भ्रमरों के जत्थे चूम रहे थे, कुछ क्षणों तक कामदेव के अश्वों के विहार के उपयुक्त समीपवर्ती भूमि को जिसमें मञ्जरियों से पूर्ण आम के पेड़ों की श्रेणियाँ विराजित थीं, कुछ काल तक खिलते हुए फूलों के कारण मनोहर, वृक्षों और लताओं के कारण रमणीय गृह-वाटिकाओं के समूह को, कुछ क्षणों तक फड़फड़ाती हुई पताकाओं के वस्त्र-पल्लवों से सुशोभित महाराज भीम के अन्तःपुर के अट्टालिका-समूह को, कुछ क्षण तक बिखरे हुए फूलों के रङ्गों से मनोहर, नगर की गलियों को देखता हुआ बहुत समय तक वहीं खड़ा रहा।

चिन्तितवांश्च—

'नोद्याने न तरङ्गिणीपरिसरे नो रम्यहर्म्ये न वा
पुष्यत्पुष्करगर्भगुञ्जदलिषु क्रीडातडागेष्वपि ।
वात्याघूर्णितशीर्णपर्णतरला दृष्टिर्मदीयाधुना
लुभ्यल्लुब्धकभीपितेव हरिणी श्रान्तापि विश्राम्यति ॥१३॥

नोद्यानेति ॥ विश्राम्यतीति प्रत्येकं योज्यम् ॥ १६ ॥

सोचा भी—

आंधी के चक्रोह में पड़े हुए पत्ते की तरह मेरी दृष्टि थकने पर भी लालची व्याधे से डरी हुई हरिणी की तरह न बगीचे में, न नदी-तट पर, न रमणीय कोठे पर, न उन विनोद की बावलियों में जहाँ के खिलते हुए कमलों के कोश में भ्रमर भनभना रहे हैं, विश्राम ले रही है ॥ १६ ॥

[गिरा हुआ पत्ता जैसे चक्करदार हवा में स्थिर नहीं रह पाता वैसे ही उसकी दृष्टि स्थिर नहीं रह पाती थी। थकी हुई हरिणी विश्राम करना चाहती है किन्तु जब लालची व्याधा पीछा करता है तो विचारी कहीं विश्राम नहीं कर पाती। राजा की दृष्टि के लिये भी कहीं विश्राम का अवसर नहीं था। उद्यान आदि पदार्थ मनोरम होते हैं किन्तु विरह के समय में विनोद के पदार्थ उद्दीपक बन जाते हैं ॥ १६ ॥]

अपि च—

न गम्यो मन्त्राणां न च भवति भैषज्यविषयो
न चापि प्रध्वंसं व्रजति विहितैः शान्तिकशतैः ।
भ्रमावेशादङ्गे कमपि विदधद्भङ्गमसमं
स्मरापस्मारोऽयं भ्रमयति दृशं घूर्णयति च ॥ १७ ॥

न गम्य इति ॥ भ्रमः सन्देहः । स चात्र दमयन्तीलोभविषयः ॥ १७ ॥

यह स्मरापस्मार (कामरूप मिर्गी नामक रोग) न मन्त्रों से जाने लायक है, न दवा का विषय है, न सैकड़ों शान्ति-पाठों से हट सकता है। चक्कर में डाल कर अङ्गों में असह्य पीड़ा भर रहा है। आँखों में चक्कर ला देता है और मूर्च्छित कर दे रहा है ॥ १७ ॥

किंचान्यदद्भुतम्—

पौष्पाः पञ्चशराः शरासनमपि ज्याशून्यमिक्षोर्लता
जेतव्यं जगतां त्रयं प्रतिदिनं जेताप्यनङ्गः किल ।
इत्याश्चर्यपरम्परापरघटनया चेतश्चमत्कारयन्
व्यापारः सुतरां विचारपदवीवन्ध्यो विधेर्वन्द्यताम् ॥१८॥

पौष्पा इति॥ अत्र प्रथमोऽपिशब्दः शरासनस्य ज्याशून्यस्य शरापेक्षया द्वितीयश्च जेतुरनङ्गस्य प्रतिदिनजेतव्यजगत्त्रयापेक्षया वैषम्यव्यञ्जकः ॥ १८ ॥

और भी आश्चर्य की बात यह है कि—फूल के बने हुए उसके पाँच ही बाण हैं, धनुष भी प्रत्यञ्चा से शून्य है और ईख से बना है, जीतना संपूर्ण संसार है, जीतने वाला अनङ्ग (अंगहीन) है। इन आश्चर्यपूर्ण पदार्थों की संघटना कर चित्त को चमत्कृत करता हुआ ब्रह्मा का व्यापार अचानक विचार-मार्ग में उतर नहीं रहा है अतः उसे नमस्कार है ॥ १८ ॥

एवमनेकविधवितर्कतरलितहृदये कुण्डिनगरवीथीविश्रान्तदृशि शनैरुद्वेल्लितमल्लिकाक्षपल्लवस्य मृदुतरतरङ्गितसरितः कमलवनवायोः समर्पितवपुषि निषधभूभुजि, भुजगनिर्मोकधवले वसानो वाससी, रणन्मणिकङ्कणैराकूर्परं पूरितप्रकोष्ठः श्रीखण्डपिण्डपाण्डुरिततनुरपूर्व इव पर्वतकः प्रतीहारसूचितः प्रविवेश ॥

एवमिति ॥ मल्लिकाक्षो हंसविशेषः। चिरदृष्टस्यापि पर्वतकनाम्नो वामनस्यापूर्वत्वमिह पूर्वमभूषितस्य सम्प्रति पारितोषिकभूषणभूषितत्वाद्दयितोदन्तप्रश्नातात्पर्याद्वा ॥

इस तरह विविध प्रकार के तर्क व वितर्क से हृदय तरंगित हो रहा था। कुण्डिनपुर की गलियों में आँखें विश्राम कर रही थीं। कमलवन की हवा मल्लिकाक्ष जाति के हंसों के पंखों को धीरे-धीरे कम्पित कर रही थी और नदी को अतिशय कोमलतापूर्वक तरंगित कर रही थी। निषधपति भी इसी में शरीर समर्पित किये हुए थे, तब तक प्रतीहार द्वारा प्रवेश की अनुमति पाकर पर्वतक राजा के पास आया। वह साँप के केंचुल सदृश वस्त्र धारण किया था, बजते हुए मणि-कङ्कण से केहुँनी से लेकर कलाई तक का भाग भरा हुआ था। चन्दनपिण्ड के लेप से शरीर शुभ्र हो गया था। अतः उसकी अपूर्व शोभा बन गई थी।

प्रविश्य च प्रकटितप्रणयप्रणामः प्रभुणा सविस्मयस्मितहुंकारेणाभिभाषितः स्तोकान्नमितभ्रूसंज्ञया विज्ञापयितुमारेभे ॥

भीतर आकर नम्रतापूर्वक प्रणाम किया। विस्मय से मुस्कराते हुए "हुँ" ऐसी ध्वनि करते हुए महाराज द्वारा कुछ कहे जाने पर थोड़ा उठे हुए भौंहों के संकेत से बोलना शुरू किया—

'देव श्रूयताम्। इतो गतवानहम्। अनन्तरमतिशायितस्वर्गान्मार्गाननेकविधचर्चाचारूणि चत्वराणि विलङ्घ्य, विहितमनः प्रसादान्

प्रासादानवलोकयन्, इतस्ततः सस्मितस्मरालसचलद्वेलाविलासिनी-विकारकूणितकोणेक्षणाक्षिप्तहृदयः,सेवाविरामनिःसरत्सामन्तसंकुलम्, अविरलगलन्मधुमञ्जरीपुञ्जपिञ्जरितसरससहकारवननिकुञ्जपुञ्जित-पुंस्कोकिलकुलकलरवरमणीयोद्यानमालावलयितम्, उपान्तकृतमणि-मन्दुरामन्दिरनिबद्धस्निग्धपोषणोत्कर्षहर्षहेषितराजवल्लभतुरंगम्,उत्तुङ्ग-शृङ्गसंगतमङ्गलध्वजम्, अङ्गणोत्सङ्गरङ्गत्क्रीडाकुरङ्गविहंगम्, अभङ्गाङ्ग-रक्षिरक्षितकक्षान्तररममाणराजकुमारकम्, अतिसूक्ष्ममुक्ताफलरचित-तरङ्गरम्यरङ्गरेखाराजिराजिताजिरं राजभवनमविशम्॥

देव श्रूयतामिति मार्गाश्चत्वराणि च विलङ्घ्य, प्रासादान्पश्यन्, ईदृग्राजभवनमविशमिति संबन्धः। चर्चा गन्धोदकसेचनपुष्पप्रकारादिवार्तावशात्प्रस्तावान्नल-प्रवेशादिलक्षणा चामुण्डापि। मणिमन्दुरेत्यत्र षष्ठीसमासः॥

"महाराज, सुनिये—यहाँ से चलने के बाद स्वर्ग से भी अधिक मनोहर मार्गों तथा वाग्विनोदों के कारण मनोहर चौराहों को पार कर मन को प्रसन्न कर देने वाले राजप्रासादों कों देखा। मुस्कुराती हुई वारांगनाओं के वासना-द्योतक टेढ़े कटाक्षों से मेरा हृदय आकृष्ट हो गया। उस राजभवन में मैंने प्रवेश किया, जहाँ सेवा-कार्य की समाप्ति के अवसर पर सामन्त लोग बाहर निकल रहे थे। निरन्तर मधु बरसती हुई मञ्जरियों के कारण पीत रंग वाले सरस आमों के कुञ्जों में बैठ कर गाती हुई कोयलों की मधुर कूक के कारण मनोहर उद्यानों की श्रेणियों से घिरा हुआ था। समीप में ही मणिनिर्मित वाजिशाला में बँधे हुए मनोहर, लालन-पालन की उत्कृष्टता के कारण प्रसन्न, राजप्रिय घोड़े हिनहिना रहे थे। ऊँचे शिखरों पर मंगलध्वज लगे हुए थे। आँगन में विनोद-मृग टहल रहे थे। दूसरे कक्ष में विहार करता हुआ राजकुमार अंगरक्षकों द्वारा सुरक्षित था। छोटे-छोटे मुक्ताफलों से बनी हुई तरंगाकृतियों के कारण रमणीय रंगरेखाओं (अल्पनाओं) की पंक्ति से आँगन सुशोभित हो रहा था।

अतिमनोहारिणि यत्र सुपुष्करमालानि क्रीडावापीपयांसि नाग-यूथं च, सारवाणि लीलोद्यानसारसमिथुनानि सेवककविवृन्दं च, विलम्बितानि काञ्चनकुङ्कुमदामानि गीतं च, अनलसज्ञानि लक्षप्रदीप-वर्तिसुखानि प्रेक्षणकं च॥

अतीति॥ यत्र राजभवने। सुपद्मश्रेणीनि पयांसि। यूथं च सुष्ठु पुष्करं शुण्डाग्रं यस्य तथोक्तम्। आलानमर्गलनस्तम्भोऽस्यास्तीति। तथा सह आरवैः सारावाणि। वृन्दं च सारोत्कृष्टा वाणी यस्य तथाविधम्। विशेषेण लम्बायमानीकृतानि।

गीतं च स्वरकृतविलम्बोपेतं तानोपेतं च। अनलेन ज्वालालक्षणेन सङ्गो येषाम्। प्रेक्षणकं च नालसमनलसमोजस्वि। उच्चैः स्थाने गीयमानत्वात्। तथा गानमस्यास्तीति इति। लक्षसंख्यद्रव्यपतीनां हि वेश्मसु यावल्लक्षं दीपा ज्वाल्यन्ते इति ख्यातिः॥

उस अत्यन्त मनोहर (राजभवन) में विनोदवावलियों का जल सुन्दर कमलों की पंक्ति से युक्त है और हाथियों का समूह सुन्दर पुष्कर (शुण्ड) और आलान (बन्धन) से युक्त है। विनोद-वाटिका के सारसों के जोड़े सारव (आरव (ध्वनि) से युक्त) हैं। सेवक कवियों का समूह सारवाणि (तथ्यपूर्ण बात कहने वाला) है। सुवर्ण और कुङ्कुम की मालायें विलम्बित (विशेष ढंग से लटकाई गई) हैं और गीत विलम्बि (मन्थर स्वर वाला) है तथा तानि (तान से युक्त) है। लाखों विपत्तियों का प्रकाश ज्वालामय है और नाटक ओजस्वी तथा गान युक्त है।

[यह सम्पूर्ण अनुच्छेद श्लिष्ट है। वापीपय-पक्ष में—सुपुष्करमाल शब्द का बहुवचन सुपुष्करमालानि है। नागयूथ-पक्ष में—सुपुष्करम् और आलानि पृथक् पद हैं। अर्थात् नागयूथ (हाथियों का झुण्ड) सुन्दर शुण्डवाला है और आलान (बन्धन) से युक्त है। सारसमिथुन-पक्ष में—तारावाणि—सारव शब्द के प्रथमा का बहुवचन है। अर्थात् सारसों के जोड़े सारव (कलरव) से युक्त हैं। आरव (आवाज) से युक्त जो होगा उसे सारव कहा जायगा। सेवक कवि वृन्द- पक्ष में—सारवाणि-नपुंसक लिंग प्रथमा का एकवचन है। अर्थात् आश्रित कवियों की वाणी तथ्य से भरी है। काञ्चनकुङ्कुमदामानि का पिलम्बितानि विशेषण है। राजभवन को सजाने के लिए मालायें बड़ी सुन्दरता से लटकायी हुई हैं। गीत पक्ष में—विलम्बि और तानि अलग-अलग पद हैं। दोनों ही गीत पद के विशेपण हैं। नपुंसक लिंग में प्रथमा के एकवचन हैं। अर्थात् वहाँ गाये जाने वाले गीत दीर्घ आलाप के कारण मन्थर-गति-सम्पन्न हैं और तान स्वर से संयुक्त हैं। प्रदीपों का प्रकाश अनलसंग (ज्वालापूर्ण) है। वर्तिसुखानि का अनलसंगानि विशेषण है। ऐसा कहा जाता है कि लखपति आदमी के घर एक लाख बत्तियां जलायी जाती हैं। उन लाख वत्तियों का प्रकाश अनल को साथ लिया हुआ है। अर्थात् अनल से संयुक्त है। प्रेक्षणक-पक्ष में—अनलसम् और गानि पृथक्-पृथक् पद हैं। प्रेक्षणक (दृश्य) अनलस (ओजस्वी) हैं और गानि (गान से युक्त) हैं। जो दृश्य दिखाये जाते हैं उनका बड़ा ओजस्वी प्रभाव लोगों पर पड़ता है। बीच-बीच में संगीत की योजना से उसे अधिक-रोचक बना दिया जाता है।]

किं बहुना—

सुस्थिततेजोराशेर्लक्ष्मीजनकस्य रत्ननिलयस्य।
तस्योपरि प्लवन्ते वार्धेरिव वर्णकाः सर्वे॥ १९॥

सुस्थितेति॥ तेजोराशिर्वडवानलः प्रतापचयश्च। लक्ष्मीर्विष्णुपत्नी शोभा च। तथाभूतस्य तस्य सागरोपमस्योपरि वर्णकाः स्तोतारः प्लवन्ते तरन्ति।' अपरिच्छिन्नगुणत्वादलब्धमध्यमध्या बाह्यमेव वर्णयन्तीति भावः। वारो जलानि धीयन्तेऽस्मिन्निति वार्धिः॥ १९॥

अधिक क्या कहूँ—

वर्णन करने वाले लोग उस तेजस्वी, शोभावर्द्धक, तथा रत्न-सम्पन्न राजा का वर्णन सागर की तरह ऊपर ही ऊपर करते हैं॥ १९॥

[प्रथम एवं द्वितीय चरण की पदावली श्लिष्ट है। सागरपक्ष—तेजोराशि (वडवानल) से युक्त, लक्ष्मीजनक (लक्ष्मी का पिता), रत्ननिलय (रत्नों का भवन) वार्धि (सागर) समुद्र को तेजोराशि कहा गया है क्योंकि उसके भीतर ऐसी आग जलती रहती है जो निरन्तर अगणित धाराओं से मिलती नदियों के अपार जल को जला डालती है। राजा भी तेजोराशि, लक्ष्मीजनक तथा रत्ननिलय है। अर्थात् अत्यन्त तेजस्वी है। शोभा संवर्धक या राज्य की आर्थिक उन्नति कराने वाला है। रत्ननिलय है। अर्थात् रत्नों का खजाना है। वर्णन करने वाले लोग उसके गुणों के ऊपर ही ऊपर के अंशों का वर्णन करते हैं। उसकी गहराई में पहुँचना बड़ा कठिन है। वारिधि शब्द समुद्र अर्थ में अधिक प्रसिद्ध है किन्तु वार्धि शब्द भी सागर अर्थ में प्रयुक्त होता है। वार् शब्द जल का वाचक है। वार् (जल) जिसमें रक्खा जाय उसे वार्धि कहते हैं॥ १९॥]

तत्र चलत्कञ्चुकिसंकुलं पातालमिवान्तःपुरमनन्तालयं प्रविश्य विविधकुसुमसम्पत्संपन्नपुण्यपादपपरिकरिताङ्गणवापीपरिसरचलच्चक्रवाके चन्द्रशालाशालिनि, शैलूष इवानेकभूमिकाभाजि, धनंजय इव सुभद्रान्विते, कुरुवंशाख्यान इव चारुचित्रविचित्रभित्तिभाजि, तुहिनाचलोच्चकूटायमाने सुधाधवलस्कन्धे धाम्नि ध्वजावलीविलसत्सप्तसप्तिसप्तौ सप्तमभूमिकायाम् इतो मुखवातायने निविष्टाम्, इतो गतास्ताः कुब्जवामनकन्यकास्त्वद्वार्ताव्यतिकरविनोदारम्भिणीः सम्भाषयन्तीम्, अनवरततरललोचनालोकनैर्नीलोत्पलोपहारमिव त्वदधिष्ठितायै दिशे दिशन्तीम्, उत्तरीयांशुकस्याच्छतया दृश्यमानमदनबाणव्रणकिणानुकारिकस्तूरिकापङ्कपत्रलताङ्कितकुचकलशश्रियम्, अष्टमी-

शशाङ्कशकलश्रीशोभभाजि ललाटपट्टे स्मरपरवशत्रिपुरुषैरिव 'ममेयं ममेयं ममेयम्' इति संहर्षात्कृतं स्ववर्णानुकारिस्वीकारचिह्नमिव कुङ्कुममृगमदमलयजरसरचितत्रिपुण्ड्रकरेखात्रितयमुद्वहन्तीम्, आलोहितेन च त्वद्वार्तामृतपानबालप्रवालप्रणालकेनेव कर्णप्रणयिना बालपल्लवेन विराजितवदनाम्, आसन्नमणिभित्तिदर्पणसंक्रान्तप्रतिबिम्बतया त्वत्संगमवाञ्छाकृतसंतापसंविभागार्थमिव बहून्यात्मरूपाणि सृजन्तीम्, आसन्नवर्तिनीभिर्वीणादिविनोदविदुषीभिः समानवयोवेषाभिः सखीभिः सरस्वतीमिव सकलविद्याधिदेवताभिरुपास्यमानाम्, उन्मिषत्कुसुमाभरणरमणीयाभिश्चामरग्राहिणीभिर्वनदेवताभिरिव शरीरिणीं वसन्तमासश्रियमुपसेव्यमानाम्, अनुलेपनपुष्पपाणिभिः प्रसाधिकाभिर्भवानीमिवानेकनाकनायकनारीभिराराध्यमानाम्, इतस्ततो निपतन्मण्डनमणिमयूखमञ्जरीजालच्छलेनामान्तमिव कान्तिरसविसरमुत्सृजन्तीम्, अशेषाङ्गावयवेषु प्रतिबिम्बतैरासन्नचित्रभित्तिरूपकैर्मायाविभिः सुरासुरैरिव विधीयमानाश्लेषाम्, अग्रस्थिते पद्मरागमणिदर्पणे कन्दर्पातुरे रागिणि शशिनीव करुणयार्पितच्छायाम्, अशेषजगद्विजयास्त्रशालामिव मन्मथस्य, सङ्केतवसतिमिव समस्तसौन्दर्यगुणानाम्, अधिदेवतामिव सौभाग्यस्य, विपणिमिव लावण्यस्य, शिल्पसर्वस्वपरिणामरेखामिव विधातुः, अनन्तसंसाररोहणैकरत्नकन्दलीं दमयन्तीमद्राक्षम् ॥

तत्र चेति ॥ कञ्चुकिनो महल्लका उरगाश्च। (बहुनिलयं शेषनिलयं च।) प्रविश्य ईदृग्विधे धाम्नि गृहे, सप्तमभूकिकालक्षमक्षणः, तत्र स्थिते इतोमुख एव हस्तादिसङ्केतकथिते एव, वातायने गवाक्षे, निविष्टामासीनां, दमयन्तीमद्राक्षमिति सम्बन्धः। चन्द्रशाला शिरोगृहम्। शैलूषो नटः। भूमिका गृहक्षणा वेषधारणं च। शोभनानि भद्राणि गृहावयवविशेषास्तैरन्विते। पक्षे सुभद्रार्जुनपत्नी। चारु चित्रेण विचित्रा भित्तीर्भजते। अन्यत्र चित्रविचित्रौ शान्तनुसुतौ। तौ च कुरुवंश्यानां भित्तिभूतौ। तत्कलत्राभ्यामम्बिकाम्बालाभ्यां पाण्डुधृतराष्ट्रयोरुत्पन्नत्वात्। तथा लग्नाः सप्तसप्तेरादित्यस्य सप्तयोऽश्वा यत्र तस्मिन्। अष्टमी शशाङ्कशकलेति। खण्डशशिनो हि श्रियं ललाटं श्रयति। त्रयाणां सत्त्वरजस्तमसां पुरुषास्त्रिपुरुषाः। यथा—'न बाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम्' इत्यत्र त्रयाणां धर्मादीनां गणः। यथा च चण्डसिंहकृते चण्डिकाचरिते—'प्रियत्रिवर्गश्चकमे सकामम्' इति। कर्मधारयस्तु संज्ञायामेव। मणिदर्पणलक्षणे शशिनि कारुण्यादर्पितप्रतिकृतिमित्यर्थः। अवज्ञातो हि रागी म्रियते। संसारे रोहणगिरिः, दमयन्ती च रत्नप्ररोहशलाका ॥

घूमते हुए कञ्चुकियों से व्याप्त तथा अनन्त घरों से युक्त उस भवन-में पाताल की तरह प्रवेश किया।

[पाताल लोक कञ्चुकि-संकुल (सर्पों से संकीर्ण) रहता है। राजभवन कञ्चुकि-संकुल (कञ्चुकियों से संकीर्ण) है। पाताल अनन्तालय (शेषनाग का भवन) है। राजभवन अनन्तालय (अनेक कोठरियों से मण्डित) है।]

विभिन्न पुष्प-सम्पत्ति से सम्पन्न पवित्र वृक्षों से घिरी हुई आँगन की वावली के तट पर चक्रवाक घूम रहे थे। (वह भवन) चन्द्रशाला (सर्वोच्च प्रकोष्ठ) से सुशोभित था। नट जैसे अनेक भूमिका (विभिन्न पात्रों का वेष) धारण करता है वैसे वह भवन भी अनेक भूमिका (मञ्जिलों) को धारण करता था। अर्जुन जैसे सुभद्रान्वित (सुभद्रा नाम की पत्नी से युक्त) थे वैसे वह भी सुभद्रान्वित (सुन्दर गृहभागों से युक्त) था।

कुरुवंश का आख्यान जैसे चारुचित्र + विचित्र + भित्तिभाक् (सुन्दर चित्र और विचित्र नामक मूल लोगों को धारण करने वाली) है वैसे वह सुन्दर चित्रों के कारण विचित्र भित्तियों को धारण कर रहा था। हिमालय के ऊचे शिखरों की तरह उसके विभिन्न उच्चतम भाग चूने से धवल किये गये थे। उसके सातवें प्रासाद पर जिसकी ध्वजश्रेणियां सूर्य के घोड़ों के साथ विलास कर रही थीं, खिड़की के सामने इधर ही की ओर मुँह कर वैठी हुई दमयन्ती को मैंने देखा।

[शैलूष, धनञ्जय तथा कुरुवंशाख्यान इन तीनों उपमानों के साथ भवन की केवल शाब्दी समानता है। कुरुवंश की भित्ति (मूल पुरुष) चित्र और विचित्र थे। इनकी पत्नी का नाम अम्बिका और अम्बाला था। इन्हीं से पाण्डु और धृतराष्ट्र उत्पन्न हुए थे।]

आप के कथा-प्रसङ्ग से विनोद कराती हुई यहाँ से लौटी हुई कुबड़ी और नाटी कन्याओं से बातें कर रही थी। निरन्तर अपने चंचल लोचनों से देखती हुई आप के द्वारा सनाथित दिशा को मानो नीले कमलों का उपहार दे रही थी। अंचल की अत्यन्त निर्मलता के कारण स्तन-कलश की शोभा स्पष्ट दिखायी पड़ रही थी। उस पर लगे हुए कस्तूरी के लेप से निर्मित पत्रों तथा लताओं के चिह्न काम-बाण के आघात-चिह्न की तरह लग रहे थे। उसका ललाट अष्टमी के चन्द्र-खण्ड की तरह शोभा धारण कर रहा था। उस पर कुङ्कुम, कस्तूरी तथा चन्दन के रसों से त्रिपुण्ड्र के चिह्न बने थे। ऐसा प्रतीत होता था कि कामव्यग्र सत्त्व, रज और तम, इन तीनों पुरुषों ने "यह मेरी है, यह मेरी है" इस तरह की प्रसन्नता व्यक्त करते हुए अपने स्वीकार-चिह्न के रूप में अपने अपने वर्णों को अङ्कित कर दिये थे।

कानों पर रखे गये लाल रङ्ग के नवीन पल्लवों से उसका मुखमण्डल सुशोभित था। वे वालपल्लव आप के कथामृत पान के लिये मानों कानों से

स्नेह किये हुए थे। समीप की मणिमय भित्ति रूप दर्पण में दिखाई पड़ रहे उसके प्रतिबिम्बों से ऐसा लग रहा था कि आप के मिलन की इच्छा की अपूर्ति से होने वाली वेदना को बाँट देने के लिये कई शरीर धारण की हुई थी। समीप में रहने वाली, वीणा आदि द्वारा मनोरञ्जन कराने में निपुण, तथा तुल्य ही अवस्था तथा वेष वाली सखियों द्वारा सेवित की जा रही वह समस्त विद्याओं की अधिदेवताओं से सेवित हो रही सरस्वती की तरह प्रतीत हो रही थी। खिलते हुए फूलों के अलङ्कारों से मनोहर, चँवर धारण करने वाली स्त्रियों द्वारा ऐसा लग रहा था कि शरीर धारण की हुई वसन्त काल की लक्ष्मी-सेवित हो रही थी। हाथ में अङ्गराग और फूलों को ली हुई शृङ्गार-करने वाली स्त्रियों से ऐसा प्रतीत होता था कि वह अनेक स्वर्ग-सुन्दरियों द्वारा आराधित होती हुई पार्वती थी। आभूषणों में जड़े हुए मणियों के छिटकते हुए किरण-मञ्जरी समूह के बहाने शरीर में अँटती हुई कान्ति-रस की धारा को छोड़ रही थी। समीप की भित्ति पर के बनाये गये चित्र उसके निर्मल शरीर पर प्रतिविम्बित हो रहे थे। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि मायावी देव और दानव उसका आलिङ्गन कर रहे थे। पद्मरागमणि के दर्पण पर उसकी छाया दिखाई पड़ रही थी। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि कामपीड़ित चन्द्रमा के ऊपर दयावश अपनी छाया समर्पित कर दी थी। कामदेव के विश्व-विजय के अस्त्रागार की तरह प्रतीत हो रही थी। समस्त सौन्दर्य-गुणों की संकेतस्थली की तरह थी। सौभाग्य की देवी की तरह, सौन्दर्य की दुकान की तरह, ब्रह्मा की सम्पूर्ण शिल्पकला की परिपक्वता के नमूने की तरह, अनन्त संसार रूप रोहण नामक पर्वत की रत्नमयी कन्दली दमयन्ती को मैंने देखा।

[अनवरत—दमयन्ती की दृष्टि नीलकमल सदृश थी। नल जिस दिशा में बैठा था उस दिशा को भी उसे सम्मान देना था। अतः अपनी दृष्टि रूप कमलावली से उसे सम्मानित कर रही थी। उत्तरीयांशुक उसके वस्त्र का अञ्चल अत्यन्त शुभ्र तथा महीन था। अतः ढकी हुई भी स्तन-शोभा प्रकट हो जाती थी। स्तनों पर कस्तूरी के लेप से विभिन्न पत्रों तथा लताओं की रचना हुई थी। ऐसा लगता था कि काम अपने बाणों से जो प्रहार किया था उसी के वे चिह्न थे।

स्मरपरवशत्रिपुरुषैः—दमयन्ती अपने ललाट पर त्रिपुण्ड्र लगायी थी। त्रिपुण्ड्र की तीनों ही रेखायें तीन रङ्ग की थीं। तीन वस्तुओं से बनी भी थीं। एक रेखा कुङ्कुम की थी, दूसरी कस्तूरी की और तीसरी चन्दन की। चन्दन

की रेखा शुभ्र थी अतः वह सत्त्व गुण का प्रतिनिधित्व करती थी। कुङ्कुम की रेखा लाल थी अतः वह रजोगुण का प्रतिनिधित्व करती थी। कस्तूरी की रेखा काली थी अतः तमोगुण का प्रतिनिधित्व करती थी। कवि ने कल्पना किया है कि सत्त्व, रज और तम ये तीनों पुरुष हैं। तीनों ही कह रहे हैं, "यह हमारी है, यह हमारी है।" तीनों पड़ी रेखायें तीनों गुण-पुरुषों की स्वीकृति रेखायें हैं।

आसन्नमणि—दमयन्ती जिस भवन में रह रही थी वह मणि का बना था। उसकी भित्ति में दमयन्ती का चित्र प्रतिबिम्बित होता था। भित्ति के चारों तरफ उसके चित्र दिखाई पड़ते थे। अतः ऐसा लगता था कि नलवियोग के दुःख को एक शरीर से वह न सह सकती थी। अतः अनेक शरीरों को धारण कर उस दुःख को बाँटना चाह रही थी। दुःख थोड़ा-थोड़ा बाँट दिया जाय तो कम हो जाता है।

अशेषांङ्गावयवेषु—भवन की भित्तियों पर देवों और दानवों के चित्र बने हुए थे। दमयन्ती के अत्यन्त निर्मल शरीर में वे सभी प्रतिबिम्बित होते थे। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि मायावी देव और दानव माया द्वारा उसका आलिङ्गन कर रहे थे।

करुणायार्पितच्छायाम्—मणिमय दर्पण में उसका रूप प्रतिबिम्बित था। वह दर्पण चन्द्रमासदृश था। ऐसा प्रतीत होता था कि कामपीड़ित चन्द्रमा पर दया कर अपनी छायामात्र समर्पित की थी।

इस अनुच्छेद में कल्पना की बहुलता है। इसमें दमयन्ती के स्वरूप की अपेक्षा उसकी समीप की सामग्री-बाहुल्य का परिचय अधिक मिलता है।]

ईक्षणामृतशालाकामवलोक्य च तामतिहर्षविस्मयकौतुकोत्तानित-चक्षुश्चिन्तितवाहनम् ॥

नेत्रों के लिये अमृतशलाका सदृश उस दमयन्ती को देख कर प्रसन्नता, आश्चर्य और उत्कण्ठा से आँखें उठा कर मैंने सोचा—

इयं हि—

स्मरराजराजधानी मङ्गलवलभी विलासविहगानाम्।
शृङ्गाररङ्गशाला हरति न बाला मनः कस्य ॥ २० ॥

"सम्राट् कामदेव की राजधानी, विलास रूप पक्षियों का मङ्गलमय स्थान और शृङ्गार की रङ्गभूमि यह बाला किसके मन का हरण नहीं करती ॥ २० ॥

[राजधानी उत्कृष्टतम स्थान में बनायी जाती है। काम तो ऐसा राजा है जिसका शासन पूरे ब्रह्माण्ड में माना जाता है। ब्रह्माण्ड-शासक काम भी अपनी राजधानी दमयन्ती को ही माना है। हाव-भाव आदि विलास ही पक्षी हैं और उन विलास-विहंगमों का वासस्थान दमयन्ती है। शृङ्गार की तो वह नाट्यशाला है ॥ २० ॥]

अपि च—

दग्धो विधिर्विधत्ते न सर्वगुणसुन्दरं जनं कमपि ।
इत्यपवादभयादिव हरिणाक्षी वेधसा विहिता ॥ २१ ॥

दग्ध इति ॥ दग्धशब्दो निन्दार्थे। दग्धो निन्द्यो विधिः (यतः) सर्वगुणपरिपूर्णं कमपि जनं न विधत्ते इति योऽसावपवादः। तद्भयादिव 'तेनासौ सुन्दरी विहिता' तेन विधिना अपवादोद्विग्नेन। असाविति साक्षाद्दृष्टा। सुन्दरीति समग्रगुणसौन्दर्योपेता। अतस्तस्यां सृष्टायां स्रष्टुरपवादो न भविष्यतीति। 'हरिणाक्षी' इति पाठस्तु अक्षिमात्रसौन्दर्यार्थो न समग्रगुणसुन्दरतां वक्तीत्युपलक्षणपरतया निर्वाह्यः ॥ २१ ॥

"हतभाग्य विधाता किसी को भी सभी गुणों से सुन्दर नहीं बनाता है" मानो इसी निन्दा के भय से उसने इस सुन्दरी का निर्माण किया ॥ २१ ॥

[हरिणाक्षी पद यहाँ सुन्दरी इस सामान्य अर्थ का वाचक है, क्योंकि उसके विशेष अर्थ को ही लेने पर दमयन्ती के केवल नेत्रों की ही प्रशंसा झलकेगी, कवि तो उसे यहाँ सभी गुणों और सभी अङ्गों से सुन्दर बताने की चेष्टा कर रहा है ॥ २१ ॥]

किं चान्यत्—

लावण्यपुण्यपरमाणुदलं तदन्य-
दन्यः स चापि निपुणः खलु कोऽपि वेधाः ।
येनाद्भुता कृतिरियं विहिता विशिष्ट-
कार्येण कारणविशेषगुणोऽनुमेयः ॥ २२ ॥

लावण्येति ॥ येन विरूपमलावण्यदलपाटवेन वेधा दमयन्तीं सृष्टवान्। तद्दलपाटवमन्यत्। वेधाश्च। दलपाटवं वेधाश्च जगन्निर्माणविलक्षणावित्यर्थः। तद्द्वयमपि विशेषयन्नाह—येनेत्यादि ॥ येन दलपाटवेन वेधसा चेति ज्ञेयम्। तत्रार्थे हेतुमाह—विशिष्टेत्यादि ॥ २२ ॥

सौन्दर्य के वे परमाणुदल कुछ दूसरे ही हैं और वह निपुण ब्रह्मा भी कोई दूसरा ही है जिसके द्वारा यह विशेष कृति निर्मित हुई है, क्योंकि विशिष्ट कार्य के ही द्वारा कारण के विशेष गुणों का अनुमान किया जाता है ॥ २२ ॥

[परमाणु-पुञ्ज से ही सृष्टि होती है। जिन परमाणुओं से संसार के लोग बनाये जाते हैं उसकी अपेक्षा कुछ भिन्न ढंग के परमाणुओं से दमयन्ती की सृष्टि हुई है। जो सामान्य ब्रह्मा लोगों की सृष्टि करते हैं उनकी अपेक्षा वह कोई दूसरे ही ब्रह्मा हैं जिन्होंने दमयन्ती की सृष्टि की है। दमयन्ती सबकी अपेक्षा विलक्षण है अतः उसके कारण भी विलक्षण होंगे ॥ २२ ॥]

एवं वितर्कयन्तं सापि मां पुष्कराक्षसूचितमुचितसंभ्रमेण मनाग्-चलितकन्धराकन्दलीकम्पितकर्णोत्पलमवलोक्य स्वागतप्रश्नानन्तरम् 'अहो वहोः कालादभूत्सुप्रभातमद्योद्द्योतितमिव तमस्काण्डपिण्डीकृतं कुण्डिनम्, अकाण्डाडम्बरितवसन्तविकासोत्सव इवाभवत्सरित्सं-गमोपकण्ठवनविभागः, चिरात् संपन्ना सलक्षणा दक्षिणा दिगियम्, उन्निद्रित इव सह्याद्रिः, अमृतद्रवार्दित इवोज्जीवितोऽयं जनः' इत्यभि धाय 'पर्वतक, कच्चित्कुशली परबलदलदावानलो नलः' इति स्मित-मुग्धमधुरया गिरा समभाषत ॥

एवमिति ॥ 'स्मरराज—' इत्यादिपद्यत्रयेणैवमूहमानं पुष्कराक्षेण निवेदितं मां 'हे पर्वतक, कच्चित्कुशली परसैन्यदावानलो नलः' इति वचनेन दमयन्ती सम्भाषि-तवती। दावानलोपमानेनात्मनोऽपि विरहसन्तापहेतुत्वं नलस्य व्यनक्ति। मना-ग्वलितेत्याद्यवलोकनक्रियाविशेषणम् ॥

इस तरह मैं सोच ही रहा था तब तक वह भी पुष्कराक्ष द्वारा मेरे आगमन की सूचना पाकर यथोचित शीघ्रता से अपनी अङ्कुर सदृश गर्दन को थोड़ा घुमाकर मुझे देखी। गर्दन को घुमाने के कारण उसके कानों में लगे हुए कर्णपुष्प हिल गये थे। स्वागत के बाद, "वाह! बहुत समय के बाद आज सुन्दर प्रभात हो पाया है। अन्धकार की राशि से घिरा हुआ कुण्डिन नगर प्रकाशित सा हो उठा है। नदी-संगम के समीप की वनस्थली असमय में प्रफुल्लित वसन्तोल्लास का उत्सव मना रही है। बहुत दिनों के बाद दक्षिण दिशा शुभ लक्षणों से युक्त हुई है। सह्य पर्वत जग सा गया है। मानो अमृत-धारा से सिक्त होने के कारण मैं पुनः उज्जीवित हो रही हूँ।" यह कह कर, "पर्वतक, शत्रु सैन्यदल-के लिये दावानल महाराज, नल कुशलपूर्वक तो हैं न?" इस तरह मुस्कुराती हुई अत्यन्त सुन्दर वाणी में बोलीं।

अहमपि प्रणम्य यथोचितमनन्तरमतित्वरितसखीजनोपनीतमास-नमध्यास्य देवेन प्रहितानि तान्याभरणोपायनान्युपानैषम् ॥

मैं भी प्रणाम करने के बाद सखियों द्वारा शीघ्रता से लाये हुए उचित आसन पर बैठ कर आप के भेजे हुए उन भूगणोपहारों को प्रस्तुत किया।

आदरेण तया गृहीतेषु तेषु, बहुमते मयि, प्रक्रान्ते त्वद्गुणग्रहण-गोष्ठीव्यतिकरे, नर्मसुखालापलीलयातिक्रामति स्तोककालकलापे, पुष्कराक्षोऽप्यभाषत ॥

सम्मान के साथ उन्होंने उन्हें ग्रहण किया। मुझे भी सम्मानित किया। आप के गुण-गान का प्रसङ्ग छिड़ गया। मधुर सुख-संवाद लीला में कुछ समय व्यतीत हो रहा था, तब तक पुष्कराक्ष बोला—

'देवि, विज्ञापयामि यद्यभयम् ॥

"देवी, यदि आप अभय दें तो सूचित करूँ।

एवमनुश्रुतमस्माभिः 'किल सकलनाकिनायकपुरन्दरपुरःसराः सर्वेऽपि लोकपालास्त्वामभिलषन्तोऽन्तःकरणारण्यलग्नमदनदावानला-नलमायान्तमभ्यर्थितवन्तो यथा महानुभावा भवन्ति हि भवादृशाः परोपकारव्रतधर्माणः, तदेष प्रार्थ्यसे स्वप्रयोजननिरपेक्षेण त्वयास्मदर्थे दमयन्ती वरणीया, इति ॥

हम लोगों ने यह सुना है कि समस्त स्वर्गवासियों के नेता, इन्द्र आदि सभी लोकपाल आप को चाह रहे हैं। अपने अन्तःकरण रूप अरण्य में लगे हुए काम-दावानल (वनाग्नि) से जलते हुए महाराज नल जब आ रहे थे तो देवताओं ने निवेदन किया—"आप ही जैसे महानुभाव परोपकारव्रत धारण करते हैं। अतः यही निवेदन है कि आप अपने प्रयोजन की अपेक्षा न कर हम लोगों के ही लिये दमयन्ती को चुनें।"

तद्देवि, देवदूतकार्येणागतो निषधेश्वरः ॥ पृच्छतु वा देवी पर्वतकम्' ॥

देवी ! अतः (आप को विदित हो कि) महाराज निषधेश्वर (नल) दूतकार्य से यहाँ आये हुए हैं। अथवा आप पर्वतक से ही पूछें।"

इति श्रुत्वा पुष्कराक्षभाषितम्, ईषद्विषादविलक्षस्मितस्मेरां दृशं मयि साचि संचारितवती ॥

पुष्कराक्ष की इस बात को सुन कर, विषाद के कारण उदास होकर अत्यन्त स्वल्प खुली हुई आँखों को मेरी ओर थोड़ा घुमायी।

मयापि संवादिते पुष्कराक्षवचने तस्मिन्, आकस्मिककठोरकाष्ठ-प्रहारव्यथामिवानुभवन्तीं, विन्दतु वीणाक्वणो माधुर्यमितीव प्रतिपन्नमौनव्रता, लभेतां कर्णोत्पले परभागमितीव मुकुलितनयना,

प्राप्नोतु शोभां मुक्तावली दीप्तिजालमितीव मुक्तस्मिता, गच्छतु च्छायां कण्ठावलम्बिनी चम्पकमालेयमितीवाङ्गीकृतवैवर्ण्या लभतां लीलाकमलमिदं सौभाग्यमितीवोच्छ्वसितवदना, सा क्षणमभूत् ॥

जब मैंने भी पुष्कराक्ष की उस बात का समर्थन किया तो उसे अचानक कठोर काष्ठ-प्रहार की तरह वेदना का अनुभव हुआ। "वीणा की ध्वनि अब माधुरी धारण करे', मानो इसी संकल्प से उसने मौन धारण कर लिया। "कानों में लगे हुए कमल ही अधिक शोभा प्राप्त करें", मानो इसी से उसने आँख बन्द कर ली। "मुक्ता की माला का किरण-पुञ्ज शोभा का अनुभव करे", मानो इसी लिये मुस्कान छोड़ दिया। 'कण्ठ में लटकती हुई चम्पक की माला ही शोभाशील बनी रहे", मानो इसी लिये मलिनता धारण कर लिया। "लीला-कमल ही सौन्दर्य प्राप्त करें", इसी लिये मुख को वेदना-व्यग्र कर लिया। कुछ क्षणों तक उसकी यह स्थिति बनी रही।

[जब दमयन्ती बोलती थी तो वीणा की ध्वनि उसकी ध्वनि के सामने फीकी लगती थी। जब वह मौन धारण कर लेगी तो वीणा की ही ध्वनि को लोग अधिक मधुर समझेंगे। उसके नेत्रों के समक्ष कमलों की शोभा अत्यन्तन्यून थी। जब उन्हें बन्द कर ली कमल ही शोभाशाली बने। जब वह मुस्कुराती थी। उसकी मुस्कुराहट की कान्ति के समक्ष मणियों की कान्ति फीकी पड़ जाती थी अतः मुस्कुराहट बन्द हो जाने पर मणि ही कान्तिशील रह गये। उसके मलिन हो जाने पर ही चम्पक-माला को शोभा-सम्पन्न माना जा सकता था। वेदना के कारण उसके मुख के विवर्ण हो जाने पर ही लीला कमल को सुन्दर माना जा सकता था।

नल के दौत्य-कार्य-निमित्तक आगमन सुन कर वह अवर्णनीय व्यथा का अनुभव करने लगी। मुख विवर्ण हो गया। आँखें बन्द हो गयीं। वाणी बन्द हो गयी! शरीर हतप्रभ हो गया।]

तत्र च व्यतिकरे—

विगलितविलासमपरसमाकस्मिकजातभङ्गश्रृङ्गारम्।
मूकितमिव मूर्च्छितमिव मुद्रितमिव भवनमिदमासीत् ॥ २३ ॥

उसकी यह दशा होने पर—

विलासहीनता, रसशून्यता तथा अकस्मात् श्रृङ्गार-भङ्ग के कारण वह भवन मूक की तरह, मूर्च्छित की तरह तथा संकुचित की तरह प्रतीत हो रहा था ॥ २३ ॥

राजा तु 'पर्वतक, ततस्ततः' ॥

राजा—पर्वतक, इसके वाद क्या हुआ ?

पर्वतकोऽपि 'देव, श्रूयताम् ॥

वर्वतक—महाराज, सुनिये—

अतः परम्—

ईषन्निःसृतकुन्दकुड्मलसदृग्दन्तप्रभामञ्जरी-
रोचिष्णुस्मितमन्थरां मयि दृशं संचारयन्ती मनाक् ।
अस्यन्ती करपद्मभृङ्गमधरे बन्धूकवुद्ध्यागतं
वारंवारमकम्पयत्तरलितस्तोकावतंसं शिरः ॥ २४ ॥

इसके बाद—

स्वल्प निःसृत कुन्द-पुष्प की कालिका-सदृश दाँतों की कान्ति-मञ्जरी से मनोहर प्रतीत होती हुई, मुस्कुराहट से गम्भीर आँखों को थोड़ा मेरी ओर फेरती हुई, करकमल के भ्रमर को जो जपाकुसुम (अड़हुल का पुष्प) समझकर अधरों पर आ गया था, हटाती हुई, कर्ण-पुष्प के स्वल्प कम्पन के साथ शिर को बार-बार कम्पित की ॥ २४ ॥

[भ्रमर का स्वाभाविक आकर्षण कमल की ओर होता है । दमयन्ती के हाथ को कमल मान कर वह उसके हाथों पर पहले आया था । बाद में जब हाथ से हटाया गया तो होठों को अड़हुल का फूल समझ कर उस पर बैठ गया । फिर वहाँ से उसे हटाना पड़ा । असु क्षेपणे का शतृप्रत्यान्त रूप अस्यन्ती है ॥ २४ ॥]

ततः परम् । वारितवारविलासिनीचाटुवचनक्रमम् , आकस्मिक-विस्मयविस्मृतस्मितविलासम् , अतनुतुहिनाहतनवनलिनदलदीन-दीर्घेक्षणम् , उष्णसरलश्वासारम्भिविषमविषादविच्छायिताननेन्दु-द्युति, तस्याः स्थानकमवलोक्य सखेदं सखीजनेन 'देवि, भवन्निः-श्वासपवनपरम्परया पर्यस्त इवास्ताचलहस्तावलम्बनमयमाश्रयति भगवान्भानुः, इयं च सौभाग्यशालिनि नले निलीनचित्तायास्तव लोकपालपार्थिवप्रार्थनाव्यतिकरमिममाकर्ण्य लज्जितेव पिहितश्रवणा दूरे भवति वासरश्रीः, इमानि निश्चलनिलीनमधुपनिपीयमानगर्भ-मधूनि सङ्कोचयन्ति लोचनानीव कमलानि, संविभागीकृतविषादा इव विलासवयस्याः सरसीसरोरुहिण्यः, इमाश्च 'कथमस्मत्पतयो मनुष्य-कन्यकां कामयन्ते' इतीर्ष्याशोकवशादिव दिशः श्यामायन्ते, तत्प्रेष्य-तामयं पर्वतकः' इत्यभीधीयमाना कथंकथमपि चिन्तान्तरायतिरस्कृता-

स्कृतालापमीषदुन्नमय्य मुखं समुल्लसदशोकपल्लवानुकारि करतल-मुत्तानीकृत्य मामविस्मरणीयसंमानदानावसाने व्यसर्जयत् ॥

ततः परमिति ॥ तस्याः स्थानकमवस्था। लज्जितेव पिहितश्रवणा। श्रवणं नक्षत्रं श्रोत्रं च ॥

इसके बाद वाराङ्गनाओं के चाटुकारिता-पूर्ण वचन-प्रसङ्ग को रोकवा दी। अचानक आये हुए विस्मय के कारण हास्यविलास को भूल गयी। बहुत अधिक हिमपात से मारे गये नवीन कमलदल की तरह उसकी बड़ी-बड़ी आँखें दैन्य प्रदर्शन-करने लगीं। गरम तथा तीव्र निःश्वासों को संचालित करने वाले अत्यधिक विषाद से मुख की कान्ति मलिन पड़ गयी। उसकी इस स्थिति को देखकर बड़े खेद के साथ सखियाँ बोलीं—

"देवी आपके श्वास-पवन के झोंके से तलमलाते हुए भगवान् सूर्य अपने हाथों (किरणों) से अस्ताचल का अवलम्बन ले रहे हैं। सौभाग्य-शाली नल में अनुरक्त रहने पर भी तुम्हारे सम्बन्ध में लोकपालों की प्रार्थना का प्रसङ्ग सुनकर मानो लज्जा का अनुभव करती हुई यह दिन-लक्ष्मी कानों को बन्द कर दूर चली जा रही है। कम्पहीन, गड़े हुए तथा मधु पीते हुए भ्रमरों से युक्त ये कमल मानो अपनी आंखें बन्द कर रहे हैं। खेल की साथी ये कमलिनियाँ आपके विषाद में भाग ले रही हैं। (मुकुलित होकर खेद व्यक्त कर रही हैं।)

"हमारे पति मनुष्य-कन्या की कामना कर रहे हैं।" मानो इस ईर्ष्या और शोक से ये दिशायें काली पड़ती जा रही हैं। अतः इस पर्वतक को भेज दीजिये।" इतना कही जाने पर किसी किसी तरह चिन्ता की व्यवधानता के कारण वाग्विनोद को छोड़े हुए मुख को कुछ ऊपर उठाकर उल्लासपूर्ण अशोक पल्लव का अनुकरण करने वाले हाथ को उठाकर न भूलने योग्य प्रतिष्ठा देकर मुझे विदा की।

विसर्जितश्च तया तत्कालमाविर्भवद्विषादवशसंपन्नमौनया न पुनः संभाषितोऽस्मि, न वीक्षितोस्मि, न पृष्टम्, न संदिष्टं किमपि, केवलं चलन्नेत्रविभागप्रान्ततरत्तारया दृष्ट्या समवलोक्य समुत्तानित-करकमलसंज्ञयैव कथमपि संप्रेषितः 'कष्टम्' इति चिन्तयन्नलसाल-सैरसमञ्जसपातिभिः पश्चिममुखैरिव पादैरिहायातवान् ॥

तत्काल उत्पन्न विषाद के कारण मौन हो गयीं। मुझे विदा देते समय न बोली न देखी, न पूछी और न कुछ सन्देश दी। केवल चञ्चल नेत्रों के एक भाग में तैरती हुई कनीनिका वाली दृष्टि से देखती हुई अपने करकमलों को

उठाकर संकेत से ही किसी तरह भेजी। "बड़े कष्ट की बात है।" यह सोचता हुआ अलसाये हुये तथा असमञ्जस में पड़े हुए पीछे ही की ओर उन्मुख पैरों से यहाँ आया हूँ।

[यद्यपि मैं इधर की ओर आ रहा था लेकिन वहाँ के दुःख को स्मरण कर मेरे पैर उधर की ही ओर उन्मुख थे।]

तद्देव दमयन्ती देवदूतकार्याङ्गीकरणव्यतिकरमिममाकर्ण्य परं विषादमापद्यत॥

श्रीमन्, "आप देवताओं के दौत्य कार्य को स्वीकार कर लिये हैं", इस प्रसङ्ग को सुनकर दमयन्ती बहुत दुःखी हो गयी हैं।

अन्यच्च। मन्ये च—

परिम्लानच्छायाविरहितसनिद्रद्रुमवनं
पतत्पङ्क्तीभूतध्वनितशकुनोन्नादितनभः।
वियोगव्याकूतादुपनदि रुदच्चक्रमिथुनं
विषीदन्त्यां देव्यामिदमपि विषण्णं जगदभूत्॥ २५॥

और मैं समझता हूँ—

दुःख में पड़ी हुई देवी के साथ पूरा संसार ही दुःखी हो गया है। छायाहीन एवं मलिन वृक्षों का वन निद्रित सा हो गया है। नीचे की ओर आते तथा चिल्लाते हुए पंक्तिबद्ध पक्षियों की आवाज से आकाश गुञ्जित हो उठा है। वियोग की व्याकुलता से नदीतटपर चक्रवाकों का जोड़ा रो रहा है॥२५॥

इत्यभिधाय स्थिते पर्वतके तत्कालोचितमिममेवार्थं समर्थयन्नवसरपाठकः पपाठ॥

यह कह कर पर्वतक के मौन हो जाने पर तत्कालोचित इसी अर्थ को समर्थित करता हुआ अवसरपाठक ने पढ़ा—

'कन्यामन्यानुरक्तां कथममृतभुजो मानुषीं कामयन्ते
तन्वङ्गीः सस्मितास्याः स्मरविवशदृशो नाकनारीर्विहाय।
वक्तुं खेदादिवैतद्दिनपतिरधिकं व्रीडयैवावनम्रः
कोपेनेवारुणांशुः प्रविशति वरुणस्यालयं पश्चिमाब्धिम्॥२६॥

कन्यामन्येति॥ 'वक्तुं खेदात्' इत्यस्योपयोगि 'वरुणस्यालयम्' इति। वाचो हि श्रोतारमपेक्षन्ते॥ २६॥

"कृश शरीर तथा कामालस नेत्रों वाली मुस्कुराती हुई स्वर्ग की रमणियों को छोड़कर अमृत-पान करने वाले देव दूसरे में अनुरक्त मनुष्य-देहधारिणी

कन्या के लिये क्यों लालायित हैं ?" खेद के कारण मानों इस बात को कहने के लिये अधिक लज्जा के कारण नम्र तथा क्रोध के कारण लाल किरणों को धारण किये हुए भगवान् सूर्य वरुण के घर पश्चिम समुद्र में प्रवेश कर रहे हैं ॥ २६ ॥

[देवताओं की अनुचित कामना से भगवान् सूर्य को अत्यधिक क्लेश हुआ है । क्लेश की बात किसी से कह देने पर दुःख हल्का हो जाता है । इसीलिये वरुण के घर भगवान् सूर्य जा रहे हैं । वरुण भी एक लोकपाल हैं । उन्हें भी समझाना है जिससे वे इस अनुचित कार्य से अपना मुख मोड़ लें ॥ २६ ॥]

राजा तु तदाकर्णयन्, अवतीर्य सौधशिखरतलाल्लीलापदप्रचारेण संध्यावन्दनविधिविरामोपविष्टजपद्द्विजजनसनाथसैकते सरित्सङ्गमे सन्ध्याह्निकमकरोत् ॥

राजा ने तो यह सुनते ही प्रासाद के ऊपरी भाग से उतर कर धीरे-धीरे पैदल ही चलकर सन्ध्यावन्दन करने के बाद बैठ कर जप करते हुए ब्राह्मणों से सनाथित उस वालुकामयी भूमिवाले नदी-संगम पर सन्ध्याकालीन दैनिक कृत्य किया ।

ततश्च पश्चिमायां दिशि स्फुरति सन्ध्यारागे, रुधिरासवपिपासया कालवेतालमण्डलीव प्रधावमाना. त्रिभिः स्रोतोभिः प्रवृत्तया गङ्गया सह संहर्षादिवानेकैः स्रोतसां सहस्रैर्गगनतलमिव प्लावयन्ती कालिन्दीव, व्यजृम्भत तिमिरपटलपङ्क्तिः ॥

इसके बाद पश्चिम की ओर सन्ध्या की लालिमा के फैले रहने पर रक्तसुरा की प्यास से दौड़ती हुई काल रूप वेताल-मण्डली की तरह दौड़ती हुई, तीन धाराओं से बहने वाली गङ्गा के साथ मानों प्रतिद्वन्द्विता के कारण अनेक सहस्र धाराओं से आकाश को निमग्न करती हुई यमुना की तरह अन्धकार राशि उल्लसित हुई ।

[अन्धकार राशि को दो चीजों से सन्तुलित किया गया है । एक है काल वेताल-मण्डली और दूसरी है यमुना । सन्ध्या के समय आकाश लाल हो गया है । अन्धकार-राशि उस लालिमा को पीती जा रही है । अतः वह रुधिर की सुरा पीती हुई काल वेताल-मण्डली की तरह लग रही है । वेताल-मण्डली भी काली है और लाल रुधिर आसव को पीती है ।

यमुना की धारा नीली होती है । गङ्गा के साथ उसकी प्रतिद्वन्द्विता की कल्पना कवि ने की है । गङ्गा यदि मर्त्यलोक, पाताल तथा आकाश

की तीन धाराओं से अपनी महिमा व्यक्त करती है तो यमुना अपनी धाराओं से सम्पूर्ण गगनमण्डल को ही निमग्न कर अपना प्रभाव दिखा रही है। अन्धकार-राशि रूप यमुना आकाश को आच्छादित कर रही है।]

अनन्तरं च चन्द्रमसा गर्भिणी पौरन्दरी दिक्केतकीपुष्पपत्त्र-पाण्डिमानमगमत् ॥

अनन्तरमिति ॥ गर्भिणी हि केतकपत्त्रवत्पाण्डुतां धत्ते॥

और उसके बाद चन्द्रमा से गर्भित इन्द्र (पूर्व) की दिशा केवड़े के फूल के पत्ते की तरह पीली पड़ गयी।

[संस्कृत साहित्य में इन्द्र को भी बहुधा जार की तरह वर्णित किया गया है। उनकी पूर्व दिशा को भी व्यभिचारिणी के रूप में बहुधा चित्रित किया गया है। कभी वह सूर्य को देखकर रागपूर्ण हो जाती है और कभी चन्द्रमा से गर्भित होकर गर्भिणी नायिका की तरह केतकी-पत्र सदृश रंग धारण कर लेती है। यहाँ तात्पर्य यही है कि चन्द्रमा उदित हो गया है। अन्धकार कुछ मलिन हो गया है। पूर्व की ओर कुछ प्रकाश की आभा लक्षित होने लगी है।]

उल्ललास च चण्डतरमारुतान्दोलितोदयाद्रिद्रुमकुसुमकिञ्जल्क-रेणुराजिरिव कपिशा शशाङ्कद्युतिः ॥

प्रचण्ड वायु के झोकें से कम्पित उदयाचल के वृक्षों के पुष्पराग के धूलि-समूह की तरह चन्द्रमा की कपिश रंग वाली कान्ति उल्लसित हुई।

अथ क्रमेण पूर्वपयोधिपुलिनाद्राजहंस इव गगनमन्दाकिनीमुच्च-लितः केसरिकिशोर इवोदयगिरिगुहागह्वरात्तिमिरकरियूथपपृष्ठलग्नः, स्फटिकमयः पूर्णकुम्भ इव जगद्विजयप्रस्थानस्थितस्य मङ्गलाय मकर-केतोः केनापि सज्जीकृतः, श्रीखण्डपिण्ड इव मण्डनाय महेन्द्रदिशा-हस्तश्लेषोपलालितः, शङ्खिकापुष्पस्तबक इव गगनश्रिया श्रवणे संयोजितः, कुम्भ इवैकः प्राचीवनविहारिसुरकरीन्द्रस्य प्रकटतां गतः, वासरविरामवल्लीमुल्लूय कन्द इवोद्धृतो निशाशबरिकया, पाण्डु-पुष्पाक्षतगुञ्जापुञ्ज इव सिद्धवधूभिरुदयाचलचतुष्पथे विरचितः, गण्डशैल इव कैलासशिखराल्लुठित्वागतः, सीमन्तमौक्तिकमिव पूर्व-दिङ्मुखस्य, सितातपत्रमिव पूर्वाशाधिपतेः पुरन्दरस्य, क्रीडामौक्तिक-कन्दुक इव कालकुमारस्य क्षीरडिण्डीरपिण्डसदृशो दृष्टिपथमव-ततार तारापतिः ॥

अद्रेति ॥ वनगहने हि विचरतः करिणः प्रायेणैक एव कुम्भस्थलविभागो लक्ष्यते। पाण्डुगुञ्जा हि मङ्गलाय स्युः। उदयाचलशब्दसुश्रुतेः सोमागमनसूचना। क्रीडार्थं मौक्तिककन्दुकः ॥

इसके बाद क्रम से पूर्व समुद्र के तट से आकाश गंगा की ओर प्रस्थित राजहंस की तरह, उदयाचल की गुफाओं से निकल कर अन्धकार रूप हाथियों के यूथ के पीछे लगे हुए सिंह के बच्चे की तरह सम्पूर्ण विश्व की विजय के लिये प्रस्थित कामदेव के मङ्गल के लिये किसी के द्वारा सजाये गये स्फटिक मणि के बने हुए पूर्णकलश की तरह, इन्द्र दिशा (पूर्व) के हाथों के आलिङ्गन से सम्मानित अलङ्कार के लिये लिये गये चन्दन के गोले की तरह, आकाश-लक्ष्मी द्वारा पहने गये शङ्खिका नामक फूल के गुच्छे की तरह, पूर्व दिशा रूप अरण्य में विहार करने वाले देव गजेन्द्र ऐरावत के एक कुम्भस्थल की तरह प्रकट, दिवावसान रूप लता को काट कर रात्रि रूप किरातिनी द्वारा निकाले गये कन्द की तरह, सिद्ध वधुओं द्वारा उदयाचल के चौराहे पर रक्खे गये पीले पुष्प, अक्षत तथा गुञ्जों की राशि की तरह, कैलास की चोटी से टूट कर आये हुए गण्डशैल की तरह, पूर्वदिशा के मुख के सीमन्त मौक्तिक (शिरोभूषण) की तरह, दूध के फेन गोले की तरह चन्द्रमा दृष्टि-पथ में उतरे।

[यहाँ उदयकालीन चन्द्रमा के बहुत से उपमान दिये गये हैं। चन्द्रमा अपनी सफेदी के कारण राजहंस की तरह लगता था। पूर्व दिशा में उदित होकर शुभ्र आकाश की ओर बढ़ रहा है अतः पूर्व समुद्र से चलकर आकाश गंगा की ओर उन्मुख राजहंस की तरह लगता हैं। सिंह का बच्चा जैसे काले हाथियों को खदेड़ता है वैसे नवोदित चन्द्र अन्धकार को खदेड़ रहा है।]

तदनु च—

मदनमिति युवानं यौवराज्येऽभिषिञ्चन्
कृतकुमुदविकासो भासयन्दिङ्मुखानि।
इममममृततरङ्गैः प्लावयञ्जीवलोकं
गगनमवजगाहे मन्दमन्दं मृगाङ्कः ॥ २७ ॥

मदनमिति ॥ यौवराज्याभिषेकाद्यनेककार्यव्यग्रतया मन्दमन्दावगाहः ॥ २७ ॥

और इसके बाद—

मदन युवक को युवराज-पद पर अभिषिक्त करता हुआ, कुमुदों को विकसित कर दिशाओं को उद्भाषित करता हुआ, सम्पूर्ण जीवलोक को अमृत-लहरों में नहलाता हुआ चन्द्रमा धीरे-धीरे आकाश का अवगाहन कर रहा था ॥ २७ ॥

तदनन्तरम्, आप्लावितमिव मुक्तमर्यादेन दुग्धवार्धिना, सिक्तभूभागाङ्गणमिवामन्दचन्दनाम्बुच्छटाभिः, विलिप्तदिग्भित्तिकमिव सान्द्रसुधापङ्कपिण्डितैः, पूरितमिवोत्सर्पिकर्पूरपांसुवृष्ट्या, प्रविष्टमिव स्फाटिकमणिमहामन्दिरोदरदरीम्, उत्प्लवमानमिव द्रवीभूततुहिनाचलमहाप्लवेन, भुवनमासीत् ॥

तत्पश्चात् अपनी सीमा से बाहर तक उमड़ते हुए दुग्ध सागर द्वारा डुबाये गये की तरह, पर्याप्त चन्दन मिश्रित जल के छींटे से सींचे गये भूभागवाले आँगन की तरह, गाढ़े चूने के पङ्क के लोने से लेपी गयी दिग्भित्तियों की तरह, सुगन्धित कर्पूर धूलि की दृष्टि से भरे गये की तरह, स्फटिक मणि के बने हुए विशाल भवन के मध्यभाग की तरह, पिघले हुए हिमालय की विशाल बाढ़ से डूबते हुए की तरहं संसार हो गया था।

[चन्द्रोदय होने पर पूरा संसार सफेद-सफेद दिखायी पड़ रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि दुग्ध-सागर अपनी सीमा से बाहर आकर समूचे संसार को निमग्न कर रहा था। इसीलिये तो सारी चीजें सफेद दिखायी पड़ती थीं। ऐसा लगता था कि गाढे चन्दन के लोने बनाकर समस्त दिशाओं की भित्तियों को लीप (लेप) दिया गया था। साधारण चूने के पानी से उतनी शुभ्रता नहीं आ सकती थी। अतः चूने के पङ्किल गोले से लेप लगाने की बात कही गयी है। ऐसा प्रतीत होता था कि संसार कपूर की धूलि की वृष्टि से भर दिया गया था। स्फटिक मणि के बने हुए विशाल भवन से तात्पर्य है आधुनिक सभागृह (Hall) से। केवल स्फटिक से ही बने हुए विशाल भवन का भीतरी भाग जैसा शुभ्र दीखता है उसी तरह संसार दीखता था। संसार की शुभ्रता को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि हिमालय के वर्फ के गलने से बाढ़ आ गयी हो। हिमालय जैसा शुभ्र दीखता है वैसा ही दृश्य पूर्ण संसार का हो गया था।]

ततश्च—

कैलासायितमद्रिभिर्विटपिभिः श्वेतातपत्रायितं
मृत्पङ्केन दधीयितं जलनिधौ दुग्धायितं वारिभिः।
मुक्ताहारलतायितं व्रततिभिः शङ्खायितं श्रीफलैः
श्वेतद्वीपजनायितं जनपदैर्जाते शशाङ्कोदये ॥ २८ ॥

थोड़ी देर के बाद—

चन्द्रमा के पूर्णतः उदित हो जाने पर सभी पर्वत कैलास गिरि की तरह लगने लगे। वृक्ष श्वेत छाते की तरह लग रहे थे। मिट्टी के पङ्क दही की तरह

लगने लगे। समुद्र का जल दूध की तरह प्रतीत होने लगा। लतायें मुक्ता की माला की तरह दीखने लगीं। वेल के फल शङ्ख की तरह लगने लगे। ग्राम और नगर श्वेत द्वीप सदृश प्रतीत होने लगे ॥ २८ ॥

[चन्द्र किरणों की अतिशय शुभ्रता से पूरा का पूरा संसार शुभ्र दीखता था ॥ २८ ॥]

अपिच—

सर्वेऽपि पक्षिणो हंसाः सर्वेऽप्यैरावता गजाः।
जाताश्चन्द्रांशुभिः सर्वे रौप्यपुञ्जाः शिलोच्चयाः ॥ २९ ॥

और भी विचित्र दृश्य हुए थे—

चन्द्रमा की किरणों से सभी पक्षी हंस हो गये थे। सभी हाथी ऐरावत हो गये थे। सभी चट्टानों की राशियाँ चाँदी की राशि बन गयी थीं ॥ २९ ॥

अपिच—

सुधापङ्कोपलिप्तेव बद्धेव स्फटिकोपलैः।
विलीनहिमदिग्धेव मेदिनी ज्योत्स्नया कृता ॥ ३० ॥

और भी आश्चर्य यह हुआ कि—

चन्द्र-रश्मियों के कारण ऐसा लगता था कि पृथ्वी चूने के पङ्क से लेप दी गयी थी, स्फटिक पत्थर से जड़ दी गयी थी अथवा जमे हुए बर्फ से व्याप्त हो गई थी ॥ ३० ॥

अपिच—

सौधस्कन्धतलानि दीपपटलैः कम्पेन पाण्डुध्वजाः
हंसाः पक्षविधूननेन मृदुना निद्रान्तनादेन च।
लक्ष्यन्ते कुमुदानि षट्पदरुतैरुत्सर्पिगन्धेन च
क्षुभ्यत्क्षीरपयोधिपूरसदृशे जाते शशाङ्कोदये ॥ ३१ ॥

[जो पदार्थ स्वभावतः श्वेत थे उन्हें तो पहचानना कठिन हो गया। उनके रंग से तो उन्हें नहीं पहचाना जा सकता था। उनके भीतर कुछ विशेष गुण थे जिनके कारण वे किसी किसी तरह पहचाने जा सकते थे—]

उमड़ते हुए क्षीरसागर की तरह चन्द्रमा के उदित हो जाने पर अट्टालिकायें दीप-समूह के कारण, सफेद पताकायें कम्पन के कारण, हंस पंखों की फड़फड़ाहट तथा निद्रा के अन्त में की गयी कोमल ध्वनि के कारण, भ्रमरों की गुनगुनाहट तथा फैलने वाली गन्ध के कारण कुमुद पहचाने जा रहे थे ॥ ३१ ॥

[चन्द्रमा की शुभ्र किरणों में समस्त श्वेत पदार्थ विलीन हो गये थे। चूने से पुते हुए मकानों पर यदि टिमटिमाते दीपक नहीं होते तो उन्हें समझना

कठिन था। सफेद पताकायें यदि फड़फड़ाती नहीं तो उनका ज्ञान करना मुश्किल था। हंस यदि पंख नहीं फड़फड़ाते और बोलते नहीं तो उन्हें भी समझना असम्भव था। गुन-गुनाते हुए भ्रमरों और फैलती हुई गन्ध के कारण कुमुद पहचाने जाते थे ॥ ३१ ॥]

तथाविधे च चन्द्रोदयप्रपञ्चे हठादुत्कण्ठयाभिभूयमानो निषध-नाथश्चिन्तयांचकार ॥

चन्द्रोदय द्वारा ऐसा प्रपञ्च खड़ा कर देने पर बलात् उत्कण्ठा से पराजित होते हुए निषध-सम्राट् ने सोचा—

'इतश्चन्द्रः सान्द्रान्किरति किरणानग्निपरुषान्
इतोऽपि प्रोन्मीलत्कुमुदवनवायुर्विलसति ।
इतः कादम्बानां ध्वनितमपि निद्रालसदृशा-
मसह्यः सर्वोऽयं मनसिजमहिम्नः परिकरः ॥ ३२ ॥

इधर से चन्द्रमा अपनी अग्नि सदृश तीव्र तथा घनी किरणें फेंक रहा है। इधर से खिलते हुए कुमुद वन की मन्द-मन्द हवा भी बह रही है। इधर निद्रा से अलसाई हुई आँखों वाले हंसों की ध्वनि असह्य हो रही है। ये सब महाराज काम की महिमा बताने वाली सामग्रियाँ हैं ॥ ३२ ॥

अपि च—

इतो मकरकेतनः किरति दुर्निवारः शरा-
नितोऽपि वयमाकुलाः कुलिशपाणिदत्ताज्ञया ।
तदेतदतिसङ्कटं यदिह कैश्चिदुक्तं जनै-
रितो विषमदुस्तटी भयमितो महाव्याघ्रतः ॥ ३३ ॥

इधर से दुर्वार कामदेव बाणों को फेंक रहा है और इधर से वज्रपाणि इन्द्र द्वारा दी गयी आज्ञा के कारण व्याकुलता छायी हुई है। यह अत्यन्त संकट की स्थिति है। मेरी वही स्थिति है जैसी लोग कहते हैं—इधर भयङ्कर किनारा और उधर महाव्याघ्र से भय ॥ ३३ ॥

तदिदानीं किमिह कर्तव्यम्, कथं वा हास्येनाप्यवन्ध्यवचसाम-लङ्घनीयः खल्वादेशो लोकपालानाम्' इति चिन्तयन्नेकाकी पद्भ्यामेव विनिर्गत्य निजनिकेतनात्समन्तादापतद्भिः शशाङ्ककिरणजालैः परि-जनैरिव परिदर्शितवर्त्मा कैश्चित्काललवैः कैलासकूटायमानाट्टालका-भोगभव्यं भीमभूपालभवनमवाप्य कन्यान्तःपुरं पुरंदरवरप्रदानाददृश्य-मानरूपः प्रासादपालकैः प्रविवेश ॥

तो इस समय क्या करना चाहिये, अभ्यर्थ वाणी वाले लोकपालों की आज्ञाओं का उल्लंघन हँसी में भी नहीं करना चाहिये। यह सोचता हुआ अकेला पैदल ही अपने घर से निकल कर चारों तरफ बिखरते हुए चन्द्रमा के रश्मिपुञ्ज द्वारा नौकरों की तरह मार्ग-निर्देशन पाता हुआ थोड़े ही क्षणों में कैलास पर्वत के शिखरों की तरह ऊँचे प्रासादों के विस्तार से मनोहर राजा भीम के भवन को पाकर इन्द्र के वर प्रदान की महिमा से प्रासाद-रक्षकों (प्रहरियों) द्वारा न देखा जाता हुआ कन्या-निवास-गृह में प्रविष्ट हुआ।

[परिजन जैसे स्वामी को चारों तरफ से घेरे रहते हैं, उनकी सुरक्षा का ध्यान रखते हैं और गन्तव्य मार्ग-निर्देशन भी करते हैं वैसे ही चारों ओर से विकीर्ण होने वाली चन्द्र-किरणें रात में नल का मार्ग-निर्देशन सा कर रही थीं।

प्रविश्य च दूरादभिमुखागतेनानवरतदह्यमानकृष्णागुरुधूपधूमवर्त्ति-नर्तकेन बहलयक्षकर्दमाम्बुसिक्तसौधस्कन्धसन्धिसंचारिणा गन्धवाहेन कृताभ्युत्थान इव, परिक्रम्य स्तोकमन्तरम् 'इत इतो देवी वर्त्तते' इति गीतगोष्ठीस्थितसखीगीतझंकारेणाहूयमान इव, यत्रास्ते दमयन्ती तत्सौधपृष्ठमारूढवान् ॥

प्रविश्य चेति ॥ कर्पूरकस्तूरिकादीनां चोदो यक्षकर्दमः ॥

जब वह वहाँ प्रविष्ट हुआ तो निरन्तर जलती हुई अगर बत्ती को नचाता हुआ पर्याप्त कस्तूरी तथा कपूर आदि के चूर्ण से मिश्रित जल से सींचे गये महलों पर भ्रमण करता हुआ, दूर से सामने की ओर आता हुआ पवन मानों उठ कर स्वागत कर रहा था। घूमता हुआ थोड़ा और भीतर की ओर गया तो गीत गोष्ठी में बैठी हुई सखियों की गीत ध्वनियाँ "इधर देवी हैं, इधर देवी हैं," मानों यह कह कर उन्हें बुला रही थीं। (अनुमान लगाता हुआ) उस महल पर गया जहाँ दमयन्ती रहती थी।

आरुह्य च मनाग्व्यवहितोऽनुपलक्ष्यमाण इव, वेणुवीणाक्वणानुसा-रिणा कोमलकाकलीप्रायेण किंनरीप्रमुखसखीनां गीतेन विनोद्यमानाम्, अलकवल्लरीमध्यनिवेशिततारानुकारिमौक्तिकेन कज्जलकलङ्कितनय-नोत्पलपक्ष्मपालिना मुखेन सचन्द्रगगनस्पर्धया भूतलमपि पूर्णोदिते-न्दुमण्डलमिवापादयन्तीम्, उच्चकुचमण्डलविलोलया सस्मरसप्तर्षि-ग्रहगणपङ्क्त्येव हारलतया कृतकण्ठकन्दलाश्लेषाम्, ईषत्कपोल-पालिं परामृशता चाटुकारेण वसन्तसमयप्रहितदूतेनेव कर्णलग्नेन कुसुममञ्जरीद्वितीयेन बालपल्लवेन विराजितवदनाम्, अच्छाच्छैः

कस्तूरिकापङ्कपत्रभङ्गैर्भुजङ्गैरिव लावण्यामृतरक्षागतैरलंकृतभव्यभुजशिखराम्, आसन्नभुवि विकीर्णैः पाण्डुपुष्पप्रकरैर्गगनादवतीर्य रूपालोकनकुतूहलिभिर्नक्षत्रैरिव परिवृताम्,

आरुह्य चेति ॥ ईषत्कलोऽस्यास्तीति काकली। 'निषादः काकलीसंज्ञो द्विश्रुत्युत्कर्षणाद्भवेत्'। कज्जलेन कलङ्किता कलङ्क इवाचरितवती नयनोत्पलपक्ष्मपालिर्यत्र। कलङ्क इवाचरति स्मेत्याचारे क्विब्निष्ठे॥ अच्छेति॥ अमृतं हि भुजंगै रक्ष्यते।

वहाँ जाकर थोड़ी ओट में खड़ा हुआ जिससे कोई देख न सके। शुभ्र कान्ति से मण्डित, स्फटिक मणि से निर्मित, एक पर्य्यङ्क पर सोयी हुई दमयन्ती को देखा। किन्नर कुल में उत्पन्न प्रमुख सखियों की वंशी तथा वीणा की ध्वनि का अनुसरण करने वाले प्रायः मधुर कालीन स्वर वाले गीतों से उसका मनोविनोद किया जा रहा था। केशलता के बीच रखा गया मौक्तिक तारा का अनुकरण कर रहा था। नेत्र कमल में अञ्जन लगा हुआ था। अतः अपने मुख द्वारा चन्द्र सहित आकाश की प्रतिद्वन्द्विता में भूतल को भी मानों पूर्णचन्द्र मण्डल से युक्त कर रही थी। सकाम सप्तर्षि ग्रहों की पङ्क्ति की तरह उच्च स्तन-मण्डल पर (लोटती हुई) चञ्चल हारलता उसके गले में लिपटी हुई थी। कपोल स्थल को थोड़ा छूते हुए वसन्त समय द्वारा भेजे गये चाटुकार दूत की तरह कानों में लगी हुई पुष्पमञ्जरी से नवीन पल्लव से उसका मुख सुशोभित था। कस्तूरी के लेप से निर्मित पत्र-रचनाओं से अलंकृत उसकी सुन्दर भुजाओं के अग्रभाग ऐसे लगते थे मानों वे सौन्दर्यरूप अमृत की रक्षा करने के लिये आये हुए सर्पों से मण्डित हों। समीप की भूमि पर बिखरे हुए सफेद पुष्पों के समूह से ऐसा लगता था कि सौन्दर्य की छटा देखने की उत्कण्ठा से आकाश से आये हुए तारों द्वारा घिरी हुई थी।

[आकाश चन्द्रमा से युक्त होता है। नीलिमा से व्याप्त होता है। तारे उगे हुए होते हैं। दमयन्ती के बालों के बीच में रक्खे मोती तारे सदृश लगते हैं। उसके बाल आकाश-लक्ष्मी की नीलिमा को सम्पादित कर रहे हैं। मुख चन्द्र का कार्य कर रहा है। आँखों के अञ्जन चन्द्रगत कलङ्क का कार्य कर रहे हैं। अतः दमयन्ती जैसी नायिका को पाकर भूतल भी आकाश की तरह सचन्द्र हो गया है।

हारलता—मोती का हार पहने हुई थी। वह गले से लटकता हुआ स्तन मण्डल तक आया था। ऐसा प्रतीत होता था कि कामव्यथा से पीडित सप्तर्षि ग्रहों की पङ्क्ति ही उसके स्तनों पर लोटती हुई गले से लिपटी थी।

वसन्तसमयप्रहितदूतेन—वह कानों में पुष्पमञ्जरी युक्त नवीन पल्लव पहने थी अतः ऐसा प्रतीत होता था कि वसन्त द्वारा भेजा गया चाटुकार

दूत ही उसके कानों के पास जा कर मन्त्रणा करता था और उसके कपोलों का स्पर्श भी कर रहा था।

पत्रभङ्गभुजङ्गैः—कस्तूरी के लेप से खूब सुन्दर-सुन्दर टेढ़े-मेढ़े पत्रों की आकृतियाँ उसकी भुजाओं पर बनी थी, अतः ऐसा प्रतीत होता था कि सौन्दर्य सुधा की रक्षा करने के लिये पत्र-रचना के रूप में सर्प ही आये हुए थे। सौन्दर्य सुधा का पान कोई दूसरा न कर ले इसलिये सांपों को वहाँ बैठा दिया गया थां।

नक्षत्रैः—वह जहाँ बैठी थी वहाँ कुछ सफेद पुष्प बिखरे हुए थे उनसे ऐसा प्रतीत होता था कि उसके सौन्दर्य को देखने के लिये आकाश से तारे ही उतरे हुए थे।]

ऊरुनितम्बमण्डलस्पर्शसुखलम्पटतया नीवीप्रान्तपुञ्जिततरङ्गं क्षीरोदमिव वस्त्रतां गतमच्छपाण्डु नेत्रपट्टं परिदधानाम्, अहमेव त्वया स्वयंवरे वरणीयः' इत्यर्थितया पादलग्नेन शेषोरगेणेव रौप्यनूपुरवलयेन विराजितवामचरणपल्लवाम्,

निर्मल, शुभ्र तथा चमकीला रेशमी वस्त्र पहने हुई थी। ऐसा लगता था कि जङ्घों और नितम्ब-मण्डल के सुख स्पर्श के लोभ से नीवी के चारों तरफ अपनी तरङ्गों को समेटे हुए दुग्ध-सागर का जल ही वस्त्र रूप में परिणत हो गया था। "मैं ही स्वयंवर में तुम्हारे द्वारा चुना जाऊँ," इस तरह प्रार्थना करते हुए पैर में लगे शेष नाग की तरह चांदी के नूपुर से उस का पल्लव सदृश बायाँ पैर सुशोभित था।

[एक तरह के अत्यन्त चमकीले वस्त्र को 'नेत्र' कहते हैं। दमयन्ती इसी कोटि का एक वस्त्र पहने हुई थी। चारों तरफ से चुन देकर उसने नीवी के पास उस चमकीले वस्त्र का एक गुच्छा जैसा बना लिया था। वह वस्त्र क्षीर सागर के जल की तरह था और नीवी वाला सिकुड़ा हुआ वस्त्र फेन की तरह था। क्षीर सागर का जल ही मानों ऊरू तथा नितम्ब मण्डल के सुखमय स्पर्श के निमित्त वस्त्र का रूप धारण कर आया हुआ था।

वह अपने बायें पैर में नूपुर पहने हुई थी। उससे कुछ मधुर ध्वनि अभिव्यक्त होती थी। ऐसा प्रतीत होता था कि नूपुर के बहाने शेष नाग ही उसके पैरों में पड़ कर प्रार्थना कर रहे थे कि स्वयंवर में वह उन्हें ही चुने।]

विविधविलासवर्तिकाभिरिवाकारिताम्; अमृतद्रववर्णकैरिव चित्रितावयवाम्, आनन्दकन्दलैरिव घटिताम्, मोहनमणिशिलाया-मिवोत्कीर्णाम्, शृङ्गारदारुणीवोत्कुट्टिताम्, वशीकरणपरमाणुभिरिव

विनिर्मिताम्, मदनमृत्पिण्डेनेव निष्पादिताम्, वज्रलेपपुत्रिकामिव दृशोः, आकर्षणमणिशलाकामिव हृदयस्य, जीवनौषधिमिवानुरागस्य, जयपताकामिव मदनस्य, बहलचन्दनाम्बुच्छटार्द्रितभुवि विकीर्णसुरभिपरिमलमिलन्मधुकररवानुमेयपाण्डुरपुष्पप्रकरे मसृणसितसुधाबन्धपिच्छले सौधस्कन्धे ज्योत्स्नामृतस्पर्शसुखमनुभवन्तीम्, अच्छांशुस्फटिकमणिपर्यङ्किकाङ्कभाजं दमयन्तीमलब्धनिद्रामद्राक्षीत् ॥

विविधविलासवर्त्तिकाश्चित्रकूर्चिकास्ताभिराकारितामालिखिताम् । आकारशब्दादाचारक्विबन्तान्निष्टायां सिद्धम् ॥

वह विलासमय भावों को खींचनेवाली कूचियों से बनाये गये चित्र की तरह प्रतीत होती थी । अमृत रस के बिन्दुओं से मानों उसके अंग बने थे । आनन्द के अङ्कुरों से उसकी रचना की गयी थी । मोहन-मणि की चट्टान पर खुदी हुई सी प्रतीत होती थी । शृङ्गार-काष्ठ पर मढ़ी हुई सी लगती थी । वश करने वाले परमाणुओं से मानों निर्मित थी । काम-मृत्तिका के पिण्ड से निर्मित की गयी -सी लगती थी । आँखों के लिये वज्र की बनी पुत्तलिका थी । हृदय के लिये आकर्षण मणि से बनी हुई शलाका थी । प्रेम को अनुप्राणित करने वाली ओषधि थी । कामदेव की विजय-ध्वजा थी । उसके यहाँ की भूमि पर्याप्त चन्दन मिश्रित जल से सिक्त थी । चिकने एवं सफेद चूने के लेप से पिच्छिल बने हुए महल पर जहाँ बिखरे हुए सफेद फूलों का समूह पराग के लिये गुनगुनाते हुए भ्रमरों के ही द्वारा पहचाना जा सकता था, किरण-सुधा के स्पर्श सुख का अनुभव कर रही थी ।

तां चावलोक्य विचिन्तितवान् ॥

उसे देख कर सोचा—

'अहो स्थानेऽभिनिवेशो लोकपालानाम् । अशेषसुखनिधानाय को न स्पृहयति ॥

उचित स्थल पर लोकपालों की प्रवृत्ति हुई है । समस्त सुखों के मूल को कौन नहीं चाहता ।

मन्ये च ।

विस्फारिततारेक्षणैरिमामेव पश्यन्नयमाकाशः सग्रहोऽभूत् ॥

विस्फारीति ॥ तारा नक्षत्राणि कनीनिका च । ग्रहाः सूर्यादयो भूताद्यभिनिवेशाश्च ॥

और मालूम होता है कि—

फैलायी गयी कनीनिका वाली आँखों से इसी को देखता हुआ यह आकाश सग्रह हो गया है ।

[जिसे ग्रह (भूत प्रेत) पकड़ लेते हैं उसकी मनः स्थिति ठीक नहीं रहती। दमयन्ती के मादक रूप को आँखें खोल कर देखता हुआ आकाश सग्रह हो गया है। उसको ग्रह ने पकड़ लिया है। आकाश में प्राणित्व आरोपित कर शब्दगत समानता के आधार पर उसके पागलपन का आभास कराया गया है। वस्तुतः आकाश इस अर्थ में सग्रह है कि वह सूर्य-चन्द्र आदि ग्रहों से युक्त है। सूर्यादि ग्रह से सहित होने के कारण सग्रह कहलाता है। यहाँ का तार शब्द तारा और कनीनिका दोनों अर्थों का उपस्थापक है।]

अयं च चन्द्रश्चन्दनपाण्डुभिः करैरिमामेव परामृशन्मदनानलदाहमयीं व्रणलेखां कलङ्कच्छलेन हृदयेनोद्वहति ॥

आह ! यह चन्द्रमा भी अपनी चन्दन सदृश सफेद किरणों से इसी को छूता हुआ काम की आग से जल कर घाव के चिह्न को कलङ्क के बहाने हृदय में धारण करता है।

अयमपि समीपोद्यानमारुतोऽस्याः समर्पितकुसुमगन्धः शनैरुत्तरीयांशुकमाक्षिपन्मदनातुरस्तिर्यक् पतति ॥

अयमपीति ॥ अन्योऽपि स्मरातुरः कुसुमगन्धं कस्तूरिकादि चार्पयन्संव्यानाकर्षणपरस्तिर्यक्पतति ॥

समीपवर्ती उपवन का यह पवन भी फूलों की गन्ध देकर धीरे से इसके अञ्चल को उठाता हुआ काम-पीड़ित होकर टेढ़े-टेढ़े गिर रहा है।

सर्वथा जितं मनुष्यलोकेन, यत्रैवंविधमचिन्त्यम्, अनालोचनगोचरम्, अप्रतिमरूपम्, अद्भुतम्, अमूल्यमुदपद्यत स्त्रीरत्नम् ॥

सब प्रकार से विजयी है यह मनुष्य लोक जहाँ इस तरह का अचिन्त्य, अश्रुत, अदृष्ट, अनुपम, अद्भुत तथा अमूल्य स्त्रीरत्न उत्पन्न हुआ है।

आः प्रजापते, परिणतशिल्पोऽसि। संसार, सनाथोऽसि। मदन, महोत्सववानसि। चक्षुः, कृतार्थमसि। हृदय, पूर्णमनोरथमसि। दूरागमनश्रम, सफलोऽसि ॥

आः प्रजेति ॥ 'संसार' इत्यादीनि प्रत्येकं संबोधनानि ॥

'ब्रह्मन्! तुम्हारी कला निखर गयी है। संसार! सनाथ हो गये हो। काम! महोत्सव-सम्पन्न हो गये। नेत्र! सफल हो गये हो। हृदय! तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो चुका है। दूर से आने के कारण होने वाले श्रम! तुम भी सफल हो गये।

सकलयुवजनमनोमधुकराकृष्टिकुसुमितलतिके निजनयननिर्जित-राजीवे जीव चिरम् ॥

ओ समस्त युवकों के चित्त भ्रमर को खींच लेने वाली पुष्पलता ! अपने नयनों से कमलों को भी जीत लेने वाली ! तुम चिरकाल तक जीवो ।

तथाहि—

लक्ष्मीं बिभ्राणयोः कांचिच्चञ्चद्भ्रूभङ्गभागयोः ।
बलिं यामो वयं तन्वि तवाब्जसदृशोर्दृशोः ॥ ३४ ॥

लक्ष्मीमिति ॥ हे तन्वि, तव नेत्रयोर्वयं बलिं यामः उपहारीभवामः इति परमप्रीतिगर्भा लोकोक्तिः । अब्जानि लक्ष्मीं बिभ्रति । तथा भ्रूरेव भङ्गस्तरङ्गः स भाग एकदेशे ययोः । यदा तु 'चञ्चद्भ्रूभङ्गसङ्गयोः इति पाठः तदा भ्रुवावेव भृङ्गौ तयोः सङ्गो यत्र ॥ ३४ ॥

क्योंकि—

कृशाङ्गी ! तुम्हारे अलौकिक शोभा धारण किये हुए चञ्चल एवं वक्र भौंहों वाले कमल सदृश नेत्रों पर हम अपने आपको न्योछावर करते हैं ॥ ३४ ॥

अपि च—

किंनरवदनविनिर्गतपञ्चमगीतामृते श्रुतिं श्रयति ।
हरति हरिणीदृशो दृक् सालसवलिता च लुलिता च ॥२५॥

किंनरेति ॥ यत एव हरिणीदृक्, अत एव गीतानुरागलक्षणं हरिणी हेवाकमनुसरति ॥ ३५ ॥

किन्नरों के मुख से निकले हुए पञ्चम स्वर वाले गीतामृत के कानों में जाते रहने पर हरिणाक्षी की आलस्य-पूर्वक घुमायी गयी चञ्चल आँख मन को आकृष्ट कर ले रही है ॥ ३५ ॥

इत्यनेकविधानि चिन्तयन्मृदुलीलापदैरागत्य गीतगोष्ठीस्थितस्य 'कोऽयम्'इति विस्मयविस्फारितलोचनस्य संभ्रमवतः सखीकदम्बकस्य मध्यमविशत् ॥

इस तरह अनेक प्रकार की बातें सोचता हुआ कोमल विलास पूर्ण गति से चलकर गीत-गोष्ठी में बैठे हुए "यह कौन है" इस आश्चर्य के मारे खुले हुए नेत्रों वाले, घबड़ाहट में पड़े हुए सखी-समूह के बीच प्रवेश किया ।

प्रविष्टे च तस्मिन्, आकस्मिकविस्मयेन विस्फारितानि, भयेन भ्रमितानि, कौतुकेनोत्तानितानि, व्रीडया वलितानि, मुदा मिलदराल-

पक्ष्माणि, स्मराकूतेन विलुलितानि, दिदृक्षारसेनानिमिषाणि, दृष्टि-संघट्टनेन मुकुलितानि, विलासेन मिलितानि, चिरं चक्षूँषि बिभ्राणाः किमपि चलितासनम्, उत्कम्पितहृदयम्, अपसरद्धैर्यम्, अवगलत्स्वेदसलिलम्, उत्पुलकिताङ्गम्, अनङ्गभङ्गुरम्, अवलोकितान्योन्यमुखमवतस्थिरे तदभिमुखाः सख्यः ॥

उसके प्रवेश करने पर अप्रत्याशित आश्चर्य से विकसित, भय से भ्रान्त, उत्कण्ठा से उत्थित, लज्जा से मुकुलित, प्रसन्नता से मिलते हुए पक्ष्मों वाली, कामोत्मुकता से चञ्चल, दर्शनोत्सुकता के आवेश में निर्निमेष, दृष्टि-संघर्ष से झेंपी हुई और विलास से मिली हुई आँखों को चिरकाल तक धारण करती हुई कामव्यग्र सखियाँ एक दूसरे का मुख देखती हुई उसके सामने स्थित थीं। आसन से हिल चुकी थीं। हृदय काँप गया था। धैर्य भाग चला था। पसीने का जल वह निकला था। अङ्गों में रोमाञ्च हो आया था।

दमयन्त्यपि 'देवी; वर्धयामो वर्धयामः कोऽपि कस्याश्चिज्जीवितेश्वरोऽयमत्रैवागतो दृश्यते' इति हार्षोत्कर्षगद्गदगिरां, गीतमुत्सृज्य ससंभ्रमोत्थितकुब्जवामनकन्यकानां मृदुकरतलतालिकाकलितकलकलेन मनाग्विलासवलितमुखी तदभिमुखमवलोक्य शय्यातलादुदचलत् ॥

"देवी, हम लोग सफल है, सफल हैं। किसी सुन्दरी का कोई प्राणेश्वर यहीं आया हुआ दीखता है" इस प्रसन्नता की उत्कृष्टता से गद्गद्वाणी बोलती हुई, गीत छोड़ कर शीघ्रता से उठी हुई कुबड़ी तथा नाटी कन्याओं की कोमल एवं मधुर करतल ध्वनि से दमयन्ती भी विलास के साथ मुखमण्डल को थोड़ा नम्र करती हुई उन्हें सामने देखकर शय्यातल से उठ चली।

'आः कुतोऽस्यानेकप्राकाररक्षकरक्षिते पक्षिणामपि दुष्प्रवेशे विशेषतो रजन्यां कन्यान्तःपुरे प्रवेशः' इत्यद्भुतरसावेशस्तिमितेन किंचित्संचारितेन चक्षुषा पुनः पुनर्नलमवलोक्य चिन्तयश्चकार ॥

"आह! अनेक चहारदिवारियों तथा रक्षकों से रक्षित पक्षियों के लिये भी दुष्प्रवेश, विशेषतः कन्याओं के इस निवास-गृह में रात को कैसे इसका प्रवेश हुआ" इस अद्भुत रस के आवेश में स्तब्ध एवं स्वल्प संचारित आँखों से नल को बार-बार देखकर सोची—

धन्या काप्युपराधिताद्रितनया यस्यास्त्वमाह्लादयन्
मुक्ताहार इव प्रसारितभुजः कण्ठे विलोठिष्यसि।

धातस्तात तवापि धन्यममुना सृष्टेन मन्ये श्रमं
मातर्मेदिनि वन्द्यसे किमपरं यस्यास्तवायं पतिः" ॥ ३६ ॥

धन्या केति ॥ मातृशब्दं जननीपर्यायमपि स्त्रियः सपत्न्यादिष्वपि प्रणयसंबोधने प्रयुञ्जते इति नले भूपतावभ्यर्थिन्या दमयन्त्या 'मातर्मेदिनि' इति सम्बोधनं न दुष्टम् । अन्यथा सपत्नीं प्रति मातरित्यामन्त्रणमनुचितम् ॥ ३६ ॥

पर्वत-पुत्री पार्वती की आराधना की हुई वह युवती भाग्यशालिनी है जिसके गले में मुक्ता की माला सदृश अपनी भुजाओं को फैला कर प्रसन्न होते हुए तुम आलिङ्गन करोगे। तात ब्रह्मा, इसे बनाने के कारण आप के परिश्रम को मैं धन्य मानती हूँ। अधिक क्या कहूँ, माता पृथ्वी, तुम भी वन्दनीय हो जिसका यह पति है ॥ ३६ ॥

एवं चिन्तयन्त्येव तत्कालमाकूतकौतुकहर्षभयाद्यनेकरसपरम्परापरावर्तितनयनोत्पला लज्जावनमितमुखी विधेयविवेकवैकल्यमभजत ॥

इस तरह सोचती हुई एक ही समय अभिप्राय, उत्सुकता, हर्ष, भय, आदि अनेक रसों की धारा में नेत्रों को फेरती हुई लज्जा के मारे मुख नीचे की ओर कर कर्तव्य विषय के विचार में विकल हो गयी।

नलोऽपि 'विहंगवागुरिके, भवत्स्वामिन्याः किमेवंविधः समाचारः, यदभ्यागतजनेन सह स्वागतालापमात्रेणापि न क्रियते व्यवहारः' इति तस्याः समीपवर्तिनीं पूर्वपरिचितां किंनरीमभाषत ॥

नल भी, "विहङ्गवागुरिका, तुम्हारी स्वामिनी का ऐसा आचार है कि अतिथिजन के साथ स्वागत-भाषण से भी व्यवहार नहीं करतीं" इस तरह दमयन्ती के समीप रहने वाली विहङ्गवागुरिका नामक किन्नरी से बोला।

सापि ससंभ्रमप्रणामपूर्वमिदमवादीत्—

वह भी शीघ्र ही प्रणाम-पूर्वक बोली—

'किञ्चित्कम्पितपाणिकङ्कणरवैः पृष्टं ननु स्वागतं
व्रीडानम्रमुखाब्जया चरणयोर्न्यस्ते च नेत्रोत्पले।
द्वारस्थस्तनयुग्ममङ्गलघटे दत्तः प्रवेशो हृदि
स्वामिन्किं न तवातिथेः समुचितं सख्याऽनयाऽनुष्ठितम् ॥३७॥

स्वामिन्, धीरे से हिले हुए हाथ के कङ्कण की ध्वनि से स्वागत प्रश्न पूछीं। लज्जा से मुख-कमल को नम्र की हुई चरणों पर नेत्र-पुष्प रक्खीं। उस हृदय में स्थान दीं जिसके द्वार पर मङ्गल-कलश के रूप में स्तन-युगल

स्थित है। अतः आप जैसे अतिथि के लिये मेरी इस सखी ने क्या नहीं किया ?॥ ३७॥

तदितः ससंभ्रमोत्थितयानया समर्पितमिदमुल्लसन्मणिपर्यङ्किका-पृष्ठमधितिष्ठतु देवः॥

अच्छा, यहाँ से घबड़ाहट के साथ उठी हुई इस के द्वारा समर्पित इस मणिमय उज्ज्वल आसन पर आप वैठें।

'त्वमपि देवि, विद्रुममणिपर्यङ्किकामिमामदूरवर्तिनीमध्यास्स्व॥
देवी, आप भी इस समीप स्थित विद्रुम मणि निर्मित पलङ्ग पर वैठें।

भवतु च भवतोः परमुखेन श्रुतान्योन्यस्वरूपयोरिदानीमात्मानु-भवेन नयननिर्वृतिः, फलन्तु मनोरथाः सखीनाम्' इति॥

दूसरों के ही मुख से एक दूसरे के स्वरूप के सम्बन्ध में आप लोग सुने हैं। इस समय आत्मानुभव से आप दोनों की आँखें आनन्द का अनुभव प्राप्त करें और सखियों का मनोरथ सफल हो।

तथाभिहितौ तौ सर्वसत्वरसखीकरपरामृष्टयोः स्फटिकप्रवाल-पर्यङ्किकयोरुत्सङ्गभागं भेजतुः॥

उसके कहने पर सभी सखियों द्वारा शीघ्रता से पोंछे गये स्फटिक एवं विद्रुम मणि निर्मित आसनों के बीच बैठ गये।

ततश्च तो—

हर्षाद्बाष्पचिते, भयात्तरलिते, विस्फारिते विस्मया-
दौत्सुक्यात्स्तिमिते, स्मराद्विलुलिते, संकोचिते लज्जया।
रूपालोकनकौतुकेन रभसादन्योन्यवक्त्राम्बुजे
किंचित्साचि च संमुखं च नयने संचारयामासतुः॥ ३८॥

इसके बाद दोनों—

सौन्दर्यच्छटा को देखने की उत्सुकता से शीघ्रतापूर्वक एक दूसरे के मुख कमल पर आनन्दाश्रु से व्याप्त, भय से चञ्चल, आश्चर्य से विकसित, काम से तरल, उत्सुकता से स्तब्ध तथा लज्जा से संकुचित नेत्रों को कुछ सम्मुख और कुछ नीचे की ओर सञ्चालित किये॥ ३८॥

[देखने की उत्सुकता से सामने की ओर देखते हैं किन्तु प्रथम परिचय की स्थिति में लज्जा के कारण दृष्टि नीचे की ओर मुड़ जाती है॥ ३८॥]

तत्र च व्यतिकरे—

अन्तः केवलमुल्लसन्ति न पुनर्वाचां तु ये गोचरा
येषां नो भरतादयोऽपि कवयः कर्तुं विवेकं क्षमाः।
लज्जामन्थरयोः परस्परमिलद्दृष्टिप्रपाते तयो-
स्ते सर्वे समकालमेव हृदये केऽप्याविरासन्रसाः॥ ३९॥

लज्जा से शिथिल उन दोनों का एक दूसरे पर दृष्टिपात होने पर वे सभी रस एक ही बार हृदय में उमड़ पड़े जो केवल भीतर तरङ्गित ही होते हैं वाणी के विषय नहीं बनते और जिन्हें भरत आदि महान् कवि भी वर्णित करने में असमर्थ रहते हैं॥ ३९॥

अपि च। तत्र च व्यतिकरे—

कर्णान्तकृष्टवलमयीकृतचापचक्र-
श्चञ्चद्गुणस्खलनजर्जरितप्रकोष्ठः।
लक्षद्वयेऽपि युगपद्विशिखान्विमुञ्चन्
संधानसत्वरकरः श्रमवान् स्मरोऽभूत्॥ ४०॥

कामदेव ने कानों तक खींचने के कारण धनुष को गोल बना दिया था। कड़ी प्रत्यञ्चा के संघर्षण से मणिबन्ध जीर्ण हो गया था। प्रत्यञ्चा पर वाणों को आरोपित करने में उसके हाथ बड़ी शीघ्रता कर रहे थे। अतः वह उस समय बड़ा श्रमशील हो गया था॥ ४०॥

अनन्तरमाप्तसखीवचनेन स्वयमर्घदानोद्यतां ताम् "अलमलमुत्पलाक्षि, प्रयासेन। न खल्वसि पात्रं परिजातमञ्जरी जरठपवनप्रेङ्खोलनायासं सहते' इति दमयन्तीमभिधाय तस्याः स्वादुदुर्लभसूक्तिसुधासेककोमलालापपण्डिताभिः सखीभिः सह परिमितपरिहासेन, किमपि जल्पन्, किमपि हसन्, किमपि हासयन्, मुहूर्त्तमिवासांचक्रे॥

इसके बाद शिष्ट सखियों के कहने पर स्वयं अर्घ देने के लिये तत्पर उस (दमयन्ती) से "कमल नेत्रे, रहने दें, प्रयास न करें, आप परिश्रम की पात्र नहीं हैं। पारिजात की मञ्जरी आँधी के झोंके को नहीं सहती।" यह कहकर स्वादु एवं दुर्लभ सूक्ति सुधा से सिक्त मधुमय वाग्विनोद की विदुषी उन सखियों के साथ कुछ कहता हुआ, हँसता हुआ, हँसाता हुआ कुछ समय तक बैठा।

चिन्तितवांश्च—

लीलाताण्डवितभ्रुवोः स्मरभरभ्रान्तोल्लसत्तारयो-
रन्तमौंक्तिकमालिकाधवलधयोर्मुग्धस्मितस्मेरयोः।

किंचित्साचिदृशोः कृतानिलचलन्नीलोत्पलस्पर्धयो-
रुल्लोलैरिव याति पक्ष्मलदृशः कान्तिर्मदीये मुखे ॥ ४१ ॥

लीलेति ॥ उल्लोलैर्याति तरङ्गैः स्फुरति ॥ ४१ ॥

और सोचा भी—

पक्ष्मल नेत्रोंवाली दमयन्ती के विलास से नाचती हुई भौंहों वाले, काम-भार के कारण चञ्चल उल्लासपूर्ण कनीनिकाओं से अलंकृत, भीतर मोती की लाली की तरह धवल, मधुर मुस्कुराहट से विकसित, पवन-कम्पित नील-कमलों से स्पर्धा करने वाले नम्रता भरे नयनों की कान्ति मेरे मुख पर तरङ्गित हो रही है ॥ ४१ ॥

अपि च—

दरमुकुलितनेत्रप्रान्तपर्यस्ततारं
तव तरुणि सलज्जं सस्मितं सस्मरं च ।
क्षणमभिमुखवक्त्रे विस्मयस्मेरदृष्टौ
मयि वलति वलक्षं वीक्षितं मा निरौत्सीः ॥ ४२ ॥

दरेति ॥ तवाभिमुखवक्त्रे मयि एवं गुणविशिष्टं वीक्षितं वलक्षं धवलं म निरौत्सीः ॥ ४२ ॥

तरुणी, सामने की ओर मुख किये हुए आश्चर्य से विकसित दृष्टि वाले मुझ पर स्वल्प संकुचित नेत्रों के एक भाग में कनीनिकाओं को फेंकती हुई, लज्जायुक्त, सकाम एवं मुस्कुराहट भरी आती हुई अपनी दृष्टि को मत रोको ॥ ४२ ॥

[मैं तुम्हारे सामने स्थित हूँ । तुम्हारा सौन्दर्य देख कर आश्चर्य के मारे मेरी आँखें विकसित हो उठी हैं । प्रथम परिचय की स्थिति में मेरे सम्मुख यद्यपि तुम साफ तथा स्पष्ट नहीं देख पाती हो फिर भी जिस किसी तरह तुम्हारी जो दृष्टि मेरी ओर आ रही है उसे रोको नहीं ॥ ४२ ॥]

किंचान्यदपरमिदमाशास्महे—

लावण्यामृतदीर्घिका कुलगृहं सौभाग्यसौन्दर्ययो-
स्त्रैलोक्याकररत्नकन्दलिरियं जीव्यात्सहस्रं समाः ।
लोकालोकनकौतुकाय बहुना शिल्पश्रमेणादरा-
न्मन्ये यां विधिना विधाय विहितं सृष्टेर्ध्वजारोपणम् ॥४३॥

लावण्येति ॥ आलोकनाय कौतुकमालोकनकौतुम् । लोकस्यालोकनकौतुकम् । तेन पश्यतु लोको, द्रष्टव्यदर्शनाद् दृष्टिफलमाप्नोत्वित्यर्थः ॥ ४३ ॥

अधिक क्या, मेरी यही शुभ कामना है कि—यह सौन्दर्य-सुधा की बावली, सौभाग्य और सुन्दरता का कुलभवन तथा त्रैलोक्य समुद्र की रत्नलता सहस्रों वर्ष की आयु प्राप्त करे। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मा ने लोगों के दृष्टि-कौतूहल के लिये कलात्मक श्रम से आदरपूर्वक इसे बना कर अपने रचना-कौशल का ध्वजारोपण किया है ॥ ४३ ॥

[विजयी जिस सीमा तक पहुँचता है वहाँ अपनी ध्वजा आरोपित कर देता है। लोगों की आँखों को तृप्त करने वाली दमयन्ती का निर्माण कर ब्रह्मा ने अपनी कला या शिल्प-कौशल का सर्वोत्कृष्ट नमूना प्रस्तुत कर ध्वजारोपण किया है अर्थात् उसने यह सिद्ध किया है कि उसके भीतर दमयन्ती जैसी अलोक सामान्य-सुन्दरी के निर्माण की क्षमता है ॥ ४३ ॥]

अहो आश्चर्यम्—

रङ्गत्यङ्गे कुरङ्गाक्ष्याश्चक्षुर्मे यत्र यत्र तु।
दृश्यते तत्र तत्रैव वलाद्बाणकरः स्मरः ॥ ४४ ॥

रङ्गेति ॥ तु पुनरर्थे। किं पुनः यत्र यत्राङ्गे चक्षूरङ्गति तस्य साधिष्ठानत्वात्। स्मरबाणबाधा प्राप्यते ॥ ४४ ॥

ओह ! आश्चर्य है—

इस हरिणाक्षी की आँखें मेरे अङ्गों पर जहाँ-जहाँ जाती है वहाँ-वहाँ बलात्कार कामदेव हाथों में बाण लिये हुए दिखाई पड़ता है ॥ ४४ ॥

तत्कथमियमन्यार्थं प्रार्थ्यते तद्दूरतामयं परप्रेष्यभावः ॥

तत्कथमिति ॥ अन्येषामिन्द्रादीनामर्थेऽन्यार्थे ॥

तो क्यों इसे दूसरों के लिये माँगूँ ? दूर जाय दूसरों का दौत्य-कार्य।

यतः। तिरयति स्वातन्त्र्यसुखम्, अभिमुखयति पारवश्यक्लेशम्, आमन्त्रयति तिरस्कारम्, आदरयति दैन्यम्, आह्वयति लघिमानम्, आवाहयति हास्यवादम्, समानयत्यौचित्यभङ्गम्, अङ्गीकारयति कार्पण्यम्, अपहस्तयति वस्तुभावम्, पुरुषस्य ॥

यत इति ॥ आङ्पूर्वस्य वहतेः करोत्यर्थत्वादावाहयति कारयतीत्यर्थः ॥

यह मनुष्य के स्वातन्त्र्य-सुख को ओझल कर देता है। परतन्त्रतामूलक दुःख को सामने ला देता है। तिरस्कार को आमन्त्रण देता है। दीनता को आदर देता है। लघुता को बुलाता है। उपहास कराता है। औचित्यभङ्ग को सम्मानित कराता है। कायरता को अङ्गीकार कराता है और वास्तविक भाव को छुड़ा देता है।

तथाहि—

सोच्छ्वासं मरणं निरग्निदहनं निःशृङ्खलं बन्धनं
निष्पङ्कं मलिनं विनैव नरकं सैषा महायातना।
सेवासंजनितं जनस्य सुधियो धिक्पारवश्यं यतः
पञ्चानां सविशेषमेतदपरं षष्ठं महापातकम् ॥ ४५ ॥

अतः—

बुद्धिमान् आदमी की सेवामूलक परतन्त्रता को धिक्कार है, क्योंकि यह श्वास रहते ही मरणं है, अग्नि के बिना ही जलन है, बिना बेड़ियों का बन्धन है, बिना कीचड़ का मल है, बिना नरक की महायातना है, पाँच महापातकों के अतिरिक्त यह एक विशेष तरह का छठा महापातक है ॥ ४५ ॥

[पराधीनता और मृत्यु में यही अन्तर है कि मृत्यु हो जाने पर श्वास नहीं चलती और पराधीनता में श्वास चलती है। जलन आग से होती है किन्तु पराधीनता की स्थिति में बिना आग के ही जलन होने लगती है। शृङ्खलाओं से बन्धन लगाये जाते हैं किन्तु पराधीनता में बिना शृङ्खला लगाये ही बन्धन लगा रहता है। कीचड़ से मलिनता उत्पन्न होती है किन्तु यह बिना कीचड़ के ही मलिनता उत्पन्न कर देता है।

अत्युत्कृष्ट पाप के कारण आदमी नरक की महत्तर यातनायें सहता है। परतन्त्रता भी एक उसी तरह की यातना है जैसी नरकों में सही जाती है। ब्रह्महत्या, मदिरापान, चोरी, गुरुपत्नीगमन तथा इन कार्यों के करने वाले लोगों के साथ सम्पर्क, ये महापातक कहलाते हैं। इन कार्यों को करने वाले लोगों को महायातनायें सहनी पड़ती है। मुझ (नल) को महायातना सहनी पड़ रही है और मैं इन प्रसिद्ध महापातकों में से कोई एक भी नहीं किया हूँ। इस से यह ज्ञात होता है कि परतन्त्रता भी एक महापातक ही है जिसके कारण मैं इतना कष्ट झेल रहा हूँ ॥ ४५ ॥]

किं चान्यत्—

प्रस्तुतस्य विरोधेन ग्राम्यः सर्वोऽप्युपक्रमः।
वीणायां वाद्यमानायां वेदोद्गारो न रोचते ॥ ४६ ॥

प्रस्तुतेति ॥ उभयानुरागौचित्यादात्मार्थस्य प्रस्तुतत्वम् ॥ ४६ ॥

दूसरी बात यह है कि—

प्रसङ्गप्राप्त वस्तु से प्रतिकूल होने के कारण ये सब यत्न अनुचित हैं, क्योंकि वीणा के बजते रहने पर वेदध्वनि अच्छी नहीं लगती ॥ ४६ ॥

[लोकपालों की आज्ञा के अनुसार दौत्यकार्य करना एक पुण्यात्मक कार्य है। यह उतना ही पवित्र है जितना वेदोदगार किन्तु दमयन्ती के मधुमय अनुराग के समक्ष दौत्यकार्य अच्छा नहीं लगता। वीणा की मधुर ध्वनि के सामने पवित्र होता हुआ भी वेदोदगार अच्छा नहीं लगता ॥ ४६ ॥],

तत्किमिदानीमिदमुच्यते। लोलाक्षि, लोकपालास्त्वामस्मन्मुखेन वृण्वन्ति इति प्रस्तुतानुरागभङ्गः, तदादेशोऽपह्नूयते स्वामिन्यन्यथा कथ्यते श्रेयःस्खलनम्, यथावृत्तमेवाख्यायते स्वार्थहानिः, तद्वरमस्तु स्वार्थविघातो न तु विश्वस्तदेवतावञ्चनापातकम्' इति चिन्तयन्नशेषमपि तस्यै पुरन्दरादेशं सप्रपञ्चमाचचक्षे ॥

अच्छा तो, इस समय क्या यह कहूँ, यदि कहता हूँ कि "हे चंचलनयने, लोकपाल हमारे माध्यम से तुम्हें चुनते हैं॥" तो इससे प्रेम में अन्तर पड़ेगा। यदि उनकी आज्ञा को छिपाता हूँ या इन्द्र आदि के सम्बन्ध में कुछ दूसरे ढंग से कहता हूँ तो कल्याण-मार्ग से गिरना होगा। जो स्थिति है यदि वैसा ही कहता हूँ तो स्वार्थ की हानि होगी। ऐसी स्थिति में स्वार्थ का विनाश ही अच्छा है, विश्वास किये हुए देवों को वञ्चित कर पाप लेना अच्छा नहीं।" यह सोचता हुआ इन्द्र की अशेष आज्ञा को सप्रसङ्ग सुना दिया।

सापि स्तोकस्मितस्निग्धनम्रमुखी 'हं हे प्रियंवदिके, प्रियास्मज्जीवितयाम्बया तातेन च मध्याह्ने समाहूय किमुक्तासि किं शिक्षिताऽसि। न नाम बालेयम्, अविनीतेयम्, आग्रहग्रहग्रस्तेयम्, इति केनापि कर्णेजपेन तातस्य हृदयाद् दूरीकृताहम्। वन्द्याः खलु गुरवो देवाश्च बिभेमि तेभ्योऽहम्' इति प्रियंवदिकाख्यया सख्या सार्धमन्यालापमकरोत् ॥

सापीति ॥ स्तोकेत्यादिना अर्थिनोऽपि लोकपालान्प्रत्यवज्ञा, नलं प्रत्यनुरागाग्रहं चान्यालापव्याजेन दमयन्ती प्रतिपादितवती। न नामेति वितर्के। 'किं दूरीकृताहम्' इति वितर्कः।

कुछ मुस्कुराहट, स्नेह एवं नम्रतापूर्ण मुख वाली वह (दमयन्ती) भी, "अजी प्रियम्वदिका, मेरे प्रिय एवं प्राणस्वरूप माता तथा पिता जी ने दोपहर को बुलाकर तुम से क्या कहा है? क्या सिखाया है? "यह लड़की नहीं है, उद्दण्ड है, आग्रह के कारण हठी है।" यह कह कर किसी निन्दक द्वारा पिता जी के हृदय से क्या दूर की गयी हूँ? गुरुजन तथा देव वन्दनीय हैं। मैं उनसे डरती हूँ।" इस तरह प्रियम्वदिका नामक सखी के साथ दूसरी बातें करने लगी।

[सम्भव है, देवों के वैभव तथा महिमा पर आकृष्ट होकर गुरुजन (माता पिता) यही अनुमति दें कि वह देवों में से ही किसी को पति चुने। इस विरुद्ध अनुमति की सम्भावना से गुरुजनों से डरती है। देव लोग तो उसके अनुराग के बीच कण्टक ही बन रहे हैं। अतः उन लोगों से डरना तो स्वाभाविक ही है।]

नलोऽपि 'मदिराक्षि, मदयति मदिरा, तरलयति तारुण्यम्, अन्धयति धनम्, उत्पथयति मन्मथः, विरूपयति रूपाभिमानः, खर्वयति गर्वः। सर्वजनकप्रसिद्धमेतत्। किंतु त्वमिदमसत्यतामानैषीः। व्यभिचरतु त्वाङ्गे सर्वमेतत्। नहि शशिनि वह्निः, अमृते च विषाङ्कुरः संभवति। तदिमं देवादेशं मावज्ञासीः। सर्वथा प्रभवन्ति प्राणिनाममी लोकपालाः। तत्रापि विशेषतः सकलत्रिदशाधिपतिरशेषसुरकिरीटमणिमयूखमालार्चितचरणारविन्दपुरन्दरो देवः। तद् वृणु कमप्यमीषाममृतभुजां मध्ये। मानस्य स्वर्गसुखानि। अभूमिरसि मर्त्यलोकस्तोकसुखानाम्' इति पुनस्तामभ्यधात्॥

नल भी, "मादकनयने, मदिरा उन्मत कर देती है। यौवन चंचल बना देता है। धन अन्धा बना देता है। काम पथभ्रष्ट कर देता है। सौन्दर्य का अभिमान मर्यादा बदल देता है। अहंकार उद्दण्ड बना देता है। यह बात सब लोगों में प्रसिद्ध है, किन्तु आप इसे सत्य न होने दें। आपके अङ्गों में यह सब व्यभिचरित हो जाय। चन्द्रमा में आग नहीं होती। अमृत में विष के अङ्कुर की सम्भावना नहीं की जाती। अतः आप देवों की आज्ञा की अवहेलना नहीं करें। ये लोकपाल सब तरह से प्राणियों के प्रभु बने रहते हैं। उसमें भी विशेषतः समस्त देवताओं के स्वामी महाराज इन्द्र जिनका चरणकमल सभी देवताओं की मुकुटमणि की किरणमाला से पूजित होता है। अतः इन अमृतभोजी देवताओं में से किसी को चुनिये। स्वर्ग-सुख न छोड़िये। मृत्युलोक के सीमित सुखों की आप पात्र नहीं है।" इस तरह पुनः उनसे कहा।

एवंविधे च व्यतिकरे दमयन्त्या पुनरुक्तमिमं जल्पमरण्यकरिण्येवारुन्तुदमङ्कुशमसहमानया मनाकरलिते शिरसि, स्तोकीकृते मनसि, मुक्ते निःसहनिश्वासमरुति, परवर्त्तिते चक्षुषि, विवर्णतामानीते वदनारविन्दे, प्रस्तावपण्डिता प्रियंवदिका प्राह॥

ऐसे प्रसङ्ग में पुनः कही हुई इस बात को अत्यन्त क्लेश देने वाले अङ्कुश को न सहती हुई जंगली हथिनी की तरह दमयन्ती शिर को कुछ कम्पित

की, मन को म्लान की, असहनीयता व्यक्त करनेवाले निःश्वासों को छोड़ने लगी, आँखों को तरेरने लगी, मुखकमल पर मलिनता छा गयीं, तब विचारनिपुण प्रियम्वदिका बोली—

'देव, श्रुतं श्रोतव्यम्, अवधारितो देवादेशः। किं तु न स्वतन्त्रेयम्, ईश्वरेच्छया प्रवृत्तिनिवृत्तयो यतः प्राणिनाम्, अनालोचनगोचरश्चाय-मनुरागोऽङ्गनाजनस्य ॥

"महाराज, सुन लिया जो सुनना था। देवों का आदेश समझ लिया, किन्तु यह स्वतन्त्र नहीं हैं। प्राणियों की प्रवृत्ति और निवृत्ति ईश्वर की इच्छा से होती है। रमणी जनों का अनुराग विचारपूर्वक नहीं चलता।

तथाहि—

तीव्रतपनतापप्रियाम्भोजिनी न सहते स्तोकमप्यमृतमुचो रुच-श्चन्द्रस्य, परिम्लायति मालतीमालिका सलिलसेकेन ॥

क्योंकि—

सूर्य के तीव्र ताप से स्नेह रखने वाली कमलिनी अमृतवर्षी चन्द्रमा की कान्तियों को थोड़ा भी नहीं सहती और मालती की माला जल का सिञ्चन प्राप्त कर म्लान हो जाती है।

प्रसिद्धं चैतत्—

भवति हृदयहारी कापि कस्यापि कश्चिन्न
न खलु गुणविशेषः प्रेमबन्धप्रयोगे।
किसलयति वनान्ते कोकिलःलापरम्ये
विकसति न वसन्ते मालती कोऽत्र हेतुः ॥ ४७ ॥

यह प्रसिद्ध भी है—

अनुराग विषयक व्यवहार में कोई गुणविशेष कारण नहीं होता। कहीं भी कोई किसी के चित्त का हरण करने वाला बन जाता है। कोकिल ध्वनि से रमणीय वसन्त काल में सम्पुर्ण वन जब नवीन पत्र धारण करता है तब मालती नहीं विकसित होती। इसमें क्या कारण है? ॥ ४७ ॥

[यद्यपि वसन्त बड़ा मनोहर होता है फिर भी वह मालती को नहीं अच्छा लगता है। लोकपाल बहुत वैभवशाली है फिर भी मेरी सखी को वे अच्छे नहीं लगते ॥ ४७ ॥]

एकमनेकविधोपाख्याननिपुणया तत्कालोचितम्, अनुच्चस्मित-सुधास्निग्धम्, अविरुद्धम्, परिमितपरिहाससुन्दरम्, अनुबृंहिता-

नुरागम्, उचितचाटुचटुलम्, अशाठ्यम्, अकठोरम्, अनुज्झितप्रियम्, प्रियंवदिकया सहालपाल्पं जल्पन् 'अयुक्तमिह कन्यान्तःपुरे चिरं स्थातुम्' इति चिन्तयन्नापृच्छ्य दमयन्तीं नलः पर्यङ्किकापृष्ठादुदतिष्ठत् ॥

इस तरह अनेक ढंग के दृष्टान्तपूर्ण प्रवचन में निपुण प्रियम्वदिका के साथ समयोचित, हास्य-सुधा से स्निग्ध, संगत, परिमित परिहास से मनोहर, बढ़े हुए अनुराग के अनुकूल, उचित चाटुकारिता से सुन्दर, शठता से शून्य, कठोरता से विहीन, प्रियता से अहीन, थोड़ी बातें करता हुआ, "कन्याओं के निवासगृह में चिरकाल तक ठहरना अच्छा नहीं है।" यह सोचता हुआ दमयन्ती का सादर कुशल प्रश्न पूछ कर नल आसन से उठ खड़ा हुआ।

प्रथमोत्थितया च तया लज्जावनम्रवदनारविन्दया सह सखीकदम्बकेन द्वित्राणि पदान्यनुगम्यमानो विहसन् 'अलमलमायासेन, स्थीयतां सुखम्' इत्यभिधाय स्वगृहानयासीत्।

पहले उठी हुई, लज्जा के कारण नम्र मुखवाली उस (दमयन्ती) तथा सखीमण्डल के साथ दो-तीन कदम चल कर हँसता हुआ, "रहने दीजिये, अब कष्ट न करें, ठहरें यहीं सुखपूर्वक।" यह कह कर अपने आवास की ओर चला आया।

गत्वा च शिरीषकुसुमदाममृदुनि शय्यातले निषण्णश्चिन्तयाञ्चकार।

जाकर शिरीषपुष्प की माला सदृश कोमल शय्या पर बैठकर चिन्तामग्न स्थिति में सोचने लगा—

हर्षादुत्पुलकं विकासि रभसादुत्तानितं कौतुका-
च्छृङ्गारादलसं, भयात्तरलदृग्भङ्गं भग्नं च लज्जाभरात्।
तस्यास्तन्नवसंगमे मृगदृशो दृश्येत भूयोऽपि किं
किंचित्काञ्चनगौरगण्डगलितस्वेदाम्बुरम्यं मुखम् ॥ ४८ ॥

मृगाक्षी का उस नवीन मिलन के अवसर पर प्रसन्नता से रोमाञ्चित, शीघ्रता से विकसित, कौतुक से उत्थित, शृङ्गार-भाव से सालस, भय से चञ्चल नेत्रों वाला, लज्जा के भार से नम्र, सुवर्ण सदृश गोरे कपोल से निकले हुए स्वेद-बिन्दुओं के कारण रमणीय मुख क्या फिर दिखाई पड़ेगा ? ॥ ४८ ॥

अपि च—

अपसरति न चक्षुषो मृगाक्षी
रजनिरियं च न याति नैति निद्रा।

प्रहरति मदनोऽपि दुःखितानां
बत बहुशोऽभिमुखीभवन्त्यपायाः ॥ ४९ ॥

वह मृगाक्षी आँखों से दूर नहीं होती है, नींद भी नहीं आ रही है और यह रात भी नहीं बीत रही है। यह कामदेव भी प्रहार करने लगा है। खेद की बात है कि दुःखियों के विनाश की बहुत सी सामग्रियाँ सामने आती जा रही हैं ॥ ४९ ॥

इति विविधवितर्कावेशविध्वस्तनिद्रः
सजलजडिम मीलत्पक्ष्म चक्षुर्दधानः ।
हरचरणसरोजद्वन्द्वमाधाय चित्ते
नृपतिरपि विदग्धः स त्रियामामनैषीत् ॥ ५० ॥

इति श्रीत्रिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचरण-
सरोजाङ्कायां सप्तम उच्छ्वासः ॥ ७ ॥

इति विषमपदप्रकाशमेतं दमयन्त्यास्तनुते स्म चण्डपालः ।
शिशुसतिलतिकाविकासचैत्रं चतुरमतिस्फुटभित्तिचारुचित्रम् ॥

श्रीप्राग्वाटकुलाब्जिवृद्धिशशभृच्छ्रीमान् यशोराज इत्यार्यो
यस्य पिता प्रबन्धसुकविः श्रीचण्डसिंहोऽग्रजः ।
श्रीसारस्वतसिद्धये गुरुरपि श्रीलूणिगः शुद्धधीः
सोऽकार्षीद्दमयन्त्युदारविवृतिं श्रीचण्डपालः कृती ॥

इति श्रीचण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे सप्तम उच्छ्वासः समाप्तः ॥

इस तरह विभिन्न वितर्कों के आवेश में निद्रा भंग हो गयी। आंखें जड़ जैसी होकर आँसू से भर गयीं। पलक बन्द हो गये। ऐसी स्थिति में भगवान् शङ्कर के चरणकमल-युगल में चित्त लगाकर उस सहृदय सम्राट् ने रात व्यतीत की ॥ ५० ॥

सप्तम उच्छ्वास समाप्त

समाप्तश्चाऽयं ग्रन्थः ।

श्लोकानुक्रमणिका